॥ श्रीसुरभ्यै नमः ॥

गोवंशमहिमामृतम्

गवेषक

पण्डित गङ्गाधर पाठक ‘मैथिल’

प्रकाशक

श्रीगोधाम महातीर्थ पथमेड़ा राजस्थान

सम्पादक

सुरेश राजपुरोहित आईपीएस

श्रीसुरभिध्यानम्

याऽऽराध्या विधिविष्णुरुद्रमुनिभिर्या विश्ववन्द्यार्चिता
सर्वप्राणिहितैषिणी शुभकरी त्रैलोक्यमाता च या ।
नित्यानन्दमयी पराऽध्वरहविर्मूला जगत्तारिणी
सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे भगवती सर्वेश्वरस्येश्वरी ॥

श्रीसुरभिप्रातःस्मरणम्

प्रातस्स्मरामि सुरभिम्भवतापहन्त्रीं देवर्षिसिद्धनरकिन्नरपालयित्रीम् ।
ब्रह्मेशविष्णुमुनिमोहनहव्यदात्रीं कव्यप्रदां भगवतीं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१॥
प्रातर्भजाम्यघहरां जगदम्बिकां गामाश्रित्य विश्वसकलं लभतेऽर्थसिद्धिम् ।
यस्याः खुरोद्भवरजः परमं पवित्रं गव्यं पुनाति भुवनं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥२॥
प्रातर्नमाम्यजसुतां परमां परेशामघ्न्यां सुरासुरनुतां वरदां वरेण्याम् ।
विद्याऽर्थसिद्धिपशुपुत्रयशोविधात्रीं श्यामामनन्तफलदां प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥३॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय गवां स्तवनमुत्तमम् ।
सर्वसिद्धिः करे तस्य यशोविजयभाग्भवेत् ॥४॥
॥ इति श्रीसुरभिप्रातःस्मरणम् ॥

अथ गोवंशमहिमामृतम्

गोरूपा पृथ्वी का पृथु द्वारा दोहन
श्राद्धकल्प में पितरों की अभिलाषा गौ
धेनुदानविधि
कामधेनुदानविधि
सुरभ्युपाख्यान
सुरभि की सृष्टि एवं गोवंश के ऊर्ध्वदन्त नहीं होने का कारण
रोहिणी गौ की प्रार्थना
गोसहस्रदानविधि
वृषोत्सर्ग में वृषलक्षण एवं विधान
विविध प्रकार की शान्ति में गौ
हलपंक्ति एवं गोचरभूमिदानविधि

शिवमहापुराण

गोमाहात्म्य
गोमाहात्म्य (गोकथा)
गौतम का गोवध प्रायश्चित्त

कूर्ममहापुराण

गोमयाग्नि का सेवन
गौतम का गोवधपायश्चित्त
गो, वृषभ, घासदान एवं गौ के लिये दीपदान का माहात्म्य

वामनमहापुराण

इन्द्र की गोप्रदक्षिणा

नरसिंहमहापुराण

जमदग्नि कार्तवीर्य संवाद, कामधेनु का दोहन
कामधेनु की महिमा

श्रीविष्णुमहापुराण

कामधेनु का प्राक्ट्य
श्रीकृष्ण बलराम के नामकरण के बाद गौ

मार्कण्डेयमहापुराण

गोष्ठादि में ग्रहजन्य पीड़ा की शान्ति के लिये गौ
गृहस्थरूपी धेनु का वर्णन

बृहत्पाराशर होराशास्त्र

नवग्रहशान्ति में गोपूजा एवं गोदान

हरिवंशमहापुराण

गोवर्धनलीला में गोमाहात्म्य

वन्ध्यात्त्वदोषनिवारण के लिये गोव्रत

अग्निमहापुराण

गोवध का प्रायश्चित्त

असत्प्रतिग्रह का प्रायश्चित्त

गवायुर्वेद

शान्त्यायुर्वेद

गोमतीविद्या

गवायुर्वेद एवं गोचिकित्सा

गोरक्षाकरणमन्त्र

विविध प्रायश्चित्त में गौ

कार्तिक व्रत में गौ

दशविधधेनुदान

गोदान, वृषोत्सर्ग एवं हलदान

गव्यपदार्थ से चिकित्सा

व्रतस्वरूप एवं पञ्चगव्य का विधान

ऋग्वेदीय विधान में गौ

यजुर्वेदीय विधान में गौ

सामवेदीय विधान में गौ

अथववेदीय विधान में गौ एवं विविधदान

स्कन्दमहापुराण

गोपीवन में कामदा सुरभि

महाभारत

कपिला गौ की उत्पत्ति

कपिलादान

गवोपनिषद् एवं गोदान महिमा

गो, तप एवं विविध प्रकार के गोदान की महिमा

गो एवं गोदानमहिमा
गोमाहात्म्य (व्यासशुकसंवाद) एवं गोलोकवर्णन
गौ एवं लक्ष्मीका संवाद, गोबर में लक्ष्मी का निवास
गोबर एवं गोमूत्र का माहात्म्य, गौ को ब्रह्मा का वरदान
इन्द्र द्वारा गोपूजन
गोमन्त्र का पाठ
च्यवन का मूल्य एक गाय एवं गोमाहात्म्य
गोदान का माहात्म्य
गो, भूमि एवं विद्यादान का माहात्म्य
नाचिकेतोपाख्यान में गोदान का माहात्म्य
ब्रह्मा द्वारा गोलोक एवं वहाँ जानेवालों का वर्णन
गोसेवा आदि विविध प्रकरण
गोदान की विधि एवं दाताओं के नाम
गोग्रासदान का माहात्म्य
कपिला गोदान माहात्म्य एवं कपिला के भेद
गाय, ब्राह्मण एवं अश्वत्थ की समानता
कपिला गौ की महिमा
गायत्री जप का माहात्म्य
सुरभि एवं इन्द्र का उपाख्यान
दुर्योधन की विशाल गौशाला
ययाति द्वारा सहस्र गोदान
सहदेव द्वारा विराट् के गौओं की रक्षा
विराट् की गौओं का अपहरण
अर्जुन द्वारा विराट् के गौओं को लौटाना
सुरभि की उत्पत्ति एवं उसकी सन्तानों के साथ रसातल का सुख
रसातल में सुरभि का उपाख्यान
यात्रा के मांगलिक कृत्यों में गोदर्शन आदि
अर्जुन द्वारा गोरक्षा में नियम भंग एवं वनगमन
नन्दिनी का स्वरूप

रन्तिदेव चरित, गौ एवं निष्क आदि के लक्षण

तुलाधार द्वारा जाजलि को धर्मोपदेश

धर्म और अधर्म के स्वरूप का निर्णय

श्रीकृष्ण द्वारा स्वविभूति का वर्णन, नामों की व्युत्पत्ति एवं उनकी महिमा

गोसेवा से ब्राह्मणों की महिमा

ब्रह्ममहापुराण

गोरूपधारिणी विजया एवं गौतम का प्रसंग

गोवर्धनतीर्थ का वर्णन

महर्षि दधीचि के अस्थि ग्रहण में गौ से प्रार्थना

गोरक्षतीर्थ का वर्णन

पृथु द्वारा गोरूपिणी पृथिवी का दोहन

पृथिवी का मूल्य एक गाय और कपिला संगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्माण्डमहापुराण

गोपुच्छभ्रमण द्वारा कृष्ण की रक्षा का विधान

जमदग्नि और सहस्रार्जुन प्रसंग में गौ

ब्राह्मण और गौ के अपराधी क्षत्रियों का परशुराम द्वारा संहार

निमिवंश का वर्णन

गोवंश रक्षण के लिये त्रैलोक्यविजय स्तोत्र

गोवंश रक्षण के लिये श्रीकृष्णप्रेमामृत स्तोत्र

लिंगमहापुराण

शिवाभिषेक एवं गौ का आराधन

हिरण्यवृष का दान

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण

गौ एवं ब्राह्मण का माहात्म्य

गोलोक एवं काल का परिमाण

गोब्राह्मणादि की श्रेष्ठता

पृथिवी के भार

गवार्थ शुक्लयजुर्विधानसूत्र

भावप्रकाश, शालिग्रामनिघण्टु एवं चरकसंहिता आदि

पञ्चगव्यगुणाध्याय अतिविस्तृत

अमरकोष
गौ आदि नामों का विवेचन
पद्ममहापुराण
नन्दिनी एवं दिलीप का वृत्तान्त
गोतीर्थ का माहात्म्य
पुष्कर में नन्दातीर्थ का वर्णन
दशविधधेनु का दान
वसिष्ठधेनु की कथा एवं गौ हेतु घासप्रदान की महिमा
ब्राह्मणों की वृत्ति
गोमाहात्म्य एवं विपत्ति में ब्राह्मणों की वृत्ति
धेनुव्रतका वर्णन
धेनुव्रत का वर्णन
वृन्दावन का माहात्म्य – 3।2।7
स्कन्दमहापुराण
दधीचि के प्रसंग में गौ
प्रदोषव्रतोद्यापन में गौ
सत्पात्र के लिये दान
श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण
स्त्रियों का मुख्य व्रत श्रीपूजा एवं गोपूजा
गोमतीविद्या
गोचिकित्सा
गौ के लिये शान्तिकर्म
गौ की शुश्रूषा
गोदानफल का निरूपण
घृतधेनुदान
तिलधेनुदान
जलधेनुदान
सुरापान में दोष
पात्रविशेष के लिये दानविशेष
पापप्रशमनार्थ शान्तिकर्म में धेनु की दक्षिणा

क्षीरधेनुदान
दधिधेनुदान
नवनीतधेनुदान
लवणधेनुदान
कार्पासधेनुदान
धान्यधेनुदान
कपिलाधेनुदान
कपिलामाहात्म्य
गोमयलेपन का माहात्म्य
नन्दीश्वर का अवतार
गोमेध (गव्यपदार्थ से)
गोनिष्क्रमणतीर्थ की महिमा
गोमाहात्म्य (चतुर्वर्णाश्रमसेवा)
स्कन्दमहापुराण
हरशापवार्त्तावर्णन
शिवद्वारा गोस्तुति से पुनः लिंगप्राप्ति
वृषस्तुति एवं अमरकण्टक लिंगस्थापन
नर्मदा का प्रादुर्भाव
नीतिश्लोक
ब्राह्मणमाहात्म्य
वाराणसी में कपिलाहृदोत्पत्ति
नर्मदा माहात्म्य एवं कपिलातीर्थवर्णन
गोदान माहात्म्य
गोपारेश्वर शिवमाहात्म्य (गो से उत्पन्न सींग)
पञ्चविध नील वृष
भविष्यमहापुराण
धेनुप्रार्थना एवं दशविधधेनु
धेनुमाहात्म्य
गोप्रचारदानविधि
गोप्रचारविधि

वृन्दावन में गौ
गरुडपुराण नीतिश्लोक
भुशुण्डिरामायण
स्वकीयपद्य रामायणीय
श्रीरामगोचारणलीला
श्रीराम की बाललीला
श्रीराम की वत्सचारणलीला
ब्रह्ममोहलीला
श्रीराम की गोचारणलीला
श्रीराम द्वारा द्विजगवानयन
श्रीराम की गोचारण लीला
श्रीराम द्वारा गोचारणरहस्य
श्रीराम द्वारा गोचारण
व्रज में मथुरा आदि के प्रसिद्ध गोस्थल
बहुला गोतीर्थ मथुरा में
बरसाने के गोतीर्थ
ब्रज के गोतीर्थ
रामरक्षार्थ गोपुच्छभ्रामण
रामरक्षोघ्नमन्त्र
गोपियों ने रामदर्शनार्थ दध्यादि लाया
श्रीराम द्वारा गो एवं वत्सचारण
गोरूप का रहस्य
श्रीराम द्वारा गोरक्षार्थ दवानलपान
गरुडपुराण नीतिसार
स्वकीय
सुरभियन्त्रोद्धार के पद्य
श्रीसुरभिगीता
द्रौपदी के मूलतः एक ही पति
गोमाहात्म्य के कतिपय श्लोक

अथ गोवंशमहिमामृतम्

वन्दे परात्परां देवीं वन्दे श्रीजगदम्बिकाम् ।
समृद्धिं सुरभिं वन्दे धर्मार्थकाममोक्षदाम् ॥१॥

धेनुर्वै शरणं समस्तजगतां धेनुं विना का गति-
र्धेन्वेदं प्रतिहन्यते कलिमलं धेन्वै जनन्यै नमः ।
धेन्वास्त्रस्यति कालभीमभुजगो धेन्वा महत्त्वं महद्-
धेनौ भक्तिरखण्डिता भवतु मे धेनो हि मामुद्धर ॥२॥

गौरेवास्त्यमरत्वबुद्धिबलदा जगतः प्रतिष्ठोत्तमा
सृष्ट्यादित्रिविधात्र्यनादिजननी देवर्षिसिद्धात्मनाम् ।
यज्ञेनैव सुरादयः क्षितितले जीवन्ति यज्जन्तवो
गव्येनामृतदिव्यवस्तुहविषा सम्पादनीयो मखः ॥३॥

श्रीमद्धेनुसुरम्यसुन्दरकथां श्रुत्यादिसिद्धामृतां
विश्वस्याघविनाशिनीं मखमयीं तां विश्वरूपां पराम् ।
पूताह्लादकरीं यशःसुखकरीं पीयूषसंवर्षिणीं
सेवन्तां सततं जनाः सुमतयो वाञ्छन्ति शं चेत्स्वयम् ॥४॥

वेदादिसर्वशास्त्रेषु गोमाहात्म्यं प्रदृश्यते ।
महत्त्वाच्च बृहत्त्वाच्च वक्तुं केनाप्यशक्यते ॥५॥

पुनाति सततं लोकान् गव्येन रजसा तथा ।
हव्यकव्यप्रदात्रीयं देवर्षिपितृतृप्तये ॥६॥

गोमातरं नमस्कृत्य गोपालं गोपिकायुतम् ।
वच्मि लोकहितार्थाय गोवंशमहिमामृतम् ॥७॥

जगन्मातर्नमस्तुभ्यं त्वत्पादाम्बुजसंश्रयात् ।

भवेद् गो-लोकलाभाय गोवंशमहिमामृतम् ।।८

आद्यामनन्तामजरामनादिं ज्ञानस्वरूपाममलामतुल्याम् ।

ध्येयामशेषाघविनाशिनीं तां धेनुं ववन्दे शिरसा सदाऽहम् ।।९।।

सूर्याम्बिकाविष्णुगणेशरुद्रान् व्यासांजनेयाप्रतिमप्रभावान् ।

वृन्दाटवीं शेषसुरेशवन्द्यां नौमीड्यमातापितृपादपद्मम् ।।१०।।

एकदा तीर्थयात्रायां नैमिषं समुपागतम् ।

सूतं पुराणवक्तारं सर्वशास्त्रेषु निष्ठितम् ।।११।।

ध्यायन्तं कामधेनुं तं समभ्यर्च्य तपोधनाः ।

नैमिषस्था महाभागाः शौनकाद्या महर्षयः ।।१२।।

स्वाहाकारवषट्कारैर्दिव्यतेजस्समन्विताः ।

पप्रच्छुस्ते महात्मानं गोमाहात्म्यं नताः कविम् ।।१३।।

ऋषय ऊचुः

हे सूत सर्वशास्त्रज्ञ त्वां पृच्छामो वयं मुदा ।

सर्वेश्वरी सा का देवी का पूज्या देवतादिभिः ।।१४।।

का ध्येया का जगत्कर्त्री केह पाति च हन्ति का ।

कस्याः प्रवर्तते यज्ञो दुष्टहन्त्री च का स्मृता ।।१५।।

जगन्मातुः स्वरूपं किं जगत्सर्गस्ततः कथम् ।

कैर्व्रतैः सा प्रसन्ना स्यातसुलभा सर्वदैव हि ।।१६।।

तस्याः कति विधोत्पत्तिस्तद्वंशसम्भवः कथम् ।

वर्णाश्रमादिधर्माणां का पात्री का प्रवर्तिका ।।१७।।

एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते ।

कामधेनुकथाः सर्वाः कथयास्मभ्यमुत्तमाः ।।१८।।

सूत उवाच

प्रणम्य सुरभिं देवीं कामधेनुं जगत्प्रसूम् ।
वक्ष्ये सनातनं सारं गोवंशमहिमामृतम् ॥१९॥

वेदाद्यखिलशास्त्राणां तत्त्वात्तत्त्वं विनिःसृतम् ।
सेव्यतां पीयतां भक्त्या गोवंशमहिमामृतम् ॥२०॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां सारं सन्दुह्य यत्नतः ।
क्रियते सर्वपुष्ट्यर्थं गोवंशमहिमामृतम् ॥२१॥

लोकानां रक्षणार्थाय देवानां प्रीणनाय च ।
क्रियते गोऽनुकम्पातो गोवंशमहिमामृतम् ॥२२॥

वाल्मीकिव्यासमुख्यानामन्यर्षिवचनात्तथा ।
क्रियते सारमादाय गोवंशमहिमामृतम् ॥२३॥

गवामद्भुतमाहात्म्यं देवर्ष्यादिप्रकीर्तितम् ।
तद्रहस्यमनिर्वाच्यं गोवंशमहिमामृतम् ॥२४॥

ब्रह्मविष्णुशिवोक्तं यद्रामकृष्णादिसेवितम् ।
गोभक्तेभ्यो हितं शश्वद् गोवंशमहिमामृतम् ॥२५॥

ये हि कल्याणमिच्छन्ति परलोके सुखं च ते ।
पिबन्तु कर्णरन्ध्रेण गोवंशमहिमामृतम् ॥२६॥

राष्ट्रधर्मविशोधाय लोकालोकसुखाय च ।
सदा ध्येयं सदा पेयं गोवंशमहिमामृतम् ॥२७॥

कृष्णेन धर्मराजाय सम्यक्प्रोक्तं पुरा यथा ।
व्यासाच्छ्रुतं मया यद्वत्तच्छृणुध्वं समाहिताः ॥२८॥

एका भगवती साक्षाद्देवी सर्वेश्वरेश्वरी ।
चतुष्पादस्वरूपा या सा मे पातु मखेश्वरी ॥२९॥

सैव देवी परं ब्रह्म ज्योतीरूपा सनातनी ।
तया ततमिदं सर्वं तद्व्याप्तमखिलं जगत् ।।३०।।
चतुष्पादेषु गोविन्दः कामधुक् स्वयमेव हि ।
अतो गवार्चनादेव रामकृष्णादयोऽर्चिताः ।।३१।।
गवामर्चनकाले तु गोविन्दं गोप्रियं यजेत् ।
गोकुलं च गवां पालं भूषयेत्प्रियवस्तुभिः ।।३२।।
गोभक्तवर गोविन्द गोकुलत्राणकारक ।
गोवंशस्य समृद्ध्यर्थं बलं बुद्धिं च देहि मे ।।३३।।
हे गोपाल नमस्तुभ्यं गवां सेवासु तत्परः ।
भाग्यवान्बुद्धिमांश्चासि जन्मेदं सफलं तव ।।३४।।
गोवंशस्य परित्राणे गोष्ठस्थानमनुत्तमम् ।
तदधिष्ठातृदेवं च तद्दातारं नमाम्यहम् ।।३५।।
माता मे सुरभी देवी धर्मरूपी वृषः पिता ।
सनातनोऽयं सिद्धान्तो वेदेषु परिकीर्तितः ।।३६।।
त्वं देवी त्वं महादेवी त्वं शिवा त्वं सरस्वती ।
महालक्ष्मीर्महाकाली त्वं वै राधा व्रजेश्वरी ।।३७।।
गोविन्दोऽपि त्वमेवासि व्रजस्त्वं तीर्थरूपिका ।
त्वमुमा मूलविद्या त्वं त्वयि वेदाः प्रतिष्ठिताः ।।३८।।
त्वत्तः प्रवर्तते यज्ञो लोके धन्यः सनातनः ।
कल्याणी त्वं च त्वं ज्योत्स्ना वृद्धिः सिद्धिस्वरूपिणी ।।३९।।
प्रतिष्ठा सर्वभूतानां चेतना बुद्धिरूपिणी ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पराम्बां त्वां नमाम्यहम् ।।४०।।
निद्रा क्षुधा चच्छाया च शक्तिस्तृष्णा त्वमेव हि ।
क्षान्तिर्जातिस्तथा लज्जा शान्तिः श्रद्धा स्मृतिस्तथा ।।४१।।
कान्तिर्लक्ष्मीश्च वृत्तिश्च दया तुष्टिस्वरूपिणी ।
भ्रान्तिस्त्वं च जगन्माता त्वं वै सर्वेन्द्रियेश्वरी ।।४२।।
व्याप्तिस्त्वं चितिरूपेण त्वामहं शरणं गतः ।
त्रायस्व स्वात्मजं नित्यं नान्यस्त्राता हि दृश्यते ।।४३।।
हे गोविन्द जगन्नाथ कामधेनुवपुर्धर ।
गोभक्तान्पाहि यज्ञेश स्वान्जनान्क्लेशवारिधेः ।।४४।।
मातः पयस्विनि पुनः पुनरेव नत्वा याचे तवांघ्रिविनतिं शरणं भवत्याः ।
दिव्यातिगोप्यचरितं भणितं श्रुतौ यत् सर्वं त्वदीयममलं हृदि मे तनोतु ।।४५।।
नास्त्यक्षरं किमपि ते स्तुतिभावहीनं नैवास्ति विश्वमखिलं जननीं विनेदम् ।
यत्त्वं ददासि दधिदुग्धघृतप्लुतान्नं धेनो कथं कथय यामि शरण्यमन्यत् ।।४६।।

श्रीसुरभ्युवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया वत्स प्रीताऽहं त्वयि सुव्रत ।
वेदादिसारसारं यत्तद्वदामि समासतः ॥४७॥
अहं ब्रह्मस्वरूपाऽस्मि मत्तः सृष्टिः प्रवर्तते ।
स्थितिश्च सर्वजीवानां मत्तोऽन्यः क्वात्र दृश्यते ॥४८॥
एकाऽहं बहुरूपेण विचरामि महीतले ।
चतुष्पदाऽहं सुलभा सर्वरक्षणतत्परा ॥४९॥
अहं धात्री च पात्री च अहं चिदचिद्रूपिणी ।
मदर्चनाज्जगत्तुष्टं भवत्येव न संशयः ॥५०॥
भास्करस्य प्रभा चाहं चन्द्रस्य चन्द्रिका तथा ।
वह्नेश्च दाहिका शक्तिः स्वाहा यज्ञस्य वाहिका ॥५१॥
स्वधा पितृगणानां च यज्ञस्य दक्षिणा तथा ।
मखक्रियाऽपि चैवाहं तथाऽहं तत्प्रवर्तिका ॥५२॥
अहं विष्णुश्च रुद्रश्च ब्रह्मेन्द्रादिसुरर्षयः ।
गन्धर्वादिस्वरूपेण चाहं वै विश्वरूपिणी ॥५३॥
माताऽहं जगतां नित्यं जगज्जीवाश्च मे सुताः ।
तस्मात्सर्वात्मभावेन पालयामि जगत्त्रयम् ॥५४॥
ये केचिदिह विख्यातास्तद्धेतुरहमेव हि ।
अन्नक्षीरादिदानेन सर्वं पुष्णाम्यसंशयः ॥५५॥
सुरभिर्ब्राह्मणश्चैव गोविन्दस्तुलसी श्रुतिः ।
गीता गंगा च गायत्री समानाश्च पृथग्वपुः ॥५६॥
तुलसी जाह्नवी श्रीश्च शास्त्रे हरिप्रियाः स्मृताः ।
साक्षाद्धि सुरभी देवी विख्याता हरिपालिका ॥५७॥
जन्मान्तरसहस्राणां पुण्यपुंजफलोदयः ।
तदा गोषु भवेद् भक्तिर्ब्राह्मणेषु विशेषतः ॥५८॥
गौर्मूलप्रकृतिर्ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी ।
ज्योतीरूपा स्थिता नित्यं गोलोके स्वजनैर्वृते ॥५९॥
गीता श्रुतिगोसंजाता गंगा गोमुखसम्भवा ।
गायत्री गोस्वरूपत्वान्मूलं सुरभिरुच्यते ॥६०॥
एतत्स्वर्गागतानां तु लक्षणं कथितं बुधैः ।
नरकागतजीवानां वैपरीत्यं हि सर्वदा ॥६१॥
ब्राह्मणस्य बलं शास्त्रं तदभावेऽन्यसाधनम् ।
तस्माद्धि ब्राह्मणो नित्यं शास्त्रमेवाभ्यसेद् ध्रुवम् ॥६२॥
यथा हि गोगव्यरजोऽतिशुद्धं तथैव गोवंशपुराणसारम् ।
गोष्ठे गृहे चात्र गवां समीपे पठेन्नरो वा श्रृणुयादजस्रम् ॥६३॥

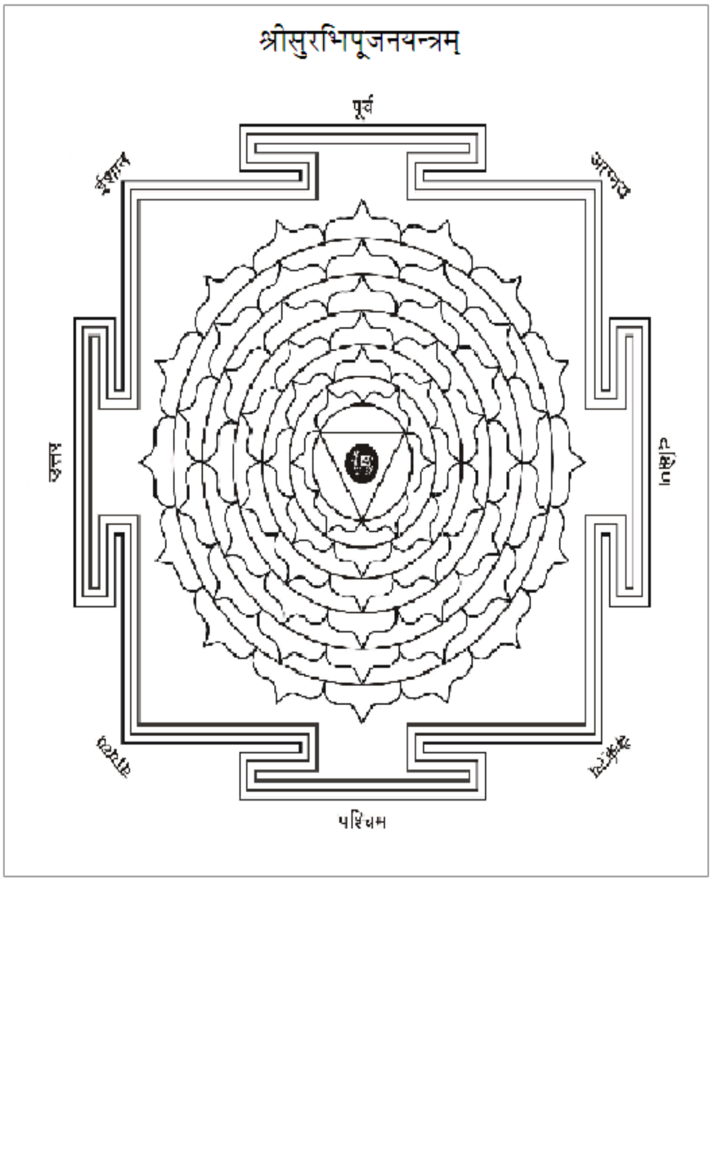
सूत उवाच

मातस्तेऽनुग्रहं मन्ये जगत्कल्याणकारकम् ।
त्वत्सपर्याविधिं ब्रूहि यथा वेदागमोदितम् ।।६४।।

श्रीसुरभ्युवाच

यन्त्रोद्धारः- बिन्दुत्रिकोणगुहशंकरदिक्तमोऽरिब्रह्माण्डषोडशदलत्रिकभूपुरं च ।
गोयागपूजनविधौ श्रुतिसिद्धमेतद्यन्त्रं विधाय विधिनाऽर्चनमाचरेज्ज्ञः ।।६५।।

गोपूजनविधि में गवावरणपूजन के लिये प्रशस्त बिन्दु, त्रिकोण, गुह- षट्कोण (कार्त्तिकेय षष्ठी के स्वामी हैं), शंकर- अष्टदल (शिव अष्टमी तिथि के स्वामी हैं), दिक्- दशदल (दिशाएँ दस हैं), तमोऽरि- द्वादशदल (तमस् के शत्रु आदित्य बारह हैं), ब्रह्माण्ड- चतुर्दशदल, षोडशदल और भूपुरत्रयात्मक श्रुतिसिद्ध यन्त्र का निर्माण करके बुद्धिमान् मनुष्य पवित्र चित्त से विधिपूर्वक सपरिकर गोमाता का पूजन करे ।।



वैशद्येन यन्त्रोद्धारः पूजनक्रमश्च-

बिन्दुं सुरभिसंयुक्तं त्रिकोणं षड्दलं तथा ।
पुनरष्टदलं कृत्वा दिग्दलं तदनन्तरम् ॥६६॥
आदित्यदलसंख्यातं चतुर्दशदलं लिखेत् ।
षोडशारं ततः कुर्याद् भूपुरत्रयसंयुतम् ॥६७॥
चतुर्द्वारेण संश्लिष्टं यन्त्रनिर्माणमाचरेत् ।
वृत्तं च संलिखेद्धीमान् दलादौ सर्वदैव हि ॥६८॥
वेदागमविधानेन पूजयेद्यन्त्रदेवताः ।
सुरभिश्च भवेत्तुष्टा पूजकः फलमाप्नुयात् ॥६९॥
ॐ सुरभ्यै नमो बिन्दौ यन्त्रे भक्त्याऽर्चयेन्नरः ।
ततः प्रजापतिं देवं पूजयेत्परमेष्ठिनम् ॥७०॥
इन्द्रं समर्चयेद्धीमान् त्रिकोणेषु च पूर्वतः ।
अग्निं यमं च सोमं च द्युलोकं पृथिवीं तथा ॥७१॥
विद्युतं मूलमन्त्रेण षड्दलेषु यजेद् बुधः ।
मरुतं रेवतीश्चैव कृत्तिकां सूर्यमण्डलम् ॥७२॥
विधरणीमनिलं स्वर्गं श्येनं चाष्टदलेषु च ।
दशारेष्वन्तरिक्षं च पूजयेच्च बृहस्पतिम् ॥७३॥
बृहतीं देवपत्नीश्चोपदिष्टीन् मित्रदेवताम् ।
वरुणं चैव त्वष्टारमर्यमाणं शिवं तथा ॥७४॥
इन्द्राणीमनिलं चैव पवमानं च ब्राह्मणम् ।
क्षमं बलं च धातारं विधातारं प्रपूजयेत् ॥७५॥
गन्धर्वमप्सरसश्च अदितिं चेतनां तथा ।
श्रद्धया पूजयेद्धीमानादित्येषु दलेषु च ॥७६॥
मेधां व्रतानि सम्पूज्य क्षुधामन्नानि पूजयेत् ।
नगान् क्रोधं च मन्युं च प्रजाः सर्वा नदीस्तथा ॥७७॥
वर्षाधिपतिमेघं च स्तनयित्नुं खमोषधीः ।
नक्षत्राण्यर्चयेन्नित्यं चतुर्दशदलेषु च ॥७८॥
देवजनान्देवलोकान् मनुष्यान्भक्षकांस्तथा ।
रक्षांसीतरजनानभ्रान् निधनान्यग्निमश्विनौ ॥७९॥
सोमं मित्रं तथाऽऽनन्दं वैश्वदेवं प्रजापतिम् ।
सर्वं समर्चयेद्धीमान् षोडशारेषु पूर्वतः ॥८०॥
इन्द्रं यमं च धातारं सवितारं तथैव हि ।
भूपुरस्य चतुर्द्वारि पूजयेद्धेनुभक्तिमान् ॥८१॥
सम्पूर्णयन्त्रमाश्रित्य मध्ये गां विश्वरूपिणीम् ।
समर्चयेत्सदा धीमानित्येवाथर्वणी श्रुतिः ॥८२॥

यन्त्रार्चने दिशो ग्राह्याः कल्पितास्तन्त्रमार्गतः ।
पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची तत्त्वविदो विदुः ॥८३॥

सूत उवाच

या मूलप्रकृतिः परापरमहाविद्यास्वरूपात्मिका
देवेन्द्रादिभिरर्चिताऽतिमुदिताऽभीष्टप्रदा शाश्वती ।
या स्रग्वस्त्रविभूषिता हरिहराराध्या गवां स्वामिनी
तमाद्यां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीकामधेनुं भजे ॥८४॥

कारुण्यामृतसारसारहृदयां संसारसारां परां
भव्यांगां मधुरस्मितां भगवतीं सर्वेष्टसिद्धिप्रदाम् ।
वेधोविष्णुमहेशसेवितपदां क्षीरोदमन्थोद्भवां
दिव्याचिन्त्यविचित्ररूपचरितां श्रीकामधेनुं भजे ॥८५॥

याऽस्ति क्षीरसमुद्रजाऽनलभवा या ब्रह्मपुत्री स्मृता
या वेदादिषु पूजिता सुरगवी या श्रीस्त्रिभुवनेश्वरी ।
या सर्वार्थविधायिनी भुवि सदा या यज्ञगर्भा स्वयं
तां देवीं करुणामयीं भगवतीं श्रीकामधेनुं भजे ॥८६॥

या गोलोकविहारिणी सुरगणैः कृष्णेन चाराधिता
देवी चार्बुदवासिनी श्रुतिनुता या सर्वसिद्धिप्रदा ।
श्रीदत्तादिभिरर्चिताऽमरगवी याऽभीष्टदाने रता
तां श्रीचक्रविलासिनीं भगवतीं श्रीकामधेनुं भजे ॥८७॥

नित्यं नमामि शुभदे शुभशोभनांगे सर्वेश्वरि प्रणतदुःखहरे स्मितास्ये ।
दास्यं प्रदेहि निजपादरजोऽभिषिक्तं क्षिप्रं प्रसीद वरदाऽस्यव कामधेनो ॥८८॥

नित्यं नमाम्यघहरे सुरभे सुशीले नन्देऽदिते सकलसौख्यधरे सुभद्रे ।
मातस्त्वमेव बहुले जगति प्रसिद्धे क्षिप्रं प्रसीद वरदाऽस्यव कामधेनो ॥८९॥

नित्यं नमामि जगदम्ब ममावलम्बे सन्तारयाशु भवरन्ध्रगतं निजार्भम् ।
सर्वत्र सर्वसुलभे करुणार्द्रचित्ते क्षिप्रं प्रसीद वरदाऽस्यव कामधेनो ॥९०॥

नित्यं नमामि करुणे करुणायताक्षि देवर्षिहृत्कमलवासिनि विश्वमातः ।
क्षीरोदजे विधिसुते त्रिजगच्छरण्ये क्षिप्रं प्रसीद वरदाऽस्यव कामधेनो ॥९१॥

नित्यं नमामि शबले बहुले समंगे क्षेमेऽभयेऽसुरसुरार्चितपादपद्मे ।
सख्ये सहे जगति भूयसि सिद्धसिद्धे क्षिप्रं प्रसीद वरदाऽस्यव कामधेनो ॥९२॥

नित्यं नमामि विधिविष्णुशिवादिवन्द्ये हव्यामृतार्णवधरे श्रुतिसारसारे ।
देवर्षिपितृमखमूलरहस्यरूपे शीघ्रं प्रसीद शरणं भव कामधेनो ॥९३॥

कारुण्यरूपा जगदम्बिका या क्षीरोदजा ब्रह्मसुता प्रसिद्धा ।
देवर्षिभिः सिद्धगणैः स्तुता या सा कामधेनुः शरणं ममास्तु ॥९४॥

इति श्रीगोवंशमहिमामृते प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

गोकर्णे जपनीयमन्त्रः

ऊँ ह्लीं भगवत्यै ब्रह्ममात्रे विष्णुभगिन्यै रुद्रदेवतायै सर्वपापप्रमोचिन्यै ।

कामधेनुविद्यामन्त्रः

ओं क्लीं कामदुघे अमोघे वरदे विच्चे स्फुर स्फुर श्रीं परश्रीं ।

सुरभिध्यानम्

ॐ सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम् ।

नमामि ह्लींमयीं देवीं धियो या नः प्रचोदयात् ।।१।।

ॐ नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः।।२।।

शब्दध्यानम्

नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने ।

ऋग्यजुःसामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे ।।

यज्ञध्यानम्- पृथ्वीपवनवह्न्यम्भोनभोयज्वेन्दुभास्कराः ।

मूर्त्तयोऽष्टौ जगत्पूज्यास्तं यज्ञं प्रणमाम्यहम् ।। ब्रह्मपु.२।३२।३१

सूर्यध्यानम्- अग्निमीडे नमस्तुभ्यमिषेत्वोर्जे च भास्कर ।

अग्न आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषाम्पते ।। म.पु.९४।१२

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखं वा सुखमेव वा ।

तत्तथैव भवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः ।। दे.भा.४/२०/३०

कल्पवृक्षध्यानम्

ॐ नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने ।

विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ।। महा. २७७।१३

श्रीगरुडध्यानम्

सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ।

विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।। म.पु.९३।९९

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे गोमाहात्म्यम्

तारकावध

एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम् ।

गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम् ।।१/२५/१५।।

विश्वामित्रजी ने श्रीराम से तारकावध के लिये कहा; हे रघुनन्दन! तुम गौओं और ब्राह्मणों का हित करने के लिये दुष्टपराक्रमवाली इस परम भयंकर दुराचारिणी यक्षी का वध कर डालो ।

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय वै ।

तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः: ।।१/२६/५।।

भगवान् श्रीराम ने विश्वामित्रजी से कहा; हे ब्रह्मविद्वरिष्ठ महात्मन् ! गौ, ब्राह्मण तथा सम्पूर्ण देश का हित करने के लिये मैं आप जैसे अनुपम प्रभावशाली महात्मा के आदेश का पालन करने को सब प्रकार से तैयार हूँ ।

तं व्रजन्तं मुनिवरमन्वगादनुसारिणाम् ।

शकटीशतमात्रं तु प्रयाणे ब्रह्मवादिनाम् ।।१/३१/१७।।

सिद्धाश्रम से मिथिला को प्रस्थान करते हुए मुनिवर विश्वामित्र के पीछे उनके साथ जाने वाले ब्रह्मवादी महर्षियों की सौ बैलगाडियाँ चलीं ।

श्रीविश्वामित्र(राजा) से आतिथ्यसत्कार की अनुमति प्राप्त कर लेने पर महर्षि वसिष्ठजी ने शबला (कामधेनु) को बुलाया –

एवमुक्तस्तथा तेन वसिष्ठो जपतां वरः ।

आजुहाव ततः प्रीतः कल्माषीं धूतकल्मषाम् ।।१/५२/२०।।

और ऋषि ने कामधेनु शबला से कहा :-

एह्येहि शबले क्षिप्रं श्रृणु चापि वचो मम ।

सबलस्यास्य राजर्षेः कर्तुं व्यवसितोऽस्म्यहम् ।।

भोजनेन महार्हेण सत्कारं संविधत्स्व मे ।। १/५२/२१।।

हे शबले! शीघ्र आओ, आओ और मेरी यह बात सुनो- मैंने सेना सहित इन राजर्षि का महाराजाओं के योग्य उत्तम भोजन आदि के द्वारा आतिथ्य-सत्कार करने का निश्चय किया है । तुम मेरे इस मनोरथ को सफल करो ।

यस्य यस्य यथाकामं षड्रसेष्वभिपूजितम् ।

तत् सर्वं कामधुग् दिव्ये अभिवर्ष कृते मम ।।१/५२/१२।।

षड्रस भोजनों मे से जिसको जो-जो पसन्द हो, उसके लिये वह सब प्रस्तुत कर दो । दिव्य कामधेनो! आज मेरे कहने से इन अतिथियों के लिय अभीष्ट वस्तुओं की वर्षा करो।

रसेनान्नेन पानेन लेह्यचोष्येण संयुतम् ।

अन्नानां निचयं सर्वं सृजस्व शबले त्वर ।।१/५२/२३।।

शबले! सरस पदार्थ, अन्न, पान, लेहदार चटनी आदि और चोष्य से युक्त भाँति-भाँति के अन्नों की ढेर लगाओ । सभी आवश्यक वस्तुओं की सृष्टि कर दो । शीघ्रता करो- विलम्ब न होने पावे ।

वसिष्ट-विश्वामित्र प्रकरण

एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन ।

विदधे कामधुक् कामान् यस्य-यस्येप्सितं यथा ।। १/५३/१ ।।

(शतानन्दजी के पूछने पर राजर्षि विश्वामित्र ने भगवान् श्रीराम के द्वारा अहल्योद्धार की बात बतायी, तो शतानन्द जी बहुत प्रसन्न हुए और श्रीराम का अभिनन्दन करते हुए विश्वामित्र जी के पूर्वचरित्र का वर्णन करने लगे ।)

हे शत्रुसूदन! (भगवान् श्रीराम) महर्षि वसिष्ठ के ऐसा कहने पर चितकबरे रंग की उस कामधेनु ने जिसकी जैसी इच्छा थी उसके लिये वैसी ही सामग्री जुटा दी ।

नानास्वादुरसानां च खाण्डवानां तथैव च ।

भोजनानि सुपूर्णानि गौडानि च सहस्रशः ।।१/५३/४।।

भाँति-भाँति के सुस्वादु रस, खाण्डव, तथा नाना प्रकार के भोजनों से भरी चाँदी की सहस्रों थालियाँ सज गयीं ।

सर्वमासीत् सुसन्तुष्टं हृष्ट-पुष्टजनायुतम् ।

विश्वामित्रबलं राम वसिष्ठेन सुतर्पितम् ।।१/५३/५ ।।

हे श्रीराम! महर्षि वसिष्ठजी ने विश्वामित्रजी की सारी सेना के लोगों को भली-भाँति तृप्त किया । उस सेना में बहुत से हृष्ट-पुष्ट सैनिक थे । उन सबको वह दिव्य भोजन पाकर बड़ा संतोष हुआ ।

विश्वामित्रो हि राजर्षिर्हृष्ट-पुष्टस्तदाऽभवत् ।

सान्तःपुरवरो राजा सब्राह्मणपुरोहितः ।। १/५३/६ ।।

राजर्षि विश्वामित्र भी उस समय अन्तपुरः की रानियों, ब्राह्मणों और पुरोहितों के साथ बहुत ही हृष्ट-पुष्ट हो गये । तब सपरिकर पूजित हो वे बड़े प्रसन्न होकर वसिष्ठ जी से बोले-

पूजितोऽहं त्वया ब्रह्मन् पूजार्हेण सुसत्कृतः ।

श्रूयतामभिधास्यामि वाक्यं वाक्यविशारद ।।१/५३/८।।

हे ब्रह्मन्! आप स्वयं मेरे पूज्य हैं तो भी आपने मेरा पूजन किया, भली-भाँति स्वागत-सत्कार किया । बातचीत करने में कुशल महर्षे! अब मैं एक बात कहता हूँ उसे सुनिये ।

गवां शतसहस्रेण दीयतां शबला मम ।

रत्नं हि भगवन्नेतद् रत्नहारी च पार्थिवः ।।

तस्मान्मे शबलां देहि ममैषा धर्मतो द्विज ।।१/५३/९ ।।

हे भगवन्! आप मुझसे लाख गायें लेकर यह चितकबरी गाय मुझे दे दीजिये, क्योंकि यह गौ रत्नरूप है, और रत्न लेने का अधिकारी राजा होता है । ब्रह्मन्! मेरे इस कथन पर ध्यान देकर मुझे यह शबला गौ दे दीजिये; क्योंकि यह धर्मतः मेरी ही वस्तु है ।

विश्वामित्रजी के ऐसा कहने पर धर्मात्मा मुनिवर भगवान् वसिष्ठ ने राजा को उत्तर देते हुए कहा -

नाहं शतसहस्रेण नापि कोटिशतैर्गवाम् ।।१/५३/१०।।

राजन् दास्यामि शबलां राशिभी रजतस्य वा ।

न परित्यागमर्हेयं मत्सकाशादरिन्दम ।। १/५३/११ ।।

शत्रुओं का दमन करने वाले हे नरेश्वर! मैं एक लाख या सौ करोड़ अथवा चाँदी के ढेर लेकर भी बदले में इस शबला गौ को नहीं दूंगा । यह मेरे पास से अलग होने योग्य नहीं है ।

शाश्वती शबला मह्यं कीर्तिरात्मवतो यथा ।

अस्यां हव्यं च कव्यं च प्राणमात्रा तथैव च ।। १/५३/१३ ।।

जैसे मनस्वी पुरुष की अक्षम कीर्ति कभी उससे अलग नहीं रह सकती उसी प्रकार यह सदा मेरे साथ सम्बन्ध रखने वाली शबला गौ मुझसे पृथक् नहीं रह सकती । मेरा हव्य, कव्य और जीवननिर्वाह इसी पर निर्भर है ।

आयत्तमग्निहोत्रं च बलिर्होमस्तथैव च ।

स्वाहाकारवषट्कारौ विद्याश्च विविधास्तथा ।।१/५३/१४।।

मेरे अग्निहोत्र, बलि, होम, स्वाहा, वषट्कार और भाँति-भाँति की विद्याएँ इस कामधेनु के ही अधीन हैं ।

आयत्तमत्र राजर्षे सर्वमेतन्न संशयः ।

सर्वस्वमेतत् सत्येन मम तुष्टिकरी तथा ।।

कारणैर्बहुभी राजन् न दास्ये शबलां तव ।।१/५३/१५$^{1}/_{2}$।।

राजर्षे! मेरा यह सब कुछ इस गौ के ही अधीन है; इसमें संशय नहीं है । मैं सच कहता हूँ, यह गौ ही मेरा सर्वस्व है और यही मुझे सब प्रकार से सन्तुष्ट करने वाली है । राजन्! और बहुत से ऐसे कारण हैं, जिनसे बाध्य होकर मैं यह शबला गौ आप को नहीं दे सकता ।

वसिष्ठ जी के ऐसा कहने पर वाक्कुशल विश्वामित्र अत्यन्त क्रोधपूर्वक इस प्रकार बोले:-

हैरण्यकक्षग्रैवेयान् सुवर्णाकुशभूषितान् ।। १/५३/१७ ।।

ददामि कु×जराणां ते सहस्राणि चतुर्दश ।

हैरण्यानां रथानां च श्वेताश्वानां चतुर्भुजाम् ।।१/५३/१८।।

ददामि ते शतान्यष्टौ किंकिणीकविभूषितान् ।

हयानां देशजातानां कुलजानां महौजसाम् ।

सहस्रमेकं दश च ददामि तव सुव्रत ।।१/५३/१९।।

नानावर्णविभक्तानां वयःस्थानां तथैव च ।

ददाम्येकां गवां कोटिं शबला दीयतां मम ।।१/५३/२०।।

हे महर्षे! मैं आपको चौदह हजार ऐसे हाथी दे रहा हूँ, जिनके कसने वाले रस्सी, गले के आभूषण और अंकुश भी सोने के बने होंगे, उन सबसे वे हाथी विभूषित होंगे । इनके सिवा आठ सौ सुवर्णमय रथ प्रदान करूँगा जिनमें शोभा के लिये सोने के घुंघरू लगे होंगे और हर एक रथ में चार-चार सफेद रंग के घोड़े जुते होंगे तथा अच्छी जाति और उत्तम देशोत्पन्न महातेजस्वी ग्यारह हजार घोड़े भी आपकी सेवा में अर्पित करूँगा । इतना ही नहीं, नाना प्रकार के रंग वाली नवीन अवस्था की एक करोड़ गौएँ भी दूँगा, परन्तु यह शबला गौ मुझे दे दीजिये ।

यावदिच्छसि रत्नानि हिरण्यं वा द्विजोतम ।

तावद् ददामि ते सर्वं दीयतां शबला मम ।।१/५३/२१।।

हे द्विजश्रेष्ठा! इनके अतिरिक्त भी आप जितने रत्न या सुवर्ण लेना चाहें वह सब आपको देने के लिये मैं तैयार हूँ, किन्तु यह चितकबरी शबला गौ मुझे दे दीजिये ।

एवमुक्तस्तु भगवान् विश्वामित्रेण धीमता ।

न दास्यामीति शबलां प्राह राजन् कथञ्चन ॥१/५३/२२॥

बुद्धिमान विश्वामित्र के ऐसा कहने पर भगवान् वसिष्ठ बोले- राजन्! मैं यह शबला गौ तुम्हें किसी तरह भी नहीं दूँगा ।

एतदेव हि मे रत्नमेतदेव हि मे धनम् ।
एतदेव हि सर्वस्वमेतदेव हि जीवितम् ॥१/५३/२३॥

यहीं मेरा रत्न है, यहीं मेरा धन है, यही मेरा सर्वस्व है और यहीं मेरा जीवन है ।

दर्शश्च पौर्णमासश्च यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः ।
एतदेव हि मे राजन् विविधाश्च क्रियास्तथा ॥१/५३/२४॥

राजन्! मेरे दर्श, पौर्णमास (दर्श और पौर्णमास सभी श्रौतयागों का प्रकृतियाग है, प्रकृतियाग के समान ही अन्य विकृतियागों का सम्पादन होता है) प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ तथा भाँति-भाँति के पुण्यकर्म यह गौ ही है । इसी पर मेरा सबकुछ निर्भर है ।

अतो मूलाः क्रियाः सर्वा मम राजन् न संशयः ।
बहुना किं प्रलापेन न दास्ये कामदोहिनीम् ॥१/५३/२५॥

नरेश्वर! मेरे सारे शुभकर्मो का मूल यही है, इसमें संशय नहीं है । बहुत व्यर्थ वार्त्तालाप करने से क्या लाभ? में इस कामधेनु को कदापि नहीं दूँगा ।

इसके बाद शतानन्दजी ने भगवान् श्रीराम से कहा -

कामधेनुं वसिष्ठोऽपि यदा न त्यजते मुनिः ।
तदाऽस्य शबलां राम विश्वामित्रोऽन्वकर्षते ॥१/५४/१॥

हे श्रीराम! जब वसिष्ठ मुनि किसी तरह भी उस कामधेनु गौ को देने के लिये तैयार नहीं हुए, तब राजा विश्वामित्र ने उस शबला चितकबरी रंग की धेनु को बलपूर्वक घसीट कर ले चले ।

नीयमाना तु शबला राम राज्ञा महात्मना ।

दु:खिता चिन्तयामास रुदन्ती शोककर्षिता ।।१/५४/२।।

हे राम! महामनस्वी राजा विश्वामित्र के द्वारा इस प्रकार ले जायी जाती हुई वह गौ शोकाकुल हो मन ही मन रो पड़ी और अत्यन्त दु:खित हो विचार करने लगी ।

परित्यक्ता वसिष्ठेन किमहं सुमहात्मना ।

याऽहं राजभृतैर्दीना ह्रियेय भृशदु:खिता ।।१/५४/३।।

अहो! क्या महात्मा वसिष्ठ ने मुझे त्याग दिया है? जो ये राजा के सिपाही मुझ दीन और अत्यन्त दु:खिया गौ को इस तरह बलपूर्वक लिये जा रहे हैं ।

किं मयाऽपकृतं तस्य महर्षेर्भावितात्मन: ।

यन्मामनागसं दृष्ट्वा भक्तां त्यजति धार्मिक: ।।१/५४/४।।

पवित्र अन्त:करण वाले उन महर्षि का मैंने क्या अपराध किया है, कि वे धर्मात्मा मुनि मुझे निरपराध और अपना भक्त जानकर भी त्याग रहे हैं ।

यह सोचकर वह गौ बारम्बार लम्बी सांस लेने लगी और राजा के उन सैकडों सेवकों को झटककर उस समय महातेजस्वी वसिष्ठ मुनि के पास बड़े वेग से जा पहुँची और –

शबला सा रुदन्ती च, क्रोशन्ती चेदमब्रवीत् ।

वसिष्ठस्याग्रत: स्थित्वा रुदन्ती मेघनि:स्वना ।।१/५४/७।।

महर्षि वसिष्ठ के सामने खड़ी होकर मेघ के समान गम्भीर स्वर से रोती–चीत्कार करती हुई उनसे इस प्रकार बोली –

भगवन् किं परित्यक्ता त्वयाऽहं ब्रह्मणः सुत ।

यस्माद् राजभटा मां हि नयन्ते त्वत्सकाशतः ।।१/५४/८।।

हे भगवन्! ब्रह्मपुत्र! क्या आपने मुझे त्याग दिया? जो ये राजा के सैनिक मुझे आपके पास से दूर लिये जा रहे हैं?

शबला के ऐसा कहने पर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ शोक से सन्तप्त हृदयवाली दु:खिया बहिन के समान उस गौ से इस प्रकार बोले–

न त्वां त्यजामि शबले नापि मेऽपकृतं त्वया ।

एष त्वां नयते राजा बलान्मत्तो महाबलः ।।१/५४/१०।।

हे शबले! मैं तुम्हारा त्याग नहीं करता । तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया है । ये महाबली राजा अपने बल से मतवाले होकर तुमको मुझसे छीनकर ले जा रहे हैं ।

न हि तुल्यं बलं मह्यं राजा त्वद्य विशेषतः ।

बली राजा क्षत्रियश्च पृथिव्याः पतिरेव च ।।१/५४/११

हे शबले! मेरा बल इनके समान नहीं है । विशेषतः आजकल ये राजा के पद पर प्रतिष्ठित हैं । राजा, क्षत्रिय तथा इस पृथिवी के स्वामी होने के कारण ये बलवान् हैं ।

इनके पास हाथी, घोड़े और रथों से भरी हुई यह अक्षौहिणी सेना है । जिसमें हाथियों के हौदों पर लगे हुए ध्वज सब ओर फहरा रहे हैं । इस सेना के कारण भी ये मुझसे प्रबल हैं ।

वसिष्ठजी के ऐसा कहने पर बातचीत के मर्म को समझने वाली उस कामधेनु ने उन अनुपम तेजस्वी ब्रह्मर्षि से यह विनययुक्त बात कही -

शबलोवाच

न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्राह्मणा बलवत्तराः ।

ब्रह्मन् ब्रह्मबलं दिव्यं क्षात्राच्च बलवतरम् ।।१/५४/१४।।

हे ब्रह्मन्! क्षत्रिय का बल कोई बल नहीं है । ब्राह्मण ही क्षत्रिय आदि से अधिक बलवान् होते हैं । ब्राह्मण का बल दिव्य है । वह क्षत्रिय के बल से अधिक प्रबल होता है ।

अप्रमेयं बलं तुभ्यं न त्वया बलवत्तरः ।

विश्वामित्रो महावीर्यसतेजस्तव दुरासदम् ।।१/५४/१५।।

आपका बल अप्रमेय है । महापराक्रमी विश्वामित्र आपसे अधिक बलवान् नहीं हैं । आपका तेज दुर्धर्ष है ।

नियुङ्.क्ष्व मां महतेजस्त्वं ब्रह्मबलसम्भृताम् ।

तस्य दर्पं बलं यत्नं नाशयामि दुरात्मनः ।।१/५४/१६।।

महातेजस्वी महर्षे! मैं आपके ब्रह्मबल से परिपुष्ट हुई हूँ । अतः आप केवल मुझे आज्ञा दे दीजिये । मैं इस दुरात्मा राजा के बल, प्रयत्न और अभिमान को अभी चूर्ण किये देती हूँ ।

शतानन्द जी भगवान् श्रीराम से कहते हैं कि-

शतानन्द उवाच

इत्युक्तस्तु तया राम वसिष्ठस्तु महायशाः ।

सृजस्वेति तदोवाच बलं परबलार्दनम् ।।१/५४/१७।।

कामधेनु के ऐसा कहने पर महायशस्वी वसिष्ठ ने कहा, हे कामधेनो! इस शत्रुसेना को नष्ट करने वाले सैनिकों की सृष्टि करो ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुरभिः साऽसृजत्तदा ।

तस्या हुम्भारवोत्सृष्टाः पह्लवाः शतशो नृप ॥१/५४/१८॥

राजकुमार! उनका वह आदेश सुनकर उस गौ ने उस समय वैसा ही किया । उसके हुंकार करते ही सैकडों पह्लव जाति के वीर पैदा हो गये ।

नाशयन्ति बलं सर्वं विश्वामित्रस्य पश्यतः ।

स राजा परमक्रुद्धः क्रोधविस्फारितेक्षणः ॥१/५४/१९॥

वे सब विश्वामित्र के देखते-देखते उनकी सारी सेना का नाश करने लगे । इससे राजा विश्वामित्र को बड़ा क्रोध हुआ । वे क्रोध से आँखे फाड़-फाड़कर देखने लगे ।

पह्लवान् नाशयामास शस्त्रैरुच्चावचैरपि ।

विश्वामित्रार्दितान् दृष्ट्वा पह्लवाञ्शतशस्तदा ॥१/५४/२०

विश्वामित्र ने छोटे-बड़े कई तरह के अस्त्रों का प्रयोग करके उन पह्लवों का संहार कर डाला । विश्वामित्र द्वारा उन सैकडों पह्लवों को पीड़ित एवं नष्ट हुआ देख उस समय उस शबला गौ ने -

भूय एवासृजद् घोराञ्छकान् यवनमिश्रितान् ।

तैरासीत् संवृता भूमिः शकैर्यवनमिश्रितैः ॥१/५४/२१॥

पुनः यवनमिश्रित शक जाति के भयंकर वीरों को उत्पन्न किया । उन यवनमिश्रित शकों से वहाँ की सारी पृथ्वी भर गयी ।

वे वीर महापराक्रमी और तेजस्वी थे । उनके शरीर की कान्ति सुवर्ण तथा केसर के समान थी । वे सुनहरे वस्त्रों से अपने शरीर को ढँके हुये थे । उन्होंने हाथों में तीखे खड्ग और पट्टिश ले रखे थे । प्रज्ज्वलित अग्नि के समान उद्‌भासित होने वाले उन वीरों ने विश्वामित्र की सारी सेना को भस्म करना आरम्भ किया । इसके बाद –

ततोऽस्त्राणि महातेजा विश्वामित्रो मुमोच ह ।
तैस्ते यवनकाम्बोजा बर्बराश्चाकुलीकृताः ।।१/५४/२३।।

महातेजस्वी विश्वामित्र ने उन पर बहुत से अस्त्र छोड़े । उन अस्त्रों की चोट खाकर वे यवन, काम्बोज और बर्बर जाति के योद्धा व्याकुल हो उठे ।

ततस्तानाकुलान् दृष्ट्वा विश्वामित्रास्त्रमोहितान् ।
वसिष्ठश्चोदयामास कामधुक् सृज योगतः ।।१/५५/१।।

विश्वामित्रों के अस्त्रों से घायल होकर उन्हें व्याकुल हुआ देख वसिष्ठजी ने फिर आज्ञा दी । हे कामधेनो! अब योगबल से दूसरे सैनिकों की सृष्टि करो ।

तस्या हुँकारतो जाताः काम्बोजा रविसन्निभाः ।
ऊधसश्चाथ सम्भूता बर्वराः शस्त्रपाणयः ।।१/५५/२।।

त्ब उस गौ ने फिर हुंकार किया । उसके हुंकार से सूर्य के समान तेजस्वी काम्बोज उत्पन्न हुए । थन से शस्त्रधारी बर्बर प्रकट हुए ।

योनिदेशाच्च यवनाः शकृद्देशाच्छकाः स्मृताः ।
रोमकूपेषु म्लेच्छाश्च हारीताः सकिरातकाः ।।१/५५/३।।

योनि देश से यवन और शकृद्‌देश (गोबर के स्थान) से शक उत्पन्न हुए । रोमकूपों से म्लेच्छ, हारीत और किरात प्रकट हुए ।

उन सब वीरों ने विश्वामित्र की चतुरंगिनी सेना का तत्काल संहार कर डाला । महात्मा वसिष्ठ के द्वारा अपनी सेना का संहार हुआ देख विश्वामित्र के सौ पुत्र अत्यन्त क्रोध में भर गये और नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को लेकर जपश्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि के ऊपर टूट पड़े । तब उन महर्षि ने हंकार मात्र से उन सबको जलाकर भस्म कर डाला । इस विनाश को देखकर विश्वामित्र बड़े लज्जित हो चिन्ता में पड़ गये । उनका वेग शान्त हो गया और वे तत्काल ही निस्तेज हो गये । वे मन ही मन बहुत खिन्न हो गये । उनके एक ही पुत्र बचा था-

स पुत्रमेकं राज्याय पालयेति नियुज्य च ।
पृथिवीं क्षत्रधर्मेण वनमेवाभ्यपद्यत ।।१/५५/११

उसको उन्होंने राजा के पद पर अभिषिक्त करके राज्य की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिया और क्षत्रिय-धर्म के अनुसार पृथिवी के पालन की आज्ञा देकर वे वन में चले गये ।

किन्नरों और नागों से सेवित हिमालय के पार्श्वभाग में, जाकर महादेव की प्रसन्नता के लिये महान् तपस्या का आश्रय ले वे तप में ही संलग्न हो गये । कुछ काल के बाद भगवान् शिव ने महामुनि विश्वामित्र को दर्शन देकर कहा -

किमर्थं तप्यसे राजन् ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।
वरदोऽपि वरो यस्ते कांक्षितः सोऽभिधीयताम् ।।१/५५/१४।।

राजन्! किसलिये तप करते हो? बताओ क्या कहना चाहते हो? मैं तुम्हे वर देने के लिये आया हूँ । तुम्हें जो वर पाना अभीष्ट हो उसे कहो ।

महादेव जी के ऐसा कहने पर महातपस्वी विश्वामित्र ने उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहा -

यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ ।

सांगोपांगोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम् ।।१/५५/१६।।

निष्पाप महादेव! यदि आप सन्तुष्ट हों तो मुझे अंग, उपांग, उपनिषदों और रहस्यों सहित धनुर्वेद प्रदान कीजिये ।

यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु ।

गन्धर्वयक्षरक्षःसु प्रतिभान्तु ममानघ ।।१/५५/१७।।

तव प्रसादाद् भवतु देवदेव ममेप्सितम् ।।१/५५/१७$^{1}/_{2}$।।

हे अनघ! देवताओं, दानवों, महर्षियों, गन्धर्वो, यक्षों और राक्षसों के पास जो-जो अस्त्र हों, वे सब आपकी कृपा से मेरे हृदय में स्फुरित की जायँ । देवाधिदेव! यही मेरा मनोरथ है, जो मुझे प्राप्त होना चाहिये । तब भगवान् शिव 'एव मस्त्विति देवेशो वाक्यमुक्त्वा गतस्तदा' 'एवमस्तु' कहकर वहाँ से चले गये । वर पाकर विश्वामित्र को बड़ा घमण्ड हो गया । वे अभिमान में भर गये । उन्होंने वसिष्ठ को उस समय मानो मरा ही समझा । वे वसिष्ठ के आश्रम पर आकर नाना प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग करने लगे, जिससे सारा तपोवन दग्ध होने लगा । सैकडों मुनि भयभीत हो यत्र-तत्र भाग चले । आश्रम सूना सा हो गया । वसिष्ठजी ने उन सबको भयमुक्त होने का आश्वासन दिया, और रोषपूर्वक विश्वामित्र जी से बोले-

आश्रमं चिरसंबद्धं यद्विनाशितवानसि ।

दुराचारो हि यन्मूढस्तस्मात् त्वं न भविष्यसि ।। ९/५५/२७।।

अरे! तूने चिरकाल से सेवित तथा हरित आश्रम को नष्ट कर दिया । तू दुराचारी और विवेकशून्य है और इस पाप के कारण तू कुशल से नहीं रह सकता । ऐसा कहकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और यमदण्ड के समान भयंर डण्डा हाथ में लेकर शीघ्र ही उनका सामना करने के लिये तैयार हो गये । क्षात्रबल और ब्राह्मबल का भयंकर संघर्ष हुआ । विश्वामित्र का क्षात्रबल उस ब्रह्मदण्ड के सामने निस्तेज हो गया । ब्रह्मदण्ड से विश्वामित्र का ब्रह्मास्त्र भी शान्त हो गया ।

उस समय समस्त मुनिगण मन्त्र जपनेवालों में श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि की स्तुति करने लगे–

अमोघं ते बलं ब्रह्मंस्तेजो धारय तेजसा ।। १/५६/२० ।।

निगृहीतस्त्वया ब्रह्मन् विश्वामित्रो महाबलः ।

अमोघं ते बलं श्रेष्ठं लोकाः सन्तु गतव्यथाः ।।१/५६/२१।।

हे ब्रह्मन्! आपका बल अमोघ है । आप अपने तेज को अपनी ही शक्ति से समेट लीजिये । महाबली विश्वामित्र आपसे पराजित हो गये । अब आप शान्त हो जाइये, जिससे लोगों की व्यथा दूर हो ।

महर्षियों के ऐसा कहने पर महातेजस्वी महाबली वसिष्ठजी शान्त हो गये और पराजित विश्वामित्र लम्बी सांस खींचकर यों बोले –

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् ।

एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ।।१/५६/२३।।

क्षत्रिय के बल को धिक्कार है । ब्रह्मतेज से प्राप्त होने वाला बल ही वास्तव में बल है; क्योंकि आज एक ब्रह्मदण्ड ने मेरे सभी अस्त्र नष्ट कर दिये तब विश्वामित्र जी ने कहा –

तदेतत्प्रसमीक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रियमानसः ।

तपो महत् समास्थास्ये यद्वै ब्रह्मत्वकारणम् ॥१/५६/२४॥

इस घटना को प्रत्यक्ष देखकर अब मैं अपने मन और इन्द्रियों को निर्मल करके तप का अनुष्ठान करूँगा, जो मेरे लिये ब्राह्मणत्व की प्राप्ति का कारण होगा ।

सपत्नीक विश्वामित्रजी अत्यन्त उत्कृष्ट तपस्या करने लगे । वहीं उनके सत्यधर्मपरायण चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम हविष्पन्द, मधुष्पन्द, दृढ़नेत्र और महारथ थे । हजार वर्ष तपस्या के बाद ब्रह्माजी ने दर्शन दिया और कहा –

जिता राजर्षिलोकास्ते तपसा कुशिकात्मज ।

अनेन तपसा त्वां हि राजर्षिरिति विद्महे ॥१/५७/५-१/२॥

तुमने राजर्षियों के लोकों पर विजय पायी है, इसलिये मैं तुम्हें राजर्षि समझता हूँ । और ब्रह्माजी ब्रह्मलोक चले गये । विश्वामित्रजी बड़े लज्जित हुए क्योंकि अभी तक केवल वे राजर्षि का ही पद प्राप्त कर सके । उन्होंने पुनः भारी तप करना प्रारम्भ कर दिया ।

इसी समय इक्ष्वावुवंशीय राजा त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाने के लिये वसिष्ठ तथा उनके सौ पुत्रों से यज्ञ करवाने को कहा; उन सबों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । तब त्रिशंकु ने दूसरे की शरण में जाने की बात कही, इसपर वसिष्ठ के पुत्रों ने राजा को चाण्डाल होने का शाप दे दिया और सभी अपने आश्रम में प्रविष्ट हो गये । भयंकर विकराल चाण्डाल का रूप धारण कर वे विश्वामित्र की शरण में गये । विश्वामित्र ने उनकी शरणागति स्वीकार कर अपने पुत्रों के द्वारा ऋषि–महर्षियों को यज्ञ के लिये आमन्त्रित किया; तो वसिष्ठ के पुत्रों ने कहा –

क्षत्रियो याजको यस्य चण्डालस्य विशेषतः ।

कथं सदसि भोक्तारो हविस्तस्य सुरर्षयः ॥१/५९/१३॥

ब्राह्मणा वा महात्मानो भुक्त्वा चाण्डालभोजनम् ।

कथं स्वर्गं गमिष्यन्ति विश्वामित्रेण पालिताः ॥१/५९/१४॥

जो विशेषतः चाण्डाल है और जिसका यज्ञ कराने वाला क्षत्रिय आचार्य है, उसके यज्ञ में देव, ऋषि अथवा महात्मा ब्राह्मण हविष्य का भोजन कैसे कर सकते है? अथवा चण्डाल का अन्न खाकर विश्वामित्र से पालित हुए ब्राह्मण स्वर्ग में कैसे जा सकेंगे?

इस बात से विश्वामित्र जी को बड़ा क्रोध हुआ और विश्वामित्र ने अन्य ऋषियों के साथ स्वयं ही आध्वर्यव कर्म का सम्पादन करते हुए यज्ञ प्रारम्भ किया, परन्तु कोई भी देवता यज्ञभाग को ग्रहण करने के लिये उपस्थित नहीं हुए । इस पर विश्वामित्र के अपने तपोबल से उन्हें स्वर्ग भेजा । पुनः भगवान् इन्द्र ने अनधिकारी जान उन्हें नीचे गिरा दिया । त्रिशंकु 'त्राहि-त्राहि' की रट लगाते हुए नीचे गिरे, विश्वामित्र ने उन्हें बीच में ही रोक दिया और एक नवीन सृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया । स्वर्ग और देवगण को भी बनाना चाहा ।

तब अन्य देव, ऋषि और असुरसमुदायों ने उनसे ऐसा नहीं करने की प्रार्थना की । विश्वामित्र अपने प्रण के अनुसार नक्षत्रमण्डल के मध्य में ही त्रिशंकु को स्थापित कर दिया । इसके बाद के पुनः तपस्या में संलग्न हो गये । तप के प्रभाव से ब्रह्माजी के द्वारा क्रमशः ऋषि और महर्षि का पद मिला । पुनः विश्वामित्र के घोर तपस्या करने पर ब्रह्माजी ने कहा -

ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः ।। १/६५/१९।।

ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक ।

दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन् ददामि समरुद्गणः ।।१/६५/२०।।

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गच्छ सौम्य यथा सुखम् ।।१/६५/२०१/२।।

हे ब्रह्मर्षे! तुम्हारा स्वागत है, हम तुम्हारे तप से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए हैं । तुमने अपना ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया है, मरुद्गण सहित मैं तुम्हें दीर्घायु प्रदान करता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । तुम जहाँ चाहो वहाँ सुखपूर्वक जाओ । इसके बाद ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने भी विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि होना स्वीकार कर लिया और उनसे मित्रता स्थापित कर ली । अब विश्वामित्रजी ने वसिष्ठ का पूजन किया और कामधेनु का भी विधिवत् यजन किया । यहाँ पर गोयज्ञ-प्रकरण दिया जा सकता है ।

विवाह का

भगवान् श्रीराम आदि का विवाह हो जाने पर जनकजी ने दशरथजी से गोदान करवाने को कहा -

रामलक्ष्मणयो राजन् गोदानं कारयस्व ह ।

पितृकार्यं च भद्रं ते ततो वैवाहिकं कुरु ।।१/७१/२३।।

राजन्! अब आप श्रीराम और लक्ष्मणजी के मंगल के लिये इनसे गोदान करवाइये, आपका कल्याण हो । नान्दीमुख श्राद्ध का कार्य भी सम्पन्न कीजिये । इसके बाद वैवाहिक कार्य आरम्भ कीजियेगा ।

पुनः विश्राम स्थल में जाकर महाराजा दशरथ ने :-

स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।

प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ॥१/७२/२१॥

विधिपूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न किया । पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर राजा ने तत्कालोचित उत्तम गोदान किया ।

गवां शतसहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः ।

एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः ॥१/७२/२२॥

राजा दशरथ ने अपने चारों पुत्रों के महल के लिये एक-एक लाख (कुल चार लाख) गौएँ ब्राह्मणों को प्रदान किया ।

सुवर्णशृंग्यः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः ।

गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः ॥१/७२/२३॥

वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः ।

ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः ॥१/७२/२४॥

उन सबके सींग सुवर्ण से जड़े हुए थे । उन सबके साथ बछड़े और कांस्य के दुग्धदोहन पात्र थे । इस प्रकार पुत्रवत्सल रघुकुलनन्दन पुरुषशिरोमणि महाराजा दशरथ ने चार लाख गौओं को दान किया तथा और भी बहुत-सा धन पुत्रों के लिये गोदान के उद्देश्य से ब्राह्मणों को दिया ।

स सुतैः कृतगोदानैर्वृतः सन्नृपतिस्तदा ।

लोकपालैरिवाभाति वृतः सौम्यः प्रजापतिः ॥२/७५/२५॥

गोदानकर्म सम्पन्न करके आये हुए पुत्रों से घिरे हुए राजा दशरथ उस समय लोकपालों से घिरकर बैठे हुए शान्त-स्वभाव प्रजापति ब्रह्मा के समान सुशोभित हो रहे थे ।

भगवान् के राज्याभिषेक के उत्सव में 'हिरण्यश्रृंगमृषभम्'(२/३/११) सुवर्णजड़ित-श्रृंग वाला सांड भी अपेक्षित था । श्रीरामप्रिय सुहृदों ने कौसल्या माता से जब राज्याभिषेक का शुभ संवाद दिया तब माता ने गौएँ दान कीं -

सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च ।

व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा ।।२/३/४७।।

नारियों में श्रेष्ठ कौसल्या ने वह प्रियसंवाद सुनाने वाले उन सुहृदों को तरह-तरह के रत्न, सुवर्ण और गौएँ पुरस्कार रूप में दीं । 'आचार्या ब्राह्मणा गावः' २/१४/४० अभिषैके ।

भगवान् श्रीराम ने वनगमन से पूर्व माता कौसल्या से कहा-

अन्वेष्टव्य-

ऋषिणा च पितुर्वाक्यं कुर्वता वनचारिणा ।

गौर्हता जानताऽधर्मं कण्डुना च विपश्चिता ।।२/१९/३१।।

भगवान् श्रीराम ने वन जाने के समय लक्ष्मणजी से कहा -

'तर्पयस्व महाबाहो गोसहस्रेण राघव ।

सुवर्णरजतैश्चैव मणिभिश्च महाधनैः ।।२/३२/१४।।

हे राघव! अगस्त्य और विश्वामित्र इन दो उत्तम ब्राह्मणों को बुलाकर सहस्र गौओं, सुवर्ण, रजत, और मणियों से उन्हें सन्तुष्ट करो ।

ब्रह्मचारियों के लिये भी गोसहस्र दान का आदेश दिया ।

'व्यञ्जनार्थं च सौमित्रे गोसहस्रमुपाकुरु ।।२/३२/२१।।'

तत्रासीत् पिंगलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वै द्विजः ।

क्षत्तवृत्तिर्वने नित्यं फालबुललांगन्ली ।।२/३२/२९।।

उन दिनों वहां अयोध्या के आस-पास वन में त्रिजट नाम वाले एक गर्गगोत्रीय ब्राह्मण रहते थे । उनके पास जीविका का कोई साधन नहीं था, इसलिये उपवास आदि के कारण उनके शरीर का रंग पीला पड़ गया था । वे सदा फाल, कुदाल और हल लिये वन में फल-फूल की खोज में घूमा करते थे ।

त्रिजट नामक ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति को भगवान् श्रीराम से मिलने को उत्साहित किया । पुनः त्रिजट ने भगवान् श्रीराम का दर्शन किया और उनसे कहा -

निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महाबल ।

क्षत्तवृत्तिर्वने नित्यं प्रत्यवेक्षस्व मामिति ॥२/३२/३४$^{1}/_{2}$॥

महाबली राजकुमार! मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-से पुत्र हैं, जीविका नष्ट हो जाने से सदा वन में ही रहता है, आप मुझ पर कृपादृष्टि कीजिये ।

तब श्रीराम ने परिहासपूर्वक कहा -

गवां सहस्रमप्येकं न च विश्राणितं मया ।

परिक्षिपसि दण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसे ॥२/३२/३६॥

ब्रह्मन्! मेरे पास असंख्य गौएँ हैं, इनमें से एक सहस्र का भी मैंने अभी तक दान नहीं किया है । आप अपना डण्डा जितनी दूर फेंक सकेंगे, वहाँ तक की सारी गौएँ आपको मिल जायेंगी ।

इतना सुनकर त्रिजट ने अपनी सारी शक्ति लगाकर डण्डे को बड़े वेग से घुमाकर फेंका । वह डण्डा सरयू के उस पार जाकर हजारों गौओं से भरे हुए गोष्ठ में एक सांड के पास गिरा । धर्मात्मा भगवान् श्रीराम ने त्रिजट को छाती से लगा लिया और सरयूतट से लेकर उस पर गिरे हुए डण्डे के स्थान तक जितनी गौएँ थीं,

उन सबको मँगवाकर त्रिजट के आश्रम पर भेज दिया । भगवान् ने कहा, हे ब्रह्मन्! आपके दुर्लंघ्य तेज को जानने की इच्छा से ही डण्डा फेंकने का परिहास किया था । आप दु:ख नहीं मानियेगा । आप अपनी अन्य इच्छा भी प्रकट करें । मैं सच कहता हूँ कि –

ब्रवीमि सत्येन न ते स्म यन्त्रणां

धनं हि यद्यन्मम विप्रकारणात् ।

भवत्सु सम्यक् प्रतिपादनेन

मयार्जितं चैव यशस्करं भवेत् ।।२/३२/४२।।

इसमें आपके लिये संकोच की कोई बात नहीं है । मेरे पास जो–जो धन है, वह सब ब्राह्मणों के लिये ही है । आप जैसे ब्राह्मणों को शास्त्रीय विधि के अनुसार दान देने से मेरे द्वारा उपार्जित किया हुआ धन मेरे यश की वृद्धि कराने वाला होगा ।

'गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदित:' ।२/३२/४२

इससे सपत्नीक त्रिजट को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे महात्मा श्रीराम को यश, बल, प्रीति तथा सुख बढ़ाने वाले आशीर्वाद देने लगे ।

....

भगवान् के सीता, लक्ष्मण, सहित वनगमन कर जाने पर –

व्यसृजन् कवलान् नागा गावो वत्सान् न पाययन् ।।२/४१/१०।।

गौओं ने भी शोक के कारण बछडों को दूध नहीं पिलाया ।

वनगमनकाल में सीताजी ने गौऔं से प्रार्थना की ।

वनगमन के समय पुरवासियों के साथ भगवान् श्रीराम तमसाके तट पर गोशाला में ही रात्रि विश्राम किये –

गोकुलाकुलतीरायास्तमसाया विदूरतः ।
अवसत्तत्र तां रात्रिं रामः प्रकृतिभिः सह ॥२/४६/१७॥

तमसा का वह तट गौओं के समुदाय से भरा हुआ था, जहाँ प्रजाजनों के साथ भगवान् ने रात्रि में निवास किया था । वे प्रजाजनों से कुछ दूर पर सोये थे । प्रात:काल भगवान् चुपके से श्री सीता और लक्ष्मण के साथ वहाँ से निकल गये ।

कोसलजनपद में बहुत बड़ी गोशाला थी –

'गोकुलावुलसेवितान्' ॥२/५०/९॥

भगवती सीता ने वन को जाते समय माता गंगा से प्रार्थना की कि –

गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥२/५२/८८॥

हे गंगे! हम तीनों कुशलपूर्वक अयोध्यापुरी लौटें तो मैं आपका प्रिय करने की इच्छा से ब्राह्मणों को एक लाख गौएँ, बहुत से वस्त्र तथा उत्तमोत्तम अन्न प्रदान करूँगी ।

चित्रकुट की यात्रा में यमुनाजी को पार करते हुए सीताजी ने यमुनाजी से प्रार्थना की –

यक्ष्ये त्वां गोसहस्रेण सुराघटशतेन च ।
स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥२/५५/२०॥

हे यमुने! इक्ष्वाकुवंशी वीरों द्वारा पालित अयोध्यापुरी में श्रीरामजी के सकुशल लौट आने पर मैं आपके किनारे एक सहस्र गौ का दान करूँगी और सैकड़ों देवदुर्लभ पदार्थ (सुराघटा:– सुरेषु देवेषु अपि अघटन्ते, न घटन्ते इति सुराघटा: देवदुर्लभपदार्था:) अर्पित करके आपकी पूजा सम्पन्न करूँगी ।

श्रवणकुमार के माता-पिता ने बाण लगने से श्रवण की मृत्यु हो जाने पर विलाप करते हुए कहा -

गोसहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि ।

देहन्यासकृतां यां च तां गतिं गच्छ पुत्रक ।।२/६४/४४।।

हे वत्स! सहस्र गोदान करनेवाले, गुरु की सेवा करनेवाले तथा महाप्रस्थान आदि के द्वारा देह त्याग करनेवाले पुरुषों को जो गति मिलती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो ।

भरतजी ने गाय में पादस्पर्श को महान् पाप बताया है-

'गाश्च स्पृशतु पादेन' ।।२/४५/३१।।

छोटे बछड़े वाली गाय को दुहने में भी पाप कहा है - (कौसल्याजी से शपथ खा रहे हैं)

ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तुं कलुषेन्द्रियः ।

बालवत्सां च गां दोग्धु यस्यार्योऽनुमते गतः ।।२/७५/५४।।

जिसकी राय से आर्य ने वन में पदार्पण किया है, वह मलिन इन्द्रिय वाला पुरुष ब्राह्मण के लिये की जाती हुई पूजा में विघ्न डाल दे और छोटे बछड़े वाली गाय का दूध दुहे ।

भरतजी ने पिता जी के श्राद्ध में -

ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम् ।

वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ।

वास्तिकं बहुशुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा ।।२/७७/२।।

ब्राह्मणों को धन, रत्न, प्रचुर अन्न, बहुमूल्य वस्त्र, नाना प्रकार के रत्न, बहुत से बकरे, चाँदी, और बहुत-सी गौएँ दान कीं ।

भगवान् श्रीराम ने राज्याभिषेक के समय लाख गोदान किये -

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ।

ददौ शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः ॥६/१२८/७४॥

और एक सौ सांड भी दान में दिये ।

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ।

गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम् ॥

असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥१।१।७४

श्रीनारदजी ने श्रीवाल्मीकिजी से मूलरामायण के प्रतिपादन में कहा कि महायशस्वी भगवान् श्रीराम बहुत से सुवर्णों की दक्षिणा वाले सौ अश्वमेधयज्ञ करेंगे, उनमें विधिपूर्वक विद्वानों को दस हजार करोड़ (एक खरब) गौ और विद्वान् ब्राह्मण्णें को अपरिमित धन देंगे ।

दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम् ।

वाजिवारणसम्पूर्णा गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा ॥१।५।१३

अयोध्यापुरी का वर्णन- अयोध्या के चारों ओर गहरी खाई खुदी थी, जिसमें प्रवेश करना या जिसे लांघना अत्यन्त कठिन था । वह नगरी दूसरों के लिये सर्वथा दुर्गम एवं दुर्जय थी । घोड़े, हाथी, गाय, बैल, ऊँट तथा गधे आदि उपयोगी पशुओं से वह पुरी भरी-पूरी थी ।

नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत्तस्मिन् पुरोत्तमे ।

कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥१/६/७

श्रीअवधपुरी में कोई भी ऐसा कुटुम्बी नहीं था जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओं का संग्रह अधिक मात्रा में न हो, जिसके धर्म, अर्थ और काममय पुरुषार्थ सिद्ध न हो गये हों तथा जिसके पास गाय-बैल, घोड़े, धन-धान्य आदि का अभाव हो ।

नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः ।

कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥१/६/१२॥

अयोध्या में कोई भी ऐसा नहीं था जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो, जो क्षुद्र, चोर, सदाचारशून्य अथवा वर्णसंकर हो ।

मणिरत्नं सुवर्णं वा गावो यद्वा समुद्यतम् ।

तत् प्रयच्छ नृपश्रेष्ठ धरण्या न प्रयोजनम् ॥१/१४/४९॥

ऋत्विजों ने महाराज दशरथ से अश्वमेध यज्ञ की दक्षिणा के बारे में कहा- हे नृपश्रेष्ठ! मणि, रत्न, सुवर्ण, गौ अथवा जो भी वस्तु यहाँ उपस्थित हो, वहीं हमें दक्षिणारूप में दे दीजिये । इस धरती से हमें कोई प्रयोजन नहीं है ।

एवमुक्तो नरपतिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।

गवां शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः ॥१/१४/५०॥

वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर राजा ने उन्हें दस लाख गौएँ प्रदान कीं ।

प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधवन्दिनाम् ।

ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः ॥१/१८/२०॥

श्रीराम आदि के जन्मोत्सव में राजा दशरथ ने सूत, मागध और वन्दीजनों को देने योग्य पुरस्कार दिये तथा ब्राह्मणों को धन एवं सहस्रों गोधन प्रदान किये ।

<u>श्रीमद्भागवतमाहात्म्य से</u>

उद्धव जी ने भगवान से कहा कि हे भगवन्! आप इस धरा-धाम को छोड़कर परमधाम जाना चाहते हैं तो -

तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ।

अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ।।मा.३/५७।।

दुष्टों के भार से यह गोरूपा पृथिवी किसकी शरण में जायेगी? कमलनयन! मुझे तो आपको छोड़कर इसकी रक्षा करनेवाला कोई दूसरा नहीं दिखाई देता ।

आत्मदेव को धेनु ने ही गोकर्ण जैसा महाज्ञानी महात्मा पुत्र प्रदान किया -

त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ।

सर्वांगसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ।।मा.४/६२।।

धुन्धुकारी के जन्म के तीन महीने के बाद उस गौ ने भी एक मनुष्य के शिशु को जन्म दिया । वह सर्वांग सुन्दर, दिव्य, निर्मल तथा सुवर्ण की सी कान्ति वाला था ।

कथाव्रती को वेद, गोसेवा, ब्राह्मणादि की निन्दा नहीं करनी चाहिए ।

वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ।

स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ।।मा.६/४८।।

वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक, स्त्री, राजा और महापुरुषों की निन्दा न करें ।

कथा समाप्ति के बाद -

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चाद् भोजयेन्मधुपायसैः ।

दद्यात् सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ।।मा.६/६४।।

बारह ब्राह्मणों को खीर और मधु आदि उत्तमोत्तम पदार्थ खिलाये तथा व्रत की पूर्ति के लिये गौ और सुवर्ण का दान करे ।

श्रीमद्भागवतम्

भगवान् शुकदेव गोदोहनमात्रकाल तक ही गृहस्थ के घर पर रहते थे -

स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ।।१।१।८

महारानी कुन्ती ने भगवान् से प्रार्थना की है -

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।

गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ।। १।८।४३।।

हे गोविन्द! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओं का दुःख मिटाने के लिये ही है । हे योगेश्वर! चराचर के गुरु भगवन्! मैं आपको नमन करती हूँ ।

युधिष्ठिर के राज्य में आवश्कतानुसार -

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ।

सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ।।१०/१०/०४।।

यथेष्ट वर्षा होती थी, पृथ्वी में समस्त अभीष्ट वस्तुएं पैदा होती थी बड़े-बड़े थनों वाली बहुत-सी गौएँ प्रसन्न रहकर गोशालाओं को सींचती रहती थीं ।

परीक्षित् का जन्म सुनकर पितामह युधिष्ठिर ने नालच्छेदन से पूर्व -

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ।

प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ।।१/१२/१४।।

प्रजापति नामक काल में ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौएँ, पृथिवी, गाँव, उत्तमजाति के हाथी–घोड़े और उत्तम अन्न का दान किया ।

भगवान् श्रीकृष्ण के विरह में – (जब वे द्वारका में थे)

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ।

रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१/१४/॥

बछड़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने नहीं देतीं, गोशाला में गौएँ आँसू बहा–बहाकर रो रही हैं । बैल भी उदास हो रहे हैं ।

अर्जुन गो, ब्राह्मण की रक्षा में तत्पर रहते थे – (युधिष्ठिर ने कहा)

कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ।

शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥१/१४/४१/॥

द्वारका से लौटने पर अर्जुन को खिन्न देखकर युधिष्ठिर ने पूछा, हे भाई! तुमसे गो, ब्राह्मणादि की रक्षा का त्याग तो नहीं हो गया?

एक बार परीक्षित ने दिग्विजय करते समय देखा कि –

नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥१/१६।४

शूद्र के रूप में कलियुग राजा का वेष धारण करके एक गाय और एक बैल के जोड़े को पैर के ठोकरों से मार रहा है । तब उन्होंने उसे बलपूर्वक पकड़कर दण्ड दिया ।

व्यासजी ने उसकी बड़ी निन्दा की –

नृदेवचिह्नधृक्शूद्रकोऽसौ गां यः पदाहनत् ॥१।१६।५।

राजा का वेष धारण करने पर भी था तो वह अधम शूद्र ही, जिसने गाय को लात से मारा था ।

धर्मः पदैकेन चरन् विच्छायामुपलभ्य गाम् ।

पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ।।१/१६।१८।।

धर्म बैल का रूप धारण करके एक पैर से घूम रहा था । एक स्थान पर उसे गाय के रूप में पृथिवी मिली । पुत्र वियोगिनी माता के समान उस गौ के नेत्रों से आँसुओं के झरने झर रहे थे । उसका शरीर श्रीहीन हो गया था । धर्म ने पृथिवी से पूछा -

हे कल्याणि! तुम कुशल से तो हो न? मेरे तीन पैर के टूट जाने की चिन्ता तो तुम नहीं कर रही हो अथवा -

पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।

आहो सुरादीन् हृतयज्ञभागान् प्रजा उत स्विन्मघवत्यवर्षति ।।१/१६/२२।।

गोरूपा पृथिवी और उसके स्वामी धर्मस्वरूप एकपाद वाला वृषभ का संवाद -

अब शूद्र तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे अथवा इन देवताओं के लिये भी तुम्हें खेद हो सकता है कि (उत्तम हव्यादि के अभाव में) जिन्हें यज्ञों में आहुति नहीं दी जाती अथवा उस प्रजा के लिये भी शोक कर रही हो जो वर्षा न होने के कारण अकाल एवं दुर्भिक्ष से पीड़ित हो रही है या -

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।

वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलग्र्यान् ।।१/२३/१६।।

हे देवि! क्या तुम राक्षस सरीखे मनुष्यों के द्वारा सतायी हुई अरक्षित स्त्रियों एवं आर्त्त बालकों के लिये शोक कर रही हो? सम्भव है अब विद्या कुकर्मी ब्राह्मणों के चंगुल में पड़ गयी है और ब्राह्मण विद्रोही राजाओं की सेवा करने लगे हैं, हो सकता है इसी का तुम्हें दुःख हो?

किं क्षत्रबन्धून् कलिनोपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ।
इतस्ततो वाशनपानवासः स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ।।१/१६/२२।।

आज के नाममात्र के राजा तो सोलहों आने कलियुगी हो गये हैं; उन्होंने बड़े-बड़े देशों को भी उजाड़ डाला है । क्या तुम उन राजाओं या देशों के लिये शोक कर रही हो? आज की जनता खान-पान, वस्त्र-स्नान, और स्त्री-सहवास आदि में शास्त्रीय नियमों का पालन करके स्वेच्छाचार कर रही है । क्या इसके लिये तुम दु:खी हो ?

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतार कृतावतारस्य हरेर्धरित्री ।
अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ।।१/१६/२३।।

माँ पृथिवि! अब समझ में आया, हो न हो तुम्हें भगवान् की याद आ रही होगी, क्योंकि उन्होंने तुम्हारा भार उतारने के लिये ही अवतार लिया था, और ऐसी लीलाएँ की थी जो मोक्ष का भी अवलम्बन है । अब उनके लीलासंवरण कर लेने पर उनके परित्याग से तुम दु:खी हो रही हो?

हे देवि! तुम धन-रत्नों की खान हो । तुम अपने क्लेश का कारण बताओ मुझे तो ऐसा लगता है कि विकराल काल ने तुम्हारे देववन्दनीय सौभाग्य का ही अपहरण कर लिया है ।

तब गोरूपा पृथिवी माता ने कहा - हे धर्म! तुम सब कुछ जानते हो । समस्त प्राकृत तथा अप्राकृत सद्गुणों के आश्रय सौन्दर्यधाम भगवान् श्रीकृष्ण ने इस लोक से अपनी लीला का संवरण कर लिया है और यह संसार पापमय कलियुग की कुदृष्टि का शिकार हो गया है । यही देखकर मुझे बड़ा शोक हो रहा है ।

इस प्रकरण में गाय और वृष की वेदना है ।

आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ।

देवान् पितॄनृषीन् साधून् सर्वान् वर्णांस्तथाश्रमान् ।।१/१६/३९।।

मैं तो अपने लिये, देवताओं में श्रेष्ठ तुम्हारे लिये, देवता, पितर, ऋषि, साधु और समस्त वर्णों तथा आश्रमों के मनुष्यों के लिये शोकग्रस्त हो रही हूँ ।

पुनः सर्ववन्द्य मेरे सौभाग्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मेरा परित्याग भी कर दिया है । लगता है मेरे गर्व को दूर करने के लिये ही उन्होंने मुझे दण्ड दिया है । उनके ही परित्याग के कारण तुम्हारे भी तीन पाद का अभाव हो गया । इस वार्तालाप के क्रम में ही कदाचित् राजर्षि परीक्षित का भी आगमन हो गया । उन्होंने देखा कि -

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ।

दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ।।१/१७/१।।

एक राजवेषधारी शूद्र हाथ में डण्डा लिये हुए है और गाय बैल के एक जोड़े को इस तरह पीटता जा रहा है, जैसे उनका कोई स्वामी ही न हो ।

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव विभ्यतम् ।

वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ।।१/१७/२।।

वह कमलतन्तु के समान श्वेत रंग का बैल एक पैर से खड़ा काँप रहा था तथा शूद्र की ताड़ना से पीड़ित और भयभीत होकर मूत्रत्याग कर रहा था ।

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ।

विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ।।१/१७/३।।

धर्मोपयोगी दूध, घी आदि हविष्य पदार्थों को देने वाली वह गाय भी बार-बार शूद्र के पैरों की ठोकरें खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी । एक तो वह स्वयं ही दुर्बल

थी, दूसरे उसका बछड़ा भी उसके पास नहीं था । उसे भूख लगी हुई थी और उसकी आँखों से आँसू बहते जा रहे थे ।

महाराज परीक्षित् ने जब यह दृश्य देखा तो वे उस कुकर्मी को दण्ड देने के लिये उद्यत हो गये और उस गोमिथुन का परिचय प्राप्त कर उन्हें अभय-दान दिया । कहा -

मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद् भयम् ।
मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ।।१/१७/९।।

हे धेनुपुत्र! अब आप शोक न करें । इस दुष्ट से निर्भय हो जाये । गो माता! मैं दुष्टों को दण्ड देने वाला हूँ । अब आप रोये नहीं । आपका कल्याण हो ।

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः ।
तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ।।१/१७/१०।।

हे देवि! जिस राजा के राज्य में दुष्टों के उपद्रव से सारी प्रजा त्रस्त रहती है, उस मतवाले राजा की कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं । अतः मैं दुष्ट को अवश्य ही दण्ड दूँगा । महाराज ने वृषभ से पूछा -

कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन् सौरभेय चतुष्पद ।
मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञा कृष्णानुवर्तिनाम् ।।१/१७/१२।

हे सुरभिनन्दन! आप तो चार पैर वाले जीव हैं, आपके तीन पैर किसने काट डाले? श्रीकृष्ण के अनुयायी राजाओं के राज्य में कभी कोई भी आपकी तरह दुःखी न हो । मैं उसे अवश्य ही दण्ड दूँगा ।

साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ।।१/१७/१४।।

दुष्टों का दमन करने से साधुओं का कल्याण ही होता है । अमर्यादित लोगों को शास्त्रानुसार दण्ड देना राजाओं का परम धर्म है ।

धर्म ने कहा – हे राजन्! क्लेशों के कारण को जानना अत्यन्त कठिन है –

केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥१/१७/१९॥

जो लोग किसी भी प्रकार द्वैत को स्वीकार नहीं करते, वे अपने–आपको ही दुःख का कारण बतलाते हैं । कोई प्रारब्ध को कारण बतलाते हैं; तो कोई कर्म को । कुछ लोग स्वभाव को, तो कुछ लोग ईश्वर को दुःख का कारण मानते हैं । इसलिये यह तर्क एवं वाणी से परे है । आप स्वयं से विचार कर लीजिये ।

यह सुनकर महाराज परीक्षित् प्रसन्न हुए और उनसे बोले –

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ।
यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥१/१७/२२॥

हे धर्मज्ञ! आप धर्मतत्त्व का उपदेश कर रहे हैं । अवश्य ही आप वृषभ के रूप में स्वयं धर्म हैं । आपने अपने को दुःख देने वाले का नाम इसलिये नहीं बताया कि अधर्म करने वाले को जो नरकादि प्राप्त होते हैं, वे ही चुगली करने वाले को भी मिलते हैं ।

अथवा भगवान् की माया का स्वरूप बताना अशक्य है । हे धर्मदेव! सत्ययुग में आपके चार चरण थे – तप, पवित्रता, दया और सत्य । इस समय अधर्म के अंश गर्व, आसक्ति और मद से तीन चरण नष्ट होकर केवल सत्यरूप चौथा चरण ही

आपका बचा है । यह असत्यरूप काल उसे भी अपना ग्रास बना लेना चाहता है । और -

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ।

श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥१/१७/२६॥

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना ।

अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥१/१७/२७॥

ये गौ माता साक्षात् पृथ्वी हैं । भगवान् ने इनका भारी बोझ उतार दिया था और ये उनके राशि-राशि सौन्दर्य निखेरने वाले चरणचिह्नों से सर्वत्र उत्सवमयी हो गयी थीं ।

अब ये उनसे बिछुड़ गई हैं । वे साध्वी अभागिनी के समान नेत्रों में जल भरकर यह चिन्ता कर रही हैं कि अब राजा का स्वांग बनाकर ब्राह्मणद्रोही शूद्र मुझे भोगेंगे ।

इस प्रकार से परीक्षित् धर्म और गोरूपा पृथिवी को सान्त्वना देकर कलियुग को दण्ड देने के लिये प्रवृत्त हुए तो कलि उनके पैर पर गिर गये । तब परीक्षित् ने उनसे कहा- कि तू अधर्म का सहायक है, तू इस ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र में क्षणभर भी न ठहर, क्योंकि-

यस्मिन् हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ।

कामानमोघान् स्थिरजंगमानामन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥१/१७/३३॥

इस देश में भगवान् श्रीहरि यज्ञों के रूप में निवास करते हैं, यज्ञों के द्वारा उनकी पूजा होती है और वे सदा यज्ञ करने वालों का कल्याण करते हैं । वे सर्वात्मा

भगवान् वायु की भाँति समस्त चराचर जीवों के भीतर और बाहर एकरस स्थित रहते हुए उनकी कामनाओं को पूर्ण करते रहते हैं ।

ऐसा सुनकर कलि ने कहा, हे राजन्! आप मेरे रहने का स्थान बताईये, तो परीक्षित् ने कहा -

द्यूतं पानं स्त्रियः सूनां यत्राधर्मश्चतुर्विधः ।।

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।

ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ।।१/१७/३८-३९

द्यूत, मद्यपान, स्त्री-संग और हिंसा- ये चार स्थान दिये । इन स्थानों में क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता ये चार प्रकार के अधर्म निवास करते हैं । तब पुनः माँगने पर एक स्थान सुवर्ण भी दिया । इस प्रकार कलियुग के पाँच स्थान हो गये- झूठ, मद, काम, वैर, और रजोगुण । ये अधर्म के मूलकारण हैं । सत्पुरुषों को इससे सावधान रहना चाहिये । राजा ने वृष के भी तीन चरण जोड़े और पृथिवी को आश्वस्त कर उनका संवर्धन किया ।

पृष्णि, भोज, और अन्धकवंशी यादवों ने प्रभासक्षेत्र में -

तत्र स्नात्वा पितॄन् देवानृषींश्चैव तदम्भसा ।

तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ।।३/६/२६।।

स्नान करके उस तीर्थ के जल से देवर्षिपितृ-तर्पण किया तथा ब्राह्मणों को श्रेष्ठ गौएँ दीं । उन्होंने सुवर्णादि विविध पदार्थों का भी दान किया । वे सभी 'गोविप्रार्थासवः शूराः' गाय और ब्राह्मणों के लिये ही प्राण धारण करने वाले थे ।

अष्टम स्कन्ध के सोलहवें अध्याय में पयोव्रत का विधान बताया गया है, जो अतिशीघ्र भगवान् को प्रसन्न करता है । फाल्गुन शुक्ल की प्रतिपदा से त्रयोदशी तक केवल गोदुग्धाहार लेकर यह व्रत करे ।

ध्रुवजी ने भी भगवान् की स्तुति में कहा है कि हे भगवन्! जैसे गाय अपने छोटे बछड़े की रक्षा करती है वैसे आप भक्तों की रक्षा करें ।

भगवान् श्रीशुकदेवजी ने कहा- यों तो भगवान् सबके एक मात्र प्रभु हैं, तथापि-

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ।।८/२४/५।।

भगवान् गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थ की रक्षा के लिये शरीर धारण किया करते हैं ।

वैवस्वत मनु ने यमुनातट पर सौ वर्ष तपस्या के पश्चात् दस पुत्ररत्न प्राप्त किये । उनमें बड़े इक्ष्वावु थे । एक पुत्र पृषध्र को गुरु वसिष्ठजी ने गायों की रक्षा में नियुक्त कर दिया -

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ।।९/२/३।।

वह रात्रि के समय बड़ी सावधानी से वीरासन में बैठा रहता और गायों की रक्षा करता ।

एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ।।९/२/४।।

एकदिन रात में वर्षा हो रही थी, उस समय गायों के झुण्ड में एक बाघ घुस आया । उससे डर कर सोयी हुई गौएँ उठकर इधर-उधर भागने लगीं ।

एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ।

तस्यास्तत् क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥९/२/५॥

बलवान् बाघ ने एक गाय को पकड़ लिया । गाय अत्यन्त भयभीत होकर चिल्लाने लगी । उनका करुणक्रन्दन सुनकर पृषध्र दौड़कर गाय के पास आया -

खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ।

अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया ॥९/२/६॥

एक तो रात का समय और दूसरे घनघोर घटाओं से आच्छादित होने के कारण तारे भी नहीं दीखते थे । उसने हाथ में तलवार उठाकर अनजान में ही शार्दूल (बाघ) समझकर बड़े वेग से गाय का सिर काट दिया । तलवार की नोक से व्याघ्र का भी (वृक्ण और) कान कट गया । वह अत्यन्त भयभीत होकर रास्ते में खून गिराता हुआ वहाँ से निकल भागा ।

मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ।

अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥९/२/८॥

शत्रुदमन पृषध्र ने यह समझा कि बाघ मर गया । परन्तु रात बीतने पर उसने देखा कि मैंने तो गाय को ही मार डाला । उसे बड़ा दुःख हुआ ।

यद्यपि पृषध्र ने जान-बूझकर यह अपराध नहीं किया था तथापि -

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ।

न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥९/२/९॥

कुलपुरोहित वसिष्ठजी ने उसे शाप दिया कि तुम इस कर्म से क्षत्रिय नहीं रहोगे; शूद्र हो जाओ ।

<u>अम्बरीष का गोदान – कामधेनु का अपहरण</u>

सपत्नीक राजा अम्बरीष ने ब्राह्मणों का पूजन किया और –

गवां रुक्मविषाणीनां रूप्यांघ्रीणां सुवाससाम् ।

पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ।।९/४/३३।।

सुवर्णश्रृंग तथा रजतखुरों से युक्त साठ करोड़ गौओं का भी दान किया ।

प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ।

भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ।।९/४/३४।।

और ब्राह्मणों को स्वादिष्ट अन्न और गुणकारी भोजन कराया । सभी गौएँ सवस्त्र, बड़ी सुशील, छोटी अवस्था की, देखने में सुन्दर, बछड़ेवाली और खूब दूध देनेवाली थीं । उनके साथ दुहने की उपयुक्त सामग्री भी दीं । पुनः पारण के लिये उद्यत हुए । इसके बाद महर्षि दुर्वासा की कथा है ।

भगवान् श्रीराम बड़े दयालु हैं, जब उन्होंने सुना कि भरतजी– **'गोमूत्र यावकं श्रुबा'।९/१०/३४।।** केवल गोमूत्र में पकाया हुआ जौ का दलिया खाते हैं, तो भगवान् का हृदय भर आया ।

एक दिन सहस्रार्जुन शिकार खेलने के क्रम में ससैन्य जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचे । मुनि के पास में एक कामधेनु रहती थी –

तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ।
ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ।।९/१५/२४

कामधेनु के प्रभाव से मुनि ने सपरिकर हैहयाधिपति का खूब स्वागत किया । कामधेनु की कृपा से अपने से भी दिव्य ऐश्वर्य को देखकर सहस्रार्जुन ने कामधेनु को ही लेना चाहा । उसने अभिमानवश जमदग्नि मुनि से माँगा भी नहीं और अपने अनुचरों को आज्ञा दी कि –

हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान् हर्तुमचोदयत् ।
ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ।।९/१५/२६।।

कामधेनु को छीन ले चलो । इसके बाद उनके सेवक रोती हुई सवत्सा कामधेनु को बलपूर्वक माहिष्मतीपुरी ले गये । जब वे सब चले गये तो परशुराम जी आये । सम्पूर्ण वृत्तान्त को जब परशुरामजी ने जाना तो रोष से भर गये और उसके पीछे दौड़े । उन्होंने ससैन्य सवाहन सहस्रार्जुन का युद्ध में वध कर दिया और कामधेनु को लौटा लाये –

अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ।
समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ।।९/१५/३६।।

कामधेनु बड़ी दु:खी हो रही थी । परशुरामजी ने कामधेनु को लाकर अपने पिताजी को दे दिया ।

यदा दुष्टातिसन्त्रस्ता पृथिवी धेनुरूपिणी ।
नारायणान्तिकं याति सर्वदु:खप्रशान्तये ।। स्वरचित

मूलतः कामधेनु के अपहरण के कारण परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन का वध, पुनः सहस्रार्जुन के दस हजार पुत्रों के द्वारा जमदग्नि मुनि की हत्या और परिणामतः परशुरामजी ने इक्कीस बार सम्पूर्ण पृथ्वी पर आततायी सभी क्षत्रियों का वध किया ।

दुष्यन्तपुत्र भरत ने अपने अश्वमेध यज्ञों में अपरिमित गोदान किया था –

सहस्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥९/२०/२६॥

एक हजार ब्राह्मणों में प्रत्येक ब्राह्मण को एक-एक बद्ध (१३०८४) गौएँ मिलीं थीं ।

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१०/१/१७॥

जब लाखों दैत्यों ने घमण्डी राजाओं का रूप धारण कर अपने भारी भार से पृथ्वी को आक्रान्त कर रखा था तब उनसे त्राण पाने के लिये पृथिवी गौ का रूप धारण कर ब्रह्माजी की शरण में गयी –

गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।
उपस्थिताऽन्तिके तस्मै व्यसनं समवोचत ॥१०/१/१८॥

उस गौरूपा पृथिवी के नेत्रों से आँसू बह-बहकर मुख पर आ रहे थे । उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था । वह बड़े जोर से क्रन्दन करती हुई ब्रह्माजी को अपनी कष्ट-कहानी सुनायी ।

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ।
जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१०/१/१९॥

पुनः ब्रह्माजी ने भगवान् शिव, अन्य देवगण और गौरूपा पृथिवी को साथ लेकर क्षीरशायी भगवान् नारायण के पास गये ।

उन सबों ने पुरुषसूक्त के द्वारा भगवान् की स्तुति की तो भगवान् ने कहा आप सभी सपत्नीक यदुकुल में प्रकट हों और मैं भी महात्मा वसुदेव जी के घर में प्रकट होकर गौरूपा पृथिवी का भार उतारूँगा । कल्पान्तर में भगवान् ने सपत्नीक अवतार लिया ।

कंस के मन्त्रियों ने कहा -

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।

तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ।१०/३/३९।।

देवताओं की जड़ है विष्णु और वह मूल वहाँ रहता है, जहाँ सनातन धर्म है । पुनः सनातन धर्म की जड़ हैं - वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या और वे यज्ञ जिनमें दक्षिणा दी जाती है ।

कंस के मन्त्री दैत्यस्वभाव के कारण कंस से विचार देते हैं, हे भोजराज! -

तस्मात्सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।

तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ।।१०/४/४०

हमलोग वेदवादी ब्राह्मण, तपस्वी, याज्ञिक और यज्ञ के लिये घी आदि हविष्य पदार्थ देनेवाली गायों का पूर्ण रूप से नाश कर डालेंगे, क्योंकि -

भगवान् की बाललीला और गोरक्षा -

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।

श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ।।१०/४/४१

ब्राह्मण, वेद, गौ, तपस्या, सत्य, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह, श्रद्धा, दया, तितिक्षा, और यज्ञ- ये विष्णु के शरीर हैं ।

वह विष्णु ही सर्वदेवाध्यक्ष और असुरद्रोही है । परन्तु वह किसी गुफा में छिपा रहता है । उसके मार डालने का सहज उपाय यही है कि ऋषि, गौ, ब्राह्मणादि को नष्ट कर दो ।

नन्द बाबा ने भगवान् के जन्मोत्सव में –

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलंकृते ।।१०।५।३

ब्राह्मणों को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित दो लाख गौएँ दान कीं । इसके बाद –

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ।

विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ।।१०/५/७

गाय, बैल और बछडों के अंगों में हल्दी-तेल का लेप कर दिया गया और उन्हें गेरू आदि रंगीन धातुएँ, मोरपंख, पुष्पहार, अनेक विध सुन्दर वस्त्र और सोने की जंजीरों से सजा दिया गया । भगवान् के जन्मोत्सव में –

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।

आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ।।१०/५/१४

आनन्द से मतवाले होकर गोपगण एक-दूसरे पर दही, दूध, घी और पानी उड़ेलने लगे । एक-दूसरे के मुख पर मक्खन मलने लगे और मक्खन फेंक-फेंक कर आनन्दोत्सव मनाने लगे ।

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ।

सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ।।१०/५/१५

नन्दबाबा स्वभाव से ही बड़े उदार और मनस्वी थे उन्होंने गोपों को बहुत से वस्त्र-आभूषण और गौएँ दीं । सूत-मागध, वन्दीजनों, नृत्य, वाद्य आदि विद्याओं से

अपना जीवन निर्वाह करनेवालों तथा दूसरे गुणीजनों को भी प्रसन्नतापूर्वक उनकी मुँह-माँगी वस्तुएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया । इन कर्मो का उद्देश्य यहीं था कि इनसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों और मेरे इस नवजात शिशु का कल्याण हो ।

नन्दादि गोपों से वसुदेवजी ने आज्ञा ले बैलगाड़ी पर सवार हो गोकुल की यात्रा की (१०/५/३२) । पूतना के उद्धार के बाद वत्सलतावश यशोदा, रोहिणी सहित सभी गोपियों ने -

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ।
रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ।।१०/६/१९

गोपुच्छभ्रमण आदि उपायों से बालक श्रीकृष्ण के अंगों की सब प्रकार से रक्षा की, और -

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् ।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः ।।१०/९/२०

सर्वप्रथम श्रीकृष्ण को गोमूत्र से स्नान कराया, फिर अब अंगों में गोरज लगायी और फिर बारहों अंगों में गोबर लगाकर भगवान् के केशव आदि नामों से रक्षा की ।

भगवान् ने अपने श्रीचरण से पूतना का शरीर दबाकर उसका स्तन-पान किया था । माना कि वह राक्षसी थी परन्तु भगवान् ने उसका स्तन-पान किया । इसलिये -

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो न मातरः ।।१०/६/३८

उस पूतना को भी उत्तम से उत्तम गति जो माता को मिलनी चाहिये- प्राप्त हुई । फिर जिनके स्तन का दूध भगवान् ने बड़े प्रेम से पिया, उन गौओं और माताओं की तो बात ही क्या है ।

जब ब्रह्माजी ग्वाल बाल और बछड़ों को हर ले गये, तब भगवान् स्वयं ही बछड़े और ग्वाल बाल बन गये, उस समय अपने विभिन्न रूपों से उन्होंने अपने साथी गोप और वत्सों की माता गौओं का स्तनपान किया ।

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।

भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ।।१०/६/३९

भगवान् ने वात्सल्य स्नेहाधिक्य के कारण गोपियों और गौओं के दूध का भरपेट पान किया ।

तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।

न पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भवः ।।१०/६/४०

वे गौएँ और गोपियाँ, जो नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण को अपने पुत्र के ही रूप में देखती थीं, फिर जन्म-मृत्युरूप संसारचक्र में कभी नहीं पड़ सकती हैं; क्योंकि यह संसार तो अज्ञान के कारण ही है ।

भगवान् के करवट बदलने के अभिषेक उत्सव में यशोदा मैया ने - 'स्रगभीष्टधेनुभिः' ब्राह्मणों को गाय आदि का दान किया । नन्दबाबा ने अपने पुत्र की उन्नति और अभिवृद्धि की कामना से -

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ।

आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ।।१०/७/१६

ब्राह्मणों को सर्वगुणसम्पन्न बहुत-सी गौएँ दीं । वे गौएँ वस्त्र, पुष्पमाला और सोने के हारों से सजी हुई थीं । ब्राह्मणों ने उन्हें आशीर्वाद दिया ।

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः ।

ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ।।१०।७/१७।।

यह बात स्पष्ट है कि जो वेदवेत्ता और सदाचारी ब्राह्मण होते हैं, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ।

तृणावर्त जब श्रीकृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया और अन्य प्रकार के उपद्रव को देखकर यशोदा –

अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ।। १७/७/२४

मृतवत्सा गौ की तरह पृथिवी पर गिर पड़ी । नन्दबाबा ने गर्गाचार्यजी के द्वारा गोशाला में ही भगवान् श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार करवाया –

नन्द उवाच

अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।

कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।।१०/८/१०

पुनः गर्गाचार्य ने कहा –

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।

अनेन सर्वदुर्गाणि यूयम×जस्तरिष्यथ ।।१०/८/१६

यह बालक तुम लोगों का परम कल्याण करेगा । समस्त गोप और गौओं को यह बहुत ही आनन्दित करेगा । इसकी सहायता से तुम लोग बड़ी-बड़ी विपत्तियों को बड़ी सुगमता से पार कर लोगे ।

जब राम और श्याम दोनों कुछ बड़े हुए तो –

यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।

वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जर्हृषुर्हसन्त्यः ।। १०/८/२४

किसी बैठे हुए बछड़े की पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डरकर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोर से पूँछ पकड़ लेते तब बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते । गोपियाँ देखकर आनन्दमग्न हो जातीं । पुनः -

वत्सान्मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः

स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।

मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति

द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥१०/८/२९

गोपियाँ कहती हैं, अरी यशोदा! यह तेरा कान्हा बड़ा नटखट हो गया है । गाय दुहने की समय न होने पर भी यह बछड़ों को खोल देता है और हम डाँटती हैं, तो जोर-जोर से हँसने लगता है । यह चोरी के बड़े-बड़े उपाय करके हमारे मीठे-मीठे दही-दूध चुरा-चुराकर खा जाता है । केवल अपने ही खाता तो और कोई बात थी, यह तो सारा दही-दूध वानरों को बाँट देता है और जब उनके भी पेट भर जाते हैं तब यह हमारे दुग्धदोहनपात्र माटों को ही फोड़ डालता है । यदि घर में इसे कोई वस्तु नहीं मिलती तो यह घर और घरवालों पर बहुत खींझता है और हमारे बच्चों को रुलाकर भाग जाता है ।

भगवान् की माखनचोरीलीला प्रसिद्ध ही है । यशोदा मैया तो भगवान् के लिये दूध-मक्खन तैयार करने में ही लगी रहती ।

नन्द-यशोदा ने जन्म नक्षत्र में कृष्ण-बलराम के हाथ से गोदान करवाया-

धूलिधूसरितांगस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।

जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥१०/११/१८

बेटे! पवित्र होकर ब्राह्मणों को आज गोदान करो ।

उपनन्द आदि गोपों ने गोकुल में विभिन्न उपद्रवों को देखकर रमणीय और सुरक्षित वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया, उस समय –

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युंक्त मा चिरम् ।

गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ।।१०/११/२९

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।

गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ।।१०/११/२८

गोप, गोपी और गायों के सेवन करने योग्य वृन्दावन की यात्रा में पहले गायों को, जो एकमात्र हमारी सम्पत्ति है; वहाँ भेज दें ।

उपनन्द की बात सुनकर सभी प्रसन्न हुए और –

गोधनानि पुरस्कृत्य श्रृंगाण्यापूर्य सर्वतः ।

तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ।।१०/११/३२

उन्होंने गायों के समूह को इकट्ठा कर गौ और बछड़ों को तो सबसे आगे कर लिया तथा पुरोहितों के साथ नाचते-गाते गायों के पीछे-पीछे स्वयं भी चले ।

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ।

तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ।।१०/११/३५

वहाँ जाकर सर्वकाल सुखावह श्रीवृन्दावन धाम में गोपों ने गोधन के रहने योग्य गोशाला का निर्माण भी कर दिया ।

भगवान् श्रीकृष्ण गोशाला के पास ही अपने बछड़ों को चराते और कभी दोनों **'क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः'**।।१०/११/३९।। कृत्रिम गाय और बैल बनकर खेलते । जो सारे लोकों के एकमात्र रक्षक हैं वे ही –

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।

सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥१०/११/४५

राम और श्याम अब गोबछड़ों के चरवाहे बने हुए हैं । वे तड़के ही उठकर कलेवे की सामग्री ले लेते और बछड़ों को चराते हुए एक वन से दूसरे वन में घूमा करते ।

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ।
गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥१०/११/४६

ग्वाल-बाल बछड़ों को पानी पिलाने हेतु जलाशय के तट पर ले गये और पहले बछड़ों को पानी पिलाकर स्वयं भी पानी पिया ।

एक दिन नन्दनन्दन श्यामसुन्दर वन में कलेवा करने के विचार से तड़के उठे और गायों के साथ सब बछड़ों को आगे करके निकल पड़े ।

(भगवान् ने अघासुर के मुख में मरे हुए बछड़ों को जिलाया)

सभी बछड़ों को खिला-पिलाकर वनभोज-लीला में मग्न हो गये ।

भगवान् की दिव्यातिदिव्य मनोहर लीला देखने के लिये ब्रह्माजी ने बछड़ों और ग्वालबालों को अन्यत्र छिपा दिया और स्वयं अर्न्तध्यान हो गये । इसके बाद भगवान् ने तद्वत ही गोप, बछड़े आदि का रूप धारण कर लिया था । भगवान् श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण गायों एवं गोपियों के बछड़े एवं ग्वाल-बालों के रूप में एक वर्ष तक दुग्धपान किया ।

प्रायः एक वर्ष पूरा होने पर श्रीकृष्ण-बलराम बछड़ों को चराते हुए वन में गये । उस समय गौएँ गोवर्धन की चोटी पर घास चर रही थीं' पास में ही चरते हुए बछड़ों पर उन सबों की दृष्टि पड़ गयी; बस -

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ।
द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्रुपया जवेन ॥१०/१३/३०

बछड़ों को देखते ही गौओं का वात्सल्य-स्नेह उमड़ पड़ा । वे अपने-आप की सुध-बुध खो बैठीं और ग्वालों के रोकने की कुछ भी परवाह न कर जिस मार्ग से वे न जा सकते थे, उस मार्ग से हुंकार करती हुई तेज वेग से दौड़ीं । उस समय उनके थनों से दूध बहता जाता था और उनकी गरदनें सिकुड़कर डील से मिल गयी थीं । वे पूँछ तथा सिर उठाकर इतने वेग से दौड़ रही थीं कि मालूम होता था कि उनके दो ही पैर हैं ।

समेत्य गावोऽधोवत्सान् वत्सवत्योऽप्यपाययन् ।
गिलन्त्य इव चांगानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥१०/१३/३१

जिन गौओं के और भी बछड़े हो चुके थे, वे भी गोवर्धन के नीचे अपने पहले बछड़ों के पास दौड़ आयीं और उन्हें स्नेहवश अपने-आप बहता हुआ दूध पिलाने लगीं । उस समय वे अपने बच्चों का एक-एक अंग ऐसे चाट रही थीं; मानो उन्हें अपने पेट में रख लेंगी ।

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ।
स्वकान् स्वकान् वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥ १०/१३/२४

जब गौएँ जंगलों से चरकर शीघ्रता से गोष्ठ लौटतीं तो हुंकार सुनकर उनके प्यारे-प्यारे बछड़े दौड़कर उनके पास आ जाते, तब वे बार-बार अपनी जीभ से चाटतीं और अपना दूध पिलातीं । ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की -

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ १०/१४/३१

मेरे स्वामी! सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक जगत् के बड़े-बड़े यज्ञ आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके, परन्तु आपने व्रज की गायों और ग्वालिनों के बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्तनों का अमृत-सा दूध बड़े उमंग से पिया है । वास्तव में उनका जीवन सफल है, वे ही धन्य हैं ।

....

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ।।१०/१५/१

अब भगवान् पौगण्डावस्था यानी छठे वर्ष में प्रवेश कर गये, अब उन्हें गौएँ चराने की अनुमति मिल गयी । भगवान् अपने सखा ग्वालबालों के साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावन में जाते और अपने चरणों से वृन्दावन को अत्यन्त पावन करते ।

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ।।१०/१५/२

वृन्दावन गौओं के लिये हरी-भरी घास से युक्त एवं रंग-बिरंगे पुष्पों की खान हो रहा था । आगे-आगे गौएँ, उनके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए श्यामसुन्दर, तदनन्तर बलराम और फिर श्रीकृष्ण के यश का गान करते हुए ग्वालबाल- इस प्रकार विहार करने के लिये उन सभी ने उस वन में प्रवेश किया ।

भगवान् की घुँघराली अलकों पर गोरज पड़ी रहती हैं -

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह . . . . ।। १०/१५/४२।।

एक बार गौओं और गोपों को भगवान् ने दावानल से बचाया -

क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ।
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गहवरम् ।।१०/१९/१

जब ग्वालबाल खेल-कूद में लग गये, तब उनकी गौएँ बेरोक-टोक चरती हुई बहुत दूर निकल गयीं और हरी-हरी घास के लोभ से एक गहन वन में घुस गयीं ।

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् ।
ईषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ।।१०/१९/२

उनकी बकरियाँ, गायें और भैंसें एक वन से दूसरे वन में होती हुई आगे बढ़ गयीं तथा गर्मी के ताप से व्याकुल हो बेसुध हो गयीं और जोड़ से डकराती हुई मुञ्जाटवी (सरकण्डों) के वन में घुस गयीं ।

भगवान् श्रीकृष्ण आदि ने अपने पशुओं को नहीं देखकर उनका पता लगाना प्रारम्भ किया । वे गौखुर एवं गायों से खाये हुए घास के माध्यम से आगे बढ़े । अन्त में भगवान् ने देखा कि उनकी गौएँ मुञ्जाटवी में भटक कर क्रन्दन कर रही हैं । उस समय भूखे-प्यासे उन्हें लौटाने की चेष्टा करने लगे । वे बड़े व्याकुल हो रहे थे ।

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा ।
स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ।।१०/१९/६

भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से गौओं का नाम ले-लेकर पुकारना प्रारम्भ किया । गौएँ अपने नाम की ध्वनि सुनकर बहुत हर्षित हुई । वे भी उत्तर में हुंकारने और रँभाने लगीं ।

भयंकर दावानल को देखकर गौ और ग्वालबाल सभी भगवान् की शरण में गये और उनसे रक्षा की प्रार्थना की ।

भगवान् ने सभी को आश्वासन देकर दावानल का पान कर लिया और गायों तथा ग्वालबालों की रक्षा की । पुनः-

गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ।

वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद् गोपैरभिष्टुतः ।।१०/१९/१५

सायंकाल होने पर बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ने गौएँ लौटायीं और बंशी बजाते हुए उनके पीछे-पीछे व्रज की यात्रा की । उस समय ग्वालबाल उनकी स्तुति करते आ रहे थे ।

वेणुगीत में गोपियाँ ऐसी अभिलाषा रखती हैं कि जब गोचारण करते समय कृष्ण बाँसुरी बजाये तो हम उसकी रूपमाधुरी का पान करें, उस दिव्य छवि को देखकर बादल भी मँडराने लगते हैं । ये गिरिराज गोवर्धन जी भी धन्य हैं -

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।

मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ।। १०/२१/१८

यह गिरिराज गोवर्धन हरिदासवर्य, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलराम के चरण-कमलों का स्पर्श करके कितना आनन्दित रहता है । इसके भाग्य की सराहना कौन करे । यह तो उन दोनों- गौओं और ग्वालबालों का बड़ा ही सत्कार करता है । खान-पान के लिये झरनों का जल देता है, गौओं के लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है । विश्रामार्थ कन्दराएँ एवं भोजनार्थ कन्द-मूल-फल भी प्रदान करता है । यह धन्य है ।

पुनः भगवान् ने -

तत्र गाः पाययित्वाऽऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ।

ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ।।१०/२२/३७

यमुनाजी का जल बड़ा ही मधुर, शीतल और स्वच्छ था । उन लोगों ने पहले गौओं को पिलाया और इसके बाद स्वयं ने भी जी भरकर स्वादु जल का पान किया ।

गोवर्धनलीला में भगवान् के इच्छानुसार ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाकर गिरिराजजी और ब्राह्मणों का पूजन किया गया और –

उपहृत्य बलीन् सर्वानादृता यवसं गवाम् ।

गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ।।१०/२४/३३

गौओं को हरी-हरी घास खिलाकर उनको आगे कर नन्दबाबा आदि गोपों ने श्रीगिरिराज की परिक्रमा की । उस समय भगवान् भी गिरिराज के ऊपर एक विशाल शरीर से प्रकट होकर बोले- देखो मैं ही गिरिराज हूँ । गोपों ने परस्पर में कहा –

एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ।

हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ।। १०/२४/३७

ये स्वेच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं । जो वनवासी जीव इनका निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर डालते हैं । आओ, अपना और गौओं का कल्याण करने के लिये इन गिरिराज भगवान् को हम नमस्कार करें ।

भगवान् ने सभी को गौ, ब्राह्मण एवं गोवर्धन पूजा की प्रेरणा दी ।

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रचोदिताः ।

यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ।। १०/२४/३८

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपों ने गिरिराज, गौ और ब्राह्मणों का विधिपूर्वक पूजन किया तथा फिर श्रीकृष्ण के साथ सब व्रज में लौट आये ।

इन्द्र ने कुपित होकर जब भारी वृष्टि की तो भगवान् ने सोचा –

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।

गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ।। १०/२५/१८

यह सारा गोष्ठ (व्रज) मेरे ही आश्रित है, मेरे द्वारा स्वीकृत है और एकमात्र मैं ही इसका रक्षक हूँ । अतः मैं अपनी योगमाया से इसकी रक्षा करूँगा । सन्तों, गायों और ब्राह्मण आदियों की रक्षा करना तो मेरा व्रत है । भगवान् ने गोवर्धन धारण कर सभी की रक्षा की ।

गोवर्धनधृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ।

गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ।। १०/२७/१

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन जी को धारण करके मूसलाधार वर्षा से व्रज को बचा लिया, तब उनके पास गोलोक से कामधेनु (बधाई देने के लिए आयी) और स्वर्ग से देवराज इन्द्र (क्षमा याचना के लिये) आये । देवराज इन्द्र की प्रार्थना के बाद कामधेनु ने अपनी सन्तानों के साथ भगवान् की प्रार्थना की –

सुरभिरुवाच

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव ।

भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ।।१०/२७/१९

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ।

भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ।।१०/२७/२०

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ।

अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ।।१०/२७/३०

कामधेनु ने कहा– हे सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीक ृष्ण! आप महायोगी–योगेश्वर हैं । आप स्वयं विश्व और विश्व के परम कारण अच्युत हैं । सम्पूर्ण विश्व के स्वामी आपको अपने रक्षक के रूप में प्राप्तकर हम सनाथ हो गयीं । आप जगत् के स्वामी हैं, परन्तु हमारे तो परम पूजनीय आराध्य देव ही हैं । प्रभो! इन्द्र त्रिलोकी के इन्द्र हुआ करे, परन्तु हमारे इन्द्र तो आप ही हैं । अतः आप ही गौ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनों की रक्षा के लिये हमारे इन्द्र बन जाइये । हम गौएँ ब्रह्माजी की प्रेरणा से आपको अपना इन्द्र मानकर अभिषेक करेंगी । विश्वात्मन्! आपने पृथिवी का भार उतारने के लिये ही अवतार धारण किया है ।

भगवान् शुकदेव ने कहा –

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ।
जलैराकाशगंगाया ऐरावतकरोद्धृतैः ।।१०/२७/२२
इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं चोदितो देवमातृभिः ।
अभ्यसिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ।।१०/२७/२३

भगवान् श्रीकृष्ण से ऐसा कहकर कामधेनु ने अपने दूध से और देवमाताओं की प्रेरणा से देवराज इन्द्र ने ऐरावत की सूंड के द्वारा लाये हुए आकाशगंगा के जल से देवर्षियों के साथ यदुनाथ श्रीकृष्ण का अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नाम से सम्बोधित किया ।

देवर्षि, सिद्धादिकों ने भगवान् की स्तुति कीं, गौओं के स्तनों से स्वयमेव दूध अधिक गिरने से पृथ्वी गीली हो गयी । इस प्रकार से –

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ।

अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ।।१०/२७/२८

इन्द्र ने इस प्रकार गौ एवं गोकुल के स्वामी श्रीगोविन्द का अभिषेक किया तथा भगवान् से अनुमति प्राप्त कर सभी अपने-अपने लोकों को गये ।

गोचारण के समय भगवान् नंगे पाँव ही विचरते थे, इस दृश्य का स्मरण कर गोपियों ने कहा –

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ।।१०/३१/११

हे नाथ! तुम्हारे चरण कमल से भी सुकोमल और सुन्दर हैं । जब तुम गौओं को चराने के लिये व्रज से निकलते हो तब यह सोचकर कि तुम्हारे वे युगल-चरण कंकड़, तिनके और कुश-काँटे गड़ जाने से कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन और दुःखी हो जाता है ।

एक बार नन्दबाबा आदि गोपों ने शिवरात्रि के अवसर पर अम्बिका वन में जाकर सरस्वती नदी में स्नान किया और –

गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमाहताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ।।१०/३४/३

वहाँ उन्होंने आदरपूर्वक भगवान् शंकर तथा अम्बिका जी का पूजन कर श्रद्धा से युक्त हो गौएँ, सोना, वस्त्र, मधु, और मधुर अन्न ब्राह्मणों को दान दिये तथा उनको खिलाया-पिलाया । वे केवल यही चाहते थे कि देवाधिदेव भगवान् शंकर हम पर प्रसन्न हों ।

अन्यत्रापि

'गाः समाहवयति यत्र मुकुन्दः ।।१०/३५/६

वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ।। १०/३५/८

भगवान् बाँसुरीवादन में गायों का नाम ले-लेकर गायों को बुलाते ।

गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।।१०।३५।२१

जब अक्रूरजी व्रजधाम पहुँचे तो वहाँ उन्होंने -

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।

पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ।।१०/३८/२८

दोनों भाईयों को गाय दुहने के स्थान में विराजमान देखा । परस्पर में एक-दूसरे से अत्यन्त आह्लादित होकर सभी मिले । इसके बाद भगवान् ने अक्रूरजी का स्वागत-सत्कार किया -

पृष्ट्वाऽथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।

प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ।।१०/३८/३८

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ।

अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ।।१०/३८/३९

घर ले जाकर भगवान् ने उनका कुशल-मंगल पूछकर उन्हें श्रेष्ठ आसन पर बैठाया और विधिपूर्वक उनके पाँव पखारकर मधुपर्क प्रदान किया । भगवान् ने अक्रूरजी को एक गाय दी और पैर दबाकर उनकी थकावट दूर की तथा बड़ी श्रद्धा से उनको भोजनादि करवाया ।

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ।

वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ।।१०।४३।३४

गाय और बछड़े चरानेवाले ग्वालिये प्रतिदिन आनन्दमग्न होकर वन में कुश्ती लड़-लड़कर खेलते रहते हैं, और गायें चराते रहते हैं ।

दोनों भाईयों के यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कर देने पर वसुदेवजी ने -

तेभ्योऽदाद्दक्षिणागावो रुक्ममालास्वलंकृताः ।

स्वलंकृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ।।१०/४५/२७

ब्राह्मणों को अंलकृत गौएँ दीं ।

राजानृग की कथा

एकबार साम्ब, प्रद्युम्न आदि यदुवंशिगण उपवन में भ्रमण के क्रम में प्यास लगने पर कुएँ के पास गये तो वहाँ कुएँ में एक बहुत बड़ा गिरगिट था । उन सभी ने उसे बाहर निकालने का प्रयास किया परन्तु सफल नहीं हुए । सभी ने भगवान् श्रीकृष्ण से यह वृत्तान्त निवेदन किया । परमदयालु भगवान् उस कुएँ पर गये और अनायास ही बायें हाथ से उसे बाहर निकाल दिया । भगवान् के करकमलों का स्पर्श होते ही उसका गिरगिट रूप जाता रहा और वह एक स्वर्गीय देवता के रूप में परिणत हो गया । उसका रंग सुनहला हो गया और अलंकारों से युक्त हो गया । यद्यपि भगवान् को सब वृतान्त पता था तथापि मानवोचित-लीला के कारण उससे उसका कारण पूछा ।

तब राजा नृग ने प्रणतभाव से भगवान् को कहा -

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।

दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ।।१०/६४।१०

प्रभो! मैं महाराज इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूँ । जब कभी किसी ने आपके सामने दानियों की गिनती की होगी, तब उसमें मेरा नाम भी अवश्य ही आपके कानों में पड़ा होगा ।

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ।

कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ।।१०/६४/११

हे नाथ! आप समस्त प्राणियों की एक-एक वृत्ति के साक्षी हैं । भूत और भविष्य का व्यवधान भी आपके अखण्ड ज्ञान में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाल सकता ।

अतः आपसे छिपा ही क्या है? फिर भी मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये कहता हूँ -

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ।

यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददां स्म गाः ।।१०/६४/१२

भगवन्! पृथिवी में जितने धूलिकण हैं, आकाश में जितने तारे हैं और वर्षा में जितनी जलधाराएँ गिरती हैं । मैंने उतनी ही गौएँ दान की थीं ।

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपन्नाः कपिला हेमश्रृंगीः।

न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ।। १०/६४/१३

वे सभी गौएँ दुधार, युवावस्थावाली, सीधी, सुन्दर, सुलक्षण और कपिला थीं, उन्हें मैंने न्याय के धन से प्राप्त किया था । सब सवत्स थे । स्वर्णश्रृंग, रजतखुर, सवस्त्र और सालंकृत गौएँ मैंने दान कीं ।

स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।

तपः श्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुंगवेभ्यः ।। १०/६४/१४

भगवन्! मैं युवावस्था से सम्पन्न, श्रेष्ठ ब्राह्मणकुमारों को- जो सद्‌गुणी, शीलसम्पन्न, कष्ट में पड़े हुए कुटुम्बवाले, दम्भरहित, तपस्वी, वेदपाठी, शिष्यों को विद्यादान करने वाले तथा सच्चरित्र होते, उन्हें वस्त्राभूषणों से अलंकृत करता और उन गौओं का दान करता । इस प्रकार मैंने बहुत दान, पुण्य, यज्ञ किये परन्तु -

कस्यचिद् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ।
सम्पृक्ता विदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ।।१०/६४/१६

एक दिन किसी अप्रतिग्राही (दान न लेनेवाले) तपस्वी ब्राह्मण की एक गाय बिछुड़कर मेरी गौओं में आ मिली ।मुझे इस बात का बिल्कुल पता नहीं चला । इसलिये मैंने अनजान में उसे किसी दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया ।

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ।
ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ।।१०/६४/१७

जब उस गाय को वे ब्राह्मण ले चले, तब उस गाय के असली स्वामी ने कहा - 'यह गौ मेरी है' । दान ले जानेवाले ब्राह्मण ने कहा- यह तो मेरी है; क्योंकि राजा नृग ने मुझे इसका दान दिया है ।

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ।
भवान् दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद् भ्रमः ।।१०/६४/१८।।

वे दोनों ब्राह्मण आपस में विवाद करते हुए अपनी-अपनी बात सिद्ध करने के लिये मेरे पास आये । एक ने कहा- ये गाय अभी-अभी आपने मुझे दी है और दूसरे ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो तुमने मेरी गाय चुरा ली है । भगवन्! उन दोनों ब्राह्मणों की बात सुनकर मेरा चित्त भ्रमित हो गया ।

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ।

गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ।।१०/६४/१९।।

भवन्तामनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ।

समुद्धरत मां कृच्छ्रात् पतन्तं निरयेऽशुचौ ।।१०/६४/२०।।

मैंने धर्मसंकट में पड़कर उन दोनों से बड़ी अनुनय-विनय की और कहा कि- मैं बदले में एक लाख उत्तम गौएँ दूँगा । आपलोग मुझे यह गाय दे दीजिये ।119।। मैं आपलोगों का सेवक हूँ । मुझसे अनजान में यह अपराध बन गया है । मुझ पर आपलोग कृपा कीजिये और मुझे इस घोर कष्ट से तथा घोर नरक में गिरने से बचा लीजिये ।।20।।

नाहं प्रतीच्छै वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।

नान्यद् गवामप्ययुतमीच्छामीत्यपरो ययौ ।।१०/६४/२१

राजन्! मैं इसके बदले में कुछ नहीं लूँगा । यह कहकर गाय का स्वामी चला गया । तुम इसके बदले में एक लाख ही नहीं, दस हजार गौएँ और बढ़ाकर दो तो भी मैं लेने का नहीं; इस प्रकार कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया ।

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ।

यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ।।१०/६४/२२।।

पूर्व त्वमशुभं भुंक्षे उताहो नृपते शुभम् ।

नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ।।१०/६४।२३।।

पूर्व देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ।

तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ।।१०/६४/२४।।

देवाधिदेव जगदीश्वर! इसके बाद आयु समाप्त होने पर यमराज के दूत आये और मुझे यमपुरी ले गये । वहाँ यमराज ने मुझसे पूछा ।।22।। राजन्! तुम पहले

अपने पाप का फल भोगना चाहते हो अथवा पुण्य का? तुम्हारे दान और धर्म के फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होने वाला है, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है ।।23।। भगवन्! तब मैंने यमराज से कहा – देव! पहले मैं अपने पाप का फल भोगना चाहता हूँ और उसी क्षण यमराज ने कहा – तुम गिर जाओ । उनके ऐसा कहते ही मैं वहाँ से गिरा और गिरते ही समय मैंने देखा कि मैं गिरगिट हो गया हूँ ।।24।।

पुनः राजा नृग ने अनेक प्रकार से भगवान् की स्तुति की –

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।

कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ।।१०/६४/२५।।

हे भगवन्! आपका दर्शन तो संसारचक्र से छुटकारा दिलाने के समय ही होता है । आप समस्त कार्यो और कारणों के रूप में विद्यमान हैं ।आपकी शक्ति अनन्त है और आप स्वयं ब्रह्म हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ । सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी वासुदेव श्रीकृष्ण ! आप समस्त योगों के स्वामी, योगेश्वर हैं । मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।

ऐसा कहकर राजा नृग ने भगवान् की परिक्रमा की और अपने मुकुट से भगवच्चरणस्पर्श कर उनसे आज्ञा ली और श्रेष्ठ विमान पर सवार हो भगवद्धाम को चले गये ।

इसके बाद भगवान् ने समुपस्थित सभी को शिक्षा देने के लिये उपदेश दिया –

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुग्नमग्नेर्मनागपि ।

तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ।१०/६४/३२।।

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।

ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ।।१०/६४/३३।।

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ।

कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ।।१०/६४/३४।।

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरूषम् ।

प्रसह्य तु बलाद् भुक्तं दश पूर्वान् दशापशन् ।।१०/६४/३५।।

राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते ।

निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधुबालिशाः ।।/१०/६४/३६।।

जो लोग अग्नि के समान तेजस्वी हैं, वे भी ब्राह्मणों का थोड़े-से-थोड़े धन हड़पकर नहीं पचा सकते । फिर जो अभिमानवश व्यर्थ ही अपने को लोकस्वामी समझते हैं, वे राजा भला क्या पचा सकते हैं ।।32।। मैं हलाहल विष को विष नहीं मानता, क्योंकि उसकी चिकित्सा होती है । वस्तुतः ब्राह्मणों का धन ही परम विष है; उसको पचा लेने के लिये पृथ्वी में कोई औषध अथवा कोई उपाय नहीं है ।।33।। हलाहल विष केवल खानेवाले का ही प्राण लेता है और आग भी जल के द्वारा बुझायी जा सकती है; परन्तु ब्राह्मण के धनरूप अरणि से जो आग पैदा होती है, वह सारे कुल को समूल जला डालती है ।।34।। ब्राह्मण का धन यदि उनकी पूरी सम्मत लिये बिना भोगा जाय, तब तो वह भोगनेवाले, उसके पुत्र और पौत्र- इन तीन पीढ़ियों को नष्ट करता है । परन्तु यदि बलपूर्वक हठ करके उसका उपयोग किया जाय, तब तो पूर्वपुरुषों की दस पीढ़ियाँ और आगे की दस पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं ।।35।। जो मूर्ख राजा अपनी राजलक्ष्मी के घमण्ड से अन्धे होकर ब्राह्मणों का धन हड़पना चाहते

हैं; समझना चाहिये कि वे जान-बूझकर नरक का रास्ता साफ कर रहे हैं । वे अपने अध:पतन को नहीं देख रहे हैं ।

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ।

विप्राणां हतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ।।१०/६४/३७।।

राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दानिरंकुशाः ।

कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ।।/१०/६४/३८।।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ।।१०/६४/३९।।

न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद् गृद्ध्वाऽल्पायुषो नराः ।

पराजिताश्च्युताद्राज्याद् भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ।।/१०/६४/४०।।

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ।

घ्नन्तं बहुशपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ।।१०/६४/४१।।

जिन उदारहृदय और बहुकुटुम्बी ब्राह्मणों की वृत्ति छीन ली जाती है, उनके रोने पर उनकी आँसू की बूँदों से धरती के जितने धूलिकण भींगते हैं, उतने वर्षों तक ब्राह्मण के स्वत्व को छीननेवाले उस उच्छृंखल राजा और उसके वंशजों को कुम्भीपाक नरक में दु:ख भोगना पड़ता है ।।37-38।। जो मनुष्य अपनी या दूसरों की दी हुई ब्राह्मणों की वृत्ति (जीविका) का अपहरण कर लेते हैं वे साठ हजार वर्ष तक विष्ठा के कीड़े होते हैं । इसलिये ब्राह्मणों का धन कभी भूलकर भी मेरे कोष में न आये, क्योंकि जो लोग ब्राह्मण के धन की इच्छा भी करते हैं- उसे छीनने की बात तो अलग रही- वे इस जन्म में अल्पायु, शत्रुओं से पराजित और राज्यभ्रष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के बाद भी दूसरों को कष्ट देने वाले सर्प ही होते हैं ।।40।। यदि ब्राह्मण

अपराध करे, तो भी उससे द्वेष मत करो । वह मार ही क्यों न बैठे या बहुत-सी गालियाँ या शाप ही क्यों न दे, तब भी उसे तुम सभी केवल नमस्कार करो ।।41।।

पुनः भगवान् ने कहा -

यथाहं प्रणमे विप्राननुकुलं समाहितः ।

तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ।।१०/६४/४२।।

ब्राह्मणार्थे ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ।

अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ।।१०/६४/४३।।

जिस प्रकार मैं स्वयं बड़ी सावधानी से तीनों समय ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुमलोग भी किया करो । जो मेरी इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा, उसे मैं क्षमा नहीं करूँगा, दण्ड दूँगा ।।42।।

यदि ब्राह्मण के धन का अपहरण हो जाय तो वह अपहृत धन उस अपहर्ता को अनजाने में अपराध होने पर भी अध:पतन के गड्ढे में डाल देता है । जैसे- ब्राह्मण की गाय ने अनजान में उसे लेनेवाला राजा नृग को नरक में डाल दिया था । इस प्रकार से द्वारकावासियों को उपदेश देकर भगवान् अपने महल में चले गये ?

(महाभारत अनु. 70 नृगचरित के पहले लिखें)

भीष्म उवाच

निविशन्त्यां पुरा पार्थ द्वारवत्यामिति श्रुतिः ।

अदृश्यत महाकूपस्तृणवीरूत्समावृत: ।।७०/२।।

प्रयत्नं तत्र कुर्वाणास्तस्मात्कूपाज्जलार्थिनः ।

श्रमेण महता युक्तास्तस्मिंस्तोये सुसंवृते ।।७०/३।।

ददृशुस्ते महाकायं कृकलासमवस्थितम् ।

तस्य चोद्धरणे यत्नमकुर्वस्ते सहस्रशः ।।४।।

पृगृहैश्चर्मपट्टैश्च तं बद्ध्वा पर्वतोपमम्

नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं ततो जग्मुर्जनार्दनम् ।।५।।

खमावृत्योदपानस्य कृकलासः स्थितो महान् ।

तस्य नास्ति समुद्धर्तेत्येतत्कृष्णे न्यवेदयन् ।।६।।

स वासुदेवेन समुद्धृतश्च पृष्टश्च कार्यं निजगाद राजा ।

नृगस्तदात्मानमथो न्यवेदयत् पुरातनं यज्ञ सहस्रयाजिनम् ।।७।।

तथा ब्रुवाणं तु तमाह माधवः शुभं त्वया कर्म कृतं न पापकम् ।

कथं भवान् दुर्गतिमीदृशीं गतो नरेन्द्र तद् ब्रूहि किमेतदीदृशम् ।।८।।

भीष्म जी कहते है् कि– पार्थ! हमने सुना है कि पूर्वकाल में जब द्वारकापुरी बस रही थी, उसी समय वहाँ घास और लताओं से ढका हुआ एक विशाल कूप दिखाई दिया ।।2।। वहाँ रहनेवाले यदुवंशी बालक उस कुएँ का जल पीने की इच्छा से बड़े परिश्रम के साथ उस घास–फूस को हटाने के लिये महान् प्रयत्न करने लगे । इतने ही में उस कुएँ के ढके हुए जल में स्थित एक विशालकाय गिरगिट पर उनकी दृष्टि पड़ी । फिर तो वे सहस्रों बालक उस गिरगिट को निकालने का यत्न करने लगे । गिरगिट का शरीर एक पर्वत के समान था । बालकों ने उसे रस्सियों और चमड़े की पट्टियों से बाँधकर खींचने के लिये बहुत जोर लगाया । परन्तु वह टस से मस न हुआ । जब बालक उसे निकालने में सफल न हो सके तब वे भगवान् श्रीकृष्ण के पास गये । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से निवेदन किया– हे भगवन्! एक विशाल गिरगिट, कुएँ में पड़ा है, जो उस कुएँ के सारे आकाश घेरकर बैठा है, पर उसे निकालनेवाला कोई नहीं है । यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण उस कुएँ के पास गये ।

उन्होंने उस गिरगिट को कुएँ से बाहर निकाला और अपने पावन हस्त-स्पर्श से राजा नृग का उद्धार कर दिया । इसके बाद उनसे परिचय पूछा । तब राजा ने उन्हें अपना परिचय देते हुए कहा- प्रभो! पूर्वजन्म में मैं राजा नृग था, जिसने एकसहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया था । उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने पूछा- राजन्! आपने तो सदा पुण्यकर्म ही किया था, पापकर्म कभी नहीं किया । फिर आप ऐसी दुर्गति में कैसे पड़ गये? बताइये, क्यों आपको यह ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ ।।8।।

श्रीमद्देवीभागवतम्

मनसा देवी की पूजा के प्रकरण में गोलोकधाम से आकर सुरभि ने भी देवी का पूजनाभिषेक किया -

गोलोकात् सुरभिर्ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम् ।
(मनसा) तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् ।।
ज्ञानं च कथयामास गोप्यं सर्व सुदुर्लभम् ।।४८/१४२।।

पुरन्दर ने भगवान् नारायण से कहा- हे ब्रह्मन्! सुरभि गौ ने गोलोक से वहाँ (मनसा देवी के पास) आकर इन्द्र द्वारा सुपूजित उन मनसा देवी को अपने दुग्ध से स्नान कराकर आदरपूर्वक उनकी पूजा की और उन देवी ने उन्हें अत्यन्त दुर्लभ तथा गोपनीय सम्पूर्ण ज्ञान का उपदेश दिया ।

स्कन्ध- 1, अध्याय- 49 सुरभि का उपाख्यान (आदि गौ का प्राकट्य)

नारद उवाच

का वा सा सुरभिर्देवी गोलोकादागता च या ।

तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छमि यत्नतः ॥१॥

हे ब्रह्मन्! गोलोक से जो सुरभि देवी आयी थीं वे कौन थीं? मैं ध्यानपूर्वक उनका जन्मचरित्र सुनना चाहता हूँ ।।1।।

श्रीनारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः ।

गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोके सा समुद्भवा ॥२॥

सर्वादिसृष्टेश्चरितं कथयामि निशामय ।

बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥३॥

श्रीनारायण बोले– हे नाथ! वे देवी सुरभि गोलोक में प्रकट हुईं । वे गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि स्वरूपिणी, गौओं की जननी तथा गौओं में प्रधान हैं । मैं सभी गौओं के आदि सृष्टिस्वरूपा उन सुरभि के चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ । आप ध्यानपूर्वक सुनिये । पूर्वकाल में वृन्दावन में सुरभि का प्रादुर्भाव हुआ था ।।2–3।।

एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकी ।

गोपांगनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥४॥

सहसा तत्र रहसि विजहार स कौतुकात् ।

बभूव क्षीरपानेच्छा तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥५॥

ससृजे सुरभिं देवीं लीलया वामपार्श्वतः ।

वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सो नाम मनोरथः ॥६॥

एक समय की बात है, गोपांगनाओं से घिरे हुये परमकौतुकी राधिकापति श्रीकृष्ण राधा के साथ पावन वृन्दावन में गये हुए थे । वहाँ वे एकान्त में क्रीडापूर्वक

विहार करने लगे, तभी सहसा उन स्वेच्छामय प्रभु को दुग्धपान की इच्छा हो गयी ।।4-5।।

उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने वामभाग से लीलापूर्वक बछड़े सहित दुग्धवती सुरभि गौ को प्रकट कर दिया । उस बछड़े का नाम मनोरथ था ।।6।।

दृष्ट्वा सवत्सां श्रीदामा नवभाण्डे दुदोह च ।
क्षीरं सुधाऽतिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ।।७।।
तदुत्थं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम् ।
सरो बभूव पयसां भाण्डविस्रंसनेन च ।।८।।
दीर्घं च विस्तृतं चैव परितः शतयोजनम् ।
गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि क्षीरसरोवरः ।।९।।
गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा ।
रत्नेन्दुरचिता पूर्णम्भूता चापीश्वरेच्छया ।।१०।।
बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः ।
यावन्तस्तत्र गोपाश्च सुरभ्या लोमकूपतः ।।११।।
तासां पुत्राश्च बहवः सम्बभूवुरसंख्यकाः ।
कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं जगत् ।।१२।।

बछड़े सहित उस गाय को देखकर श्रीदामा ने नवीन पात्र में उसका दूध दुहा । जन्म, मृत्यु, तथा बुढ़ापा को हरनेवाला वह दुग्ध अमृत से भी बढ़कर था । सुरभि से दुहे गये उस स्वादिष्ट दूध को स्वयं गोपीपति भगवान् श्रीकृष्ण पीने लगे । तभी पात्र के गिरकर फूट जाने से चारों ओर सौ योजन की लम्बाई तथा चौड़ाई वाला एक विशाल दूध का सरोवर हो गया । यहीं सरोवर गोलोक में क्षीरसरोवर के नाम से प्रसिद्ध है ।

वह सरोवर गोपिकाओं तथा राधाजी का क्रीडावापी हो गया । वापी के (घाट आदि) पूर्णरूप से श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित थे । भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से उसी समय सहसा लाखों-करोड़ों कामधेनु गौएँ प्रकट हो गयीं । वहाँ जितने गोप थे वे सभी उस सुरभि के रोमकूपों से प्रकट हुए थे । तत्पश्चात् उन गौओं की असंख्य सन्तानें उत्पन्न हो गयीं । इस प्रकार उस सुरभि से गायों की सृष्टि कही गयी है; उसी से यह जगत् व्याप्त है ।।10-12।।

पूजां चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने ।
ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।।१३।।
दीपान्विता परदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया हरेः ।
बभूव सुरभिः पूज्या धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ।।१४।।

हे मुने! पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण ने देवी सुरभि की पूजा की थी, उसी समय से तीनों लोकों में उस सुरभि की दुर्लभ पूजा का प्रचार हो गया । दीपावली के दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से देवी सुरभि पूजित हुई थीं- यह मैंने धर्मदेव के मुख से सुना है ।।13-14।।

ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम् ।
वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते ।।१५।।
'ॐ सुरभ्यै नम' इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः ।
सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ।।१६।।
ध्यानं यजुर्वेदगीतं तस्याः पूजा च सर्वतः ।
ऋद्धिदा वृद्धिदा चैव मुक्तिदा सर्वकामदा ।।१७।।

हे महाभाग! अब मैं आपको देवी सुरभि का वेदाक्त ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र, तथा जो-जो पूजा का विधिक्रम है, उसे बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये । 'ॐ सुरभ्यै नमः' यह सुरभि देवी का षडक्षर मन्त्र है । एक लाख जप करने पर यह मन्त्र सिद्ध होकर भक्तों के लिये कल्पवृक्षतुल्य हो जाता है । देवी सुरभि का ध्यान यजुर्वेद में वर्णित है । उनकी पूजा सब प्रकार से ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति तथा समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाली है ।।15-17।।

ध्यानम्

लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् ।

गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥१८॥

पवित्ररूपां पूतां च भक्तानां सर्वकामदाम् ।

यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभिं भजे ॥१९॥

ध्यान इस प्रकार है- लक्ष्मीस्वरूपा, परमा, राधा की सहचरी, गौओं की अधिष्ठात्री देवी, गौओं की आदि स्वरूपिणी, गौओं की जननी, पवित्ररूपिणी, पावन, भक्तों के सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली तथा जिनसे सम्पूर्ण जगत् पावन बना हुआ है- उन परा भगवती सुरभि की मैं आराधना करता हूँ ।।18-19।।

घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवामपि ।

शालग्रामे जलाग्नौ वा सुरभिं पूजयेद् द्विजः ॥२०॥

दीपान्विता परदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः ।

यः पूजयेच्च सुरभिं स च पूज्यो भवेद् भुवि ॥२१॥

द्विज को चाहिये कि कलश, गाय के मस्तक, गायों के बाँधने के स्तम्भ, शालग्रामशिला, जल अथवा अग्नि में सुरभि की भावना करके उनकी पूजा करे । जो

मनुष्य दीपावली के दूसरे दिन पूर्वाह्नकाल में भक्ति से युक्त सुरभि की पूजा करता है, वह पृथ्वीलोक में पूज्य हो जाता है ।।20-21।।

एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया ।

क्षीरं जहार सुरभिश्चिन्तिताश्च सुरादयः ॥२२॥

ते गत्वा ब्रह्मलोके च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा ।

तदाज्ञया च सुरभिं तुष्टाव पाकशासनः ॥२३॥

एक समय की बात है, वाराह कल्प में भगवान् विष्णु की माया से देवी सुरभि ने तीनों लोकों में दूध देना बन्द कर दिया, जिससे समस्त देवता आदि चिन्तित हो गये । ब्रह्मलोक में जाकर उन्होंने ब्रह्माजी की स्तुति की, तब ब्रह्माजी की आज्ञा से इन्द्र सुरभि की स्तुति करने लगे ।।22/23।।

पुरन्दर उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः ।

गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके ॥२४॥

नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः ।

नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥२५॥

कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे ।

क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥२६॥

शुभायै च सुभद्रायै गोप्रदायै नमो नमः ।

यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः ॥२७॥

पुरन्दर बोले- देवी को नमस्कार है, महादेवी सुरभि को बारम्बार नमस्कार है । हे जगदम्बिके! गौओं की बीजस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है ।।24।। राधाप्रिया को नमस्कार है, देवी पद्मांशा को बार-बार नमस्कार है, कृष्णप्रिया को नमस्कार है और

गौओं की जननी को बार-बार नमस्कार है ।।25।। हे परादेवि! सभी प्राणियों के लिये कल्पवृक्षस्वरूपिणी, दुग्ध देने वाली धनप्रदान करनेवाली तथा बुद्धि देनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है ।।26।। शुभ्रा, सुभद्रा तथा गोप्रदा को बार-बार नमस्कार है । यश, कीर्ति तथा धर्मप्रदान करनेवाली भगवती सुरभि को बार-बार नमस्कार है ।।27।।

स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः ।
आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ।।२८।।
महेन्द्राय वरं दत्वा वाञ्छितं चापि दुर्लभम् ।
जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ।।२९।।
बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद ।
दुग्धं घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च ।।३०।।

इस स्तोत्र को सुनते ही जगज्जननी सनातनी देवी सुरभि सन्तुष्ट, तथा प्रसन्न होकर उस ब्रह्मलोक में प्रकट हो गयी ।।28।। देवराज इन्द्र को दुर्लभ वाञ्छित वरप्रदान करके वे गोलोक को चली गयी और देवता आदि अपने-अपने स्थान को चले गये ।।29।। हे नारद! उसके बाद विश्व सहसा दुग्ध से परिपूर्ण हो गया । दुग्ध होने से घृत का प्राचुर्य हो गया और उससे यज्ञ होने लगा, जिससे देवताओं को सन्तुष्टि होने लगी ।।30।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ।
स गोमान् दानवांश्चैव कीर्तिमान् पुत्रवांस्तथा ।।३१।।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरे ।।३२।।

सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम् ।

न पुनर्भवनं तत्र ब्रह्मपुत्रो भवेत्ततः ।।३३।।

जो भक्तिपूर्वक इस परमपवित्र स्तोत्र का पाठ करता है, वह गौओं से सम्पन्न, धनवान्, यशस्वी तथा पुत्रवान् हो जाता है । उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान कर लिया तथा वह सभी यज्ञों में दीक्षित हो गया । वह इस लोक में सुख भोगकर अन्त में श्रीकृष्ण के धाम में चला जाता है । वह वहाँ दीर्घकाल तक निवास करता है और भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में संलग्न रहता है । उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह ब्रह्मपुत्र ही हो जाता है ।।31-33।।

श्रीमद्देवीभागवत का सुरभ्युपाख्यान वर्णन सम्पन्न हुआ ।

नानाकर्मविपाकफलवर्णनम्

जलं पिबन्तीं तृषितां गां वारयति यः पुमान् ।।

नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम् ।

तत्र तिष्ठति सन्तप्तो यावन्मन्वन्तरावधि ।।९।३४/२१

ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः ।

सप्त जन्मान्त्यजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ।।९।३४/२२

गोहत्यां ब्रह्महत्यां च करोति ह्यतिदेशिकीम् ।

यो हि गच्छत्यगम्यां च यः स्त्रीहत्यां करोति च ।।९/६४/२३

भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते ।

कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राचतुर्दश ।।९/३४/२४

जो मनुष्य पानी पीती हुई गाय को वहाँ से हटा देता है, वह कीड़ों से भरे तथा तप्तजल से युक्त गोमुख नामक नरक में जाता है । वहाँ पर वह एक मन्वन्तर की अवधि तक सन्तप्त रहता है । तदनन्तर वह सात जन्मों तक अन्त्य जाति में उत्पन्न होकर गोहीन, महारोगी तथा दरिद्र मनुष्य के रूप में रहता है । उसके बाद व्यक्ति शुद्ध हो जाता है ।

जो भारतवर्ष में शास्त्र-वचन की आड़ लेकर गोहत्या, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या भिक्षुहत्या, तथा भ्रूण हत्या करता है और जो अगम्या स्त्री के साथ समागम करता है, वह महापापी व्यक्ति चौदह इन्द्रों के स्थितिपर्यन्त कुम्भीपाक नरक में वास करता है ।

श्रीमत्स्यमहापुराण

प्राचीनकाल में स्वायम्भुव मनु के वंश में अंग नामक एक प्रजापति हुए थे । मृत्यु की कन्या सुनीथा से उनका विवाह हुआ था । सुनीथा का पुत्र अधर्मी, चक्रवर्ती सम्राट् हुआ । धर्माचरण-सिद्ध्यर्थ ऋषियों की बात नहीं मानने पर ऋषियों ने उन्हें शाप दे दिया, वे मर गये । पुनः ब्राह्मणों ने वेन के शरीर का मन्थन किया तो शरीरस्थ माता के अंश से म्लेच्छ जातियाँ प्रकट हुई और शरीरस्थ पिता के अंशभूत दिव्य तेज:सम्पन्न महाराज पृथु उत्पन्न हुए ।

पृथुरेवाभवद्यत्नात्ततः पृथुरजायत ।

स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम् ।।१०/१०।।

विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत्पुनः ।

निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम् ।।१०/११।

महान् प्रयत्न से मथे जाने पर वह वेन की पृथु (भुजा) से उत्पन्न हुए थे, अतः पृथु नाम से प्रसिद्ध हुए । यद्यपि ब्राह्मणों ने उसे पिता के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया था, तथापि उसने परम दारुण तपस्या करके भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया और उनके वरदान के प्रभाव से चराचरलोक को जीतकर पुनः स्वयं भी भूमण्डल की अध्यक्षता प्राप्त की । इसके बाद –

दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः ।

ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ॥१०/१२॥

अमित पराक्रमी पृथु भूतल को स्वाध्याय, वषट्कार और धर्म से विहीन देखकर क्रुद्ध हो उठे और धनुष पर बाण चढ़ाकर उसे भस्म कर देने के लिये उद्यत हो गये । यह देखकर भूमि (डरकर) गौ का रूप धारण कर भाग चली ।

पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः ।

ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत् ॥१०/१३॥

इधर प्रचण्ड धनुर्धर पृथु भी उसके पीछे दौड़ चले । ऐसा देख वह गौरूपा भूमि हताश हो एक स्थान पर खड़ी हो गयी और बोली मैं क्या करूँ, आप बताएँ–

पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते ।

सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ॥१०/१४॥

तथैव साऽब्रवीद् भूमिर्दुदोह स नराधिपः ।

स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम् ॥१०/१५॥

तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजा जीवन्ति येन वै ।

तब पृथु ने उनसे कहा– हे सुव्रते! तुम शीघ्र ही इस चराचर जगत् को मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्रदान करो । यह सुनकर गोरूपा पृथिवी ने कहा– ऐसा ही होगा

। इस प्रकार पृथिवी की अनुमति जानकर उन नरेश्वर पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर अपनी हथेली में गौरूपा पृथिवी का दोहन किया । वह दुहा हुआ पदार्थ शुद्ध अन्न हुआ, जिससे प्रजा का जीवन-निर्वाह होता है ।

प्रायः सभी देवर्षि आदियों ने बछडे़ का रूप धारण कर गौ को दुहा । महाराज पृथु के गौरूपा पृथिवीदोहन के बाद दोहन की श्रृंखला चल पड़ी । पुनः -

ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धा वत्सः सोमस्तदाऽभवत् ॥१०/१६॥
दोग्धा बृहस्पतिरभूत्पात्रं वेदस्तपो रसः ।
देवैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धा मित्रस्तदाभवत् ॥१०/१७॥
इन्द्रो वत्सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम् ।
देवानां काञ्चनं पात्रं पितॄणां राजतं तथा ॥१०/१८॥
अन्तकश्चाभवद्दोग्धा यमो वत्सः स्वधा रसः ।
अलाबुपात्रं नागानां तक्षको वत्सकोऽभवत् ॥१०/१९॥
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत्पुनः ।
असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम् ॥१०/२०॥
पात्रे मायामभूद्वत्सः प्राह्लादिस्तु विरोचनः ।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीन्माया येन प्रवर्तिता ॥१०/२१॥
यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्धानमीप्सुभिः ।
कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपते ॥१०/२२॥
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धारा रुधिरमुल्बणम् ।
रौप्यनाभोऽभवद्दोग्धा सुमाली वत्स एव तु ॥१०/२३॥
गन्धर्वैश्च पुरा दुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः ।
वत्सं चैत्ररथं कृत्वा गन्धान् पद्मदले तथा ॥१०/२४॥

ऋषियों ने भी पृथिवी को दुहा । उस समय चन्द्रमा बछड़ा, दुहनेवाले महर्षि बृहस्पति, पात्र वेद और दुहा गया पदार्थ तप हुआ देवताओं ने भी पृथ्वी का दोहन किया । उस समय दुहनेवाले मित्र देवता, इन्द्र बछड़ा तथा क्षीर (दुहा गया रस) ऊर्जस्वी बल हुआ । उस दोहन में देवताओं का पात्र स्वर्णमय था । अन्तक ने भी पृथ्वी का दोहन किया । उसमें यमराज बछड़ा बने और स्वधा रस था । पितरों का पात्र रजतमय था । नागों के दोहन में नागराज धृतराष्ट्र दुहनेवाले, नागराज तक्षक बछड़ा, पात्र तुम्बी और क्षीर (दुहा गया पदार्थ) विष था । असुरों ने भी इसका दोहन किया था, उन्होंने लौहमय पात्र में इन्द्र को पीड़ित करनेवाली माया को दुहा । उस काल में प्रह्लादपुत्र विरोचन बछड़ा और माया का प्रवर्तक द्विमूर्धा दुहनेवाला था । महीपते! यक्षों को अन्तर्धानविद्या की अभिलाषा थी, अतः उन्होंने कुबेर को बछड़ा बनाकर कच्चे पात्र में पृथिवी का दोहन किया था । प्रेतों और राक्षसों ने पृथिवी से भयंकर रुधिर की धारा का दोहन किया था, उसमें रौप्यनाम नामक प्रेत दुहनेवाला और सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था । अप्सराओं के साथ गन्धर्वो ने भी पूर्वकाल में चैत्ररथ को बछड़ा बनाकर कमल के पत्ते में गौरूपा पृथिवी से सुगन्धों का दोहन किया था ।।16-24।।

दोग्धा वररुचिर्नाम नाट्यवेदस्य पारगः ।
गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च ।।१०/२५।।
औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः ।
वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रं शैलमयं पुनः ।।१०/२६।।
वृक्षैश्च वसुधा दुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम् ।
पालाशपात्रे दोग्धा तु शालः पुष्पलताकुलः ।।१०/२७।।

प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सः सर्ववृक्षधनाधिपः ।

एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धा यथेप्सितम् ।।१०/२८।।

उस कार्य में नाट्य-वेद का पारगामी विद्धान् वररुचि नामक गन्धर्व दुहनेवाला था । पर्वतों ने पृथिवी से अनेक प्रकार के रत्नों और दिव्य ओषधियों का दोहन किया । उसमें महाचल सुमेरु दुहनेवाला, हिमवान् बछड़ा और पात्र शैलमय था । वृक्षों ने पृथिवी से पलाशपत्र के पात्र में (टहनी आदि के) कटने के बाद पुनः उगनेवाला दूध दुहा । उस समय पुष्प और लताओं से लदा हुआ शालवृक्ष दुहनेवाला था और समृद्धिशाली एवं सर्ववृक्षमय पाकड़ का वृक्ष बछड़ा बना था । इसी प्रकार अन्यान्य वर्ग के प्राणियों ने भी उस समय स्वेच्छानुसार गौरूपा पृथिवी का दोहन किया था । इस प्रकार से -

आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति ।

न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगी न च पापकृत् ।।१०/२९।।

महाराज पृथु के राज्य में प्रजा दीर्घायु, धन-धान्य एवं सुख-समृद्धि से सम्पन्न थी । उस समय न कोई दरिद्र था, न रोगी और न कोई पाप-कर्म ही करता था ।

इस प्रकार अपनी रुचि के अनुसार यज्ञों और श्राद्धों में पदार्थ का अर्पण करना चाहिये ।

दुहितृत्वं गता यस्मात्पृथोर्धर्मवतो मही ।

तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः ।।१०/३०।।

पुनः पृथिवी धर्मप्राण पृथु की कन्या बन चुकी थी, अतः अतिशय अनुराग के कारण विद्वानों द्वारा पृथ्वी नाम से विख्यात हो गयी ।

श्राद्धकल्प- पितरों की अभिलाषा

अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं कश्चित् पुरुषसत्तमः ।

प्रसूयमानां यो धेनुं दद्याद् ब्राह्मणपुंगवे ॥२०४/१२॥

अपिस्यात् स कुलेऽस्माकं वृषभं यः स्वयुत्सृजेत् ।

सर्ववर्णविशेषेण शुक्लं नीलं वृषं तथा ॥१३॥

अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यः कुर्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।

सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥१४॥

क्या हमारे कुल में कोई ऐसा नरश्रेष्ठ उत्पन्न होगा, जो ब्राह्मणश्रेष्ठ को ब्याती हुई गाय का दान देगा, वृषभ का उत्सर्ग करेगा, जो वृष विशेषतः नील अथवा शुक्ल वर्ण का होगा और श्रद्धा से सुवर्ण, गो अथवा पृथिवी का दान करेगा ।

धेनुदानविधिः

मनु जी ने भगवान् मत्स्य से पूछा -

मनुरुवाच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्राह्मणपुंगवे ।

विधिना केन धर्मज्ञ दानं दद्याच्च किं फलम् ॥२०५/१२॥

हे धर्मज्ञ भगवन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मण को ब्याती हुई गौ का दान किस विधि से देना चाहिये और उस दान से क्या फल प्राप्त होता है?

मत्स्य उवाच

स्वर्णश्रृंगीं रौप्यखुरां मुक्तालांगूलभूषिताम् ।

कांस्योपदोहनां राजन् सवत्सां द्विजपुंगवे ॥२॥

प्रसूयमानां गां दत्वा महत्पुण्यफलं लभेत् ।

यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥३॥

तावद् वै पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ।

प्रसूयमानां यो दद्याद् धेनु द्रविणसंयुतम् ।।४।।

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ।

चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ।।५।।

यावन्ति धनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप ।

तावत्संख्यं युगगणं देवलोके महीयते ।।६।।

पितॄन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् ।

उद्धरिष्यत्यसंदेहं नरकाद् भूरिदक्षिणः ।।७।।

घृतक्षीरवहाः कुल्या दधिपायसकर्दमाः ।

यत्र तत्र गतिस्तस्य द्रुमाश्चेप्सितकामदाः।

गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ।।८।।

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यरूपाः ।

महानितम्बास्तनुवृत्तमध्या भजन्त्यजस्रं नलिनाभनेत्राः ।।९।।

मत्स्य भगवान् ने कहा - राजन्! जिसके सींग स्वर्णजड़ित हों, खुर चाँदी से मढ़े हों, जिसकी पूँछ मोतियों से सुशोभित हो तथा जिसके समीप कांसे की दोहनी रखी हो, ऐसी सवत्सा गौ का दान श्रेष्ठ ब्राह्मण को देना चाहिये । ब्याती हुई गाय का दान करने पर महान् पुण्यफल प्राप्त होता है । जब तक बछडा योनि के भीतर रहता है एवं जबतक गर्भ को नहीं छोड़ता है, तबतक उस गौ को वन-पर्वतों सहित पृथ्वी समझना चाहिये । तो व्यक्ति सद्रव्य ब्याती हुई गौ का दान देता है, उसने मानो सभी समुद्र, गुफा, पर्वत, और वनों के साथ चर्तुर्दिग्व्याप्त पृथिवी का दान कर दिया, इसमें सन्देह नहीं है । नरेन्द्र! उस बछड़े तथा गौ के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने युगों तक दाता देवलोक में पूजित होता है । विपुल दक्षिणा देनेवाला मनुष्य निश्चय ही

अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह का नरक से उद्धार कर देता है । वह जहाँ कहीं जाता है, वहाँ उसे दही और पायस रूपी कीचड़ से युक्त घृत एवं क्षीर की नदियाँ प्राप्त होती हैं तथा मनोवाञ्छित फलप्रदान करनेवाले वृक्ष प्राप्त होते रहते हैं । उसे गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं तथा चन्द्रमुखी, तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्णवाली, स्थूल नितम्ब और पतली कमरवाली, कमलनयनी स्त्रियाँ सदैव उसकी सेवा करती हैं ।

कामधेनुदानविधिः

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम् ।।१।।
लोकेशावाहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम् ।
तुलापुरुषवत् कुर्यात् कुन्डमण्डपवेदिकम् ।।२।।
स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्यात् गुरुरेकः समाहितः ।
काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सं च कारयेत् ।।३।।
उत्तमा पलसाहस्री तदर्धेन तु मध्यमा ।
कनीयसी तदर्धेन कामधेनुः प्रकीर्तिता ।।४।।
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमशक्तोऽपीह कारयेत् ।
वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्य गुडप्रस्थसमन्वितम् ।।५।।
न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलंकृताम् ।
कुम्भाटष्कसमेपेतां नानाफलसमन्विताम् ।।६।।
तथाष्टादश धान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत् ।

इक्षुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफलसमन्वितम् ।।७।।

मत्स्य भगवान् ने कहा– अब मैं सर्वपातकनाशक तथा सर्वकामप्रद कामधेनुदान की विधि बताया रहा हूँ । इसमें भी तुलापुरुष दान की तरह लोकपालों का आवाहन हवन और स्थापन–कार्य करना चाहिये तथा उसी प्रकार कुण्ड, मण्डप और वेदी की रचना करनी चाहिये । स्वल्प वित्तवाला व्यक्ति एककुण्डीय यज्ञाग्नि की विधि से ऋत्विज् रूप में समाहित चित्तवाले एकमात्र अपने गुरु का ही वरण करे । इसके लिये वह अत्यन्त शुद्ध सोने की कामधेनु और वत्स बनवाये । वह कामधेनु एकहजार पल की उत्तम, पाँच सौ पल की मध्यम और ढाई सौ पल की कनिष्ठ कही गयी है । असमर्थ व्यक्ति को भी अपनी शक्ति के अनुसार तीन पल से ऊपर की ही कामधेनु बनवानी चाहिये । उसके बाद वेदी पर काले मृगचर्म को फैलाकर उस पर एकप्रस्थ गुड़ रखे । उसी के ऊपर बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत कर उस धेनु को स्थापित करे । उस गौ के साथ आठ कुम्भ तथा विविध प्रकार के फल हों । फिर वेदी के चारों ओर अठारह प्रकार के अन्न, ईख के आठ टुकड़े, विविध प्रकार के पात्र, आसन तथा ताँबे की दोहनी को रखना चाहिये ।।1–7।।

कौशेयवस्त्रद्वयसंयुतां गां दीपातपत्राभरणाभिरामाम् ।
सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां सुवर्णश्रृंगीं परिरूप्यपादाम् ।।८।।
रसैश्च सर्वैः परितोऽभिजुष्टां हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः ।
अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्करादिभिर्वितानकं चोपरि पञ्चवर्णम् ।।९।।
स्वातस्ततो मंगलवेदघोषैः प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।
आवाहयेत्तां गुरुणोक्तमन्त्रैर्द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः ।।१०।।

उसके बाद दो रेशमी वस्त्रों से आच्छादित, दीप, वस्त्र, और आभूषणों से सुशोभित, चामरयुक्त, कुण्डलधारिणी, घण्टी से युक्त, सुवर्णजड़ित श्रृंगों और चाँदी से जड़ित पैरों वाली । गौ के सम्पूर्ण शरीर को सभी प्रकार के रस, हल्दी, जीरा, धनियाँ और शक्कर से लेपन करके उसके निकट अनेकों प्रकार के पुष्प और फल रखे । उसके ऊपर पँचरंगा चँदोवा ताने । तदनन्तर यजमान मांगलिक वेदध्वनि के साथ स्नान कर पुष्प और कुश हाथों में लेकर प्रदक्षिणा करके ब्राह्मण को दान दे, फिर गुरुद्वारा उच्चारित मन्त्रों से कामधेनु का आवाहन करे, प्रार्थना करे और आमन्त्रित करे –

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमंगभूता
विश्वेश्वरि त्रिपथगोदधिपर्वतानाम् ।
त्वद्दानशस्त्रशकलीकृतपापकौघः
प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव परां नमामि ॥११॥
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वा-
मासाद्य को हि भवदुःखमुपैति मर्त्यः ।
संसारदुःखशमनाय यतस्त्वकामं
त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति ॥१२॥
आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय
विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।
प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टं
कन्यागणैः परिवृतः पदमिन्दुमौलेः ॥१३॥

हे विश्वेश्वरि! तुम सभी देवताओं की आश्रयस्वरूपा तथा गंगा, समुद्र और पर्वतों की अंगभूता हो । मेरे पापसमूह तुम्हारे दानरूप शस्त्र से टुकड़े-टुकड़े हो गये

हैं, इस कारण मैं परम सन्तुष्ट हो गया हूँ, अतः तुम्हें नमस्कार करता हूँ । संसार में यथाभिलषित फलप्रदान करनेवाली तुम्हें प्राप्तकर भला कौन मनुष्य सांसारिक दुःखों में पड़ सकेगा । तुम सांसारिक दुःखों को शान्त करने के लिये पूर्णरूप से यत्नशील होओ । इसीलिये वेदवेत्तागण तुम्हें कामधेनु कहते हैं ।

इस प्रकार आमन्त्रित कर जो व्यक्ति उत्तम, कुल, शील, रूप और गुण से युक्त ब्राह्मण को इस सुवर्णनिर्मित कामधेनु को दान करता है वह कन्यासमूहों से घिरा हुआ इन्द्रदेव से सेवित स्वर्ग तथा शिव के लोक को प्राप्त करता है ।।13।।

।।अध्याय समाप्त।।

प्रजापति सर्ग में सुरभि का आख्यान

सुरभि से सृष्टि एवं गोवंश के ऊर्ध्वदन्त नहीं होने का कारण

या तु रूपवती पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी ।

सुरभिः सा हिता भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता ।।१७१।३५

ततस्तामगमद् ब्रह्मा मैथुनं लोकपूजितः ।

लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय सत्तमः ।।१७१।३६

इसी बीच ब्रह्मा की स्वेच्छानुसार रूपधारण करनेवाली एवं हितकारिणी सुन्दरी पत्नी सुरभि का रूप धारण कर ब्रह्मा के निकट उपस्थित हुई । तब लोकसृष्टि के कारणों के ज्ञाता लोकपूजित देवश्रेष्ठ ब्रह्मा ने गौओं के उत्पत्ति के निमित इसके साथ मानसिक समागम किया जिससे एकादश रुद्रों की उत्पत्ति हुई, क्रमशः उनके नाम हैं -

निर्ऋतिश्चैव शम्भुर्वै तृतीयश्चापराजितः ।

मृगव्याधः कपर्दी च दहनोऽथेश्वरश्च वै ।।१७१/३९

अहिर्बुध्न्यश्च भगवान् कपाली चापि पिंगलः ।

सेनानीश्च महातेजा रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः ।।१७१।४०

निर्ऋति, शम्भु, अपराजित, मृगव्याध, कपर्दी, दहन, ईश्वर, अहिर्बुध्न्य, कपाली, पिंगल और महातेजस्वी सेनानी ये ग्यारह रुद्र कहलाते हैं ।

तस्यामेव सुरभ्यां च गावो यज्ञेश्वराश्च वै ।

प्रकृष्टाश्च तथा मायाः सुरभ्याः पशवोऽक्षराः ।।१७१।४१

अजाश्चैव तु हंसाश्च तथैवामृतमुत्तमम् ।

ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरस्यास्ताः समुत्थिताः ।।१७१।४२

तदनन्तर उसी श्रेष्ठ सुरभि से यज्ञ की साधनभूता गौएँ, प्रकृष्ट माया, अविनाशी पशुगण, बकरियाँ, हंस, उत्तम अमृत और ओषधियां उत्पन्न हुईं ।

देवासुर-संग्राम के समय तारकासुर से युद्ध करते हुए भगवान् शिव ने-

एकं तु ऋग्वेदतुरंगमस्य पृष्ठे पदं न्यस्य वृषस्य चैकम् ।

तस्थौ भवः सोद्यतबाणचापः पुरस्य तत्संगममीक्षमाणः ।।१३८।४०

तदा भवपदन्यासाद्धयस्य वृषभस्य च ।

पेतुः स्तनाश्च दन्ताश्च पीडिताभ्यां त्रिशूलिना ।।१३८।४१

ततःप्रभृति चाश्वानां स्तना दन्ता गवां तथा ।

गूढाः समभवंस्तेन चादृश्यत्वमुपागताः ।।१३८।४२

गर्जना करते हुए अपना एक पैर ऋग्वेदरूप घोड़े की तथा दूसरा पैर नन्दीश्वर की पीठ पर रखकर त्रिपुरों के परस्पर सम्मिलन की प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये । उस समय शंकरजी के पैर रखने से उन त्रिशूलधारी के मार से पीड़ित हुए अश्व के स्तन और वृषभ के दाँत टूटकर गिर पड़े । तभी से घोडों के स्तन और गौ के

(ऊपरी जबड़े के दाँत) दाँत गुप्त हो गये । इसी कारण वे दिखायी नहीं पड़ते ।।42।।

माँ रोहिणी गौ की प्रार्थना

कपिले सर्वदेवानां पूजनीयाऽसि रोहिणी ।

तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।९३।३४

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक ।

अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।९३।६६

गवामंगेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।

यस्मात्तस्माच्छ्रियै मे स्यादिह लोके परत्र च ।।९३।७३

कपिले! तुम रोहिणीरूपा हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवों की पूज्या हो । अतः मुझे शान्ति प्रदान करो । हे जगत् को आनन्दित करने वाले वृषभ! तुम वृषरूप से धन और अष्टमूर्ति शिवजी के वाहन हो । अतः मुझे शान्ति प्रदान करो । हे गौ! तुम्हारे अंगों में चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक और परलोक में भी लक्ष्मी प्रदान करो ।

गोसहस्रदान की विधि- म.पु.- 278

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम् ।।१।।

मत्स्य भगवान् ने कहा– अब मैं सभी पापों को दूर करनेवाले अत्युत्तम गोसहस्रदान नामक महादान की विधि बता रहा हूँ ।

पुण्यां तिथिं समासाद्य युगमन्वन्तरादिकाम् ।
पयोव्रतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा ।।२।।
लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत् ।
पुण्याहवाचनं कुर्याद्धोमः कार्यस्तथैव च ।।३।।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
वृक्षं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत् ।।४।।
गोसहस्रं बहिः कुर्याद् वस्त्रमाल्यविभूषणम् ।
सुवर्णश्रृंगाभरणं रौप्यपादसमन्वितम् ।।५।।
अन्त:प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैश्च पूजयेत् ।
सुवर्णघण्टिकायुक्तं कांस्यदोहनकान्वितम् ।।६।।
सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलंकृतम् ।
कौशेयवस्त्रसंवीतं माल्यगन्धसमन्वितम् ।।७।।
हेमरत्नमयैः श्रृंगैश्चामरैरुपशोभितम् ।
पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसंयुतम् ।।८।।
गवां दशकमध्ये स्यात् काञ्चनो नन्दिकेश्वरः ।
कौशेयवस्त्रसंवीतो नानाऽऽभरणभूषितः ।।९।।
लवणद्रोणशिखरे माल्येक्षुफलसंयुतः ।
कुर्यात् पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः ।।१०।।
शक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु ।
गोशतेऽपि दशांशेन सर्वमेतत् समाचरेत् ।।११।।

किसी युगादि या मन्वादि पुण्यतिथि के आने पर त्रिरात्र अथवा एकरात्र पयोव्रत करे । फिर तुलापुरुष दान के समान लोकपालों का आवाहन, पुण्याहवाचन तथा हवन करना चाहिये । पुनः उसी प्रकार ऋत्विज्, मण्डप, पूजन–सामग्री, आभूषण, आच्छादन आदि को भी एकत्र करे । पुनः पूर्वनिर्दिष्ट लक्षणों से संयुक्त नन्दिकेश्वर को वेदी के मध्यभाग में स्थापित करे, वेदी के बाहर चारों ओर एकहजार गायों को, जो सुवर्णश्रृंग और रौप्यखुरवाली हो तथा दो वस्त्र एवं पुष्प मालादि से विभूषित हों, स्थापित करे । पुनः वेदी के भीतर ऐसी दस गौओं को प्रविष्ट करे, जिनके गले में सोने की घण्टी पड़ी हो, जो कांस्यदोहनी से युक्त, स्वर्णमय तिलक से सुशोभित, स्वर्णपत्रों से अलंकृत, रेशमी वस्त्रों से आच्छादित, माला और चन्दन से युक्त, स्वर्ण एवं रत्नमय शिखरों वाले चामरों से सुशोभित तथा पादुका, जूता, पात्र, और आसनी से संयुक्त हो । प्रति दस गौओं के बीच रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित, विविध आभूषणों से विभूषित तथा पुष्पमाला, ईख, और फलों से संयुक्त सुवर्णमय सांड को नन्दी के रूप में एक द्रोण लवण के ऊपर स्थापित करना चाहिये । इन सब वस्तुओं का निर्माण सौ पल सुवर्ण से ऊपर तीन हजार पल तक यथाशक्ति करना चाहिये । सौ गौओं के दान में भी इन सबका दशांश रूप से उपयोग करना चाहिये ।

पुण्यकालं समासाद्य गीतमंगलनिःस्वनैः ।

सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुंगवैः ॥१२॥

इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकसुमाञ्जलिः ।

(नमोऽस्तु विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च ।

लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः ॥१३॥

गवामंगेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः ।

ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः ॥१४॥

गावो मे अग्रतः सन्तु गावः पृष्ठत एव च ।

गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥१५॥

यस्मात्त्वं वृषरूपेण धर्म एव सनातनः ।

अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन ॥१६॥)

इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद् गुरवे नन्दिकेश्वरम् ॥१७॥

सर्वोपकरणोपेतं गोयुक्तं च विचक्षणः ।

ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशैकाद्विनिवेदयत् ॥१८॥

गवां च शतमेकैकं तदर्धं वाथ विंशतिम् ।

दश पञ्चाथवा दद्यादन्येभ्यस्तदनुज्ञया ॥१९॥

नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत् ।

बह्व्यश्चैकस्य दातव्या धीमताऽऽरोग्यवृद्धये ॥२०॥

पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः ।

श्रावयेच्छृणुयाद्वाऽपि महादानानुकीर्तनम् ॥२१॥

तदनन्तर पुण्यकाल आने पर गीत एवं मंगलशब्दों के साथ वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सर्वौषधि-मिश्रित-जल से स्नान कराया हुआ यजमान अञ्जलि में पुष्प लेकर इस मन्त्र का उच्चारण करे -

विश्वमूर्तिस्वरूपा विश्वमाता गौओं को नमस्कार है । लोकों को धारण करनेवाली रोहिणीरूपा गौओं को बारम्बार प्रणाम है । गौओं के अंगों में इक्कीसों भुवन तथा ब्रह्मादि देवताओं का निवास है, वे रोहिणीस्वरूपा माताएँ मेरी रक्षा करें । (आदि में बार-बार रोहिणीरूपा गौओं को कामधेनु एवं सुरभिरूपा कहा गया है ।

रोहिणी गौ प्रायः लालवर्ण की होती है ।) गौएँ मेरे अग्रभाग में रहें, मेरे पृष्ठभाग में तथा मेरे सिर पर नित्य वर्तमान रहें एवं मैं गौओं के मध्य में निवास करूँ । सनातन! चूंकि तुम्हीं वृषरूप से सनातन धर्म और भगवान् शिव के वाहन हो, अतः मेरी रक्षा करो । इसप्रकार आमन्त्रित कर बुद्धिमान् यजमान सभी सामग्रियों के साथ एक गौ और नन्दिकेश्वर गुरु को दान करके दे, तथा उन दसों गायों में से एक-एक तथा हजार गौओं में से एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस-बीस गायें प्रत्येक ऋत्विज् को समर्पित कर दे । तत्पश्चात् उनकी आज्ञा से अब ब्राह्मणों को दस-दस या पाँच-पाँच गौएँ देनी चाहिये । एक ही गाय बहुतों को नही देनी चाहिये । क्योंकि वह दोषप्रदायिनी हो जाती है । बुद्धिमान् यजमान को आरोग्यवृद्धि के लिये एक-एक को अनेक गौएँ देनी चाहिये । इस प्रकार एक हजार गोदान करनेवाला यजमान एक दिवसीय पुनः पयोव्रत करे और इस महादान का अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने ।।21।।

तद्दिने ब्रह्मचारी स्याद् विदीच्छेद् विपुलां श्रियम् ।

अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥२२॥

पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्रप्रदं सुतम् ।

अपि स्यात् स्वकुलेऽस्माकं पुत्रो दौहित्र एव वा ।

गोसहस्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्धरिष्यति ॥२७॥

इति पठति य एतद् गोसहस्रप्रदानं

सुरभुवनमुपेयात् संस्मरेद्वा च पश्येत् ।

अनुभवति मुदं वा मुच्यमानो निकामं

प्रहतकलुषदेहः सोऽपि यातीन्द्रलोकम् ।।२९।।

यदि उसे विपुल समृद्धि की इच्छा हो तो उस दिन ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना चाहिये । इस विधि से जो मनुष्य एक हजार गौओं का दान करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणों द्वारा सेवित होता है । पितर भी हजार गोदान करनेवाले पुत्र का अभिनन्दन करते हैं । वे अपने हृदय में सर्वदा यह आकांक्षा करते रहते हैं कि क्या हमारे कुल में कोई पुत्र अथवा दौहित्र (कन्या का पुत्र) ऐसा होगा जो हजार गौओं का दान कर हम लोगों को नरक से उद्धार करेगा ।

इस प्रकार इस सहस्रगोदान को जो पढ़ता, स्मरण करता अथवा देखता है, वह देवलोक को प्राप्त होता है अथवा जो दान देते समय अत्यन्त हर्ष का अनुभव करता है उसका शरीर पाप से मुक्त हो जाता है और वह इन्द्रलोक को चला जाता है ।

ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।

पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ।।९३/८०।।

ग्रह, गाय, राजा और ब्राह्मण- ये विशेषरूप से पूजित होने पर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जाने पर जलाकर भस्म कर देते हैं ।

वृषोत्सर्ग में वृष-लक्षण, विधान और महत्त्व

मनुरुवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि वृषभस्य च लक्षणम् ।

वृषोत्सर्गविधिं चैव तथा पुण्यफलं महत् ।। म.पु.२०७/१।।

मनुजी ने कहा- हे भगवन्! अब मैं उत्सर्ग किये जाने वाले वृषभ के लक्षणों, वृषोत्सर्ग की विधि और वृषोत्सर्ग से प्राप्त होने वाले महान् पुण्यफल को सुनना चाहता हूँ ।

मत्स्य उवाच

धेनुमादौ परीक्षेत सुशीलां च गुणन्विताम् ।

अव्यंगमपरिक्लिष्टां जीववत्सामरोगिणीम् ।।२।।

स्निग्धवर्णा स्निग्धखुरां स्निग्धश्रृंगीं तथैव च ।

मनोहराकृतिं सौम्यां सुप्रमाणामनुद्धताम् ।।३।।

आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्तां दक्षिणतस्तथा ।

वामावर्तैर्वामतश्च विस्तीर्णजघनां तथा ।।४।।

मृदु संहतत्ताम्रोष्ठीं रक्तग्रीवासुशोभितम् ।

अश्यामदीर्घा स्फुटिता रक्तजिह्वा तथा च या ।।५।।

विस्रावामलनेत्रा च शफैरविरलैर्दृढै: ।

वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुद्सन्निभै: ।।६।।

रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीचिकै: ।

सप्त चतुर्दश दन्ता तथा वा श्यामतालुका ।।७।।

षडुन्नता सुपाश्र्वोरु: पृथुपञ्चसमायता ।

अष्टायत शिरोग्रीवा या राजन् सा सुलक्षणा ।।८।।

मत्स्य भगवान् बोले- राजन्! सर्वप्रथम धेनु की परीक्षा करनी चाहिये । जो सुशीला, गुणवती, अविकृत अंगों वाली, मोटी-ताजी, जिसके बछड़े जीवित हों, रोगरहित मनोहर रंग और चिकने खुरवाली, चिकने सींगों वाली, सुदृश्य, सीधी-सादी, न अधिक ऊँची, न अधिक नाटी अर्थात् मध्यम कद वाली, अचञ्चल भँवरी वाली, विशेषत: दाहिनी ओर की भँवरीया दाहिनी ओर और बाँयी ओर की बाँयी ओर हो, विस्तृत जंघों वाली, मुलायम एवं सटे हुए लाल ओठों वाली, लाल गले से सुशोभित, काली एवं लम्बी न हो ऐसी स्फुटित लाल जिह्वा वाली, अश्रुरहित निर्मल नेत्रों वाली, सुदृढ़ एवं सटे हुए खुरों वाली, वैदूर्य, मधु अथवा जल के बुद्बुद के समान रंगों वाली, लाल चिकने नेत्र और लाल कनीनिका से युक्त, इक्कीस दाँत और श्याम वर्ण

के तालु से सम्पन्न हों जिसके छह स्थान उच्च, पाँच स्थान समान, सिर, ग्रीवा और आठ स्थान विस्तृत तथा बगल और ऊरु देश सुन्दर हों, वह गौ शुभ लक्षणों से युक्त मानी गयी है ।

मनुरुवाच

षडुन्नता के भगवन् के च पञ्च समायताः ।
आयताश्च तथैवाष्टौ धेनूनां के शुभावहाः ।।९।।

मनु ने पूछा- भगवन्! आपने जो यह बतलाया कि गौओं के छः स्थान उन्नत, पाँच स्थान सम तथा आठ स्थान आयत होने चाहिये; वे शुभदायक स्थान कौन-कौन हैं ।

मत्स्य उवाच

उरः पृष्ठं शिरः कुक्षी श्रोणी च वसुधाधिप !
षडून्नतानि धेनूनां पूजयन्ति विचक्षणाः ।।१०।।
कर्णौ नेत्रे ललाटं च पञ्च भास्करनन्दन ।
समायतानि शस्यन्ते पुच्छं सास्ना च सक्थिनी ।।११।।
चत्वारश्च स्तना राजन् ज्ञेया ह्यष्टौ मनीषिभिः ।
शिरो ग्रीवायताश्चैते भूमिपाला दश स्मृताः ।।१२।।
तस्याः सुतं परीक्षेत वृषभं लक्षणान्वितम् ।
उन्नतस्कन्धककुद् मृजुलांगूलकम्बलम् ।।१३।।
महाकटितटस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनम् ।
प्रवालगर्भश्रृंगाग्रं सुदीर्घपृथुबालधिम् ।।१४।।
नवाष्टादशसंख्यैर्वा तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः ।

मल्लिकाक्षश्च मोक्तव्यो गृहेऽपि धन-धान्यदः ।।१५।।

मत्स्य भगवान् ने कहा- पृथ्वीपते! छाती, पीठ, सिर, दोनों कोख तथा कमर- इन छः उन्नत स्थानों वाली धेनुओं को विज्ञ लोग श्रेष्ठ मानते हैं । सूर्यपुत्र! दोनों कान, दोनों नेत्र तथा ललाट इन पाँच स्थानों का सम आयत होना प्रशंसित है । पूँछ, गलकम्बल, दोनों सक्थियाँ (घुटनों से नीचे का भाग) और चारों स्तन- ये आठ तथा सिर और गर्दन- ये दो मिलाकर दस स्थान आयत होने पर श्रेष्ठ माने गये हैं । भूपते! ऐसी सर्वलक्षण सम्पन्न धेनु के शुभ लक्षण से युक्त बछड़े की भी परीक्षा करनी चाहिये । जिसका कन्धा और ककुद् ऊँचा हो, पूँछ और गले का कम्बल (चमड़ा) कोमल हो, कटितट और स्कन्ध विशाल हो, वैदूर्यमणि के समान नेत्र हों, सींगों का अग्रभाग प्रवाल(मूँगे) के समान हो, पूँछ लम्बी तथा मोटी हो, तीखे अग्रभाग वाले नौ या अठारह सुन्दर दाँत हों तथा मल्लिका पुष्पों की तरह श्वेत नेत्र हों ऐसे वृष का उत्सर्ग करना उत्तम होता है । उसके गृह में रहने से भी धन-धान्य की वृद्धि होती है ।।10/15।।

वर्णतस्ताम्रकपिलो ब्राह्मण्स्य प्रशस्यते ।

श्वेतो रक्तश्च कृष्णश्च गौरः पाटल एव च ।।१६।।

मद्रिकस्ताम्रपृष्ठश्च शबलः पञ्चवालकैः ।

पृथुकर्णो महास्कन्धः श्लक्ष्णरोमा च यो भवेत् ।

रक्ताक्षः कपिलो यश्च रक्तश्रृंगतलो भवेत् ।।१७।।

श्वेतोदरः कृष्णपार्श्वो ब्राह्मणस्य तु शस्यते ।

स्निग्धो रक्तेन वर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।।१८।।

काञ्चनाभेन वैश्यस्य कृष्णेनाप्यन्त्यजन्मनः ।

यस्य प्रागायते श्रृंगे भ्रूमुखाभिमुखे सदा ।।१९।।

सर्वेषामेव वर्णानां सदा सर्वार्थसाधकः ।

मार्जारपादः कपिलो धन्यः कपिलपिंगलः ।।२०।।

श्वेतो मार्जारपादस्तु धन्यो मणिनिभेक्षणः ।

करटः पिंगलश्चैव श्वेतपादस्तथैव च ।।२१।।

सर्वपादसितो यश्च द्विपादश्वेत एव च ।

कपिञ्जलनिभो धन्यस्तथा तित्तिरिसन्निभः ।।२२।।

ब्राह्मण के लिये ताम्र के समान लाल अथवा कपिल वर्ण का वृषभ उत्तम है, जो सफेद, लाल, काला, भूरा, पाटल, पूरा ऊँचा, लाल पीठ वाला, पाँच प्रकार के रोएँ से चितकबड़ा, स्थूल कानों वाला, विशाल कन्धे से युक्त, चिकने रोमों वाला, लाल आँखों, वाला, कपिल, सींग का निचला भाग लाल रंग वाला, सफेद पेट और कृष्ण पार्श्व भाग वाला हो, ऐसा वृषभ ब्राह्मण के लिये श्रेष्ठ कहा गया है । लाल रंग के चिकने रोम वाला वृषभ क्षत्रिय जाति के लिये, सुवर्ण सदृश वर्णमाला वृषभ वैश्य के लिये और काले रंग का वृष शूद्र के लिये उत्तम माना गया है । जिस वृषभ के सींग आगे की ओर विस्तृत तथा भौंहे मुख की ओर झुकी हों, वह सभी वर्णो के लिये सदैव सर्वार्थसिद्ध करने वाला होता है । बिलाव के समान पैरों वाला कपिल या पीले रंग का वृषभ धन्य होता है । श्वेत रंग का, बिल्ली के समान पैर वाला और मणि के समान आँखों वाला वृषभ धन्य है । कौवे के समान काले और पीले रंग वाला तथा श्वेत पैरों वाला वृषभ धन्य है । जिसके सभी पैर श्वेत वर्ण के हों और जिसका रंग कपिञ्जल या तीतर के समान हो वह भी धन्य है ।

आकर्णमूलं श्वेतं तु मुखं यस्य प्रकाशते ।

नन्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विशेषतः ॥२३॥

श्वेतं तु जठरं यस्य भवेत् पृष्ठं च गोपतेः ।

वृषभः स समुद्राक्षः सततं कुलवर्धनः ॥२४॥

मल्लिकापुष्पचित्रश्च धन्यो भवति पुंगवः ।

कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्रो भवति भाग्यदः ॥२५॥

अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः ।

एते धन्यास्तथा धन्यान् कीर्तयिष्यामि ते नृप ॥२६॥

जिस वृषभ का मुख कान तक श्वेत दिखायी पड़ता हो तथा विशेषतया वह लाल वर्ण का हो उसे नन्दीमुख जानना चाहिये । जिस वृषभ का पैर तथा पीठ श्वेत वर्ण हो वह समुद्राक्ष नामक वृषभ कहा जाता है । वह सर्वदा कुल की वृद्धि करने वाला होता है । जो वृष मल्लिका के फूल के समान चितकबरे रंगवाला होता है वह धन्य होता है । जो कमल मण्डल के समान चितकबरा होता है वह सौभाग्यवर्द्धक होता है तथा अतसी के फूल के समान नीले रंगवाला बैल धन्यतर कहा गया है । राजन्! ये उत्तम लक्षणों वाले वृष हैं । अब मैं आपसे अशुभ लक्षण वाले वृषभों का वर्णन कर रहा हूँ ।।23-26।।

कृष्णताल्वोष्ठवदना रूक्षश्रृंगशफाश्च ये ।

अव्यक्तवर्णा ह्रस्वाश्च व्याघ्रसिंहनिभाश्च ये ॥२७॥

ध्वांक्षगृध्रसवर्णाश्च तथा मूषकसन्निभाः ।

कुण्ठाः काणास्तथा खञ्जाः केकराक्षास्तथैव च ॥२८॥

विषमश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा ।

नैते वृषाः प्रमोक्तव्या न च धार्यास्तथा गृहे ॥२९॥

जो काले तालु, ओंठ और मुखवाले, रूखे सींग एवं खुरों वाले, अव्यक्त रंग वाले, नाटे, बाघ तथा सिंह के समान भयानक, कौअे और गृध्र के समान रंग वाले या मूषक के समान अल्पकाय, मन्द स्वभाव वाले, काणे, लँगड़े, नीची-ऊँची आँखों वाले, विषम (तीन या एक) पैरों में श्वेत रंग वाले तथा चञ्चल नेत्रों वाले हों, ऐसे वृषभों का न तो उत्सर्ग करना चाहिये और न तो उसे घर में ही रखना ठीक है ।।27-29।।

मोक्तव्यानां च धार्याणां भूयो वक्ष्यामि लक्षणम् ।
स्वस्तिकाकारश्रृंगाश्च तथा मेघौघनिःस्वनाः ।।३०।।
महाप्रमाणश्च तथा मत्तमातंगगामिनः ।
महोरस्का महोच्छ्राया महाबलपराक्रमाः ।
शिरः कर्णौ ललाटं च वालधिश्चरणास्तथा ।।३१।।
नेत्रे पार्श्वे च कृष्णानि शस्यन्ते चन्द्रभाषिणाम् ।
श्वेतान्येतानि शस्यन्ते कृष्णस्य तु विशेषतः ।।३२।।
भूमौ कर्षति लांगूलं प्रलम्बस्थूलवालधिः ।
पुरस्तादुद्यतो नीलो वृषभश्च प्रशस्यते ।।३३।।

मैं पुनः उत्सर्ग करने तथा पालने योग्य (श्रेष्ठ) वृषभों का लक्षण बतला रहा हूँ । जिनके सींग स्वस्तिक के आकार के हों और स्वर बादल की गर्जना के सदृश हो, जो ऊँचे कद वाले, हाथी के समान चलने वाले, विशाल छाती वाले, बहुत ऊँचे, महान् बल-पराक्रम से युक्त हों तथा चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के जिन वृषभों के सिर, दोनों कान, ललाट, पूँछ, चारों पैर, दोनों नेत्र, दोनों बगलें काले रंग के हों एवं काले रंग वाले वृषभों के ये स्थान श्वेत हों तो वे उत्तम माने गये हैं । जिसकी लम्बी

और मोटी पूँछ पृथ्वी पर रगड़ खाती हो और जिसका अग्रभाग उठा हुआ हो वह नील वृषभ प्रशंसनीय माना गया है ।।31-33।।

शक्तिध्वजपताकाढ्या येषां राजी विराजते ।

अनड्वाहस्तु ते धन्याश्चित्रसिद्धिजयावहाः ।।३४।।

प्रदक्षिणं निवर्तन्ते स्वयं ये विनिवर्तिताः ।

समुन्नतशिरोग्रीवा धन्यास्ते यूथवर्धनाः।।३५।।

जिनके शरीरमें शक्ति, ध्वज और पताकाओंकी रेखाएँ बनी हों, वे वृषभ धन्य हैं और विचित्र सिद्धि एवं विजय प्रदान करनेवाले हैं । जो घुमाये जानेपर या स्वयं घूमनेपर दाहिनी ओर घूमते हों तथा जिनके सिर और कन्धे समुन्नत हों, वे धन्य तथा अपने समूहके वृद्धिकारक है ।

रक्तश्रृंगाग्रनयनः श्वेतवर्णो भवेद्यदि ।

शफैः प्रवालसदृशैर्नास्ति धन्यतरस्ततः ।।३६।।

एते धार्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः ।

धारिताश्च तथा मुक्ता धनधान्यप्रवर्धनाः ।।३७।।

चरणानि मुखं प्रच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः ।

लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत् ।।३८।।

वृष एवं स मोक्तव्यो न सन्धार्यो गृहे भवेत् ।

तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी ।।३९।।

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।

गौरीं चाप्युद्वहेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।।४०।।

जिसके सींगों के अग्रभाग तथा नेत्र लाल हों, वह यदि श्वेतवर्ण का हो और उसके खुर प्रवाल के समान लाल हों, तो उससे श्रेष्ठ कोई वृषभ नहीं होता । ऐसे

वृषभों का प्रयत्नपूर्वक पालन अथवा उत्सर्ग करना चाहिये क्योंकि ये रखने अथवा उत्सर्ग करने- दोनों दशाओं में धन-धान्य हो बढ़ाते हैं । जिस वृषभ के चारों चरण, मुख और पूँछ श्वेत हों तथा शेष शरीर का रंग लाह रस के समान हो, उसे नील वृषभ कहते हैं । ऐसा वृषभ उत्सर्ग कर देना चाहिये उसे घर में पालना ठीक नहीं है । क्योंकि ऐसे वृषभ के लिये लोक में एक ऐसी पुरानी गाथा प्रचलित है, कि बहुतेरे पुत्रों की कामना करनी चाहिये, क्योंकि उनमें से कोई भी तो गया की यात्रा करेगा या गौरी (आठवर्ष की कन्या) कन्या का दान करेगा या नील वृषभ का उत्सर्ग करेगा ।।36-40।।

एवं वृषं लक्षणसम्प्रयुक्तं गृहोद्भवं क्रीतमथापि राजन् ।
मुकत्वा न शोचेन्मरणं महात्मा मोक्षं गतश्चाहमतोऽभिधास्ये ।।४१।।

राजन्! ऐसे लक्षणयुक्त वृषभ का- चाहे वह घर में उत्पन्न हुआ हो या खरीदा गया, उत्सर्ग कर महात्मा पुरुष कभी मृत्यु के भय से शोकग्रस्त नहीं होगा । उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । इसलिये मैं आपसे वृषोत्सर्ग विधान कह रहा हूँ ।।41।।

राजाकी मृत्यु तथा देशके विनाशसूचक लक्षण और उनकी शान्तिः

गर्ग उवाच-

प्रासादतोरणाट्टालद्वारप्राकारवेश्मनाम् ।
निर्निमित्तं तु पतनं दृढ़ानां राजमृत्यवे ।।२३८।१।।
रजसा वाऽथ घूमेन दिशो यत्र समाकुलाः ।
आदित्यश्चन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये ।।२।।
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः ।

ऋतवश्च विपर्यस्ता अपूज्य: पूज्यते जनै: ॥३॥

नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम् ।

केतूदयोपरागो च छिद्रं वा शशिसूर्ययो: ॥४॥

ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् ।

स्त्रियश्च कलहायन्ते बाला निघ्नन्ति बालकान् ॥५॥

क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र जायते ।

हूयमानस्तु यत्रादग्निर्दीप्यते न च शान्तिषु ॥६॥

पिपीलिकाश्च क्रव्यादा यान्ति चोत्तरतस्तथा ।

पूर्णकुम्भा: स्रवन्ते च हविर्वा विप्रलुप्यते ॥७॥

मंगल्याश्च गिरो यत्र न श्रूयन्ते समन्तत: ।

क्षवतुर्बाधते वाऽथ प्रहसन्ति नदन्ति च ॥८॥

न च देवेषु वर्तन्ते यथावद् ब्राह्मणेषु च ।

मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते विस्वराणि च ॥९॥

गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता नरा: ।

ब्राह्मणान् सुहृदो मान्यान् जनो यत्रावमन्यते ॥१०॥

शान्तिमंगलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते ।

राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति ॥११॥

राजन्! सुदृढ़ राजभवन, तोरण, अट्टालिका, प्रवेशद्वार, परकोटा और घर का अकारण गिरना राजा की मृत्यु का कारण होता है । जहाँ दिशाएँ धूलि अथवा धूएँ से व्याप्त दिखायी पड़ती हैं तथा सूर्य, चन्द्रमा और ताराओं का रंग बदल जाता है तो यह भी भय-वृद्धि का सूचक है । जहाँ राक्षस दिखायी पड़ते हो, ब्राह्मण विधर्मी हो, ऋतुओं का विपर्यय हो, लोग अपूज्य की पूजा करते हों और नक्षत्रगण आकाश से

नीचे गिरने लगे तो यह महान् भय का लक्षण है । जहाँ केतु का उदय, ग्रहण, चन्द्र-सूर्य के बिम्ब में छिद्र तथा ग्रह एवं नक्षत्रों में विकार दिखायी दे, वहाँ भी भय की सम्भावना करनी चाहिये । जहाँ स्त्रियाँ आपस में झगड़ने लगें, बालक बच्चों को मारने लगें, उचित कार्यो का विनाश होने लगे, शान्ति कर्मो में आहुति देने पर भी अग्नि उद्दीप्त न हो, पिपीलिका (चींटी) और मांसभक्षी पक्षी उत्तर दिशा होकर जायँ, भरे हुए घटों में रखी हुई वस्तुओं का चूना, हवि का नष्ट हो जाना, चारों ओर से मांगलिक वचनों का न सुना जाना, लोगों में कास-रोग की पीड़ा, जनता में अकारण हँसी और गाने की अभिरुचि, देवता और ब्राह्मणों के प्रति उचित बर्ताव का अभाव, बाजों का मन्द एवं विकृत स्वर में बजना, लोगों में गुरु एवं मित्रों के प्रति द्वेष तथा शत्रु की पूजा में अभिरुचि, ब्राह्मण, मित्र और माननीय लोगों का अपमान तथा शान्तिपाठ, मांगलिक कार्य और हवनादि में नास्तिकता का प्रभाव दिखायी पड़े, वहाँ का राजा मर जाता है, अथवा वह देश विनष्ट हो जाता है ।।1-11।।

राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबोध मे ।।

ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ।।१२।।

ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।

न च स्मरति कृत्येषु याचितश्च प्रकुप्यति ।।१३।।

रमते निन्दया तेषां प्रशंसां नाभिनन्दति ।

अपूर्वं तु करं लोभात् तथा पातयते जने ।।१४।।

एतेष्वभ्यर्चयेच्छक्रं सपत्नीकं द्विजोतमम् ।

भोज्यानि चैव कार्याणि सुराणां बलयस्तथा ।

सन्तो विप्राश्च पूज्याः स्युस्तेभ्यो दानं च दीयताम् ।।१५।।

गावश्च देया द्विजपुंगवेभ्यो भुवस्तथा काञ्चनमम्बराणि ।

होमश्च कार्योऽमरपूजनं च एवं कृते पापमुपैति शान्तिम् ।।१६।।

द्विजोतम! अब मैं राजा का विनाश उपस्थित होने पर उत्पन्न होने वाले निमित्तों को बतला रहा हूँ, सुनिये! वह राजा सर्वप्रथम ब्राह्मणों से द्वेष करने लगता है, ब्राह्मणों से विरोध करता है, ब्राह्मणों की सम्पत्ति का अपहरण करता है, ब्राह्मणों को मारने का उपक्रम करता है, उसे सत्कार्यों के सम्पादन का स्मरण नहीं होता, वह माँगने पर क्रुद्ध होता है, ब्राह्मणों की निन्दा में विशेष रुचि रखता है और प्रशंसा का अभिनन्दन नहीं करता, लोभवश लोगों पर नया-नया कर लगाता है- ऐसे अवसर पर शची सहित इन्द्र की पूजा करनी चाहिये तथा ब्राह्मणों को भोजन तथा अन्य देवताओं के उद्देश्य से बलिप्रदान करना चाहिये ।

सत्पुरुषों एवं ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें दान देना चाहिये । श्रेष्ठ ब्राह्मणों को गौएँ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रादि का दान, देवताओं की पूजा तथा हवन करना चाहिये । ऐसा करने से पाप शान्त हो जाता है ।।12-16।।

पञ्चलांगल(हल) एवं गोचरभूमिदान विधि

मत्स्य उवाच

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

पञ्चलांगलकं नाम महापातकनाशनम् ।।१।।

पुण्यां तिथिमथासाद्य युगादिग्रहणादिकाम् ।

भूमिदानं नरो दद्यात् पञ्चलांगलकान्वितम् ।।२।।

खर्वटं खेटकं वाऽपि ग्रामं वा सस्यशालिनम् ।

निवर्त्तनशतं वाऽपि तदर्धं वाऽपि शक्तितः ।।३।।

सारदारुमयान् कृत्वा हलान् पञ्च विचक्षणः ।

सर्वोपकरणैर्युक्तानन्यान् पञ्च च काञ्चनान् ।

कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि ।।४।।

वृषाँल्लक्षणसंयुक्तान् दश चैव धुरन्धरान् ।

सुवर्णश्रृंगाभरणान् मुक्तालांगलभूषणान् ।।५।।

रूप्यपादाग्रतिलकान् रक्तकौशेयभूषणान् ।

स्रग्दामचन्दनयुतान् शालायामधिवासयेत् ।।६।।

पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसं निर्वपेच्चरुम् ।

एकस्मिन्नेव कुण्डे तु गुरुस्तेभ्यो निवेदयेत् ।।७।।

पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलास्तथा ।

तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ।।८।।

ततो मंगलशब्देन शुक्लमाल्याम्बरो बुधः ।

आहूय द्विजदाम्पत्यं हेमसूत्रांगुलीयकैः ।।९।।

कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चाभिपूजयेत् ।

शय्यां सोपस्करां दद्याद्धेनुमेकां पयस्विनीम् ।।१०।।

मत्स्य भगवान् ने कहा- अब मैं महापातकनाशी अतिश्रेष्ठ पञ्चलांगल नामक महादान का वर्णन कर रहा हूँ । युगादि तिथियों तथा सूर्यग्रहण आदि के अवसर पर मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार पाँच हलों से युक्त, फसल से सुशोभित ग्राम, खेट, खर्वट, एक सौ निवर्तन या उससे आधा पचास निवर्तन भूमि का दान करना चाहिये । विचक्षण पुरुष साखू की लकड़ी के पाँच तथा सुवर्ण के बने हुए अन्य पाँच हलों को सभी सामग्रियों से युक्त करे । वे हल पाँच पल सोने से ऊपर एक हजार

पल तक के बनवाने चाहिये । साथ ही दस वृषभों को- जो उत्तम लक्षणों से युक्त तथा भार वहन करने में समर्थ हों, जिनकी सींगे सुवर्ण से, पूँछ मोती से और खुर चाँदी से विभूषित हों, जिनके सिर पर तिलक लगा हो, शाला में अधिवासित करायें । फिर पर्जन्य, आदित्य और रुद्र के लिये खीर की चरु तैयार करे और गुरु उसे एक ही कुण्ड में उनके लिये निवेदित करे । उसी प्रकार पलाश की समिधा, घृत तथा काले तिल का हवन करे । बुद्धिमान यजमान तुलापुरुष दान की भाँति लोकपालों का आवाहन करे । तदनन्तर शुक्लवस्त्र एवं पुष्पमाला धारण कर बुद्धिमान् पुरुष मांगलिक शब्दों के साथ द्विजदम्पति को बुलाकर सोने की जंजीर, अंगूठी, रेशमी वस्त्र, सुवर्ण के कंकण एवं मणियों द्वारा उनकी पूजा करे तथा सामग्रियों सहित शय्या और एक दूध देने वाली गाय का भी दान करे ।।1-10।।

तथाऽष्टादशधान्यानि समन्तादधिवासयेत् ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।।११।।
इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्वं निवेदयेत् ।
'यस्माद्देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च ।।१२।।
धुरन्धरांगे तिष्ठन्ति तस्माद् भक्तिः शिवेऽस्तु मे ।
यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।१३।।
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे एवं दृढा भवेत् ।'
दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् ।।१४।।
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ।
मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः ।
विधिनानेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः ।।१५।।

तदर्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम् ।

भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ।।१६।।

हलों के चारों ओर अठारह प्रकार के अन्नों को रखना चाहिये । फिर अञ्जलि में पुष्प लेकर प्रदक्षिणा करने के पश्चात् सबका दान कर देना चाहिये । उस समय इस मन्त्र का उच्चारण करे– 'चूँकि सभी देवगण तथा चराचर जीव भारवाही वृषभों के अंगों में निवास करते हैं, अतः मेरी शिव में भक्ति हो । चूँकि अन्य सभी दान भूमिदान की सोलहवीं कला की भी क्षमता नहीं कर सकते, अतः धर्म में मेरी सुदृढ़ भक्ति हो ।' सात (मतान्तर से दस) हाथों के दण्ड के माप से तीस दण्ड माप का एक निवर्तन होता है और उसके तिहाई अंश से न्यून को गोचर्म (दशहस्तेनदण्डेन त्रिंशद्दण्डान्निवर्तनम् । दश तान्येव गोचर्म दत्वा स्वर्गे महीयते ।।) कहते हैं– ऐसा मान प्रजापति ने बतलाया है । जो बुद्धिमान् पुरुष दस मान के अनुसार एक सौ निवर्तन भूमि को इस विधि से दान करता है, उसका पापपुञ्ज शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । जो उसका आधा भाग अथवा गोचर्ममात्र अथवा एक भवन बनाने योग्य भूमि का दान करता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है ।

यावन्ति लांगलकमार्गमुखानिभूमे -

र्भासां पतेर्दुहितुरंगजरोमकाणि ।

तावन्ति शंकरपुरे ससमा हितिष्ठेद् -

भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ।।१७।।

जो मनुष्य इस मर्त्यलोक में भूमिदान करता है, वह उस भूमि में हल के मुख के जितने मार्ग बनते हैं तथा सूर्यपुत्री के अंग में जितने रोएँ हैं, उतने वर्षों तक शिव की पुरी में निवास करता है । तथा –

गन्धर्वकिन्नरसुरासुरसिद्धसंघैराधूतचामरमुपेत्य महद्विमानम् ।

सम्पूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः शम्भोः पदं व्रजति चामरनायकः सन् ।।१८

इन्दुत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति गोभूमिलांगलघुरन्धरसम्प्रदानात् ।

तस्मादघौघपटलक्षयकारि भूमेर्दानं विधेयमिति भूतिभवोद्भवाय ।।१९।।

गन्धर्व, किन्नर, सुर, असुर और सिद्धों के समूहों द्वारा चँवर डुलाये जाते हुए महान् विमान पर सवार हो पिता, पितामह और बन्धुगणों के साथ देवनायक होकर शम्भुलोक में जाता है और वहाँ पूजित होता है । मनुष्य इस गौ, भूमि, हल और वृषभों का दान करने से नष्ट हुए इन्द्रतत्व को भी प्राप्त कर लेता है, अतः ऐश्वर्य एवं समृद्धि के लिये पापपुञ्ज के परदे को नष्ट करने वाले भूमिदान को अवश्य करना चाहिये । इति

श्रीशिवमहापुराण

कोटिरुद्रसंहिता अ.**५-६**

नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्मये गोमाहात्म्यम्

सूत उवाच

ततश्च नन्दिको देवो हत्याकोटिनिवारकः ।

सर्वकामार्थदश्चैव मोक्षदो हि प्रकीर्तितः ।।५/११।।

नन्दीकेशं च यश्चैव पूजयेत्परया मुदा ।

नित्यं तस्याखिला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः ।।५/१२।।

तत्र तीरे च यः स्नाति रेवायां मुनिसत्तमाः !

तस्य कामाश्च सिद्ध्यन्ति सर्वं पापं विनश्यति ।।१३।।

सूतजी ने कहा- नन्दिकेश्वर महादेव करोड़ों हत्याओं का नाश करने वाले हैं, वे सभी कामनाओं की सिद्धि करने वाले हैं तथा मोक्ष भी प्रदान करने वाले हैं । जो पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दीकेश शिव का पूजन करता है, नित्य उसकी सम्पूर्ण सिद्धि होती है । इसमें कोई संशय नहीं है । हे श्रेष्ठ मुनिगण! उनके समीप रेवा नदी में जो स्नान करता है, उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ।

ऋषय ऊचुः

एवं तस्य च माहात्म्यं कथं तत्र महामते ।

नन्दिकेशस्य कृपया कथ्यतां च त्वयाऽधुना ।।१४।।

ऋषि बोले- हे महामते सूत! इस प्रकार अब आप कृपा करके नन्दिकेश शिव के माहात्म्य को कहिये कि किस प्रकार उनकी वहाँ स्थिति हुई ?

सूत उवाच

सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च कथयामि यथाश्रुतम् ।

शौनकाद्याश्च मुनयः सर्वे हि श्रृणुतादरात् ।।१५।।

पुरा युधिष्ठिरेणैवं पृष्टश्च ऋषिसतमः ।

यथोवाच तथा वच्मि भवत्स्नेहानुसारतः ।।१६।।

रेवायाः पश्चिमे तीरे कर्णिकानाम वै पुरी ।

विराजते सुशोभाढ्या चतुर्वर्णसमाकुला ।।१७।।

तत्र द्विजवरः कश्चिदुत्तस्य कुलसम्भवः ।

काश्यां गतश्च पुत्राभ्यामर्पयित्वा सपत्निकाम् ।।१८।।

तत्रैव स मृतो विप्रः पुत्राभ्यां च श्रुतन्तदा ।

तदीय चैव तत्कृत्यं चक्राते पुत्रकावुभौ ।।१९।।

पत्नी च पालयामास पुत्रौ पुत्रहितैषिणी ।

पुत्रौ च वर्जयित्वा च विभक्तं वै धनं तया ।।२०।।

सूत जी ने कहा- हे शौनकादि मुनियो! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । अब मैंने जैसा सुना है आपसे कहता हूँ, आप सभी आदरपूर्वक सुनिये । पहले युधिष्ठिर ने मुनिश्रेष्ठ व्यास जी से ऐसा ही प्रश्न किया था, इस पर व्यास जी ने जो कहा था, वहीं मैं आपके स्नेह के कारण कहता हूँ । रेवानदी से पश्चिम की ओर शोभायमान तथा चारों वर्णो से सेवित कर्णिका नाम वाली नगरी वर्तमान है । वहाँ किसी उत्त के वंश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ अपनी स्त्री के पास में दोनों पुत्रों को छोड़कर काशी को गमन किया, और काशी में ही वह मर गया । पुनः जब दोनों पुत्रों ने यह वृतान्त सुना तब उसके श्राद्ध आदि सब कृत्य कर दिये । अपने पुत्रों का हित करने वाली उसकी स्त्री ने दोनों बालकों का लालन-पालन किया और कुछ धन को छोड़कर शेष उसने पुत्रों को बाँट दिया ।

स्वीयं च रक्षितं किञ्चिद्धनं मरणहेतवे ।

ततश्च द्विजपत्नी हि कियत्कालं मृता च सा ।।२१।।

कदाचित् क्रियमाणा सा विविधं पुण्यमाचरत् ।

न मृता दैवयोगेन द्विजपत्नी च सा द्विजाः! ।।२२।

यदा प्राणान्न मुमुचे माता दैवात्तयोश्च सा ।

तद्दृष्ट्वा जननी कष्टं पुत्रकावूचतुस्तदा ।।२३।।

ब्राह्मणी ने कुछ धन अपने मरण के निमित बचाकर सुरक्षित रखा । कुछ दिनों के बाद वह ब्राह्मणी भी मरणासन्न हो गयी । सूतजी कहते हैं- हे द्विजो! अनेक प्रकार

के पुण्य करने पर भी दैवयोग से उस ब्राह्मणी के प्राण नहीं निकल सके । जब उनकी माता ने प्रारब्धवश प्राण न छोड़े, तब माता के कष्ट को देख के दोनों पुत्र बोले –

पुत्रावूचतुः

किं न्यूनं विद्यते मातः कष्टं यद्विद्यते महत् ।
व्रियतां तद् व्रतं प्रीत्या तदा वां करवावहे ॥२४॥

पुत्रोंने कहा– हे मातः! क्या, आपका कुछ और कर्त्तव्य शेष रहा है, जो तुमको इस समय बड़ा कष्ट हो रहा है । उस व्रतको हमें बताओ, हम प्रीतिपूर्वक उसको करेंगे ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वोक्तं तया तत्र न्यूनं तु विद्यते बहु ।
तदेव क्रियते चैद्वै सुखेन मरणं भवेत् ॥२५॥
ज्येष्ठपुत्रश्च यस्तस्यास्तेनोक्तं कथ्यतां त्वया ।
करिष्यामि तदेतद्धि तथा च कथितन्तदा ॥२६॥

सूतजी बोले– इस प्रकार से पुत्रों का वचन सुनकर ब्राह्मणी ने कहा कि– न्यून (शेष) तो बहुत रह गया है यदि उसका सम्पादन किया जाता है तो सुख से मरण होगा । उसका जो बड़ा पुत्र था, उसने माता से कहा– हे मातः! जो तुम बताओगी, वह मैं अवश्य करूँगा ।

द्विजपत्न्युवाच

श्रृणु पुत्र वचः प्रीत्या पुराऽऽसीन्मे मनःस्पृहा ।
काश्यां गन्तुं तथा नासीदिदानीं म्रियते पुनः ॥२७॥
ममास्थीनि त्वया पुत्र क्षेपणीयान्यतन्द्रितम् ।
गंगाजले शुभं तेऽद्य भविष्यति न संशयः ॥२८॥

ब्राह्मणी ने कहा- हे पुत्र! प्रीति से मेरा वचन सुनो, पहले मेरे मन में उस प्रकार से काशी जाने की इच्छा पहीं थी, परन्तु अब मैं प्राण त्याग कर रही हूँ ।

हे पुत्र! तुम निरालसी हो मेरी अस्थियों को गंगाजल में प्रक्षेपण कर देना, तब आज तेरा कल्याण होगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।

सूत उवाच

इत्युक्ते च तया मात्रा स ज्येष्ठतनयोऽब्रवीत् ।

मातरं मातृभक्तिस्तु सुव्रतां मरणोन्मुखीम् ।।२९।।

सूतजी बोले- इस प्रकार माता के कहने पर वह मातृभक्त ज्येष्ठपुत्र ने अपनी म्रियमाणा शुभव्रत वाली माता से कहा ।

पुत्र उवाच

मातस्त्वया सुखेनैव प्राणास्त्याज्या न संशयः ।

तव कार्यं पुरा कृत्वा पश्चात्कार्यं मदीयकम् ।।३०।।

इति हस्ते जलं दत्वा यावत्पुत्रो गृहं गतः ।

तावत्सा च मृता तत्र हरस्मरणतत्परा ।।३१।।

तस्याश्चैव तु यत्कृत्यं तत्सर्वं संविधाय सः ।

मासिकं कर्म कृत्वा तु गमनाय प्रचक्रमे ।।३२।।

द्वयोः श्रेष्ठतमो यो वै सुवादो नामविश्रुतः ।

तदस्थीनि समादाय निस्सृतस्तीर्थकाम्यया ।।३३।।

संगृह्य सेवकं कञ्चित्तेनैव सहितस्तदा ।

आश्वास्य भार्या पुत्रांश्च मातुः प्रियचिकीर्षया ।।३४।।

श्राद्धदानादिकं भोज्यं कृत्वा विधिमनुत्तमम् ।

मंगलस्मरणं कृत्वा निर्जगाम गृहाद् द्विजः ।।३५।।

तद्दिने योजनं गत्वा विंशतिग्रामके शुभे ।

उवासास्तंगते भानौ गृहे विप्रस्य कस्यचित् ॥३६॥

चक्रे सन्ध्यादि सत्कर्म स द्विजो विधिपूर्वकम् ।

स्तवादि कृतवांस्तत्र शम्भोरद्भुतकर्मणः ॥३७॥

सेवकेन तदा युक्तो ब्राह्मणः संस्थितस्तदा ।

यामिनी च गता तत्र मुहूर्तद्वयसम्मिता ॥३८॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्रैकमाश्चर्यमभूत्तदा ।

श्रृणुतादरतात्तच्च मुनयो वो वदाम्यहम् ॥३९॥

पुत्रों ने कहा- हे मातः! निस्सन्देह तुम सुखपूर्वक प्राणों को छोड़ो । मैं पहले तुम्हारा काम करके ही अपना काम करूँगा । ऐसा कहकर हाथ में जल देकर जब वह घर गया, तभी उसकी माता शिव का स्मरण करती हुई मर गयी । उसका जो कुछ कृत्य था, सब करके तथा मासिकादि कर्म भी सम्पन्न करके वह काशी जाने के लिए उद्यत हुआ । दोनों पुत्रों में श्रेष्ठ जो सुवाद नाम से प्रसिद्ध था, वह उसकी अस्थि लेकर तीर्थ की कामना से सेवक को साथ में ले अपनी स्त्री तथा पुत्रों को धैर्य देकर माता की इच्छा के अनुसार उस समय श्राद्ध, दान, ब्राह्मणभोजनादि सम्पन्न कराके भगवान् का स्मरण कर घर से निकला । उस दिन बीस योजन चलकर सूर्यास्त हो जाने पर शुभग्राम में किसी ब्राह्मण के घर निवास किया । पुनः उसने विधिपूर्वक सन्ध्यादि नित्यकर्म कर भगवान् शिव का स्मरण किया । वहाँ पर सेवक सहित ब्राह्मण की दो पहर रात बीत गयी । उसी समय वहाँ एक आश्चर्य हुआ, हे मुनिगण! आदरपूर्वक उसे सुनिये, मैं आपलोगों के लिये वह सब कहूँगा ।

सूत उवाच

गौश्चैकाऽप्यभवत्तत्र ह्यंगणे बन्धिता शुभा ।
तदैव ब्राह्मणो रात्रावाजगाम बहिर्गतः ।।१।।
स उवाच प्रियां स्वीयां दृष्ट्वा गामंगणे स्थिताम् ।
अदुग्धां खेदनिर्विण्णो दोग्धुकामो मुनीश्वराः! ।।२।।
गौः प्रिये नैव दुग्धा ते सेत्युक्ता वत्समानयत् ।
दोहनार्थं समाहूय स्त्रियं शीघ्रतरं तदा ।।३।।
वत्सं कीले स्वयं बद्धुं यत्नं चैवाकरोत्तदा ।
ब्राह्मणः स गृहस्वामी मुनयो! दुग्धलालसः ।।४।।
वत्सोऽपि कर्षमाणश्च पादे वै पादपीडनम् ।
चकार ब्राह्मणश्चैव कष्टं प्राप्तश्च सुव्रताः! ।।५।।
तेन पादप्रहारेण स द्विजः क्रोधमूर्च्छितः ।
वत्सं च ताडयामास कूर्पैर्दृढतरं तदा ।।६।।
वत्सोऽपि पीडितस्तेन श्रान्तश्चैवाभवत्तदा ।
दुग्धा गौर्मोचितो वत्सो न क्रोधेन द्विजन्मना ।।७।।
गौर्दोग्धुं च महत्प्रीत्या रोदनं चाकरोत्तदा ।
दृष्ट्वा च रोदनं तस्या वत्सो वाक्यमथाब्रवीत् ।।८।।

सूतजी ने कहा- उस आँगन में एक सुन्दर गाय बँधी थी, उसी समय वह गृहस्वामी ब्राह्मण रात में बाहर गया और गाय को आँगन में खड़ी देख अपनी स्त्री से बोला । हे मुनियो! उस समय वह गाय के न दुहे जाने से दुःखी हो उसे दुहना चाहता था । उसने कहा, हे प्रिये! तेरी गाय नहीं दुही गयी, ऐसा कहने पर वह स्त्री बछड़े को लायी तब उस ब्राह्मण ने गाय दुहने के लिये शीघ्र ही अपनी पत्नी को बुलाया । हे मुनिवरो! वह गृहस्वामी ब्राह्मण दूध की लालसा से उस बछड़े को खूँटे में बाँधने का

यत्न करने लगा । हे शुभव्रतवाले! उस कूदते हुए बछड़े ने लात मार के उसके पैर को पीड़ित किया, तब वह ब्राह्मण बहुत दुःखी हुआ । उसके चरण के प्रहार से वह क्रोध से व्याकुल हो रस्सी से बड़े वेग से उस बछड़े को मारने लगा । उस ब्राह्मण से पीड़ित हुआ वह बछड़ा भी कुछ काल में शान्त हो गया । गाय दुह ली, परन्तु क्रोध से उसने बछड़े को न छोड़ा । उस समय वह गाय वत्स को दूध पिलाने हेतु प्रीति के कारण बड़ा रुदन करने लगी । उनका हुंकारना सुनकर बछड़ा यह वचन कहने लगा-

वत्स उवाच

कथं च रुद्यते मातः किन्ते दुःखमुपस्थितम् ।
तन्निवेदय मे प्रीत्या तच्छ्रुत्वा गौरवोचत ।।९।।

गौरुवाच

श्रूयतां पुत्र मे दुःखं वक्तुं शक्नोम्यहं न हि ।
दुष्टेन ताडितस्त्वं च तेन दुःखं ममाप्यभूत् ।।१०।।

बछड़ा बोला- हे मातः! तू क्यों रो रही है, तुझे क्या दुःख उपस्थित हुआ है? सब वृत्तान्त प्रीतिपूर्वक मुझसे कहो । तब गाय ने कहा- हे पुत्र! सुनो, मैं अपने दुःख को कहने में सक्षम नहीं हूँ । उस दुष्ट ने तुम्हें पीटा है इससे मैं भी बहुत दुःखी हूँ ।

सूत उवाच

स्वमातुर्वचनं श्रुत्वा स वत्सः प्रत्यबोधयत् ।
प्रत्युवाच स्वजननीं प्रारब्धपरिनिष्ठितः ।।११।।
किं कर्त्तव्यं क्व गन्तव्यं कर्मबद्धा वयं यतः ।
कृतं चैव यथा पूर्वं भुज्यते च तथाऽधुना ।।१२।।
हसता क्रियते कर्म रुदता परिभुज्यते ।
दुःखदाता न कोऽप्यस्ति सुखदाता न कश्चन ।।१३।।

सुखदु:खे परो दत्त इत्येषा कुमतिर्मता ।

अहं चापि करोम्यत्र मिथ्याज्ञानं तदोच्यते ।।१४।।

स्वकर्मणा भवेद्दु:खं सुखं स्वेनैव कर्मणा ।

तस्माच्च पूज्यते कर्म सर्वं कर्मणि संस्थितम् ।।१५।।

त्वं चैवाहं च जननी इमे जीवादयश्च ये ।

ते सर्वे कर्मणा बद्धा न शोच्या: कर्हिचित्त्वया ।।१६।।

सूतजी ने कहा- अपनी माता का वचन सुनकर बछड़े ने उसे समझाया और प्रारब्ध के ऊपर सन्तोष करके अपनी माता से बोला । क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कारण कि- हम कर्मो से बँधे हैं ।जैसा पहले कर चुके हैं वैसा भोग रहे हैं । हँसते हुए कर्म किया जाता है और रोते हुए उसका भोग भोगा जाता है । कोई किसी को दु:ख या सुख देने वाला नहीं है । सुख और दुख अपने कर्म के अनुकूल ही मिलते हैं । कोई दूसरा देता है, मिथ्याज्ञान के कारण ही ऐसी कुबुद्धि होती है । स्वकर्म से ही सुख या दु:ख होता है, इस कारण कर्म ही पूजा जाता है । अत: सब कुछ कर्म में ही स्थित है । तू मेरी माता, मैं तेरा पुत्र, ये जो जीवादि हैं, वे सब कर्म से बँधे हैं । इससे तुझे शोक नहीं करना चाहिये ।

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा स्वपुत्रस्य वचनं ज्ञानगर्भितम् ।

पुत्रशोकान्विता दीना सा च गौरब्रवीदिदम् ।।१७।।

सूतजी बोले- वह गाय इस प्रकार अपने पुत्र का ज्ञानयुक्त वचन सुन पुत्र की पीड़ा से व्याकुल दीन हुई यह वचन बोली ।

गौरुवाच

वत्स सर्वं विजानामि कर्माधीना: प्रजा इति ।

तथापि मायया ग्रस्ता दु:खं प्राप्नोम्यहं पुन: ।।१८।।

रोदनं च कृतं भूरि दु:खशान्तिर्भवेन्नहि ।

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रसूं वत्सोऽब्रवीदिदम् ।।१९।।

वत्स उवाच

यद्येवं च विजानासि पुनश्च रुदनं कुत: ।

कृत्वा च साध्यते किञ्चित्तस्माद्दु:खं त्यजाधुना ।।२०।।

सूत उवाच

एवं पुत्रवच: श्रुत्वा तन्माता दु:खसंयुता ।

नि:श्वस्यातितदा धेनुर्वत्सं वचनमब्रवीत् ।।२१।।

गौरुवाच

मम दु:खं तदा गच्छेद्यथा दु:खं तथा विधम् ।

भवेद्धि ब्राह्मणस्यापि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ।।२२।।

प्रातश्चैव मया पुत्र! श्रृंगाभ्यां हि हनिष्यते ।

हतस्य जीवितं सद्यो यास्यत्यस्य न संशय: ।।२३।।

गौ बोली- हे वत्स! मैं सब जानती हूँ कि सब प्रजा कर्म के अधीन हैं, तब भी माया में फँसी हुई मैं दु:ख को प्राप्त हो रही हूँ । अत्यन्त रुदन करने पर भी मेरे दु:ख की शान्ति नहीं हुई । ऐसा सुनकर वत्स ने कहा- यदि तू ऐसा जानती है, तो फिर क्यों रोती है । कर्म का भोग किये बिना दूसरा साधन नहीं है, अत: दु:ख का त्याग कर दो । पुत्र की बात सुनकर गाय अतिदु:खी हो गहरी साँस ले बछड़े से बोली- कि मेरा दु:ख तो तभी जायेगा जब वैसा ही दु:ख उस ब्राह्मण को होगा, यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ । हे पुत्र! प्रात:काल में

उसको अपने सींगों से मारकर विदीर्ण कर दूँगी, जिससे वह तत्काल ही प्राणहीन हो जायेगा, इसमें कोई संशय नहीं है ।

वत्स उवाच

प्रथमं यत्कृतं कर्म तत्फलं भुज्यतेऽधुना ।
अस्याश्च ब्रह्महत्याया मातः किं फलमाप्स्यसे ॥२४॥
समाभ्यां पुण्यपापाभ्यां भवेज्जन्म च भारते ।
तयोः क्षये च भोगेन मातर्मुक्तिरवाप्यते ॥२५॥
कदापि कर्मणो नाशः कदा भोगः प्रजायते ।
तस्माच्च पुनरेवं त्वं कर्म मा कर्तुमुद्यता ॥२६॥
अहं कुतस्ते पुत्रोऽद्य त्वं माता कुत्र एव च ।
वृथाभिमानः पुत्रत्वे मातृत्वे च विचार्यताम् ॥२७॥
क्व माता क्व पिता विद्धि क्व स्वामी क्व कलत्रकम् ।
न कोऽपि कस्य चास्तीह सर्वेऽपि स्वकृतं भुजः ॥२८॥
एवं ज्ञात्वा त्वया मातर्दुःखं त्याज्यं सुयत्नतः ।
सुभगाचरणं कार्यं परलोकसुखेप्सया ॥२९॥

बछड़ा बोला- हे माँ! पहले जो कुछ कर्म किया है, उसको तो भोग रहे हैं । पुनः इस ब्रह्महत्या का फल क्या पाओगी ?

हे मातः! पुण्य तथा पापों के समान होने पर इस संसार में जन्म होता है और पाप-पुण्य दोनों का भोग के द्वारा क्षय हो जाने पर मुक्ति प्राप्त होती है । कभी कर्मों का नाश तथा कभी भोग होता है । इसलिये तू ऐसा कर्म मत करो ।

मैं तेरा पुत्र कहाँ और तू मेरी माता कहाँ ? मातापन तथा पुत्रत्व में वृथा अभिमान है, कोई किसी की माता या पुत्र नहीं है । कौन माता, कौन पिता, कौन

स्वामी और कौन स्त्री ? कोई किसी का नहीं है । ये सब अपने-अपने किये कर्मों को भोगते हैं । हे माता, ऐसा जानकर तुझको यत्नपूर्वक दुःख का त्याग कर देना चाहिये और परलोक के सुख की इच्छा से सदाचरण करना चाहिये ।

गौरुवाच

एवं जानाम्यहं पुत्र माया मां न जहात्यसौ ।

त्वद्दुःखेन सुदुःखं मे तस्मै दास्ये तदेव कि ।।३०।।

पुनश्च ब्रह्महत्याया नाशो यत्र भवेदिह ।

तत्स्थलं च मया दृष्टं हत्या मे हि गमिष्यति ।।३१।।

गाय ने कहा- हे पुत्र! मैं यह जानती हूँ, परन्तु मुझे माया नहीं छोड़ेगी, तेरे दुःख देने के बदले उसे घोर दुःख दूँगी । तत्पश्चात् जहाँ ब्रह्महत्या का नाश होता है, वहाँ जाऊँगी, वह स्थान मैंने देखा है । इससे मेरी ब्रह्महत्या नष्ट हो जायेगी ।

सूत उवाच

इत्येतद्ववचनं श्रुत्वा स्वमातुर्गोर्द्विजोत्तमाः! ।

मौनत्वं स्वीकृतं तत्र वत्सेनोक्तं न किञ्चन ।।३२।।

तयोस्तदद्भुतं वृत्तं श्रुत्वा पान्थो द्विजस्तदा ।

हृदा विचारयामास विस्मितो हि मुनीश्वराः! ।।३३।।

इदमत्यद्भुतं वृत्तं दृष्ट्वा प्रातर्मया खलु ।

गन्तव्यं पुनरेवातो गन्तव्यं तत्स्थलं पुनः ।।३४।।

सूतजी ने कहा- हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उस समय ऐसा अपनी माता का वचन सुन उस बछड़े ने मौन धारण किया और पुनः कुछ नहीं बोला । हे मुनीवरो! उन दोनों माता पुत्रों का वचन सुनकर वह ब्राह्मण विस्मित हो अपने हृदय में सोचने लगा, कि मैं

प्रातःकाल इस अद्भूत वृतान्त को देखकर जाऊँगा तथा ब्रह्महत्याविनाशक स्थान को भी अवश्य देखूँगा ।

सूत उवाच

विचार्येति हृदा विप्रः स द्विजाः! सेवकेन च ।

सुष्वाप तत्र जननीभक्तः परमविस्मितः ।।३५।।

प्रातःकाले तदा जाते गृहस्वामी समुत्थितः ।

बोधयामास तं पान्थं वचनं चेदमब्रवीत् ।।३६।।

सूतजी बोले- हे द्विजो! वह माता का भक्त ब्राह्मण ऐसा अपने हृदय में विचार, सेवकसहित अतिविस्मित हो गया । प्रातःकाल होने पर वह गृह का स्वामी उठा और उस पथिक को जगाने लगा, ओर उससे बोला ।

द्विज उवाच

स्वपिषि त्वं किमर्थं हि प्रातःकालो भवत्यलम् ।

स्वयात्रां कुरु तं देशं गमनेच्छा च यत्र ह ।।३७।।

तेनोक्तं श्रूयताम् ब्रह्न् शरीरं सेवकस्य मे ।

वर्तते कि व्यथा स्थित्वा मुक्तं गम्यते ततः ।।३८।।

ब्राह्मण बोला- हे पथिक! तुम क्यों सो रहे हो? पूर्ण प्रातःकाल हो गया अपनी यात्रा करो, जहाँ जाना चाहते हो, वहाँ जाओ । तब पथिक ने कहा- हे ब्रह्मन्! मेरे तथा मेरे सेवक के शरीर में कुछ पीड़ा है, इससे कुछ काल यहाँ ठहरकर थोड़ी देर में चला जाऊँगा ।

सूत उवाच

इत्येवं च मिषं कृत्वा सुष्वाप पुरुषस्तदा ।

तद् वृत्तमखिलं ज्ञातुमद्भुतं विस्मयावहम् ।।३९।।

दोहनस्य तदा काले ब्राह्मणः स्वसुतं प्रति ।

उवाच गन्तुकामश्च कार्यार्थं कुत्रचिच्च सः ।।४०।।

सूतजी बोले- इस प्रकार बहाना करके उस विस्मयकारक अद्‌भुत चरित्र को जानने की इच्छा से उस समय वह पुरुष सो रहा । तब गाय दुहने के समय में गृहस्वामी ब्राह्मण ने कहीं कार्य के निमित्त जाने की इच्छा से अपने पुत्र से कहा ।

पितोवाच

मया तु गम्यते पुत्र कार्यार्थं कुत्रचित्पुनः ।

धेनुर्दोह्या त्वया वत्स सावधानादियं निजा ।।४१।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ब्राह्मणवरस्स जगाम च कुत्रचित् ।

पुत्रः समुत्थितस्तत्र वत्सं च मुक्तवांस्तदा ।।४२।।

माता च तस्य दोहार्थमाजगाम स्वयं तदा ।

द्विजपुत्रस्तदा वत्सं खिन्नं कीलेव ताडितम् ।।४३।।

बन्धनार्थं हि गोः पार्श्वमनयद्दुग्धलालसः ।

पुनर्गौश्च तदा क्रुद्धा श्रृंगेनाताडयच्च तम् ।।४४।।

पिता ने कहा- हे पुत्र! मैं तो कार्यवश अन्यत्र जाता हूँ, हे वत्स! तू यह अपनी गाय सावधानी से दुह लेना । सूतजी बोले- ऐसा कहकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कहीं चला गया और उस समय उसके पुत्र ने उठकर गाय दुहने के लिये बछड़ा खोला । उसकी माता भी स्वयं गाय दुहने हेतु आयी तब उस समय उसके पुत्र ने खिन्न हुए बछड़े का कील से ताड़न किया । दूध दुहने की इच्छा से गाय के समीप बाँधने को लाया तब क्रोधित हुई गाय ने उस बालक को सींगों से मार दिया ।

पपात मूर्च्छां सम्प्राप्य सोऽपि मर्मणि ताडितः ।

लोकाश्च मिलितास्तत्र गवा बालो विहिंसितः ॥४५॥

जलं-जलं वदन्तस्ते पित्राद्या यत्र संस्थिताः ।

यत्नश्च क्रियते यावत्तावद् बालो मृतस्तदा ॥४६॥

वह भी मर्म स्थान में वेधित हुआ मूर्च्छा को प्राप्त होकर गिर पड़ा । त्योहीं सब लोग आ गये और कहने लगे कि गाय ने बालक को मार दिया । हाय-हाय करते हुए वे वहाँ गये जहाँ बालक के पिता आदि स्थित थे, जब तक कुछ यत्न करते तब तक वह बालक मर गया ।

मृते च बालके तव हाहाकारो महानभूत् ।

तन्माता दुःखिता ह्यासीद्रुरोद च पुनः पुनः ॥४७॥

किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहति ।

रुदित्वेति तदा गां च ताडयित्वा व्यमोचयत् ॥४८॥

श्वेतवर्णा तदा सा गौर्द्रुतं श्यामा व्यदृश्यत ।

अहो च दृश्यतां लोकाश्चुक्रुशुश्च परस्परम् ॥४९॥

ब्राह्मणश्च तदा पान्थौ दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं विनिर्गतः ।

यत्र गौश्च गतस्तत्र तामनुब्राह्मणो गतः ॥५०॥

ऊर्ध्वपुच्छं तदा कृत्वा शीघ्रं गौर्नर्मदां प्रति ।

आगत्य नन्दिकस्यास्य समीपे नर्मदाजले ॥५१॥

सन्निमज्य त्रिवारं तु श्वेतत्वं च गता हि सा ।

यथाऽऽगतं गता सा च ब्राह्मणो विस्मयं गतः ॥५२॥

अहो धन्यतमं तीर्थं ब्रह्महत्यानिवारणम् ।

स्वयं ममज्ज तत्रासौ ब्राह्मणस्सेवकस्तथा ॥५३॥

निमज्य हि गतौ तौ च प्रशंसन्तौ नदीं च ताम् ।

मार्गे च मिलिता काचित्सुन्दरी भूषणान्विता ॥५४॥

यथोक्तं तं च भोः पान्थ! कुतो यासि सुविस्मितः ।

सत्यं ब्रूहि छलं त्यक्त्वा विप्रवर्य ममाग्रतः ।।५५।।

उस बालक के मरने पर वहाँ बड़ा हाहाकार मचा । उसकी माता दुःखी होकर बारम्बार रुदन करने लगी । मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मेरे इस दुःख को दूर करेगा ? ऐसा कहकर रोते हुए उसने उस गाय को मारते हुए खोल दिया । उस समय वह श्वेत वर्ण वाली गाय (ब्रह्महत्या के कारण) शीघ्र ही श्याम वर्ण वाली हो गयी । सह क्या आश्चर्य है ? ऐसा सब देखनेवाले मनुष्य परस्पर कहते थे । उस समय वह पथिक ब्राह्मण यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गया और जहाँ वह गाय जाने लगी वहीं उसके पीछे-पीछे वह ब्राह्मण चला गया । उस समय वह गाय पूँछ को ऊपर उठाकर तेजी से शीघ्र ही नर्मदा नदी के समीप गयी और नन्दिकेश्वर महादेव के निकट उस नर्मदा के जल में तीन बार डुबकी लगायी और स्नान करते ही श्यामवर्ण से श्वेतवर्ण को प्राप्त हो गयी । इसके बाद जिस स्थान से आयी थी, फिर वहीं चली गयी । इस लीला को देखकर ब्राह्मण बहुत आश्चर्यचकित हुए और सोचा- अहो! ब्राह्मणहत्या का निवारण करनेवाला यह तीर्थ धन्य है । वह ब्राह्मण उसमें सेवक के सहित स्नान करने लगा । उस नर्मदा नदी में स्नान करके वे दोनों मार्ग में उस नदी की प्रशंसा करते हुए चले गये, तब उन्हें आभूषण से युक्त कोई सुन्दरी स्त्री मिली । उसने पूछा- हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! हे पथिक! विस्मय से युक्त हुए तुम कहाँ जाते हो ? सो सब निष्कपट भाव से सत्य-सत्य मुझे बताओ ।।47-55।।

सूत उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा द्विजेनोक्तं यथातथम् ।
पुनश्चायं द्विजस्तत्र स्त्रियोक्तः स्थीयतां त्वया ॥ ५६॥

तयोक्तं च समाकर्ण्य स्थितः स ब्राह्मणस्ततः ।
प्रत्युवाच विनीतात्मा कथ्यते किं वदेति च ॥५७॥

सा चाह पुनरेवात्र त्वया दृष्टं स्थलं च यत् ।
तत्राधुना क्षिपास्थीनि मातुः किं गम्यतेऽन्यतः ॥५८॥

तव माता पान्थवर्य साक्षाद्दिव्यमयं वरम् ।
देहं धृत्वा द्रुतं साक्षाच्छम्भोर्यास्यति तद्गतिम् ॥५९॥

वैशाखे चैव सम्प्राप्ते सप्तम्यां च दिने शुभे ।
सिते पक्षे सदा गंगा ह्यायति द्विजसत्तम! ॥६०॥

अद्यैव सप्तमी या सा गंगा रूपाऽस्ति तत्र वै ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी सा गंगा मुनिसत्तमाः! ॥६१॥

निवृत्तश्च द्विजः सोऽपि मात्रस्थ्यर्द्धं स्ववस्त्रतः ।
क्षिपेद्यावत्तत्र तीर्थे तावच्चित्रमभूत्तदा॥६२॥

दिव्यदेहत्वमापन्ना स्वमाता च व्यदृश्यत ।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पवित्रं च कुलं त्वया ॥६३॥

धनं धान्यं तथा चायुर्वंशो वै वर्द्धतां तव ।
इत्याशिषं मुहुर्दत्वा स्वपुत्राय दिवं गता ॥६४॥

तत्र भुक्त्वा सुखं भूरि चिरकालं महात्तमम् ।
शंकरस्य प्रसादेन गता सा ह्युत्तमां गतिम् ॥६५॥

ब्राह्मणश्च सुतस्तस्याः क्षिप्त्वाऽस्थीनि पुनस्ततः ।
प्रसन्नमानसोऽभूत्स शुद्धात्मा स्वगृहं गतः ॥६६॥

सूतजी बोले- उस समय ऐसा वचन सुन ब्राह्मण ने सब ठीक-ठीक कह सुनाया, फिर उस ब्राह्मण से वह स्त्री बोली कि- तुम यहाँ स्थित हो । तब उसका वचन सुनकर वह स्थित रहा और नम्र स्वभाव वाले ब्राह्मण ने स्त्री से कुछ कथन करने को कहा । तब वह स्त्री कहने लगी कि जो जलस्थल तुमने देखा है, उसी जल में माता की अस्थि को समर्पित करो और कहाँ जाते हो? हे श्रेष्ठ पथिक! ऐसा करने से तेरी माता साक्षात् दिव्यमय शरीर धारण करके शीघ्र ही शिवलोक में मुक्ति को प्राप्त होगी । हे द्विजश्रेष्ठ! वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन वहाँ निरन्तर गंगाजी आती हैं । इसीलिए आज सप्तमी है, वहाँ गंगा विद्यमान है । हे मुनीश्वर! इस प्रकार कहकर वह सुन्दर रूपवाली स्त्री गंगादेवी अन्तर्धान हो गयी । पुनः उस ब्राह्मण ने लौटकर वस्त्र खोलकर ज्योंही उस जल में माता की आधी अस्थियों का प्रवाहन किया तो एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया । उसकी माता दिव्य शरीर धारणकर यह कह रही थी कि हे पुत्र! तू धन्य है, कृतकृत्य है, तूने अपने कुल को पवित्र कर दिया । तेरा धन-धान्य तथा आयु वृद्धि को प्राप्त हो, इस प्रकार से बारम्बार अपने पुत्र को आशीर्वाद देकर उसकी माता स्वर्गलोक को गयी और वहाँ अधिक समय तक बड़े सुख-भोग को भोगकर शिवजी के प्रसाद से उत्तम गति को प्राप्त हुई । उसका पुत्र ब्राह्मण माता की अस्थियों को प्रवाहित कर प्रसन्नचित्त तथा शुद्ध आत्मा होकर अपने घर को चला गया ।।

अध्याय समाप्त

अन्य ऋषियों के प्रपंच से गौतम को गोवध का पाप एवं प्रायश्चित्त

कोटिरुद्रसंहिता अ.२५- तपःपूत महर्षि गौतमजी के दिव्य प्रभाव से वह वन सर्वतोभावेन आनन्दप्रद हो गया । गौतमजी के फैलते हुए प्रशस्त यश के कारण अन्य ऋषिलोग उनसे ईर्ष्या करने लगे थे । कदाचित् अन्य ऋषियों की पत्नियों ने अपने-अपने पति से सरोवर में पानी भरने के समय की बात उलटी करके बतायी, क्योंकि वे प्रायः कूटवृत्ति वाली हे गयी थीं । ऋषियों ने होनहार वश गौतमजी का अनिष्ट करने के लिये भगवान् गणेश की पूजा की और गणेशजी से कहा कि आप वरदान के रूप में उस वन से गौतम ऋषि को बाहर निकाल दें । गणेशजी ने उपकारी, दयापरायण, तपःपूत गौतम की प्रशंसा करते हुए उन ऋषियों को कृतघ्न बताया और गौतम को दुःख देना अन्य ऋषियों के लिये अनिष्टकर बताया । परन्तु ऋषि अपने दूषित विचार पर अटल रहे । तब गणेशजी ने कुछ लीला की-

गौतमस्य च केदारे तत्रासन् व्रीहयो यवाः ।

गणेशस्तत्र गौर्भूत्वा जगाम किल दुर्बला ।।४।२५।२९।।

कम्पमाना च सा गत्वा तत्र तद्वरयोगतः ।

व्रीहीन् सम्भक्षयामास यवाँश्च मुनिसत्तमाः! ।।३०।।

एतस्मिन्नन्तरे दैवाद् गौतमस्तत्र चागतः ।

स दयालुस्तृणस्तम्बैर्वारयामास तां तदा ।।३१।।

तृणस्तम्बेन सा स्पृष्टा पपात पृथिवीतले ।

मृता च तत्क्षणादेव तदृषेः पश्यतस्तदा ।।३२।।

गौतम के खेत में हरी-हरी व्रीहि और जौ जमी हुई थी, वहाँ पर गणेशजी दुर्बल गौ बन कर गये । वरदान के योग से काँपती हुई वह गाय वहाँ जाकर व्रीहि तथा यव का भक्षण करने लगी । दैववश इसी समय गौतमजी वहाँ आ गये और उन दयालु

मुनि ने उस समय एक तृण के स्तम्ब (स्कन्धरहित तृण) से उस गौ का निवारण किया । परन्तु तृण के स्तम्ब से स्पर्श की हुई वह गाय पृथिवी पर गिर गयी और ऋषि के देखते ही देखते उसी समय मर गयी । इससे ऋषि गौतम बड़े दु:खी हुए और ऋषियों ने उन्हें आश्रम अथवा उस वन से बाहर कर दिया । गौतमजी सपत्नीक वहाँ से अन्यत्र जाकर आश्रम बनाकर व्यथित चित्त हो रहने लगे । पुन: उन्होंने उन्हीं ऋषियों से प्रार्थना की कि आप लोग गोवध का प्रायश्चित्त बताएँ । तब ऋषियों ने गौतम को तीन बार पृथिवी की परिक्रमा कर एक मास का व्रत और ब्रह्मा पर्वत की सौ परिक्रमा बतायी । पुन: गंगा को तपोबल से लाकर गंगास्नान कर कोटिसंख्यक पार्थिव शिवलिंग का पूजन बताया । इसके बाद सौ घडों से पार्थिवलिंग का स्नान करने से ही शुद्धि बतायी । अपने शिष्य और पत्नी अहल्या के साथ गौतम ने वैसा ही किया । गौतम की तपस्या से भगवान् शिव प्रकट हुए और बोले-

अध्याय - २६

शिव उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि निष्पापोऽसि महामुने! ।

एतैर्दुष्टैः किल त्वं चच्छलितोऽसि खिलात्मभिः ।।४।२६।६।।

त्वदीयदर्शनाल्लोका निष्पापाश्च भवन्ति हि ।

किं पुनस्त्वं सपापोऽसि मद्भक्तिनिरतः सदा ।।७।।

उपद्रवस्त्वयि मुने यैः कृतस्तु दुरात्मभिः ।

ते पापाश्च दुराचारा हत्यावन्तस्त एव हि ।।८।।

एतेषां दर्शनादन्ये पापिष्ठाः सम्भवन्तु च ।

कृतघ्नाश्च तथा जाता नैतेषां निष्कृतिः क्वचित् ।।९।।

हे मुने् तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, सब प्रकार से पापरहित हो । इन दुष्टात्मा पापी ऋषियों ने तुम्हारे साथ कपट किया है । तुम्हारे दर्शन से लोग निष्पाप होते हैं फिर सदा मेरी भक्ति में तत्पर हुए तुम कैसे पापी हो सकते हो? हे मुने! जिन दुष्ट महात्माओं ने तुम्हारे साथ उपद्रव किया है, वे ही पापी, दुराचारी एवं हत्यारे हैं । इनके देखने मात्र से अन्य लोग भी पापी हो जाएँगे, वे सभी कृतघ्न हैं । उनका कहीं प्रायश्चित्त नहीं है । गौतमजी ने कहा-

गौतम उवाच

ऋषिभिस्तैर्महेशान ह्युपकारः कृतो महान् ।

यद्येवं न कृतं तैस्तु दर्शनं ते कुतो भवेत् ।।१०।।

धन्यास्ते ऋषयो येस्तु मह्यं शुभतरं कृतम् ।

तद्दुराचरणादेव मम स्वार्थो महानभूत् ।।११।।

हे महेश्वर! उन ऋषियों ने मेरा बहुत उपकार किया है, यदि वे ऐसा न करते तो आपका दर्शन कैसे होता? ये ऋषि, जिन्होंने मेरा अतिकल्याण किया, उन्हीं के दुःस्वभाव से मेरा स्वार्थ सिद्ध हुआ ।11। पुनः गौतम को सभी वरदान मिले और शिव की कृपा से गंगा का प्राकट्य हुआ । गंगा ने श्रीशिवपरिकर के साथ ही भूमण्डल पर स्थिर रहने की शिवजी से शर्त रखी । भगवान् शिव आदि ने कहा-

सिंह राशौ यदा स्याद्वै गुरुः सर्वसुहृत्तमः ।

तदा वयं च सर्वे त्वागमिष्यामो न संशयः ।।४३।।

जब-जब सबों की सहायता करनेवाले बृहस्पति सिंह राशि में स्थित होंगे, तब-तब हम सभी देवगण इस त्र्यम्बक तीर्थ में आकर निवास करेगे । इस प्रकार

सबों से प्रार्थित शिव और गंगा नासिक क्षेत्र में स्थित हुए । गंगा का नाम गौतमी (गोदावरीगंगा) और शिव का नाम त्र्यम्बेश्वर हुआ ।43।

कूर्मपुराण

करीषाग्नि का सेवन

मार्कण्डेय उवाच

गंगायमुनयोर्मध्ये कार्षाग्निं यस्तु साधयेत् ।
अहीनांगो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः ।।३६।३।।

यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु देहिनः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।४।।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ।
सभुक्त्वा विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं स्मरते पुनः ।।५।।

(माघ मास में) गंगा और यमुना के संगम पर तो करीषाग्नि (सूखे गोमय खण्ड से अग्नि जलाकर उससे तपस्या करना) का सेवन करता है वह अहीनांग (हीन अंग से रहित) अर्थात् सम्पूर्ण अवयवों से सम्पन्न, रोगरहित, तथा पाँचो इन्द्रियों से युक्त होता है ।

हे मानद (युधिष्ठिर)! उस मनुष्य के शरीर में जितने रोमकूप होते हैं उतने हजार वर्षो तक वह स्वर्गलोक में पूजित होता है । तदनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर वह जम्बूद्वीप का स्वामी होता है तथा विपुल भोगों का उपभोग करने के अनन्तर वह पुनः तीर्थराज प्रयाग को प्राप्त करता है ।

गौतम द्वारा मायामयी गौ का अनायास रक्षण में ही वध

गौतम की ईर्ष्या से अन्य महर्षियों ने–

ततो मायामयीं सृष्ट्वा कृशां गां सर्व एव ते ।
समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्य महात्मनः ।।१५/१७।।
सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः ।
गोष्ठं तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा ।।९९।।
स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः ।
केनापि हेतुना ज्ञात्वा शशापातीवकोपनः ।।१०३।।

तत्पश्चात् उन सभी महात्माओं ने मायामयी एक कमजोर गाय बनाकर उसे महात्मा गौतम के समीप पहुँचा दिया । गाय को देखकर उसकी रक्षा के लिये उत्सुक दयालु मुनि ने अपनी गौशाला में उसे बाँध दिया किन्तु वह गाय छूते ही मर गयी । गौतम ने उन मुनियों की माया द्वारा करायी गयी गोहत्या को किसी प्रकार से जान लिया और अत्यन्त कुद्ध होकर उन्हें शाप दिया ।

छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथि भस्मसु ।
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मुत्रे च समाचरेत् ।।१३।३६।।
न गोमये न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले ।
न तिष्ठन्नैव निर्वासा न च पर्वतमस्तके ।।१३।३७।।
न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् ।
न देवदेवालययोरंषामपि कदाचन ।।१३।४१।।

छाया में, कूप में, उसके समीप, नदी में, गौशाला, चैत्य (ग्रामदेवता या ग्राम्यवृक्ष का समूह) जल, मार्ग, भस्म, अग्नि, श्मशान, गोबर में, जुती भूमि पर, महान् वृक्ष के नीचे, हरी घास से युक्त मैदान में और पर्वत की चोटी पर मल–मूत्र का त्याग न करे

। स्त्री, गुरु, ब्राह्मण, गौ के समीप, देवविग्रह या देवमन्दिर और जल के समीप में तो कभी भी मलमूत्र का विसर्जन न करे ।

गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् ।

यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ।।१८।१४।।

गाय की धूल से सम्पन्न उत्तम स्थान को वायव्य स्नान एवं धूप में (वर्षा के जल से) किया स्नान दिव्य स्नान कहा जाता है ।

द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ।

पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित ।।२६।३७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्तत्फलमभीप्सता ।

द्विजेषु देवता नित्यं पुजनीया विशेषतः ।।२६।३८।।

देवता नित्य ही ब्राह्मणों के शरीर का आश्रय ग्रहण कर प्रतिष्ठित रहते हैं । कभी ब्राह्मणों के प्राप्त न होने पर प्रतिमा आदि में भी उन देवताओं की पूजा की जाती है । इसीलिये तत्तत् फलों की इच्छा से सभी प्रकार के प्रयत्नों से विशेष रूप से ब्राह्मणों में देवताओं की नित्य ही पूजा करनी चाहिये । उनके लिये-

भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।

गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रुपमुत्तमम् ।।२६।४५।।

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।

अनडुदः श्रियं पुष्टां गोदो व्रध्नस्य विष्टपम् ।।२६।४६।।

धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।

वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ।।२६।४८।।

भूमिदान करनेवाला सब कुछ प्राप्त करता है । स्वर्णदाता दीर्घ आयु, ग्रहदान करनेवाला ऊँचे महल तथा रजतदान करनेवाला उत्तम रूप प्राप्त करता है । वस्त्रदान

करनेवाला चन्द्रलोक में वास करता है और अश्वदाता अश्विनीकुमारों के लोक में जाता है । वृषभदान करनेवालों को पुत्र, लक्ष्मी और गोदान करनेवालों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । विशिष्ट वेदज्ञ ब्राह्मणों को यथाशक्ति धान्य भी प्रदान करना चाहिये । ऐसा करने से मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।

गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ।।२६।४९।।
दीयमानं तु यो मोहाद् गोविप्राग्निसुरेषु च ।
निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत्तु सः ।।२६।५८।।
अपूपं च हिरण्यं च गामश्वं पृथिवीं तिलान् ।
अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत् ।।२६।६९।।

गौओं को घास प्रदान करने से सभी पापों से मुक्ति हो जाती है । ईन्धन का दान करने से मनुष्य प्रदीप्त (जठर) अग्नि वाला (उत्तम पाचनशक्तिसम्पन्न) होता है । जो व्यक्ति मोहवश गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवताओं के निमित दिये जा रहे दान को रोकता है, वह पापात्मा तिर्यग्योनि में जाता है । अपूप (पुआ), सुवर्ण, गौ, अश्व, पृथिवी तथा तिल का दान ग्रहण करनेवाला अविद्वान् व्यक्ति लकड़ी के समान भस्म हो जाता है । (अर्थात् दान लेने की योग्यता नहीं रहने पर लोभवश दान नहीं लेना चाहिये ।)

कपिलां पाटलावर्णां यस्तु धेनुं प्रयच्छति ।
स्वर्णश्रृंगीं रौप्यखुरां चैलकण्ठां पयस्विनीम् ।।३४।४५।।
यावद्रोमाणि तस्या वै सन्ति गात्रेषु सत्तम! ।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।।३४।४६।।

जो व्यक्ति कपिल अथवा पाटलवर्ण की, सुवर्णमण्डित सींग एवं रजतमण्डित खुरों वाली वस्त्र से आच्छादित कण्ठवाली पयस्विनी गाय का दान करता है, वह उतने हजार वर्षो तक रुद्रलोक में पूजित होता है, जितने उस गाय के शरीर में रोम होते हैं ।

वामन पुराण

ताञ्ज्ञात्वा शंकरः शक्रं प्रेषयन्मलयेऽसुरान् ।

स चापि ददृशे गच्छन् पथि गोमातरं हरिः ।।७१।९।।

तस्याः प्रदक्षिणां कृत्वा दृष्ट्वा शैलं च सुप्रभम् ।

ददृशे दानवान् सर्वान् संहृष्टान् भोगसंयुतान् ।।७१।१०।।

शंकर ने मलय पर्वत पर उन असुरों को रहते हुए जानकर इन्द्र को वहाँ भेजा । मार्ग में जाते हुए इन्द्र ने गोमाता को देखा । इन्द्र ने गोमाता की प्रदक्षिणा कर मलय पर्वत पर कान्ति तथा भोग ये युक्त, हर्षित दानवों को देखा और ललकारा ।

नरसिंह महापुराण

परशुरामावतार एवं कामधेनुमहिमा

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम् ।

जामदग्न्यं पुरा येन क्षत्रमुत्सादितं श्रृणु ।।४६/१।।

पुरा देवगणैर्विष्णुः स्तुतः क्षीरोदधौ नृप! ।

ऋषिभिश्च महाभागैर्जमदग्नेः सुतोऽभवत् ।।२।।

पर्शुराम इति ख्यातः सर्वलोकेषु स प्रभो! ।

दुष्टानां निग्रहं कर्तुमवतीर्णो महीतले ।।३।।

कृतवीर्यसुतः श्रीमान् कार्तवीर्योऽभवत्पुरा ।

दत्तात्रेयं समाराध्य चक्रवर्तित्वमाप्तवान् ।।४।।

स कदाचिन्महाभागो जमदग्न्याश्रमं ययौ ।

जमदग्निस्तु तं दृष्ट्वा चतुरंगबलान्वितम् ।।५।।

मार्कण्डेयजी बोले- राजन्! अब मैं भगवान् विष्णु के जामदग्न्य (परशुराम) नामक शुभ अवतार का वर्णन करता हूँ । जिसने पूर्वकाल में दुष्ट क्षत्रियवंश का उच्छेद किया था, उस प्रसंग को सुनो । नरेश! पहले की बात है क्षीरसागर के तट पर देवताओं और महाभाग ऋषियों ने भगवान् विष्णु की स्तुति की इससे वे जमदग्नि मुनि के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए । वे भगवान् सम्पूर्ण लोकों में परशुराम नाम से विख्यात थे और दुष्ट राजाओं का नाश करने के लिये ही इस भूतल पर अवतीर्ण हुए थे । उनके अवतार से पूर्व राजा कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य हुआ था । जिसने दत्तात्रेयजी की आराधना करके सार्वभौम राज्य प्राप्त कर लिया था । एक समय वह महाभाग नरेश जमदग्नि ऋषि के आश्रम पर गया । उसके साथ चतुरंगिणी सेना थी । कार्तवीर्य की चतुरंगिणी सेना को आश्रम के समीप देखकर ऋषिजमदग्नि ने कहा-

मुच्यतामत्र ते सेना अतिथिस्त्वं समागतः ।

वन्यादिकं मया दत्तं भुक्त्वा गच्छ महामते! ।।४६/६।।

प्रमुच्य सेनां मुनिवाक्यगौरवात् स्थितो नृपस्तत्र महानुभावः ।

आमन्त्र्य राजानमलंघ्यकीर्तिर्मुनिः स धेनुं च दुदोह दोग्ध्रीम् ।।४६/७।।

हे महामते! आप मेरे यहाँ अतिथि होकर पधारे हैं, अतः आज अपनी सेना का पड़ाव यही डालिये और मेरे दिये हुए वन्य फल आदि का भोजन करके कल जाइयेगा ।

महानुभाव राजा कार्तवीर्य ने मुनि के वाक्य का गौरव मानकर अपनी सेना को वहीं ठहरने का आदेश दे वहाँ रह गया । इधर अलंघ्य यश वाले मुनि ने राजा को आमन्त्रित करके अपनी कामधेनु गौ का दोहन किया । उस कामधेनु से–

हस्त्यश्वशाला विविधा नराणां गृहाणि चित्राणि च तोरणानि ।
सामन्तयोग्यानि शुभानि राजन् समिच्छतां यानि सुकाननानि ।।४६/८।।

राजन्! उन्होंने अनेकानेक गजशाला, अश्वमाला, मनुष्यों के रहने योग्य विचित्र गृह और तोरणद्वार आदि का दोहन किया । सामन्त नरेशों के रहने योग्य सुन्दर भवन, जिनमें बगीचे आदि की इच्छा रखनेवालों के लिये सुन्दर उद्यान थे, सब दोहन द्वारा प्रस्तुत किये ।

गृहं वरिष्ठं बहुभूमिकं पुनः समन्वितं साधुगुणैरुपस्करैः ।
दुग्ध्वा प्रकल्पन् मुनिराह पार्थिवं गृहं कृतं ते प्रविशेह राजन् ।।४६/९।।
इमे च मन्त्रिप्रवरा जनास्ते गृहेषु दिव्येषु विशन्तु शीघ्रम् ।
हस्त्यश्वजात्यश्च विशन्तु शालां भृत्याश्च नीचेषु गृहेषु सन्तः ।।४६/१०।।

फिर अनेक मञ्जिलों का श्रेष्ठ महल, जिसमें सुन्दर एवं उपयोगी सामान सञ्चित थे, गोदोहन के द्वारा उपलब्ध करके मुनि ने राजा से कहा– राजन्! आपके लिये महल तैयार है । आप इसमें प्रवेश कीजिये । आपके ये श्रेष्ठ मन्त्री तथा और लोग भी शीघ्र ही इन दिव्य गृहों में प्रवेश करें । विभिन्न जातियों के हाथी और घोड़े

आदि भी गजशाला और अश्वशाला में रहें तथा भृत्यगण भी इन छोटे घरों में निवास करें ।

इत्युक्तमात्रे मुनिना नृपोऽसौ गृहं वरिष्ठं प्रविवेश राजा ।
अन्येषु चान्येषु गृहेषु सत्सु मुनिः पुनः पार्थिवमावभाषे ॥११॥
स्नानप्रदानार्थमिदं मया ते प्रकल्पितं स्त्रीशतमुत्तमं नृप! ।
स्नाहि त्वमद्यात्र यथा प्रकामं यथा सुरेन्द्रो दिवि नृत्यगीतैः ॥१२॥

मुनि के इस प्रकार कहते ही राजा कार्तवीर्य ने उस उत्तम गृह में प्रवेश किया । फिर अन्य लोग भी अन्यान्य घरों में प्रविष्ट हुए । इस प्रकार सबके यथास्थान स्थित हो जाने पर मुनि ने पुनः राजा से कहा- नरेश्वर! आपको स्नान करने के लिये मैंने इन सौ उत्तम स्त्रियों को नियत किया है । जैसे स्वर्ग में देवराज इन्द्र अप्सराओं के नृत्य-गीत सुनते हुए स्नान करते हैं, उसी प्रकार आप भी इन स्त्रियों के नृत्य-गीत से आनन्दित हो इच्छानुसार स्नान कीजिये ।

स स्नातवांस्तत्र सुरेन्द्रवन्नृपो गीत्यादिशब्दैर्मधुरैश्च वाद्यैः ।
स्नातस्य तस्याशु शुभे च वस्त्रे ददौ मुनिर्भूप! विभूषिते द्वे ॥१३॥
परिधाय वस्त्रं च कृतोत्तरीयः कृतक्रियो विष्णुपूजां चकार ।
मुनिश्च दुग्ध्वान्नमयं महागिरिं नृपाय भृत्याय च दत्तवानसौ ॥१४॥
तावत्स राजा बुभुजे सभृत्यस्तावच्च सूर्यो गतवान् नृपास्तम् ।
रात्रौ च गीतादिविनोदयुक्तः शेते स राजा मुनिनिर्मिते गृहे ॥१५॥

भूप! मुनि की आज्ञा से वहाँ राजा ने इन्द्र की भाँति मधुर वाद्यों और गीत आदि के शब्दों से आनन्दित होते हुए स्नान किया । स्नान कर लेने पर मुनि ने उन्हें दो सुन्दर वस्त्र दिये । धोती और चादर धारणकर राजा ने नित्य-नियम करने के बाद

भगवान् विष्णु की पूजा की । फिर उन मुनिवर ने गौ से अन्नमय महानृ पर्वत का दोहन करके राजा तथा राजसेवकवृन्द को अर्पित किया । नृप! राजा तथा उनके भृत्यगणों ने जब-तक भोजन का कार्य सम्पन्न किया, तब-तक सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये । तब सभी ने रात को भी मुनि के बनाये हुए उस भवन में गीत आदि विनोदों से आनन्दित हो शयन किया ।

ततः प्रभाते विमले स्वप्नलब्धमिवाभवत् ।
भूमिभागं ततः कश्चिद्दृष्ट्वासौ चिन्तयन्नृपः ।।१६।।

किमियं तपसः शक्तिर्मुनेरस्य महात्मनः ।
सुरभ्या वा महाभाग! ब्रूहि मे त्वं पुरोहित! ।।१७।।
इत्युक्तः कार्तवीर्येण तमुवाच पुरोहितः ।
मुनेः सामर्थ्यमप्यस्ति सिद्धिश्चेयं हि गोर्नृप! ।।१८।।
तथापि सा न हर्तव्या त्वया लोभान्नराधिप! ।
यस्त्वेतां हर्तुमिच्छेद्वै तस्य नाशा ध्रुवं भवेत् ।।१९।।

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल होते ही स्वप्न में मिली हुई सम्पत्ति के समान सब कुछ लुप्त हो गया । फिर वहाँ केवल कोई भूभाग मात्र ही अवशिष्ट देख राजा ने मन ही मन विचार किया और अपने पुरोहित से पूछा- महाभाग पुरोहितजी! यह महात्मा जमदग्नि मुनि के तप की शक्ति थी या कामधेनु गौ की? इसे आप मुझे बताइये । कार्तवीर्य के इस प्रकार पूछने पर पुरोहित ने कहा- राजन्! मुनि में भी सामर्थ्य है, परन्तु यह सिद्धि तो गौ की ही थी, तो भी लोभवश आप उस गौ का अपहरण न करें क्योंकि जो उसे हर लेने की इच्छा करता है, उसका निश्चय ही विनाश हो जाता है ।

अथ मन्त्रिवरः प्राह ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः ।

राजकार्यं न पश्येद्वै स्वपक्षस्यैव पोषणात् ॥२०॥

हे राजंस्त्वयि तिष्ठन्ति गृहाणि विविधानि च ।

तथा सुवर्णपात्रानि शयनादीनि च स्त्रियः ॥२१॥

तां धेनुं प्राप्य राजेन्द्र! लीयमानानि तत्क्षणात् ।

अस्माभिस्तत्र दृष्टानि नीयतां धेनुरुत्तमा ॥२२॥

तवेयं योग्या राजेन्द्र! यदीच्छसि महामते ।

गत्वाऽहमानयिष्यामि आज्ञां मे देहि भूभुज! ॥२३॥

यह सुनकर राजा के प्रधानमन्त्री ने कहा- महाराज! ब्राह्मण तो ब्राह्मण का ही प्रेमी होता है, वह अपने पक्ष का पोषण करने के कारण राजा के कार्य की कोई परवाह नहीं करता । राजन् ! उस गौ को पाकर आपके पास तत्काल गुप्त हो जाने वाले नाना प्रकार के घर, सुवर्णपात्र, शय्यादि तथा सुन्दर स्त्रियाँ- ये सब सामान प्रस्तुत रहेंगे, जिन्हें हम लोगों ने वहाँ प्रत्यक्ष देखा है । उस उत्तम धेनु को आप अवश्य ले चलें । महामते राजेन्! यह गौ आपके ही योग्य है । भूपाल! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं स्वयं जाहर उसे ले आऊँगा । आप केवल मुझे आज्ञा दीजिये ।

इत्युक्तो मन्त्रिणा राजा तथेत्याह नृपोतम! ।

सचिवस्तत्र गत्वाऽथ सुरभिं हर्तुमारभत् ॥२४॥

नृपवर! मन्त्री के इस प्रकार कहने पर राजा ने बहुत अच्छा कहकर अनुमति दे दी, फिर वह राजमन्त्री आश्रम पर जाकर गौ का अपहरण करने लगा ।

वारयामास सचिवं जमदग्निः समन्ततः ।

राजयोग्यामिमां ब्रह्मन्! देहि राज्ये महामते ॥२५॥

त्वं तु शाकफलाहारी किं धेन्वा ते प्रयोजनम् ।

इत्युक्त्वा तां बलाद् धृत्वा नेतुं मन्त्री प्रचक्रमे ।।२६।।

पुनः सभार्यः समुनिर्वारयामास तं नृपम् ।

ततो मन्त्री सुदुष्टात्मा मुनिं हत्वा तु तं नृप! ।।२७।।

ब्रह्महा नेतुमारेभे वायुमार्गेण सा गता ।

राजा च क्षुब्धहृदयो ययौ माहिष्मतीं पुरीम् ।।२८।।

तब जमदग्नि मुनि ने उसे सब ओर से मना किया, किन्तु उसने उनकी बात न मानते हुए कहा- महाबुद्धिमान् ब्राह्मण! यह गौ राजा के योग्य है । अतः इसे राजा को दे दीजिये । आप तो साग और फल खाने वाले हैं, आपको इस गाय से क्या काम है? यों कहकर मन्त्री उस गौ को बलपूर्वक ले जाने लगा । राजन्! तब उस मुनि ने स्त्री सहित आकर उसे पुनः रोका, इस पर उस दुष्टात्मा और ब्रह्महत्यारे मन्त्री ने उस मुनि का वध करके गौ को ज्योंही ले जाना चाहा त्योंही वह दिव्य गौ आकाश मार्ग से चली गयीं । तब राजा मन ही मन क्षुब्ध होकर माहिष्मती नगरी को लौट आया ।

मुनिपत्नी सुदुःखार्ता रोदयन्ती भृशं तदा ।

त्रिस्सप्तकृत्वः स्वां कुक्षिं ताडयामास पार्थिव! ।।२९।।

तच्छृण्वन्नागतो रामो गृहीतपरशुस्तदा ।

पुष्पादीनि गृहीत्वा तु वनान्मातरमब्रवीत् ।।३०।।

अलमम्ब! प्रहारेण निमित्ताद्विदितं मया ।

हनिष्यामि दुराचारमर्जुनं दुष्टमन्त्रिणम् ।।३१।।

त्वयैकविंशवारेण यस्मात्कुक्षिश्च ताडिता ।

त्रिस्सप्तकृत्वस्तस्मात्तु हनिष्ये भुवि पार्थिवान् ।।३२।।

राजन्! उस समय मुनि की पत्नी दुःख से पीड़ित होकर अत्यन्त विलाप करने लगी और प्राण त्याग देने की इच्छा से अपनी कुक्षि में उसने इक्कीस बार मुक्का

मारा । माता का विलाप सुनकर परशुराम जी वन से पुष्पादि लेकर हाथ में कुल्हाड़ी लिये उसी समय आये और माता से बोले- माँ! इस प्रकार छाती पीटने की आवश्कता नहीं है । मैं सब कुछ शकुन से जान गया हूँ । उस दुष्ट मन्त्रीवाले दुराचारी राजा अर्जुन का मैं अवश्य ही वध करूँगा ।

मातः! चूँकि तुमने अपनी कुक्षि में इक्कीस बार प्रहार किया है, इसलिये मैं इस भूण्डल के दुष्ट क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार करूँगा ।

इति कृत्वा प्रतिज्ञां स गृहीत्वा परशुं ययौ ।

माहिष्मतीं पुरीं प्राप्य कार्तवीर्यमथाह्वयत् ।।३३।।

युद्धार्थमागतं सोऽथ अनेकाक्षौहिणीयुतः ।

तयोर्युद्धमभूत्तत्र भैरवं लोमहर्षणम् ।।३४।।

पिशिताशिजनानन्दं शस्त्रास्त्रशतसंकुलम् ।

ततः परशुरामोऽभून्महाबलपराक्रमः ।।३५।।

परञ्ज्योतिरचिन्त्यात्मा विष्णुः कारणमूर्तिमान् ।

कार्तवीर्यबलं सर्वमनेकैः क्षत्रियैः सह ।।३६।।

हत्वा निपात्य भूमौ तु परमाद्भुतविक्रमः ।

कार्तवीर्यस्य बाहूनां वनं चिच्छेद रोषवान् ।

छिन्ने बाहुवने तस्य शिरश्चिच्छेद भार्गवः ।।३७।।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके फरसा लेकर वे वहाँ से चल दिये और माहिष्मती पुरी में जाकर उन्होंने राजा कार्तवीर्यार्जुन को ललकारा, तब वह अनेक अक्षौहिणी सेना के साथ युद्ध के लिये आया । वहाँ उन दोनों में महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, जो सैकड़ों अस्त्र-शस्त्र के प्रहार से व्याप्त तथा मांस खानेवाले प्राणियों को आनन्द देने

वाला था । उस समय परशुरामजी अपने मन में अचिन्त्यस्वरूप परम ज्योर्तिमय, कारणमूर्ति भगवान् विष्णु की भावना करके महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न हो गये । उन्होंने परम आश्चर्यमय पौरुष प्रकट करते हुए कार्तवीर्य की असंख्य क्षत्रियों से युक्त सम्पूर्ण सेना को मारकर भूमि पर गिरा दिया और रोष से भरकर कार्तवीर्य की समस्त भुजाएँ काट डालीं । उसके बाहुवन का उच्छेद हो जाने पर भृगुनन्दन परशुराम ने उसका मस्तक भी धड़ से अलग कर दिया ।

विष्णुहस्ताद्वधं प्राप्य चक्रवर्ती स पार्थिवः ।

दिव्यरूपधरः श्रीमान् दिव्यगन्धानुलेपनः ॥३८॥

दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकमवाप्तवान् ।

क्रोधात्परशुरामोऽपि महाबलपराक्रमः ॥३९॥

त्रिःसप्तकृत्वो भूम्यां वै पार्थिवान्निजघान सः ।

क्षत्रियाणां वधात्तेन भूमेर्भारोऽवतारितः ॥४०॥

भूमिश्च सकला दत्ता कश्यपाय महात्मने ॥४०१/२॥

इस प्रकार वह चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य श्रीभगवान् विष्णु के हाथ से वध को प्राप्त होकर दिव्य रूप धारण करके, श्रीसम्पन्न एवं दिव्य चन्दनों से अनुलिप्त हो और दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुधाम को प्राप्त हुआ । फिर महान् बल और पराक्रम वाले परशुरामजी ने भी इस पृथ्वी के दुष्ट क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया । इस प्रकार आततायियों का वध करके उन्होंने भूमि का भार उतारा और सम्पूर्ण पृथ्वी महात्मा कश्यपजी को दान कर दी ।

इत्येष जामदग्न्याख्यः प्रादुर्भावो मयोदितः ॥४१॥

यश्च तच्छृणुयाद भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४२॥

अवतीर्य भूमौ हरिरेष साक्षात् त्रिःसप्तकृत्वः क्षितिपान्निहत्य सः ।

क्षात्रं च तेजो प्रविभज्य राजन् रामः स्थितोऽद्यापि गिरौ महेन्द्रे ।।४३।।

इस प्रकार मैंने तुमसे यह जामदग्न्य (परशुराम) नामक अवतार का वर्णन किया । जो भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है । वह सब पापों से मुक्त हो जाता है । इस तरह पृथ्वी पर अवतीर्ण होने के बाद ये साक्षात् भगवान् विष्णुस्वरूप परशुरामजी इक्कीस बार आततायी क्षत्रियों को माकर क्षत्रिय तेज को छिन्न-भिन्न करके आज भी महेन्द्र पर्वत पर विराजमान हैं ।

-- अध्याय समाप्त --

श्रीविष्णुमहापुराण

समुद्र मन्थन से कामधेनु की उत्पत्ति-

मथ्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ।

हविर्धामाऽभवत्पूर्वं सुरभिः सुरपूजिता ।।१।९।९२।।

जग्मुर्मुदं ततो देवा दानवाश्च महामुने! ।

व्याक्षिप्तचेतसश्चैव बभूवुः स्तिमितेक्षणाः ।।१।९।९३।।

इस प्रकार देवता और दानवों द्वारा क्षीर-समुद्र के मथे जाने पर पहले हवि (यज्ञ सामग्री) की आश्रयरूपा सुरपूजिता कामधेनु उत्पन्न हुई । हे महामुने! उस समय देव और दानवगण अति आनन्दित हुए और उसकी ओर चित्त खिँच जाने से उनकी टकटकी बँध गयी ।

महाराज पृथु का प्रकरण

ततो ननाश त्वरिता गौर्भूत्वा च वसुन्धरा ।

सा लोकान्ब्रह्मलोकादीन् संत्रासादगमन्मही ॥१।१३।७०॥

तब पृथु के आजगव नाम का धनुष और बाण के भय से अत्यन्त व्याकुल हुई पृथ्वी गौ का रूप धारण कर भागी और ब्रह्मलोक आदि सभी लोकों में गयी ।

श्री बलराम-कृष्ण के नामकरण के बाद

स्वल्पेनैव तु कालेन रिंगिणौ तौ तदा व्रजे ।

घृष्टजानुकरौ विप्र! बभूवतुरुभावपि ॥५।६।१०॥

करीषभस्मदिग्धांगौ भ्रममाणावितस्ततः ।

न निवारयितुं सेके यशोदा तौ न रोहिणी ॥५।६।११॥

गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटं गतौ पुनः ।

तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ॥५।६।१२॥

हे विप्र! वे दोनों बालक थोड़े ही दिनों में गौओं के गोष्ठ में रेंगते-रेंगते हाथ और घुटनों के बल चलने वाले हो गये । गोबर और राख भरे शरीर से इधर-उधर घूमते हुए उन बालकों को यशोदा और रोहिणी रोक नहीं सकती थीं । कभी वे गौओं के घोष में खेलते, कभी बछड़ों के मध्य में चले जाते तथा कभी उसी दिन जन्मे हुए बछड़ों की पूँछ पकड़कर खींचने लगते ।

भगवदिच्छा से-

ततः क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोधनैस्तथा ।

यूथशो वत्सपालाश्च कालयन्तो व्रजौकसः ॥५।६।२६॥

वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।

शुभेन मनसा ध्यातं गवां सिद्धिमभीप्सता ॥५।६।२८॥

ततस्तत्रातिरूक्षेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तम! ।

प्रावृट्काल इवोद्भूतं नवशष्पं समन्ततः ॥५।६।२९॥

वे व्रजवासी वत्सपाल दल बाँधकर एक क्षण में ही बछड़ों और गौओं के साथ उन्हें हाँकते हुए चल दिये । तब लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्ण ने गौओं की अभिवृद्धि के लिये अपने युद्धचित्त से दिव्य वृन्दावनधाम का चिन्तन किया । इससे अत्यन्त रुक्ष ग्रीष्मकाल में भी वहाँ वर्षा ऋतु के समान सब ओर नवीन दूर्वा उत्पन्न हो गयी ।

विकाले च समं गोभिर्गोपवृन्दसमन्वितौ ।

विहृत्याथ यथायोगं व्रजमेत्य महाबलौ ।।५।६।५०।।

सायंकाल के समय वे महाबली बालक वन में यथायोग्य विहार करने के अनन्तर गौ और ग्वालबालों के साथ व्रज में लौट आते ।

पूतनावध के बाद-

आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदाऽपि द्विजोत्तम! ।

गोपुच्छभ्रामणेनाथ बालदोषमपाकरोत् ।।५।५।१२।।

गोकरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके ।

कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वश्चैतदुदीरयन् ।।५।५।१३।।

भयभीत यशोदा ने कृष्ण को गोद में लेकर उन्हें गौ की पूँछ से झाड़कर बालक का ग्रहदोषनिवारण किया । नन्दगोप ने भी इन रक्षोध्न मन्त्रों को कहकर विधिपूर्वक रक्षा करते हुए कृष्ण के मस्तक पर गोबर का तिलक लगाया ।

रक्षोघ्नमन्त्र

नन्दगोप उवाच

रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः ।

यस्य नाभिसमुद्भूतपंकजादभवज्जगत् ।।५।५।१४

नन्दगोप बोले- जिनकी नाभिसे प्रकट हुए कमलसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है वे सम्पूर्ण भूतोंके आदिस्थान श्रीहरि तेरी रक्षा करें ।।14।।

येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनिर्जगत् ।

वराहरूपधृग्देवः स त्वां रक्षतु केशवः ।।१५।।

जिनकी दाढ़ोंके अग्रभागपर स्थापित होकर भूमि सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है वे वराहरूपधारी श्रीकेशव तेरी रक्षा करें ।।15।।

नखांकुरविनिर्भिन्नवैरिवक्षःस्थलो विभुः ।

नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां जनार्दनः ।।१६।।

जिन विभुने अपने नखाग्रोंसे शत्रुके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया था वे नृसिंहरूपी जनार्दन तेरी सर्वत्र रक्षा करें ।।16।।

वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत् ।

त्रिविक्रमः क्रमाक्रान्तत्रैलोक्यः स्फुरदायुधः ।।१७।।

जिन्होंने क्षणमात्रमें सशस्त्र त्रिविक्रमरूप धारण करके अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाप लिया था वे वामनभगवान् तेरी सर्वदा रक्षा करें ।।17।।

शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः ।

गुह्यं च जठरं विष्णुर्जंघे पादौ जनार्दनः ।।१८।।

गोविन्द तेरे सिरकी, केशव कण्ठकी, विष्णु गुह्यस्थान और जठरकी तथा जनार्दन जंघा और चरणोंकी रक्षा करें ।।18।।

मुखं बाहू प्रबाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।

रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः ।।१९।।

तेरे मुख, बाहु, प्रबाहु, मन और सम्पूर्ण इन्द्रियों की अखण्ड ऐश्वर्य से सम्पन्न अविनाशी श्रीनारायण रक्षा करें ।।19।।

शाङ्‌र्गचक्रगदापाणेः शंखनादहताः क्षयम् ।

गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डराक्षसा ये तवाहिताः ।।२०।।

तेरे अनिष्ट करनेवाले जो प्रेत, कूष्माण्ड और राक्षस हों वे शाङ्‌र्ग धनुष, चक्र और गदाधारण करनेवाले विष्णुभगवान्‌की शंख-ध्वनिसे नष्ट हो जायँ ।।20।।

त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः ।

हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ।।२१।।

भगवान् वैकुण्ठ दिशाओंमें, मधुसूदन विदिशाओंमें, हृषीकेश आकाशमें तथा पृथिवीको धारण करनेवाले श्रीशेषजी पृथिवीपर तेरी रक्षा करें ।।21।।

मार्कण्डेयमहापुराण

गोष्ठ आदिमें भी ग्रहजन्य पीड़ा और शान्ति-

द्रव्ये गोष्ठेऽथ भृत्येषु सुहृत्सु तनयेषु वा ।

भार्यायां च ग्रहे दुःस्थे भयं पुण्यवतां नृणाम् ।।५५।६०।।

ग्रह की दुःस्थिति हो जाने से पुण्यात्मा पुरुषों को भी द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, हित, पुत्र और स्त्री आदि के सहित पीड़ा होती है ।

ग्रहपूजां च कुर्वीत सर्वपीडासु मानवः ।

एवं शाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम ।।५५।७२।।

हे द्विजसत्तम! सब प्रकार की पीड़ाओं में (पीड़ा मुक्ति के लिये) मनुष्य अवश्य ही ग्रहों का पूजन करे, क्योंकि इस प्रकार शान्ति और पूजा करने से अत्यन्त घोर पीड़ा भी दूर हो जाती है ।

गृहस्थधेनु

अलर्क उवाच

यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुवर्तता ।

बन्धश्च स्यादकरणे क्रियाया यस्य चोच्छ्रितिः ।।२६।१।।

उपकाराय यन्नृणां यच्च वर्ज्यं गृहे सता ।

यथा च क्रियते तन्मे यथा यत्पृच्छतो वद ।।२।।

अलर्क ने कहा– गृहस्थाश्रमी पुरुष के द्वारा जो कर्त्तव्य है, जिसके न करने से बन्धन एवं करने से मोक्षलाभ होता है । जो मनुष्यों के उपकार का हेतु है, जो वर्णनीय और कर्त्तव्य है, मैं वह सम्पूर्ण विषय पूछता है, आप बताइये ।

मदालसोवाच

वत्स! गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत् ।

पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ।।३।।

पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा ।

कृमिकीटपतंगाश्च वयांसि पशवोऽसुराः ।।४।।

गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति च ।

मुखं चास्य निरीक्षन्ते अपि नो दास्यतीति वै ।।५।।

सर्वस्याधारभूतेयं वत्स! धेनुस्त्रयीमयी ।

यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ।।६।।

ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामवक्त्रशिरोधरा ।

इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा ॥७॥

शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ।

आजीव्यमाना जगतां साऽक्षया नापचीयते ॥८॥

स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारश्च पुत्रक! ।

हन्तकारस्तथा चान्यस्तस्याः स्तनचतुष्टयम् ॥९॥

स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्च स्वधामयम् ।

मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः ॥१०॥

हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् ।

एवमाप्याययत्येषा वत्स! धेनुस्त्रयीमयी ॥११॥

हे वत्स! मनुष्य गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर उन अखिल जीवों का पोषण करता है और उसी पुण्य के प्रभाव से समस्त वाञ्छित लोकों का लाभ करता है । पितर, ऋषि, देवता, भूतगण, मनुष्य, कृमि, कीट, पतंग, पशु, पक्षी और असुरगण- ये सभी गृहस्थ का ही अवलम्बन करके जीवन-मात्रा का निर्वाह करते हैं और गृहस्थ से ही तृप्ति प्राप्त करते हैं । यह मुझे कुछ देगा, ऐसी भावना से गृहस्थ के मुख की ओर अपेक्षा-दृष्टि से देखते रहते हैं । हे वत्स! गृहस्थ ही वेदमयी धेनुरूप में सबका आधारभूत है, सम्पूर्ण विश्व इसी गृहस्थधेनु में प्रतिष्ठित है और यह धेनु ही विश्व का कारण है । ऋग्वेद इस धेनु की पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा, इष्टापूर्त्त उसके सींग और सुन्दर-सुन्दर सूक्त ही उस गृहस्थ धेनु के रोम हैं । शान्ति और पुष्टि कर्म उसके मल-मूत्र हैं एवं वर्णाश्रम रूपी चार पैर पर ही यह धेनु प्रतिष्ठित है । इस धेनु का कभी क्षय या नाश नहीं होता है । यह सम्पूर्ण जगत् की आजीविका है । हे पुत्र! स्वाहा, स्वधा, वषट् और हन्तकार ही इस धेनु के चार स्तन हैं । इन चार

स्तनों में देवगण स्वाहाकार, पितृगण स्वधाकार, ऋषिगण वषट्कार और मनुष्यगण सदा ही हन्तकार रूपी स्तन का पान करते हैं । हे पुत्र! इस प्रकार से यह त्रयीमयी धेनु सम्पूर्ण देवता आदि को सर्वथा तृप्त करती रहती है ।

देवादीन्यखिलान्येषु सन्तर्पयतिमानवः ।
तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽत्यन्तपापकृत् ।।१२।।
स तमस्यान्धतामिस्रे तामिस्रे च निमज्जति ।।१३।।
यस्त्वेतां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ।
पाययत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते ।।१४।।

इन चारों स्तनों की ही देवादि रूपी चार वत्स पान करते हैं, यदि यथा समय (समय पर) इन चार बछड़ों को नियुक्त न किये जायँ तो यह धेनु अपमानित होती है । जिनसे मनुष्य सभी देवता आदि को सन्तुष्ट करते हैं, उस त्रयी की नष्टतासाधन से यानी उनका उच्छेद करनेवाला (हानि पहुँचाने वाला) पुरुष महापापी होता है । वह अन्धतामिस्र एवं तामिस्र नामक घोर नरक में डूबता है ।

जो मानव समय-समय पर इस धेनु के चारों स्तनों को इनके देवता आदि चारों बछड़ों के द्वारा स्तनपान कराता रहता है वह स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ।

नवग्रह-शान्त्यर्थ गौ

बृहत्पाराशर होराशास्त्र, पूर्वखण्ड **।।१६/१४७।।**

वंशान्तो हरिरुष्णगौ, त्रिपुराहाब्जे, भूसुते रुद्रियं
सौम्ये सम्पुटकांस्यपात्रविधिवज्जीवे च पित्र्यातिथिः ।
शुक्रे गोप्रतिपालनं च कथितं, मन्दे च मृत्युञ्जयः
कन्यादानभुजंगकेतुकपिलाः सन्तानसौख्यप्रदाः ।।१६/१४४।।

हरिवंशमहापुराण

भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धनलीला के समय कहा–

कारयिष्यामि गोयज्ञं बलादपि न संशयः ।

यद्यस्ति मयि वः प्रीतिर्यदि वा सुहृदो वयम् ।

गावो हि पूज्याः सततं सर्वेषां नात्र संशयः ।। वि.पु.१६/४५

यदि साम्ना भवेत्प्रीतिर्भवतां वैभवाय च ।

एतन्मम वचस्तथ्यं क्रियतामविचारितम् ।। वि.पु.१६/४६

यदि आपलोगों का मुझ पर प्रेम है और यदि हम लोग एक दूसरे के हितैषी सुहृद् हैं तो मैं आपके द्वारा हठ एवं बलपूर्वक गौयज्ञ कराऊँगा । गौएँ सदा ही सबके लिये पूजनीय हैं– इसमें संशय नहीं है । यदि मेरे समझाने से आपको प्रसन्नता होती हो तो आपलोग अपने ही वैभव (अभ्युदय) के लिये मेरी इस सच्ची बात को बिना विचारे मान लें और इसके अनुसार काम करें ।

गोपों ने भगवान् से कहा–

दामोदरवचः श्रुत्वा हृष्टास्ते गोषु जीविनः ।

तद्वागमृतमासाद्य प्रत्यूचुरविशंकया ।। वि.प.१७/१।।

तवैषा बालमहिती गोपानां हितवर्धिनी ।

प्रीणयत्येव नः सर्वान् बुद्धिर्वृद्धिकरी गवाम् ।।१७/२।।

त्वं गतिस्त्वं रतिश्चैव त्वं वेत्ता त्वं परायणम् ।

भयेष्वभयदस्त्वं नस्त्वमेव सुहृदां सुहृत् ।।१७/३।।

त्वत्कृते कृष्ण! घोषोऽयं क्षेमी मुदितगोकुलः ।

कृत्स्नो वसति शान्तारिर्यथा स्वर्ग गतस्तथा ।।१७/४।।

विशस्यन्तां च पशवो भोज्या ये महिषादयः ।

प्रवर्त्यतां च यज्ञोऽयं सर्वगोपसुसंकुलः ।।१७/५।।

आनन्दजननो घोषो महान् मुदितगोकुलः ।

तूर्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितः ।।१७/६।।

हम्भारवैश्च वत्सानां गोपानां हर्षवर्धनः ।

दध्नो ह्रदो घृतावर्तः पयःकुल्यासमाकुलः ।।१७/७।।

भगवान् की बात सुनकर गौओं पर ही अपनी जीविका निर्भर करनेवाले वे गोपगण प्रसन्नतापूर्वक उनके वचनामृत का आस्वादन करके निःशंक होकर बोले- हमारे बाल-गोपाल! तुम्हारी यह बुद्धि यह विचारधारा महत्वपूर्ण होने के साथ ही गोपों के लिये हितकर तथा गौओं की वृद्धि करनेवाली है । यह हम सबलोगों को तृप्ति ही प्रदान करती है । तुम्हीं हमारी गति हो, तुम्हीं रति (आनन्द)हो, तुम्हीं सर्वज्ञ और तुम्हीं हमारे सबसे बड़े आश्रय हो । श्रीकृष्ण! भय के अवसरों पर तुम्हीं हमें अभय देनेवाले हो तथा तुम्हीं हमारे लिये सुहृदों के भी सुहृद् हो । तुम्हारे कारण ही यह गोष्ठ सकुशल है । यहाँ की गौओं का समुद्राय प्रसन्न है । सारे शत्रु शान्त हो गये हैं तथा समस्त व्रज, जैसे स्वर्ग में रह रहा हों, इस तरह यहाँ सुखपूर्वक निवास करता है । भोजन कराने योग्य जो गाय, भैंस आदि व्रज के पशु हैं, उन्हें बड़े आदर

के साथ उत्तमोत्तम पदार्थ खिलाये जायँ और इस प्रकार समस्त गोपों के सहयोग से सम्पन्न होने वाले इस यज्ञ का आरम्भ हो । फिर तो व्रज में आनन्ददायक महान् कोलाहल होने लगा । सारा गोकुल हर्षोल्लास में मग्न हो गया । वाद्यों के गम्भीर घोष, साँड़ों की गर्जना, और बछड़ों के रँभाने से जो सम्मिलित शब्द प्रकट हुआ, वह गोपों का हर्ष बढ़ाने लगा । दही के कुण्ड में ऊपर-ऊपर घी छा रहा था । दूध की अनेक नहरें बहने लगीं ।

भगवान् श्रीकृष्ण का गोपूजन-

गिरिराज स्वरूप भगवान् उसी रूप से बोले -

स उवाच ततो गोपान् गिरिप्रभवया गिरा ।
अद्यप्रभृति चेज्योऽहं गोष्ठु यद्यस्तु वो दया ॥१७।२७

यदि तुम लोगों में दयाभाव विद्यमान हो तो आज से तुम्हें गौओं के भीतर मेरी पूजा करनी चाहिये ।

इसके बाद इन्द्र ने कोप किया और भारी वर्षा की तब -

तेनोत्पाताम्बुवर्षेण गावो विप्रहता भृशम् ।
हम्भारवैः क्रन्दमाना न चेलुः स्तम्भितोपमाः ॥१८/२१॥
निष्कम्प सक्थिचरणा निष्प्रयत्नखुराननाः ।
हृष्टरोमार्द्रतनवः क्षामकुक्षिपयोधराः ॥१८/२२॥
काश्चित् प्राणाञ्जहु श्रान्ता निपेतुः काश्चिदातुराः ।
काश्चित्सवत्साः पतिता गावः शीकरवे जिताः ॥१८/२३॥
काश्चिदाक्रम्य कोडेन वत्सांस्तिष्ठन्ति मातरः ।
विमुखाः श्रान्तसक्थ्यश्च निराहाराः कृशोदराः ।

पेतुरार्ता वेपमाना गावो वर्षपराजिताः ।।१८/२४।।

वत्साश्चोन्मुखका बाला दामोदरमुखाः स्थिताः ।

त्राहीति वदनैर्दीनैः कृष्णमूचुरिवार्दिताः ।।१८/२५।।

उस उत्पातस्वरूप भारी वर्षा से अत्यन्त ताड़ित एवं पीड़ित हुई गौएँ रँभाने की ध्वनि में करुण-क्रन्दन करती हुई हिल-डुल भी न सकीं । ऐसा जान पड़ता था कि उनके सारे अंग अकड़ गये हैं । उनकी जाँघें और पैर हिल नहीं पाते थे । खुर और मुख निश्चेष्ट थे, भींगे हुए शरीर में रोंगटे खड़े हो गये थे और पेट तथा थन अत्यन्त दुबले होकर सिकुड़ गये थे । क्रुद्ध गौओं ने पीड़ा से श्रान्त होकर अपने प्राण त्याग दिये । कुछ आतुर होकर गिर पड़ीं और कितनी ही गौएँ जल के छींटों से उद्विग्न होकर बछड़ों सहित धराशायिनी हो गयीं । कुछ गौमाताएँ बछड़ों को अपने अंग में छिपाकर खड़ी थीं, कितनी ही बछड़ों की ओर से विमुख से गयी थीं, उनकी जाँघे शिथिल हो रही थीं । कुछ दाना-घास न मिलने के कारण उनके पेट भीतर की ओर धँस गये थे । वर्षा से परास्त होकर पीड़ित हुई गौएँ थर-थर काँपती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ती थीं ।

छोटे-छोटे बछड़े मुँह ऊपर उठाकर दामोदर की ओर देखते हुए खड़े थे, मानो वे पीड़ित बछड़े अपने दीन मुखों से श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके कह रहे थे कि प्रभो! हमारी रक्षा कीजिये ।

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्र के ऊपर कोप किया और गो-गोप के रक्षणार्थ -

बाहोर्बलं दर्शयिष्यन् समीपं तं महीधरम् ।

दोर्भ्यामुत्पाटयामास कृष्णो गिरिरिवापरः ।।वि.पु.१८/३०।।

ततो व्रजस्य भाण्डानि युक्तानि शकटानि च ।

विविशुर्वर्षभीतास्ते तद्गृहं गिरिनिर्मितम् ।।वि.पु.१८/३१।।

अतिदैवं तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत्कर्मवज्रभृत् ।

मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान् वारयामास वै विभुः ।।१८/३२।।

अपनी दोनों भुजाओं का बल दिखाते हुए उस निकटवर्ती पर्वत को दोनों हाथों से पकड़कर उठा लिया । उस समय श्रीकृष्ण दूसरे पर्वत के समान ही जान पड़ते थे । तत्पश्चात् वर्षा से डरे हुए व्रज के गोप अपने बर्तन-भाण्डे और जुते हुए बछड़ों को लेकर उस पर्वतनिर्मित गृह में प्रविष्ट हो गये । श्रीकृष्ण के उस कर्म को, जो देवताओं के लिये भी असम्भव है, देखकर वज्रधारी भगवान् इन्द्र ने उन मेघों को रोक दिया । व्रज को नष्ट कर देने की उनकी प्रतिज्ञा झूठी हो गयी ।

इन्द्र उवाच -

कृष्ण! कृष्ण! महाबाहो! ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन ।

अतिदिव्यं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम् ।।१९/१३।।

मयोत्सृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु ।

यत्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः ।।१९/१४।।

ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकपरागतिः ।

गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः ।।१९/३४।।

स तु लोकस्त्वया कृष्ण! सीदमानः कृतात्मना ।

धृतो धृतिमता वीर! निध्नतोपद्रवान् गवाम् ।।१९/३५।।

तदहं समनुप्राप्तो गवां वाक्येन चोदितः ।

ब्रह्माणश्च महाभाग! गौरवात्तव चागतः ।।१९/३६।।

तब इन्द्र भगवान! ने कहा- कृष्ण! कृष्ण! महाबाहो! आप सजातीय बन्धुओं के आनन्द की वृद्धि करनेवाले हैं । गौओं के प्रति प्रीति रखकर आपने जो कर्म किया है,

वह अति दिव्य है । मेरे द्वारा छोड़े गये प्रलय की पुनरावृत्ति करनेवाले मेघों के वर्षा करने पर भी आपने जो गौओं की रक्षा की है, उससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ । जो ब्राह्म-तप में संलग्न रहनेवाले लोग हैं उनकी परम गति ब्रह्मलोक है । गोलोक तो गौओं को ही सुलभ होनेवाला लोक है । वह गति दूसरों के लिये दुरारोह (दु:ख से चढ़ने लायक दुर्लभ) है । वीर श्रीकृष्ण! इस समय (मेरे वर्षा के कारण) वहीं गौओं का लोक संकट में पड़ गया था, जिसे आप जैसे धैर्यशाली पुण्यात्मा पुरुष ने उन गौओं पर आये हुए उपद्रवों को नाश करके बचाया है ।

अत: महाभाग! मैं दिव्य कामधेनु आदि गौओं के तथा ब्रह्माजी के वचनों से प्रेरित होकर यहाँ आया हूँ । आपके प्रति मेरे मन में जो गौरव है, उससे भी मुझे यहाँ आने में प्रेरणा मिली है ।

स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवित: ।
तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम् ।।१९/२९।।
तस्योपरि गवां लोक: साध्यास्तं पालयन्ति हि ।
स हि सर्वगत: कृष्ण! महाकाशगतो महान् ।।१९/३०।।
उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी ।
यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम् ।।१९/३१।।

हे प्रभो! स्वर्ग से ऊपर ब्रह्मलोक है, जो ब्रह्मर्षिगणों से सेवित है । वहाँ तक चन्द्रमा की तथा महात्मा ग्रह-नक्षत्रों की गति है । ब्रह्मलोक से ऊपर गोलोक है, जिसका साध्यगण पालन करते हैं, उसमें भी आपकी तपोमयी गति सर्वोपरि है । हम पितामह से पूछते रहने पर भी अब तक उस गति को नहीं जान सके हैं ।

आह त्वां भगवान् ब्रह्मा गावश्चाकाशगा दिवि ।

कर्मभिस्तोषिता दिव्यैस्तव संरक्षणादिभिः ॥१९/४०॥

भवता रक्षिता गावो गोलोकश्च महानयम् ।

यद्वयं पुंगवैः सार्द्धं वर्द्धामः प्रसवैस्तथा ॥१९/४१॥

कर्षकान् पुंगवैर्बाह्यैर्मेध्येन हविषा सुरान् ।

श्रियं शकृत्प्रवृतेन तर्पयिष्याम कामदाः ॥१९/४२॥

तैरस्माकं गुरुस्त्वं हि प्राणदश्च महाबलः ।

अद्य प्रभृति नो राजा त्वमिन्द्रो वै भव प्रभो! ॥१९/४३॥

तस्मात्त्वं काञ्चनैः पूर्णैर्दिव्यस्य पयसो घटैः ।

एभिरद्याभिसिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः ॥१९/४४॥

अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः ।

गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ॥१९/४५॥

ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः ।

उपेन्द्र इति कृष्ण! त्वां गास्यन्ति दिवि देवताः ॥१९/४६॥

भगवान् ब्रह्मा तथा द्युलोक में स्थित हुई आकाशगामिनी गौओं ने आपको यह सन्देश दिया है कि हम आपके गोसंरक्षण आदि दिव्य कर्मो से बहुत सन्तुष्ट हैं, आपने जो गौओं की रक्षा की है उससे इस महान् गोलोक का संरक्षण हुआ है, क्योंकि अब हम अपने साण्डों और सन्तानों के साथ दिनों-दिन बढ़ रही हैं । हम गौएँ सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाली हैं, अब हल या गाड़ी में जोतने योग्य बलिष्ठ बैल देकर हम किसानों को सन्तुष्ट करेंगी । दूध-घी के द्वारा पवित्र हविष्य प्रस्तुत करके देवताओं की तृप्ति करेंगी और गोबर देकर साक्षात् श्रीदेवी को सन्तुष्ट करती रहेंगी । प्रभो! आप महान् बलशाली प्रभु हमारा परित्राण करने के कारण हमारे गुरुरूप हैं, अतः

आज से आप हम गौओं के राजा इन्द्र हो जायँ ।' अतः (गौओं के इस अनुरोध के अनुसार) मेरे द्वारा हाथ पर रखकर प्रस्तुत किये गये इन दिव्य जल से भरे हुए सोने के कलशों द्वारा आप अपना अभिषेक करें । मैं देवताओं का इन्द्र हूँ और आप गौओं के इन्द्र हो गये । आज से इस भूतल पर सब लोग आप सनातन प्रभु को गोविन्द कहकर आपका स्तवन करेंगे । श्रीकृष्ण! गौओं ने आप परमेश्वर को जो मेरे ऊपर इन्द्र बनाकर प्रतिष्ठित किया है, उसके अनुसार देवता लोग आपको उपेन्द्र नाम देकर द्युलोक में आपकी कीर्ति का गान करेंगे ।

ततः शक्रस्तु तान् गृह्य घटान् दिव्यपयोधरान् ।
अभिषेकेण गोविन्दं योजयामास योगवित् ॥४०/६१॥
दृष्ट्वा तमभिषिक्तं तु गावस्ताः सह यूथपैः ।
स्तनैः प्रस्रवयुक्तैश्च सिषिचुः कृष्णमव्ययम् ॥४०/६२॥
देवलोकोपमो लोकस्तृप्तोऽमृतरसैरिव ।
आसीत्कृष्णाभिषेको हि दिव्यस्वर्गरसोक्षितः ॥४०/६९॥
अभिषिक्तं तु तं गोभिः शक्रो गोविन्दमव्ययम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं देवदेवोऽब्रवीदिदम् ॥४०/७०॥
एष ते प्रथमः कृष्ण! नियोगो गोषु चः कृतः ॥४०/७०१/२॥

तदनन्तर योगवेत्ता इन्द्र ने दिव्य (मन्दाकिनीका) जल धारण करनेवाले उन कलशों को हाथ में लेकर भगवान् श्रीकृष्ण का गोविन्द (गौओं के इन्द्र, गोरक्षक) पद पर अभिषिक्त किया । इन्द्र द्वारा उनका अभिषेक हुआ देख यूथपतियों (साँड़ो) सहित उन दिव्य गौओं ने भी दूध की धारा बहाते हुए अपने थनों द्वारा अविनाशी श्रीकृष्ण का अभिषेचन किया ।

सम्पूर्ण जगत् देवलोक के समान सुखी हो गया, मानो उसे अमृत रस से तृप्त कर दिया गया हो । इस प्रकार दिव्य स्वर्गीय रस (जल) से सिक्त होकर श्रीकृष्ण का वह अभिषेक कर्म सम्पन्न हुआ । गौओं द्वारा अभिषिक्त होकर दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले अविनाशी गोविन्द से देवदेव इन्द्र ने इस प्रकार कहा - श्रीकृष्ण! यह मैंने आपको अपने आगमन का प्रथम हेतु बताया है । जिसके अनुसार गौओं की आज्ञा का पालन किया गया है । इसके अन्य भी कारण हैं ।

शक्रस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दतां गतः ।
प्रीतेन मनसा युक्तः प्रतिवाक्यं जगाद ह ।।४०/९२।।

इन्द्र का यह वचन सुनकर गोविन्द भाव को प्राप्त हुए श्रीकृष्ण ने प्रसन्न मन से युक्त होकर इस प्रकार उत्तर दिया ।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रीतोऽस्मि दर्शनाद्देव! तव शक्र! शचीपते ।
यत्त्वयाऽभिहितं चेदं न किञ्चित्परिहास्यते ।।४०/९३।।

श्रीकृष्ण ने कहा- देव! शचीपते शक्र! मैं तो आपके दर्शन से ही प्रसन्न हो गया हूँ, आपने यह जो कुछ कहा है वह सब पूरा किया जायेगा, कुछ भी छोड़ा नहीं जायेगा ।

जानामि भवतो भावं जानाम्यर्जुनसम्भवम् ।
जाने पितृष्वसारं च पाण्डोर्दत्तां महात्मनः ।।४०/९४।।
यच्च वक्ष्यति मां शक्र! तनूजस्तव सोऽर्जुनः ।
भृत्यवत्तत्करिष्यामि तव स्नेहेन यन्त्रितः ।।४०/१०१।।
सत्यसन्धस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम् ।

कृष्णस्य साक्षात्त्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वरः ।।४०/१०२।।

आपका मेरे प्रति जो भाव है उसे मैं जानता हूँ, मुझे अुर्जन के जन्म का भी पता है । महात्मा पाण्डु के साथ जिनका विवाह हुआ, उन अपनी बूआ कुन्ती को भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ ।

देवेन्द्र आपका पुत्र (आपके अंश से उत्पन्न) अर्जुन मुझसे जो कुछ कहेगा, उसे मैं आपके स्नेहपाश से बँधकर आज्ञाकारी सेवक की भाँति पूर्ण करूँगा । सत्यप्रतिज्ञ श्रीकृष्ण के प्रसन्नता पूर्वक कहे गये इस प्रिय वचन को सुनकर देवेश्वर इन्द्र साक्षात् स्वर्गलोक को चले गये ।

<u>अध्याय समाप्त</u>

गते शक्रे ततः कृष्णः पूज्यमानो व्रजालयैः ।

गोवर्धनधरः श्रीमान् विवेश व्रजमेव ह ।।४१/१।।

इन्द्र भगवान् के चले जाने पर व्रजवासियों द्वारा पूजित एवं प्रशंसित होते हुए गोवर्धनधारी श्रीमान् कृष्ण ने व्रज में ही प्रवेश किया ।

कालियदमन के बाद गोपों ने नन्दगोप से कहा –

अद्यप्रभृति गोपानां गवां गोष्ठस्य चानघ ।

आपत्सु शरणं कृष्णः प्रभुश्चायतलोचनः ।। वि.पु.१२/५६।।

निष्पाप नन्द! आज से सभी आपदाओं के समय गोपों, गौओं और गोष्ठ (व्रज) के लिये ये विशाललोचन भगवान् श्रीकृष्ण ही शरणदाता और स्वामी हैं ।

क्षीरवत्यस्त्विमा गावो वत्सवत्यश्च निर्भृताः ।

तेन संवर्द्धितैस्तात! तृणैः पुष्टाः सपुंगवाः ।। वि.प.१५/१०।।

नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः ।

दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः ।।/१५/११।।

दुदोह सवितुर्गा वै शक्रो दिव्याः पयस्विनीः ।

ताः क्षरन्ति नवं क्षीरं मेध्यं मेघौघधारितम् ।।१५/१२।।

तात! वर्षा से बढ़े हुए घासों द्वारा ही साँड़ों सहित ये गौएँ हृष्ट-पुष्ट होकर बछड़े देती हैं और दूध देनेवाली होती हैं । जहाँ वर्षा करनेवाले मेघ दिखायी देते हैं, उस भूमि पर कभी अनाज और तृण का अभाव नहीं होता तथा वहाँ के लोग कभी भूख से पीड़ित नहीं देखे जाते हैं । सूर्यदेव की दिव्य किरणें पृथ्वी का जल सोखकर पयस्विनी (गौएँ अथवा जलवती) हो जाती हैं, तब इन्द्रदेव उनका दोहन करते हैं । उनके दोहन करने पर वे किरणमयी गौएँ नूतन एवं पवित्र जलरूपी दुग्ध प्रकट करती हैं, जिसे मेघों के घटारूप दुग्धपात्र में सञ्चित किया जाता है ।

एवमेतत्पयो दुग्धं गोभिः सूर्यस्य वारिदैः ।

पर्जन्यः सर्वभूतानां भवाय भुवि वर्षति ।।१५/१८।।

इस प्रकार पर्जन्यदेव (इन्द्र) इस पृथ्वी के जल को सूर्य की किरणों द्वारा खींचकर सम्पूर्ण प्राणियों की वृद्धि के लिये उसे मेघों द्वारा भूतल पर बरसा देते हैं ।

शरद ऋतु में बादलों के आवरण से मुक्त हुए ग्रह-नक्षत्र, कमल-मण्डित जल तथा मनुष्यों के मन प्रसाद (स्वच्छता और प्रसन्नता) को प्राप्त ही रहे हैं ।

क्षीरिण्यो द्विगुणं गावः प्रमत्ता द्विगुणं वृषाः ।

वनानां द्विगुणा लक्ष्मीः सस्यैर्गुणवती मही ।।१६/३१।।

गायें दूने दूध देनेवाली, वृषभ दूने प्रमुदित, वनसम्पदा दूनी तथा पृथिवी सस्य से कई गुणी पूर्णता को प्राप्त करती हैं ।

सवत्सां धेनुकां श्वेतां होमधुक्कामदोहनाम् ।

क्षीरारणिं कर्षमाणं महेन्द्रगिरिगोचरम् ।।वि.पु.३९/२४।।

परशुरामजी के पास में श्वेत रंग की गाय थी, जो सवत्सा थी, वह केवल होम के लिये दुही जाती थी; इसलिये होमधेनु कही जाती थी । इसके सिवा वह मुनि की इच्छा के अनुसार समस्त वस्तुओं को देने में समर्थ थी, इसलिये कामधेनु या कामदोहना कहलाती थी । दुग्धरूपी अग्नि को प्रकट करने के लिये अरणी के समान शोभित होने वाली उस होमधेनु को परशुराम जी कहीं खींचकर ले जा रहे थे ।

गोव्रत

वैशम्पायन उवाच

एकत्रिंशाहिको यज्ञो वन्ध्यादोषविनाशकः ।

गोव्रतं तु स्त्रिया कार्यं पारणं पुरुषेणच ।।प.पु.ह.मा.१/२५।।

चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय स्त्रिया हृष्टेन चेतसा ।

गोव्रतं नियतं कार्यं निराहारं निरूदकम् ।।मा.१/२७।।

सूर्यास्तकालपर्यनतं यावद्ग्रामागमो भवेत् ।

आगतां च सवत्सां हि पूजयित्वा यथाविधि ।।१/२८।।

यवसं पुष्कलं दत्वा यवान्नं कुरुते स्वयम् ।

एवं मासे चतुर्थ्यां सा शुक्लायां व्रतमाचरेत् ।।१/२९।।

स्त्रीव्रतं कथितं राजन् पुरुषस्य तथैव च ।

एवं मासव्रतं कृत्वा सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ।।१/३०।।

वैशम्पायन ने जनमेजय से कहा – राजन्! इकतीस दिनों में पूर्ण होनेवाला हरिवंश का पारायण रूपी यज्ञ नारी के वन्ध्यात्व दोष का नाश करने वाला है ।

हरिवंश कथाश्रवण के आरम्भ से पहले स्त्री और पुरुष को गोव्रत करना चाहिये, फिर व्रत के अन्त में उसका पारण भी स्त्री और पुरुष दोनों को करना चाहिये । स्त्री को चाहिये कि वह मन में अत्यन्त प्रसन्न हो चतुर्थी तिथि को प्रातःकाल उठकर नियमपूर्वक गोव्रतारम्भ करे । प्रातःकाल से सूर्यास्त तक, जब-तक चरने को गयी हुई गौएँ गाँव में लौट न आयँ, तब-तक अन्न और जल ग्रहण नहीं करना चाहिये । जब गौएँ द्वार पर आ जायँ, तब बछड़े सहित गौओं की विधिवत् पूजा करके उसे प्रचुर मात्रा में घास-भूसा आदि देकर स्वयं भी यवान्न ग्रहण करे । इस प्रकार किसी भी मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी को नारी यह व्रत आरम्भ करे और उसे एकमास तक निभाये । राजन्! इस तरह स्त्री और पुरुष के लिये यह व्रत बताया गया है । इसका इसी प्रकार एक मास तक आचरण करके मनुष्य निश्चय ही उत्तम पुत्र प्राप्त कर लेता है ।

। (पद्मपुराणे हरिवंशमाहात्ये कथितम्) ।

(अग्निमहापुराण)

उपपातके गोवधे च प्रायश्चित्तम्

पुष्कर उवाच

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान् पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ।।१६९/५।।
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ।।१६९/६।।
दिवानुगच्छेद्गाश्चैव तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
वृषभैकादशा गास्तु दद्याद्विचरितव्रतः ।।१६९/७।।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ।
पादमेकञ्चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ।।१६९/८।।
योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ।
कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विषमेषु भयेषु च ।।१६९/९।।
यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकपादो विधीयते ।
घण्टाभरणदोषेण तथैवार्धं विनिर्दिशेत् ।।१६९/१०।।
दमने दामने रोधे शकटस्य नियोजने ।
स्तम्भश्रृंखलपाशेषु मृते पादोनमाचरेत् ।।१६९/११।।
श्रृंगभंगेऽस्थिभंगे च लांगूलच्छेदने तथा ।
यावकन्तु पिबेत्तावद्यावत्सुस्था तु गौर्भवेत् ।।१६९/१२।।
गोमतीं च जपेद्विद्यां गोस्तुतिं गोमतीं स्मरेत् ।
एका चेद् बहुभिर्दैवाद्यत्र व्यापादिता भवेत् ।।१६९/१३।।
पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ।
उपकारे क्रियमाणे विपत्तौ नास्ति पातकम् ।।१६९/१४।।

पुष्करजी बोले- गोवध करनेवाला अथवा उपपातकी मनुष्य एक मास तक जौ पीकर रहे, और सिरका मुण्डन कराकर इस मृत गौके चर्मको ओढ़कर गोशालामें निवास करे । वह दिनके चतुर्थ प्रहरमें नियमित रूपसे लवणहीन अन्नका भोजन करे । उसके बाद जितेन्द्रिय होकर दो मास तक गोमूत्रसे नित्य स्नान करे । दिनमें गौओंके पीछे-पीछे चलता रहे और खड़ा होकर गौओंके खुरसे उड़ती हुई धूलिका पान करे । इसके समाप्त होनेपर वह ग्यारह बैल तथा ग्यारह गायोंका दान करे । यह सब न करनेकी स्थितिमें वह अपना सर्वस्व किसी वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे । यदि रोकनेके कारण गौ मर जाय तो एक चौथाई प्रायश्चित्त, बाँधनेके कारण मर जाय तो आधा प्रायश्चित्त, यदि गाड़ीमें जोतनेसे बैल मर जाय तो तीन चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये और बैल यदि मारनेसे मर जाय तो पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये । वनों, दुर्गो, विषमस्थानों तथा भयस्थानोंमें यदि कोई विपत्ति हो तो एक चौथाई प्रायश्चित्त करना

चाहिये । यदि अलंकारकेलिये घण्टा आदि बाँधनेके कारण बैलकी मृत्यु हो जाय तो आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

यदि दमन करने, बाँधने, रोकने, गाड़ीमें जोतने, खूँटामें बाँधने, रस्सी अथवा फन्दे में फँसानेके कारण बैलकी मृत्यु हो जानेपर तीन चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये । यदि बैलकी सींग टूट-टूट जाय या पूँछ कट जाय तो तबतक जौ पीकर रहना चाहिये । जबतक बैल स्वस्थ न हो जाय । वह गोमती विद्याका जप करे तथा गौकी स्तुति स्वरूप गोमतीका स्मरण करता रहे । यदि किसी कारणवश अनेक मनुष्य मिलकर किसी एक गौको मारे तो उन सभीको गोहत्याको बाँट-बाँटकर अपने-अपने हिस्सेका प्रायश्चित्त करना चाहिये । यदि उपकार करते समय गौकी मृत्यु हो जाय तो गोहत्याका पाप नहीं लगता है ।

असत्परिग्रह-प्रायश्चित्त

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ।।१७०/१०।।
उपानहममेध्यं च यस्य संस्पृशते मुखम् ।
मृत्तिका गोमयी तत्र पञ्चगव्यं च शोधनम् ।।१७०/३९।।
वान्तो विविक्तः स्नात्वा तु घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ।
स्नानात्क्षुरकर्मकर्ता कृच्छ्रकृद् ग्रहणेऽन्नभुक् ।।१७०/४०।।
अपांक्तेयाशी गव्याशी शुना दष्टस्तथा शुचिः ।।४२।।

असत्परिग्रहके कारण दूषित ब्राह्मण एकसाल तक गोशालामें दूग्ध पीकर निवास करके तथा प्रतिदिन सावधानीपूर्वक तीनहजार गायत्रीका जप करके शुद्ध होता है । जिसके मुखसे उपानह् (जूता) आदि अमेध्य वस्तुएँ छू जायँ, उसके मुखपर मिट्टी और गोबरको फेरना चाहिये तथा पञ्चगव्य पीना चाहिये । वमन अथवा विरेचनके बाद स्नान करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्धि होती है । क्षौरकर्मके पश्चात् स्नान करनेसे तथा ग्रहणमें भोजन करनेवालेकी प्राजापत्य व्रतसे शुद्धि होती है । पंक्तिदूषक मनुष्योंके साथ पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवाला, कुत्ते या कीटसे दंशित मनुष्यकी शुद्धि पञ्चगव्य पीनेसे होती है ।

महोत्क्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुका च गौः ।
पालो येषान्तु मोच्या दैवराजपरिप्लुताः ।।१५७/१४।।

साँड़ एवं देवी-देवता आदिकी प्रसन्नताकेलिये अथवा वृषोत्सर्ग विधिसे छोड़े गये पशु, दस दिनके भीतरकी ब्यायी हुई गौ तथा किसी कारणवश अपने समूहसे

बिछुड़कर आया हुआ पशु तथा जिसका कोई चरवाहा न हो, इस प्रकारके देवोपहत तथा राजोपहत पशु दण्ड योग्य नहीं होते वे छोड़ देनेयोग्य ही होते हैं ।

गवायुर्वेद, शान्त्यायुर्वेद, गोमतीविद्या

धन्वन्तरिरुवाच

गोविप्रपालनं कार्यं राज्ञा गोशान्तिमावदे ।
गावः पवित्रा मांगल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥२९२।१॥
शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परम् ।
गवां कण्डूयनं वारि श्रृंगस्याघौघमर्दनम् ॥२॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च रोचना ।
षडंगं परमे पाने दुःस्वप्नाद्यादिवारणम् ॥३॥
रोचना विषरक्षोघ्नी ग्रासदः स्वर्गगो गवाम् ।
यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकान्नरः ॥४॥
परगोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक् ।
गोदानात्कीर्तनाद्रक्षां कृत्वा चोद्धरते कुलम् ॥५॥
गवां श्वासात्पवित्रा भूः स्पर्शनात्किल्विषक्षयः ।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥६॥
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ।
सर्वाशुभविनाशाय पुराचरितमीश्वरैः ॥७॥
प्रत्येकं च त्र्यहाभ्यस्तं महासान्तपनं स्मृतम् ।
सर्वकामप्रदं चैतत्सर्वाशुभविमर्दनम् ॥८॥

श्रीधन्वन्तरि भगवान्‌ने कहा- सुश्रुत! राजाको गौओं तथा ब्राह्मणोंका पालन करना चाहिये । अब मैं गोशान्तिका वर्णन कर रहा हूँ । गौएँ पवित्र एवं मंगलमयी हैं । गौओंमें सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं । गौओंका गोबर एवं मूत्र अलक्ष्मीके नाशका सर्वोत्तम साधन है । उनके शरीरको खुजलाना, सींगोंको सहलाना और उनको जल पिलाना पापसमूहका नाश करनेवाला है । गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदधि, घृत और गोरोचन यह षडंगपान दुःस्वप्ननिवारणकी सर्वोत्तम ओषधि है । गोरोचनसे विष तथा राक्षसोंका विनाश होता है । गौओंको खिलानेवाला स्वर्गलोकका भागी होता है । जिसके घरमें गायें दुःखी होती हैं; वह नरकगामी होता है । दूसरोंकी गायोंको घास देनेवाला स्वर्गलोक जाता है, गौओंका कल्याण करनेवाला ब्रह्मलोकका भागी होता है, गोदान, गोमाहात्म्यकीर्तन और गोरक्षणकेद्वारा मनुष्य अपने कुलका उद्धार करता है । पृथिवी गौओंके श्वाँससे पवित्र होती है । उनके स्पर्शसे पापोंका क्षरण होता है । यदि

गोमूत्र, गोबर, घी, गोदुग्ध, गोदधि और कुशाका जल इन सबोंको मिलाकर पीकर एकदिन उपवास करे तो इससे चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है । प्राचीनकालमें देवताओंने भी समस्त पापोंके विनाशकेलिये इस अनुष्ठान को किया था । इनमें से क्रमशः प्रत्येक वस्तुका भक्षण करके यदि तीन-तीन दिन तक रहा जाय तो उसे महासान्तपनव्रत कहते हैं, यह व्रत सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला और सर्वपापविनाशक है ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।
निर्मलाः सर्वकामाप्त्या स्वर्गगाः स्युर्नरोत्तमाः ॥९॥
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ॥१०॥
तप्तकृच्छ्रव्रतं सर्वपापघ्नं ब्रह्मलोकदम् ।
शीतैस्तु शीतकृच्छ्रं स्याद् ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदम् ॥११॥
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं वृत्तिं कुर्याच्च गोरसैः ।
गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती ॥१२॥
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी स्वर्गगो भवेत् ।
विद्यां च गोमतीं जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत् ॥१३॥
गीतैर्नृत्यैरप्सरोभिर्विमाने तत्र मोदते ।
गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः ॥१४॥
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परम् ।
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ॥१५॥
पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च वहन्ति च ।
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ॥१६॥
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः ।
सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम् ॥१७॥
गावः पवित्रं परमं गावो मांगल्यमुत्तमम् ।
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः ॥१८॥

केवल दूध पीकर इक्कीसदिन रहनेसे कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत होता है । इसके अनुष्ठानसे श्रेष्ठ मानव समस्त अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्तकर पापमुक्त हो जाता है और स्वर्गको प्राप्त करता है । तीनदिन गर्म दूध तथा तीनदिन वायु पीकर रहनेको तप्तकृच्छ्रव्रत कहते हैं । इसका अनुष्ठान करनेवालेका समस्त पाप नष्ट हो जाता है और वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है । यदि इन सभी ठण्डी वस्तुओंको पीकर रहे तो शान्तिकृच्छ्रव्रत होता है, इसको ब्रह्माजीने बतलाया है । इस व्रतके अनुष्ठानसे

ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है । गोव्रत करनेवालेको चाहिये कि वह एकमास तक गोमूत्रसे स्नान करे । गोरस (दुग्ध) पीकर रहे । गायोंके पीछे चले और गायोंके भोजन करलेनेके बाद भोजन करे । इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य पापरहित होकर स्वर्गलोकको प्राप्त करता है । वह गोमती विद्याका जप करके गोलोकको प्राप्त करता है । वहाँपर वह अप्सराओंके साथ विमानपर बैठकर गीत-नृत्य करता हुआ प्रसन्न होता है । गुग्गुलके समान सुगन्धि वाली गौएँ सुरभिरूपिणी होती हैं । गौएँ समस्त प्राणियोंकी प्रतिष्ठा हैं, वे परम मंगलमयी हैं । वे परम अन्न और देवताओंकेलिये उत्तम हविष्यस्वरूप हैं । वे समस्त प्राणियोंको पवित्र करनेवाले गोदुग्ध और गोमूत्रका वहन एवं क्षरण करती हैं । वे स्वर्गलोकमें देवताओंको मन्त्रसे पवित्र किये गये हविष्यकेद्वारा देवताओंको तृप्त करती हैं । ऋषियोंके अग्निहोत्र एवं होमकार्यमें गायें प्रयुक्त होती हैं । गायें समस्त जीवोंके सर्वोत्तम रक्षक हैं । गायें परम पवित्र हैं, वे सर्वोत्तम मंगलप्रद हैं । गायें स्वर्गलोककी सोपान हैं । वे सनातन धन्य हैं ।

नमो गोभ्य: श्रीमतीभ्य: सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नम: ।।२७२/१९।।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।।२०।।
देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभि: सकलं जगत् ।
धार्यते वै सदा तस्मात्सर्वे पूज्यतमा मता: ।।२१।।
पिबन्ति यत्र तत्तीर्थं गंगाद्या गाव एव हि ।
गवां माहात्म्यमुक्तं हि चिकित्सां च तथा श्रृणु ।।२२।।

श्रीमती सुरभिपुत्री गायोंको नमस्कार है । पवित्र ब्रह्माजीकी पुत्री गायोंको बार-बार नमस्कार है । ब्राह्मण और गायें दोनों एक ही कुलकी दो शाखाएँ हैं । एकमें मन्त्र स्थित हैं और दूसरेमें हविष्य । देवता, ब्राह्मण, गौ, साधु, एवं साध्वी नारियाँ केवल इनपर ही संसार टिका है । अत एव वे सभी सर्वाधिक पूज्य हैं । जहाँपर गायें जल पीती हैं वह स्थान तीर्थ है । गंगा आदि नदियाँ गो स्वरूप हैं । यहाँ तक मैंने गायोंका माहात्म्य बतलाया । अब तुम गायोंकी चिकित्साके विषयमें सुनो ।

श्रृंगामयेषु धेनूनां तैलं दद्यात्ससैन्धवम् ।
श्रृंगवेरबलामांसकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ।।२३।।
कर्णशूलेषु सर्वेषु मञ्जिष्ठाहिंगुसैन्धवै: ।
सिद्धं तैलं प्रदातव्यं रसोनेनाथ वा पुन: ।।२४।।
बिल्वमूलमपामार्गन्धातकी च सपाटला ।

कुटजन्दन्तशूलेषु लेपात्तच्छूलनाशनम् ।।२५।।

गायोंके सींगके रोगोंमें सोंठ, खरेठी और जटामांसी को सिलपर पिसकर उसमें मधु, और तेल मिलाकर प्रयोग करे । गायोंके सभी कानोंके रोगमें मञ्जीष्ठा, हींग और सैन्धवको डालकर सिद्ध किया हुआ तेलका प्रयोग करना चाहिये या लशुनके साथ पकाया हुआ तेलका प्रयोग करना चाहिये । समस्त दन्तशूलोंमें बिल्वमूल, अपामार्ग, धातकी, पाटला और कूटजका लेप करना चाहिये । वह शूलनाशक होता है ।

दन्तशूलहरैर्द्रव्यैर्घृतं राम! विपाचितम् ।
मुखरोगहरं ज्ञेयं जिह्वारोगेषु सैन्धवम् ।।२६।।
श्रृंगवेरं हरिद्रे द्वे त्रिफला च गलग्रहे ।
हृच्छूले वस्तिशूले च वातरोगे क्षये तथा ।।२७।।
त्रिफला घृतमिश्रा च गवां पाने प्रशस्यते ।
अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठां चैव प्रदापयेत् ।।२८।।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु तथा शाखागदेषु च ।
श्रृंगवेरं च भार्गीञ्च कासे श्वासे प्रदापयेत् ।।२९।।
दातव्या भग्नसन्धाने प्रियंगुर्लवणान्विता ।
तैलं वातहरं पित्ते मधुयष्टीविपाचितम् ।।३०।।
कफे व्योषं च समधु सपुष्टकरजोऽस्रजे ।
तैलाज्यं हरितालं च भग्नक्षतिश्रृतन्ददेत् ।।३१।।
माषास्तिलाः सगोधूमाः पशुक्षीरं घृतं तथा ।
एषां पिण्डी सलवणा वत्सानां पुष्टिदा त्वियम् ।।३२।।
बलप्रदा विषाणां स्याद् ग्रहनाशाय धूपकः ।
देवदारू-वचा-मांसी गुग्गुलुर्हिंगुसर्षपाः ।।३३।।

दन्तशूलनाशक द्रव्यों और कूटको घीमें पकाकर देनेसे मुख रोगोंका निवारण होता है । जिह्वारोगोंमें सैन्धव लवण प्रशस्त होता है । गलग्रहरोगमें सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी और त्रिफलाका प्रयोग करना चाहिये । हृदयशूल, वस्तिशूल, वातरोग और क्षयरोगमें गोघृतमिश्रित त्रिफलाका अनुपान प्रशस्त होता है । अतिसारमें हल्दी, दारुहल्दी और पाठा देना चाहिये । सभी प्रकारके कोष्ठगतरोगोंमें, पैर, पुच्छ आदिके रोगोंमें तथा कास-श्वास आदि अन्य साधारण रोगोंमें सोंठ एवं भारंगी देना चाहिये । हड्डी आदिके दूर जानेपर लवण मिलाकर प्रियंगुका लेप करना चाहिये । तेल वातरोगका हरण करता है । पित्तरोगोंमें तैलमें पकायी हुई मुलहटी, कफरोगमें मधु सहित त्रिकटु तथा रक्तविकारमें मजबूत नखोंकी भस्म देनी चाहिये । भग्नक्षतमें तैल

एवं घृतमें पकाया हुआ हरिताल देना चाहिये । उड़द, तिल, गेहूँ, दुग्ध एवं घीको नमकके साथ मिलाकर पिण्डी देना गोवत्सोंको पुष्ट बनाता है । विषाणी बल प्रदान करती है । ग्रहबाधाका विनाश करनेकेलिये धूप देना चाहिये । देवदारु, वचा, जटामांसी, गुग्गुल, हींगु और सर्षप- इन सबोंका धूप गौओंको ग्रहबाधा दूर करनेकेलिये देना चाहिये ।

ग्रहादिगदनाशाय एष धूपो गवां हित: ।
घण्टा चैव गवां कार्या धूपेनानेन धूपिता ।।३४।।

इस धूपसे धूपित करके गायोंके गलेमें घण्टी बाँधनी चाहिये । इससे ग्रहजन्यपीड़ाकी शान्ति होगी ।

अश्वगन्धा तिलै: शुक्लं तेन गौ: क्षीरिणी भवेत् ।
रसायनं च पिन्याकं मत्तो यो धार्यते गृहे ।।३५।।
गवां पुरीषे पञ्चम्यां नित्यं शान्त्यै श्रियं यजेत् ।
वासुदेवं च गन्धाद्यैरपरा शान्तिरुच्यते ।।३६।।
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां यजेद्धरिम् ।
हरिरुद्रमजं सूर्यं श्रियमग्निं घृतेन च ।।३७।।
दधि सम्प्राश्य गा: पूज्य कार्यं वह्निप्रदक्षिणम् ।
वृषाणां योजयेद्युद्धं गीतवाद्यरवैर्बहि: ।।३८।।
गवान्तु लवणं देयं ब्राह्मणानां च दक्षिणा ।
नैमित्तिके मकरादौ यजेद्विष्णुं सह श्रिया ।।३९।।
स्थण्डिलेऽब्जे मध्यगते दिक्षु केशरगान् सुरान् ।
सुभद्राजो रवि: पूज्यो बहुरूपो बलिर्बहि: ।।४०।।
खविश्वरूपा सिद्धिश्च ऋद्धि: शान्तिश्च रोहिणी ।
दिग्धेनवो हि पूर्वाद्या: कृशरैश्चन्द्रऽईश्वर: ।।४१।।
दिक्पाला: पद्मपत्रेषु कुम्भेष्वग्नौ च होमयेत् ।
क्षीरवृक्षस्य समिध: सर्षपाक्षततण्डुलान् ।।४२।।
शतं शतं सुवर्णं च कांस्यादिकं द्विजे ददेत् ।
गाव: पूज्या विमोक्तव्या: शान्त्यै क्षीरादिसंयुता: ।।४३।।

असगन्ध और तिलके साथ नवनीत खिलानेसे गायें दुधारु होती हैं, जो बैल घरमें मदोन्मत हो जाता हो उसकेलिये हींगु परम रसायन है । शान्तिकेलिये पञ्चमी तिथिको गोबरपर श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान्का चन्दन आदिसे सदा पूजन करना चाहिये । इसको अपराशान्ति कहते हैं । आश्विनपूर्णिमाके दिन श्रीहरिका पूजन करे । विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, श्री तथा अग्निकी पूजा घृतसे करे । दही खाकर गायोंकी पूजा करके

अग्निकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये । घरके बाहर बाजे आदि बजाते हुए वृषभ युद्धका आयोजन करे । फिर गायोंको लवण दे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा । मकर आदिकी संक्रान्तिके समय नैमितिक शान्तिकेलिये वेदीस्थित कमलपर लक्ष्मीके साथ नारायणकी पूजा करे । पूर्व आदि दिशाओंमें केशरस्थान पर देवताओंकी पूजा करे । कमलके बाहर मंगलमय ब्रह्मा, सूर्य, बहुरूप, बलि, आकाश और विश्वरूपका सिद्धि, ऋद्धि, शान्ति और रोहिणी आदि (पूर्वादि दिशाओंकी) दिग्धेनुओंका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे । चन्द्रमा और शिवकी खिचड़ीसे पूजन करे । कलशस्थ कमलोंपर दिक्पालोंकी पूजा करके अग्निमें सर्षप, अक्षत, तण्डुल और खैरवृक्षकी समिधाओंका होम करना चाहिये । ब्राह्मणोंको सौ-सौ भर सुवर्ण और कांस्य आदि धातुका दान करे । पुनः क्षीरयुक्त गौओंकी पूजा करके उन्हें शान्तिकेलिये छोड़े ।

गोसमुदायका गोरक्षाकरणमन्त्र

अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु कुरु शान्तिं कुरु कुरु ।
घण्टाकर्णो महासेनो वीरः प्रोक्तो महाबलः ॥३०२।२५॥
मारीनिर्नाशनकरः स मां पातु जगत्पतिः ॥२६॥
श्लोकौ चैव न्यसेदेतौ मन्त्रौ गोरक्षकौ पृथक् ॥२७॥

(**ॐ नमो भगवते त्र्यम्बकाय उपशमयोपशमय, चुलुचुलु मिलि-मिलि भिदि-भिदि गोमानिनि चक्रिणि हूँ फट्**) अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु कुरु शान्तिं कुरु कुरु, यह गौके समुदायकी रक्षाका मन्त्र है । घण्टाकर्म महासेन वीर महाबलवान् कहे गये हैं । वे महामारीका विनाश करनेवाले हैं । वे जगत्पति मेरी रक्षा करें ।

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा सद्यः प्राणान् परित्यजेत् ।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥१७३/९॥

ब्रह्महत्यासे मुक्तिकेलिये गौ अथवा ब्राह्मणकी रक्षामें अपने प्राणोंका उत्सर्ग करे अथवा अपने-आपको अग्निमें समर्पित कर दे ।

पञ्चगव्यं पिबेद् गोघ्नो मासमासीत संयतः ॥१७३/१३॥
गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुद्धयति ।
कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं वा पादह्रासो नृपादिषु ॥१७३/१४॥
अतिवृद्धामतिकृशामतिबालां च रोगिणीम् ।
हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्धव्रतं द्विजः ॥१७३/१५॥
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दद्याद्धेमतिलादिकम् ।
मुष्टिचपेटकीलेन तथा श्रृंगादिमोटने ॥१७३/१६॥
लगुडादिप्रहारेण गोवधं तत्र निर्दिशेत् ।
दमने दामने चैव शकटादौ च योजने ॥१७३/१७॥

स्तम्भश्रृंखलपाशैर्वा मृते पादोनमाचरेत् ।
काष्ठे सान्तपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्ठके ।।१७३/१८।।
तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ।।१७३/१९।।

गोहत्या करनेवालेको एकमास तक पञ्चगव्य पीकर संयमपूर्वक रहना चाहिये । उसे गोशालामें शयन करना चाहिये । उसे गौके पीछे चलना चाहिये और गोदान करना चाहिये । ऐसा करनेसे वह शुद्ध होता है, उसे कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्रव्रत भी करना चाहिये । यही पाप राजाकेद्वारा किये जानेपर प्रायश्चित्त चतुर्थांश कम हो जाता है । यदि किसी ब्राह्मणसे अत्यन्त वृद्ध, अतिकृश, छोटी उम्रकी तथा रोगिणी गौकी हत्याकी जाय तो उसे उपर्युक्त विधानसे आधा व्रत करना चाहिये । वह अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणभोजन कराये तथा सुवर्ण एवं तिल आदिका दान करे । मुष्टिप्रहार, चपेटाप्रहार, कील तथा श्रृंग आदि मोड़ने तथा लाठी आदिसे मारनेसे यदि गौकी मृत्यु हो जाय तो उसे गोहत्या कहते हैं । मारने, बाँधने, गाड़ी आदिमें जोतने, रोकने अथवा रस्सी आदिका फन्दा लगानेसे गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये । काष्ठ एवं ढेलेसे गोहत्या हो जानेपर क्रमशः सान्तपन एवं प्राजापत्यव्रत करे । पत्थरसे मारकर गोहत्या करनेवाला तप्तकृच्छ्रव्रत करे एवं शस्त्रसे गोहत्या करनेवाला अतिकृच्छ्रव्रत करे ।

कार्त्तिकव्रतम्

कार्त्तिकव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
दशम्यां पञ्चगव्याशी एकादश्यामुपोषितः ।।१९७/१२।।
कार्त्तिकस्य सितेऽभ्यर्च्य विष्णुं देवो विमानगः ।।१९७/१३।।
त्रिरात्रं पयसः पानमुपवासपरस्त्र्यहम् ।
षष्ठ्यादि कार्त्तिके शुक्ले कृच्छ्रो माहेन्द्र उच्यते ।।१९७/१४।।
पञ्चरात्रं पयः पीत्वा दध्याहारो ह्युपोषितः ।
एकादश्यां कार्त्तिके तु कृच्छ्रोऽयं भास्करोऽर्थदः ।।१९७/१५।।
यवागूं यावकं शाकं दधि क्षीरं घृतं जलम् ।
पञ्चम्यादि सिते पक्षे कृच्छ्रः सान्तपनः स्मृतः ।।१९७/१६।।

अब मैं भोग तथा मोक्षप्रदान करनेवाले कार्त्तिकव्रतके विषयमें बतला रहा हूँ । दशमीतिथिको पञ्चगव्यका प्राशन करके एकादशीतिथिको उपवास करना चाहिये । इस व्रतके पालनमें कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन श्रीविष्णु भगवान्का पूजन करनेवाला मनुष्य देवतुल्य विमानचारी होता है । कार्त्तिकके शुक्लपक्षकी षष्ठीसे

प्रारम्भ करके तीनदिन तक केवल दुग्धपान करके रहे, इसके बाद तीनदिन तक उपवास करे, उसे माहेन्द्रकृच्छ्र कहा जाता है । कार्त्तिकमासके शुक्लपक्षकी एकादशीसे पञ्चरात्रव्रत प्रारम्भ करना चाहिये, उसमें पहले दिन दुग्धपान, दूसरे दिन दध्याहारका पुनः तीनदिन उपवास करनेसे अर्थप्रद भास्करकृच्छ्र कहलाता है । शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे प्रारम्भ करके क्रमशः जौ की लपसी, शाक, दधि, दुग्ध, घृत एवं जल इन वस्तुओंका आहार करना चाहिये । इसे सान्तपनकृच्छ्र कहते हैं ।

वैशाखे पुष्पलवणन्त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत् ।
गोदो मासोपवासी च भीमव्रतकरो हरिः ॥१९८/२॥

वैशाखमासमें पुष्प तथा लवणका त्याग करके गोदान करनेवाला व्यक्ति राजा होता है । एकमास तक उपवास करके गोदान करनेवाला इस भीष्मव्रतके प्रभावसे श्रीहरिस्वरूप हो जाता है ।

दशविधधेनुदानम्

दश धेनूः प्रवक्ष्यामि या दत्त्वा भुक्ति-मुक्तिभाक् ।
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुस्तथाऽपरा ॥२१०।१०॥
तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलधेनुका ।
क्षीरधेनुर्मधुधेनुः शर्करादधिधेनुके ॥११॥
रसधेनुः स्वरूपेण दशमी विधिरुच्यते ।
कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासान्तु राशयः ॥१२॥
कृष्णाजिनञ्चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद् भुवि ।
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ॥१३॥
लघ्वैणकाजिनं तद्वद्वत्सस्य परिकल्पयेत् ।
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम् ॥१४॥
उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भारचतुष्टयात् ।
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता ॥१५॥
अर्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु ।
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गुडवित्तानुसारतः ॥१६॥
पञ्चकृष्णलका माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ।
पलं सुवर्णाश्चत्वारस्तुला पलशतं स्मृतम् ॥१७॥
स्याद् भारो विंशतितुला द्रोणस्तु चतुराढकः ।

अब मैं दस धेनुओंका वर्णन करता हूँ, जिनका दान करके मनुष्य भोग एवं मोक्षका अधिकारी बनता है । पहली गुड़धेनु, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी

जलधेनु, पाँचवी क्षीरधेनु, छठी मधुधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दसवीं गौ साक्षात् धेनु होती है । अब मैं इनके दानकी विधि बतलाता हूँ – तरल पदार्थोंकी धेनुओंके प्रतिनिधि रूपसे घरोंमें उन राशिका दान करना चाहिये । गोबरसे लिपी–पुती भूमिपर सर्वत्र कुशा बिछाकर उसके ऊपर चार हाथका काले मृगका चर्म रखना चाहिये । मृगचर्मकी ग्रीवा पूर्वाभिमुख होनी चाहिये । छोटे कृष्णमृगचर्म वत्सके स्थानपर होना चाहिये । वत्स सहित धेनुका मुख पूर्वकी ओर और पैर उत्तरकी ओर होना चाहिये । चार भार गुड़से बनी गुड़धेनु सदा उत्तम होती है । एक भार गुड़का गोवत्स बनाना चाहिये । दो भार गुड़की गौ मध्यमा होती है, उसका बछड़ा आधे भारका होता है । कनिष्ठ गौ एक भार गुड़की होती है । उसके साथ चौथाई भारका बछड़ा होना चाहिये । पाँच गुञ्जेका एक मासा होता है । सोलह मासेका एक सुवर्ण होता है, चार सुवर्णका एक पल होता है, और सौ पलका एक तुला होता है, बीस तुलाका एक भार एवं चार आढ़क (कापल)का एक द्रोण होता है ।

धेनुवत्सौ गुडस्योभौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ ।
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥१८॥
सितसूत्रशिरालौ च सितकम्बलकम्बलौ ।
ताम्रगड्डुकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥१९॥
विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ।
क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥२०॥
सुवर्णश्रृंगाभरणौ रजतक्षुरसंयुतौ ।
नानाफलमया दन्ता गन्धघ्राणप्रकल्पितौ ॥२१॥
रचयित्वा यजेद्धेनुमिमैर्मन्त्रैर्द्विजोत्तम! ॥२२॥

गुडनिर्मित धेनु और वत्सको श्वेत एवं सूक्ष्म वस्त्रसे ढँकना चाहिये । सीपीसे उनके कान, ईखसे पैर, पवित्र मोतियोंसे नेत्र, श्वेत धागोंसे शिरा तथा अलक, सफेद कम्बलसे उनके गलकम्बल (सास्ना), ताम्बेके डील और पीठ तथा श्वेत चँवरसे उन दोनोंका रोम बनाना चाहिये । उनके भौहोंको मूंगसे, उनके स्तनोंको नवनीतसे, उनके पूँछ रेशमी वस्त्रसे, कांस्यदोहनपात्र एवं नीलमणिसे उनके नेत्रको बनाना चाहिये । सोनेकी उन दोनोंकी सींग और चाँदीके खुर बनाने चाहिये । उनके दाँत अनेक फलोंके तथा नाक सुगन्धित द्रव्यसे बनानी चाहिये । हे द्विजोतम! इस प्रकारसे धेनुका निर्माण करके इन मन्त्रोंसे उसकी पूजा करे –

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।

धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु ॥२३॥
देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥२४॥
विष्णुवक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।
चन्द्रार्कऋक्षशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रियै ॥२५॥
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां स धेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥२६॥
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः ।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥२७॥

जो सभी प्राणियोंकी लक्ष्मी हैं तथा जो देवताओंके भीतर विद्यमान हैं, वे धेनुस्वरूपा देवी मुझे शान्ति प्रदान करें । जो शरीरके भीतर रहकर रुद्राणी कहलाती हैं और जो भगवान् शंकरकी प्रियतमा है वे देवी धेनुरूपसे मेरे पापोंको दूर करें । जो देवी विष्णुके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीरूपसे तथा अग्निकी जो स्वाहा नामकी पत्नी हैं, जो सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र समुदायोंकी शक्ति हैं, वे धेनुरूपसे मुझे श्री प्रदान करें । जो ब्रह्माजीकी लक्ष्मी हैं, कुबेरकी लक्ष्मी हैं तथा लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मुझे वर प्रदान करें । हे देवि! आप पितरोंकी स्वधा तथा यज्ञभोक्ता देवताओंकेलिये स्वाहा हैं । अत एव आप सभी पापोंको नष्ट करनेवाली गौरूपसे मुझे शान्ति प्रदान करें ।

एवमामन्त्रितां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
समानं सर्वधेनूनां विधानं चैतदेव हि ॥२८॥
सर्वयज्ञफलं प्राप्य निर्मलो भुक्ति-मुक्तिभाक् ।
स्वर्णश्रृंगी शफै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता ॥२९॥
कांस्योपदोहा दातव्या क्षीरिणौ गौः सदक्षिणा ।
दाताऽस्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान् सोमसम्मितान् ॥३०॥
कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम् ।
स्वर्णश्रृंगीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम् ॥३१॥
शक्तितो दक्षिणायुक्तां दत्त्वा स्याद् भुक्ति-मुक्तिभाक् ।
सवत्सरोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीम् ॥३२॥
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूर्वेण विधिना ददेत् ।
आसन्नमृत्युना देया सवत्सा गौस्तु पूर्ववत् ॥३३॥
यमद्वारे महावीरे तप्ता वैतरणी नदी ।
तान्तर्तुञ्च ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीं च गाम् ॥३४॥

इस प्रकारसे अभिमन्त्रित गौ ब्राह्मणको दान दे देना चाहिये । अन्य सभी धेनुओंके दानका विधान यही है । धेनुदान करनेवाला समस्त यज्ञोंका फल प्राप्तकरके

निष्पाप हो जाता है तथा भोग और मोक्षका अधिकारी होता है । सोनेकी सींगोंवाली, चाँदीके खुरोंवाली, सीधी-सादी, वस्त्रसे आच्छादित एवं दुग्ध देनेवाली गायका, काँसेके दोहनपात्र तथा दक्षिणाके साथ दान देना चाहिये । गोदान करनेवाला व्यक्ति उतने वर्षो तक स्वर्गमें निवास करता है, जितने रोम गौके शरीरमें होते हैं । कपिला गौका दान करनेसे दाताके सात पीढ़ीके लोग तर जाते हैं । सुवर्ण सींग, रजत खुर, कांस्यदोहनीसे युक्त कपिला गौका शक्तिके अनुसार दक्षिणासहित दान देनेसे दाता भोग एवं मोक्षका भागी होता है । उभयतोमुखी (प्रसव करती हुई) गौका पूर्वोक्त विधिसे दान देकर दाता उतने युगों तक स्वर्गलोकमें निवास करता है, जितने रोम उस गौके शरीर में होते हैं । मरणासन्न मनुष्यको भी पूर्वोक्त विधिसे ही सवत्सा गौका दान करना चाहिये और उसे यह संकल्प करना चाहिये कि अत्यन्त भयंकर यमलोकके द्वारा तप्तजलसे युक्त वैतरणी नदी प्रवाहित होती है, उसको पार करनेकेलिये मैं इस कृष्णवर्णा वैरतणी गौका दान करता हूँ । (२८-३४)

(दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने ।
साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे ।।) लि.पु.४०/४।।

गोदानादिकं वृषोत्सर्गमाहात्म्यं च

अग्निरुवाच

एकां गां दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।
शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ।।२११।१।।
प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा ।
गन्धर्वाऽप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः ।।२।।
गवां शतप्रदानेन मुच्यते नरकार्णवात् ।
दत्त्वा वत्सतरीं चैव स्वर्गलोके महीयते ।।३।।
गोदानादायुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात् ।
इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ।।४।।
महिषीदानमाहात्म्यादस्तु मे सर्वकामदा ।
धर्मराजस्य साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ।।५।।
महिषासुरस्य जननी या साऽस्तु वरदा मम ।
महिषीदानाच्च सौभाग्यं वृषदानाद्दिवं व्रजेत् ।।६।।
संयुक्तहलपंक्त्याख्यं दानं सर्वफलप्रदम् ।
पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता दारुजा वृषसंयुता ।।७।।
सौवर्णपट्टसन्नद्धान्दत्त्वा स्वर्गे महीयते ।

दशानां कपिलानां तु दत्तानां ज्येष्ठपुष्करे ॥८॥
तत्फलं चाक्षयं प्रोक्तं वृषभस्य तु मोक्षणे ।
'धर्मोऽसि त्वं चतुष्पादश्चतस्रस्ते प्रिया इमाः ॥९॥
नमो ब्रह्मण्यदेवेश! पितृभूतर्षिपोषक! ।
त्वयि मुक्तेऽक्षया लोका मम सन्तु निरामयाः ॥१०॥
मा मे ऋणोऽस्तु दैवत्यो भौतः पैत्रोऽथ मानुषः ।
धर्मस्त्वं त्वत्प्रपन्नस्य या गतिः साऽस्तु मे ध्रुवा' ॥११॥
अंकयेच्चक्रशूलाभ्यां मन्त्रेणानेन चोत्सृजेत् ।
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ।
मुच्यते प्रेतलोकात्तु षण्मासे चाब्दिकादिषु ॥१२॥

अग्निदेवने कहा - वसिष्ठ! जिसके पास दस गायें हों वह एक गायका, सौ गायोंवाला दस गायोंका, तथा एक हजार गौका स्वामी सौ गायोंका दान करे तो समान फल होता है । एक हजार गोदान करनेवाला उस लोकमें जाता है, जहाँके भवन सुवर्णके बने होते हैं और सम्पत्तियोंकी धारा बहती रहती है जहाँ अप्सरायें निवास करती हैं । सौ गायोंका दान करके मनुष्य नरकसागरसे मुक्त हो जाता है और बछियाका दान करके दाता स्वर्गलोकमें पूजित होता है । गोदानसे दीर्घायुष्ट्व, आरोग्य, सौभाग्य एवं स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जो इन्द्रादि लोकपालोंकी मंगलमयी राजमहिषी हैं, वे देवी महिषी दानके माहात्म्यसे मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करें । जिनका पुत्र धर्मराजकी सहायतामें नियुक्त है एवं जो महिषासुरकी जननी हैं, हे देवी मुझे वर प्रदान करें ।

महिषीका दान करनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा वृषभदानसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । संयुक्त हलपंŸ नामक दान समस्त फलोंको प्रदान करता है । काष्ठनिर्मित दस हलोंकी पंक्ति, जो स्वर्णमय पट्टेसे परस्पर जुड़ी हो और प्रत्येक हलके साथ आवश्यक संख्यामें बैल भी हो तो उसका दान संयुक्तहलपंक्ति नामक दान कहलाता है । वह दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होता है । ज्येष्ठपुष्कर तीर्थमें दस कपिला गायोंके दान करनेका फल अक्षय होता है तथा वृषोत्सर्ग करनेका भी फल अक्षय होता है । वृषोत्सर्ग करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये ।

'देवेश्वर! तुम चार चरणोंसे युक्त साक्षात् धर्म हो । ये तुम्हारी चार प्रियतमायें हैं । पितरों, मनुष्यों और ऋषियोंका पोषण करनेवाले वेदमूर्ति वृष! तुम्हें छोड़नेसे मुझे निरामय तथा अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो । मैं देवऋण, भूतऋण, पितृऋण तथा मनुष्य ऋणसे मुक्त हो जाऊँ । तुम धर्मस्वरूप हो । तुम्हारे शरणागतोंकी जो गति होती है,

वह नित्य गति मुझे प्राप्त हो ।' वृषको इस मन्त्रसे शंख तथा चक्रसे अंकित करना चाहिये और उसको छोड़ देना चाहिये । जिस मृतकके एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह छः मास अथवा एक वर्षमें प्रेतलोकसे (सपिण्डीकर्मान्तर) अवश्य मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ।

गव्य पदार्थ से चिकित्सा

स्नुहीक्षीरं गव्यघृतं पक्वं पीत्वाऽहिजे विषे ।।२९८/२।।
महिषाक्षेण धूपश्च द्वे रात्रे भीषणी ग्रही ।
तच्चेष्टा कासनिश्वासौ गात्रसंकोचनं मुहुः ।।२९९/४।।
आजमूत्रैर्लिपेत्कृष्णासेव्यापामार्गचन्दनैः ।
गोश्रृंगदन्तकेशैश्च धूपयेद्विधिवद् बलिः ।।२९९/५।।
सप्तमे मुक्तकेश्यार्तः पूतिगन्धो विजृम्भणम् ।
सादः प्ररोदनं कासो धूपो व्याघ्रनखैर्लिपेत् ।।२९९/१३।।
वचागोमयगोमूत्रैः संलिपेद्दुःखशान्तये ।।२९९।१४।।

सर्पविषमें स्नूही, दुग्ध, गोदुग्ध, गोदधि एवं गोमूत्रमें पकाया गया घृत पीना चाहिये । जन्मकी दूसरी रात्रिमें बच्चेको भीषणी नामक ग्रही ग्रहीत करती है । ऐसा बालक खाँसी तथा श्वाससे पीड़ित होता है । वह बार-बार अपने शरीरको सिकोड़ता है । इसकी रक्षाकेलिये गुग्गुलका धूप देकर उसके शरीरमें बकरीके (बकरीका बच्चा-मेमना) मूत्रमें पिप्पली, अपामार्ग और चन्दनको पीसकर लेप करे और गोश्रृंग, गोदन्त तथा गोकेशका धूप दे तथा विधिवत् उस ग्रहीको बलि प्रदान करे । सातवें दिन बालक मुक्तकेशी नामक ग्रहीसे प्रभावित होता है । उसके शरीरमें सड़े मांसकी दुर्गन्ध आती है, वह जम्भाई लेता है और चिल्लाकर जोरसे रोता है खाँसी आती है । इसको व्याघ्रनखका धूप तथा वचाको गोबर एवं गोमूत्रमें पीसकर शरीर में लेप करे ।

व्रतस्वरूपं पञ्चगव्यकरणं च

अग्निरुवाच

तिथिवारर्क्षदिवसमासर्त्वब्दार्कसंक्रमे ।
नृस्त्रीव्रतादि वक्ष्यामि वसिष्ठ! श्रृणु तत्क्रमात् ।।१७५।१।।
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम् ।
नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ।।२।।
व्रतं हि कर्तृसन्तापात्तप इत्यभिधीयते ।

इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ॥३॥
अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते ।
व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा द्विजाः ॥
ते स्युर्देवादयः प्रीता भुक्ति-मुक्तिप्रदायकाः ॥४॥
उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥५॥
कांस्यं मांसं मसूरं च चणकं कोरदूषकम् ।
शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम् ॥६॥
पुष्पालंकारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।
उपवासे न शस्यन्ते दन्तधावनमञ्जनम् ॥७॥
दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतं चरेत् ॥८॥
असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलभक्षणात् ।
उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वापाक्षमैथुनात् ॥९॥

अग्निदेवने कहा - हे वसिष्ठ! अब मैं तिथि-वार-नक्षत्र एवं दिनका योग, मास, ऋतु तथा वर्ष आदिसे सूर्यके संयोगके कारण होनेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा, उसे आप क्रमशः सुनें, शास्त्रोंमें बतलाये गये नियमोंको व्रत कहते हैं और उन्हींको ही तप भी कहा जाता है । व्रतोंके नियमोंको ही दम आदि कहा जाता है । व्रत करनेवालोंको सन्तप्त करनेके कारण ही व्रतोंको तप कहा जाता है । इन्द्रिय-समूहका नियमन किये जानेके कारण उन्हें ही नियम कहा जाता है । जो ब्राह्मण अग्न्याधानादि नहीं करते हैं अर्थात् अग्निहोत्री नहीं है उनकेलिये व्रत, उपवास, नियम तथा नानाप्रकारके दानोंसे कल्याणकी प्राप्ति होती है । उक्त व्रत, उपवास आदिके पालनसे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् तथा देवता आदि भोग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं । पापोंसे पराङ्मुख होकर गुणोंके संसर्गमें रहनेको ही व्रत कहते हैं । उपवास करनेवाला व्यक्ति सभी भोगोंका त्याग करके सद्‌गुणोंका पालन करता है । उपवासमें कांस्यपात्र, मांस, मसूरकी दाल, चना, कोदो, शाक, मदिरा, परान्न, स्त्री, पुष्प, अलंकार (अलंकृतवस्त्र), धूप, गन्धानुलेपन, दन्तधावन तथा अञ्जन आदिका सेवन नहीं करना चाहिये । प्रातःकाल दातुन करके तथा पञ्चगव्यप्राशन करके व्रत करना चाहिये । बार-बार जल पीनेसे, एकबार पान खानेसे, दिनमें सोनेसे तथा अक्ष मैथुनसे (किसीपर बुरी दृष्टि डालना) भी उपवास दूषित हो जाता है । **१-९**

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाऽग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च ॥१०॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ।

पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥११॥
नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः ।
क्षारं क्षौद्रं च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ॥१२॥
तिलमुद्गादृते शस्यं शस्यो गोधूमकोद्रवौ ।
चीनकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम् ॥१३॥
सितधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः ।
व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिला यवाः ॥१४॥
श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः ।
कूष्माण्डालाबुवार्ताकान् पालंकीम्पूतिकान्त्यजेत् ॥१५॥
चरुभैक्ष्यं शक्तुकणाः शाकन्दधि घृतं पयः ।
श्यामाकशालिनीवारा यवकं मूलतण्डुलम् ॥१६॥
हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् ।
मधु मांसं विहायान्यद् व्रते वा हितमीरितम् ॥१७॥

क्षमा, सत्य, दया, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, देवपूजन, होम, सन्तोष, चोरी करना ये दस प्रकारके धर्म सभी धर्मोमें समान रूपसे बतलाये गये हैं । उस दिन अपनी शक्तिके अनुसार पवित्रकारक मन्त्रोंका जप और हवन करना चाहिये । नित्यस्नान, अल्पाहार, गुरु, देवता और ब्राह्मणोंका पूजन, क्षारपदार्थ, क्षौरकर्म, लवण, मधु एवं मांसका व्रतमें त्याग करना चाहिये । तिल तथा मूंगको छोड़कर धान्यमें गेहूँ, कोदो, चीना, देवधान्य (यवादि), शमीधान्य, ऐक्षव (मादकद्रव्य), सितधान्य (सफेद धान्य) बाजारकी वस्तुयें तथा मूली इन सभीकी गणना क्षारसमूहमें की गयी है । व्रीहि, षष्टिक, मूंग, मटर, तिल, जौ, सांवां, नीवार तथा गेहूँ आदि ये व्रतमें हितकारी है । कूष्माण्ड, अलाबु (लौकी), बैगन, पालक और पूतिका (पोई) ये वस्तुयें व्रतमें त्याज्य हैं । चरुभैक्ष्य (भिक्षामें प्राप्त चरु) सत्तुके कण, शाक, दही, घी, दूध, सांवा, अगहनी चावल, तिन्नीका चावल, जौका हलुआ आदि तथा मूलतण्डुल ये हविष्य माने गये हैं । इन्हें व्रतमें, नक्तव्रतमें तथा अग्निहोत्रमें भी उपयोगी बताया गया है अथवा मांस, मदिरा आदि अपवित्र वस्तुओंको छोड़कर अन्य पवित्र वस्तुयें व्रतादिमें हितकर हैं ।**१०-१७**

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥१८॥

प्राजापत्यव्रत करनेवाले द्विजको चाहिये कि वह तीन दिन तक प्रात:काल, तीन दिन तक सायंकाल एवं तीन दिन तक अयाचित वस्तुओंका भोजन करे और इसके पश्चात् तीन दिन तक उपवास करे ।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहानि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥१९॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥२०॥
पृथक्सान्तपनद्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनोऽघहा ॥२१॥
द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा ।
महापराकस्त्रिगुणस्त्वयमेव प्रकीर्तितः ॥२२॥
पौर्णमास्यां पञ्चदशग्रास्यमावास्यभोजनः ।
एकापाये ततो वृद्धौ चान्द्रायणमतोऽन्यथा ॥२३॥
कपिलागोः पलं मूत्रमर्धाङ्गुष्ठं च गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलन्दद्याद्दध्नश्चैव पलद्वयम् ॥२४॥
घृतमेकपलन्दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ।
गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥२५॥
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ।
तेजोऽसीति तथा चाज्यं देवस्येति कुशोदकम् ॥२६॥
ब्रह्मकूर्चो भवत्येवं आपो हिष्ठेत्यृचं जपेत् ।
अघमर्षणसूक्तेन संयोज्य प्रणवेन वा ॥२७॥
पीत्वा सर्वाघनिर्मुक्तो विष्णुलोकी ह्युपोषितः ।

अतिकृच्छ्रव्रत करनेवाला द्विज तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल तथा तीन दिन तक अयाचित वस्तुओंका एक-एक ग्रास भोजन करे और अन्तमें उपवास करे । गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी तथा कुशाका जल इन सभी को मिलाकर प्रथम दिन पीये और दूसरे दिन उपवास करे तो वह सान्तपनकृच्छ्र नामक व्रत कहलाता है । उपर्युक्त द्रव्योंको अलग-अलग एक-एक दिनके क्रमसे छह दिनों तक सेवन करनेके पश्चात् सातवें दिन उपवास करनेको महासान्तपनकृच्छ्र कहते हैं । यह पापोंका नाश करनेवाला है । लगातार बारह दिनोंके उपवाससे पूरा होनेवाला व्रत पराक कहलाता है । इससे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । इसके तीनगुणा यानी छत्तीस दिनके उपवाससे पूरा होनेवाला व्रत महापराक कहलाता है । पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास कम करते हुए अमावस्याको उपवास करे तथा प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे, इसे ही चान्द्रायणव्रत कहते हैं । इसके विपरितक्रमसे भी यह व्रत किया जाता है ।

कपिला गौका मूत्र एक पल, गोबर आधे अंगूठेके बराबर, दुग्घ सात पल, दो पल दही, घी एक पल तथा कुशोदक एक पल इन सभीको मिलाकर पञ्चगव्य बनाते समय 'गायत्री' मन्त्रसे गोमूत्र डाले, 'गन्धद्वाराम्.' (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोबर, 'आप्यायस्व.' (यजु.१२/१२२) इस मन्त्र से दूध, 'दधिक्राव्णो.' (यजु.२३/३२) इससे दही 'तेजोऽसि' (यजु.२२/२) इससे घी एवं 'देवस्य त्वा.' (यजु.२०/३) इस मन्त्रसे कुशोदक मिलाना चाहिये । इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसे ब्रह्मकूर्च कहते है । पुनः 'आपोहिष्ठा.' (११/५०) इस मन्त्रका जप करके अधमर्षणसूक्त (ऋतञ्च.) अथवा प्रणवसे उसको विधिवत् मिलाये और ''**यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके । प्राशनात्पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेधनम् ॥**'' इस मन्त्रको पढ़कर पूर्वाभिमुख हो पञ्चगव्यको पीकर सभी पापोंसे मुक्त होता है और वह विष्णुलोकमें पूजित होता है ।

उपवासी सायम्भोजी यतिः षष्ठात्मकालवान् ॥२८॥
मांसवर्जी चाश्वमेधी सत्यवादी दिवं व्रजेत् ।
अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ॥२९॥
देवव्रतवृषोत्सर्गचूड़ाकरणमेखलाः ।
मांगल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ॥३०॥
दर्शाद्दर्शस्तु चान्द्रः स्यात्त्रिंशाहश्चैव सावनः ।
मासः सौरस्तु संक्रान्तेर्नाक्षत्रो भविवर्तनात् ॥३१॥
सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः ।
आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥३२॥

दिनभर उपवास करके केवल सायंकाल भोजन करनेवाला, दिनके आठ भागोंमें केवल छठे भागमें भोजन करनेवाला यति, मांसत्यागी, अश्वमेधयाजी तथा सत्यवादी पुरुष स्वर्गप्राप्त करते हैं । अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूड़ाकरण, मेखलाबन्ध (यज्ञोपवीत) आदि तथा मांगलिक अभिषेक- इन सभी कार्योंको मलमासमें नहीं करना चाहिये । एक अमावस्यासे दूसरी अमावस्या तक एक चान्द्रमास, तीस दिनोंका (अनियत) सावनमास, एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्ति तक सौरमास होता है और अश्विन्यादि रेवतीपर्यन्त नक्षत्रोंके परिवर्तनसे सताईस दिनात्मक नाक्षत्रमास होता है । विवाहादिमें सौरमास, यज्ञादिमें सावनमास, वार्षिककृत्य तथा पितृकार्यमें चान्द्रमास प्रशस्त होता है ।

आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।
कुर्याच्छ्राद्धं तत्र रवेः कन्यां गच्छतु वा न वा ॥३३॥
मासि संवत्सरे चैव तिथिद्वैधं यदा भवेत् ।

तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा तु स्यान्मलिम्लुचा ॥३४॥
उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः ।
दिवा पुण्यास्तु तिथयो रात्रौ नक्तव्रते शुभाः ॥३५॥
युग्माग्निकृतुभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ।
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा ॥३६॥
प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् ।
एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥३७॥
नरेन्द्रमन्त्रिव्रतिनां विवाहोपद्रवादिषु ।
सद्यःशौचं समाख्यातं कान्तारापदि संसदि ॥३८॥
आरब्धदीर्घतपसां न राजा व्रतहा स्त्रियाः ।
गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला ॥३९॥
यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत क्रियाः सदा ।
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभंगो भवेद्यदि ॥४०॥
दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथ वा ।
असामर्थ्ये व्रतकृतौ पत्नीं वा कारयेत्सुतम् ॥४१॥

आषाढ़ी पूर्णिमाको अवधि मानकर उससे पाँचवा पक्ष (आश्विन कृष्णपक्ष) जो होता है, उसमें श्राद्ध करे, सूर्य कन्यामें जाये अथवा न जाये, श्राद्ध अवश्य ही करे । मासिक तथा सांवत्सरिक कार्योमें यदि तिथिद्वैध हो जाय तो उसमें उत्तरा तिथि ही उत्तम मानी जाती है और पूर्वा मलिन । जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त हो उसीमें उपवास करना चाहिये । दिनमें किये जानेवाले व्रतोंकेलिये तिथियाँ दिनमें ही पुण्यजनक हैं एवं रात्रिव्रतमें रात्रिकी तिथियाँ ही शुभ होती हैं । द्वितीयाके साथ तृतीयाका, चतुर्थीके साथ पञ्चमीका, षष्ठीके साथ सप्तमीका, अष्टमीके साथ नवमीका, एकादशीके साथ द्वादशीका और चर्तुदशीके साथ पूर्णिमाका एवं अमावस्याके साथ प्रतिपदाका वेध उत्तम है । इसी प्रकार षष्ठी–सप्तमी आदिमें भी समझना चाहिये । उन तिथियोंका मेल महान् फलदायी है । इसके विपरीत अर्थात् प्रतिपदासे द्वितीयाका, तृतीयासे चतुर्थीका जो युग्मभाव है, वह बड़ा भयानक होता है । वह पहलेके किये समस्त पुण्योंका नाश कर देता है । राजा, मन्त्री अथवा व्रतचारी पुरुषोंकेलिये, विवाहमें, उपद्रव आदिमें, दुर्गम स्थानोंमें, संकटके समय तथा युद्धके अवसरपर तत्काल शुद्धि होती है । जिसने दीर्घकालमें समाप्त होनेवाले व्रतको प्रारम्भ किया है, वह स्त्री यदि रजस्वला हो जाय तो वह रज उसके व्रतमें बाधक नहीं होता है ।

गर्भवती स्त्री, प्रसूतिका अथवा रजस्वला कन्या जब अशुद्ध होकर व्रत करनेयोग्य न रह जाय तो दूसरोंसे उसे शुभ कार्योको कराना चाहिये । क्रोध, प्रमाद

अथवा लोभके कारण यदि व्रत भंग हो जाय तो तीन दिन तक उपवास करना चाहिये अथवा सिरका मुण्डन करा लेना चाहिये । सामर्थ्यके अभावमें व्रतीको अपनी पत्नी अथवा अपने पुत्रसे व्रत करा लेना चाहिये ।

सूतके मृतके कार्य प्रारब्धं पूजनोज्झितम् ।
व्रतस्थं मूर्च्छितं दुग्धपानाद्यैरुद्धरेद् गुरुः ॥४२॥
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥४३॥
'कीर्तिसन्ततिविद्यादिसौभाग्यारोग्यवृद्धये ।
नैर्मल्यभुक्ति-मुक्त्यर्थं कुर्वे व्रतपते! व्रतम् ॥४४॥
इदं व्रतं मया श्रेष्ठं गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नां सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादाज्जगत्पते! ॥४५॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रतवरे यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम् ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसन्ने त्वयि सत्पतौ ॥४६॥
व्रतमूर्तिं जगद्भूतिं मण्डले सर्वसिद्धये ।
आवाहये नमस्तुभ्यं सन्निधौ भव केशव! ॥४७॥

आरम्भ किये हुए व्रतका पालन जननाशौच तथा मरणाशौचमें भी करना चाहिये । केवल पूजनका कार्य बन्द कर देना चाहिये । यदि व्रती पुरुष उपवासके कारण मूर्च्छित हो जाय तो गुरुजी उसे दुग्धपानादिके द्वारा स्वस्थ करे । जल, फल, मूल, दुग्ध, हविष्य, ब्राह्मणकी इच्छाके अनुसार उसकी पूर्ति, गुरुदेवका वचन तथा औषध- ये आठ वस्तुयें व्रतनाशक नहीं होती हैं । व्रती पुरुष अपने व्रताधिष्ठातृ देवतासे प्रार्थना करे - हे व्रतपते! मैं कीर्ति, सन्तति, विद्या आदिकेलिये, सौभाग्य तथा आरोग्यवृद्धिके हेतु, निर्मलता, भोग तथा मोक्षकेलिये इस व्रतको कर रहा हूँ । मैंने इस श्रेष्ठ व्रतको आपके समक्ष ग्रहण किया है । हे जगत्वास्वामिन्! आपकी कृपासे मुझे निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धिकी प्राप्ति हो । हे भगवन्! इस व्रतको ग्रहण करनेके पश्चात् इसकी पूर्ति हुए बिना ही यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपकी कृपासे यह व्रत अवश्य पूर्ण हो जाय । हे केशव! आप व्रतकी मूर्ति हैं तथा संसारकी उत्पत्ति तथा उसके ऐश्वर्य हैं । अपनी सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिकेलिये मैं आपका इस मण्डलमें आवाहन करता हूँ । आपको नमस्कार है, आप यहाँ उपस्थित हों । **४२-४७**

मनसा कल्पितैर्भक्त्या पञ्चगव्यैर्जलैः शुभैः ।
पञ्चामृतैः स्नापयामि त्वं मे च भव पापहा ॥४८॥
गन्धपुष्पोदकैर्युक्तमर्घ्यमर्घ्यपते! शुभम् ।
गृहाण पाद्यमाचाममर्घ्यार्हं कुरु मां सदा ॥४९॥

वस्त्रं वस्त्रपते! पुण्यं गृहाण कुरु मां सदा ।
भूषणाद्यैः सुवस्त्राद्यैश्छादितं व्रतसत्पते! ॥५०॥
सुगन्धिगन्धं विमलं गन्धमूर्ते! गृहाण वै ।
पापगन्धविहीनं मां कुरु त्वं हि सुगन्धिकम् ॥५१॥
पुष्पं गृहाण पुष्पादिपूर्णं मां कुरु सर्वदा ।
पुष्पगन्धं सुविमलं आयुरारोग्यवृद्धये ॥५२॥
दशांगं गुग्गुलुघृतयुक्तं धूपं गृहाण वै ।
सुधूपधूपित मां त्वं कुरु धूपितसत्पते! ॥५३॥
दीपमूर्ध्वशिखं दीप्तं गृहाणाखिलभासकम् ।
दीपमूर्ते! प्रकाशाढ्यं सर्वदोर्ध्वगतिं कुरु ॥५४॥
अन्नादिकं च नैवेद्यं गृहाणान्नादिसत्पते! ।
अन्नादिपूर्णं कुरु मामन्नदं सर्वदायकम् ॥५५॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं मया प्रभो! ।
यत्पूजितं व्रतपते! परिपूर्णन्तदस्तु मे ॥५६॥

मनसे कल्पित किये हुए पञ्चगव्य, पञ्चामृत तथा उत्तम जलकेद्वारा मैं भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराता हूँ । आप मेरे पापोंके नाशक हों । हे अर्घ्यपते! गन्ध, पुष्प और जलसे युक्त उत्तम पाद्य एवं अर्घ्य ग्रहणकर आचमन कीजिये तथा मुझे सदा अर्घ्य (सम्मान पानेयोग्य) बनाइये । हे वस्त्रपते! यह पवित्र वस्त्र ग्रहण कीजिये और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणादिसे आच्छादित किये रहिये । हे गन्धपते! आप मेरे इस सुगन्धियुक्त निर्मल गन्धको ग्रहण कीजिये । आप मुझे पापकी दुर्गन्धसे रहित कीजिये और मुझे सदा फल-फूल आदिसे परिपूर्ण बनाइये । अत्यन्त शुद्ध पुष्पकी सुगन्धिसे आयु तथा आरोग्यकी वृद्धि होती है । गुग्गुल और घृतादि मिलाये हुए इस दशांग धूपको ग्रहण कीजिये । हे सत्पते! आप धूपसे पूजित होकर मुझे उत्तम धूपकी सुगन्धिसे सुगन्धित करें । हे दीपस्वरूप देव! ऊपरकी ओर ज्वालासे युक्त देदीप्यमान सम्पूर्ण वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाले तथा प्रकाशसे परिपूर्ण दीपको स्वीकार कीजिये तथा मुझे सर्वदा ऊर्ध्वशाली बनायें । हे अन्नादि उत्तम वस्तुओंके स्वामिन्! आप अन्नादिसे निर्मित नैवेद्यको स्वीकार कीजिये और मुझे अन्नादिसे परिपूर्ण बनाइये ताकि मैं अन्नदान तथा सर्वस्वदान कर सकूँ । हे व्रतोंके स्वामिन्! मैंने मन्त्रहीन, क्रियाहीन तथा भक्तिसे हीन जो पूजन किया है वह आपकी कृपासे परिपूर्ण हो जाय ।

धर्मं देहि धनं देहि सौभाग्यं गुणसन्ततिम् ।
कीर्तिं विद्यां देहि चायुः स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ॥५७॥

इमां पूजां व्रतपते! गृहीत्वा व्रज साम्प्रतम् ।
पुनरागमनायैव वरदानाय वै प्रभो! ॥५८॥
स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः ।
पूज्याः सुवर्णजास्ता वै शक्त्या वै भूमिशायिना ॥५९॥
जपो होमश्च सामान्यव्रतान्ते दानमेव च ।
चतुर्विंशो द्वादश वा पञ्च वा त्रय एककः ॥६०॥
विप्राः प्रपूज्या गुरवो भोज्याः शक्त्या तु दक्षिणा ।
देया गावः सुवर्णाद्याः पादुकोपानहौ पृथक् ॥६१॥
जलपात्रं चान्नपात्रमुद्रिकाच्छत्रमासनम् ।
शय्या वस्त्रयुगं कुम्भाः परिभाषेयमीरिता ॥६२॥

आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुण, सन्तति, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करें । व्रतपते प्रभो! आप इस समय मेरेद्वारा की हुई इस पूजाको स्वीकार करके पुनः यहाँ पधारने और वरदान देनेकेलिये अपने स्थान को जायँ । सब प्रकारके व्रतोंमें व्रतधारी पुरुषको उचित है कि वह स्नान करके व्रत सम्बन्धी देवताका स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर यथाशक्ति पूजन करे तथा रात्रिमें भूमिपर शयन करे । व्रतके अन्तमें जप, होम और दान सामान्य कर्त्तव्य हैं । साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार चौबीस, बारह, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मणकी एवं गुरुजनोंकी पूजा करके उन्हें भोजन कराकर पुनः यथाशक्ति सबको पृथक्-पृथक् गौ, सुवर्णादि, खडाँव, जूता, जलपात्र, अन्नपात्र, मुद्रिका, छत्र, आसन, शय्या, दो वस्त्र और कलश आदि वस्तुयें दक्षिणा में दे । इस प्रकार यहाँ व्रतकी परिभाषा बतायी गयी है ।

॥अध्याय समाप्त॥

गोपरक वैदिक प्रयोग

ऋग्विधाने

आगाव इति सूक्तेन गोष्ठे गां लोकमातरम् ।
उपतिष्ठेद् व्रजेच्चैव यदिच्छेत्ताः सदाक्षयाः ॥ अ.पु.२५९/५७॥

अक्षय गोधनकी इच्छा करनेवाला मनुष्य गोष्ठ जाकर 'आगावो अगमन्नुत' इस सूक्तको पढ़ते हुए लोकमाता गौको प्रणाम करे और गायोंकी स्तुति करके गायोंके साथ गोचर भूमि तक जाय ।

मयोभूर्वात इत्येतद् गवां स्वस्त्ययनं परम् ।
शाम्बरीमिन्द्रजालं वा मायामेतेन वारयेत् ॥२५९/९३॥

'मयोभूर्वातः' यह ऋचा गौओंकेलिये परम मंगलदायक है । इसके जपसे शाम्बरीमाया अथवा इन्द्रजालका निवारण करे ।

यजुर्विधाने

पुष्कर उवाच

औदुम्बरीभिरिध्माभिः पशुकामस्य शस्यते ।
दध्ना चैवान्नकामस्य पयसा शान्तिमिच्छता ॥२६०/५॥
भेषजमसीति दध्याज्यैर्होमः पशूपसर्गनुत् ।
त्रियम्बकं यजामहे होमः सौभाग्यवर्धनः ॥१६॥
अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथा गवाम् ।
मनुष्याणान्नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि ॥२६॥
ग्रामाणां नगराणां च देशानामपि भार्गव! ।
उपद्रुतानां धर्मज्ञ! व्याधितानां तथैव च ॥२७॥
मरके समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये ।
रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च ॥२८॥
स्वस्तिन इन्द्र इत्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ।
इह गावः प्रजायध्वमिति पुष्टिविवर्धनम् ॥३२॥
घृताहुतिसहस्रेण तथाऽलक्ष्मीविनाशनम् ॥३३॥
इह गावः प्रजायध्वं मन्त्रोऽयं बुद्धिवर्धनः ।
हुतन्तु सर्पिषा दध्ना पयसा पायसेन वा ॥४१॥
परिमेगामनेनेति वशीकरणमुत्तमम् ।
हन्तुमभ्यागतस्तत्र वशीभवति मानवः ॥७७॥
भक्ष्यताम्बूलपुष्पाद्यं मन्त्रितन्तु प्रयच्छति ।
यस्य धर्मज्ञ! वशगः सोऽस्य शीघ्रं भविष्यति ॥७८॥
गावो भग इति द्वाभ्यां हुत्वाज्यं गा अवाप्नुयात् ॥८२
पञ्चनद्यः पञ्चलक्षं हुत्वा लक्ष्मीमवाप्नुयात् ॥७४॥
गायत्री वैष्णवी ज्ञेया तद्विष्णोः परमम्पदम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वकामवरं तथा ॥८४॥

पशुओंकी कामना करनेवाला मनुष्य (महाव्याहृतियोंसे) गूलरकी समिधाका हवन करे, अन्नकी कामना करनेवाला दहीसे एवं शान्ति चाहनेवाला दुग्धसे हवन करे । 'भेषजमसि' इत्यादि मन्त्रसे दधि एवं घीका हवन करनेसे पशुओंपर आनेवाली विपत्ति दूर हो जाती है । 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मन्त्रसे होम करनेसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है । (पुष्करजीने कहा) हे भार्गव! बकरी, भेंड़, घोड़े, हाथी, गौ, मनुष्य, राजा, बालक, स्त्री, ग्राम, नगर और देश यदि विविध उपद्रवोंसे पीड़ित एवं रोगग्रस्त हो गये

हों अथवा महामारी एवं शत्रुओंका भय उपस्थित हो गया हो तो घृतमिश्रित खीरसे रुद्र देवताकेलिये किया गया होम परम शान्तिप्रद होता है । 'स्वस्तिनऽइन्द्रः' इत्यादि मन्त्र सभी बाधाओंको विनष्ट करता है । 'इह गावः' इस मन्त्रसे घी, दही, दूध, अथवा खीरसे हवन करनेसे बुद्धि बढ़ती है । 'परीमे गामनेषत्' यह उत्तम वशीकरण मन्त्र है । इस मन्त्रके प्रयोगसे मारनेकेलिये भी आया हुआ मनुष्य वशमें हो जाता है । हे धर्मज्ञ! उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित यदि भक्ष्य पदार्थ ताम्बूल तथा पुष्पादि किसीको दिया जाय तो वह शीघ्र ही देनेवालेके वशीभूत हो जायगा । 'गावऽउपावताम्' तथा 'भगप्रणेत' इत्यादि दो मन्त्रोंसे घीका हवन करके मनुष्य गायोंको प्राप्त करता है । 'पञ्चनद्यः' इत्यादि मन्त्रका पाँच लाख जप करनेवाला मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है । गायत्री को विष्णुस्वरूप जानना चाहिये । सभी पापोंका प्रशमन और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वहीं भगवान् विष्णुका परम पद है ।

सामविधानम्

गव्येषुणेति यो नित्यं सायं प्रातरतन्द्रितः ।
उपस्थानं गवां कुर्यात्तस्य स्युस्ताः सदा गृहे ॥२६१/१८॥

अथर्वविधानम्

अग्ने गोभिर्न इत्येतन्मेधावृद्धिकरम्परम् ॥२६२/१४॥
वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ॥२६३/२३॥
विजात्यं विकृतं वाऽपि षड्भिर्मासैर्म्रियेत वै ।
विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रभयं भवेत् ॥२६३/२४॥
होमः प्रसूतिवैकृत्ये जपो विप्रादिपूजनम् ।
यानि यानान्ययुक्तानि युक्तानि न वहन्ति च ॥२५॥
आकाशे तूर्यनादाश्च महद्भयमुपस्थितम् ॥२६॥

जो मनुष्य आलस्यरहित होकर सायंकाल एवं प्रातःकाल सामवेदीय 'गव्येषुणे' इत्यादि साममन्त्रसे गायों की स्तुति करता है । उसके गृहमें गायें सदा निवास करती हैं ।

अथर्ववेदीय 'अग्ने गोभिर्न' यह मन्त्र सर्वश्रेष्ठ मेधाको बढ़ानेवाला है । घोड़ी, हस्तिनी अथवा गौ जहाँपर युग्म बच्चे उत्पन्न करें अथवा विकारयुक्त विसजातीय सन्तानको उत्पन्न करें अथवा छः महीनेमें ही मर जायँ या विकारयुक्त बच्चा दें तो वहाँपर शत्रुके आक्रमणका भय होता है । इस तरहके प्रसूतिविकारके उत्पन्न होनेपर जप तथा ब्राह्मण आदिका पूजन करना चाहिये । जहाँपर अयोग्य पशु वाहनमें आकर

जुत जाते हैं और अयोग्य एवं योग्य पशु उस वाहनको नहीं खींच पाते हैं तथा आकाशमें सूर्यनाद होने लगता है तो उस समय महान् भय उपस्थित होता है ।

विविधदानानि

विपुलन्तु गृहं कृत्वा दत्त्वा स्याद् भुक्ति-मुक्तिभाक् ॥२११/१७॥
गृहं मठं सभां स्वर्गी दत्त्वा स्याच्च प्रतिश्रयम् ।
दत्त्वा कृत्वा गोगृहं च निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ॥२११/१८॥
त्रीणि पुण्यफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ॥२११/५१॥
ब्राह्मीं सरस्वतीं दत्त्वा निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् ।
सप्तद्वीपमहीदः स ब्रह्मज्ञानं ददाति यः ॥२११/५२॥
वेदशास्त्रगीतं योऽध्यापयति नाकभाक् ॥२११/५३॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा धेनौ व्यवस्थिताः ।
धेनुदानं सर्वदानं सर्वदं ब्रह्मलोकदम् ॥२१३/७॥
विष्ण्वग्रे कपिलां दत्वा तारयेत् सकलं कुलम् ।
कार्त्तिक्यादौ वृषोत्सर्गं कुर्वस्तारयते कुलम् ॥२१३/७॥

विशाल गृहका निर्माण कराकर उसका दान करनेवालेको भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं । गृह, मठ, सभा-सत्संग भवन का निर्माण करनेवाला स्वर्गका भागी होता है और देवादिकोंसे सेवित होता है । गोशाला बनाकर दान देनेवाला पापरहित होकर स्वर्गलोकको प्राप्त करता है । इस संसारमें गौ, पृथ्वी एवं सरस्वती (विद्या) ये तीनों एक समान फल देनेवाले हैं । ब्रह्मविषयिणी विद्या (वेदविद्या)का दान करके मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है । ब्रह्मज्ञानके दान करनेका फल सप्तद्वीपा वसुन्धराके दान करनेके फलके समान होता है । जो वेद-शास्त्रमें प्रतिपादित सिद्धान्तोंका अध्यापन करता है, वह स्वर्गलोकका अधिकारी होता है । गौके शरीरमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि समस्त देवताओंका निवास है । धेनुदान करनेसे अपने-आप सभी दान हो जाते हैं । यह दान समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी तथा ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला है । कन्याको अलंकृत करके दान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है । कार्त्तिकमासकी पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करनेवाला अपने कुलका उद्धार कर देता है ।

स्कन्दपुराण-मानसखण्ड अ.८०

हिमालयतटवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं गोपीश्वरो विप्र! गीयते परमेश्वरः ।

कथं गोपीवनं नाम वनं च प्रवदन्ति हि ॥८०/१५॥
व्यास उवाच
नागा नागपुरे रम्ये निवस्य मुनिसत्तमाः ।
सुरभि पूजयामासुः दशवर्षाणि पञ्च च ॥८०/१६॥
ततः सा सुरभिः पुण्या सन्तुष्टा मुनिसत्तमाः ।
बभूव नागमुख्येभ्यः कामदा वरदा शिवा ॥८०/१७॥
सा तुष्टा तांस्ततो वव्रे मतो वाञ्छत्वमीप्सितम् ।
ततस्ते नागमुख्या वै सुरभिं परितोषिताम् ॥८०/१८॥
ऊचुः सर्वे महाभागाः कामदां लोकपावनीम् ॥८०/१९॥
नागा ऊचुः
वयं त्वत्तो महाभागे! वरयामो वरं वरम् ।
येन तृप्ता वयं सर्वे भविष्यामोऽनुकम्पया ॥८०/२०॥
देह्यस्मभ्यं महाभागे! कुलानि बहु वै गवाम् ।
वयं ताभिः सुपुण्याभिस्तर्पिताः सम्भवामहे ॥८०/२१॥
व्यास उवाच
तथेत्युक्त्वा महाभागाः कामदा देवपूजिताः ।
ययौ महेन्द्रभवनं देवगन्धर्वपूजितम् ॥८०/२२॥
गवां कुलानि सम्प्राप्य नागाः सर्वे तपोधनाः ।
व्रजं विरचयामासुर्विस्तीर्णे गोपिकानने ॥८०/२३॥
विरच्य ते व्रजं सर्वे गवां सञ्चरणाय च ।
ययुर्नागपुरं रम्यं नागकन्यानिषेवितम् ॥२४॥
सञ्चारणाय ते नागा गवां सत्यव्रते स्थिताः ।
नागकन्या समूहे वै रक्षणोऽपरेमिरे ॥२५॥
उपदिष्टास्तदा कन्या नागमुख्यैस्तपोधनाः ।
ता गाः सञ्चारयामासुर्विस्तीर्णे गोपिकानने ॥२६॥
बभूवुर्मुनिशार्दूलाः पश्यन्तीनामितस्ततः ।
ततो गाः सम्प्रपश्यन्त्यो ययुः सर्वा वनान्तरम् ॥४०॥
इतस्ततः प्रधावन्त्यो नागकन्यास्तपोधनाः ।
ततो वनान्ते गाः सर्वाश्चारयन्त्यो ददृशुर्द्विजाः ॥४१॥
अविच्छिन्नं तृणं भूरि तृणलोभेन दूरगाः ।
गवां मध्ये महादेवं सिद्धकिन्नरसेवितम् ॥४२॥
द्वादशादित्यसंकाशं वनान्ते ददृशुर्द्विजाः ।
यस्य भासा जगत्सर्वं भासितं सचराचरम् ॥४३॥
स ज्योतिर्मध्यगो भानुर्यस्य भासा पराजितः ।

तं ज्योतिर्मध्यगं लिंगं गवां मध्ये विराजितम् ।।४४।।
ददृशुस्तास्तदा गोप्यः शंकरस्य महात्मनः ।
तं दृष्ट्वा नागमुख्यानां गोप्यः सर्वाः सुशोभनाः ।।४५।।

ऋषियोंने जिज्ञासा की- ब्रह्मन्! गोपीश्वर एवं गोपीवन नाम रखनेका क्या कारण है? व्यासजीने कहा- नागसमुदायने नागपुरमें रहकर पन्द्रह वर्षपर्यन्त कामधेनुकी सेवा की । मुनिवरो! तब सुरभि सन्तुष्ट हो गयी । नागोंकेलिये वरदा होकर उसने इच्छित वर माँगनेको कहा । महोदयो! सुरभिको सन्तुष्ट देखकर तब प्रमुख नागोंने संसारमें पवित्र समझी जानेवाली सुरभिसे इस प्रकार कहा । नाग बोले- महाभागे! हम आपसे अपनी तृप्तिकेलिये अनेक गोकुलोंको माँगते हैं । हमलोग गायोंको पाकर सन्तुष्ट हो जायेंगे । व्यासजीने कहा- देवसम्मानित वह कामधेनु तथाऽस्तु कहकर देवों तथा गन्धर्वोंसे पुनः पूजित हो स्वर्गलोकमें चली गयी । तपोधनो! गायोंके कुलोंको प्राप्तकर उनके चरनेकेलिये नागोंने गोपीवनकी रचना की । उस गोचरभूमिमें गायोंको चराने एवं रक्षा करनेकेलिये नागकन्याओंको नियुक्त किया । तत्पश्चात् सभी नाग नागपुर चले गये । प्रमुख नागोंके कथनानुसार नागकन्यायें गायोंको चराती हुई विस्तृत गोपीवनमें गोपीश्वरकी आराधनामें तत्पर रहीं । इस बीच उनकी गायें उनकी आँखोंसे ओझल हो गयीं, इधर-उधर देखती हुई गायोंको ढूँढती-ढूँढती वे नागकन्यायें दूसरे वनमें पहुँच गयीं । वहाँ उन्होंने उस गोचर भूमिमें हरी-भरी घास चरती हुई गायोंको देखा । वे गायें घासके लोभवश दूर चली गयी थीं । विप्रवरो! उन गायोंके बीच वनके छोरपर सिद्धादियोंसे सेवित बारहों आदित्यके समान तेजोयुक्त भगवान् शंकरके लिंगको देखा । उन्होंने देखा कि उस दीप्तिसे सम्पूर्ण चराचर जगत् दीप्तिमान् हो रहा है । उन्हींकी गायोंके मध्य उस लिंगके तेजोमण्डलसे आकाशके मध्यवर्ती सूर्यकी ज्योति फीकी पड़ गयी है । उस ज्योतिर्मय लिंगको उन गोपियोंने देखा । उसे देखकर प्रसन्नवदना गोपियोंने प्रणाम किया तथा नियमपूर्वक उनका पूजन किया ।

महाभारत अनुशासनपर्व- दान-धर्म पर्व अ.७७

कपिला गौकी उत्पत्ति

युधिष्ठिरऽउवाच

कस्मात्समाने बहुलाप्रदाने सद्भिः प्रशस्तं कपिलाप्रदानम् ।
विशेषमिच्छामि महाप्रभावं श्रोतुं समर्थोऽस्मि भवान् प्रवक्तुम ।।९।।

युधिष्ठिरने पूछा- हे पितामह! किसी भी रंगकी गायका दान किया जाय, गोदान तो एक-सा ही होगा । फिर सत्पुरुषोंने कपिला गौकी ही अधिक प्रशंसा क्यों की है?

मैं कपिलाके महान् प्रभावको विशेषरूपसे सुनना चाहता हूँ । मैं सुननेमें समर्थ हूँ और आप कहनेमें ।

भीष्म उवाच

वृद्धानां ब्रुवतां तात! श्रुतं मे यत्पुरातनम् ।
वक्ष्यामि तदशेषेण रोहिण्यो निर्मिता यथा ॥१०॥
प्रजाः सृजेति चादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
असृजद् वृत्तिमेवाग्रे प्रजानां हितकाम्यया ॥११॥
यथा ह्यमृतमाश्रित्य वर्तयन्ति दिवौकसः ।
तथा वृत्तिं समाश्रित्य वर्तयन्ति प्रजा विभो! ॥१२॥
अचरेभ्यश्च भूतेभ्यश्चराः श्रेष्ठास्ततो नराः ।
ब्राह्मणाश्च ततः श्रेष्ठास्तेषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥१३॥
यज्ञैरवाप्यते सोमः स च गोषु प्रतिष्ठितः ।
सर्वे देवाः प्रमोदन्ते पूर्वं वृत्तिस्ततः प्रजाः ॥१४॥
प्रजातान्येव भूतानि प्राक्रोशन्वृत्तिकांक्षया ।
वृत्तिदं चान्वपद्यन्त तृषिताः पितृमातृवत् ॥१५॥

भीष्मजीने कहा- पुत्र! मैंने बड़े-बूढोंके मुखसे रोहिणी (कपिला)की उत्पतिका जो प्राचीन वृत्तान्त सुना है, वह सब तुम्हें बता रहा हूँ ।

सृष्टिके प्रारम्भमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने प्रजापति दक्षको यह आज्ञा दी कि- तुम प्रजाकी सृष्टि करो । किन्तु प्रजापति दक्षने प्रजाके हितकी इच्छासे सर्वप्रथम उनकी आजीविकाका ही निर्माण किया । प्रभो! जैसे देवता अमृतका आश्रय लेकर जीवननिर्वाह करते हैं । उसी प्रकार समस्त प्रजा आजीविकाके सहारे जीवनधारण करती है । स्थावरप्राणियोंसे जंगमप्राणी सदा श्रेष्ठ है । उनमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उन्हींमें यज्ञ प्रतिष्ठित हैं; जिनसे देवता आनन्दित होते है; अतः पहले आजीविका है तब प्रजा । समस्त प्राणी उत्पन्न होते ही जीविकाकेलिये कोलाहल करने लगे । जैसे भूखे-प्यासे बालक अपने माँ-बापके पास जाते हैं; उसी प्रकार समस्त जीव जीविकादाता दक्षके पास गये ।

इतीदं मनसा गत्वा प्रजासर्गार्थमात्मनः ।
प्रजापतिर्बलाधानममृतं प्रापिबत्तदा ॥१६॥
स गतस्तस्य तृप्तिं तु गन्धं सुरभिमुद्गिरन् ।
ददर्शोद्गारसंवृत्तां सुरभिं मुखजां सुताम् ॥१७॥
साऽसृजत्सौरभेयीस्तु सुरभिर्लोकमातरः ।
सुवर्णवर्णाः कपिलाः प्रजानां वृत्तिधेनवः ॥१८॥
तासाममृतवर्णानां क्षरन्तीनां समन्ततः ।

बभूवामृतजः फेनः स्रवन्तीनामिवोर्मिजः ॥१९॥
स वत्समुखविभ्रष्टो भवस्य भुवि तिष्ठतः ।
शिरस्यवाप तत्क्रुद्धः स तदैक्षत च प्रभुः ॥२०।
ललाटप्रभवेणाक्ष्णा रोहिणीं प्रदहन्निव ।
तत्तेजस्तु ततो रौद्रं कपिलास्तां विशाम्पते ॥२१॥
नानावर्णत्वमनयन्मेघानिव दिवाकरः ।
यास्तु तस्मादपक्रम्य सोममेवाभिसंश्रिताः ॥२२॥
यथोत्पन्नाः स्ववर्णस्थास्ता ह्येता नान्यवर्णगाः ।
अथ क्रुद्धं महादेवं प्रजापतिरभाषत ॥२३॥

प्रजाजनोंकी इस स्थितिपर मन-ही-मन विचार करके भगवान् प्रजापतिने प्रजावर्गमें बलका संचार करनेकेलिये उस समय अमृतका पान किया । अमृत पीकर जब वे पूर्ण तृप्त हो गये, तब उनके मुखसे सुरभि(मनोहर)गन्ध निकलने लगी । सुरभिगन्ध के निकलनेके साथ ही सुरभि नामक गौ प्रकट हो गयी, जिसे प्रजापतिने अपने मुखसे प्रकट हुई पुत्रीके रूपमें देखा । उस सुरभिने बहुत-सी 'सौरमयी' नामवाली गौओंको उत्पन्न किया, जो सम्पूर्ण जगत्केलिये माताके समान थीं । उन सबका रंग सुवर्णके समान उद्दीप्त हो रहा था । वे कपिला गौएँ प्रजाजनोंकेलिये आजीविकारूप दूध देनेवाली थी । जैसे नदियोंकी लहरोंसे फेन उत्पन्न होता है, उसी प्रकार दूधकी धारा बहती हुई अमृत (सुवर्ण)के समान वर्णवाली उन गौओंके दूधसे फेन उठने लगा । एक दिन भगवान् शंकर पृथ्वी पर खड़े थे । उसी समय सुरभिके एक बछड़ेके मुखसे फेन निकलकर उनके मस्तकपर गिर पड़ा । इससे वे कुपित हो उठे और अपने ललाटजनित नेत्रसे, मानो रोहिणीको भस्म कर डालेंगे, इस तरह उसकी ओर देखने लगे । प्रजानाथ! रुद्रका वह भयंकर तेज जिन-जिन कपिलाओं पर पड़ा, उनके रंग नाना प्रकारके हो गये । जैसे सूर्य बादलोंको अपनी किरणोंसे बहुरंगा बना देते हैं, उसी प्रकार उस तेजने उन सबको नाना वर्णवाली कर दिया । परन्तु जौ गौएँ वहाँसे भागकर चन्द्रमाकी ही शरणमें चली गयीं, वे जैसे उत्पन्न हुई थीं, वैसे ही रह गयीं । उनका रंग नहीं बदला । उस समय क्रोधमें भरे हुए महादेवजीसे दक्षप्रजापतिने कहा-

अमृतेनावसिक्तस्त्वं नोच्छिष्टं विद्यते गवाम् ।
यथा ह्यमृतमादाय सोमो विष्यन्दते पुनः ॥२४॥
तथा क्षीरं क्षरन्त्येता रोहिण्योऽमृतसम्भवाः ।
न दुष्यत्यनिलो नाग्निर्न सुवर्णं न चोदधिः ॥२५॥
नामृतेनामृतं पीतं वत्सपीता न वत्सला ।

इमाँल्लोकान्भरिष्यन्ति हविषा प्रस्रवेण च ।।२६।।
आसामैश्वर्यमिच्छन्ति सर्वेऽमृतमयं शुभम् ।
वृषभं च ददौ तस्मै सह ताभिः प्रजापतिः ।।२७।।
प्रसादयामास मनस्तेन रुद्रस्य भारत! ।
प्रीतश्चापि महादेवश्चकार वृषभं तदा ।।२८।।
ध्वजं च वाहनं चैव तस्मात्स वृषभध्वजः ।
ततो देवैर्महादेवस्तदा पशुपतिः कृतः ।
ईश्वरः स गवां मध्ये वृषभांकः प्रकीर्तितः ।।२९।।
एवमव्यग्रवर्णानां कपिलानां महौजसाम् ।
प्रदाने प्रथमः कल्पः सर्वासामेव कीर्तितः ।।३०।।

प्रभो! आपके ऊपर अमृतका छींटा पड़ा है । गौओंका दूध बछड़ोंके पीनेसे जूठा नहीं होता । जैसे चन्द्रमा अृमतका संग्रह करके फिर उसे बरसा देता है, उसी प्रकार ये रोहिणी गौएँ अमृतसे उत्पन्न दूध देती हैं । जैसे वायु, अग्नि, सूवर्ण, समुद्र और देवताओंका पीया हुआ अमृत- ये वस्तुयें उच्छिष्ट नहीं होतीं, उसी प्रकार बछड़ोंके पीनेपर उन बछड़ोंके प्रति स्नेह रखनेवाली गौ भी दूषित या उच्छिष्ट नहीं होती । (तात्पर्य यह है कि दूध पीते समय बछड़ेके मुखसे गिरा हुआ झाग अशुद्ध नहीं माना जाता) ये गौएँ अपने दूध और घीसे इस सम्पूर्ण जगत्का पालन करेंगी । सब लोग चाहते हैं कि इन गौओंके पास मंगलकारी अमृतमय दुग्धकी सम्पत्ति बनी रहे । भरतनन्दन! ऐसा कहकर प्रजापतिने महादेवजीको बहुत-सी गौएँ और एक बैल भेंट किये तथा इसी उपायकेद्वारा उनके मनको प्रसन्न किया । महादेवजी प्रसन्न हुए । उन्होंने वृषभको अपना वाहन बनाया और उसीकी आकृतिसे अपनी ध्वजाको चिह्नित किया, इसीलिये वे 'वृषभध्वज' कहलाये । तदनन्तर देवताओंने महादेवजीको पशुओंका अधिपति बना दिया और गौओंके बीचमें उन महेश्वरका नाम 'वृषभांक' रख दिया । इस प्रकार कपिला गौएँ अत्यन्त तेजस्विनी और शान्त-वर्णवाली हैं । इसीसे दानमें उन्हें सब गौओंसे प्रथम स्नान दिया गया ।

लोकज्येष्ठा लोकवृत्तिप्रवृता
रुद्रोपेताः सोमविष्यन्दभूताः ।
सौम्याः पुण्याः कामदाः प्राणदाश्च
गा वै दत्वा सर्वकामप्रदः स्यात् ।।३१।।

गौएँ संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु हैं । ये जगत्को जीवन देनेके कार्यमें प्रवृत्त हुई हैं । भगवान् शंकर सदा उनके साथ रहते हैं । वे चन्द्रमासे निकले हुए अमृतसे उत्पन्न

हुई हैं । शान्त, पवित्र, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली और जगत्को प्राणदान देनेवाली हैं । अतः गोदान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंका दाता माना गया है ।

इदं गवां प्रभवविधानमुत्तमं
पठन्सदा शुचिरपि मंगलप्रियः ।
विमुच्यते कलिकलुषेण मानवः
श्रियं सुतान्धनपशुमाप्नुयात्तथा ॥३२॥
हव्यं कव्यं तर्पणं शान्तिकर्म
यानं वासो वृद्धबालस्य तुष्टिः ।
एतान्सर्वान्गोप्रदाने गुणान्वै
दाता राजन्नाप्नुयाद्वै सदैव ॥३३॥

वैशम्पायन उवाच

पितामहस्याथ निशम्य वाक्यं
राजा सह भ्रातृभिराजमीढः ।
सुवर्णवर्णानुडुहस्तथा गाः
पार्थो ददौ ब्राह्मणसत्तमेभ्यः ॥३४॥
तथैव तेभ्योऽभिददौ द्विजेभ्यो
गवां सहस्राणि शतानि चैव ।
यज्ञान्समुद्दिश्य च दक्षिणार्थे
लोकान्विजेतुं परमां च कीर्तिम् ॥३५॥

गौओंकी उत्पत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली इस उत्तम कथाका सदा पाठ करनेवाला मनुष्य अपवित्र हो तो भी मंगलप्रिय हो जाता है और कलियुगके सारे दोषोंसे छूट जाता है । इतना ही नहीं; उसे पुत्र, लक्ष्मी, धन तथा पशु आदिकी सदा प्राप्ति होती है । राजन्! गोदान करनेवालेको हव्य, कव्य, तर्पण और शान्तिकर्मका फल तथा वाहन, वस्त्र एवं बालकों और वृद्धोंको सन्तोष प्राप्त होता है । इस प्रकार ये सब गोदानके गुण हैं । दाता उन सबको सदा पाता ही है । वैशम्पायन जी कहते हैं- राजन! पितामह भीष्मकी ये बातें सुनकर अजमीढ़वंशी राजा युधिष्ठिर और उनके भाईयोंने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सोनेके समान रंग वाले बैलों और उत्तम गौओंका दान किया । इसी प्रकार यज्ञोंकी दक्षिणाकेलिये, पुण्य लोकोंपर विजय पानेकेलिये तथा संसारमें अपनी उत्तम कीर्तिका विस्तार करनेकेलिये राजाने उन्हीं ब्राह्मणोंको सैकड़ों और हजारों गौएँ दान की ।

मार्कण्डेय उवाच

कपिलायां तु दत्तायां यत्फलं ज्येष्ठपुष्करे ।
तत्फलं भरतश्रेष्ठ! विप्राणां पादधावने ॥ वन. २००/६६॥

स्वागतेनाग्नयस्तृप्ता आसनेन शतक्रतुः ।
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ।।६८।।
यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ शिरश्चैव प्रदृश्यते ।
तस्मिन्काले प्रदातव्या प्रयत्नेनान्तरात्मना ।।६९।।
अन्तरिक्षगतो वत्सो यावद्योन्यां प्रदृश्यते ।
तावद् गौः पृथिवी ज्ञेया यावद् गर्भं न मुञ्चति ।।७०।।
यावन्ति तस्यां रोमाणि वत्सस्य च युधिष्ठिर! ।
तावद्युगसहस्राणि स्वर्लोके महीयते ।।७१।।

भरतश्रेष्ठ! ज्येष्ठपुष्करतीर्थमें कपिला गौका दान करनेसे जो फल मिलता है, वही ब्राह्मणोंका चरण धोनेसे प्राप्त होता है । ब्राह्मणका स्वागत करनेसे अग्नि, आसन देनेसे इन्द्र, पैर धोनेसे पितर और भोज्यान्न प्रदान करनेसे ब्रह्माजी तृप्त होते हैं । गर्भिणी गौ जिस समय बच्चा दे रही हो और उस बछड़ेका केवल मुख तथा दो पैर बाहर निकले दिखायी दें, उसी समय पवित्रभावसे प्रयत्नपूर्वक उस गौका दानका दान कर दे । जब तक बछड़ा योनिसे निकलते समय आकाशमें ही लटकता दिखायी दे तब तक वह गौ पृथ्वीरूप है ।

युधिष्ठिर! उसका दान करनेसे उस गौ तथा बछड़ेके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार युगों तक दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।

गवोपनिषद्

गोदानकी महिमा एवं विधि अनु.७८

भीष्म उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
इक्ष्वाकुवंशजो राजा सौदासो वदतां वरः ।।१।।
सर्वलोकचरं सिद्धं ब्रह्मकोशं सनातनम् ।
पुरोहितमिदं प्रष्टुमभिवाद्योपचक्रमे ।।२।।

सौदास उवाच

त्रैलोक्ये भगवन्किंस्वित्पवित्रं कथ्यतेऽनघ! ।
यत्कीर्तयन्सदा मर्त्यः प्राप्नुयात्पुण्यमुत्तमम् ।।३।।

भीष्म उवाच

तस्मै प्रोवाच वचनं प्रणताय हितं तदा ।
गवामुपनिषद्विद्वान्नमस्कृत्य गवां शुचिः ।।४।।

वसिष्ठ उवाच

गावः सुरभिगन्धिन्यस्तथा गुग्गुलुगन्धिकाः ।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ॥५॥
गावो भूतं भविष्यच्च गावः पुष्टिः सनातनी ।
गावो लक्ष्म्यास्तथा मूलं गोषु दत्तं न नश्यति ॥६॥
अन्नं हि परमं गावो देवानां परमं हविः ।
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ॥७॥
गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ।
गावो भविष्यं भूतं च गोषु सर्वे प्रतिष्ठिताः ॥८॥
सायं प्रातश्च सततं होमकाले महामते! ।
गावो ददति वै हौम्यमृषिभ्यः पुरुषर्षभ! ॥९॥

भीष्मजी कहते हैं- राजन्! एक समयकी बात है, वक्ताओंमें श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशी राजा सौदासने सम्पूर्ण लोकोंमें विचरनेवाले, वैदिकज्ञानके भण्डार, सिद्ध, सनातन ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे जो उन्हींके पुरोहित थे, प्रणाम करके इस प्रकार पूछना आरम्भ किया- सौदास बोले- भगवन्! निष्पाप महर्षे! तीनों लोकोंमें ऐसी पवित्र वस्तु कौन कही जाती है, जिसका नाम लेने मात्रसे मनुष्यको सदा उत्तम पुण्यकी प्राप्ति हो सके ।

भीष्मजी कहते हैं - राजन्! अपने चरणोंमें पड़े हुए राजा सौदाससे गवोपनिषद् (गौओंकी महिमाके गूढ़ रहस्योंको प्रकट करनेवाली विद्या)के विद्वान् पवित्र महर्षि वसिष्ठने गौओंको नमस्कार करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया । राजन्! गौओंके शरीरसे अनेक प्रकारकी मनोरम सुगन्ध निकलती रहती है तथा बहुत-सी गौएँ गुग्गुल के समान गन्धवाली होती हैं । गौएँ समस्त प्राणियोंकी प्रतिष्ठा (आधार) हैं और गौएँ ही उनकेलिए महान् मंगलकी निधि हैं । गौएँ ही भूत और भविष्य हैं । गौएँ ही सदा रहनेवाली पुष्टिका कारण तथा लक्ष्मीकी जड़ हैं । गौओंको जो कुछ दिया जाता है उसका पुण्य कभी नष्ट नहीं होता । गौएँ ही सर्वोत्तम अन्नकी प्राप्तिमें कारण हैं । वे ही देवताओंको उत्तम हविष्य प्रदान करती हैं । स्वाहाकार (देवयज्ञ) और वषट्कार (पितृयाग)- ये दोनों कर्म सदा गौओंपर ही अवलम्बित हैं । गौएँ ही यज्ञका फल देने वाली हैं । उन्हींमें यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है । गौएँ ही भूत और भविष्य हैं । उन्हींमें सब प्रतिष्ठित हैं अर्थात् यज्ञ गौओंपर ही निर्भर है । महातेजस्वी पुरुषप्रवर! प्रातःकाल और सायंकाल सदा होमके समय ऋषियोंको गौएँ ही हवनीय पदार्थ देती हैं ।

कानिचिद्यानि दुर्गाणि दुष्कृतानि कृतानि च ।
तरन्ति चैव पाप्मानं धेनुं ये ददति प्रभो! ॥१०॥
एकां च दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।
शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ॥११॥
अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।

समृद्धो यश्च कीनाशो नार्घ्यमर्हन्ति ते त्रयः ॥१२॥
कपिलां ये प्रयच्छन्ति सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामुभौ लोकौ जयन्ति ते ॥१३॥
युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन सह यूथपम् ।
गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिश्रृंगमलंकृतम् ॥१४॥
वृषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप ।
ऐश्वर्यं तेऽभिजायन्ते जायमानाः पुनः पुनः ॥१५॥
नाकीर्तयित्वा गाः सुप्यान्नास्मृत्य पुनरुत्पतेत् ।
सायं प्रातर्नमस्येच्च गास्ततः पुष्टिमाप्नुयात् ॥१६॥
गवां मूत्रपुरीषस्य नोद्विजेत कदाचन ।
न चासां मांसमश्नीयाद् गवां पुष्टिं तथाऽऽप्नुयात् ॥१७॥
गाश्च संकीर्तयेन्नित्यं नावमन्येत तास्तथा ।
अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नरः सम्प्रकीर्तयेत् ॥१८॥

प्रभो! जो लोग नवप्रसूतिका दुग्धवती गौका दान करते हैं, वे जो कोई भी दुर्गम संकट आनेवाले होते हैं, उन सबसे अपने किये हुए दुष्कर्मोंसे तथा समस्त पाप समूहसे भी तर जाते हैं । दस गायों वाला एक गौका दान करे, सौ वाला दसका और सहस्र गायोंका स्वामी सौ गायोंका दान करे तो समान फल होता है । जौ सौ गायोंका स्वामी होकर भी अग्निहोत्र नहीं करता, जो हजार गौएँ रखकर भी यज्ञ नहीं करता तथा जो धनी होकर भी कृपणता नहीं छोड़ता- ये तीनों मनुष्य सम्मान पानेके अधिकारी नहीं हैं । जो उत्तम लक्षणोंसे युक्त कपिला गौको वस्त्र ओढ़ाकर बछड़े सहित उसका दान करते हैं और उसके साथ दूध दुहने हेतु एक कांस्यका पात्र भी देते हैं, वे इहलोक और परलोक दोनोंपर विजय पाते हैं । शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले नरेश! जो लोग जवान, सभी इन्द्रियोंसे सम्पन्न, सौ गायोंके यूथपति, बड़ी-बड़ी सींगोंवाले गवेन्द्र वृषभ (साण्ड) को सुसज्जित करके सौ गायों सहित उसे श्रोत्रिय ब्राह्मण को दान करते हैं वे जब-जब इस संसारमें जन्म लेते है, तब-तब महान् ऐश्वर्यके भागी होते हैं । गौओंका नाम कीर्तन किये बिना न सोये, उनका स्मरण करके ही उसे और सबेरे-शाम उन्हें नमस्कार करे । इससे मनुष्यको बल एवं पुष्टि प्राप्त होती हैं । गौओंके मूत्र और गोबरसे किसी प्रकार उद्विग्न न हो, घृणा न करे और उनका मांस न खाये । इससे मनुष्यको पुष्टि प्राप्त होती है । प्रतिदिन गायोंका संकीर्तन (गायका गुण, कर्म, नाम) करे । उनका कभी अपमान न करे । यदि बुरे स्वप्न दिखायी दे तो मनुष्य गोमाताका नाम ले और उनका संकीर्तन करे । **१०-१८**

गोमयेन सदा स्नायाद्गोकरीषे च संविशेत् ।

श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि प्रतिघातं च वर्जयेत् ॥१९॥
सार्द्रचर्मणि भुञ्जीत निरीक्षन्वारुणीं दिशम् ।
वाग्यतः सर्पिषा भूमौ गवां पुष्टिं सदाऽश्नुते ॥२०॥
घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।
घृतं दद्याद् घृतं प्राशेद् गवां पुष्टिं सदाऽश्नुते ॥२१॥
गोमत्या विद्यया धेनुं तिलानामभिमन्त्र्य यः ।
सर्वरत्नमयीं दद्यान्न स शोचेत्कृताकृते ॥२२॥
गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमश्रृंग्यः पयोमुचः ।
सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा ॥२३॥
गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा ।
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ॥२४॥
एवं रात्रौ दिवा चापि समेषु विषमेषु च ।
महाभयेषु च नरः कीर्तयन्मुच्यते भयात् ॥२५॥

प्रतिदिन शरीरमें गोबर लगाकर स्नान करे, सूखे हुए गोबरपर बैठे, उसपर थूक न फेंके, मलमूत्र न छोड़े तथा गौओंके तिरस्कार से बचता रहे । भींगे हुए गोचर्मपर बैठकर भोजन करे । पश्चिम दिशाकी ओर देखे और मौन हो भूमिपर बैठकर घीका भक्षण करे । इससे सदा गौओंकी वृद्धि एवं पुष्टि होती है । अग्निमें घृत का हवन करे, घृत से ही स्वस्तिवाचन कराये, घृतका दान करे और स्वयं भी गौका घृत ही खाये । इससे मनुष्य सदा गौओंकी पुष्टि एवं वृद्धिका अनुभव करता है । जो मनुष्य सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त तिलकी धेनुको 'गोमाँ अग्ने' इत्यादि गोमतीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसका ब्राह्मणको दान करता है, वह किये हुए शुभाशुभ कर्मकेलिये शोक नहीं करता । जैसे नदियाँ समुद्रके पास जाती हैं । उसी तरह सोनेसे मढ़ी हुई सीगोंवाली, दूध देनेवाली सुरभि और सौरभेयी गौएँ मेरे निकट आयें । मैं सदा गौओंका दर्शन करूँ और गौएँ मुझपर कृपादृष्टि करें । गौएँ हमारी हैं और हम गौओंके है । जहाँ गौएँ रहें, वहीं हम रहें । जो मनुष्य इस प्रकार रातमें या दिनमें, समावस्थामें या विषमावस्थामें तथा बड़ेसे बड़े भय आनेपर भी गोमाताका संकीर्तन करता है, वह भयसे मुक्त हो जाता है ।**१९-२५**

गो-तप एवं गोदान-महिमा आदि अ.७९

वसिष्ठ उवाच

शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्तं सुदुश्चरम् ।
गोभिः पूर्वविसृष्टाभिर्गच्छेम श्रेष्ठतामिति ॥१॥
लोकेऽस्मिन्दक्षिणानां च सर्वासां वयमुत्तमाः ।

भवेम न च लिप्येम दोषेणेति परन्तप ॥२॥
अस्मत्पुरीषस्नानेन जनः पूयेत सर्वदा ।
शकृता च पवित्रार्थं कुर्वीरन्देवमानुषाः ॥३॥
तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
प्रदातारश्च गोलोकान्गच्छेयुरिति मानद! ॥४॥
ताभ्यो वरं ददौ ब्रह्मा तपसोऽन्ते स्वयं प्रभुः ।
एवं भवत्विति विभुर्लोकांस्तारयतेति च ॥५॥
उत्तस्थुः सिद्धिकामास्ता भूतभव्यस्य मातरः ।
प्रातर्नमस्यास्ता गावस्ततः पुष्टिमवाप्नुयात् ॥६॥
तपसोऽन्ते महाराज! गावो लोकपरायणाः ।
तस्माद् गावो महाभागाः पवित्रं परमुच्यते ॥७॥
तथैव सर्वभूतानां गावस्तिष्ठन्ति मूर्धनि ।
समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ॥
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां ब्रह्मलोके महीयते ॥८॥

वसिष्ठजी कहते हैं– मानद परतप! प्राचीनकालमें जब गौओंकी सृष्टि हुई थी, तब उन गौओंने एक लाख वर्षो तक बड़ी कठोर तपस्या की थी । उनकी तपस्याका उद्देश्य यह था कि हम श्रेष्ठता प्राप्त करें । इस जगत्में जितनी दक्षिणा देने योग्य वस्तुयें हैं, उन सभीमें हम उत्तम समझी जायँ । किसी दोषसे लिप्त न हो । हमारे गोबरसे स्नान करनेपर सदा सबलोग पवित्र हों । देवता और मनुष्य पवित्रताकेलिये हमेशा हमारे गोबरका उपयोग करें । समस्त चराचर प्राणी भी हमारे गोबरसे पवित्र हो जाय और हमारा दान करनेवाले मनुष्य हमारे ही लोक (गोलोकधाम)में जायँ । जब उनकी तपस्या समाप्त हुई तब साक्षात् भगवान् ब्रह्माने उन्हें वर दिया– 'गौओ! ऐसा ही हो'– तुम्हारे मनमें जो संकल्प है, वह परिपूर्ण हो । तुम सम्पूर्ण जगत्के जीवोंका उद्धार करती रहो । इस प्रकार अपनी समस्त कामनायें सिद्ध हो जानेपर गौएँ तपस्यासे उठीं । वे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी जननी हैं, अतः प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गौओंको प्रणाम करना चाहिये । इससे मनुष्यको पुष्टि प्राप्त होती है । महाराज! तपस्या समाप्त होनेपर गौएँ सम्पूर्ण जगत्का आश्रय बन गयीं; इसलिये वे महान् सौभाग्यशालिनी गौएँ परम पवित्र बतायी जाती हैं । ये समस्त प्राणियोंके मस्तकपर स्थित हैं (अर्थात् सबसे श्रेष्ठ एवं वन्दनीय हैं) जो मनुष्य दूध देनेवाली सुलक्षणा कपिला गौको वस्त्र ओढ़ाकर कपिलरंगके बछड़ेसहित दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है ।१-८

लोहितां तुल्यवत्सां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।

सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सूर्यलोके महीयते ॥९॥
समानवत्सां शबलां धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सोमलोके महीयते ॥१०॥
समानवत्सां श्वेतां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामिन्द्रलोके महीयते ॥११॥
समानवत्सां कृष्णां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामग्निलोके महीयते ॥१२॥
समानवत्सां धूम्रां तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां याम्यलोके महीयते ॥१३॥
अपां फेनसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वारुणं लोकमश्नुते ॥१४॥
वातरेणुसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वायुलोके महीयते ॥१५॥
हिरण्यवर्णां पिंगाक्षीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां कौबेरं लोकमश्नुते ॥१६॥

जो मनुष्य दूध देनेवाली सुलक्षणा लालरंगकी गौको वस्त्र ओंढाकर लालरंगके बछड़ेसहित दान करता है, वह सूर्यलोकमें सम्मानित होता है । जो पुरुष दूध देनेवाली सुलक्षणा चितकबरी गौको वस्त्र ओढ़ाकर चितकबरे बछड़ेसहित दान करता है, वह चन्द्रलोकमें पूजित होता है । जो मानव दुग्धवती सुलक्षणा श्वेतवर्णा सवस्त्र गौको श्वेतवर्णके बछड़ेसहित दान करता है, उसे इन्द्रलोकमें सम्मान प्राप्त होता है । जो मनुष्य दुग्धवती सुलक्षणा सवस्त्रा कृष्णवर्णबछड़ेसे युक्त कृष्णा गौका दान करनेवाला है वह अग्निलोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो पुरुष दूध देनेवाली सुलक्षणा धूम्रवर्णा गौको सवस्त्र एवं धूम्रवत्ससहित दान करे वह यमलोकमें सम्मानित होता है । जो जलके फेनके समान रंगवाली गौको सवस्त्र एवं तादृश वत्स और कांस्यदोहनपात्रके सहित दान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है । जो हवासे उड़ी हुई धूलके समान रंगवाला गौका सवत्स, सवस्त्र एवं कांस्यदोहनपात्रसहित दान करता है, उसकी वायुलोकमें पूजा होती है । जो सुवर्णके समान रंग तथा पिंगलवर्णके नेत्रवाली गौको वस्त्र ओढ़ाकर बछड़े और कांस्यके दुग्धपात्रसहित दान करता है, वह कुबेरलोकको प्राप्त होता है ।**९-१६**

पलालधूम्रवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदायवस्त्रसंवीतां पितृलोके महीयते ॥१७॥

जो पुआलके धूएँके समान रंगवाली बछड़ेसहित गौको वस्त्रसे आच्छादित करके कांस्यके दुग्धपात्रसहित दान करता है, वह पितृलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।

सवत्सां पीवरीं दत्वा शितिकण्ठामलंकृताम् ।
वैश्वदेवमसम्बाधं स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते ।।१८।।
समानवत्सां गौरीं तु धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां वसूनां लोकमश्नुते ।।१९।।
पाण्डुकम्बलवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमश्नुते ।।२०।।
वैराटपृष्ठमुक्षाणं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।
प्रदाय मरुतां लोकानजरान्प्रतिपद्यते ।।२१।।
वत्सोपपन्नां नीलांगां सर्वरत्नसमन्विताम् ।
गन्धर्वाप्सरसां लोकान्दत्वा प्राप्नोति मानवः ।।२२।।
शितिकण्ठमनड्वाहं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।
दत्वा प्रजापतेर्लोकान्विशोकः प्रतिपद्यते ।।२३।।
गोप्रदानरतो याति भित्वा जलदसञ्चयान् ।
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन्! विराजते ।।२४।।
तं चारुवेषाः सुश्रोण्यः सहस्रं वरयोषितः ।
रमयन्ति नरश्रेष्ठ! गोप्रदानरतं नरम् ।।२५।।
वीणानां वल्लकीनां च नूपुराणां च शिञ्जितैः ।
हासैश्च हरिणाक्षीणां प्रसुप्तः प्रतिबोध्यते ।।२६।।
यावन्ति लोमानि भवन्ति धेन्वास्तावन्ति वर्षाणि महीयते सः ।
स्वर्गाच्च्युतश्चापि ततो नृलोके प्रसूयते वै विपुले गृहे सः ।।२७।।

जो लटकते हुए गलकम्बलसे युक्त मोटी-ताजी सवत्सा गौको अलंकृत करके ब्राह्मणको दान देता है, वह बिना किसी बाधाके विश्वेदेवोंके श्रेष्ठलोकमें पहुँच जाता है । गौरवर्णवाली और दूध देनेवाली सुलक्षणा गौको वस्त्र ओढ़ाकर समानवर्णवाले बछड़े,सहित दान करता है, वह वसुओंके लोकमें जाता है । जो श्वेतकम्बलके समान रंगवाली सवत्सगौको वस्त्रसे आच्छादित करके कांस्यके दुग्धपात्रसहित दान करता है, वह साध्योंके लोकमें जाता है । राजन्! जो विशाल पृष्ठभागवाले बैलको सबप्रकारके रत्नोंसे अलंकृत करके उसका दान करता है, वह मरुद्गणोंके लोकोंमें जाता है । जो मनुष्य यौवनसे सम्पन्न और सुन्दर अंगवाले बैलको सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित करके उसका दान करता है, वह गन्धर्वो और अप्सराओंके लोकोंको प्राप्त करता है । जो लटकते हुए गलकम्बलवाले तथा गाड़ीका बोझ ढोनेमें समर्थ बैलको सम्पूर्णरत्नोंसे

अलंकृत करके ब्राह्मणको देता है, वह शोकरहित होकर प्रजापतिके लोकोंमें जाता है । राजन्! गोदानमें अनुरागपूर्वक तत्पर रहनेवाला पुरुष सूर्यके समान देदीप्यमान विमानमें बैठकर मेघमण्डलको भेदता हुआ स्वर्गमें जाकर सुशोभित होता है । उस गोदानपरायण श्रेष्ठ मनुष्यको मनोहर वेष और सुन्दर नितम्बोंवाली सहस्रों देवांगनायें (अपनी सेवासे) रमण करवाती हैं । वह वीणा और वल्लकीके मधुर गुञ्जन, मृगनयनी युवतियोंके नूपुरोंकी मनोहर झनकारों तथा हास-परिहासके शब्दोंको श्रवण करके नींदसे जागता है । गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षो तक वह स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक रहता है, फिर पुण्यक्षीण होनेपर जब वह स्वर्गसे नीचे उतरता है, तब इस मनुष्य लोकमें आकर सम्पन्न घरमें जन्म लेता है । १८-२७ अध्याय समाप्त

गौओं तथा गोदानकी महिमा ८०

वसिष्ठ उवाच

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ।
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ।।१।।
घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम् ।
घृतं सर्वेषु गात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम् ।।२।।
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।३।।
इत्याचम्य जपेत्सायं प्रातश्च पुरुषः सदा ।
यदह्ना कुरुते पापं तस्मात्स परिमुच्यते ।।४।।
प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा ।
गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः ।।५।।
नवनीतपंकाः क्षीरोदा दधिशैवालसंकुलाः ।
वहन्ति यत्र नद्यो वै तत्र यान्ति सहस्रदाः ।।६।।

वशिष्ठजी कहते हैं- राजन्! मनुष्यको चाहिये कि सदा सबेरे और सायंकाल आचमन करके इसप्रकार जप करे- 'घी और दूध देनेवाली, घीकी उत्पत्तिका स्थान, घीको प्रकट करनेवाली, घीकी नदी तथा घीकी भँवररूप गौएँ मेरे घरमें सदा निवास करें । गौका घी मेरे हृदयमें सदा अवस्थित रहे । घी मेरी नाभिमें प्रतिष्ठित हो । घी मेरे सम्पूर्ण अंगोंमें व्याप्त रहे और घी मेरे मनमें स्थित हो । गौएँ मेरे आगे रहें । गौएँ मेरे पीछे भी रहें । गौएँ मेरे चारों ओर रहें और मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ । इसप्रकार प्रतिदिन पाप करनेवाला मनुष्य दिनभरमें जो पाप करता है, उससे छुटकारा पा जाता हैं ।४। सहस्रगोदान करनेवाले मनुष्य जहाँ सोनेके महल हैं, जहाँ स्वर्गगंगा बहती हैं तथा जहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ निवास करती हैं, उस स्वर्गलोकमें जाते हैं ।

सहस्रगोदान करनेवाले पुरुष जहाँ दुग्धरूपी जलसे भरी हुई, दधिरूप सेवारसे व्याप्त हुई तथा मक्खनरूपी कीचड़से युक्त हुई नदियाँ बहती हैं, वहीं जाते हैं ।**६**।।

गवां शतसहस्रं तु यः प्रयच्छेद्यथाविधि ।
परामृद्धिमवाप्याथ स गोलोके महीयते ।।७।।
दश चोभयतः प्रेत्य मातापित्रोः पितामहान् ।
दधाति सुकृताँल्लोकान्पुनाति च कुलं नरः ।।८।।
धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणां धेनुं तिलानामपि च प्रदाय ।
पानीयदाता च यमस्य लोके न यातनां काञ्चिदुपैति तत्र ।।९।।
पवित्रमग्र्यं जगतः प्रतिष्ठा दिवौकसां मातरोऽथाप्रमेयाः ।
अन्वालभेद्दक्षिणतो व्रजेच्च दद्याच्च पात्रे प्रसमीक्ष्य कालम् ।।१०।।
धेनुं सवत्सां कपिलां भूरिश्रृंगां कांस्योपदोहां वसनोत्तरीयाम् ।
प्रदाय तां गाहति दुर्विगाह्यां याम्यां सभां वीतभयो मनुष्यः ।।११।।
सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः ।
गावो मामुपतिष्ठन्तामिति नित्यं प्रकीर्तयेत् ।।१२।।
नातः पुण्यतरं दानं नातः पुण्यतरं फलम् ।
नातो विशिष्टं लोकेषु भूतं भवितुमर्हति ।।१३।।
त्वचा लोम्नाऽथ श्रृंगैश्च वालैः क्षीरेण मेदसा ।
यज्ञं वहन्ति सम्भूय किमस्त्यभ्यधिकं ततः ।।१४।।

जो विधिपूर्वक एकलाख गौओंका दान करता है, वह अत्यन्त अभ्युदयको पाकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है । वह मनुष्य अपने माता और पिताकी दस-दस पीढ़ियोंको पवित्र करके उन्हें पुण्यमय लोकोंमें भेजता है और अपने कलको भी पवित्र कर देता है । जो गायके बराबर तिलकी गाय बनाकर उसका दान करता है अथवा जो जलधेनुका दान करता है, उसे यमलोकमें जाकर वहाँकी कोई यातना नहीं भोगनी पड़ती । गौ सबसे अधिक पवित्र, जगत्‌की आधार और देवताओंकी माता है । उसकी महिमा अप्रमेय है । उसका सादर स्पर्श करे और उसे दाहिने रखकर चले तथा उत्तम समय देखकर उसका सुपात्र ब्राह्मणको दान करे ।**१०**। जो बड़े-बड़े सींगोवाले कपिलाधेनुको वस्त्र ओढ़ाकर उसे बछड़े और काँसेकी दोहनीके सहित ब्राह्मणको दान करता है वह मनुष्य यमराजकी दुर्गम सभामें निर्भय होकर प्रवेश करता है । प्रतिदिन यह प्रार्थना करनी चाहिये कि सुन्दर एवं अनेक प्रकारके रूप-रंगवाली विश्वरूपिणी गौमाताएँ सदा मेरे निकट आयें । गोदानसे बढ़कर कोई पवित्र दान नहीं है । गोदानके फलसे श्रेष्ठ दूसरा कोई फल नहीं है तथा संसारमें गौसे बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट प्राणी नहीं है । त्वचा, रोम, सींग, पूँछके बाल, दूध और मेदा आदिके साथ मिलकर

गौ (दूध, दही, घी आदिके द्वारा) यज्ञका निर्वाह करती है । अतः उससे श्रेष्ठ दूसरी कौन-सी वस्तु है । ७-१४

यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजंगमम् ।
तां धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्य मातरम् ।।१५।।
गुणवचनसमुच्चयैकदेशो नृवर! मयैष गवां प्रकीर्तितस्ते ।
न हि परमिह दानमस्ति गोभ्यो भवन्ति न चापि परायणं तथाऽन्यत् ।।१६।।

भीष्म उवाच

वरमिदमिति भूमिदो विचिन्त्य प्रवरमृषेर्वचनं ततो महात्मा ।
व्यसृजत नियतात्मवान्द्विजेभ्यः सुबहु च गोधनमाप्तवांश्च लोकान् ।।१७।।

जिसने समस्त चराचर जगत्‌को व्याप्त कर रखा है, उस भूत और भविष्यकी जननी गौको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ।१५। नरश्रेष्ठ! यह मैने तुमसे गौओंके गुणवर्णनसम्बन्धी साहित्यका एक लघ्वंश बताया है यानी दिग्दर्शनमात्र कराया है । गौओंके दानसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई दान नहीं है तथा उनके समान दूसरा कोई आश्रय भी नहीं हैं ।।१६।।

भीष्मजी कहते हैं- महर्षि वस्ष्ठिके ये वचन सुनकर भूमिदान करनेवाले संयतात्मा महामना सौदासने यह 'यह बहुत पुण्यकारी है' ऐसा सोचकर ब्राह्मणोंको बहुत-सी गौएँ दान दीं । इससे उन्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुई ।।१४।।

।। अध्याय समाप्त ।।

अनु.अ. १२७

जमदग्निरुवाच

यो यजेदश्वमेधेन वाजपेयशतेन ह ।
आवाक्शिरा वा लम्बेत सत्रं वा स्फीतमाहरेत् ।।१२७/१८/।।
न यस्य हृदयं शुद्धं नरकं स ध्रुवं व्रजेत् ।
तुल्यं यज्ञश्च सत्यं च हृदयस्य च शुद्धता ।।१२७/१९।।

जमदग्नि बोले- कोई अश्वमेघ या सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करे, नीचे मस्तक करके वृक्षमें लटके अथवा समृद्धिशाली सत्र खोल दे, किन्तु जिसका हृदय शुद्ध नहीं है वह पापी निश्चय ही नरकमें जाता है, क्योंकि यज्ञ, सत्य और हृदय की शुद्धि तीनों बराबर है (इनमें हृदयकी शुद्धि सर्वश्रेष्ठ है) १७-१८।

गोमाहात्म्य तथा व्यास-शुकसंवाद

युधिष्ठिर उवाच

पवित्राणां पवित्रं यच्छ्रेष्ठं लोके च यद् भवेत् ।

पावनं परमं चैव तन्मे ब्रूहि पितामह! ॥१॥

भीष्म उवाच

गावो महार्थाः पुण्याश्च तारयन्ति च मानवान् ।
धारयन्ति प्रजाश्चेमाः पयसा हविषा तथा ॥२॥
न हि पुण्यतमं किञ्चिद् गोभ्यो भरतसत्तम! ।
एताः पवित्राः पुण्याश्च त्रिषु लोकेष्वनुत्तमाः ॥३॥
देवानामुपरिष्टाच्च गावः प्रतिवसन्ति वै ।
दत्त्वा चैता नरपते! यान्ति स्वर्ग मनीषिणः ॥४॥
मान्धाता यौवनाश्वश्च ययातिर्नहुषस्तथा ।
गा वै ददन्तः सततं सहस्रशतसम्मिताः ॥५॥
गताः परमकं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् ।
अपि चात्र पुरावृत्तं कथयिष्यामि तेऽनघ! ॥६॥
ऋषीणामुत्तमं धीमान्कृष्णद्वैपायनं शुकः ।
अभिवाद्याह्निकं कृत्वा शुचिः प्रयतमानसः ॥७॥
पितरं परिपप्रच्छ दृष्टलोकपरावरम् ।
को यज्ञः सर्वयज्ञानां वरिष्ठोऽभ्युपलक्ष्यते ॥८॥
किं च कृत्वा परं स्थानं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ।
केन देवाः पवित्रेण स्वर्गमश्नन्ति वा विभो! ॥९॥
किं च यज्ञस्य यज्ञत्वं क्व च यज्ञः प्रतिष्ठितः ।
देवानामुत्तमं किं च किं च सत्रमतः परम् ॥१०॥
पवित्राणां पवित्रं च यत्तद् ब्रूहि पितर्मम ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः परमधर्मवित् ।
पुत्रायाकथयत्सर्वं तत्त्वेन भरतर्षभ! ॥११॥

युधिष्ठिरने कहा- पितामह! संसारमें जो वस्तु पवित्रोंमें भी पवित्र तथा लोकमें पवित्र कहकर अनुमोदित एवं परमपावन हो उसका मुझसे वर्णन कीजिये ।

भीष्मजीने कहा- राजन्! गौएँ महान् प्रयोजन सिद्ध करनेवाली तथा परमपवित्र हैं । ये मनुष्योंको तारनेवाली हैं और अपने दूध, दही, घीसे प्रजावर्गके जीवनकी रक्षा करती हैं । भरतश्रेष्ठ! गौओंसे बढ़कर परमपवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है । ये पुण्यजनक, पवित्र तथा तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । गौएँ देवताओंसे भी उपरके लोकोंमें निवास करती हैं । हे नरपते! जो मनीषी पुरुष इनका स्मरण करते हैं वे स्वर्गमें जाते हैं । युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता (सोमवंशी), नहुष और ययाति ये सदा लाखों गौओंका दान किया करते थे । इससे वे उन उत्तमस्थानोंको प्राप्त हुए हैं

जो देवताओंकेलिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं । निष्पाप नरेश! इस विषयमें मैं तुम्हें एक पुराना दृष्टान्त सुना रहा हूँ-

एक समयकी बात है, परम बुद्धिमान् शुकदेवजीके नित्यकर्मका अनुष्ठान करके पवित्र एवं शुद्धचित्त होकर अपने पिता-ऋषियोंमें उत्पन्न श्रीकृष्णद्वैपायनव्यासको जो लोकके भूत और भविष्यको प्रत्यक्ष देखनेवाले हैं, प्रणाम करके पूछा- पिताजी! सम्पूर्ण यज्ञोंमें कौन-सा कर्म करके उत्तमस्थानको प्राप्त होते हैं तथा किस पवित्र कार्यकेद्वारा देवता स्वर्गलोकका उपभोग करते हैं । यज्ञ का यज्ञत्व क्या है? यज्ञ किसमें प्रतिष्ठित है? देवताओंकेलिए कौन-सी वस्तु उत्तम है? इससे श्रेष्ठ यज्ञ क्या है? पिताजी! पवित्रोंमें पवित्र वस्तु क्या है? इन सारी बातोंका मुझसे वर्णन कीजिये । भरतश्रेष्ठ! पुत्र शुकदेवका यह वचन सुनकर परम धर्मज्ञ व्यासने उससे सब बातें ठीक-ठीक बतायी ।।१-११।।

गोश्रृंगोत्पत्तिः

व्यास उवाच

गावः प्रतिष्ठा भूतानां तथा गावः परायणम् ।
गावः पुण्याः पवित्राश्च पावनं धर्म ऽएव च ।।१२।।
पूर्वमासन्नश्रृंगा वै गाव इत्यनुशुश्रुम ।
श्रृंगार्थे समुपासन्त ताः किल प्रभुमव्ययम् ।।१३।।
ततो ब्रह्मा तु गाः प्रायमुपविष्टाः समीक्ष्य ह ।
ईप्सितं प्रददौ ताभ्यो गोभ्यः प्रत्येकशः प्रभुः ।।१४।।
तासां श्रृंगाण्यजायन्त यस्या यादृङ् मनोगतम् ।
नानावर्णाः श्रृंगवन्त्यस्ता व्यरोचन्त पुत्रक! ।।१५।।
ब्रह्मणा वरदत्तास्ता हव्यकव्यप्रदाः शुभाः ।
पुण्याः पवित्राः सुभगा दिव्यसंस्थानलक्षणाः ।।१६।।
गावस्तेजो महद्दिव्यं गवां दानं प्रशस्यते ।
ये चैताः सम्प्रयच्छन्ति साधवो वीतमत्सराः ।।१७।।

व्यासजी बोले- पुत्र! गौएँ सम्पूर्ण भूतोंकी प्रतिष्ठा हैं । गौएँ परम आश्रय हैं । गौएँ पुण्यमयी एवं पवित्र होती हैं तथा सबको पवित्र करनेवाला साक्षात् धर्म भी गौ ही है । हमने सुना है कि गौएँ पहले बिना सींगकी ही थीं । उन्होंने सींगकेलिये अविनाशी भगवान् ब्रह्माकी उपासना की । भगवान् ब्रह्माजीने गौओंको प्रायोपवेशन (आमरण-अनशन) करते देख उन गौओंमें से प्रत्येकको उनकी अभीष्ट वस्तु दी । बेटा! वरदान मिलनेके पश्चात् गौओंके सींग प्रकट हो गये । जिसके मनमें जैसे

सींगकी इच्छा थी, उसके वैसे ही हो गये । नानाप्रकारके रूप, रंग और सींगसे युक्त हुई उन गौओंकी बड़ी शोभा होने लगी । ब्रह्माजीका वरदान पाकर गौएँ मंगलमयी, हव्य-कव्यप्रदान करनेवाली, पुण्यजनक, पवित्र, सौभाग्यवती तथा पवित्र अंगों एवं लक्षणोंसे सम्पन्न हुई । गौएँ दिव्य एवं महान् तेज हैं । उनके दानकी प्रशंसा की जाती हैं । जो सत्पुरुष मात्सर्यका त्याग करके गौओंका दान करते हैं, वे साधु कहे गये हैं ॥१२-१७॥

गोलोकवर्णनम्

ते वै सुकृतिनः प्रोक्ताः सर्वदानप्रदाश्च ते ।
गवां लोकं तथा पुण्यमाप्नुवन्ति च तेऽनघ! ॥१८॥
यत्र वृक्षा मधुफला दिव्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि दिव्यानि द्विजसत्तम! ॥१९॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका ।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पंका नीरजाः शुभा ॥२०॥
रक्तोत्पलवनैश्चैव मणिदण्डैर्हिरण्मयैः ।
तरुणादित्यसंकाशैर्भान्ति तत्र जलाशयाः ॥२१॥
महार्हमणिपत्रैश्च काञ्चनप्रभकेसरैः ।
नीलोत्पलविमिश्रैश्च सरोभिर्बहुपंकजैः ॥२२॥
करवीरवनैः फुल्लैः सहस्रावर्तसंवृतैः ।
सन्तानकवनैः फुल्लैर्वृक्षैश्च समलंकृताः ॥२३॥
निर्मलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाधनैः ।
उद्भूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः ॥२४॥
सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा द्रुमोत्तमैः ।
जातरूपमयैश्चान्यैर्हुताशनसमप्रभैः ॥२५॥

वे ही पुण्यात्मा कहे गये हैं, वे सम्पूर्ण दानोंके दाता माने गये हैं । निष्पाप गुरुदेव! उन्हें पुण्यमय गोलोकको प्राप्ति होती है । द्विजश्रेष्ठ! गोलोकके सभी वृक्ष मधुर एवं सुस्वादु फल देनेवाले हैं । वे दिव्य फलफूलोंसे सम्पन्न होते हैं । उन वृक्षोंसे पुष्प दिव्य एवं मनोहर गन्धसे युक्त होते हैं । वहाँकी भूमि मणिमयी है । वहाँ की बालुका कांचनचूर्णरूप है । उस भूमिका स्पर्श सभी वस्तुओंमें सुखद होता है । वहाँ धूल और कीचड़का नाम भी नहीं है । वह भूमि सर्वथा मंगलमयी है । वहाँके जलाशय लाल कमलवनोंसे तथा प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रकाशमान मणि-जड़ित सुवर्णमय स्तम्भादिसे सुशोभित होते हैं । वहाँकी भूमि कितने ही सरोवरोंसे शोभा पाती है । उन सरोवरोंमें नीलोत्पलमिश्रित बहुतसे कमल खिले रहते हैं । उन कमलोंके

दल बहुमूल्य मणिमय होते हैं और उनके केसर अपनी स्वर्णमयी प्रभासे प्रकाशित होते हैं । उस लोकमें बहुत-सी नदियाँ हैं, जिनके तटोंपर खिले हुए कनेरोंके वन तथा विकसित सन्तानक (कल्पवृक्ष विशेष)के वन एवं अन्यान्य वृक्ष उनकी शोभा बढ़ाते हैं । वे वृक्ष और वन अपने मूलभागमें सहस्रों आवर्तोंसे घिरे हुए हैं । उन नदियोंके तटोंपर निर्मल मोती अत्यन्त प्रकाशमान मणि, रत्न तथा सुवणरूपी महाधर्न प्रकट होते हैं । कितने ही उत्तम वृक्ष अपने मूलभागकेद्वारा उन नदियोंके जलमें प्रविष्ट दिखायी देते हैं । वे सर्वरत्नमय विचित्र देखे जाते हैं, कितने ही सुवर्णमय होते हैं और दूसरे बहुतसे वृक्ष प्रज्जवलित अग्निके समान प्रकाशित होते हैं **॥१८-२५॥**

सौवर्णा गिरयस्तत्र मणिरत्नशिलोच्चयाः ।
सर्वरत्नमयैर्भान्ति श्रृंगैश्चारुभिरुच्छ्रितैः ॥२६॥
नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः ।
दिव्यगन्धरसैः पुष्पैः फलैश्च भरतर्षभ! ॥२७॥
रमन्ते पुण्यकर्माणस्तत्र नित्यं युधिष्ठिर! ।
सर्वकामसमृद्धार्था निःशोका गतमन्यवः ॥२८॥
विमानेषु विचित्रेषु रमणीयेषु भारत! ।
मोदन्ते पुण्यकर्माणो विहरन्तो यशस्विनः ॥२९॥
उपक्रीडन्ति तान् राजञ्शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।
एताँल्लोकानवाप्नोति गां दत्वा वै युधिष्ठिर! ॥३०॥
यासामधिपतिः पूषा मारुतो बलवान्बली ।
ऐश्वर्ये वरुणो राजा ता मां पान्तु युगन्धराः ॥३१॥
सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः ।
प्राजापत्या इति ब्रह्मञ्जपेन्नित्यं यतव्रतः ॥३२॥
गास्तु शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः ।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान् ॥३३॥

वहाँ सोनेके पर्वत तथा मणि और रत्नोंके शैलसमूह हैं, जो अपने मनोहर, उँचे तथा सर्वरत्नमय शिखरोंसे सुशोभित होते हैं । भरतश्रेष्ठ! वहाँके वृक्षोंमें सदा ही फूल और फल लगे रहते हैं । वे वृक्ष पक्षियोंसे भरे होते हैं तथा उनके फूलों और फलोंमें दिव्यरस और दिव्यसुगन्ध होते हैं । युधिष्ठिर! वहाँ पुण्यात्मा पुरुष ही सदा निवास करते हैं । गोलोकवासी शोक और क्रोधसे रहित पूर्णकाम एवं सफल मनोरथ होते हैं । भरतनन्दन! वहाँके यशस्वी एवं पुण्यकर्मा मनुष्य विचित्र एवं रमणीय विमानोंमें बैठकर यथेष्ट विहार करते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं । राजन्! उनके साथ सुन्दरी अप्सराएँ क्रीड़ा करती हैं । युधिष्ठिर! गोदान करके मनुष्य इन्हीं लोकोंमें जाते

हैं ।।३०।। नरेन्द्र! शक्तिशाली सूर्य और बलवान् वायु जिनके अधिपति हैं एवं राजा वरुण जिनके ऐश्वर्य पर प्रतिष्ठित हैं, वे युगन्धर मुझे पवित्र करें । गौएँ सुरूपा, बहुरूपा, विश्वरूपा तथा सबकी माताएँ हैं । शुकदेव! मनुष्य संयम-नियमके साथ रहकर गौओंके इन प्रजापतिकथित नामोंका प्रतिदिन जप करे । जो पुरुष गौओंकी सेवा और सब प्रकार से उनका अनुगमन करता है, उसपर सन्तुष्ट होकर गौएँ उसे अत्यन्त दुर्लभतर वर प्रदान करती हैं ।।३३।।

द्रुह्येन्न मनसा वाऽपि गोषु नित्यं सुखप्रदः ।
अर्चयेत सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत् ।।३४।।

गौओंके साथ मनसे भी कभी द्रोह न करे, उन्हें सदा सुख पहुँचाये, उनका यथोचित सत्कार करे और नमस्कार आदिकेद्वारा उनका पूजन करता रहे ।।३४।।

दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाश्नुते ।
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं पिबेत्पयः ।।३५।।
गवामुष्णं पयः पीत्वा त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो भवेत्त्र्यहम् ।।३६।।
येन देवाः पवित्रेण भुञ्जते लोकमुत्तमम् ।
यत्पवित्रं पवित्राणां तद् घृतं शिरसा वहेत् ।।३७।।
घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।
घृतं प्राशेद् घृतं दद्याद् गवां पुष्टिं तथाऽश्नुते ।।३८।।
निर्हृतैश्च यवैर्गोभिर्मासं प्रसृतयावकः ।
ब्रह्महत्यासमं पापं सर्वमेतेन शुद्ध्यति ।।३९।।
पराभवार्थं दैत्यानां देवैः शौचमिदं कृतम् ।
देवत्वमपि च प्राप्ताः संसिद्धाश्च महाबलाः ।।४०।।
गावः पवित्राः पुण्याश्च पावनं परमं महत् ।
ताश्च दत्वा द्विजातिभ्यो नरः स्वर्गमुपाश्नुते ।।४०।।
गवां मध्ये शुचिर्भूत्वा गोमतीं मनसा जपेत् ।
पूताभिरद्भिराचम्य शुचिर्भवति निर्मलः ।।४१।।
अग्निमध्ये गवां मध्ये ब्राह्मणानां च संसदि ।
विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः पुण्यकर्मिणः ।।४३।।
अध्यापयेरञ्छिष्यान्वै गोमतीं यज्ञसम्मिताम् ।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा गोमतीं लभते वरम् ।।४४।।

जो मनुष्य जितेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त होकर नित्य गौओंकी सेवा करता है, वह समृद्धिका भागी होता है । मनुष्य तीन दिनों तक गरम गोमूत्र पीकर रहे, फिर तीन

दिन तक गरम गोदुग्ध पीकर रहे । गरम गोदुग्ध पीनेके पश्चात् तीन दिनों तक गरम-गरम गोघृत पीये । तीन दिन तक गरम घी पीकर तीन दिनों तक वह वायु पीकर रहे । देवगण भी जिस पवित्र घृतके प्रभावसे उत्तमोत्तम लोकका पालन करते हैं तथा जो पवित्र वस्तुओंमें सबसे बढ़कर पवित्र है, उससे घृतको शिरोधार्य करे । गायके घीकेद्वारा अग्निमें आहुति दे । घृतकी दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये । घृत भोजन करे तथा गोघृतका ही दान करे । ऐसा करनेसे मनुष्य गौओंकी समृद्धि एवं अपनी पुष्टिका अनुभव करता है । गौओंके गोबरसे निकाले हुए जौकी लपसीका एकमास तक भक्षण करे । इससे मनुष्य ब्रह्महत्या जैसे पापसे भी छुटकारा पा जाता है । दैत्योंको पराजित करनेकेलिये देवताओंने इसी प्रायश्चित्तका अनुष्ठान किया । इससे उन्हें पुनः (नष्ट हुए) देवत्वकी प्राप्ति हुई तथा वे महा बलवान् और परमसिद्ध हो गये **।।३५-४०।।**

गौएँ परम पावन, पवित्र और पुण्यस्वरूपा हैं । वे महान् देवता हैं । उन्हें ब्राह्मणोंको देकर मनुष्य स्वर्गका सुख-आनन्द भोगता है ।।**४१**।। गोमतीमन्त्र (गोमा अग्ने विभा अश्वि)का मन ही मन जप करे । ऐसा करनेसे वह अत्यन्त शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है । विद्या और वेदव्रतमें निष्णात पुण्यात्मा ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे अग्नियों और गौओंके बीचमें तथा ब्राह्मणोंकी सभामें शिष्योंको यज्ञतुल्य गोमती विद्याकी शिक्षा दें । जो तीन रात तक उपवास करके गोमतीमन्त्रका जप करता है, उसे गौओंका वरदान प्राप्त होता है **।।४१-४४।।**

पुत्रकामश्च लभते पुत्रं धनमथापि वा ।
पतिकामा च भर्तारं सर्वकामांश्च मानवः ।
गावस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सेविता वै न संशयः ।।४५।।
एवमेता महाभागा यज्ञियाः सर्वकामदाः ।
रोहिण्य इति जानीहि नैताभ्यो विद्यते परम् ।।४६।।
इत्युक्तः स महातेजाः शुकः पित्रा महात्मना ।
पूजयामास गा नित्यं तस्मात्त्वमपि पूजय ।।४७।।

पुत्रकी इच्छावाला पुत्र और धन चाहनेवाला धन पाता है । पतिकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको मनोनुकूल पति मिलता है । सारांश यह कि गौओंकी आराधना करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । गौएँ मनुष्योंद्वारा सेवित और सन्तुष्ट होकर उन्हें सबकुछ देती हैं, इसमें संशय नहीं है । इस प्रकार ये

महाभाग्यशालिनी गौएँ यज्ञका प्रधान अंग हैं और सबको सम्पूर्ण कामनाएँ देनेवाली हैं । तुम इन्हें रोहिणी समझो । इनसे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है ।

युधिष्ठिर! अपने महात्मापिता व्यासजीके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी शुकदेवजी प्रतिदिन गौकी सेवा-पूजा करने लगे, इसलिए तुम भी गौओंकी सेवा पूजा करो ।।४६।।

।। अध्याय समाप्त ।।

तथा गवार्थे शरणं शीतवर्षसहं दृढम् ।
आसप्तमं तारयति कुलं भरतसत्तम ।।६६/३०।।

भरतश्रेष्ठ! जो गौओंके लिये सर्दी और वर्षासे बचानेवाला सुदृढ़ निवासस्थान बनवाता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है ।

अनु.दानधर्मपर्व अ.८२

लक्ष्मी और गौओंका संवाद तथा लक्ष्मीकी प्रार्थनापर गौओंकेद्वारा गोबर और गोमूत्रमें लक्ष्मीको निवासकेलिये स्थान दिया जाना ।

युधिष्ठिरऽउवाच

मया गवां पुरीषं वै श्रिया जुष्टमिति श्रुतम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं संशयोऽत्र पितामह ।।८२/।।।

भीष्मऽउवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गोभिर्नृपेह संवादं श्रिया भरतसत्तम ।।२।।
श्रीः कृत्वेह वपुः कान्तं गोमध्यं प्रविवेश ह ।
गावोऽथ विस्मितास्तस्या दृष्ट्वा रूपस्य सम्पदम् ।।३।।

गावऽऊचुः

काऽसि देवि! कुतो वा त्वं रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
विस्मिताः स्म महाभागे! तव रूपस्य सम्पदा ।।४।।
इच्छामस्त्वां वयं ज्ञातुं का त्वं क्व च गमिष्यसि ।
तत्त्वेन वरवर्णाभे सर्वमेतद् ब्रवीहि नः ।।५।।

श्रीरुवाच

लोककान्ताऽस्मि भद्रं वः श्रीर्नाम्नेह परिश्रुता ।
मया दैत्याः परित्यक्ता विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।।६।।
मयाऽभिपन्ना देवाश्च मोदन्ते शाश्वतीः समाः ।
इन्द्रो विवस्वान्सोमश्च विष्णुरापोऽग्निरेव च ।।७।।

मयाभिपन्नाः सिद्ध्यन्ते ऋषयो देवतास्तथा ।
यांश्च द्विषाम्यहं गावस्ते विनश्यन्ति सर्वशः ॥८॥

युधिष्ठिरने कहा- पितामह! मैनें सुना है कि गौओंके गोबरमें लक्ष्मीका निवास है किन्तु इस विषयमें मुझे सन्देह है । अतः इसके सम्बन्धमें मैं यथार्थ बात सुनना चाहता हूँ । भीष्मजीने कहा- भरतश्रेष्ठ नरेश्वर! इस विषयमें विज्ञपुरुष गौ और लक्ष्मीके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । एक समयकी बात है, लक्ष्मीने मनोहररूप धारण करके गौओंके झुण्डमें प्रवेश किया । उनके रूप-वैभवको देखकर गौएँ आश्चर्यचकित हो उठीं । गौओंने पूछा- देवि! तुम कौन हो और कहाँसे आयी हो? इस पृथ्वीपर तुम्हारे रूपकी कोई तुलना नहीं है । महाभागे! तुम्हारी इस रूपसम्पत्तिसे हम सभी बड़े आश्चर्य में पड़ गये हैं । इसलिए हम तुम्हारा परिचय जानना चाहते हैं। तुम कौन हो और कहाँ जाओगी? वरवर्णिनि! ये सारी बातें हमें ठीक-ठीक बताओ । लक्ष्मी बोली- गौओं! तुम्हारा कल्याण हो । मैं इस जगत् में लक्ष्मी नाम से प्रसिद्ध हूँ । सारा जगत् मेरी कामना करता है । मैनें दैत्योंको छोड़ दिया, इसलिए वे सदाकेलिये नष्ट हो गये हैं । मेरे ही आश्रयमें रहनेके कारण इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, जलके अधिष्ठाता देवता वरुण और अग्नि आदि देवता सदा आनन्द भोग रहे हैं । देवताओं तथा ऋषियोंको मुझसे अनुगृहीत होने पर ही सिद्धि मिलती है। गौओं! जिनसे मैं द्वेष करती हूँ, वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ।।१-२।।

<u>लक्ष्मी-गोसंवाद एवं गोबरमें लक्ष्मीका निवास</u>

धर्मश्चार्थश्च कामश्च मया जुष्टाः सुखान्विताः ।
एवम्प्रभावां मां गावो विजानीत सुखप्रदाम् ॥९॥
इच्छामि चापि युष्मासु वस्तुं सर्वासु नित्यदा ।
आगता प्रार्थये युष्माञ्छ्रीजुष्टा भवतानघाः ॥१०॥

गावऽऊचुः

अध्रुवा चपला च त्वं सामान्या बहुभिः सह ।
न त्वामिच्छाम भद्रं ते गम्यतां यत्र रंस्यसे ॥११॥
वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाऽद्य वै ।
यत्रेष्टं गम्यतां तत्र कृतकार्या वयं त्वया ॥१२॥

श्रीरुवाच

किमेतद्वः क्षमं गावो यन्मां नेहाभिनन्दथ ।
न मां सम्प्रति गृह्णीथ कस्माद्वै दुर्लभां सतीम् ॥१३॥
सत्यश्च लोकवादोऽयं लोके चरति सुव्रताः ।
स्वयं प्राप्ते परिभवो भवतीति विनिश्चयः ॥१४॥

महदुग्रं तपः कृत्वा मां निषेवन्ति मानवाः ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥१५॥
प्रभाव एष वो गावः प्रतिगृह्णीत मामिह ।
नावमन्या ह्यहं सौम्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१६॥

धर्म, अर्थ और काम मेरा सहयोग पाकर ही सुखप्रद होते हैं, अतः सुखदायिनी गौओं! मुझे ऐसे ही प्रभावसे सम्पन्न समझो । मैं तुम सबोंके भीतर भी सदा निवास करना चाहती हूँ और इसकेलिये स्वयं ही तुम्हारे पास आकर प्रार्थना करती हूँ । तुम सभी मेरा आश्रय पाकर श्रीसम्पन्न हो जाओ । गौओंने कहा- देवि! तुम चञ्चला हो। कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहती । इसके सिवा तुम्हारा बहुतोंके साथ एक-सा सम्बन्ध है, इसलिये हम तुम्हें नहीं चाहती हैं । तुम्हारा कल्याण हो । तुम जहाँ आनन्दपूर्वक रह सको वहाँ जाओ । हमारा शरीर तो यों ही हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर है । हमें तुमसे क्या काम? तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ । तुमने दर्शन दिया, इतने ही से हम कृतार्थ हो गयीं ।

लक्ष्मीने कहा- गौओं! यह क्या बात है? क्या यही तुम्हारे लिये उचित है कि तुम मेरा अभिनन्दन नहीं करती । मैं सती साध्वी हूँ, दुर्लभ हैं । गौओं! लोकमें जो यह प्रवाद चल रहा है कि बिना बुलाये स्वयं किसीके यहाँ जाने पर निश्चय ही अनादर होता है । यह ठीक ही जान पड़ता है । देवता, दानव, यक्ष, गान्धर्व, राक्षस और मनुष्य बड़ी उग्र तपस्या करके मेरी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करते हैं । सौम्य स्वभाववाली गौओं! यह तुम्हारा प्रभाव है कि मैं स्वयं तुम्हारे पास आयी हूँ । अतः तुम मुझे यहाँ ग्रहण करो । चराचरप्राणियों सहित समस्त त्रिलोकीमें कहीं भी मैं अपमान पानेके योग्य नहीं हूँ ।।६-१३।।

गावऽऊचुः

नावमन्यामहे देवि! न त्वां परिभवामहे ।
अध्रुवा चलचित्ताऽसि ततस्त्वां वर्जयामहे ॥१७॥
बहुनात्र किमुक्तेन गम्यतां यत्र वाञ्छसि ।
वपुष्मत्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाऽनघे ॥१८॥

श्रीरुवाच

अवज्ञाता भविष्यामि सर्वलोकेषु मानदाः ।
प्रत्याख्यानेन युष्माभिः प्रसादः क्रियतां मम ॥१९॥
महाभागा भवत्यो वै शरण्याः शरणागताम् ।
परित्रायन्तु मां नित्यं भजमानामनिन्दिताम् ॥२०॥
माननामहमिच्छामि भवत्यः सततं शिवाः ।

अप्येकाङ्गेष्वधो वस्तुमिच्छामि च सुकुत्सिते ॥२१॥
न वोऽस्ति कुत्सितं किञ्चिदङ्गेष्वालक्ष्यतेऽनघाः ।
पुण्याः पवित्राः सुभगा ममादेशं प्रयच्छत ॥२२॥
वसेयं यत्र वो देहे तन्मे व्याख्यातुमर्हथ ।
एवमुक्तास्ततो गावः शुभाः करुणवत्सलाः ।
सम्मन्त्र्य सहिताः सर्वाः श्रियमूचुर्नराधिप ॥२३॥
अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि ।
शकृन्मूत्रे निवस त्वं पुण्यमेतद्धि नः शुभे ॥२४॥

गौओंने कहा- देवि! हम तुम्हारा अपमान या अनादर नहीं करतीं, केवल तुम्हारा त्याग कर रही हैं । वह भी इसलिये कि तुम्हारा चित्त चञ्चल है । तुम कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहती । इस विषयमें बहुत बात करनेसे क्या लाभ? तुम जहाँ जाना चाहो, चली जाओ । अनघे! हमारा शरीर तो यों ही हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर है । अतः तुमसे हमें क्या काम है । लक्ष्मीने कहा- दूसरोंको सम्मान देनेवाली गौओ! तुम्हारे त्याग देनेसे मैं सम्पूर्ण जगत्केलिये अवहेलित और उपेक्षित हो जाऊँगी । इसलिए मुझपर कृपा करो । तुम महान् सौभाग्यशालिनी और सबको शरण देनेवाली हो । मैं भी तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । तुम्हारी भक्त हूँ । मुझमें कोई दोष भी नहीं है । अतः तुम मेरी रक्षा करो, मुझे अपनालो । गौओ! मैं तुमसे सम्मान चाहती हूँ । तुम सदा सबका कल्याण करनेवाली हो । तुम्हारे किसी एक अंगमें, नीचेके कुत्सित अंगमें भी या जो स्थान मिल जाय तो मैं उसमें रहना चाहती हूँ । निष्पाप गौओ! वास्तवमें तुम्हारे अंगोंमें कहीं कोई कुत्सित स्थान नहीं दिखायी देता । तुम परमपुण्यमयी, पवित्र और सौभाग्यशालिनी हो । अतः मुझे आज्ञा दो । तुम्हारे शरीरमें जहाँ मैं रह सकूँ उसकेलिये मुझे स्पष्ट बताओ । नरेश्वर! लक्ष्मीके ऐसा कहनेपर करुणा और वात्सल्य की मूर्ति शुभस्वरूपा गौओंने एकसाथ मिलकर सलाह की, फिर सबोंने लक्ष्मीसे कहा- शुभे! यशस्विनि! अवश्य ही हमें तुम्हारा सम्मान करना चाहिये । तुम हमारे गोबर और मूत्रमें निवास करो, क्योंकि हमारी ये दोनों वस्तुएँ परम पवित्र हैं ।

श्रीरुवाच

दिष्ट्या प्रसादो युष्माभिः कृतो मेऽनुग्रहात्मकः ।
एवं भवतु भद्रं वः पूजिताऽस्मि सुखप्रदाः ॥२५॥
एवं कृत्वा तु समयं श्रीर्गोभिः सह भारत ।
पश्यन्तीनां ततस्तासां तत्रैवान्तरधीयत ॥२६॥
एतद्गोशकृतः पुत्र माहात्म्यं तेऽनुवर्णितम् ।
माहात्म्यं च गवां भूयः श्रूयतां गदतो मम ॥२७॥

लक्ष्मीजीने कहा- सुखदायिनी गौओ! धन्यभाग्य, जो तुमलोगोंने मुझपर अपना कृपापूर्ण प्रसाद प्रकट किया । ऐसा ही होगा- मैं तुम्हारे गोबर और गोमूत्रमें ही निवास करूँगी । तुमने मेरा मान रख लिया, अतः तुम्हारा कल्याण हो । भरतनन्दन! इस प्रकार गौओंके साथ प्रतिज्ञा करके लक्ष्मीजी उनके देखते-देखते वहाँसे अन्तर्धान हो गयी । बेटा! इस तरह मैने तुमसे गोबरका माहात्म्य बतलाया है । अब पुनः गौओंका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो ।। **२५-२७**।। अध्याय समाप्त ।।

ब्रह्माजीका इन्द्रसे गौओंका उत्कर्ष बताना और गौओंको वरदान देना

भीष्मऽउवाच

ये च गाः सम्प्रयच्छन्ति हुतशिष्टाशिनश्च ये ।
तेषां सत्राणि यज्ञाश्च नित्यमेव युधिष्ठिर ।।८३/१।।
ऋते दधि घृतेनेह न यज्ञः सम्प्रवर्तते ।
तेन यज्ञस्य यज्ञत्वमतोमूलं च लक्ष्यते ।।२।।
दानानामपि सर्वेषां गवां दानं प्रशस्यते ।
गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावनं ह्येतदुत्तमम् ।।३।।
पुष्ट्यर्थमेताः सेवेत शान्त्यर्थमपि चैव ह ।
पयो दधि घृतं चासां सर्वपापप्रमोचनम् ।।४।।
गावस्तेजः परं प्रोक्तमिह लोके परत्र च ।
न गोभ्यः परमं किञ्चित्पवित्रं पुरुषर्षभ ।।५।।

भीष्मजी कहते हैं- युधिष्ठिर! जो मनुष्य सदा यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन और गोदान करते हैं, उन्हें प्रतिदिन अन्नदान और यज्ञ करनेका फल मिलता है । दही और गोघृतके बिना यज्ञ नहीं होता । उन्हींसे यज्ञका महत्त्व सफल होता है । अतः गौओं को यज्ञका मूल कहते हैं । सबप्रकारके दानोंमें गोदान ही उत्तम माना गया है । इसलिये गौएँ श्रेष्ठ, पवित्र तथा परम पावन हैं । मनुष्यको अपने शरीरकी पुष्टि तथा सबप्रकारके विघ्नोंकी शान्तिकेलिये भी गौओंका सेवन करना चाहिये । इनके दूध, दही और घी सब पापोंसे छुड़ाते हैं । भरतश्रेष्ठ! गौएँ इहलोक और परलोकमें भी महान् तेजोरूप मानी गयी हैं । गौओंसे बढ़कर पवित्र कोई वस्तु नहीं है । (१-५)

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितामहस्य संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ।।६।।
पराभूतेषु दैत्येषु शक्रे त्रिभुवनेश्वरे ।
प्रजाः समुदिताः सर्वाः सत्यधर्मपरायणाः ।।७।।

अथर्षयः सगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ।
देवासुरसुपर्णाश्च प्रजानां पतयस्तथा ॥८॥
पर्युपासन्त कौरव्य कदाचिद्वै पितामहम् ।
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥९॥
दिव्यतानेषु गायन्तः पर्युपासन्त तं प्रभुम् ।
तत्र दिव्यानि पुष्पाणि प्रावहत्पवनस्तथा ॥१०॥
आजह्रुर्ऋतवश्चापि सुगन्धीनि पृथक्पृथक् ।
तस्मिन्देवसमावाये सर्वभूतसमागमे ॥११॥
दिव्यवादित्रसङ्घुष्टे दिव्यस्त्रीचारणावृते ।
इन्द्रः पप्रच्छ देवेशमभिवाद्य प्रणम्य च ॥१२॥
देवानां भगवन्कस्माल्लोकेशानां पितामह ।
उपरिष्टाद्गवां लोकऽएतदिच्छामि वेदितुम् ॥१३॥
किं तपो ब्रह्मचर्यं वा गोभिः कृतमिहेश्वर ।
देवानामुपरिष्टाद्यद्वसन्त्यरजसः सुखम् ॥१४॥

युधिष्ठिर! इस विषयमें विद्वान् पुरुष इन्द्र और ब्रह्माजीके इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । पूर्वकालमें देवताओंद्वारा दैत्योंके परास्त हो जानेपर जब इन्द्र तीनों लोकोंके अधीश्वर हुए, तब समस्त प्रजा मिलकर बड़ी प्रसन्नताके साथ सत्य और धर्ममें तत्पर रहने लगी । कुन्तीनन्दन! तदनन्तर एक दिन जब ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, नाग, राक्षस, देवता, असुर, गरुड और प्रजापतिगण ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे । नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा और हूहू नामक गन्धर्व जब दिव्य तान छेड़कर गाते हुए वहाँ उन भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना करते थे । वायुदेव दिव्य पुष्पोंकी सुगन्ध लेकर बह रहे थे, पृथक-पृथक ऋतुएँ भी उत्तम सौरभसे युक्त दिव्य पुष्प भेंट कर रही थी । देवताओंका समाज जुटा था, समस्त प्राणियोंका समागम हो रहा था । दिव्य वाद्योंकी मनोरम ध्वनि गूँज रही थी तथा दिव्यांगनाओं और चारणोंसे वह सम्प्रदाय घिरा हुआ था । उसी समय देवराज इन्द्रने देवेश्वर ब्रह्माजीको प्रणाम करके पूछा- भगवन् पितामह! गोलोक समस्त देवताओं और लोकपालोंके उपर क्यों है? मैं इसे जानना चाहता हूँ। प्रभो! गौओंने यहाँ किस तपस्याका अनुष्ठान अथवा ब्रह्मचर्यका पालन किया है, जिससे वे रजोगुणसे रहित होकर देवताओंसे भी उपर स्थानमें सुखपूर्वक निवास करती है ।। ६-१४।।

ततः प्रोवाच ब्रह्मा तं शक्रं बलनिषूदनम् ।
अवज्ञातास्त्वया नित्यं गावो बलनिषूदन ॥१५॥
तेन त्वमासां माहात्म्यं न वेत्सि श्रृणु यत्प्रभो ।

गवां प्रभावं परमं माहात्म्यं च सुरर्षभ ॥१६॥
यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञऽएव च वासव ।
एताभिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथञ्चन ॥१७॥
धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा ।
एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥१८॥
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च ।
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥१९॥
पयो दधि घृतं चैव पुण्याश्चैताः सुराधिप ।
वहन्ति विविधान्भारान्क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः ॥२०॥
मुनींश्च धारयन्तीह प्रजाश्चैवापि कर्मणा ।
वासवाकूटवाहिन्यः कर्मणा सुकृतेन च ॥२१॥
उपरिष्टात्ततोऽस्माकं वसन्त्येताः सदैव हि ।
एतत्ते कारणं शक्र निवासकृतमद्य वै ॥२२॥

तब ब्रह्माजीने बलसूदन इन्द्रजीसे कहा– बलासुरका विनाश करनेवाले देवेन्द्र! तुमने सदा गौओंकी अवहेलना की है । प्रभो! इसलिये तुम इनका माहात्म्य नहीं जानते । सुरश्रेष्ठ! गौओं का महान् प्रभाव और माहात्म्य बताता हूँ, सुनो । वासव! गौओंको यज्ञका अंग और साक्षात् यज्ञरूप बतलाया गया है, क्योंकि इनके दूध, दही और घीके बिना यज्ञ किसी तरह सम्पन्न नहीं हो सकता । ये अपने दूध और घीसे प्रजाका भी पालन–पोषण करती हैं । इनके पुत्र (बैल) खेतीके काम आते हैं तथा नाना प्रकारके धान्य एवं बीज उत्पन्न करते हैं । उन्हींसे यज्ञ सम्पन्न होते हैं और हव्य–कव्यका भी सर्वथा निर्वाह होता है । सुरेश्वर! इन्हीं गौओंसे दूध, दही और घी प्राप्त होते हैं । ये गौएँ बड़ी पवित्र होती हैं । बैल भूख प्याससे पीड़ित होकर भी नाना प्रकारके बोझ ढोते रहते हैं । इस प्रकार गौएँ अपने कर्मसे ऋषियों तथा प्रजाओंका पालन करती रहती हैं । वासव! इनके व्यवहारमें कपट नहीं होता । ये सदा सत्कर्ममें ही लगी रहती हैं । इसीसे ये गौएँ हम सबोंके ऊर्ध्वस्थान(गोलोकधाम)में निवास करती हैं । शक्र! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह बात बतायी कि ।।**१५-२२**।।

गवां देवोपरिष्टाद्धि समाख्यातं शतक्रतो ।
एता हि वरदत्ताश्च वरदाश्चापि वासव ॥२३॥

गौएँ देवताओंसे भी ऊपरके स्थानमें क्यों निवास करती हैं ? शतक्रतो इन्द्र! इसके सिवाय गौएँ वरदान भी प्राप्त कर चुकी हैं और प्रसन्न होनेपर दूसरोंको वर देनेकी भी शक्ति रखती हैं ।।**२३**।।

सुरभ्यः पुण्यकर्मिण्यः पावनाः शुभलक्षणाः ।

यदर्थं गां गताश्चैव सुरभ्यः सुरसत्तम ॥२४॥
तच्च मे श्रृणु कात्स्न्येंन वदतो बलसूदन ।
पुरा देवयुगे तात देवेन्द्रेषु महात्मसु ॥२५॥
त्रींल्लोकाननुशासत्सु विष्णौ गर्भत्वमागते ।
अदित्यास्तप्यमानायास्तपो घोरं सुदुश्चरम् ॥२६॥
पुत्रार्थममरश्रेष्ठ पादेनैकेन नित्यदा ।
तां तु दृष्ट्वा महादेवीं तप्यमानां महत्तपः ॥२७॥
दक्षस्य दुहिता देवी सुरभिर्नाम नामतः ।
अतप्यत तपो घोरं हृष्टा धर्मपरायणा ॥२८॥
कैलासशिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते ।
व्यतिष्ठदेकपादेन परमं योगमास्थिता ॥२९॥
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
सन्तप्तास्तपसा तस्या देवाः सर्षिमहोरगाः ॥३०॥
तत्र गत्वा मया सार्धं पर्युपासन्त तां शुभाम् ।
अथाहमब्रुवंस्तत्र देवीं तां तपसाऽन्विताम् ॥३१॥
किमर्थं तप्यते देवि तपो घोरमनिन्दिते ।
प्रीतस्तेऽहं महाभागे तपसानेन शोभने ॥३२॥
वरयस्व वरं देवि दाताऽस्मीति पुरंदर ॥३३॥

सुरभि गौएँ पुण्यकर्म करनेवाली और शुभलक्षणा होती हैं । सुरश्रेष्ठ! बलसूदन! वे जिस उद्देश्यसे पृथ्वीपर गयी हैं, उसको भी मैं पूर्णरूपसे बता रहा हूँ, सुनो । अमरश्रेष्ठ तात! पहले सत्ययुगमें महामना देवेश्वरगण तीनों लोकोंपर शासन करते थे, उस समय देवी अदिति पुत्रकेलिये नित्य एक पैरसे खड़ी रहकर अत्यंत घोर एवं दुष्कर तपस्या करती थी और उस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर साक्षात् भगवान् विष्णु ही उनके गर्भमें पदार्पण करनेवाले थे । उन्हीं दिनोंकी बात है, महादेवी अदिति को महान् तप करती देख दक्षकी धर्मपरायण पुत्री सुरभी देवीने भी बड़े हर्षके साथ घोर तपस्या आरम्भ की । कैलासके रमणीय शिखरपर, जहाँ देवता और गन्धर्व सदा विराजते रहते हैं, वहाँ वह उत्तम योगका आश्रय लेकर ग्यारह हजार वर्षो तक एक पैरपर खड़ी रही । जिसकी तपस्यासे देवता, ऋषि और बड़े-बड़े नाग भी संतप्त हो उठे । वे सबलोग मेरे साथ ही उस शुभलक्षणा तपस्विनी सुरभी देवीके पास जाकर खड़े हुए, तब मैने वहाँ उससे कहा- सती साध्वी देवि! तुम किसलिये यह घोर तपस्या करती हो? शोभने! महाभागे! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत सन्तुष्ट हूँ । देवि! तुम इच्छानुसार

वर माँगो । पुरन्दर! इस तरह मैने सुरभीको वर माँगनेकेलिये प्रेरित किया ।।२४-३३।।

ब्रह्माजीकेद्वारा गौओंकी वरप्राप्ति

सुरभ्युवाच

वरेण भगवन्मह्यं कृतं लोकपितामह ।
एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ ।।३४।।

ब्रह्मोवाच

तामेवं ब्रुवतीं देवीं सुरभीं त्रिदशेश्वर ।
प्रत्यब्रुवं यद्देवेन्द्र तन्निबोध शचीपते ।।३५।।
अलोभकाम्यया देवि तपसा च शुभेन ते ।
प्रसन्नोऽहं वरं तस्मादमरत्वं ददामि ते ।।३६।।
त्रयाणामपि लोकानामुपरिष्टान्निवत्स्यसि ।
मत्प्रसादाच्च विख्यातो गोलोकः स भविष्यति ।।३७।।
मानुषेषु च कुर्वाणाः प्रजाः कर्म सुतास्तव ।
निवत्स्यन्ति महाभागे सर्वा दुहितरश्च ते ।।३८।।
मनसा चिन्तिता भोगास्त्वया वै दिव्यमानुषाः ।
यच्च स्वर्गसुखं देवि तत्ते सम्पत्स्यते शुभे ।।३९।।
तस्या लोकाः सहस्राक्ष सर्वकामसमन्विताः ।
न तत्र क्रमते मृत्युर्न जरा न च पावकः ।।४०।।
न दैन्यं नाशुभं किञ्चिद्विद्यते तत्र वासव ।
तत्र दिव्यान्यरण्यानि दिव्यानि भवनानि च ।।४१।।
विमानानि च युक्तानि कामगानि च वासव ।।४१.१/२।।

सुरभीने कहा- भगवन्! निष्पाप लोकपितामह! मुझे वर लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । मेरे लिये तो सबसे बड़ा वर यही है कि आज आप मुझपर प्रसन्न हो गये हैं । ब्रह्माजीने कहा- देवेश्वर! देवेन्द्र! शचीपते! जब सुरभी ऐसी बात करने लगी तब मैने उसे जो उत्तर दिया, वह सुनो- (मैने कहा) देवि! शुभानने! तुमने लोभ और कामनाको त्याग दिया है । तुम्हारी इस निष्काम तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें अमरत्वका वरदान देता हूँ । तुम मेरी कृपासे तीनों लोकोंके उपर निवास करोगी और तुम्हारा वह धाम गोलोकके नामसे विख्यात होगा । महाभागे! तुम्हारी सभी शुभ सन्तानें- समस्त पुत्र और कन्याएँ मानवलोकमें उपयुक्त कर्म करती हुई निवास करेंगी । देवि! शुभे! तुम अपने मनसे जिन दिव्य अथवा मानवीय भोगोंका चिन्तन करोगी तथा जो स्वर्गीय सुख होगा, वे सभी तुम्हें स्वतः प्राप्त होते रहेंगे

।।३१।। सहस्राक्ष! सुरभीके निवासभूत गोलोकमें सबकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं, वहाँ मृत्यु और बुढ़ापेका आक्रमण नहीं होता और अग्निका भी जोर नहीं चलता । वासव! वहाँ ना कोई दुर्भाग्य है और न अशुभ । वहाँ दिव्य भवन तथा परमसुन्दर एवं इच्छानुसार विचरनेवाले विमान मौजूद हैं ।

ब्रह्माजीद्वारा गोलोक-वर्णन एवं इन्द्रद्वारा गोपूजन

ब्रह्मचर्येण तपसा यत्नेन च दमेन च ।।४२।।
दानैश्च विविधैः पुण्यैस्तथा तीर्थानुसेवनात् ।
तपसा महता चैव सुकृतेन च कर्मणा ।।४३।।
शक्यः समासादयितुं गोलोकः पुष्करेक्षण ।।
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया शक्रानुपृच्छति ।।४४।।
न ते परिभवः कार्यो गवामरिनिसूदन ।।४५।।
भीष्मऽउवाच
एतच्छुत्वा सहस्राक्षः पूजयामास नित्यदा ।
गाश्चक्रे बहुमानं च तासु नित्यं युधिष्ठिर ।।४६।।
एतत्ते सर्वमाख्यातं पावनं च महाद्युते ।
पवित्रं परमं चापि गवां माहात्म्यमुत्तमम् ।।४७।।
कीर्तितं पुरुषव्याघ्र सर्वपापविमोचनम् ।
यऽइदं कथयेन्नित्यं ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ।।४८।।
हव्यकव्येषु यज्ञेषु पितृकार्येषु चैव ह ।
सार्वकामिकमक्षय्यं पितृंस्तस्योपतिष्ठते ।।४९।।
गोषु भक्तश्च लभते यद्यदिच्छति मानवः ।
स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च कामानवाप्नुयुः ।।५०।।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्या पतिमवाप्नुयात् ।
धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।।५१।।
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात्सुखम् ।
न किञ्चिद्दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत ।।५२।।

कमलनयन इन्द्र! ब्रह्मचर्य, तपस्या, यत्न, इन्द्रियसंयम नानाप्रकारके दान, पुण्य, तीर्थसेवन, महान् तप और अन्यान्य शुभकर्मोंके अनुष्ठानसे ही गोलोककी प्राप्ति हो सकती है । गोवंशशत्रुसूदन शक्र! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैने सारी बातें बतलायी हैं । अब तुम्हें गौओंका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये । भीष्मजी कहते हैं– युधिष्ठिर! ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर सहस्रनेत्रधारी इन्द्र प्रतिदिन गौओंकी पूजा करने लगे । उन्होंने उनके प्रति बहुत सम्मान प्रकट किया । महाद्युते! यह सब मैंने

तुमसे गौओंका परमपावन, परमपवित्र और अत्यन्त उत्तम माहात्म्य कहा है । पुरुषसिंह! यदि इसका कीर्तन किया जाय तो यह समस्त पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला है । जो एकाग्रचित्त हो सदा यज्ञ और श्राद्धमें हव्य तथा कव्य अर्पण करते समय ब्राह्मणोंको यह प्रसंग सुनायेगा, उसका दिया हुआ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और अक्षय होकर पितरोंको प्राप्त होगा । गोभक्त मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे प्राप्त होती है । स्त्रियोंमें भी जो गौओंकी भक्त हैं, वे मनोवाञ्छित कामनाएँ प्राप्त कर लेती हैं ।।४२-५०।। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाता है और कन्यार्थी कन्या । धन चाहनेवालेको धन और धर्म चाहनेवालेको धर्म प्राप्त होता है । विद्यार्थी विद्या पाता है और सुखार्थी सुख । भारत! गोभक्त के लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।

गोमन्त्रका पाठ

बहुले समंगे ह्यकुतोभये च क्षेमे च सख्येव हि भूयसी च ।
यथा पुरा ब्रह्मपुरे सवत्सा शतक्रतोर्वज्रधरस्य यज्ञे ।। १२६।।३८।।
भूयश्च या विष्णुपदे स्थिता या विभावसोश्चापि पथे स्थिता या ।
देवाश्च सर्वे सह नारदेन प्रकुर्वते सर्वसहेति नाम ।।१२६।।३९।।
मन्त्रेणैतेनाभिवन्देत यो वै विमुच्यते पापकृतेन कर्मणा ।
लोकानवाप्नोति पुरन्दरस्य गवां फलं चन्द्रमसो द्युतिं च ।।१२६।।४०।।
एतं हि मन्त्रं त्रिदशाभिजुष्टं पठेत यः पर्वसु गोष्ठमध्ये ।
न तस्य पापं न भयं न शोकः सहस्रनेत्रस्य च याति लोकम् ।।१२६।।४१।।

गौओंने कहा- पूर्वकालमें ब्रह्मलोकके भीतर वज्रधारी इन्द्रके यज्ञमें बहुले, समंगे, अकुतोभये, क्षेमे, सखी और भूयसी इन नामोंका उच्चारण करके बछड़ोंसहित गौओंकी स्तुति की गयी थी, फिर जो-जो गौएँ आकाशमें स्थित थीं और जो सूर्यके मार्गमें विद्यमान थीं, नारदसहित सम्पूर्ण देवताओंने उनका सर्वसहा नाम रख दिया ।।३८-३९।।

ये दोनों श्लोक मिलकर एक मन्त्र हैं । उस मन्त्रसे जो गौओंकी वन्दना करता है, वह पापकर्मसे मुक्त हो जाता है, गोसेवाके फलस्वरूप उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है तथा वह चन्द्रमाके समान कान्तिलाभ करता है ।।४०।।

जो पर्वके दिन गोशालामें इस देवसेवित मन्त्रका पाठ करता है, उसे न पाप होता है, न भय होता है और न शोक ही प्राप्त होता है । वह सहस्रनेत्रधारी इन्द्रके लोकमें जाता है ।।४१।।

गोब्राह्मणार्थे साहाय्यं कुर्वाणा वै न संशयः ।

आनृशंस्यमनुक्रोशः सत्यवाक्यमथ क्षमा ।।४८/३४।।
स्वशरीररपित्राणं बाह्यानां सिद्धिकारकम् ।
भवन्ति मनुजव्याघ्र तत्र मे नास्ति संशयः ।।४८/३५।।

पुरुषसिंह! यदि गौ और ब्राह्मणोंकी सहायता करें, क्रूरतापूर्ण कर्मको त्याग दें, सबपर दया करें, सत्य बोलें, दूसरोंके अपराध क्षमा करें और अपने शरीरको कष्टमें भी डालकर दूसरोंकी रक्षा करें तो इन वर्णसंकर मनुष्योंकी भी पारमार्थिक उन्नति हो सकती है । इसमें संशय नहीं है **।।४८।।३४-३५।।**

महर्षि च्यवनका मूल्य एक गौ
राजा नहुषने महर्षि च्यवनको एक गौसे खरीदा

युधिष्ठिरऽउवाच
दर्शने कीदृशः स्नेहः संवासे च पितामह ।
महाभाग्यं गवां चैव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।५०/१।।
भीष्मऽउवाच
पुरा महर्षिश्च्यवनो भार्गवो भरतर्षभ ।
उदवासकृतारम्भो बभूव सुमहाव्रतः ।।५०/३।।
स्थाणुभूतः शुचिर्भूत्वा दैवतेभ्यः प्रणम्य च ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये जलं सम्प्रविवेश ह ।।५०/६।।
गङ्गा च यमुना चैव सरितश्च सरांसि च ।
प्रदक्षिणमृषिं चक्रुर्न चैनं पर्यपीडयन् ।।५०/७।।
जलौकसां स सत्त्वानां बभूव प्रियदर्शनः ।
उपाजिघ्रन्त च तदा तस्योष्ठं हृष्टमानसाः ।।५०/१०।।
तथा मत्स्यैः परिवृतं च्यवनं भृगुनन्दनम् ।
आकर्षयन्महाराज जालेनाथ यदृच्छया ।।५०/१९।।
तं जालेनोद्धृतं दृष्ट्वा ते तदा वेदपारगम् ।
सर्वे प्राञ्जलयो दासाः शिरोभिः प्रापतन्भुवि ।।५०/२१।।
निषादाऽऊचुः
अज्ञानाद्यत्कृतं पापं प्रसादं तत्र नः कुरु ।
करवाम प्रियं किं ते तन्नो ब्रूहि महामुने ।।५०/२४।।
च्यवनऽउवाच
प्राणोत्सर्गं विसर्गं वा मत्स्यैर्यास्याम्यहं सह ।
संवासान्नोत्सहे त्यक्तुं सलिलेऽध्युषितानहम् ।।५०/२६।।
भीष्मऽउवाच
इत्युक्तास्ते निषादास्तु सुभृशं भयकम्पिताः ।

सर्वे विषण्णवदना नहुषाय न्यवेदयन् ॥५०/२७॥

युधिष्ठिरने कहा- पितामह! किसीको देखने और उसके साथ रहनेपर कैसा स्नेह होता है तथा गौओंका माहात्म्य क्या है? यह मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें ।।१।। भीष्मजीने कहा- भरतश्रेष्ठ! पूर्वकालकी बात है । भृगुके पुत्र महर्षि च्यवनने महान् व्रतका आश्रय ले जलके भीतर रहना आरम्भ कर दिया ।।३।। एक समय वे देवताओंको प्रणाम करके अत्यन्त पवित्र होकर गंगा-यमुनाके संगममें जलके भीतर प्रविष्ट हुए और वहाँ काष्ठकी भाँति स्थिर भावसे बैठ गये ।।४।। परन्तु गंगा-यमुना आदि नदियाँ और सरोवर ऋषिकी केवल परिक्रमा करते थे, उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाते थे ।।८।। वे जलचर जीवोंके बड़े प्रिय हो गये थे । जलजन्तु प्रसन्नचित्त होकर उनका ओष्ठ सूँघा करते थे ।।१०।। महाराज! जल खींचते समय मल्लाहोंने देवेच्छासे उस जालके द्वारा मत्स्योंसे घिरे हुए भृगुपुत्र महर्षि च्यवनको भी खींच लिया ।।११।। वेदोंके पारंगत उन विद्वान् महर्षिको जलके साथ खिचा देख सभी मल्लाह हाथ जोड़ मस्तक झुका पृथिवी पर पड़ गये ।।२१।। यह देख निषाद बोले, महामुने! हमने अनजानेमें जो पाप किया है उसकेलिये हमें क्षमा कर दें और हमपर प्रसन्न हों । साथ ही यह भी बतावें कि हमलोग आपका कौन सा प्रियकार्य करें ।।२४।। च्यवनने कहा- मैं इन मछलियोंके साथ ही अपने प्राणोंका त्याग या रक्षण करुँगा । ये मेरे सहवासी रहे हैं । मैं बहुत दिनों तक इनके साथ जलमें रह चुका हूँ, अतः मैं इन्हें त्याग नहीं सकता ।।२१।। भीष्मजीने कहा- मुनिकी यह बात सुनकर निषादोंको बड़ा भय हुआ । वे थर-थर काँपने लगे । उन सबके मुखका रंग फीका पड़ गया और उसी अवस्थामें राजा नहुषके पास जाकर उन्होनें यह सारा समाचार निवेदन किया ।।४१।२६।। अध्याय समाप्त

अध्याय ५१

भीष्मऽउवाच

नहुषस्तु ततः श्रुत्वा च्यवनं तं तथागतम् ।
त्वरितः प्रययौ तत्र सहामात्यपुरोहितः ॥५१/१॥
शौचं कृत्वा यथान्यायं प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः ।
आत्मानमाचचक्षे च च्यवनाय महात्मने ॥५१/२॥
अर्चयामास तं चापि तस्य राज्ञः पुरोहितः ।
सत्यव्रतं महाभागं देवकल्पं विशाम्पते ॥५१/३॥

नहुषऽउवाच

करवाणि प्रियं किं ते तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ।

सर्वं कर्ताऽस्मि भगवन्यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ।।५१/४।।

च्यवनऽउवाच

श्रमेण महता युक्ताः कैवर्ता मत्स्यजीविनः ।
मम मूल्यं प्रयच्छैभ्यो मत्स्यानां विक्रयैः सह ।।५१/५।।

नहुषऽउवाच

अर्द्धं राज्यं समग्रं वा निषादेभ्यः प्रदीयताम् ।
एतन्मूल्यमहं मन्ये किं वाऽन्यन्मन्यसे द्विज ।।५१/१२।।

भीष्मजी कहते हैं- भरतनन्दन! च्यवन मुनिको ऐसी अवस्थामें अपने नगरके निकट आया जान नहुष अपने पुरोहित और मन्त्रियोंको साथ ले शीघ्र वहाँ आ पहुँचे ।।१।। उन्होंने पवित्र भावसे हाथ जोड़कर मनको एकाग्र रखते हुए न्यायोचित रीतिसे महात्मा च्यवनको अपना परिचय दिया ।।२।। प्राणनाथ! राजाके पुरोहितने देवताओंके समान तेजस्वी सत्यव्रती महात्मा च्यवन मुनिका विधिपूर्वक पूजन किया ।।३।। पुनः राजा नहुष बोले, द्विजश्रेष्ठ! बताईये, मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य करूँ? भगवन्! आपकी आज्ञासे कितना ही कठिन कार्य क्यों न हो, मैं सब पूरा काय करूँगा ।।४।। च्यवनने कहा- राजन्! मछलियोंसे जीविका चलाने वाले इन मल्लाहों ने आज बड़े परिश्रम से मुझे अपने जाल में फँसाकर निकाला है, अतः आप इन्हें इन मछलियोंके साथ-साथ मेरा भी मूल्य चुका दीजिये ।।५।।

नहुषने कहा- (भगवन्!) ब्रह्मन्! यदि ऐसी बात है तो इन मल्लाहोंको मेरा आधा या सारा राज्य दे दिया जाय । इसे ही मैं आपके लिये उचित मूल्य मानता हूँ । आप इसके अतिरिक्त और क्या चाहते हैं? ।।१२।।

च्यवनऽउवाच

अर्द्धं राज्यं समग्रं वा नाहमर्हामि पार्थिव ।
सदृशं दीयतां मूल्यमृषिभिः सह चिन्त्यताम् ।।५१/१३।।

भीष्मऽउवाच

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नहुषो दुःखकर्शितः ।
स चिन्तयामास तदा सहामात्यपुरोहितः ।।५१/१४।।
तत्र त्वन्यो वनचरः कश्चिन्मूलफलाशनः ।
नहुषस्य समीपस्थो गविजातोऽभवन्मुनिः ।।५१/१५।।
स तमाभाष्य राजानमब्रवीद्द्विजसत्तमः ।
तोषयिष्याम्यहं क्षिप्रं यथा तुष्टो भविष्यति ।।५१/१६।।

नहुषऽउवाच

ब्रवीतु भगवान्मूल्यं महर्षेः सदृशं भृगोः ।
परित्रायस्व मामस्मद्विषयं च कुलं च मे ।।५१/१८।।

हन्याद्धि भगवान्क्रुद्धस्त्रैलोक्यमपि केवलम् ।
किं पुनर्मां तपोहीनं बाहुवीर्यपरायणम् ॥५१/१९॥
अगाधेऽम्भसि मग्नस्य सामात्यस्य सहर्त्विजः ।
प्लवो भव महर्षे त्वं कुरु मूल्यविनिश्चयम् ॥५१/२०॥
भीष्मऽउवाच
नहुषस्य वचः श्रुत्वा गविजातः प्रतापवान् ।
उवाच हर्षयन्सर्वानमात्यान्पार्थिवं च तम् ॥५१/२१॥

च्यवनने कहा- पृथ्वीनाथ! आपका आधा या सारा राज्य मेरा उचित मूल्य नहीं है । आप उचित मूल्य दीजिये और वह मूल्य आप चाहें तो ऋषियोंके साथ विचार भी कर लें ।।**१३**।।

भीष्मने कहा- युधिष्ठिर! महर्षिका यह वचन सुनकर राजा नहुष दुःखसे कातर हो उठे और मन्त्री तथा पुरोहितके साथ इस विषयमें विचार करने लगे ।।**१४**।। इतनेमें ही फल-फूलका भोजन करनेवाले एक दूसरे वनवासी मुनि, जिनका जन्म गायके पैरसे हुआ था- राजा नहुषके समीप आये और वे द्विजश्रेष्ठ उन्हें सम्बोधित करते हुए कहने लगे । राजन्! ये मुनि कैसे सन्तुष्ट होंगे । इस बातको मैं जानता हूँ । मैं इन्हें शीघ्र सन्तुष्ट कर दूँगा ।।**१६**।।

नहुषने कहा- भगवन्! आप मुझे भृगुपुत्र महर्षि च्यवनका मूल्य, जो इनके योग्य हो, बता दीजिये और ऐसा करके मेरा, मेरे कुलका तथा समस्त राज्यका संकटसे उद्धार कीजिये । ये भगवान् च्यवन मुनि यदि कुपित हो जायँ तो तीनों लोकोंको जलाकर भस्म कर सकते हैं, फिर मुझ जैसे तपोबलसे हीन केवल आयुबलका भरोसा रखनेवाले नरेशको नष्ट करना इनके लिये कौन बड़ी बात है ।।**१९**।। महर्षे! मै अपने मन्त्री और पुरोहितके साथ संकटके अगाध महासागरमें डूब रहा हूँ । आप नौका बनकर मुझे पार लगाईये ।।**२०**।।

भीष्मजी कहते हैं- राजन्! नहुषकी बात सुनकर गायके पेटसे उत्पन्न हुए प्रतापी महर्षिने राजा तथा उनके समस्त मन्त्रियोंको आनन्दित करते हुए बोला ।।**२१**।।

ब्राह्मणानां गवां चैव कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥२२॥
अनर्घेया महाराज द्विजा वर्णेषु चोत्तमाः ।
गावश्च पुरुषव्याघ्र गौर्मूल्यं परिकल्प्यताम् ॥२२॥
नहुषस्तु ततः श्रुत्वा महर्षेर्वचनं नृप ।
हर्षेण महता युक्तः सहामात्यपुरोहितः ॥२३॥
अभिगम्य भृगोः पुत्रं च्यवनं संशितव्रतम् ।

इदं प्रोवाच नृपते वाचा सन्तर्पयन्निव ॥२४॥

नहुषऽउवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे गवा क्रीतोऽसि भार्गव ।
एतन्मूल्यमहं मन्ये तव धर्मभृतां वर ॥२५॥

च्यवनऽउवाच

उत्तिष्ठाम्येष राजेन्द्र सम्यक्क्रीतोऽस्मि तेऽनघ ।
गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत ॥२६॥
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव ।
गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम् ॥२७॥
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते ।
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः ॥२८॥

गविजात महर्षिने कहा- महाराज! ब्राह्मणों और गौओंका कुल एक है, केवल ये दो रूपोंमें विभक्त हैं । एकमें मन्त्र स्थित होते हैं और दूसरेमें हविष्य । पुरुषसिंह! ब्राह्मण सब वर्णोंमें उत्तम हैं और गाय भी । उनका और गौओंका कोई मूल्य नहीं लगाया जा सकता; इसलिये आप इनके मूल्यमें एक गौ प्रदान कीजिये । नरेश्वर! महर्षिका यह वचन सुनकर मन्त्री और पुरोहित सहित राजा नहुषको बड़ी प्रसन्नता हुई । राजन्! ये कठोरव्रतका पालन करनेवाले भृगुपुत्र महर्षि च्यवनके पास जाकर उन्हें अपनी वाणीसे तृप्त करते हुए-से बोले । नहुषने कहा- धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षे! भृगुनन्दन! मैंने एक गौ देकर आपका क्रय कर लिया, अतः उठिये, उठिये, मैं यही आपका उचित मूल्य मानता हूँ । च्यवनने कहा- निष्पाप राजेन्द्र! अब मैं उठता हूँ । आपने उचित मूल्य देकर मेरा क्रय किया है । अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले नरेश! मैं इस संसारमें गौओंके समान दूसरा कोई धन नहीं देखता हूँ ।।**२६**।। वीर भूपाल! गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन तथा श्रवण करना, गौओंको दान देना और उनका दर्शन करना- इनकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है । ये सब कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करके परम कल्याणकी प्राप्ति करनेवाले हैं ।।**२७**।। गौएँ सदा लक्ष्मीकी जड़ हैं । गौओंमें पापका लेशमात्र भी नहीं है । गौएँ ही मनुष्योंको सर्वदा अन्न और देवताओंको सदा हविष्य देने वाली हैं ।।२८।।

महर्षि च्यवनकेद्वारा गोमाहात्म्यकथन

स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ।
गावो यज्ञप्रणेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम् ॥५१/२९॥
अमृतं ह्यक्षयं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च ।
अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः ॥३०॥

तेजसा वपुषा चैव गावो वह्निसमा भुवि ।
गावो हि सुमहत्तेजः प्राणिनां च सुखप्रदाः ।।३१।।
निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् ।
विराजयति तं देशं पाप्मानं चापकर्षति ।।३२।।
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः ।
गावः कामदुघा देव्यो नान्यत्किञ्चित्परं स्मृतम् ।।३३।।
इत्येतद्गोषु मे प्रोक्तं माहात्म्यं पार्थिवर्षभ ।
गुणैकदेशवचनं शक्यं पारायणं न तु ।।३४।।

निषादाऊचुः

दर्शनं कथनं चैव सहास्माभिः कृतं मुने ।
सतां साप्तपदं मैत्रं प्रसादं नः कुरु प्रभो ।।३५।।
हवींषि सर्वाणि यथा ह्युपभुंक्ते हुताशनः ।
एवं त्वमपि धर्मात्मन् पुरुषाग्निः प्रतापवान् ।।३६।।
प्रसादयामहे विद्वन्भवन्तं प्रणता वयम् ।
अनुग्रहार्थमस्माकमियं गौः प्रतिगृह्यताम् ।।३७।।

स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित होते हैं । गौएँ ही सदा यज्ञका सञ्चालन करनेवाली तथा उसका मुख हैं ।।२७।। वे विकाररहित दिव्य अमृत धारण करती हैं और दुहनेपर अमृत ही देती हैं । गौएँ अमृतकी आधारभूता हैं । सारा संसार उनके सामने नतमस्तक होता है । इस पृथ्वीपर गौएँ अपनी काया और कान्तिसे अग्निके समान हैं । वे महान् तेजकी राशि और समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली हैं ।।३१।। गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, उस स्थानकी शोभा बढ़ा देता है और वहाँके सारे पापोंको खींच लेता है ।।३२।। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं । गौएँ स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं । गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं । गौओंसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है ।।३३।। भरतश्रेष्ठ! यह मैंने गौओंका माहात्म्य बताया है । इसमें उनके गुणोंका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है । गौओंके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता ।।३४।।

इसके बाद निषादने कहा– मुने! सज्जनोंके साथ सात पद चलने मात्रसे मित्रता हो जाती है । हमने तो आपका दर्शन किया और हमारे साथ इतनी देर तक बातचीत भी हुई, अतः प्रभो! आप हमलोगोंपर कृपा कीजिये ।।३५।। धर्मात्मन्! जैसे अग्निदेव सम्पूर्ण हविष्योंको आत्मसात् कर लेते हैं, उसी प्रकार आप भी हमारे दोष-दुर्गुणोंको दग्ध करनेवाले प्रतापी अग्निरूप हैं । विद्वन्! हम आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर

आपको प्रसन्न करना चाहते हैं । आप हमलोगोंपर अनुग्रह करनेकेलिये हमारी दी हुई यह गौ स्वीकार कीजिये ।।३६।।

च्यवनऽउवाच

कृपणस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च ।
नरं समूलं दहति कक्षमग्निरिव ज्वलन् ।।३८।।
प्रतिगृह्णामि वो धेनुं कैवर्ता मुक्तकिल्बिषाः ।
दिवं गच्छत वै क्षिप्रं मत्स्यैः सह जलोद्भवैः ।।३९।।

भीष्मऽउवाच

ततस्तस्य प्रभावात्ते महर्षेर्भावितात्मनः ।
निषादास्तेन वाक्येन सह मत्स्यैर्दिवं ययुः ।।४०।।
ततः स राजा नहुषो विस्मितः प्रेक्ष्य धीवरान् ।
आरोहमाणांस्त्रिदिवं मत्स्यांश्च भरतर्षभ ।।४१।।
ततस्तौ गविजश्चैव च्यवनश्च भृगूद्वहः ।
वराभ्यामनुरूपाभ्यां छन्दयामासतुर्नृपम् ।।४२।।
ततो राजा महावीर्यो नहुषः पृथिवीपतिः ।
परमित्यब्रवीत्प्रीतस्तदा भरतसत्तम ।।४३।।
ततो जग्राह धर्मे स स्थितिमिन्द्रनिभो नृपः ।
तथेति चोदितः प्रीतस्तावृषी प्रत्यपूजयत् ।।४४।।
समाप्तदीक्षश्च्यवनस्ततोऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ।
गविजश्च महातेजाः स्वमाश्रमपदं ययौ ।।४५।।

च्यवन बोले- निषादगण! किसी दीन-दुःखियाकी, ऋषिकी तथा विषधर सर्पकी रोषपूर्ण दृष्टि मनुष्यको उसी प्रकार जड़-मूल सहित जलाकर भस्म कर देती हैं, जैसे प्रज्वलित अग्नि, शुष्क तृणके ढेर को । मल्लाहो! मैं तुम्हारी दी हुई गौ स्वीकार करता हूँ । इस गोदानके प्रभावसे तुम्हारे सारे पाप दूर हो गये । अब तुमलोग जलमें उत्पन्न हुई इन मछलियोंके साथ ही शीघ्र स्वर्गको जाओ ।

भीष्मजी कहते हैं- भारत! तदनन्तर विशुद्ध अन्तःकरणवाले उन महर्षि च्यवनके पूर्वोक्त बात कहते ही उनके प्रभावसे वे मल्लाह उन मछलियोंके साथ ही स्वर्गलोककी ओर जाते देख राजा नहुषको बड़ा आश्चर्य हुआ । तत्पश्चात् गौसे उत्पन्न महर्षि और भृगुनन्दन च्यवन दोनोंने राजा नहुष से इच्छानुसार वर माँगने को कहा । भरतभूषण! तब वे महापराक्रमी भूपाल राजा नहुष प्रसन्न होकर बोले- 'बस आपलोगोंकी कृपा ही बहुत है । फिर दोनोंके आग्रहसे उन इन्द्रके समान तेजस्वी नरेशने धर्ममें स्थित रहनेका वरदान माँगा और उनके 'तथाऽस्तु' कहनेपर राजाने उन

दोनों ऋषियोंका विधिवत् पूजन किया । उसी दिन महर्षि च्यवनकी दीक्षा समाप्त हुई और वे अपने आश्रमपर चले गये । इसके बाद महातेजस्वी गोजात मुनि भी अपने आश्रमको पधारे ।

नहुषोऽपि वरं लब्ध्वा प्रविवेश पुरं स्वकम् ।।४६।।
एतत्ते कथितं तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।४६.१/२।।
दर्शने यादृशः स्नेहः संवासे च युधिष्ठिर ।
महाभाग्यं गवां चैव तथा धर्मविनिश्चयम् ।।४७।।

राजा नहुष भी वर पाकर अपनी राजधानी को लौटे । हे तात! दर्शन और सहवासजन्य स्नेह, गोमाहात्म्य और इस विषयमें धर्मका निश्चय मैंने तुम्हें बताया ।

भीष्मऽउवाच

अतः परं तु गोदानं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ।।
गावोऽधिकास्तपस्विभ्यो यस्मात्सर्वेभ्यऽएव च ।
तस्मान्महेश्वरो देवस्तपस्ताभिः समास्थितः ।।६६/३७।।
ब्राह्मे लोके वसन्त्येताः सोमेन सह भारत ।
यां तां ब्रह्मर्षयः सिद्धाः प्रार्थयन्ति परां गतिम् ।।३८।।
पयसा हविषा दध्ना शकृताप्यथ चर्मणा ।
अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति श्रृंगैर्वालैश्च भारत ।।३९।।
नासां शीतातपौ स्यातां सदैताः कर्म कुर्वते ।
न वर्षं विषमं वापि दुःखमासां भवत्युत ।।४०।।
ब्राह्मणैः सहिता यान्ति तस्मात्परतरं पदम् ।
एकं गोब्राह्मणं तस्मात्प्रवदन्ति मनीषिणः ।।४१।।
रन्तिदेवस्य यज्ञे ताः पशुत्वेनोपकल्पिताः ।
ततश्चर्मण्वती राजन्गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता ।।४२।।
पशुत्वाच्च विनिर्मुक्ताः प्रदानायोपकल्पिताः ।।४३।।
ताऽइमा विप्रमुख्येभ्यो यो ददाति महीपते ।
निस्तरेदापदां कृच्छ्रां विषमस्थोऽपि पार्थिव ।।४४।।
गवां सहस्रदः प्रेत्य नरकं न प्रपद्यते ।
सर्वत्र विजयं चापि लभते मनुजाधिप ।।४५।।

भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा- अनघ! अब मैं तुम्हें गोदानका माहात्म्य बताऊँगा । गौएँ समस्त तपस्वियोंसे बढ़कर हैं; इसलिये भगवान् शंकरने गौओंके साथ रहकर तप किया था । भारत! ये गौएँ चन्द्रमाके साथ उस ब्रह्मलोकमें निवास करती हैं, जो परमगतिरूप हैं और जिन्हें सिद्ध ब्रह्मर्षि भी प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं । भारत! ये गौएँ अपने दूध, दही, घी, गोबर, चमड़ा, हड्डी, सींग और बालोंसे भी जगत्का

उपकार करती रहती हैं, इन्हें सर्दी, गर्मी और वर्षाका भी असर नहीं होता है । ये सदा ही अपना काम किया करती हैं । इसलिये ये ब्राह्मणोंके साथ परमपदस्वरूप ब्रह्मलोकमें चली जाती हैं । इसीसे गौ और ब्राह्मणको मनस्वी पुरुष एक बताते हैं । राजन्! राजा रन्तिदेवके यज्ञमें वे पशुरूपसे दान देनेकेलिये निश्चित की गयी थीं, अतः गौओंके चर्मसे वह चर्मण्वती नामक नदी प्रवाहित हुई थी । वे सभी गौएँ पशुत्वसे विमुक्त थीं और दान देनेकेलिये नियुक्त की गयी थीं ।।**३६-४३**।। भूपाल! पृथ्वीनाथ! जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको इन गौओंका दान करता है, वह संकटमें पड़ा हो तो भी उस भारी विपत्तिसे उद्धार पा लेता है ।।४४।। जो एकसहस्र गोदान कर देता है, वह मरनेके बाद नरकमें नहीं पड़ता । नरेश्वर! उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होती है ।।४५।।

गो एवं गोव्रतमहिमा

अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति ।।४६।।
अग्नीनामव्ययं ह्येतद्धौम्यं वेदविदो विदुः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं स हौम्यं सम्प्रयच्छति ।।४७।।
स्वर्गो वै मूर्तिमानेष वृषभं यो गवां पतिम् ।
विप्रे गुणयुते दद्यात्स वै स्वर्गे महीयते ।।४८।।
प्राणा वै प्राणिनामेते प्रोच्यन्ते भरतर्षभ ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं प्राणान्वै स प्रयच्छति ।।४९।।
गावः शरण्या भूतानामिति वेदविदो विदुः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं शरणं सम्प्रयच्छति ।
न वधार्थं प्रदातव्या न कीनाशे न नास्तिके ।।५०।।
गोजीविने न दातव्या तथा गौः पुरुषर्षभ ।
(गोरसानां न विक्रेतुरपञ्चयजनस्य च) ।।५१।।
ददाति तादृशानां वै नरो गाः पापकर्मणाम् ।
अक्षयं नरकं यातीत्येवमाहुर्मनीषिणः ।।५२।।
न कृशां पापवत्सां वा वन्ध्यां रोगान्वितां तथा ।
न व्यङ्गां न परिश्रान्तां दद्याद्गां ब्राह्मणाय वै ।।५३।।
दशगोसहस्रदः सम्यक्शक्रेण सह मोदते ।
अक्षयाँल्लभते लोकान्नरः शतसहस्रदः ।।५४।।

देवराज इन्द्रने कहा है कि गौओंका दूध अमृत है, अतः जो दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह अमृतका दान करता है ।।४६।। वेदवेत्ता पुरुषोंका अनुभव है कि 'गोदुग्धादिरूप' हविष्यका यदि अग्निमें हवन किया जाय तो वह अविनाशी फल देता

है । अतः जो धेनुदान करता है, वह हविष्यका ही दान करता है, वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। भरतश्रेष्ठ! ये गौएँ (दुग्धादिसे पालनेके कारण) प्राणियोंके प्राण कहलाती हैं, इसलिये जो दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह मानो प्राणदान करता है । वेदके विद्वान् ऐसा मानते हैं कि गौएँ समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाली हैं । इसलिये जो धेनुका दान करता है, वह सबको शरण देनेवाला है ।।५०।। भरतश्रेष्ठ! जो मनुष्य वधार्थ गौ माँग रहा हो, उसे कदापि गाय नहीं देनी चाहिये । इसी प्रकार कसाईको, नास्तिकको, गायसे ही जीविका चलानेवालेको, गोरस बेचनेवाले और पञ्चयज्ञ न करनेवालेको भी गाय नहीं देनी चाहिये ।।५१।। ऐसे पापकर्मी मनुष्योंको जो गायका दान देता है, वह मनुष्य अक्षय नरकमें गिरता है, ऐसा महर्षियोंका कथन है ।।५२।। जो दुबली हो, जिसका बछड़ा मर गया हो तथा जो कण्ठरोगिणी, किसी अंगसे हीन और थकी हुई (बूढ़ी) हो, ऐसी गौ ब्राह्मणको न देनी चाहिये ।।५३।। दसहजार गौका दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रके साथ रहकर आनन्द भोगता है और जो लाख गौओंका दान कर देता है, उस मनुष्यको अक्षय लोक प्राप्त होते हैं ।।५४।।

गौ, भूमि और सरस्वतीका दान

युधिष्ठिरऽउवाच

सर्ववर्णैस्तु यच्छक्यं प्रदातुं फलकाङ्क्षिभिः ।
वेदे वा यत्समाम्नातं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।३।।

भीष्मऽउवाच

तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च ।
सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ।।४।।
यो ब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्म्यां ब्राह्मीं सरस्वतीम् ।
पृथिवी-गोप्रदानाभ्यां स तुल्यं फलमश्नुते ।।५।।
तथैव गाः प्रशंसन्ति न च देयं ततः परम् ।
सन्निकृष्टफलास्ता हि लघ्वर्थाश्च युधिष्ठिर ।।६।।
मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।
वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः ।।७।।
सन्ताड्या न तु पादेन गवां मध्ये न च व्रजेत् ।
मङ्गलायतनं देव्यस्तस्मात्पूज्याः सदैव हि ।।८।।
प्रचोदनं देवकृतं गवां कर्मसु वर्तताम् ।
पूर्वमेवाक्षरं नान्यदभिधेयं ततः परम् ।।९।।
प्रचारे वा निवाते वा बुधो नोद्वेजयेत गाः ।
तृषिता ह्यभिवीक्षन्त्यो नरं हन्युः सबान्धवम् ।।१०।।

युधिष्ठिरने कहा- महाभाग कुरुश्रेष्ठ! दानके फलकी इच्छा रखनेवाले सभी वर्णोंके लोग जो दान कर सकें अथवा वेदमें जिस दानका वर्णन हो, उसकी मेरे समक्ष व्याख्या कीजिये । भीष्मजीने कहा- युधिष्ठिर! गाय, भूमि और सरस्वती ये तीनों समान नामवाली हैं, इन तीन वस्तुओंका दान करना चाहिये । इन तीनोंके दानका फल भी समान है । ये तीनों वस्तुएँ मनुष्यों की सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करनेवाली हैं । जो ब्राह्मण अपने शिष्यको धर्मानुकूल ब्राह्मी (वेदवाणी) सरस्वतीका उपदेश करता है, वह भूमिदान और गोदानके समान फलका भागी होता है । इसी प्रकार गोदानकी भी प्रशंसा की गयी है । उससे बढ़कर कोई दान नहीं है । युधिष्ठिर! गोदानका फल निकट भविष्यमें मिलता है तथा वे गौएँ शीघ्र अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करती हैं । गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता कहलाती हैं । वे सभी को सुख देनेवाली हैं । जो अपने अभ्युदयकी इच्छा रखते हों, उसे गौओंको सदा दाहिने करके चलना चाहिये । गौको लातसे न मारे । उनके बीचसे होकर न निकले । वे मंगलकी आधारभूत देवियां हैं, अतः उनकी सदा पूजा करनी चाहिये । देवताओंने भी यज्ञकेलिये भूमि जोतते समय बैलोंको डण्डे आदिसे हाँका था । अतः पहले यज्ञार्थ ही बैलोंको जोतना या हाँकना श्रेयस्कर माना गया है । उससे भिन्न कर्मकेलिये बैलोंको जोतना या डण्डे आदिसे हाँकना निन्दनीय है । विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जब गौएँ स्वच्छन्दतापूर्वक विचर रही हैं अथवा किसी उपद्रवशून्य स्थानमें बैठी हों तो उन्हें उद्वेगमें न डालें । जब गौएँ प्याससे पीड़ित हो जलकी इच्छासे अपने स्वामीकी ओर देखती हैं और वह उन्हें पानी नहीं पिलाता तब वे रोषपूर्ण दृष्टिसे बन्धु-बान्धवों सहित उनका नाश कर देती हैं ।

पितृसद्मानि सततं देवतायतनानि च ।
पूयन्ते शकृता यासां पूतं किमधिकं ततः ।।११।।
घासमुष्टिं परगवे दद्यात्संवत्सरं तु यः ।
अकृत्वा स्वयमाहारं व्रतं तत्सार्वकामिकम् ।।१२।।
स हि पुत्रान्यशोऽर्थं च श्रियं चाप्यधिगच्छति ।
नाशयत्यशुभं चैव दुःस्वप्नं चाप्यपोहति ।।१३।।

युधिष्ठिरऽउवाच

देयाः किंलक्षणा गावः काश्चापि परिवर्जयेत् ।
कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय च ।।१४।।

भीष्मऽउवाच

असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने ।
हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन ।।१५।।

भिक्षवे बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।
दत्त्वा दशगवां दाता लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ।।१६।।
यश्चैव धर्मं कुरुते तस्य पुण्यफलं च यत् ।
सर्वस्यैवांशभाग्दाता तन्निमित्तं प्रवृत्तय: ।।१७।।
यश्चैवमुत्पादयते यश्चैनं त्रायते भयात् ।
यश्चास्य कुरुते वृत्तिं सर्वे ते पितरस्त्रय: ।।१८।।
कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्ति मानो महद्यश: ।
अपुत्रतां त्रय: पुत्रा अवृत्तिं दशधेनव: ।।१९।।

जिनके गोबरसे लीपने पर देवताओंके मन्दिर और श्राद्धस्थान पवित्र होते हैं उनसे बढ़कर पावन और क्या हो सकता है? जो एकवर्षपर्यन्त प्रतिदिन स्वयं भोजनसे पहले दूसरेकी गायको एकमुट्टी घास खिलाता है, उसका वह व्रत समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है । वह अपनेलिये पुत्र, यश, धन, और सम्पति प्राप्त करता है तथा अशुभकर्म और दु:स्वप्नका नाश कर देता है ।

युधिष्ठिरने पूछा– पितामह! किन लक्षणोंवाली गौओंका दान करना चाहिये और किनका दान नहीं करना चाहिये? कैसे ब्राह्मणको गाय देनी चाहिये और कैसे ब्राह्मणको नहीं देनी चाहिये । भीष्मजीने कहा– राजन्! दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यवादी तथा देवयज्ञ तथा श्राद्धकर्म न करनेवाले ब्राह्मणको किसी तरह गौ नहीं देनी चाहिये । जिसके बहुतसे पुत्र हों, जो श्रोत्रिय (वेदवेत्ता) और अग्निहोत्री ब्राह्मण हो और गौके लिये याचना कर रहा हो, ऐसे पुरुषको दस गौओंका दान करनेवाला दाता उत्तम लोकोंको पाता है । जो गोदान ग्रहण करके धर्माचरण करता है, उसके धर्मका जो कुछ भी फल होता है, उस सम्पूर्ण धर्मके एकांशका भागी दाता भी होता है, क्योंकि उसीकेलिये उसकी गोदानमें प्रवृति हुई थी । जो जन्म देता है, जो भयसे बचाता है तथा जो जीविका देता है– ये तीनों ही पिताके तुल्य हैं । गुरुजनोंकी सेवा सारे पापोंका नाश कर देती है । अभिमान महान् यशको नष्ट कर देता है । तीन पुत्र पुत्रहीनताके दोषका निवारण कर देते हैं और दूध देनेवाली दस गौएँ हो तो ये जीविकाके अभावको दूर कर देती हैं ।।**१९**।।

वेदान्तनिष्ठस्य बहुश्रुतस्य प्रज्ञानतृप्तस्य जितेन्द्रियस्य ।
शिष्टस्य दान्तस्य यतस्य चैव भूतेषु नित्यं प्रियवादिनश्च ।।२०।।
य: क्षुद्भयाद्वै न विकर्म कुर्यान्मृदुश्च शान्तो ह्यतिथिप्रियश्च ।
वृत्तिं द्विजायातिसृजेत तस्मै यस्तुल्यशीलश्च सपुत्रदार: ।।२१।।
शुभे पात्रे ये गुणा गोप्रदाने तावान्दोषो ब्राह्मणस्वापहारे ।
सर्वावस्थं ब्राह्मणस्वापहारो दाराश्चैषां दूरतो वर्जनीया: ।।२२।।

विप्रदारे परहृते विप्रस्वनिचये तथा ।
परित्रायन्ति शक्तासु नमस्तेभ्यो मृतास्तु वा ।।२३।।
न पालयन्ति चेत्तस्य हन्ता वैवस्वतो यमः ।
दण्डयन्भर्त्सयन्नित्यं निरयेभ्यो न मुञ्चति ।।२४।।
तथा गवां परित्राणे पीडने च शुभाशुभम् ।
विप्रगोषु विशेषेण रक्षितेषु हतेषु वा ।।२५।।

जो वेदान्तनिष्ठ, बहुज्ञ, ज्ञानानन्दसे तृप्त, जितेन्द्रिय, शिष्ट, मनको वशमें रखनेवाला, यत्नशील, समस्त प्राणियोंके प्रति सदा प्रिय वचन बोलनेवाला, भूखके भयसे भी अनुचित कर्म न करनेवाला, मृदुल, शान्त, अतिथिप्रेमी, सबपर समान भाव रखनेवाला और स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बसे युक्त हो, उस ब्राह्मणकी जीविकाका अवश्य प्रबन्ध करना चाहिये । शुभ पात्रको गोदान करनेसे जो लाभ होते है, उसका धन ले-लेनेपर उतना ही पाप लगता है; अतः किसी भी अवस्थामें ब्राह्मणोंके धनका अपहरण न करे तथा उनकी स्त्रियोंका संसर्ग दूरसे ही त्याग दे । जहाँ ब्राह्मणोंकी स्त्रियों अथवा उनके धनका अपहरण होता है, वहाँ शक्ति रहते हुए जो उन सबकी रक्षा करते हैं, उन्हें नमस्कार है । जो उनकी रक्षा नहीं करते हैं वे मुर्दोंके समान हैं । सूर्यपुत्र यमराज ऐसे लोगोंका वध कर डालते है, प्रतिदिन उन्हें यातना देते हैं, डाँटते-फटकारते हैं और नरकसे उन्हें कभी छुटकारा नहीं देते हैं । इसी प्रकार गौओंके संरक्षण और पीडनसे भी शुभ और अशुभकी प्राप्ति होती है । विशेषतः ब्राह्मणों और गौओंके अपनेद्वारा सुरक्षित होनेपर पुण्य और मारे जानेपर पाप होता है ।

।।अध्याय समाप्त।।

नाचिकेतोपाख्याने गोदानमाहात्म्यम्

युधिष्ठिरऽउवाच
दत्तानां फलसम्प्राप्तिं गवां प्रब्रूहि मेऽनघ ।
विस्तरेण महाबाहो न हि तृप्यामि कथ्यताम् ।।७१/१।।
भीष्मऽउवाच
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ऋषेरुद्दालकेर्वाक्यं नाचिकेतस्य चोभयोः ।।२।।

(स्वरचित- पितुर्वाक्यप्रभावेण नाचिकेतो यमालयम् ।
गत्वाऽपश्यत्तदाश्चर्यमपृच्छत्तं यमं प्रभुम् ।।
यदुक्तं धर्मराजेन सर्वं पित्रे न्यवेदयत् ।
माहात्म्यं विस्तरेणाह लोकानां पुण्यकर्मिणाम् ।।)

नाचिकेतऽउवाच

सर्वं दृष्ट्वा तदहं धर्मराजमवोचं वै प्रभविष्णुं पुराणम् ।
क्षीरस्यैताः सर्पिषश्चैव नद्यः शश्वत्स्रोताः कस्य भोज्याः प्रदिष्टाः ।।२८।।
यमोऽब्रवीद्विद्धि भोज्यास्त्वमेता ये दातारः साधवो गोरसानाम् ।
अन्ये लोकाः शाश्वता वीतशोकाः समाकीर्णा गोप्रदाने रतानाम् ।।२९।।
न त्वेतासां दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
ज्ञात्वा देया विप्र गवान्तरं हि दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ।।३०।।
स्वाध्यायाढ्यो योऽतिमात्रं तपस्वी वैतानस्थो ब्राह्मणः पात्रमासाम् ।
कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ।।३१।।

युधिष्ठिरने पूछा- निष्पाप महाबाहो! गौओंके दानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह मुझे विस्तारके साथ बताइये । मुझे आपके वचनामृतोंको सुनते-सुनते तृप्ति नहीं होती है, इसलिये अभी और कहिये । भीष्मजीने कहा- राजन्! इस विषयमें विज्ञपुरुष उद्दालक ऋषि और नाचिकेत दोनोंके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । (रुष्ट पिताने जब नाचिकेतको यमलोक देखनेको कहा, तब उस वाक्यके प्रभावसे नाचिकेत यमालयको गये और वहाँ जाकर यमलोकके आश्चर्यको देखकर यमराजसे उनके बारेमें पूछा । तब यमराजने जैसा कहा था पुनः नाचिकेतने अपने पिताकेलिये यथावत् निवेदन किया । उसने पुण्यकर्मा मनुष्योंके समृद्धिशाली लोकोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया ।) (नाचिकेतने कहा-) उन सबको देखकर मैंने प्रभावशाली पुरातन देवता धर्मराजसे कहा- प्रभो! ये जो घी और दूधकी नदियाँ बहती रहती हैं जिनका स्रोत सूखता नहीं है, किनके उपभोग में आती है और इन्हें किनका भोजन नियत किया गया है? यमराजने कहा- ब्रह्मन्! तुम इन नदियोंको उन श्रेष्ठ पुरुषोंका भोजन समझो, जो गोरसका दान करनेवाले हैं, जो गोदानमें तत्पर हैं, उन पुण्यात्माओंकेलिये दूसरे भी सनातनलोक विद्यमान हैं, जिनमें दुःख-शोकसे रहित पुण्यात्मा भरे पड़े हैं । विप्रवर! केवल इनका दानमात्र ही प्रशस्त नहीं है । सुपात्र ब्राह्मण, उत्तम समय, विशिष्ट गौ तथा दानकी सर्वोतम विधि- इन सब बातोंको जानकर ही गोदान करना चाहिये । गौओंका आपसमें जो तारतम्य है, उसे जानना बहुत

कठिन कर्म है और अग्नि एवं सूर्यके समान तेजस्वी पात्रको पहचानना भी सरल नहीं है ।

जो ब्राह्मण वेदोंके स्वाध्यायसे सम्पन्न, अत्यन्त तपस्वी तथा यज्ञके अनुष्ठानमें लगा हुआ हो, वहीं इन गौओंके दानका सर्वोतम पात्र है । इसके सिवा जो ब्राह्मण कृच्छ्रव्रतसे मुक्त हुए हों और परिवारकी पुष्टिकेलिये गोदानके प्रार्थी होकर आये हों, वे भी दानके उत्तम पात्र हैं । इन सुयोग्य पात्रोंको निमित बनाकर दानमें दी गयी श्रेष्ठ गौएँ उत्तम मानी गयी हैं ।।३१।।

तिस्रो रात्रीरद्भिरुपोष्य भूमौ तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।
वत्सैः प्रीताः सुप्रजाः सोपचारास्त्र्यहं दत्त्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ।।३२।।
दत्वा धेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावन्ति लोमानि भवन्ति तस्यास्तावद्वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम् ।।३३।।
तथाऽनड्वाहं ब्राह्मणाय प्रदाय दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम् ।
कुलानुजीवं वीर्यवन्तं बृहन्तं भुङ्क्ते लोकान्संमितान्धेनुदस्य ।।३४।।
गोषु क्षान्तं गोशरण्यं कृतज्ञं वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ।
वृत्तिग्लाने सम्भ्रमे वा महार्थे कृष्यर्थे वा होमहेतोः प्रसूत्याम् ।।३५।।
गुर्वर्थे वा बालपुष्ट्याभिषङ्गाद्गावो दातुं देशकालो विशिष्टः ।
अन्तर्ज्ञाताः सुक्रयज्ञानलब्धाः प्राणक्रीता निर्जिता यौतकाश्च ।।३६।।

तीनरात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक केवल जल पीकर धरतीपर शयन करे तत्पश्चात् खिला-पिलाकर तृप्त की हुई गौओंका भोजन आदिसे सन्तुष्ट किये हुए ब्राह्मणोंको दान करे । वे गौएँ बछड़ोंके साथ रहकर प्रसन्न हों । सुन्दर बच्चे देनेवाली हों तथा अन्यान्य आवश्यक सामग्रियोंसे युक्त हों । ऐसी गौओंका दान करके तीनदिनों तक केवल गोरसका आहार करके रहना चाहिये । उत्तमशील-स्वभाववाली, भले बछड़ेवाली और भागकर न जानेवाली दुधारू गायका कांस्यके दुग्धपात्रसहित दान करके उस गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं; उतने वर्षो तक दाता स्वर्गलोकका सुख भोगता है । इसी प्रकार जो शिक्षा देकर वशमें किये हुए, बोझ ढोनेमें समर्थ, बलवान्, जवान, कृषक-समुदाय की जीविका चलाने योग्य, पराक्रमी और विशाल डील-डौलवाले बैलका ब्राह्मणोंको दान देता है, वह दुधारू गायका दान करनेवालेके तुल्य ही उत्तम लोकोंका उपभोग करता है । जो गौओंके प्रति क्षमाशील, उनकी रक्षा करनेमें समर्थ, कृतज्ञ और आजीविकासे रहित है, ऐसे ब्राह्मणको गोदानका उत्तम पात्र बताया गया है । जो बूढ़ा हो, रोगी होनेके कारण पथ्यभोजन चाहता हो, दुर्भिक्ष आदिके कारण घबड़ाया हो, किसी महान् यज्ञका अनुष्ठान करनेवाला हो या

जिसकेलिये खेतीकी आवश्यकता आ पड़ी हो, होमकेलिये हविष्य प्राप्त करनेकी इच्छासे, घरमें स्त्रीके बच्चा उत्पन्न होनेवाला हो, गुरुकेलिये दक्षिणा देनी हो अथवा बालककी पुष्टिकेलिये गोदुग्धकी आवश्यकता आ पड़ी हो, ऐसे व्यक्तियोंको ऐसे अवसरोंपर गोदानकेलिये सामान्य देश-काल माना गया है । ऐसे समयमें देश-कालका विचार नहीं करना चाहिये । जिन गौओंका विशेष भेद जाना हुआ हो, जो खरीद कर लायी गयी हों, जो ज्ञानके पुरस्काररूपसे प्राप्त हुई हों, प्राणियोंके अदला-बदलीमें खरीदी गयी हों या जीतकर लायी गयी हों अथवा दहेजमें मिली हों, ऐसी गौएँ दानकेलिये उत्तम मानी गयी हैं ।।३६।।

नाचिकेतऽउवाच

श्रुत्वा वैवस्वतवचस्तमहं पुनरब्रुवम् ।
अभावे गोप्रदातृणां कथं लोकान्हि गच्छति ।।३७।।
ततो यमोऽब्रवीद्धीमान्गोप्रदाने परां गतिम् ।
गोप्रदानानुकल्पं तु गामृते सन्ति गोप्रदाः ।।३८।।
अलाभे यो गवां दद्याद्घृतधेनुं यतव्रतः ।
तस्यैता घृतवाहिन्यः क्षरन्ते वत्सलाऽइव ।।३९।।
घृतालाभे च यो दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः ।
स दुर्गात्तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ।।४०।।
तिलालाभे तु यो दद्याज्जलधेनुं यतव्रतः ।
स कामप्रवहां शीतां नदीमेतामुपाश्नुते ।।४१।।
एवमादीनि मे तत्र धर्मराजो न्यदर्शयत् ।
दृष्ट्वा च परमं हर्षमवापमहमच्युत ।।४२।।

नाचिकेतने कहा- वैवस्वत यमकी बात सुनकर मैंने पुनः उनसे पूछा- भगवन्! यदि अभाववश गोदान न किया जा सके, तो गोदान करनेवालोंको ही मिलनेवाले लोकोंमें मनुष्य कैसे जा सकता है? तदनन्तर बुद्धिमान् यमराजने गोदान-सम्बन्धी गति तथा गोदानके समान फल देनेवाले दानका वर्णन किया । जिसके अनुसार बिना गायके भी लोग गोदान करनेवाले हो सकते हैं । जो गौओंके अभावमें संयम-नियमसे युक्त हो घृतधेनुका दान करता है, उसकेलिये ये घृतवाहिनी नदियाँ वत्सला गौओंकी भाँति घृत बहाती हैं । घीके अभावमें जो व्रत-नियमसे युक्त हो तिलमयी धेनुका दान करता है वह उस धेनुकेद्वारा संकटसे उद्धार पाकर दूधकी नदीमें आनन्दित होता है । तिलके अभावमें जो व्रतशील एवं नियम-निष्ठ होकर जलमयी धेनुका दान करता है, वह अभीष्ट वस्तुओंको बहानेवाली इस शीतल नदीके निकट रहकर सुख भोगता है ।

धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले पूज्य पिताजी! इस प्रकार धर्मराजने मुझे वहाँ ये सब स्थान दिखाये । यह सब देखकर मुझे बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ ।।४२।।

निवेदये चाहमिमं प्रियं ते क्रतुर्महानल्पधनप्रचारः ।
प्राप्तो मया तात स मत्प्रसूतः प्रपत्स्यते वेदविधिप्रवृत्तः ।।४३।।

तात! मैं आपकेलिये यह प्रिय वृतान्त निवेदन करता हूँ कि मैंने वहाँ थोड़े-से ही धनसे सिद्ध होनेवाला यह गोदानरूप महान् यज्ञ प्राप्त किया है, वह यहाँ वेद-विधिके अनुसार मुझसे प्रकट होकर सर्वत्र प्रचलित होगा ।।४३।।

शापो ह्ययं भवतोऽनुग्रहाय प्राप्तो मया यत्र दृष्टो यमो मे ।
दानव्युष्टिं तत्र दृष्ट्वा महार्था निःसंदिग्धान्दानधर्मांश्चरिष्ये ।।४४।।
इदं च मामब्रवीद्धर्मराजः पुनःपुनः सम्प्रहृष्टो द्विजर्षे ।
दानेन यः प्रयतोऽभूत्सदैव विशेषतो गोप्रदानं च कुर्यात् ।।४५।।
शुद्धो ह्यर्थो नावमन्यः स्वधर्मान्पात्रे देयं देशकालोपपन्ने ।
तस्माद्गावस्ते नित्यमेव प्रदेया माऽभूच्च ते संशयः कश्चिदत्र ।।४६।।
एताः पुरा ह्यददन्नित्यमेव शान्तात्मानो दानपथे निविष्टाः ।
तपांस्युग्राण्यप्रतिशङ्कमानास्ते वै दानं प्रददुश्चापि शक्त्या ।।४७।।
काले च शक्त्या मत्सरं वर्जयित्वा शुद्धात्मानः श्रद्धिनः पुण्यशीलाः ।
दत्वा गा वै लोकममुं प्रपन्ना देदीप्यन्ते पुण्यशीलाश्च नाके ।।४८।।
एतद्दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः पात्रे दत्तं प्रापणीयं परीक्ष्य ।
काम्याष्टम्यां वर्तितव्यं दशाहं रसैर्गवां शकृता प्रस्नवैर्वा ।।४९।।
देवव्रती स्याद्वृषभप्रदाता वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने ।
तीर्थावाप्तिर्गोप्रयुक्तप्रदाने पापोत्सर्गः कपिलायाः प्रदाने ।।५०।।

आपकेद्वारा मुझे जो शाप मिला, वह वास्तवमें मुझपर अनुग्रहकेलिये ही प्राप्त हुआ था, जिससे मैने यमलोकमें जाकर वहाँ यमराजको देखा । महात्मन्! वहाँ दानके फलको प्रत्यक्ष देखकर मैं सन्देहरहित दानधर्मोका अनुष्ठान करूँगा ।।४४।। महर्षे! धर्मराजने बारम्बार प्रसन्न होकर मुझसे यह भी कहा था कि जो लोग दानसे सदा पवित्र होना चाहें, वे विशेष रूपसे गोदान करें ।।४५।। मुनिकुमार! धर्म निर्दोष विषय है । तुम धर्मकी अवहेलना न करना । उत्तम देश-काल प्राप्त होनेपर सुपात्रको दान देते रहना चाहिये । अतः तुम्हें सदा ही गोदान करना उचित है । इस विषयमें तुम्हारे भीतर कोई सन्देह नहीं होना चाहिये ।। ४६।। पूर्वकालमें शान्तचित्तवाले पुरुषोंने दानके मार्गमें स्थित हो नित्य ही गौओंका दान किया था । वे अपनी उग्र तपस्याके विषयमें सन्देह न रखते हुए भी यथाशक्ति दान देते ही रहते थे ।।४७।। कितने ही शुद्धचित्त, श्रद्धालु एवं पुण्यात्मा पुरुष ईर्ष्याका त्याग करके समयपर यथाशक्ति गोदान

करके परलोकमें पहुँचकर अपने पुण्यमय शील-स्वभावके कारण स्वर्गलोकमें प्रकाशित होते हैं ।।४८।। न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए इस गोधनका ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये तथा पात्रकी परीक्षा करके सुपात्रको दी हुई गाय उसके घर पहुँचा देनी चाहिये और किसी भी शुभ अष्टमीसे आरम्भ करके दसदिनों तक मनुष्यको गोरस, गोबर अथवा गोमूत्रका आहार करते रहना चाहिये ।।४९।। एक बैल दान करनेसे मनुष्य देवताओंका सेवक होता है, दो बैलोंका दान करनेपर उसे वेदविद्याकी प्राप्ति होती है । उन बैलोंसे जुते हुए छकड़ेका दान करनेसे तीर्थसेवनका फल प्राप्त होता है और कपिला गायके दानसे समस्त पापोंका परित्याग हो जाता है ।।५०।।

गामप्येकां कपिलां सम्प्रदाय न्यायोपेतां कल्मषाद्विप्रमुच्येत् ।
गवां रसात्परमं नास्ति किञ्चिद्गवां दानं सुमहत्तद्वदन्ति ।।५१।।
गावो लोकान्धारयन्ति क्षरन्त्यो गावश्चान्नं सञ्जनयन्ति लोके ।
यस्तज्जानन्न गवां हार्दमेति स वै गन्ता निरयं पापचेताः ।।५२।।
यैस्तद्दत्तं गोसहस्रं शतं वा शतार्धं वा दश वा साधुवत्सम् ।
अप्येकां वा साधवे ब्राह्मणाय सास्यामुष्मिन्पुण्यतीर्था नदी वै ।।५३।।
प्राप्त्या पुष्ट्या लोकसंरक्षणेन गावस्तुल्याः सूर्यपादैः पृथिव्याम् ।
शब्दश्चैकः सन्ततिश्चोपभोगास्तस्माद्गोदः सूर्यऽइवावभाति ।।५४।।
गुरुं शिष्यो वरयेद्गोप्रदाने स वै गन्ता नियतं स्वर्गलोकम् ।
विधिज्ञानां सुमहानेष धर्मो विधिं ह्याद्यं विधयः संश्रयन्ति ।।५५।।
एतद्दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः पात्रे दत्वा प्रापयेथाः परीक्ष्य ।
त्वय्याशंसन्त्यमरा मानवाश्चय वयं चापि प्रसृते पुण्यशीलाः ।।५६।।
इत्युक्तोऽहं धर्मराज्ञा महर्षे धर्मात्मानं शिरसाऽभिप्रणम्य ।
अनुज्ञातस्तेन वैवस्वतेन प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ।।५७।।

इति

मनुष्य न्यायसे प्राप्त हुई एक भी कपिला गायका दान करके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है । गोरससे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है । इसलिये विद्वान् पुरुष गोदानको महादान बतलाते हैं । गौएँ दूध देकर सम्पूर्ण लोकोंका भूखके कष्टसे उद्धार करती हैं । ये लोकमें सबकेलिये अन्न उत्पन्न करती हैं, इस बातको जानकर भी जो गौओंके प्रति सौहार्द्रका भाव नहीं रखता, वह पापात्मा मनुष्य नरकमें पड़ता है ।।५२।। जो मनुष्य किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको सहस्र, शत, पचास अथवा दस गौओंका उनके अच्छे बछड़ों सहित दान करता है अथवा एक ही गाय देता है, उसकेलिये वह गौ परलोकमें पवित्र तीर्थोंवाली नदी बन जाती है ।।५३।। प्राप्ति, पुष्टि तथा लोकरक्षा

करनेकेद्वारा गौएँ इस पृथ्वीपर सूर्यकी किरणोंके समान मानी गयी हैं । एक ही ‘गो’ शब्द धेनु और सूर्य किरणोंका बोधक है । गौओंसे ही सन्तति और उपभोग प्राप्त होते हैं, अतः गोदान करनेवाला मनुष्य किरणोंका दान करनेवाले सूर्यके ही समान माना जाता है ।।५४।। शिष्य जब गोदान करने लगे तब उसे ग्रहण करनेकेलिये गुरु को चुने । यदि गुरुने वह गोदान स्वीकार कर लिया तो शिष्य निश्चय ही स्वर्गलोकमें जाता है । विधिके जाननेवाले पुरुषोंकेलिये यह गोदान महान् धर्म है । अन्य सब विधियाँ इन विधियोंमें ही अन्तर्भूत हो जाती हैं । तुम न्यायके अनुसार गोधन प्राप्त करके पात्रकी परीक्षा करनेके पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उनका दान कर देना और दी हुई वस्तुको ब्राह्मणके घर पहुँचा देना । तुम पुण्यात्मा और पुण्यकार्यमें प्रवृत्त रहनेवाले हो । अतः देवता, मनुष्य तथा हमलोग तुमसे धर्मकी ही आशा रखते हैं ।।५६। ब्रह्मर्षे! धर्मराजके ऐसा कहनेपर मैने उन धर्मात्मा देवताको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और फिर उनकी आज्ञा लेकर मैं आपके चरणोंके समीप लौट आया ।।५७।।

<u>।। अध्याय समाप्त ।।</u>

ब्रह्माजीकेद्वारा गोलोक एवं वहाँ जानेवालोंका वर्णन

पितामहऽउवाच

ते तु लोकाः सहस्राक्ष श्रृणु याद्दग्गुणान्विताः ।
न तत्र क्रमते कालो न जरा न च पावकः ।। ७३/५।।
तथाऽन्यन्नाशुभं किञ्चिन्न व्याधिस्तत्र न क्लमः ।
यद्यच्च गावो मनसा तस्मिन्वाञ्छन्ति वासव ।।६।।
तत्सर्व प्रापयन्ति स्म मम प्रत्यक्षदर्शनात् ।
कामगाः कामचारिण्यः कामात्कामाँश्च भुञ्जते ।।७।।
तत्र सर्वसहाः क्षान्ता वत्सला गुरुवर्तिनः ।
अहङ्कारैर्विरहिता यान्ति शक्र नरोत्तमाः ।।१०।।
यः सर्वमांसानि न भक्षयीत पुमान्सदा भावितो धर्मयुक्तः ।
मातापित्रोरर्चिता सत्ययुक्तः शुश्रूषिता ब्राह्मणानामनिन्द्यः ।।११।।
अक्रोधनो गोषु तथा द्विजेषु धर्मे रतो गुरुशुश्रूषकश्च ।
यावज्जीवं सत्यवृत्ते रतश्च दाने रतो यः क्षमी चापराधे ।।१२।।
मृदुर्दान्तो देवपरायणश्च सर्वातिथिश्चापि तथा दयावान् ।
ईद्दग्गुणो मानवः सम्प्रयाति लोकं गवां शाश्वतं चाव्ययं च ।।१३।।
जन्मप्रभृति सत्यं च यो ब्रूयान्नियतेन्द्रियः ।
गुरुद्विजसहः क्षान्तस्तस्य गोभिः समा गतिः ।।२१।।

पितामह बोले– सहस्राक्ष! वे गोलोक जैसे गुणोंसे सम्पन्न हैं, उनका वर्णन सुनो । वहाँ काल और बुढापाका आक्रमण नहीं होता । अग्निका भी जोर नहीं चलता ।।७३।५।। वहाँ किसीका किञ्चिन्मात्र भी अमंगल नहीं होता । उस लोकमें न रोग हैं न शोक । इन्द्र! वहाँकी गौएँ अपने मनमें जिस–जिस वस्तुकी इच्छा करती हैं, वे सब उन्हें प्राप्त हो जाती हैं, जैसे चलना चाहती हैं वैसे चलती हैं और संकल्पमात्रसे सम्पूर्ण भोगोंको प्राप्तकर उनका उपभोग करती हैं ।।६-७।। इन्द्र! जो सबकुछ सहनेवाले क्षमाशील, दयालु, गुरुजनोंकी आज्ञामें रहनेवाले और अहंकाररहित हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य ही उस लोकमें जाते हैं ।।१०।। जो सबप्रकारके मांसोंका भोजन त्याग देता है, सदा भगवच्चिन्तनमें लगा रहता है, धर्मपरायण होता है, माता–पिताकी पूजा करता है, सत्य बोलता है, ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहता है, जिसकी कभी निन्दा नहीं होती, जो गौओं और ब्राह्मणोंपर कभी क्रोध नहीं करता, धर्ममें अनुरक्त रहकर गुरुजनोंकी सेवा करता है, जीवनभरकेलिये सत्यका व्रत ले लेता है । दानमें प्रवृत्त रहकर किसीके अपराध करनेपर भी उसे क्षमादान देता है ।।१२।। जिसका स्वभाव मृदुल है, जो जितेन्द्रिय, देवाराधक, सबका आतिथ्य–सत्कार करनेवाला और दयालु है, ऐसे ही गुणोंवाला मनुष्य उस सनातन एवं अविनाशी गोलोकमें जाता है ।।१३।। जो जन्मसे ही सदा सत्य बोलता, इन्द्रियोंको वशमें रखता, गुरुजनों तथा ब्राह्मणोंकी कठोर बातोंको भी सह लेता है और क्षमाशील होता है, उसकी गौओंके समान गति होती है अर्थात् वह गोलोकमें जाता है ।।१४।।

बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः सर्वाः प्रशंसन्ति सुगन्धवत्यः ।
यथा हि गङ्गा सरितां वरिष्ठा तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ।।४२।।
लोकान् बहुविधान् दिव्यान् यच्चास्य हृदि वर्तते ।
तत्सर्वं समवाप्नोति कर्मणैतेन मानवः ।।४८।।
विक्रयार्थं हि यो हिंस्याद्भक्षयेद् वा निरंकुशः ।
घातमानं हि पुरुषं येन मन्त्रेयुरर्थिनः ।।७४/३।।
घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते ।
यावन्ति तस्या रोमाणि तावद्वर्षाणि मज्जति ।।७४/४।।
ये दोषा यादृशाश्चैव द्विजयज्ञोपघातके ।
विक्रये चापहारे च ते दोषा वै स्मृताः प्रभो ।।७४/५।।
सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाद्युते ।
सुवर्णं परमित्युक्तं दक्षिणार्थमसंशयम् ।।७।।
सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।
सुवर्णं पावनं शक्र पावनानां परं स्मृतम् ।।९।।

यऽइदं ब्राह्मणो नित्यं वदेद्ब्राह्मणसंसदि ।
यज्ञेषु गोप्रदानेषु द्वयोरपि समागमे ।।
तस्य लोकाः किलाक्षय्या दैवतैः सह नित्यदा ।।१५।।

हृष्ट-पुष्ट, सीधी-सादी, जवान और उत्तम गन्धवाली सभी गौएँ प्रशंसनीय मानी गयी हैं । जैसे गंगा सब नदियोंमें श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार कपिला गौ सब गौओंमें उत्तम है ।।४२।। नानाप्रकारके दिव्यलोक तथा उसके हृदयमें जो भी कामना होती है, वह सब कुछ मनुष्य उपर्युक्त सत्कर्मके प्रभावसे प्राप्त कर लेता है ।।४२।। जो उच्छृंखल मनुष्य मांस बेचनेकेलिये गौकी हिंसा करता या गोमांस खाता है तथा जो स्वार्थवश घातकपुरुषको गाय मारनेकी सलाह देते हैं, वे सभी महान् पापके भागी होते हैं ।।४४।। गौकी हत्या करनेवाले, उसका मांस खानेवाले तथा गोहत्याका अनुमोदन करनेवाले लोग गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षो तक नरकमें डूबे रहते हैं ।।४५।। प्रभो! ब्राह्मणके यज्ञका नाश करनेवाले पुरुषको जैसे और जितने पाप लगते हैं, दूसरोंकी गाय चुराने और बेचनेमें भी वे ही दोष बताये गये हैं ।।५।। महातेजस्वी इन्द्र! गोदानमें सुवर्णकी दक्षिणा देनेका विधान है । दक्षिणाकेलिये सुवर्ण सबसे उत्तम दान है । सुवर्णकी दक्षिणा सबसे श्रेष्ठ है तथा पवित्र करनेवाली वस्तुओंमें सुवर्णको ही सबसे अधिक पावन कहा गया है । जो ब्राह्मण अपनी मण्डलीमें बैठकर प्रतिदिन इस उपदेशको दुहराता है और यज्ञमें, गोदानके समय तथा दो व्यक्तियोंके भी समागममें इसकी चर्चा करता है, उसको सदा देवताओंके साथ अक्षयलोक प्राप्त होते हैं ।।१५।।

गोदानकी विधि तथा दाता नरेशोंके नाम

युधिष्ठिरऽउवाच

विधिं गवां परं श्रोतुमिच्छामि नृप तत्त्वतः ।
येन तांश्छाश्वतॉंल्लोकानखिलानश्नुवीमहि ।।७६/१।।

भीष्मऽउवाच

न गोदानात्परं किञ्चिद्विद्यते वसुधाधिप ।
गौर्हि न्यायागता दत्ता सद्यस्तारयते कुलम् ।।२४।।
सतामर्थे सम्यगुत्पादितो यः स वै क्लृप्तः सम्यगिष्टः प्रजाभ्यः ।
तस्मात्पूर्वं ह्यादिकालप्रवृत्तं गोदानार्थं श्रृणु राजन्विधिं मे ।।३४।।
पुरा गोषूपनीतासु गोषु संदिग्धदर्शिना ।
मान्धात्रा प्रकृतं प्रश्नं बृहस्पतिरभाषत ।।४।।
द्विजातिमभिसत्कृत्य श्वःकालमभिवेद्य च ।

गोदानार्थे प्रयुञ्जीत रोहिणीं नियतव्रतः ।।५।।

आह्वानं च प्रयुञ्जीत समङ्गे बहुलेति च ।

प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ।।६।।

गौर्मे माता वृषभः पिता मे दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा ।

प्रपद्यैवं शर्वरीमुष्य गोषु पुनर्वाणीमुत्सृजेद्गोप्रदाने ।।७।।

स तामेकां निशां गोभिः समसख्यः समव्रतः ।

ऐकात्म्यगमनात्सद्यः कल्मषाद्विप्रमुच्यते ।।८।।

युधिष्ठिरने कहा– नरेश्वर! अब मैं गोदानकी उत्तमविधिका यथार्थरूपसे श्रवण करना चाहता हूँ, जिससे प्रार्थी पुरुषोंकेलिये अभीष्ट सनातनलोकोंकी प्राप्ति होती है ।।१।। भीष्मजीने कहा– पृथ्वीनाथ! गोदानसे बढ़कर कुछ भी नहीं है । यदि न्यायपूर्वक प्राप्त हुई गौका दान किया जाय तो वह समस्त कुलका तत्काल उद्धार कर देती है । राजन्! ऋषियोंने सत्पुरुषोंकेलिये समीचीन भावसे जिन विधियोंको प्रकट किया है, वही इन प्रजाजनोंकेलिये भलीभाँति निश्चित किया गया है । इसलिये तुम आदिकालसे प्रचलित हुई गोदानकी इस उत्तमविधिका मुझसे श्रवण करो ।।३।। पूर्वकालकी बात है, जब महाराजा मान्धाताके पास बहुत सी गौएँ दानकेलिये लायी गयीं, तब उन्होंने कैसे गोदान करें? इस सन्देहमें पड़कर बृहस्पतिजीसे तुम्हारी ही तरह प्रश्न किया, तो बृहस्पतिजीने इस प्रकार कहा– ।।४।। गोदान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह नियमपूर्वक व्रतका पालन करे और ब्राह्मणको बुलाकर उसका अच्छी तरह सत्कार करके कहे कि 'मैं कल प्रातःकाल आपको एक गौ दान करुँगा ।' तत्पश्चात् गोदानकेलिये वह लालरंगकी (रोहिणी) गौ मँगाये और 'समंगे बहुले' इस प्रकार कहकर गायको सम्बोधित करे ।।५-६।। ''गौ मेरी माता है । वृषभ मेरा पिता है । वे दोनों मुझे स्वर्ग तथा ऐहिक सुख प्रदान करें । गौ ही मेरा आधार है ।'' ऐसा कहकर गौओंकी शरण ले और उन्हींके साथ मौनावलम्बनपूर्वक रात बिताकर सबेरे गोदान कालमें ही मौन भंग करे, बोले ।।७।। इस प्रकार गौओंके साथ एकरात रहकर उनके समान व्रतका पालन करते हुए उन्हींके साथ एकात्मभावको प्राप्त होनेसे मनुष्य तत्काल सब पापोंसे छूट जाता है ।।८।।

उत्सृष्टवृषवत्सा हि प्रदेया सूर्यदर्शने ।

त्रिविधं प्रतिपत्तव्यमर्थवादाशिषस्तव ।।९।।

ऊर्जस्विन्यऽऊर्जमेधाश्च यज्ञे गर्भोऽमृतस्य जगतश्च प्रतिष्ठा ।

क्षितौ रोहः प्रवहः शश्वदेव प्राजापत्याः सर्वमित्यर्थवादः ।।१०।।

गावो ममैनः प्रणुदन्तु सौर्यास्तथा सौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु ।

आत्मानं मे मातृवच्चाश्रयन्तु तथानुक्ताः सन्तु सर्वाशिषो मे ।।११।।
शेषोत्सर्गे कर्मभिर्देहमोक्षे सरस्वत्यः श्रेयसि सम्प्रवृत्ताः ।
यूयं नित्यं पुण्यकर्मोपवाह्या दिशध्वं मे गतिमिष्टां प्रपन्नाः ।।१२।।
या वै यूयं सोऽहमद्यैकभावो युष्मान्दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता ।
मनश्च्युता मनऽएवोपपन्नाः सन्धुक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः ।।१३।।
एवं तस्याग्रे पूर्वमर्धं वदेत गवां दाता विधिवत्पूर्वदृष्टम् ।
प्रतिब्रूयाच्छेषमर्धं द्विजातिः प्रतिगृह्णन्वै गोप्रदाने विधिज्ञः ।।१४।।

राजन्! सूर्योदयके समय बछड़े सहित गौका तुम्हें दान करना चाहिये, इससे स्वर्गलोकको प्राप्ति होगी और अर्थवाद मन्त्रोंमें जो आशीः (प्रार्थना) की गयी है, वह तुम्हारेलिये सफल होगी ।।७।। वे मन्त्र इस प्रकार हैं, गोदानके पश्चात् इनकेद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये । गौएँ उत्साहसम्पन्न, बल और बुद्धिसे युक्त, यज्ञके काम आनेवाले अमृतस्वरूप, हविष्यके उत्पत्तिस्थान, जगत्की प्रतिष्ठा (आश्रय), पृथ्वीपर बैलोंकेद्वारा खेती उपजानेवाली, संसारके अनादि प्रवाहको प्रवृत्त करनेवाली और प्रजापतिकी पुत्री हैं । यह सब गौओंकी प्रशंसा है ।।१०।। सूर्य और चन्द्रमाके अंशसे प्रकट हुई वे गौएँ हमारे पापोंका नाश करें । हमें स्वर्ग आदि उत्तमलोकोंकी प्राप्तिमें सहायता दें । माताकी भाँति शरण प्रदान करें । जिन इच्छाओंका इन मन्त्रोंद्वारा उल्लेख नहीं हुआ है और जिनका हुआ है, वे सभी गोमाताकी कृपासे मेरेलिये पूर्ण हो ।।११।। गौओं ! जो लोग तुम्हारी सेवा करते हुए तुम्हारी आराधनामें लगे रहते हैं, उनके उन कर्मोंसे प्रसन्न होकर तुम उन्हें क्षय आदि रोगोंसे छुटकारा दिलाती हो और ज्ञानकी प्राप्ति कराकर उन्हें देहबन्धनसे भी मुक्त कर देती हो । जो मनुष्य तुम्हारी सेवा करते हैं, उनके कल्याणकेलिये तुम सरस्वती नदीकी भाँति सदा प्रयत्नशील रहती हो । गोमाताओं! तुम हमारे ऊपर सदा प्रसन्न रहो और हमें समस्त पुण्योंकेद्वारा प्राप्त होनेवाली अभीष्ट गति प्रदान करो ।।१२।। इसके बाद प्रथम दृष्टिपथमें आया हुआ दाता पहले विधिपूर्वक निम्नांकित आधे श्लोकका उच्चारण करे 'या वै यूयं सोऽहमद्यैकभावो युष्मान् दत्वा चाहमात्मप्रदाता ।' गौओं ! तुम्हारा जो स्वरूप है वही मेरा भी है । तुममें और हममें कोई अन्तर नहीं है । अतः आज तुम्हें दानमें देकर हमने अपने आपको ही दान कर दिया है । दाताके ऐसा कहनेपर दान लेनेवाला गोदानविधिका ज्ञाता ब्राह्मण शेष आधे श्लोकका उच्चारण करे– 'मनश्च्युता मनऽएवोपपन्नाः सन्धुक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः ।।' गौओं! तुम शान्त और प्रचण्डरूप धारण करनेवाली हो । अब तुम्हारे ऊपर दाताका ममत्व (अधिकार) नहीं रहेगा । अब

तुम मेरे अधिकारमें आ गयी हो । अतः अभीष्ट भोग प्रदान करके तुम मुझे और दाताको भी प्रसन्न करो ।।१३-१४।।

गां ददानीति वक्तव्यमर्घ्यवस्त्रवसुप्रदः ।
ऊधस्या भरितव्या च वैष्णवीति च चोदयेत् ।।१५।।
नाम सङ्कीर्तयेत्तस्या यथासङ्ख्योत्तरं स वै ।
फलं षट्त्रिंशदष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः ।।१६।।
एवमेतान्गुणान्विद्यान्गवादीनां यथाक्रमम् ।
गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे ।।१७।।
कामान्सर्वान्पार्थिवानेकसंस्थान्यो वै दद्यात्कामदुघां च धेनुम् ।
सम्यक्ताः स्युर्हव्यकव्यौघवत्यस्तासामुक्ष्णां ज्यायसां सम्प्रदानम् ।।२१।।
न चाशिष्यायाव्रतायोपकुर्यान्नाश्रद्दधानाय न वक्रबुद्धये ।
गुह्यो ह्ययं सर्वलोकस्य धर्मो नेमं धर्मं यत्र तत्र प्रजल्पेत् ।।२२।।
उशीनरो विष्वगश्वो नृगश्च भगीरथो विश्रुतो यौवनाश्वः ।
मान्धाता वै मुचकुन्दश्च राजा भूरिद्युम्नो नैषधः सोमकश्च ।।२५।।
पुरूरवा भरतश्चक्रवर्ती यस्यान्वये भारताः सर्वऽएव ।
तथा वीरो दाशरथिश्च रामो ये चाप्यन्ये विश्रुताः कीर्तिमन्तः ।।२६।।
तथा राजा पृथुकर्मा दिलीपो दिवं प्राप्तो गोप्रदाने विधिज्ञः ।
यज्ञैर्दानैस्तपसा राजधर्मैर्मान्धाताऽभूद्गोप्रदानैश्च युक्तः ।।२७।।

जो 'गां ददानि' ऐसा कहकर गौके निष्क्रयरूपसे उसका मूल्य, वस्त्र अथवा सुवर्णदान करता है उसको भी गोदान ही कहना चाहिये । मूल्य, वस्त्र एवं सुवर्णरूपमें दी जाने वाली गौओंके नाम क्रमशः 'ऊधस्या, भरितव्या और वैष्णवी हैं । संकल्पके समय इन्हीं नामोंका उच्चारण करना चाहिये अर्थात् 'ऊधस्या, भरितव्या या वैष्णवी गौ' आपको दे रहा हूँ, आप इसे ग्रहण करें । ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको वह दान ग्रहण करनेकेलिये प्रेरित करना चाहिये । इनके दानका फल क्रमशः बताया गया है । इसे अच्छी तरह जान लेना चाहिये । साक्षात् गौका दान लेकर जब ब्राह्मण अपने घरकी ओर जाने लगता है, उस समय उसके आठ पग जाते-जाते ही दाताको अपने दानका फल मिल जाता है ।।१७।। जो इच्छानुसार दूध देनेवाली धेनुका दान करता है वह मानो समस्त पार्थिवभोगोंका एक साथ ही दान कर देता है । जब एक गौके दानका ऐसा माहात्म्य है, तब हव्य-कव्यकी राशिसे सुशोभित होनेवाली बहुत सी गौओंका यदि विधिपूर्वक दान किया जाय तो कितना अधिक फल हो सकता है । नौजवान बैलोंका दान उन गौओंसे भी अधिक पुण्यदायक होता है ।।२१।।

जो मनुष्य अपना शिष्य नहीं है, जो व्रतका पालन नहीं करता, जिसमें श्रद्धाका अभाव है तथा जिसकी बुद्धि कुटिल है, उसे इस गोदानविधिका उपदेश न दे, क्योंकि यह सबसे गोपनीय धर्म है, अतः इसका यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रचार नहीं करना चाहिये ।।२२।।

उशीनर, विष्वगश्व, नृग, भगीरथ, सुविख्यात युवनाश्वकुमार, महाराज मान्धाता, राजा मुचकुन्द, भूरिद्युम्न, निषधनरेश नल, सोमक, पुरूरवा, चक्रवर्ती भरत जिनके वंशमें होनेवाले, सभी राजा भारत कहलाये, दशरथनन्दन वीर श्रीराम, अन्यान्य विख्यात कीर्तिवाले नरेश तथा महान् कर्म करनेवाले राजा दिलीप- उन समस्त विभिन्न नरेशोंने गोदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया है । राजा मान्धाता तो यज्ञ, दान, तपस्या, राजधर्म तथा गोदान आदि सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न थे ।।२५-२७।।

वैशम्पायनऽउवाच

इति नृप सततं गवां प्रदाने यवशकलान्सह गोमयैः पिबानः ।
क्षितितलशयनः शिखी यतात्मा वृषऽइव राजवृषस्तदा बभूव ।।३०।।
नरपतिरभवत् सदैव ताभ्यः प्रयतमनास्त्वभिसंस्तुवंश्च ताः स्मः ।
न च धुरि नृप गामयुक्त भूयस्तुरगवरैरगमच्च यत्र-तत्र ।।३१।।

नरेश्वर! राजाओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर उन दिनों सदा गोदानकेलिये उद्यत होकर गोबरके साथ जौके कणोंका आहार करते हुए मन और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक पृथ्वीपर शयन करने लगे । उनके सिरपर जटायें बढ़ गयीं और वे साक्षात् धर्मके समान देदीप्यमान होने लगे । नरेन्द्र! राजा युधिष्ठिर सदा ही गौओंके प्रति विनीतचित्त होकर उनकी स्तुति करते रहते थे । उन्होंने फिर कभी बैलका अपनी सवारीमें उपयोग नहीं किया, वे अच्छे-अच्छे घोड़ोंकेद्वारा ही इधर-उधर की यात्रा करते थे ।

गोग्रासप्रदानम्

गावो यज्ञार्थमुत्पन्ना दक्षिणार्थं तथैव च ।
सुवर्णं रजतं चैव पात्रकुम्भार्थमेव च ।। महा.आश्व.७१।।

गौएँ यज्ञ और दक्षिणाकेलिये उत्पन्न हुई हैं; क्योंकि गोघृत और गोदक्षिणाके बिना यज्ञ सम्पन्न नहीं होता । सुवर्ण और चाँदी- ये यज्ञके पात्र और कलश बनानेका काम लेनेकेलिये उत्पन्न हुए हैं ।

पितरो वृषभा ज्ञेया गावो लोकस्य मातरः ।
तासां तु पूजया राजन् पूजिताः पितृदेवताः ।।
सभा प्रपा गृहाश्चापि देवतायतनानि च ।

शुद्ध्यन्ति शकृता यासां किं भूतमधिकं ततः ॥

गोग्रासप्रदानमन्त्रः

गावो मे मातरः सर्वाः पितरश्चैव गोवृषाः ।
ग्रासमुष्टिं मया दत्तं प्रतिगृहणीत मातरः ॥

राजन्! बैलोंको जगत्का पिता और गौओंको जगत्की माता समझें । उनकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण पितरों और देवताओंकी पूजा हो जाती है । जिनके गोबरसे लीपनेपर सभाभवन, पौंसले, घर और देवमन्दिर भी शुद्ध हो जाते हैं, उन गौओंसे बढ़कर और कौन प्राणी हो सकता है । गोमाताके सामने घास रखकर प्रार्थना करें- संसारकी समस्त गौएँ मेरी माताएँ और वृषभ मेरे पिता हैं । गोमाताओं! मैंने तुम्हारी सेवामें यह घास अर्पण की है, इसे स्वीकार करें ।

कपिलोत्पत्ति

कपिला गौ तथा उसके दानका माहात्म्य और उसके दस भेद

(महाभारते आश्वमेधिकपर्वणि वैष्णवधर्मपर्व- १० अ., ९२ अ.)

युधिष्ठिरऽउवाच

या चैषा कपिला देव पूर्वमुत्पादिता विभो ।
होमधेनुः सदा पुण्या चतुर्वक्त्रेण माधव ॥७२/१॥
सा कथं ब्राह्मणेभ्यो हि देया कस्मिन् दिनेऽपि वा ।
कीदृशाय च विप्राय दातव्या पुण्यलक्षणा ॥२॥
कति वा कपिला प्रोक्ता स्वयमेव स्वयंभुवा ।
कैर्वा देयाश्च ता देव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥

श्रीकृष्णऽउवाच

श्रृणु पाण्डव तत्त्वेन पवित्रं पावनं परम् ।
यच्छ्रुत्वा पापकर्माऽपि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥४॥
कपिला ह्यग्निहोत्रार्थे विप्रार्थे वा स्वयम्भुवा ।
सर्वं तेजः समुद्धृत्य निर्मिता ब्रह्मणा पुरा ॥५॥
पवित्रं च पवित्राणां मंगलानां च मंगलम् ।
पुण्यानां परमं पुण्यं कपिला पाण्डुनन्दन ॥६॥
तपसां तप एवाग्र्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
दानानां परमं दानं निधानं ह्येतदक्षयम् ॥७॥
क्षीरेण कपिलायास्तु दध्ना वा सघृतेन वा ।
होतव्यान्यग्निहोत्राणि सायम्प्रातर्द्विजातिभिः ॥८॥

युधिष्ठिरने पूछा– भगवन्! विभो! जिसे ब्रह्माजीने अग्निहोत्रकी सिद्धिकेलिये पूर्वकालमें उत्पन्न किया था तथा जो सदा ही पवित्र मानी गयी है । उस कपिला गौका ब्राह्मणोंको किस प्रकार दान करना चाहिये? माधव! वह पवित्र लक्षणोंवाली गौ किस दिन और कैसे ब्राह्मणको देनी चाहिये । ब्रह्माजीने कपिला गौके कितने भेद बतलाये हैं तथा कपिला गौका दान करनेवाला मनुष्य कैसा होना चाहिये? इन सब बातोंको मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ ।।३।।

श्रीकृष्णने कहा– पाण्डनन्दन! यह विषय अत्यन्त पवित्र और पावन है । इसका श्रवण करनेसे पापीपुरुष भी पापसे मुक्त हो जाता है । अतः ध्यानसे सुनो– पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने अग्निहोत्र तथा ब्राह्मणोंकेलिये सम्पूर्ण तेजोंका संग्रह करके कपिला गौको उत्पन्न किया था । पाण्डुनन्दन! कपिला गौ पवित्र वस्तुओंमें सबसे अधिक पवित्र, मंगलजनक पदार्थोंमें सबसे अधिक मंगलस्वरूपा तथा पुण्योंमें परमपुण्यस्वरूपा है । वह तपस्याओंमें श्रेष्ठतपस्या, व्रतोंमें उत्तमव्रत, दानोंमें श्रेष्ठदान और सबका अक्षय भण्डार है ।

द्विजातियोंको चाहये कि वे सायंकाल और प्रातःकालमें कपिला गौके दूध, दही अथवा घीसे अग्निहोत्र करें ।।८।।

कपिलाया घृतेनापि दध्ना क्षीरेण वा पुनः ।
जुहवते येऽग्निहोत्राणि ब्राह्मणा विधिवत्प्रभो ।।९।।
पूजयन्त्यतिथींश्चैव परां भक्तिमुपागताः ।
शूद्रान्नाद्विरता नित्यं दम्भानृतविवर्जिताः ।।१०।।
ते यान्त्यादित्यसंकाशैर्विमानैर्द्विजसत्तमाः ।
सूर्यमण्डलमध्येन ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ।।११।।

प्रभो! जो ब्राह्मण कपिला गौके घी, दही अथवा दूधसे विधिवत् अग्निहोत्र करते हैं, भक्तिपूर्वक अतिथियोंकी पूजा करते हैं, शूद्रके अन्नसे दूर रहते हैं तथा दम्भ और असत्यका सदा त्याग करते हैं; वे सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा सूर्यमण्डलके मध्यसे होकर परमोत्तम ब्रह्मलोकमें जाते हैं ।।९-११।।

श्रृंगाग्रे कपिलायास्तु सर्वतीर्थानि पाण्डव ।
ब्रह्मणो हि नियोगेन निवसन्ति दिने-दिने ।।१२।।
प्रातरुत्थाय यो मर्त्यः कपिलाश्रृंगमस्तकात् ।
यश्च्युतामम्बुधारां वै शिरसा प्रयतः शुचिः ।।१३।।
स तेन पुण्यतीर्थेन सहसा हतकिल्बिषः ।
जन्मत्रयकृतं पापं प्रदहत्यग्निवत्तृणम् ।।१४।।

मूत्रेण कपिलायास्तु यश्च प्राणानुपस्पृशेत् ।
स्नानेन तेन पुण्येन नष्टपापः स मानवः ।
त्रिंशद्वर्षकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥१५॥
प्रातरुत्थाय यो भक्त्या प्रयच्छेत्तृणमुष्टिकम् ।
तस्य नश्यति तत्पापं त्रिंशद्रात्रकृतं नृप ॥१६॥
प्रातरुत्थाय यद्भक्त्या कुर्याद्यस्मात्प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणाकृता तेन पृथिवी नात्र संशयः ॥१७॥

युधिष्ठिर! ब्रह्माजीकी आज्ञासे कपिलाकी सींगके अग्रभागमें सदा सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं । जो मनुष्य शुद्धभावसे नियमपूर्वक प्रतिदिन सबेरे उठकर कपिला गौके सींग और मस्तकसे गिरती हुई जलधाराको अपने सिरपर धारण करता है वह उस पुण्यके प्रभावसे सहसा पापरहित हो जाता है, जैसे आग तिनकेको जला डालती है, उसी प्रकार वह जल तीन जन्मोंके पापोंको भस्म कर डालता है ।।**१२-१४**।।

जो मनुष्य कपिलाका मूत्र लेकर अपने नेत्र आदि इन्द्रियोंमें लगाता तथा उससे स्नान करता है, वह उस स्नानके पुण्यसे निष्पाप हो जाता है । उसके तीस जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है । नरपते! जो प्रातःकाल उठकर भक्तिके साथ कपिला गौको घासकी मुट्ठी अर्पण करता है, उसके एक महीनेके पापोंका नाश हो जाता है । जो प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक कपिला गौकी परिक्रमा करता है, उसके द्वारा समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है, इसमें संशय नहीं है ।।**१५-१७**।।

कपिलापञ्चगव्येन यः स्नायात्तु शुचिर्नरः ।
स गंगाद्येषु तीर्थेषु स्नातो भवति पाण्डव ॥१८॥
दृष्ट्वा तु कपिलां भक्त्या श्रुत्वा हुंकारनिःस्वनम् ।
व्यपोहति नरः पापमहोरात्रकृतं नृप ॥१९॥

पाण्डुनन्दन! जो पुरुष कपिला गौके पञ्चगव्यसे नहाकर शुद्ध होता है वह मानो गंगा आदि समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लेता है । राजन्! भक्तिपूर्वक कपिला गौका दर्शन करके तथा उसके रँभानेकी ध्वनि सुनकर मनुष्य एकदिन–रातके पापोंको नष्ट कर डालता है ।।**१८-१९**।।

गोसहस्रं तु यो दद्यादेकां च कपिलां नरः ।
समं तस्य फलं प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२०॥
यस्त्वेवं कपिलां हन्यान्नरः कश्चित्प्रमादतः ।
गोसहस्रं हतं तेन भवेन्नात्र विचारणा ॥२१॥
दश वै कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
प्रथमा स्वर्णकपिला द्वितीया गौरपिंगला ॥२२॥

तृतीयाऽऽरक्तपिंगाक्षी चतुर्थी गलपिंगला ।
पञ्चमी बभ्रुवर्णाभा षष्ठी च श्वेतपिंगला ॥२३॥
सप्तमी रक्तपिंगाक्षी त्वष्टमी खुरपिंगला ।
नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुच्छपिंगला ।
दशैताः कपिलाः प्रोक्तास्तारयन्ति नरान् सदा ॥२४॥
मंगल्याश्च पवित्राश्च सर्वपापप्रणाशनाः ।
एवमेव ह्यनड्वाहो दशप्रोक्ता नरेश्वर ॥२५॥

एक मनुष्य एकहजार गौओंका दान करे और दूसरा एक ही कपिला गौको दानमें दे तो लोकपितामह ब्रह्माजीने उन दोनोंका फल बराबर बतलाया है । इसी प्रकार कोई मनुष्य प्रमादवश यदि एक ही कपिला गौकी हत्या कर डाले तो उसे एकहजार गौओंके वधका पाप लगता है । इसमें संशय नहीं है । ब्रह्माजीने कपिला गौके दस भेद बतलाये हैं- (१) स्वर्णकपिला (सुवर्णके समान पीले रंगवाली), (२) गौरपिंगला (गौर तथा पीले रंगवाली), (३) आरक्तपिंगाक्षी (कुछ लालिमा लिये हुए पीले नेत्रोंवाली), (४) गलपिंगला (जिसके गर्दनके बाल कुछ पीले हों), (५) बभ्रूवर्णकी आभावाली (जिसका सारा शरीर पीले रंगका हो), (६) श्वेतपिंगला (कुछ सफेदी लिये हुए पीले रोमवाली), (७) रक्तपिंगाक्षी (सुर्ख और पीली आँखोंवाली), (८) खुरपिंगला (जिसके खुर पीले रंगके हों), (९) पाटला (जिसका हल्का लाल रंग हो), (१०) पुच्छपिंगला (जिसकी पूँछके बाल पीले रंगके हों)- ये दस प्रकारकी कपिला गौएँ बतलायी गयी हैं । जो सदा मनुष्योंका उद्धार करती हैं । नरेश्वर! वे मंगलमयी पवित्र और सब पापोंको नष्ट करनेवाली हैं । गाड़ी खींचनेवाले बैलोंके भी ऐसे ही दस भेद बतलाये गये हैं ।।२०-२५।।

ब्राह्मणो वाहयेत्तांस्तु नान्यो वर्णः कथञ्चन ।
न वाहयेच्च कपिलां क्षेत्रे वाऽध्वनि वा द्विजः ॥२६॥
वाहयेद्धुंकृतेनैव शाखया वा सपत्रया ।
न दण्डेन न वा यष्ट्या न पाशेन न वा पुनः ॥२७॥

उन बैलोंको ब्राह्मण ही अपनी सवारीमें जोते, दूसरे वर्णका मनुष्य उनसे सवारीका काम किसी प्रकार भी न ले । ब्राह्मण भी कपिला गौको खेत या रास्तेमें न जोते । गाड़ीमें जुते रहनेपर उन बैलोंको हुंकारकी ध्वनि देकर अथवा पत्तेवाली टहनीसे हाँके । डण्डेसे, छड़ीसे, या रस्सीसे मारकर न हाँके ।।२६-२७।।

न क्षुत्तृष्णाश्रमश्रान्तान् वाहयेद्विकलेन्द्रियान् ।
अतृप्तेषु न भुञ्जीयात्पिबेत्पीतेषु चोदकम् ॥२८॥

शुश्रूषोर्मातरश्चैताः पितरस्ते प्रकीर्तिताः ।
अहं पूर्वत्र भागे च धुर्याणां वाहनं स्मृतम् ।।२९।।
विश्रामेन्मध्यगे भागे भागे चान्ते यथासुखम् ।
यत्र च त्वरया कृत्यं संशयो यत्र वाऽध्वनि ।
वाहयेत्तत्र धुर्यास्तु न स पापेन लिप्यते ।।३०।।
भ्रूणहत्यासमं पापं तस्य स्यात्पाण्डुनन्दन ।
अन्यथा वाहयन्राजन्निरयं याति रौरवम् ।।३१।।
रुधिरं पातयेत्तेषां यस्तु मोहान्नराधिप ।
तेन पापेन पापात्मा नरकं यात्यसंशयम् ।।३२।।
नरकेषु च सर्वेषु समाः स्थित्वा शतं शतम् ।
इह मानुष्यके लोके बलीवर्दो भविष्यति ।
तस्मात्तु मुक्तिमन्विच्छन्दद्यात्तु कपिलां नरः ।।३३।।
कपिला सर्वयज्ञेषु दक्षिणार्थं विधीयते ।
तस्मात्तद्दक्षिणा देया यज्ञेष्वेव द्विजातिभिः ।।३४।।

जब बैल भूख-प्यास और परिश्रम से थके हुए हों तथा उनकी इन्द्रियाँ घबड़ायी हुई हों, तब उन्हें गाड़ीमें न जोते । जब तक बैलोंको खिलाकर तृप्त न कर ले तब तक स्वयं भी भोजन न करे । उन्हें पानी पिलाकर ही स्वयं जलपान करे । सेवा करनेवाले पुरुषकी भी कपिला गौएँ माता और बैल पिता हैं । दिनके मध्यभागमें उन्हें विश्राम देना चाहिये, किन्तु दिनके अन्तिम भागमें अपनी रुचिके अनुसार बर्ताव करना चाहिये अर्थात् आवश्यकतानुसार काम ले । जहाँ जल्दीका काम हो अथवा जहाँ मार्गमें किसी प्रकारका भय आने वाला हो; वहाँ विश्रामके समय भी यदि बैलोंको सवारीमें जोते तो पाप नहीं लगता । पाण्डुनन्दन! परन्तु जो विशेष आवश्यकता न होनेपर भी ऐसे समयमें बैलोंको गाड़ीमें जोतता है, उसे भ्रूणहत्याके समान पाप लगता है और वह रौरवनरकमें पड़ता है । नराधिप! जो मोहवश बैलोंके शरीरसे रक्त निकाल देता है, वह पापात्मा उस पापके प्रभावसे निःसन्देह नरकमें गिरता है । वह सभी नरकोंमें सौ-सौ वर्ष रहकर इस मनुष्य लोकमें बैलका जन्म पाता है । अतः जो मनुष्य संसारसे मुक्त होना चाहता हो, उसे कपिला गौका दान करना चाहिये । सब प्रकारके यज्ञोंमें दक्षिणा देनेकेलिये कपिला गौकी सृष्टि हुई है । इसलिये द्विजातियोंको यज्ञमें उनकी दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये ।।२८-३४।।

होमार्थं चाग्निहोत्रस्य यां प्रयच्छेत्प्रयत्नतः ।
श्रोत्रियाय दरिद्राय श्रान्तायामिततेजसे ।।३५।।
तेन दानेन पूतात्मा मम लोके महीयते ।

सुवर्णखुरश्रृंगी च कपिलां यः प्रयच्छति ॥३६॥
विषुवे चायने चापि सोऽश्वमेघफलं लभेत् ।
तेनाश्वमेधतुल्येन मम लोकं स गच्छति ॥३७॥
अग्निष्टोमसहस्रस्य वाजपेयं च तत्समम् ।
वाजपेयसहस्रस्य हयमेधं च तत्समम् ॥३८॥
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयं च तत्समम् ।
कपिलानां सहस्रेण विधिदत्तेन पाण्डव ॥३९॥
राजसूयफलं प्राप्य मम लोके महीयते ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्विद्यते कुरुपुंगव ॥४०॥
तैस्तैर्गुणैः कामदुघा च भूत्वा नरं प्रदातारमुपैति सा गौः ।
स्वकर्मभिश्चाप्यनुबध्यमानं तीव्रान्धकारे नरके पतन्तम् ।
महार्णवे नौरिव वायुनीता दत्ता हि गौस्तारयते मनुष्यम् ॥४१॥
यथौषधं मन्त्रकृतं नरस्य प्रयुक्तमात्रं विनिहन्ति रोगान् ।
तथैव दत्ता कपिला सुपात्रे पापं नरस्याशु निहन्ति सर्वम् ॥४२॥

जो मनुष्य अग्निहोत्रके होमकेलिये अमिततेजस्वी एवं धनहीन श्रोश्रिय ब्राह्मणका प्रयत्नपूर्वक कपिलागौ दानमें देता है, वह उस दानसे शुद्धचित्त होकर मेरे परमधाममें प्रतिष्ठित होता है । जो मनुष्य कपिलाके सींग और खुरोंमें सुवर्ण मढ़ाकर विषुव योगमें अथवा उत्तरायण-दक्षिणायनके आरम्भमें दान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है तथा उस पुण्यके प्रभावसे वह मेरे लोकमें जाता है । एकहजार अग्निहोत्रके समान एक वाजपेय, एकहजार वाजपेयके समान एक अश्वमेध और एकहजार अश्वमेधके समान एक राजसूय यज्ञ होता है, कुरुश्रेष्ठ पाण्डव! जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधिसे एकहजार कपिला गौओंका दान करता है, वह राजसूय यज्ञका फल पाकर मेरे परमधाममें प्रतिष्ठित होता है, उसे पुनः इस लोकमें नहीं लौटना पड़ता । दानमें दी हुई गौ अपने विभिन्न गुणोंकेद्वारा कामधेनु बनकर परलोकमें दाताके पास पहुँचती है । वह अपने कर्मोंसे बँधकर घोर अन्धकारपूर्ण नरकमें गिरते हुए मनुष्यका उसी प्रकार उद्धार कर देती है, जैसे वायुके सहारेसे चलती हुई नौका मनुष्यको महासागरमें डूबनेसे बचाती है । जैसे मन्त्रके साथ दी हुई औषधि प्रयोग करते ही मनुष्यके रोगोंका नाश कर देती है । उसी प्रकार सुपात्रको दी हुई कपिला गौ मनुष्यके सब पापोंको तत्काल नष्ट कर डालती है ।।३५-४२।।

यथा त्वचं वै भुजगो विहाय पुनर्नवं रूपमुपैति पुण्यम् ।
तथैव मुक्तः पुरुषः स्वपापैर्विरज्यते वै कपिलाप्रदानात् ॥४३॥
यथान्धकारं भवने विलग्नं दीप्तो हि निर्यातयति प्रदीपः ।

तथा नरः पापमपि प्रलीनं निष्कासयेद्वै कपिलाप्रदानात् ।।४४।।
यस्याहिताग्नेरतिथिप्रियस्य शूद्रान्नदूरस्य जितेन्द्रियस्य ।
सत्यव्रतस्याध्ययनान्वितस्य दत्ता हि गौस्तारयते परत्र ।।४५।।
इदं पठति यः पुण्यं कपिलादानमुत्तमम् ।
प्रातरुत्थाय मद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं श्रृणु ।।४६।।
मनसा कर्मणा वाचा मतिपूर्वं युधिष्ठिर ।
पापं रात्रिकृतं हन्यादस्याध्यायस्य पाठकः ।।४७।।
इदमावर्तमानस्तु श्राद्धे यस्तर्पयेद्द्विजान् ।
तस्याप्यमृतमश्नन्ति पितरोऽत्यन्तहर्षिताः ।।४८।।
यश्चेदं श्रणुयाद्भक्त्या मद्गतेनान्तरात्मना ।
तस्य रात्रिकृतं सर्वं पापमाशु प्रणश्यति ।।४९।।

जैसे साँप केंचुल छोड़कर नये स्वरूपको धारण करता है, वैसे ही पुरुष कपिला गौके दानसे पापमुक्त होकर अत्यन्त शोभाको प्राप्त होता है । जैसे प्रज्वलित दीपक घरमें फैले हुए अन्धकारको दूर कर देता है, उसी प्रकार मनुष्य कपिला गौका दान करके अपने भीतर छिपे हुए पापको भी निकाल देता है । जो प्रतिदिन अग्निहोत्र करनेवाला, अतिथिका प्रेमी, शूद्रान्नसे दूर रहनेवाला, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, तथा स्वाध्यायपरायण हो, उसे दी हुई गौ परलोकमें दाताका अवश्य उद्धार करती है । जो मनुष्य सबेरे उठकर मुझमें भक्ति रखते हुए इस परमपुण्यमय कपिलादानके माहात्म्यका पाठ करता है, उसके पुण्यका फल सुनो- युधिष्ठिर! इस अध्यायका पाठ करनेवाला मनुष्य रात्रिमें मन, वाणी अथवा क्रियाद्वारा जान-बूझकर किये हुए सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो श्राद्धकालमें इस अध्यायका पाठ करते हुए ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करता है, उसके पितर अत्यन्त प्रसन्न होकर अमृत भोजन करते हैं । जो मुझमें चित्त लगाकर इस प्रसंगको भक्तिपूर्वक सुनता है, उसके एकरातके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं ।

।। अध्याय समाप्त ।।

नन्वहं शंकरश्चापि गावो विप्रास्तथैव च ।
अश्वत्थोऽमररूपं हि त्रयमेतद्युधिष्ठिर ।
एतत्त्रयं हि मद्भक्तो नावमन्येत कर्हिचित् ।।
अश्वत्थो ब्राह्मणो गावो मन्मयास्तारयन्ति हि ।
तस्मादेतत्प्रयत्नेन प्रायं पूजय पाण्डव ।।

युधिष्ठिर! गौ, ब्राह्मण और पीपलका वृक्ष ये तीनों देवरूप हैं । इन्हें मेरा और भगवान् शिवका स्वरूप समझना चाहिये । मेरे भक्त पुरुषकी उचित है कि वह इन तीनोंका कभी अपमान न करें । पाण्डुनन्दन! मेरे स्वरूप होनेके कारण पीपल, ब्राह्मण और गौ ये तीनों मनुष्यका उद्धार करनेवाले हैं, इसलिये तुम यत्नपूर्वक इन तीनोंकी पूजा किया करो ।

कपिलागोमाहात्म्यम्

श्रीकृष्णऽउवाच

अतः परं विशेषं तु कपिलानां ब्रवीमि ते ।
याश्चैताः कपिलाः प्रोक्ता दश राजन्मया तव ॥१॥
तासां चतस्रः प्रवराः पुण्याः पापविनाशनाः ।
सुवर्णकपिला पुण्यास्तथा रक्ताक्षपिंगला ॥२॥
पिंगलाक्षी च या गौश्च या स्यात्पिंगलपिंगला ।
नमस्कृता वा दृष्टा वा घ्नन्ति पापं नरस्य तु ॥३॥
यस्यैताः कपिलाः सन्ति गृहे पापप्रणाशनाः ।
तत्र श्रीर्विजयः कीर्तिः स्फीता नित्यं युधिष्ठिर ॥४॥
एतासां प्रीतिमायाति क्षीरेण तु वृषध्वजः ।
दध्ना च त्रिदशाः सर्वे घृतेन तु हुताशनः ॥५॥
कपिलाया घृतं क्षीरं दधि पायसमेव वा ।
श्रीत्रियेभ्यः सकृद्दत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ॥६॥
उपवासं तु यः कृत्वाऽप्यहोरात्रं जितेन्द्रियः ।
कपिलापञ्चगव्यं तु पीत्वा चान्द्रायणात्परम् ॥७॥
सौम्ये मुहूर्ते तत्प्राश्य शुद्धात्मा शुद्धमानसः ।
क्रोधानृतविनिर्मुक्तो मद्गतेनान्तरात्मना ॥८॥
कपिलापञ्चगव्येन समन्त्रेण पृथक्पृथक् ।
यो मत्प्रतिकृतिं वापि शंकराकृति मेव वा ।
स्नापयेद्विषुवे यस्तु सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥९॥
स मुक्तपापः शुद्धात्मा यानेनाम्बरशोभिना ।
मम लोकं व्रजेन्मुक्तो रुद्रलोकमथापि वा ॥१०॥

श्रीकृष्णने कहा- (युधिष्ठिर!) अब मैं कपिलागौके सम्बन्धमें विशेष बातें बता रहा हूँ । राजन्! पहले जो मैंने तुम्हें दस प्रकारकी कपिला गौएँ बतायी हैं, उनमें चार कपिलाएँ अत्यन्त श्रेष्ठ, पुण्यप्रदान करनेवाली तथा पापको नष्ट करनेवाली हैं । वे सुवर्णकपिला, रक्ताक्षपिंगला, पिंगलाक्षी और पिंगलपिंगला ये चार हैं । इनके दर्शन और नमस्कारसे भी मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं । युधिष्ठिर! ये पापनाशिनी जिसके

घरमें विराजमान रहती है, वहाँ श्री, विजय और विशाल कीर्तिका नित्य निवास होता है । इनके दूधसे भगवान् शंकर, दहीसे सम्पूर्ण देवता और घृतसे अग्निदेव तृप्त होते हैं । कपिला गौके घी, दूध, दही अथवा खीर का एकबार भी श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान करके मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पाता है । जो जितेन्द्रिय रहकर एक दिन-रात उपवास करके कपिला गौका पञ्चगव्यपान करता है, उसे चान्द्रायणसे बढ़कर उत्तमफलकी प्राप्ति होती है । जो क्रोध और असत्यका त्याग करके मुझमें चित्त लगाकर शुभमुहूर्तमें कपिला गौके पञ्चगव्यका आचमन करता है, उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है । जो विषुवयोगमें पृथक्-पृथक् मन्त्र पढ़कर कपिलाके पञ्चगव्यसे मेरी या शिवकी प्रतिमाको स्नान कराता है, उसे अश्वमेधका फल मिलता है । वह मुक्त होकर एवं शुद्धचित होकर आकाशकी शोभा बढ़ानेवाले विमानकेद्वारा मेरे अथवा रुद्रके लोकमें गमन करता है ।।१-१०।।

कपिलाके अंगोंमें सभी देवताओंका निवास

तस्मात्तु कपिला देया परत्रहितमिच्छता ।
यदा च दीयते राजन् कपिला ह्यग्निहोत्रिणे ।।११।।
तदा च श्रृंगयोस्तस्या विष्णुरिन्द्रश्च तिष्ठत: ।
चन्द्रवज्रधरौ चापि तिष्ठत: श्रृंगमूलयो: ।।१२।।
श्रृंगमध्ये तथा ब्रह्मा ललाटे गोवृषध्वज: ।
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषी शशिभास्करौ ।।१३।।
दन्तेषु मरुतो देवा जिह्वायां वाक्सरस्वती ।
रोमकूपेषु मुनयश्चर्मण्येव प्रजापति: ।।१४।।
नि:श्वासेषु स्थिता वेदा: सषडंगपदक्रमा: ।
नासापुटे स्थिता गन्धा: पुष्पाणि सुरभीणि च ।।१५।।
अधरे वसव: सर्वे मुखे चाग्नि: प्रतिष्ठित: ।
साध्या देवा: स्थिता: कक्षे ग्रीवायां पार्वती स्थिता ।।१६।।
पृष्ठे च नक्षत्रगणा: ककुद्देशे नभ:स्थलम् ।
अपाने सर्वतीर्थानि गोमूत्रे जाह्नवी स्वयम् ।।
(अष्टैश्वर्यमयी लक्ष्मीर्गोमये वसते सदा) ।।१७।।

राजन्! इसलिये परलोकमें हित चाहनेवाले पुरुषको कपिला गौका दान अवश्य करना चाहिये । जिस समय अग्निहोत्री ब्राह्मणको कपिला गौ दानमें दी जाती है, उस समय उसके सींगोंके ऊपरीभागमें विष्णु और इन्द्र निवास करते हैं । श्रृंगोंकी जड़में चन्द्रमा और वज्रधारी इन्द्र रहते हैं । श्रृंगमध्यमें ब्रह्मा तथा ललाटमें भगवान् शिवका निवास होता है । दोनां कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य, दाँतोंमें मरुद्गण,

जिह्वामें सरस्वती, रोमकूपोंमें मुनि, त्वचामें प्रजापति एवं श्वासोंमें षडंग, पद और क्रमसहित चारों वेदोंका निवास है । नासिकाछिद्रोंमें गन्ध और सुगन्धित पुष्प, नीचेके ओष्ठमें सब वसुगण तथा मुखमें अग्नि निवास करते हैं । कक्षमें साध्यदेवता, गर्दनमें पार्वती, पीठपर नक्षत्रगण, ककुद्‌के स्थानमें आकाश, अपानमें सारे तीर्थ, मूत्रमें साक्षात् गंगाजी तथा (गोबरमें सदा ही आठ ऐश्वर्योंसे सम्पन्न लक्ष्मीजी रहती हैं) ।।**११-१७**।।

नासिकायां सदा देवी ज्येष्ठा वसति भामिनी ।
श्रोणीतटस्थाः पितरो रमालांगूलमाश्रिता ।।१८।।
पार्श्वयोरुभयोः सर्वे विश्वेदेवाः प्रतिष्ठिताः ।
तिष्ठत्युरसि तासां तु प्रीतः शक्तिधरो गुहः ।।१९।।

नासिकामें परमसुन्दरी ज्येष्ठा देवी, नितम्बमें पितर एवं पूँछमें भगवती रमा रहती हैं । दोनों पसलियोंमें सब विश्वेदेव स्थित हैं और छातीमें प्रसन्नचित्त शक्तिधारी कार्त्तिकेय रहते हैं ।।१८-१९।।

जानुजंघोरुदेशेषु पञ्च तिष्ठन्ति वायवः ।
खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ।।२०।।
चत्वारः सागराः पूर्णास्तस्याऽएव पयोधराः ।
रतिर्मेधा क्षमा स्वाहा श्रद्धा शान्तिर्धृतिः स्मृतिः ।।२१।।
कीर्तिर्दीप्तिः क्रिया कान्तिस्तुष्टिः पुष्टिश्च सन्ततिः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव सेवन्ते कपिलां सदा ।।२२।।
देवाः पितृगणाश्चापि गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
लोका द्वीपार्णवाश्चैव गंगाद्याः सरितस्तथा ।।२३।।
इतिहासपुराणानि वेदाः सांगाः सहाध्वरैः ।
वेदोक्तैर्विविधैर्मन्त्रैः स्तुवन्ति हृषितास्तथा ।।२४।।
विद्याधराश्च ये सिद्धा भूतास्तारागणास्तथा ।
पुष्पवृष्टिं च वर्षन्ति प्रनृत्यन्ति च हर्षिताः ।।२५।।

(स्तुतिः)

ब्रह्मणोत्पादिता देवी वह्निकुण्डान्महाप्रभाः ।
नमस्ते कपिले पुण्ये सर्वदेवैर्नमस्कृते ।।२६।।
कपिलेऽथ महासत्त्वे सर्वतीर्थमये शुभे ।
अहो रत्नमिदं पुण्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ।।२७।।
अहो धर्मार्जितं शुद्धमिदमग्र्यं महाधनम् ।
इत्याकाशस्थिता ते तु सर्वदेवा जपन्ति च ।।२८।।

जानु, जंघा और ऊरुओंमें पाँच वायु, खुरोंके मध्य गन्धर्व और खुराग्रभागमें सर्प निवास करते हैं । जलसे परिपूर्ण चारों समुद्र उसके चारों स्तन हैं । रति, मेधा, क्षमा,

स्वाहा, श्रद्धा, शान्ति, धृति, स्मृति, कीर्ति, दीप्ति, क्रिया, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, सन्तति, दिशा और प्रदिशा आदि देवियाँ सदा कपिला गौका सेवन किया करती हैं । देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरायें, लोक, द्वीप, समुद्र, गंगा आदि नदियाँ, इतिहास-पुराण तथा अंगों और यज्ञोंके सहित सम्पूर्ण वेद नाना प्रकारके मन्त्रोंसे कपिला गौकी प्रसन्नतापूर्वक स्तुति किया करते हैं । विद्याधर, सिद्ध, भूतगण और तारागण- ये कपिला गौको देखकर पुण्योंकी वर्षा करते और हर्षमें भरकर नाचने लगते हैं । वे कहते हैं- सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित पुण्यमयी कपिला देवि! तुम्हें नमस्कार है । ब्रह्माजीने तुम्हें अग्निकुण्डसे उत्पन्न किया है । तुम्हारी प्रभा विस्तृत और शक्ति महान् है । कपिला देवि! समस्त तीर्थ तुम्हारे ही स्वरूप हैं और तुम सबका शुभ करनेवाली हो । समस्त देवता आकाशमें खड़े होकर कहा करते हैं- अहो! यह कपिला गौरूपी रत्न कितना पवित्र और कितना उत्तम है । यह सब दु:खोंको दूर करनेवाला है । अहो! यह धर्मसे उपार्जित शुद्ध, श्रेष्ठ और महान् धन है ।।**२०-२८**।।

महा.वनपर्व

गायत्रीजपका माहात्म्य

मार्कण्डेयऽउवाच

वाक्शौचं कर्मशौचं च यच्च शौचं जलात्मकम् ।
त्रिभि: शौचैरुपेतो य: स स्वर्गी नात्र संशय: ।।२००/८२।।
सायं प्रातश्च सन्ध्यां यो ब्राह्मणोऽभ्युपसेवते ।
प्रजपन्यावनीं देवीं गायत्रीं वेदमातरम् ।।२००/८३।।
स तया पावितो देव्या ब्राह्मणो नष्टकिल्बिष: ।
न सीदेत्प्रतिगृह्णानो महीमपि ससागराम् ।।२००/८४।।
ये चास्य दारुणा केचिद्ग्रहा: सूर्यादयो दिवि ।
ते चास्य सौम्या जायन्ते शिवा: शिवतरा: सदा ।।२००/८५।।
सर्वे नानुगतं चैनं दारुणा: पिशिताशना: ।
घोररूपा महाकाया धर्षयन्ति द्विजोत्तमम् ।।२००/८६।।
नाध्यापनाद्याजनाद्वा अन्यस्माद्वा प्रतिग्रहात् ।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलिताग्निसमा द्विजा: ।।२००/८७।।
प्राकारैश्च पुरद्वारै: प्रासादैश्च पृथग्विधै: ।
नगराणि न शोभन्ते हीनानि ब्राह्मणोत्तमै: ।।२००/९०।।

वेदाढ्या वृत्तसंपन्ना ज्ञानवन्तस्तपस्विनः ।
यत्र तिष्ठन्ति वै विप्रास्तन्नाम नगरं नृप ।।८१।।
व्रजे वाऽप्यथवाऽरण्ये यत्र सन्ति बहुश्रुताः ।
तत्तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थं च तद्भवेत् ।।८२।।

मार्कण्डेयजीने कहा- राजन्! वाक्शौच, कर्मशौच तथा जलशौच- इन तीन प्रकारके शौचोंसे जो सम्पन्न है, वह निःसंशय स्वर्गलोकका अधिकारी है? जो ब्राह्मण प्रातः और सायं- इन दोनों सन्ध्यायों और सर्वपावनी वेदमाता गायत्रीके मन्त्रका जप करता है, वह ब्राह्मण उन्हीं गायत्रीदेवीकी कृपासे परम पवित्र और निष्पाप हो जाता है । वह समुद्रपर्यन्त सारी पृथिवीका भी दान ग्रहण कर ले, तो भी किसी संकटमें नहीं फँसता । उतना ही नहीं, आकाशके सूर्य आदि ग्रहोंमें से जो कोई भी उनकेलिये भयंकर होते हैं, वे उपर्युक्त गायत्रीजपके प्रभावसे उसकेलिये सदा सौम्य, सुखद एवं परम मंगलकारी हो जाते हैं । भयंकर रूप और विशाल शरीरवाले, समस्त क्रूरकर्मा, मांसभक्षी राक्षस भी गायत्रीजपपरायण उस श्रेष्ठ द्विजपर आक्रमण नहीं कर सकते । वे सन्ध्योपासक ब्राह्मण प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी होते हैं । पढ़ाने, यज्ञ कराने अथवा दूसरेसे दान लेनेके कारण भी उन्हें दोष नहीं छू सकते हैं, (क्योंकि वे उनकी जीविकाके कर्म हैं) । चहारदीवारियों, नगरद्वारों और भिन्न-भिन्न महलोंसे भी नगरोंकी शोभा तबतक नहीं होती, जबतक वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मण न रहें । राजन्! वेदज्ञ, सदाचारी, ज्ञानी, और तपस्वी ब्राह्मण जहाँ निवास करते हों, उसीका नाम नगर है । पार्थ! व्रज (गोशाला) हो या वन, जहाँ बहुश्रुत विद्वान् रहते हों, उसे नगर कहा गया है और वह नगर साक्षात् तीर्थ ही है ।।८२-९२।।

सुरभि और इन्द्रका उपाख्यान

व्यासऽउवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि महदाख्यानमुत्तमम् ।
सुरभ्याश्चैव संवादमिन्द्रस्य च विशाम्पते ।।७/६
त्रिविष्टपगता राजन्सुरभी प्रारुदत्किल ।
गवां माता पुरा तात तामिन्द्रोऽन्वकृपायत ।।७।।

इन्द्रऽउवाच

किमिदं रोदिषि शुभे कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ।
मानुषेष्वथ वा गोषु नैतदल्पं भविष्यति ।।८।।

सुरभिरुवाच

विनिपातो न वः कश्चिद्दृश्यते त्रिदशाधिप ।

अहं तु पुत्रं शोचामि तेन रोदिमि कौशिक ।।९।।
पश्यैनं कर्षकं क्षुद्रं दुर्बलं मम पुत्रकम् ।
प्रतोदेनाभिनिघ्नन्तं लाङ्गलेन च पीडितम् ।।१०।।
निषीदमानं सोत्कण्ठं वध्यमानं सुराधिप ।
कृपाविष्टाऽस्मि देवेन्द्र मनश्चोद्विजते मम ।।
एकस्तत्र बलोपेतो धुरमुद्वहतेऽधिकाम् ।।११।।
अपरोऽप्यबलप्राणः कृशो धर्मानसन्ततः ।
कृच्छ्रादुद्वहते भारं तं वै शोचामि वासव ।।१२।।
वध्यमानः प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः ।
नैव शक्नोति तं भारमुद्वोढुं पश्य वासव ।।१३।।

व्यासजी (धृतराष्ट्रसे) कहते हैं- जनेश्वर! इस विषयमें मैं तुम्हें एक परम उत्तम इतिहास सुनाता हूँ, जो सुरभि तथा इन्द्रके संवादके रूपमें है । राजन्! पहलेकी बात है, गोमाता सुरभि स्वर्गलोकमें जाकर फूट-फूटकर रोने लगी । तात! उस समय इन्द्रको उसपर बड़ी दया आयी । इन्द्रने पूछा- शुभे! तुम क्यों इस तरह रो रही हो? देवलोकवासियोंकी कुशल तो है न? मनुष्यों तथा गौओंमें तो सबलोग कुशल से हैं न? तुम्हारा यह रोदन किसी अल्प कारणसे नहीं हो सकता । सुरभिने कहा- देवेश्वर! आपलोगोंकी अवनति नहीं दिखाई देती । इन्द्र! मुझे तो अपने पुत्रकेलिये शोक हो रहा है । इसीसे रोती हूँ । देखो, इस किसान को- जो मेरे दुर्बल पुत्रको बार-बार कोड़ेसे पीट रहा है और वह हलसे जुतकर अत्यन्त पीड़ित हो रहा है । सुरेश्वर! वह तो विश्रामकेलिये उत्सुक होकर बैठ रहा है और वह किसान उसे डण्डे मारता है । देवेन्द्र! यह देखकर मुझे अपने बच्चेके प्रति बड़ी दया हो आयी है और मेरा मन उद्विग्न हो उठा है । वहाँ दो बैलोंमें से एक तो बलवान् है, जो भारयुक्त जुएको खींच सकता है, परन्तु दूसरा निर्बल है, प्राणशून्य सा जान पड़ता है । वह इतना दुबला-पतला हो गया है कि उसके सारे शरीरमें फैली हुई नाड़ियाँ दिख रही हैं । वह बड़े कष्टसे उस भारयुक्त जुएको खींच पाता है । वासव! मुझे उसीकेलिये शोक हो रहा है । इन्द्र! देखो-देखो, चाबुकसे मार-मारकर उसे बार-बार पीड़ा दी जा रही है, तो भी उस जुएके भारको वहन करनेमें वह असमर्थ हो रहा है ।।**६-१३**।।

ततोऽहं तस्य शोकार्ता विरौमि भृशदुःखिता ।
अश्रूण्यावर्तयन्ती च नेत्राभ्यां करुणायती ।।१४।।

शक्रऽउवाच

तव पुत्रसहस्रेषु पीड्यमानेषु शोभने ।
किं कृपायितवत्यत्र पुत्रऽएको निपीड्यते ।।१५।।

सुरभिरुवाच

यदि पुत्रसहस्राणि सर्वत्र समतैव मे ।
दीनस्य तु सतः शक्र पुत्रस्याभ्यधिका कृपा ।।१६।।

व्यासऽउवाच

तदिन्द्रः सुरभेर्वाक्यं निशम्य भृशविस्मितः ।
जीवितेनापि कौरव्य मेनेऽभ्यधिकमात्मजम् ।।१७।।
प्रववर्ष च तत्रैव सहसा तोयमुल्बणम् ।
कर्षकस्याचरन्विघ्नं भगवान्पाकशासनः ।।१८।।

यही देखकर मैं शोकसे पीड़ित हो अत्यन्त दु:खी हो गयी हूँ और करुणामय हो दोनों नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई रो रही हूँ । इन्द्रने कहा– कल्याणि! तुम्हारे तो सहस्रों पुत्र इसी प्रकार पीड़ित हो रहे हैं, फिर तुमने एक ही पुत्रके मार खानेपर इतनी करुणा क्यों दिखायी । सुरभि बोली– देवेन्द्र! यदि मेरे सहस्रों पुत्र हैं, तो मैं उन सबके प्रति समान भाव ही रखती हूँ, परन्तु दीन–दु:खी पुत्रके प्रति अधिक दया उमड़ आती है । व्यासजी कहते हैं– कुरुराज! सुरभिकी यह बात सुनकर इन्द्र बड़े विस्मित हो गये । तबसे वे पुत्रको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानने लगे । उस समय वहाँ पाकशासन भगवान् इन्द्रने किसानके कार्यमें विघ्न डालते हुए सहसा भयंकर वर्षा कर दी ।।१४-१८।।

<u>दुर्योधनकी विशाल गोशाला (वनपर्व)</u>

वैशम्पायनऽउवाच

अथ दुर्योधनो राजा यत्र तत्र वने वसन् ।
जगाम घोषानमितस्तत्र चक्रे निवेशनम् ।।२४०/१।।
ददर्श स तदा गावः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अंकैर्लक्षैश्च ताः सर्वाः लक्षयामास पार्थिवः ।।४।।
अङ्कयामास वत्सांश्च जज्ञे चोपसृतांस्त्वपि ।
बालवत्साश्च या गावः कालयामास ताऽअपि ।।५।।
अथ स स्मारणं कृत्वा लक्षयित्वा त्रिहायनान् ।
वृतो गोपालकैः प्रीतो व्यहरत्कुरुनन्दनः ।।६।।

वैशम्पायनजीने कहा– जनमेजय! तदनन्तर राजा दुर्योधन जहाँ–तहाँ वनमें पड़ाव डालता हुआ उन गोशालाओंके पास पहुँच गया और वहाँ उसने अपनी छावनी डाली । (रहनेकी व्यवस्था ठीक हो जानेपर) राजा दुर्योधनने अपनी सैकड़ों एवं हजारों गौओंका निरीक्षण करना आरम्भ किया । उन सबपर संख्या और निशानी डलवा दी । फिर

बछड़ोंपर भी संख्या और निशानी डलवायी और उनमें से जो नाथने योग्य थे, उन सबकी गणना कराकर उनपर पहचान डाल दी । जिन गौओंके बछड़े बहुत छोटे थे, उनकी भी अलग गणना करवायी । इस प्रकार जाँच-पड़तालका काम पूरा करके कुरुनन्दन दुर्योधनने तीन सालके बछड़ोंकी पृथक् गणना करवायी और स्मरणकेलिये सब कुछ लिखकर वह बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्वालोंसे घिरकर उस वनमें विहार करने लगा ।।१-६।।

राजा ययातिकेद्वारा ब्राह्मणको सहस्र गोदान

मार्कण्डेयऽउवाच

इदं श्रूयतां ययातिर्नाहुषो राजा राज्यस्थः पौरजनावृतऽआसां चक्रे गुर्वर्थी
ब्राह्मणऽउपेत्याब्रवीद्भो राजन्!
गुर्वर्थं भिक्षेयं समयादिति ।।१।।

राजोवाच

ब्रवीतु भगवान् समयमिति ।।२।।

ब्राह्मणऽउवाच

विद्वेषणं परमं जीवलोके कुर्यान्नरः पार्थिव याच्यमानः ।
तं त्वां पृच्छामि कथं तु राजन् दद्याद्भवान्दयितं च मेऽद्य ।।३।।

राजोवाच

न चानुकीर्तयेदद्य दत्वा अयाच्यमर्थं न च संश्रृणोति ।
प्राप्यमर्थं च संश्रुत्य तं चापि दत्वा सुमुखी भवानि ।।४।।
ददामि ते रोहिणीनां सहस्रं प्रियो हि मे ब्राह्मणो याचमानः ।
न मे मनः कुप्यति याचमाने दत्तं न शोचामि कदाचिदर्थम् ।।५।।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणाय राजा गोसहस्रं ददौ ।
प्राप्तवाँश्च गवां सहस्रं ब्राह्मणऽइति ।।६।।

मार्कण्डेयजी कहते हैं- युधिष्ठिर! अब एक क्षत्रियनरेशका महत्त्व सुनो- नहुषके पुत्र राजा ययाति जब पुरवासी मनुष्योंसे घिरे हुए राजसिंहासनपर विराजमान थे, उन्हीं दिनोंकी बात है, एक ब्राह्मण गुरुदक्षिणा देनेकेलिये भिक्षा माँगनेकी इच्छासे उनके पास आकर बोला- राजन्! मैं गुरुदक्षिणा देनेकेलिये भिक्षा चाहता हूँ, किन्तु उसके साथ एक शर्त है । राजाने कहा- भगवन्! आप अपनी शर्त बताइये । ब्राह्मण बोला- भूपाल! इस संसारमें प्रायः देखा जाता है कि जब किसी मनुष्यसे कोई वस्तु माँगी जाती है, तब वह उस माँगनेवालेसे अत्यन्त द्वेष करने लगता है । अतः राजन्! मैं आपसे पूछता हूँ कि आज आप मुझे मेरी प्रियवस्तु कैसे दे सकते हैं? राजाने कहा- दान लेनेके अधिकारी ब्राह्मणदेव! मैं कोई वस्तु देकर उसकी बार-बार चर्चा नहीं करता

और यह प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मेरे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपके माँगनेके योग्य न हो । जो वस्तु प्राप्त हो सकती है उसे देनेकी प्रतिज्ञा कर लेनेपर मैं उसे देकर ही अधिक सुखी होता हूँ । मैं आपको लालरंगकी एकहजार गौएँ देता हूँ, क्योंकि न्याययुक्त याचना करनेवाला ब्राह्मण मुझे बहुत प्रिय है । मेरे मनमें याचकपर कभी क्रोध नहीं आता है और न मैं कभी दिये हुए धनकेलिये पश्चात्ताप ही करता हूँ ।

ऐसा कहकर राजाने ब्राह्मणको एकहजार गौएँ दे दीं और ब्राह्मणने उन सहस्रों गौओंको ग्रहण कर लिया ।।१-६।।

<u>महा. विराट्पर्व १०</u>

सहदेवका राजा विराट्की गौओंकी देखभालमें नियुक्त होना

वैशम्पायनऽउवाच

सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेषमनुत्तमम् ।
भाषां चैषां समास्थाय विराटमुपयादथ ।।१०/१।।
गोष्ठमासाद्य तिष्ठन्तं भवनस्य समीपतः ।
राजाऽथ दृष्ट्वा पुरुषान् प्राहिणोज्जातविस्मयः ।।२।।
कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा त्वं तु चिकीर्षसि ।
न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ ।।४।।
सन्ताप्य राजानममित्रतापनं ततोऽब्रवीन्मेघमहौघनिःस्वनः ।
वैश्योऽस्मि नाम्नाऽहमरिष्टनेमिर्गो संख्यऽआसं कुरुपुंगवानाम् ।।५।।
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः ।
तस्याष्टशतसाहस्रा गवां वर्गाः शतं शतम् ।।९।।
अपरे शतसाहस्रा द्विस्तावन्यस्तथा परे ।
तेषां गोसंख्यऽआसं वै तन्तिपालेति मां विदुः ।।१०।।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च यच्च संख्या गतं गवाम् ।
न मेऽस्त्यविदितं किञ्चित् समन्ताद्दशयोजनम् ।।११।।
गुणाः सुविदिता ह्यासन् मम तस्य महात्मनः ।
असकृत्स मया तुष्टः कुरुराजो युधिष्ठिरः।।१२।।
क्षिप्रं च गावो बहुला भवन्ति न तासु रोगो भवतीह कश्चन ।
तैस्तैरुपायैर्विदितं ममैतदेतानि शिल्पानि मयि स्थितानि ।।१३।।
ऋषभांश्चापि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् ।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ।।१४।।

वैशम्पायनजी कहते हैं- जनमेजय! सहदेवजी ग्वालोंका परमोत्तम वेष बनाकर उन्हींकी भाषामें बोलते हुए राजा विराट् के यहाँ गये । राजभवनके पास ही गोशाला थी, जहाँ पहुँचकर वे खड़े हो गये । राजा उन्हें दूरसे ही देखकर आश्चर्यमें पड़ गये और उनके पास कुछ लोगोंको भेजा । पुनः राजा विराट्ने स्वयं ही उसको पूछा- पुरुषप्रवर! तुम किसके पुत्र हो, कहाँ से आये हो और क्या करना चाहते हो? मैंने आजसे पहले तुम्हें कभी नहीं देखा है, अतः कृपया अपना सही परिचय दो । शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले राजा विराट्के निकट पहुँचकर सहदेव मेघोंकी घनघोर घटाके समान गम्भीर स्वरमें बोले- महाराज! मैं वैश्य हूँ, मेरा नाम अरिष्टनेमि है । नृपवर! मैं कुरुवंशशिरोमणि पाण्डवोंके यहाँ गौओंकी गणना तथा देखभाल करता हूँ । राजन्! पाँचों पाण्डवोंमें सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर हैं । उनके पास एक प्रकारकी गौओंके आठलाख झुण्ड थे और प्रत्येक झुण्डमें सौ-सौ गायें थीं । इनके सिवा दूसरे प्रकारकी गौओंके एकलाख झुण्ड तथा तीसरे प्रकारकी गौओंके उनसे दूने अर्थात् दोलाख झुण्ड थे । पाण्डवोंकी उन गौओंका मैं गणक और निरीक्षक था । वे लोग मुझे तन्तिपाल कहा करते थे । चारों ओर दसयोजनकी दूरीमें जितनी गौएँ हों, उनकी भूत, वर्तमान और भविष्यमें जितनी संख्या थी, है और होगी, उन सबको मैं जानता हूँ । गौओंके सम्बन्धमें तीनोंकालमें होनेवाली कोई ऐसी बात नहीं है, जो मुझे अज्ञात हो । महात्माराजा युधिष्ठिरको मेरे गुण भलीभाँति विदित थे । वे कुरुराज युधिष्ठिर सदा मेरे ऊपर सन्तुष्ट रहते थे । किन-किन उपायोंसे गौओंकी संख्या शीघ्र बढ़ जाती है और उनमें कोई रोग उत्पन्न नहीं होता, यह सब मुझे ज्ञात है ।

महाराज! ये ही कलायें मुझमें विद्यमान हैं । इनके सिवा मैं उन उत्तम लक्षणोंवाले बैलोंको भी जानता हूँ, जिनके मूत्रको सूँघ लेने मात्रसे वन्ध्या स्त्री भी गर्भधारण एवं सन्तान उत्पन्न करनेयोग्य हो जाती है ।।**१-१४**।।

विराट् उवाच

शतं सहस्राणि समाहितानि सवर्णवर्णस्य विमिश्रितान् गुणैः ।
पशून्सपालान्भवते ददाम्यहं त्वदाश्रया मे पशवो भवन्त्विह ।।१५।।

राजा विराट्ने कहा- तन्तिपाल! मेरे यहाँ एकलाख पशु संग्रहित हैं । उनमेंसे कुछ तो एक ही रंगके हैं और कुछ मिश्रित रंगके । वे सब विभिन्न गुणोंसे संयुक्त हैं, मैं उन पशुओं और पशुपालोंको आजसे तुम्हारे हाथ में सौंपता हूँ । मेरे पशु अबसे तुम्हारे ही अधीन रहेंगे ।।**१५**।।

।। अध्याय समाप्त ।।

विराट्की गौओंका अपहरण और अर्जुनको ले आना

वैशम्पायनऽउवाच

याते त्रिगर्तान्मत्स्ये तु पशूंस्तान्वै परीप्सति ।
दुर्योधनः सहामात्यो विराटमुपयादथ ॥३५/१॥
षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति च ।
महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः ॥३५/५॥
गोपाध्यक्षो भयत्रस्तो रथमास्थाय सत्वरः ।
जगाम नगरायैव परिक्रोशंस्तदार्त्तवत् ॥३५/७॥
दृष्ट्वा भूमिञ्जयं नाम पुत्रं मत्स्यस्य मानिनम् ।
तस्मै तत्सर्वमाचष्ट राष्ट्रस्य पशुकर्षणम् ॥३५/८॥
षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते ।
तद्विजेतुं समुत्तिष्ठ गोधनं राष्ट्रवर्धनम् ॥३५/९॥

वैशम्पायनजी कहते हैं- जनमेजय! जिस समय अपने पशुओंको छुड़ा लानेकी इच्छासे राजा विराट् त्रिगर्तोंसे युद्ध करनेकेलिये गये, उसी समय दुर्योधनने अपने मन्त्रियोंके साथ विराट्देशपर चढ़ाई की । वे कौरववीर राजा विराट्की साठहजार गौओंको विशाल रथसमूहोंद्वारा चारों ओरसे घेरकर हाँक ले चले । तब उन गौओंका रक्षक भयभीत हो तुरन्त ही रथपर बैठकर आर्त्तकी भाँति विलाप करता हुआ राजधानीकी ओर चल दिया । वहाँ मत्स्यराजके मानी पुत्र भूमिञ्जय(उत्तर)से मिलकर उस गोपने उनसे राज्यके पशुओंके अपहरणका सब समाचार बताते हुए कहा- राजकुमार! आप इस राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाले हैं, आज कौरव आपकी साठहजार गौओंको हाँक ले जा रहे हैं, उनके हाथसे उस गोदानको जीत लानेकेलिये उठ खड़े होइये ।

स राजधान्या निर्याय वैराटिरकुतोभयः ।
प्रयाहीत्यब्रवीत् सूतं यत्र ते कुरवो गताः ॥३८/१॥

जनमेजय! राजधानीसे निकलकर विराट्कुमार उत्तरने सर्वथा निर्भय हो सारथिसे कहा- बृहन्नले! जहाँ कौरव गये हैं, उधर ही रथ ले चलो ।

नातिदूरमथो गत्वा मत्स्यपुत्रधनञ्जयौ ।
अवेक्षेताममित्रघ्नौ कुरूणां बलिनां बलम् ॥३८/४॥
तदनीकं महद्दृष्ट्वा गजाश्वरथसंकुलम् ।
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत् ॥९॥
दृष्ट्वैव हि कुरूनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः ।

हृषितानि च रोमाणि कश्मलं चागतं मम ॥१५॥

बृहन्नलोवाच-

नैष शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम् ।
श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम् ॥२९॥

वैशम्पायन उवाच-

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयः सोऽवप्लुप्य रथोत्तमात् ।
तमन्वधावद्धावन्तं राजपुत्रं धनञ्जयः ॥३०॥
दीर्घा वेणीं विधुन्वानः साधु रक्ते च वाससी ।
विधूय वेणीं धावन्तमजानन्तोऽर्जुनं तदा ॥३१॥
सैनिकाः प्राहसन् केचित्तथा रूपमवेक्ष्य तम् ।
तं शीघ्रमभिधावन्तं सम्प्रेक्ष्य कुरवोऽब्रुवन् ॥३२॥

थोड़ी ही दूर जानेपर शत्रुहन्ता विराट्पुत्र उत्तर और धनञ्जयने महाबली कौरवोंकी विशाल सेना देखी । हाथी, घोड़े, और (विशाल योद्धाओंसे युक्त) रथसहित उस भारी सेनाको देखकर विराट्पुत्र उत्तरके रोंगटे खड़े हो गये और भयसे व्याकुल होकर अर्जुनसे कहा- सेनाकी व्यूहरचना करके प्रहारकेलिये उद्यत खड़े हुए इन कौरवोंको देखकर ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं । मुझे मूर्च्छा सी आ रही है । तब बृहन्नला(सारथि)ने कहा- राजकुमार! क्षत्रियका युद्धसे भागना शूरवीरोंकी दृष्टिमें धर्म नहीं है । युद्ध करके मर जाना अच्छा है, किन्तु भयभीत होकर भागना कदापि उचित नहीं है । वैशम्पायनजी कहते हैं- राजन्! ऐसा कहकर कुन्तीनन्दन धनञ्जय भी उसी उत्तम रथसे कूद पड़े और भागते हुए राजकुमारको पकड़नेकेलिये अपनी लम्बी चोटी हिलाते हुए लाल रंगकी साड़ी एवं दुपट्टेको फहराते हुए उसके पीछे दौड़े । उस समय चोटी हिला-हिलाकर दौड़ते हुए अर्जुनको उस रूपमें देखकर उन्हें न जाननेवाले कुछ सैनिक ठहाका मारकर हँसने लगे । उन्हें शीघ्रगतिसे दौड़ते देख कौरव आपसमें कहने लगे ।

नदीज लंकेशवनारिकेतुर्नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः ।
एषोऽगनावेषधरः किरीटी जित्वाव यं नेष्यति चाद्य गावः ॥३९/१०॥

गंगानन्दन! जिनकी ध्वजापर हनुमान्जी विराजमान होते हैं; एक वृक्षका नाम (अर्जुन) ही जिनका नाम है और जो इन्द्रके पुत्र हैं, वे किरीटधारी धनञ्जय ही नारीका वेश धारण किये यहाँ आ रहे हैं । ये जिसको जीतकर आज हमारी इन गौओंको लौटा ले जायेंगे । उस दुर्योधनकी रक्षा कीजिये ।

ततः स पार्थं वैराटिरभ्यवादयदन्तिकात् ।

अहं भूमि×जयो नाम नाम्नाऽहमपि चोत्तरः ।।४४/२३।।
आस्थाय रुचिरं वीर रथं सारथिनां मया ।
कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ।।४५/१।।

अर्जुन उवाच-

स्वस्थो भव महाबाहो पश्य मां शत्रुभिः सह ।
युध्यमानं विमर्देऽस्मिन् कुर्वाणं भैरवं महत् ।।४५/३।।

वैशम्पायन उवाच-

ततो विमुच्य बाहुभ्यां वलयानि स वीर्यवान् ।
चित्रे का×चनसंनाहे प्रत्यमु×चत्तदा तले ।।४५/२५।।
अभिदध्यौ महाबाहुः सर्वास्त्राणि रथोत्तमे ।।४५/२६।।
ऊचुश्च पार्थं सर्वाणि प्रा×जलीनि नृपात्मजम् ।
इमे स्म परमोदाराः किंकरा पाण्डुनन्दन ।।४५/२७।।
प्रणिपत्य ततः पार्थः समालभ्य च पाणिना ।
सर्वाणि मानसानीह भवतेतभ्यभाषत ।।४५/२८।।
अर्जुनशंखशब्देन रथनेमिस्स्वनेन च ।
गाण्डीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत ।।५३/२४।।
अमानुषाणां भूतानां तेषां च ध्वजवासिनाम् ।
ऊर्ध्वं पुच्छान् विधुन्वाना रेभमाणाः समन्ततः ।
गावः प्रतिन्यवर्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम् ।।५३/२५।।

जनमेजय! तदनन्तर विराट्पुत्र उत्तरने निकट जाकर अर्जुनके चरणोंमें प्रणाम किया और बोला- मेरा नाम भूमि×जय तथा उत्तर भी है । वीरवर! आप सुन्दर रथपर आरूढ़ हों । मुझ सारथिके साथ किस सेनाकी ओर चलेंगे, आपकी आज्ञासे वहीं चलूँगा । अर्जुनने कहा- महाबाहो! तुम स्वस्थचित्त (निश्चिन्त) हो जाओ और इस संग्राममें मुझे शत्रुओंके साथ युद्ध तथा अत्यन्त भयंकर पराक्रम करते देखो । वैशम्पायनजीने कहा- जनमेजय! तदनन्तर पराक्रमी अर्जुनने हाथोंसे कड़े और चूड़ियाँ उतार दीं और हथेलियोंमें सोनेके बने हुए विचित्र कवच धारण कर लिये । महाबाहु अर्जुनने उस श्रेष्ठ रथपर सम्पूर्ण अस्त्रोंका ध्यान किया । तब वे सब अस्त्र प्रकट होकर राजकुमार अर्जुनसे हाथ जोड़कर बोले- पाण्डुनन्दन! ये हम लोग तुम्हारे परम उदार किंकर हैं । तब अर्जुनने उन्हें प्रणाम करके अपने हाथसे उनका स्पर्श किया और कहा- आप सभी मेरे मनमें निवास करें । अर्जुनके शंखनाद, रथचक्रकी घर्घराहट, गाण्डीव धनुषकी टंकार तथा ध्वजमें निवास करनेवाले मानवेतर भूतोंके भयंकर कोलाहलसे पृथ्वी काँप उठी तथा गौएँ ऊपरको पूँछ उठाकर हिलाती और रँभाती हुई

सब ओरसे लौट पड़ी और दक्षिण दिशाकी ओर भाग (विराट्की राजधानी अपनी गोशालामें) गयीं ।२४-२५

॥ अध्याय समाप्त ॥

<u>महा.उद्यो.१०२</u>

सुरभिकी उत्पत्ति

नारद उवाच-

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम् ।
यत्रास्ते सुरभिर्माता गवाममृतसम्भवा ॥१॥
क्षरन्ती सततं क्षीरं पृथिवीसारसम्भवम् ।
षण्णां रसानां सारेण रसमेकमनुत्तमम् ॥२॥
अमृतेनाभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा ।
पितामहस्य वदनादुदतिष्ठदनिन्दिता ॥३॥
यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले ।
ह्रदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुच्यते ॥४॥
पुष्पितस्येव फेनेन पर्यन्तमनुवेष्टितम् ।
पिबन्तो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः ॥५॥
फेनपा नाम ते ख्याताः फेनाहाराश्च मातले ।
उग्रे तपसि वर्तन्ते येषां बिभ्यति देवताः ॥६॥
अस्याश्चतस्रो धेन्वोऽन्या दिक्षु सर्वासु मातले ।
निवसन्ति दिशां पाल्यो धारयन्त्यो दिशः स्म ताः ॥७॥

नारदजी बोले– मातले! यह पृथिवीका सातवाँ तल है, जिसका नाम रसातल है । यहाँ अमृतसे उत्पन्न हुई गोमाता सुरभि निवास करती हैं । ये सुरभि पृथिवीके सारतत्त्व से प्रकट छह रसोंके सारभागसे संयुक्त एवं सर्वोत्तम अनिर्वचनीय एकरसरूप क्षीरको सदा अपने स्तनोंसे प्रवाहित करती रहती हैं । पूर्वकालमें जब ब्रह्मा अमृतपान करके तृप्त हो उसका सारभाग अपने मुखसे निकाल रहे थे उसी समय उनके मुखसे अनिन्दिता सुरभिका प्रादुर्भाव हुआ था । पृथिवीपर निरन्तर गिरती हुई उस सुरभिकी क्षीरधारासे एक अनन्त (बिना अन्तवाला) ह्रद बन गया, जिसे क्षीरसागर कहते हैं, वह परम पवित्र है । क्षीरसागरसे जो फेन उत्पन्न होता है वह पुष्पके समान जान पड़ता है । वह फेन क्षीरसमुद्रके तटपर फैला रहता है, जिसे पीते हुए फेनप संज्ञक बहुतसे मुनिश्रेष्ठ इस रसातलमें निवास करते हैं । मातले! फेनका आहार करनेके कारण वे महर्षिगण फेनप नामसे विख्यात हैं, वे बड़ी कठोर तपस्यामें संलग्न रहते हैं । उनसे

देवतालोग भी डरते हैं । मातले! सुरभिकी पुत्री स्वरूपा चार अन्य धेनुएँ हैं, जो सब दिशाओंमें निवास करती हैं । वे दिशाओंका धारण-पोषण करनेवाली हैं ।

पूर्वां दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी ।
दक्षिणां हंसिका नाम धारयत्यपरां दिशम् ।।८।।
पश्चिमा वारुणी दिक्च धार्यते वै सुभद्रया ।
महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया ।।९।।
सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम् ।
उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंश्रिताम् ।।१०।।

सुरूपा नामवाली धेनु पूर्वदिशाको धारण करती है तथा उससे भिन्न दक्षिणदिशाको हंसिका नामवाली धेनु धारण-पोषण करती है । मातले! महाप्रभावशालिनी विश्वरूपा सुभद्रा नामवाली सुरभिकन्याके द्वारा वरुणदेवकी पश्चिम दिशा धारण की जाती है । चौथी धेनुका नाम सर्वकामदुघा है । मातले! वह धर्मयुक्त कुबेर-सम्बन्धिनी उत्तरदिशाका धारण-पोषण करती है ।

आसां त पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः ।।११।।
उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतं चापि मातले ।
उच्चैश्श्रवाश्चाश्वराजो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ।।१२।।
सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम् ।
अमृतं चामृताशेषु सुरभी क्षरते पयः ।।१३।।
अत्र गाथा पुरा गीता रसातलनिवासिभिः ।
पौराणी श्रूयते लोके गीयते या मनीषिभिः ।।१४।।
न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे ।
परिवासः सुखस्तादृग् रसातलतले यथा ।।१५।।

देवसारथे! देवताओंने असुरोंसे मिलकर मन्दराचलको मथानी बनाकर इन्हीं धेनुओंके दूधसे मिश्रित क्षीरसागरकी दुग्धराशिका मन्थन किया और उससे वारुणी, लक्ष्मी एवं अमृतको प्रकट किया । तत्पश्चात् उस समुद्र-मन्थनसे अश्वराज उच्चैःश्रवा तथा मणिरत्न कौस्तुभका भी प्रादुर्भाव हुआ था । सुरभि अपने स्तनोंसे जो दूध बहाती हैं, वह सुधाभोजी लोगोंकेलिये सुधा, स्वधाभोजी पितरोंकेलिये स्वधा तथा अमृतभोजी देवताओंकेलिये अमृतरूप हैं । यहाँ रसातल निवासियोंने पूर्वकालमें जो पुरातन गाथा गायी थी, वह अब भी लोकमें सुनी जाती है और मनीषि-पुरुष उसका गान करते हैं ।

वह गाथा इस प्रकार है- नागलोक, स्वर्गलोक तथा स्वर्गीय विमानमें निवास करना भी वैसा सुखदायक नहीं होता, जैसा रसातलमें रहनेसे सुख प्राप्त होता है ।

।। अध्याय समाप्त ।।

यात्रा में मांगलिक

वृषभं पृष्ठमालभ्य ब्राह्मणानभिवाद्य च ।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन् कल्याणमग्रतः ।। उद्योगपर्व ८३/१०।।

वृषभपृष्ठका स्पर्श कर, ब्राह्मणोंका अभिवादन कर, अग्निकी प्रदक्षिणा कर और सम्मुख भागमें भद्रवस्तुओंको देख कर यात्रा करें ।

कृष्ण उवाच

वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत ।
नैघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम् ।।३४२।।८८।।

भरतनन्दन! भगवान् धर्म सम्पूर्ण लोकों में वृष के नाम से विख्यात हैं । वैदिक शब्दार्थबोधक कोश में वृष का अर्थ धर्म बताया गया है, अतः उत्तम धर्मस्वरूप मुझ वासुदेव को 'वृष' समझो ।

महा. आदि. २११-२१२

अर्जुन के द्वारा ब्राह्मण के गोधन की रक्षा के लिये नियमभंग और वन की ओर प्रस्थान

पाण्डव और निष्पापा द्रौपदी

नारद उवाच

एतद्ब्रवीमि वः स्नेहात्सर्वान् भरतसत्तमाः।।२११।२६।।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्सर्वेषां द्रौपदीकृते ।
तथा कुरुत भद्रं वो मम चेत्प्रियमिच्छथ ।।२७।।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता महात्मानो नारदेन महर्षिणा ।
समयं चक्रिरे राजंस्तेऽन्योन्यवशमागताः ।।२८।।
समक्षं तस्य देवर्षेर्नारदस्यामितौजसः ।।
एकैकस्य गृहे कृष्णा वसेद्वर्षमकल्मषा ।।२९।।
द्रौपद्या नः सहासीनानन्योन्यं योऽभिदर्शयेत् ।
स नो द्वादश मासानि ब्रह्मचारी वने वसेत् ।३०।।
एवं ते समयं कृत्वा न्यवसंस्तत्र पाण्डवाः ।
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीक्षितः ।।२१२।१।।
तेषां मनुजसिंहानां पञ्चानाममितौजसाम् ।
बभूव कृष्णा सर्वेषां पार्थानां वशवर्तिनी ।।२।।
वर्तमानेषु धर्मेण पाण्डवेषु महात्मसु ।
व्यवर्धन् कुरवः सर्वे हीनदोषाः सुखान्विता ।।४।।

नारदजी ने कहा- हे भरतवंशशिरोमणियो! मैं तुम सब लोगों से स्नेहवश कहता है कि यदि मेरा प्रिय चाहते हो, तो ऐसा कुछ नियम बना लो, जिससे द्रौपदी के लिये तुम लोगों में फूट न होने पावे । तुम्हारा कल्याण हो । वैशम्पायनजी कहते हैं- जनमेजय! देवर्षि नारद के ऐसा कहने पर एक-दूसरे के अधीन रहनेवाले उन अमिततेजस्वी महात्मा पाण्डवों ने देवर्षि के सामने ही ऐसा नियम बनाया कि- हममें से प्रत्येक के घर में पापरहित द्रौपदी एक-एक वर्ष निवास करे । द्रौपदी के साथ एकान्त में बैठे हुए हममें से एक भाई को यदि दूसरा देख ले, तो वह बारह वर्षों तक ब्रह्मचर्यपूर्वक वन में निवास करे । इस प्रकार नियम बनाकर पाण्डवलोग वहाँ रहने लगे । वे अपने अस्त्र-शस्त्रों के प्रताप से दूसरे राजाओं को अधीन करते रहते थे । कृष्णा मनुष्यों में सिंह के समान वीर और अमित तेजस्वी उन पाँचों पाण्डवों की आज्ञा के अधीन रहती थी । महात्मा पाण्डवों के धर्मानुसार बर्ताव करने के कारण समस्त कुरुवंशी निर्दोष एवं सुखी बनकर निरन्तर उन्नति करने लगे ।

अथ दीर्घेन कालेन ब्राह्मणस्य विशाम्पते ।
कस्यचित्तस्करा जह्रुः केचिद् गा नृपसत्तम ।।५।।

महाराज! तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् एक दिन कुछ चोरों ने किसी ब्राह्मण की गौएँ चुरा ली ।

द्रौपदी के पाँच पति या एक, इस रहस्य को प्रकट करना है- पाँच नहीं एक ।

द्रौपदी एक ही पति की पत्नी थी- स्वकृतपद्यानि
पाण्डवाः पंच चैकस्य रूपाणीन्द्रस्य तद्विदुः ।
वह्निजायाश्च द्रौपद्याः पतित्वेन प्रकल्पिताः ।।१।।
अग्निकुण्डसमुद्भूता द्रौपदीन्द्रप्रिया शची ।
तस्मान्नान्यः पतिस्तस्या इन्द्रः पंचात्मको ध्रुवम् ।।२।।
पुरा वृत्तप्रभावेण द्वापरे पाण्डवप्रिया ।
दैवयोगप्रमादेन कुन्त्याऽऽदिष्टाः सुतास्तथाः ।।३।।
भुंक्त भिक्षां सुताः पंच वाक्यं चातिरहस्यकम् ।
देवतायोगयुक्तानां चरित्रं परमाद्भुतम् ।।४।।
दोषोऽत्र नानुसन्धेयो नाचरेत्तादृशं नरः ।
विधिवाक्यविधानेन कर्म कुर्वन्न दोषभाक् ।।५।।

अर्थ- यह सिद्ध है, युधिष्ठिरादि पाण्डव एक ही इन्द्र के पाँच रूप थे । अग्नि से उत्पन्न द्रौपदी के एक ही इन्द्र पाँच पाण्डवों के रूप में उनके पति हुए ।।1।। अग्निकुण्ड से समुद्भूत द्रौपदी इन्द्र की पत्नी शची थी, इसलिये द्रौपदीरूपा उस पतिव्रता शची का पति कोई अन्य नहीं हो सकता है । पाण्डव इन्द्र के ही पंचात्मक

स्वरूप थे, यह निश्चित है (महाभारत का पञ्चेन्द्रोपाख्यान देखें) ।।2।। पुराकालिक प्रसंग के प्रभाव से द्वापर में कुन्ती ने अपने पुत्रों को दैवयोग से ही ऐसी प्रमादपूर्ण आज्ञा दी और द्रौपदी पाण्डवप्रिया हुई ।।3।। कुन्ती ने कहा 'भुंक्त सर्वे' सब भाई मिलकर उस भिक्षा का उपयोग करो (यद्यपि पाणिनि के अनुसार भुज् धातु का परस्मैपद में पालन या रक्षण ही अर्थ होता है, देखें- 'भुजोऽनवने' का भाष्य, तथापि पाणिनि से पूर्व व्यास के प्रयोग में उपग्रह के अनुसार इसका अर्थ उपभोग किया जा जा सकता है । कुन्ती का यह वाक्य अत्यन्त रहस्यपूर्ण है । देवताओं और योगियों का चरित्र परम अद्भुत हुआ करता है ।।4।। मनुष्यों के द्वारा यहाँ दोष का अनुसन्धान नहीं करना चाहिये और न तो कोई मनुष्य ऐसा आचरण ही करे । धर्मशास्त्रीय विधिवाक्य रूपी संविधान के अनुसार ही कर्म करते हुए मनुष्य दोष का भागी नहीं होता है ।।5।।

इति

<u>अर्जुन के द्वारा ब्राह्मण के गोधन की रक्षा और वनवास</u>

ह्रियमाणे धने तस्मिन् ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः ।
आगत्य खाण्डवप्रस्थमुदक्रोशत् सपाण्डवान् ॥२१२/६॥
ह्रियते गोधनं क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
प्रसह्य चास्मद्विषयादभ्यधावत पाण्डवाः ॥७॥
अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रं पापचारिणम् ॥९॥
ब्राह्मणस्वे हृते चौरैर्धर्मार्थे च विलोपिते ।
रोरूयमाणे च मयि क्रियतामस्त्रधारणम् ॥१०॥

वैशम्पायन उवाच

रोरूयमाणस्याभ्याशे भृशं विप्रस्य पाण्डवः ।
तानि वाक्यानि सुश्राव कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥११॥
श्रुत्वैव च महाबाहुर्मा भैरित्याह तं द्विजम् ।
आयुधानि च यत्रासं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥१२॥
कृष्णया सह तत्रास्ते धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
सम्प्रवेशाय चाशक्तो गमनाय च पाण्डवः ॥१३॥
तस्य चार्तस्य तैर्वाक्यैश्चोद्यमानः पुनः पुनः ।
आक्रन्दे तत्र कौन्तेयश्चिन्तयामास दुःखितः ॥१४॥
ह्रियमाणे धने तस्मिन् ब्राह्मणस्य तपस्विनः ।
अश्रुप्रमार्जनं तस्य कर्तव्यमिति निश्चयः ॥१५॥

अपने गोधन का अपहरण होता देख ब्राह्मण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और खाण्डवप्रस्थ में आकर उसने उच्चस्वर से पाण्डवों को पुकारा- पाण्डवो ! हमारे गाँव से कुछ नीच, क्रूर और पापात्मा चोर जबरदस्ती गोधन चुराकर लिये जा रहे हैं, उसकी रक्षा के लिये दौड़ो । जो राजा प्रजा की आय का छठा भाग कर के रूप में लेता है, किन्तु प्रजारक्षणार्थ कोई व्यवस्था नहीं करता, उसे सम्पूर्ण लोकों में पूर्ण पापाचारी कहा गया है । मुझ ब्राह्मण का धन चोर लिये जा रहे हैं, मेरे गौ के न रहने पर दुग्ध आदि हविष्य के अभाव से धर्म और अर्थ का लोप हो रहा है तथा मैं यहाँ आकर रो रहा हूँ । पाण्डवो ! (चोरों को दण्ड देने के लिये) अस्त्र धारण करो । वैशम्पायनजी कहते हैं- जनमेजय ! वह ब्राह्मण निकट आकर बहुत रो रहा था । पाण्डुपुत्र कुन्तीनन्दन धनञ्जय ने उसकी कही हुई सारी बातें सुनी और सुनकर उन महाबाहु ने उस ब्राह्मण से कहा- डरो मत, महात्मा पाण्डवों के अस्त्र-शस्त्र जहाँ रखे गये थे वहीं धर्मराज युधिष्ठिर कृष्ण के साथ एकान्त में बैठे थे । अतः पाण्डुपुत्र अर्जुन न तो घर के भीतर प्रवेश कर सकते थे और न खाली हाथ चोरों का ही पीछा कर सकते थे । इधर उस आर्त ब्राह्मण की बातें बार-बार शस्त्र ले आने को प्रेरित कर रही थीं । जब वह अधिक रोने-चिल्लाने लगा, तब अर्जुन ने दुःखी होकर सोचा । इस तपस्वी ब्राह्मण के गोधन का अपहरण हो रहा है, अतः ऐसे समय में इसके आँसू पोंछना मेरा कर्तव्य है । यहीं मेरा निश्चय है ।

उपक्षेपणजोऽधर्मः सुमहान् स्यान्महीपतेः ।
यद्यस्य रुदतो द्वारि न करोम्यद्यरक्षणम् ।।२१२/१६।।
अनास्तिक्यं च सर्वेषामस्माकमपि रक्षणे ।
प्रतितिष्ठेत लोकेऽस्मिन्नधर्मश्चैव नो भवेत् ।।१७।।
अनादृत्य तु राजानं गते मयि न संशयः ।
अजातशत्रोर्नृपतेर्मम चैवानृतं भवेत् ।।१८।।
अनुप्रवेशे राज्ञस्तु वनवासो भवेन्मम ।
सर्वमन्यत् परिहृतं धर्षणात्तु महीपतेः ।।१९।।
अधर्मो वै महानस्तु वने वा मरणं मम ।
शरीरस्य विनाशेन धर्म एव विशिष्यते ।।२०।।
एवं विनिश्चित्य ततः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अनुप्रविश्य राजानमापृच्छ्य च विशाम्पते ।।२१।।
धनुरादाय संहृष्टो ब्राह्मणं प्रत्यभाषत ।
ब्राह्मणागम्यतां शीघ्रं यावत्परधनैषिणः ।।२२।।
न दूरे ते गताश्क्षुद्रास्तावद्गच्छावहे सह ।

यावन्निवर्तयाम्यद्य चौरहस्ताद्धनं तव ।।२३।।
सोऽनुसृत्य महाबाहुर्धन्वी वर्मी रथी ध्वजी ।
शरैर्विध्वस्य तांश्चौरानवजित्य च तद्धनम् ।।२४।।

यदि मैं राजद्वार पर रोते हुए इस ब्राह्मण की रक्षा आज नहीं करूँगा, तो महाराज युधिष्ठिर को उपेक्षाजनित महान् अधर्म का भागी होना पड़ेगा । इसके सिवा लोक में यह बात फैल जायगी कि हम सबलोग किसी आर्त की रक्षारूप धर्म के पालन में श्रद्धा नहीं रखते । साथ ही हमें अधर्म भी प्राप्त होगा । यदि राजा का अनादर करके मैं घर के भीतर चला जाऊँ तो महाराज अजातशत्रु के प्रति मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या होगी । राजा की उपस्थिति में घर के अन्दर प्रवेश करने पर मुझको वन में निवास करना होगा । इसमें महाराज के तिरस्कार के सिवा और सारी बातें तुच्छ होने के कारण उपेक्षणीय हैं । चाहे राजा के तिरस्कार से मुझे नियम भंग का महान् दोष प्राप्त हो अथवा वन में ही मेरी मृत्यु हो जाय तथापि शरीर को नष्ट करके भी गौ–ब्राह्मणरक्षारूप धर्म का पालन ही श्रेष्ठ है । जनमेजय! ऐसा निश्चय कर कुन्तीकुमार धनञ्जय ने राजा से पूछकर घर के भीतर प्रवेश करके धनुष ले लिया और बाहर आकर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मण से कहा– विप्रवर! शीघ्र आइये । जब तक दूसरों के धन हड़पने की इच्छावाले वे क्षुद्र चोर दूर नहीं चले जाते, तभी तक हम दोनों एक साथ वहाँ पहुँच जायँ । मैं अभी आपका गोधन चोरों के हाथ से छीनकर आपको लौटा देता हूँ । ऐसा कहकर महाबाहु अर्जुन ने धनुष और कवच धारण करके ध्वजयुक्त रथ पर आरूढ़ हो उन चोरों का पीछा किया और बाणों से चोरां का विनाश करके सारा गोधन जीत लिया ।

ब्राह्मणं समुपाकृत्य यशः प्राप्य च पाण्डवः ।
ततस्तद्गोधनं पार्थो दत्वा तस्मै द्विजातये ।।२१२।२५।।
आजगाम पुरं वीरः सव्यसाची धनञ्जयः ।
सोऽभिवाद्य गुरून्सर्वान् सर्वैश्चाप्यभिनन्दितः ।।२६।।
धर्मराजमुवाचेदं व्रतमादिश मे प्रभो ।
समयः समतिक्रान्तो भवत्सन्दर्शने मया ।।२७।।
वनवासो गमिष्यामि समयो ह्येष नः कृतः ।
इत्युक्तो धर्मराजस्तु सहसा वाक्यमप्रियम् ।।२८।।
कथमित्यब्रवीद्वाचा शोकार्तः सज्जमानया ।
युधिष्ठिरो गुडाकेशं भ्राता भ्रातरमच्युत्तम् ।।२९।।
उवाच दीनो राजा च धनञ्जयमिदं वचः ।

प्रमाणमस्मि यदि ते मत्तः श्रणु वचोऽनघ ।।३०।।
अनुप्रवेशे यद्वीरं कृतवांस्त्वं मम प्रियम् ।
सर्वं तदनुजानामि व्यलीकं न च मे हृदि ।।३१।।
गुरोरनुप्रवेशे हि नोपघातो यवीयसः ।
यवीयसोऽनुप्रवेशो ज्येष्ठस्य विधिलोपकः ।।३२।।
निवर्तस्व महाबाहो कुरुष्व वचनं मम ।
न हि ते धर्मलोपोऽस्ति न च ते धर्षणा कृता ।।३३।।

फिर ब्राह्मण को वह सारा गोधन देकर प्रसन्न करके अनुपम यश के भागी हो पाण्डुपुत्र सव्यसाची वीर धनञ्जय पुनः अपने नगर में लौट आये । वहाँ आकर उन्होंने समस्त गुरुजनों को प्रणाम किया और उन सभी गुरुजनों ने उनकी बड़ी प्रशंसा एवं अभिनन्दन किया । इसके बाद अर्जुन ने धर्मराज से कहा- प्रभो! मैंने आपको द्रौपदी के साथ देखकर पहले के निश्चित नियम को भंग किया है; अतः आप इसके लिये मुझे प्रायश्चित्त करने की आज्ञा दीजिये । मैं वनवास के लिये जाऊँगा, क्योंकि हमलोगों में यह निश्चय हो चुका है । अर्जुन के मुख से सहसा यह अप्रिय वचन सुनकर धर्मराज शोकातुर होकर लड़खड़ाती हुई वाणी में बोले- ऐसा क्यों करते हो? इसके बाद राजा युधिष्ठिर धर्ममर्यादा से कभी च्युत न होनेवाले अपने भाई गुडाकेश धनञ्जय से फिर दीन होकर बोले- अनघ! यदि तुम मुझको प्रमाण मानते हो, तो मेरी यह बात सुनो । वीरवर! तुमने घर के भीतर प्रवेश करके तो मेरा प्रिय कार्य किया है, अतः उसके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ; क्योंकि मेरे हृदय में वह अप्रिय नहीं है । यदि बड़ा भाई घर में स्त्री के साथ बैठा हो, तो छोटे भाई का वहाँ जाना दोष की बात नहीं है; परन्तु छोटा भाई घर में हो, तो बड़े भाई का वहाँ जाना उसके धर्म का नाश करनेवाला है । अतः महस्रबाहो! मेरी बात मानो; वनवास का विचार छोड़ दो । न तो तुम्हारे धर्म का लोप हुआ है और न तुम्हारे द्वारा मेरा तिरस्कार ही किया गया है ।

अर्जुन उवाच

न व्याजेन चरेद्धर्ममिति मे भवतः श्रुतम् ।
न सत्याद्विचलिष्यामि सत्येनायुधमालभे ।।३४।।
आज्ञा तु मम दातव्या भवता कीर्तिवर्धन ।
भवदाज्ञामृते किञ्चिन्न कार्यमिति निश्चितम् ।।३५।।

वैशम्पायन उवाच

सोऽभ्यनुज्ञाय राजानं वनचर्याय दीक्षितः ।
वने द्वादशवर्षाणि वासायानुजगाम ह ।।३६।।

अर्जुन बोले- प्रभो! मैंने आपके ही मुख से सुना है कि धर्माचरण में कभी बहानेबाजी नहीं करनी चाहिये । अतः मैं सत्य की शपथ खाकर और शस्त्र छूकर कहता हूँ कि सत्य से विचलित नहीं होऊँगा । यशोवर्धन! मुझे आप वनवास के लिये आज्ञा दें; मेरा यह निश्चय है कि मैं आप की आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं करूँगा । वैशम्पायनजी कहते हैं- जनमेजय! राजा की आज्ञा लेकर अर्जुन ने वनवास की दीक्षा ली और वन में बारह वर्षों तक रहने के लिये वे वहाँ से प्रस्थान कर गये ।

महा.आदिपर्व-गोस्वरूप

वसिष्ठ-विश्वामित्र के प्रकरण में नन्दिनी

सामात्यः सबलश्चैव तुतोष सभृशं तदा ।
षडुन्नतां सुपार्श्वोरूं पृथु पञ्च समावृताम् ।।१७४/१३।।
मण्डूकनेत्रां स्वाकारां पीनोधसमनिन्दिताम् ।
सुबालधिं शंकुकर्णां चारुश्रृंगां मनोरमाम् ।।१७४/१४।।
पुष्टायतशिरोग्रीवां विस्मितः सोऽभिवीक्ष्यताम् ।
अभिनन्द्य स तां राजा नन्दिनीं गाधिनन्दनः ।।१७४/१५।।
अब्रवीच्च भृशं तुष्टः स राजा तमृषिं तदा ।
अर्बुदेन गवां ब्रह्मन् मम राज्येन वा पुनः ।
नन्दिनीं सम्प्रयच्छस्व भुङ्क्ष्व राज्यं महामुने ।।१७४/१६।।

नन्दिनीस्वरूपवर्णन- विश्वामित्र अपनी सेना और मन्त्रियों के साथ अतिसन्तुष्ट हुए । महर्षि की धेनु के मस्तक, ग्रीवा, जाँघे, गलकम्बल, पूँछ और थन- ये छः अंग बड़े एवं विस्तृत थे । उसके पार्श्वभाग तथा ऊरू बड़े सुन्दर थे । वह पाँच पृथुल अंगों से सुशोभित थी । (गौओं के मस्तक आदि छः भागों का बड़ा एवं विस्तृत होना शुभ माना गया है, जैसा कि शास्त्र का वचन है- '**शिरो ग्रीवा सक्थिनी च सास्ना पुच्छमथ स्तनाः । शुभान्येतानि धेनूनामायतानि प्रचक्षते ।।**' गौओं के ललाट, दोनों नेत्र और दोनों कान ये पाँचों अंग पुष्ट एवं विस्तृत हों तो विद्वानों द्वारा अच्छे माने जाते हैं जैसा कि शास्त्र वचन है- **ललाटश्रवणौ चैव नयनं द्वितयं तथा । पृथून्येतानि शस्यन्ते धेनूनां पञ्चसूरिभिः ।।** उसकी आँखें मेढक जैसी थीं । आकृति बड़ी सुन्दर थी । चारों थन मोटे और फैले हुए थे । वह सर्वथा प्रशंसनीय थी । सुन्दर पूँछ, नुकीले कान और मनोहर सींगों के कारण वह बड़ी मनोरम जान पड़ती थी । उसके सिर और गर्दन विस्तृत एवं पुष्ट थे । उसका नाम नन्दिनी था । उसे देखकर विस्मित हुए गाधिनन्दन विश्वामित्र ने उसका अभिनन्दन किया और अतिसन्तुष्ट होकर राजा उस समय उन

महर्षि से कहा– ब्रह्मन्! आप दस करोड़ गाय अथवा मेरा सारा राज्य लेकर इस नन्दिनी को मुझे दे दो । महामुने! इसे देकर आप राज्यभोग करें ।

वसिष्ठ उवाच

क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम् ।
क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते ।।१७४।२९।।

पुन: नन्दिनीने–

असृजत् पह्लवान पुच्छात्प्रस्रवाद् द्रविडाञ्छकान् ।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृत: शबरान् बहून् ।।३६।।
मूत्रतश्चासृजत्कांश्चिच्छबराँश्चैव पार्श्वत: ।
पौण्ड्रान् किरातान् यवनान् सिंहलान् बर्वरान् खसान् ।।३७।।
चिबुकांश्च पुलिन्दांश्च चीनान् हूणान् सकेरलान् ।
ससर्ज फेनत: सा गौर्म्लेच्छान् बहुविधानपि ।।३८।।
बलाबलं विनिश्चित्य तप एव परं बलम् ।
स राज्यं स्फीतमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम् ।।४६।।
भोगांश्च पृष्ठत: कृत्वा तपस्येव मनो दधे ।
स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान् विष्टभ्य तेजसा ।।४७।।
तताप सर्वा दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ।
अपिबच्च तत: सोममिन्देण सह कौशिक: ।।४८।।

वसिष्ठजी ने कहा– भद्रे (नन्दिनि)! क्षत्रियों का बल उनका तेज है और ब्राह्मणों का बल उनकी क्षमा है । चूँकि मुझे क्षमा अपनाये हुए है । अत: तुम्हारी रुचि हो तो जा सकती हो । पुन: नन्दिनी ने अपने पूँछ से पह्लवों की सृष्टि की, थनों से द्रविड़ों और शकों को उत्पन्न किया । योनिदेश से यवनों और गोवर से बहुतेरे शबरों को जन्म दिया **।।३६।।** कितने ही शबर उसके मूत्र से प्रकट हुए । उसके पार्श्वभाग से पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर और खसों की सृष्टि हुई । इसी प्रकार उस गौ ने फेन से चिबुक, पुलिन्द, चीन, हूण, केरल आदि बहुत प्रकार के म्लेच्छों की सृष्टि की ।

तब विश्वामित्र ने परस्पर के बलाबल का निश्चय करके तपस्या को ही सर्वोत्तम बल निश्चित किया और अपने समृद्धिशाली राज्य तथा देदीप्यमान राज्यलक्ष्मी को छोड़कर, भोगों को पीछे करके तपस्या में ही मन लगाया । इस तपस्या से सिद्धि को प्राप्त हो उद्दीप्त तेजवाले विश्वामित्रजी ने अपने प्रभाव से सम्पूर्ण लोकों को स्तब्ध एवं सन्तप्त कर दिया और (अन्ततोगत्वा) ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया । फिर वे इन्द्र के साथ सोमपान करने लगे ।।४८।।

महा.द्रोण.

रन्तिदेवचरित में- निष्कलक्षण आदि

न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ।।६७।३।।
द्विजपाणिवियोगेन दु:खं मे शाश्वतं महत् ।
भविष्यति न सन्देह एवं राजा ददद्वसु ।।६७/७।।
सहस्रश्चैव सौवर्णान वृषभान् गोशतानुगान् ।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ।।६७।८।।
नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं न: किं पुनर्मनुजेष्विति ।
व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिता: ।।६७।१४।।
सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ।
आलभ्यन्त तदा गाव: सहस्राण्येकविंशति: ।।६७।१५।।

राजा रन्तिदेव ने ब्राह्मणों को न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धन का दान किया और चारों वेदों का अध्ययन करके धर्म के द्वारा समस्त शत्रुओं को अपने वश में कर लिया । ब्राह्मणों के हाथ का वियोग होने पर मुझे सदा महान् दु:ख होगा, इसमें सन्देह नहीं है । यह विचारकर राजा रन्तिदेव बहुत धन का दान करते थे । एक हजार सुवर्ण के बैल प्रत्येक के पीछे सौ-सौ गौएँ और एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ- उतने धन को निष्क कहते हैं । कुबेर के भवन में भी पहले कभी ऐसा (रन्तिदेव के समान) भरा-पूरा धन का भण्डार नहीं देखा गया है । फिर मनुष्यों के यहाँ तो हो ही कैसे सकता है । वास्तव में रन्तिदेव की समृद्धि का सारतत्त्व उनका सुवर्णमय राजभवन और स्वर्णराशि ही है । इस प्रकार विस्मित होकर लोग उनकी गाथा का गान करने लगे । संकृतिपुत्र रन्तिदेव के यहाँ जिस रात में अतिथियों का समुदाय निवास करता था, उस समय वहाँ इक्कीस हजार गौएँ स्पर्श कर दान की जाती थीं ।

नैषामुक्षा वहति नोतवाहा न गर्गरो मथ्यति सम्प्रदाने ।
अपध्वस्ता दस्युभूता भवन्ति येषां राष्ट्रे ब्राह्मणा वृत्तिहीना: ।। शा.३४२।१९।।
वेदपुराणेतिहासप्रामाण्यान्नारायणमुखोद्‌गता: ।
सर्वात्मान: सर्वकर्तार: सर्वभावाश्च ब्राह्मणाश्च ।। शा.३४२/२०।।

जिनके राज्य में ब्राह्मणों के लिये कोई आजीविका न हो, उन राजाओं की सवारी बैल और अश्व नहीं रहते, दूसरों को देने लिये उनके यहाँ दही, दूध मटके में नहीं मथे जाते हैं तथा वे अपनी मर्यादा से भ्रष्ट होकर लुटेरे हो जाते हैं । वेद, पुराण

और इतिहास के प्रमाण से यह सिद्ध है कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति भगवान् नारायण के मुख से हुई है, अतः वे ब्राह्मण सर्वात्मा, सर्वकर्ता और सर्वभावस्वरूप हैं ।

जाजलि को तुलाधार का आत्मयज्ञ विषयक धर्मोपदेश

सम्भाव्य चटाकन् मूर्ध्नि जाजलिर्जपतांवरः ।
आस्फोटयत्तथाऽऽकाशे धर्मः प्राप्तो मयेति वै ।।२६१।४१।।
अथान्तरिक्षे वागासीत् तां च शुश्राव जाजलिः ।
धर्मेण न समस्त्वं वै तुलाधारस्य जाजले ।।४२।।
वाराणस्या महाप्राज्ञस्तुलाधारः प्रतिष्ठतः ।
सोऽप्येवं नार्हते वक्तुं यथा त्वं भाषसे द्विज ।।४३।।
कालेन महताऽगच्छत् स तु वाराणसीं पुरीम् ।
विक्रीणन्तं च पण्यानि तुलाधारं ददर्श सः ।।४४।।

जाजलिरुवाच

विक्रीडतः सर्वरसान् सर्वगन्धांश्च वाणिज ।
वनस्पतीनोषधींश्च तेषां मूलफलानि च ।।२।।
अध्यगा नैष्ठिकीं बुद्धिं कुतस्त्वामिदमागतम् ।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं निखिलेन महामते ।।३।।

जाजलि को अपनी तपस्या का जब अत्यन्त अभिमान हो गया तो आकाशवाणी हुई कि- हे जाजले! अभी तुम्हारा ज्ञान काशीपुरीवासी तुलाधार वैश्य से अल्प है । तब जाजलि तुलाधार के पास गये और उनके मुख से धर्म की रहस्यपूर्ण बातें सुनकर कहा । जाजलि बोले- वैश्यपुत्र! तुम तो सब प्रकार के रस, गन्ध, वनस्पति, ओषधि, मूल और फल आदि बेचा करते हो । महामते! तुम्हें यह धर्म में निष्ठा रखनेवाली बुद्धि कहाँ से प्राप्त हुई? तुम्हें यह ज्ञान कैसे सुलभ हुआ? यह सब पूर्णरूप से मुझे बताओ ।

तुलाधार उवाच

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः ।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले ।।२३६।९।।
नानुरुद्ध्ये निरुद्ध्ये वा न द्वेष्मि न च कामये ।
समोऽहं सर्वभूतेषु पश्य मे जाजले व्रतम् ।
तुला मे सर्वभूतेषु समा तिष्ठति जाजले ।।१०।।
नाहं परेषां कृत्यानि प्रशंसामि न गर्हये ।
आकाशस्येव विपेन्द्र पश्यन् लोकस्य चित्रताम् ।।११।।
यथा वृद्धातुरकृशा निःस्पृहा विषयान् प्रति ।

तथाऽर्थकामभोगेषु ममापि विगता स्पृहा ।।१४।।
यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।१५।।
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पातकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।१६।।

तुलाधार वैश्य ने कहा– जाजले! जो सब जीवों का सुहृद् होता और मन, वाणी तथा क्रिया द्वारा सदा सबके हित में लगा रहता है वही वास्तव में धर्म को जानता है । मैं न किसी से अनुरोध करता हूँ, न विरोध ही करता हूँ और न कहीं मेरा द्वेष है, न किसी से कुछ कामना करता हूँ । समस्त प्राणियों के प्रति मेरा समभाव है । जाजले! यही मेरा व्रत और नियम है । इस पर दृष्टिपात करो । मुने! मेरी तराजू सब मनुष्यों के लिये बराबर तौलती है । विप्रवर! मैं आकाश की भाँति असंग रहकर जगत् के कार्यो की विचित्रता को देखता हुआ दूसरों के कार्यो की न तो प्रशंसा करता हूँ, न निन्दा ही **।।११।।** जैसे वृद्ध, रोगी और दुर्बल मनुष्य विषयभोगों की स्पृहा नहीं रखते, उसी प्रकार मेरे मन से भी धन और विषयभोगों की इच्छा दूर हो गयी है । जब यह पुरुष दूसरे से भयभीत नहीं होता, जब दूसरे प्राणी भी इससे भयभीत नहीं होते तथा जब यह न तो किसी की इच्छा रखता और न किसी से द्वेष ही करता है, तब ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है । जब समस्त प्राणियों के प्रति मन, वाणी और क्रिया द्वारा भी बुरे भाव नहीं होते हैं तब मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है **।।१६।।**

यथावद्वर्तमानानां वृद्धानां पुत्रपौत्रिणाम् ।
अनुवर्तामहे वृत्तमहिंस्राणां महात्मनाम् ।। शा.२६२।१९।।
आचाराज्जाजले प्राज्ञः क्षिप्रं धर्ममवाप्नुयात् ।
एवं यः साधुभिर्दान्तश्चरेदद्रोहचेतसा ।।२६२।२१।।
तपोभिर्यज्ञदानैश्च वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा ।
प्राप्नोत्यभयदानस्य यद्यत्फलमिहाश्नुते ।।२६२।२८।।
लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम् ।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्योत्यभयदक्षिणाम् ।।२९।।
दानं भूताभयस्याहुः सर्वदानेभ्य उत्तमम् ।
ब्रवीमि ते सत्यमिदं श्रद्धस्व च जाजले ।।३३।।

जो वृद्ध हैं, पुत्र और पौत्रों से सम्पन्न हैं, शास्त्र के अनुसार यथोचित आचरण करते हैं और किसी भी जीव की हिंसा नहीं करते हैं; उन्हीं महात्माओं के बर्ताव का मैं भी अनुसरण करता हूँ । जाजले! जो जितेन्द्रिय पुरुष अपने चित्त में दूसरों के प्रति द्रोह न रखकर, इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा पालित आचार को अपने आचरण में

लाता है, वह विद्वान् वेदबोधित सदाचार का पालन करने से शीघ्र ही धर्म के रहस्य को जान लेता है । तप, यज्ञ, दान और ज्ञानसम्बन्धी उपदेश के द्वारा मनुष्य यहाँ जो-जो फल प्राप्त करता है, वह सब उसे केवल अभयदान से मिल जाता है । जो जगत् में सम्पूर्ण प्राणियों को अभय की दक्षिणा देता है, वह मानो समस्त यज्ञों का अनुष्ठान कर लेता है तथा वह भी सब ओर से अभयदान प्राप्त कर लेता है । प्राणियों को अभयदान देना सब दानों से उत्तम बताया गया है । जाजले! मैं तुमसे यह सच्ची बात कहता हूँ, तुम इस पर विश्वास करो ।।३३।।

स एव सुभगो भूत्वा पुनर्भवति दुर्भगः ।
व्यापत्तिं कर्मणां दृष्ट्वा जुगुप्सन्ति जनाः सदा ।।३४।।

जो र्स्वगादि की कामना करके धर्मकार्य करते हैं; वे ही स्वर्गादि फलों को पाकर सौभाग्यवान् कहलाते है, फिर वे ही पुण्यक्षीण होने के पश्चात् जब स्वर्ग से नीचे गिरते हैं तब दुर्भाग्य से दूषित माने जाते हैं, इस प्रकार कर्मो का विनाश देखकर विज्ञ पुरुष सदा सकाम कर्मो की निन्दा करते हैं ।।३४।।

अकारणो हि नैवास्ति धर्मः सूक्ष्मो हि जाजले ।
भूतभव्यार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम् ।।२६२।३५।।
सूक्ष्मत्वान्न स विज्ञातुं शक्यते बहुनिह्नवः ।
उपलभ्यान्तरा चान्यानाचारानवबुध्यते ।।३६।।
ये च च्छिन्दन्ति वृषणान् ये च भिन्दन्ति नस्तकान् ।
वहन्ति महतो भारान् बध्नन्ति दमयन्ति च ।।३७।।
हत्वा सत्वानि खादन्ति तान् कथं न विगर्हसे ।
मानुषा मानुषानेव दासभावेन भुञ्जते ।।३८।।
वधबन्धनिरोधेन कारयन्ति दिवानिशम् ।
आत्मनश्चापि जानाति यद्दुःखं वधबन्धने ।।३९।।
पञ्चेन्द्रियेषु भूतेषु सर्वं वसति दैवतम् ।
आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्ब्रह्मा प्राणः क्रतुर्यमः ।।४०।।
तानि जीवानि विक्रीय का मृतेषु विचारणा ।
अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्योऽश्वः पृथिवी विराट् ।।४१।।
धेनुर्वत्सश्च सोमो वै विक्रीयेतन्न सिद्ध्यति ।।४० $^{1}/_{2}$।।
वाहसम्पीडिता धुर्याः सीदन्त्यविधिना परे ।।४४।।

जाजले! कोई भी धर्म निष्प्रयोजन या निष्फल नहीं है, उसका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, स्वर्ग या ब्रह्म की प्राप्ति के लिये ही यहाँ धर्म की व्याख्या की गयी है । धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण वह सभी की समझ में नहीं आ सकता;

क्योंकि उसके स्वरूप को दिख पानेवाली बहुत-सी बातें हैं । बीच-बीच में विभिन्न सत्पुरुषों के आचारों को देखकर मनुष्य वास्तविक धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है । जो लोग बैलों को बधिया करके बाँधते-नाथते- उनसे भारी बोझ ढुलाते और उनका दमन करके उन्हें काम पर निकालते हैं, जो कितने ही जीवों को मारकर खा जाते हैं, मनुष्य होकर मनुष्यों को दास बनाकर और उनके परिश्रम का फल आप भोगते है; उनकी तुम निन्दा क्यों नहीं करते । जो लोग वध और बन्धन की दशा में अपने को कितना कष्ट होता है, इस बात को जानते हैं तो भी दूसरों को वध, बन्धन और कैद के कष्ट में डालकर उनसे दिन-रात काम कराते हैं, वे अत्यन्त निन्दनीय हैं । पाँच इन्द्रियों वाले समस्त प्राणियों में सूर्य, चन्द्र, वायु, ब्रह्मा, प्राण, यज्ञ और यमराज- इन सब देवताओं का निवास है । जो इन्हें जीते-जी बेचकर जीविका चलाते हैं, उन्हें अधर्म की प्राप्ति होती है । फिर मृतजीवों का विक्रय करनेवालों के विषय में तो कहा ही क्या जाय । बकरा अग्नि का, भेड़ वरुण का, अश्व सूर्य का और पृथिवी विराट् का रूप है तथा गाय और बछड़े चन्द्रमा के स्वरूप हैं, इनको बेचने से कल्याण नहीं होता ॥४१॥ कितने ही बोझ ढोनेवाले पशु भारी भार से पीड़ित हो लोगों द्वारा अनुचित रूप से सताये जाते हैं ॥४४॥

मन्ये भ्रूणहत्यादि विशिष्टा तेन कर्मणा ।
कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा च वृत्तिः सुदारुणा ॥४५॥
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ।
तथैवानडुहो युक्तान् समवेक्षस्व जाजले ॥४६॥

मैं समझता हूँ कि उस क्रूर कर्म से बढ़कर भ्रूणहत्या का पाप भी नहीं है । कुछ लोग खेती को अच्छा मानते हैं; परन्तु वह वृत्ति भी कठोर है । जाजले! जिसके मुख पर फाल जुड़ा हुआ है, वह हल पृथिवी को पीड़ा देता है और उसके भीतर रहनेवाले जीवों का भी वध कर डालता है और उसमें जो बैल जोते जाते हैं, उनकी दुर्दशा पर भी दृष्टिपात करो ॥४६॥

अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति ।
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽऽलभेत्तु यः ॥४७॥
ऋषयो यतयो ह्येतन्नहुषे प्रत्यवेदयन् ।
गां मातरं चाप्यवधीर्वृषभं च प्रजापतिम् ॥४८॥
अकार्य नहुषाकार्षीर्लप्स्यामस्त्वत्कृते व्यथाम् ।
शतं चैकं च रोगाणां सर्वभूतेष्वपातयन् ॥४९॥
ऋषयस्ते महाभागाः प्रजास्वेव हि जाजले ।

भ्रूणहं नहुषं त्वाहुर्न ते होष्यामहे हविः ।।५०।।
इत्युक्त्वा ते महात्मानः सर्वे तत्त्वार्थदर्शिनः ।
ऋषयो यतयः शान्तास्तपसा प्रत्यवेदयन् ।।५१।।
कारणाद्धर्ममन्विच्छेन्न लोकचरितं चरेत् ।
यो हन्याद्यश्च मां स्तौति तत्रापि श्रृणु जाजले ।।५२।।
समौ तावपि मे स्यातां न हि मेऽस्ति प्रियाप्रियम् ।
एतदीदृशकं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः ।।५३।।

श्रुति में गौओं को अघ्न्या (अवध्य) कहा गया है, फिर कौन उन्हें मारने का विचार करेगा? जो पुरुष गाय और बैलों को मारता है, वह महान् पाप करता है? एक समय की बात है, ऋषियों और यतियों ने राजा नहुष के पास जाकर निवेदन किया कि तुमने माता गौ और प्रजापति वृषभ का वध किया है । नहुष! यह तुम्हारे द्वारा न करने योग्य पापकर्म किया गया है, तुम्हारे इस कुकृत्य के कारण हम सबलोगों को बड़ी व्यथा हो रही है । जाजले! ऐसा कहकर नहुष के द्वारा प्रशंसित महाभाग ऋषियों ने पाप को एक सौ एक रोगों के रूप में परिणत करके समस्त प्राणियों पर डाल दिया । राजा नहुष को भ्रूणहत्यारा बताया और स्पष्ट कह दिया कि हमलोग तुम्हारे यज्ञ में हविष्य की आहुति नहीं देंगे । ऐसा कहकर उन समस्त तत्त्वार्थदर्शी महात्माओं ने तपस्या द्वारा सारी बातें जान लीं और नहुष के अज्ञानवश वह पाप होने के कारण उन्हें निर्दोष पाकर वे सब ऋषि और यति शान्त हो गये । अतः इस कर्म का हेतु या परिणाम क्या है, इस पर विचार करके ही तुम्हें किसी भी धर्म को स्वीकार करना चाहिये । लोगों ने किया है या कर रहे हैं, यह जानकर उनका अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये ।

जाजले! अब मैं अपने विषय में कुछ निवेदन करता हूँ, उसे सुनो- जो मुझे मारता है, तथा जो मेरी प्रशंसा करता है, वे दोनों ही मेरे लिये बराबर हैं । उनमें से कोई भी मेरे लिये प्रिय या अप्रिय नहीं है, मनीषी पुरुष ऐसे ही धर्म की प्रशंसा करते हैं **।।५४।। अध्याय समाप्त ।।**

<u>जाजलि को तुलाधार का आत्मयज्ञ-विषयक धर्म का उपदेश</u>

जाजलिरुवाच

अयं प्रवर्तितो धर्मस्तुलां धारयता त्वया ।
स्वर्गद्वारं च वृत्तिं च भूतानामवरोत्स्यते ।।२६३।१।।
कृष्या ह्यन्नं प्रभवति ततस्त्वमपि जीवसि ।

पशुभिश्चौषधीभिश्च मर्त्या जीवन्ति वाणिज ॥२॥
ततो यज्ञः प्रभवति नास्तिक्यमपि जल्पसि ।
न हि वर्तेदयं लोको वार्तामुत्सृज्य केवलाम् ॥३॥

जाजलि ने कहा- वणिक् महोदय! तुम हाथ में तराजू लेकर सौदा तौलते समय जिस धर्म का उपदेश करते हों, उससे तो स्वर्ग का दरवाजा ही बन्द किये देते हो और प्राणियों की जीविकावृत्ति में भी रुकावट उत्पन्न करते हो । वैश्यपुत्र! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि खेती से ही अन्न उत्पन्न होता है, जिससे तुम भी जी रहे हो । अन्न और पशुओं से ही मनुष्य का जीवन-निर्वाह होता है । उन्हीं से यज्ञकार्य सम्पन्न होता है । तुम तो नास्तिकता की भी बातें करते हो । यदि पशुओं के कष्ट का स्मरण करके खेती आदि वृत्तियों का त्याग कर दिया जाय, तो इस संसार का जीवन ही समाप्त हो जायगा ॥३॥

तुलाधार उवाच

वक्ष्यामि जाजले वृत्तिं नास्मि ब्राह्मण नास्तिकः ।
न यज्ञं च विनिन्दामि यज्ञवित्तु सुदुर्लभः ॥४॥
नमो ब्राह्मणयज्ञाय ये च यज्ञविदो जनाः ।
स्वयज्ञं ब्राह्मणा हित्वा क्षत्रयज्ञमिहास्थिताः ॥५॥

तुलाधार ने कहा- जाजले! मैं तुम्हें हिंसातिरिक्त जीविकावृत्ति बताऊँगा । ब्राह्मणदेव! मैं नास्तिक नहीं हूँ और न यज्ञ की ही निन्दा करता हूँ; परन्तु यज्ञ के यथार्थ स्वरूप को समझनेवाला पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है । विप्र! ब्राह्मणों के लिये जिस यज्ञ का विधान है, उसको तो मैं नमस्कार करता हूँ और जो लोग उस यज्ञ को ठीक-ठीक जानते हैं, उनके चरणों में भी मस्तक झुकाता हूँ, किन्तु खेद है, इस समझ ब्राह्मण लोग अपने यज्ञ का परित्याग करके क्षत्रियोचित यज्ञों के अनुष्ठान में प्रवृत हो रहे हैं ।

लुब्धैर्वित्तपरैर्ब्रह्मन्नास्तिकैः सम्प्रवर्तितम् ।
वेदवादानविज्ञाय सत्याभासमिवानृतम् ॥६॥
इदं देयमिदं देयमिति चायं प्रशस्यते ।
अतः स्तैन्यं प्रभवति विकर्माणि च जाजले ॥७॥
यदेव सुकृतं हव्यं तेन तुष्यन्ति देवताः ।
नमस्कारेण हविषा स्वाध्यायैरौषधैस्तथा ॥८॥
पूजा स्याद्देवतानां हि यथाशास्त्रनिदर्शनम् ।
इष्टापूर्तादसाधूनां विगुणा जायते प्रजा ॥९॥
लुब्धेभ्यो जायते लुब्धः समेभ्यो जायते समः ।

यजमाना यथाऽऽत्मानमृत्विजश्च तथा प्रजाः ॥१०॥
यज्ञात्प्रजा प्रभवति नभसोऽम्भ इवामलम् ।
अग्नौ प्रास्ताहुतिर्ब्रह्मन्नादित्यमुपगच्छति ॥११॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।
तस्मात्सुनिष्ठिताः पूर्वे सर्वान्कामांश्च लेभिरे ॥१२॥
अकृष्टपच्या पृथिवी आशीभिर्वीरुधोऽभवन् ।
न ते यज्ञेष्वात्मसु वा फलं पश्यन्ति किंचन ॥१३॥
शंकमानाः फलं यज्ञे ये यजेरन् कथंचन ।
जायन्तेऽसाधवो धूर्ता लुब्धा वित्तप्रयोजनाः ॥१४॥

ब्रह्मन्! धन कमाने के प्रयत्न में लगे हुए बहुत से लोभी और नास्तिक पुरुषों ने वैदिक वचनों का तात्पर्य न समझकर सत्य से प्रतीत होनेवाले मिथ्या यज्ञों का प्रचार कर दिया है । जाजले! श्रुतियों और स्मृतियों में कहा गया है कि अमुक कर्म के लिये यह दक्षिणा देनी चाहिये, वह दक्षिणा देनी चाहिये उसके अनुसार वैसी दक्षिणा देने से भी यज्ञ श्रेष्ठ माना जाता है, अन्यथा शक्ति रहते हुए यदि यज्ञकर्ता ने लोभ दिखाया तो उसको चोरी करने का पाप लगता है और उस कर्म में भी विपरीतता आ जाती है । शुभ कर्म के द्वारा जिस हविष्य का संग्रह किया जाता है, उसी के होम से देवता सन्तुष्ट होते है, शास्त्र के कथनानुसार नमस्कार, स्वाध्याय, घी और अन्न- इन सबके द्वारा देवताओं की पूजा हो सकती है । जो लोग कामना के वशीभूत होकर यज्ञ करते, तालाब खुदवाते या बगीचे लगवाते हैं; उन (सकामभावयुक्त) असाधु पुरुषों से उन्हीं के समान गुणहीन सन्तान उत्पन्न होती है । लोभी पुरुषों से लोभी का जन्म होता है और समदर्शी पुरुषों से समदर्शी पुत्र उत्पन्न होता है । यजमान और ऋत्विक् स्वयं जैसे होते हैं; उनकी प्रजा भी वैसी ही होती है **॥१०॥** जिस प्रकार आकाश से निर्मल जल की वर्षा होती है, उसी प्रकार शुद्ध भाव से किये हुए यज्ञ से योग्य प्रजा की उत्पत्ति होती है । विप्रवर! अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्यमण्डल को प्राप्त होती है, सूर्य से जल की वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न उपजता है और अन्न से सम्पूर्ण प्रजा जन्म तथा जीवन-धारण करती है । पहले के लोग कर्तव्य समझकर यज्ञ में श्रद्धापूर्वक प्रवृत्त होते थे और उस यज्ञ से उनकी सम्पूर्ण कामनाएँ स्वतः पूर्ण हो जाती थीं । पृथ्वी से बिना जोते-बोए ही काफी अन्न पैदा होता तथा जगत् की भलाई के लिये उनका शुभ संकल्प से ही वृक्षों और लताओं में फल-फूल लगते थे । वे यज्ञों में अपने लिये किसी फल की ओर दृष्टि नहीं रखते थे । जो मनुष्य यज्ञ से कोई

फल मिलता है या नहीं, इस प्रकार का सन्देह मन में लेकर किसी तरह यज्ञों में प्रवृत होते हैं वे धन चाहनेवाले लोभी, धूर्त और दुष्ट होते हैं ॥१४॥

स स्म पापकृतां लोकान्गच्छेदशुभकर्मणा ।
प्रमाणमप्रमाणेन यः कुर्यादशुभं नरः ॥१५॥
पापात्मा सोऽकृतप्रज्ञः सदैवेह द्विजोत्तम ।
कर्तव्यमिति कर्तव्यं वेत्ति वै ब्राह्मणोऽभयम् ॥१६॥
ब्रह्मैव वर्तते लोके नैव कर्तव्यतां पुनः ।
विगुणं च पुनः कर्म ज्याय इत्यनुशुश्रुम ॥१७॥
सर्वभूतोपघातश्च फलभावे च संयमः ।
सत्ययज्ञा दमयज्ञा अलुब्धाश्चात्मवृत्तयः ॥१८॥
उत्पन्नत्यागिनः सर्वे जना आसन्नमत्सराः ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञतत्त्वज्ञाः स्वयज्ञपरिनिष्ठिताः ॥१९॥

द्विजश्रेष्ठ! जो मनुष्य प्रमाणभूत वेद को अपने अप्रामाणिक कुतर्क द्वारा अमंगलकारी सिद्ध करता है, उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है उसका मन सदा यहाँ पाप में ही लगा रहता है, और वह अपने अशुभ कर्म के कारण पापाचारियों के लोकों (नरक) में ही जाता है । जो करने योग्य कर्मो को अपना कर्तव्य समझता है और उसका पालन न होने पर भय मानता है, जिसकी दृष्टि में (ऋत्विक्, हविष्य और अग्नि आदि) सब कुछ ब्रह्म ही है तथा जो किसी भी कर्तव्य को अपना नहीं मानता-कर्तापन का अभिमान नहीं रखता, वही सच्चा ब्राह्मण है । हमने सुना है कि यदि कर्म में किसी प्रकार की त्रुटि हो जाने के कारण वह गुणहीन हो जाय तो भी यदि निष्काम भाव से किया जा रहा है तो श्रेष्ठ ही है । निष्काम भाव से किये जानेवाले कर्म में यदि कुत्ते आदि अपवित्र पशुओं के द्वारा स्पर्श हो जाने से कोई बाधा भी आ जाय तथापि वह कर्म नष्ट नहीं होता, वह श्रेष्ठतम ही माना जाता है, अतः प्रत्येक कर्म में फल की भावना या कामना पर संयम-नियन्त्रण रखना आवश्यक है ।

प्राचीन काल के ब्राह्मण सत्यभाषण और इन्द्रियसंयम रूप यज्ञ का अनुष्ठान करते थे । वे परम पुरुषार्थ (मोक्ष) के प्रति लोभ रखते थे, उन्हें लौकिक-धन की प्यास नहीं रहती थी, वे उस ओर से सदा तृप्त रहते थे । वे सबलोग प्राप्त वस्तु का त्याग करनेवाले और ईर्ष्या-द्वेष से रहित थे । वे क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के तत्त्व को जाननेवाले और आत्मयज्ञपरायण थे ॥१९॥

ब्राह्मं वेदमधीयानस्तोषयन्त्यपरानपि ।
अखिलं दैवतं सर्वं ब्रह्म ब्रह्मणि संश्रितम् ॥२०॥

तुष्यन्ति तृप्यतो देवास्तृप्तास्तृप्तश्च जाजले ।
यथा सर्वरसैस्तृप्तो नाभिनन्दति किंचन ॥२१॥
तथा प्रज्ञानतृप्तस्य नित्यतृप्तिः सुखोदया ।
धर्माधारा धर्मसुखाः कृत्स्नव्यवसितास्तथा ॥२२॥
अस्ति नस्तत्त्वतो भूय इति प्राज्ञस्त्ववेक्षते ।
ज्ञानविज्ञानिनः केचित्परं पारं तितीर्षवः ॥२३॥
अतीव पुण्यदं पुण्यं पुण्याभिजनसंहितम् ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति च च्यवन्ति व्यथन्ति च ॥२४॥

वे उपनिषदों के अध्ययन में तत्पर रहते तथा स्वयं सन्तुष्ट होकर दूसरों को भी सन्तोष देते थे । ब्रह्म सर्वस्वरूप है, सम्पूर्ण देवता उसी के रूप हैं, वह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण के भीतर विराजमान है । इसलिये जाजले! इसके (ब्राह्मण के) तृप्त होने पर सम्पूर्ण देवता तृप्त एवं सन्तुष्ट हो जाते हैं । जैसे सब प्रकार के रसों से तृप्त हुआ मनुष्य किसी भी रस का अभिनन्दन नहीं करता, उसी प्रकार जो ज्ञानानन्द से परितृप्त है, उसे अक्षय सुख देनेवाली नित्य तृप्ति बनी रहती है । हममें से बहुत लोग ऐसे हैं जिनका धर्म ही आधार है, जो धर्म में ही सुख मानते हैं, तथा जिन्होंने सम्पूर्ण कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय कर लिया है, परन्तु हम लोगों का जो यथार्थ रूप है, उसकी अपेक्षा बहुत महान् और व्यापक परमात्मा सर्वत्र सर्वात्मा रूप से विराजमान है- ऐसा ज्ञानी पुरुष देखता है । भवसागर से पार उतरने की इच्छावाले कोई-कोई ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न महात्मा पुरुष ही अत्यन्त पवित्र और पुण्यात्माओं से सेवित, पुण्यदायक ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं, जहाँ जाकर वे न तो शोक करते हैं, न वहाँ से नीचे गिरते हैं और न मन में किसी प्रकार की व्यथा का ही अनुभव करते हैं ॥२४॥

ते तु तद्ब्रह्मणः स्थानं प्राप्नुवन्तीह सात्त्विकाः ।
नैव ते स्वर्गमिच्छन्ति न यजन्ति यशोधनैः ॥२५॥
सतां वर्त्मानुवर्तन्ते यजन्ते चाविहिंसया ।
वनस्पतीनोषधीश्च फलमूलानि ते विदुः ॥२६॥
न चैतानृत्विजो लुब्धा याजयन्ति फलार्थिनः ।
स्वमेव चार्थं कुर्वाणा यज्ञं चक्रुः पुनर्द्विजाः ॥२७॥
परिनिष्ठितकर्माणः प्रजानुग्रहकाम्यया ।
तस्मात्तानृत्विजो लुब्धा याजयन्त्यशुभान्नरान् ॥२८॥
प्रापयेयुः प्रजाः स्वर्गे स्वधर्माचरणेन वै ।
इति मे वर्तते बुद्धिः समा सर्वत्र जाजले ॥२९॥
प्रयुञ्जते येन यज्ञे सदा प्राज्ञा द्विजर्षभाः ।

तेन ते देवयानेन पथा यान्ति महामुने ।।३०।।
आवृत्तिस्तस्य चैतस्य नास्त्यावृत्तिर्मनीषिणः ।
उभौ तौ देवयानेन गच्छतो जाजले यथा ।।३१।।
स्वयं चैषामनडुहो युञ्जन्ति च वहन्ति च ।
स्वयमुस्राश्च दुह्यन्ते मनःसंकल्पसिद्धिभिः ।।३२।।

वे सात्त्विक महापुरुष उस ब्रह्मधाम को ही प्राप्त होते हैं, उन्हें स्वर्ग की इच्छा नहीं होती, वे यश और धन के लिये यज्ञ नहीं करते, सत्पुरुषों के मार्ग पर चलते और हिंसारहित यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं । वनस्पति, अन्न और फलमूल को ही वे हविष्य मानते हैं, धन की इच्छा रखने वाले लोभी ऋत्विक् इनका यज्ञ नहीं कराते हैं । ज्ञानी ब्राह्मणों ने अपने को ही यज्ञ का उपकरण मानकर मानसिक यज्ञ का अनुष्ठान किया है । उन्होंने प्रजाहित की कामना से ही मानसिक यज्ञ का अनुष्ठान किया है । लोभी ऋत्विक् तो ऐसे लोगों का ही यज्ञ कराते हैं, जो अशुभ (मोक्षेच्छा से रहित) होते है, श्रेष्ठ पुरुष तो स्वधर्म का आचरण करते हुए ही प्रजा को स्वर्ग में पहुँचा देते हैं । जाजले! यही सोचकर मेरी बुद्धि भी सर्वत्र समान भाव रखती है । महामुने! श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण सदा ही जिन द्रव्यों को लेकर उनका यज्ञों में उपयोग करते हैं, उन्हीं के द्वारा वे दिव्य मार्ग से पुण्यलोकों में जाते हैं । जाजले! जो कामनाओं में आसक्त है, उसी मनुष्य की इस संसार में पुनरावृत्ति होती है । ज्ञानी का पुनः वहाँ जन्म नहीं होता । यद्यपि दोनों दिव्य मार्ग से ही पुण्यलोकों में जाते हैं, तथापि संकल्पभेद से ही उनकी आवृत्ति और अनावृत्ति होती है । ज्ञानी महात्माओं की इच्छा होते ही उनके मानसिक संकल्प की सिद्धियों के अनुसार बैल स्वयं गाड़ी में जुतकर उनकी सवारी ढोने लगते हैं । दूध देनेवाली गौएँ स्वयं ही सब प्रकार के मनोरथों की सिद्धिरूप क्षीर प्रदान करती हैं ।

स्वयं यूपानुपादाय यजन्ते स्वाप्तदक्षिणैः ।
यस्तथा भावितात्मा स्यात्स गामालब्धुमर्हति ।।३३।।
ओषधीभिस्तथा ब्रह्मन्यजेरंस्ते न तादृशाः ।
इति त्यागं पुरस्कृत्य तादृशं प्रब्रवीमि ते ।।३४।।
निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ।
अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।।३५।।
न श्रावयन्न च यजन्न ददद्ब्राह्मणेषु च ।
काम्यां वृत्तिं लिप्स्यमानः कां गतिं याति जाजले ।
इदं तु दैवतं कृत्वा यथा यज्ञमवाप्नुयात् ।।३६।।

योगसिद्ध पुरुषों के पास स्वयं यज्ञयूप उपस्थित हो जाते हैं और उन्हें लेकर व पर्याप्त दक्षिणाओं से युक्त यज्ञों द्वारा यजन करते हैं । उनके ऋत्विजों के पास दक्षिणा भी स्वयं उपस्थित हो जाती है । जिसका अन्तःकरण इस प्रकार शुद्ध एवं सिद्ध हो गया, वहीं पृथिवी को उपलब्ध कर सकता है । ब्रह्मन्! इसलिये वे भोगसिद्ध पुरुष औषधियों- अन्न आदि के द्वारा यज्ञ कर सकते हैं । जो पहले बताये अनुसार मूढ़ लोग हैं, वे उस तरह का यज्ञ कर सकते हैं । कर्मफल का त्याग करनेवाले महात्माओं का ऐसा अद्‌भुत माहात्म्य है, इसलिये मैं त्याग को आगे रखकर तुमसे ऐसी बात कह रहा हूँ । जिसके मन में कोई कामना नहीं है, जो किसी फल की इच्छा से कर्मो का आरम्भ नहीं करता, नमस्कार और स्तुति से अलग रहता है, जिसका धर्म क्षीण नहीं हुआ है, कर्मबन्धन क्षीण हो गया है, उसी पुरुष को देवगण ब्राह्मण मानते हैं । जाजले! जो ब्राह्मण वेदाध्ययन, यजन और ब्राह्मणों को दान देना आदि वर्णोचित कर्म नहीं करता और मनोहर भोगपदार्थों की लिप्सा रखता है, वह कुत्सित गति को प्राप्त होता है, किन्तु निष्काम धर्म को देवता के समान आराध्य बनानेवाला मनुष्य यज्ञ के यथार्थ फल- मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

जाजलिरुवाच

न वै मुनीनां शृणुमः स्म तत्त्वं पृच्छामि ते वाणिज कष्टमेतत् ।
पूर्वे-पूर्वे चास्य नावेक्षमाणा नातः परं तमृषयः स्थापयन्ति ।।३७।।
यस्मिन्नेवात्मतीर्थेन पशवः प्राप्नुयुर्मखम् ।
अथ स्म कर्मणा केन वाणिज प्राप्नुयात्सुखम् ।।३८।।
शंस मे तन्महाप्राज्ञ भृशं वै श्रद्दधामि ते ।।३९।।

जाजलि ने पूछा- वैश्यप्रवर! मैंने आत्मयाजी मुनियों के समीप तुम्हारे द्वारा प्रतिपादित तत्त्व को कभी नहीं सुना । सम्भवतः यह समझने में कठिन भी है, क्योंकि पूर्वकालीन महर्षियों ने उसके ऊपर विशेष विचार नहीं किया है । जिन्होंने विचार किया है, उन्होंने भी उत्तम होने पर भी इस धर्म की जगत् में स्थापना नहीं की है । अतः मैं तुमसे ही पूछता हूँ ।

वणिक्पुत्र! यदि इस प्रकार आत्मतीर्थ में पशु अर्थात् अज्ञानी मानव आत्मयज्ञ का सौभाग्य नहीं पा सकते; तो किस कर्म से उन्हें सुख की प्राप्ति हो सकती है । महामते! यह बात मुझे बताओ । मैं तुम्हारे कथन पर अधिक श्रद्धा रखता हूँ ।

तुलाधार उवाच

उत यज्ञा उतायज्ञा मखं नार्हन्ति ते क्वचित् ।।३९।।
आज्येन पयसा दध्ना पूर्णाहुत्या विशेषतः ।

बालैः श्रृंगेण पादेन संभरत्येव गौर्मखम् ।।४०।।
पत्नीं चानेन विधिना प्रकरोति नियोजयन् ।
इष्टं तु दैवतं कृत्वा यथा यज्ञमवाप्नुयात् ।।४१।।
पुरोडाशो हि सर्वेषां पशूनां मेध्य उच्यते ।
सर्वा नद्यः सरस्वत्यः सर्वे पुण्याः शिलोच्चयाः ।।४२।।
जाजले तीर्थमात्मैव मा स्म देशातिथिर्भव ।
एतानीदृशकान्धर्मानाचरन्निह जाजले ।
कारणैर्धर्ममन्विच्छन्स लोकानाप्नुते शुभान् ।।४३।।

तुलाधार ने कहा– ब्रह्मन! जिस दम्भी पुरुषों के यज्ञ अश्रद्धा आदि दोषों के कारण यज्ञ कहलाने योग्य नहीं रह जाते, वे न तो मानसिक यज्ञ के अधिकारी हैं और न क्रियात्मक यज्ञ के ही । श्रद्धालु पुरुष तो घी, दुग्ध, दही और विशेषतः पूर्णाहुति से ही अपना यज्ञ पूर्ण करते हैं । श्रद्धालुओं में जो असमर्थ हैं, उनका यज्ञ गाय अपनी पूँछ के बालों के स्पर्श से श्रृंगजल से और पैरों की धूल से ही पूर्ण कर देती है । इसी विधि से देवता के लिये घी आदि द्रव्य समर्पित करने के लिये श्रद्धा को ही पत्नी बनाये और यज्ञ को ही देवता के समान आराध्य बनाकर यथावत् रूप से यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु को प्राप्त करे । यज्ञविहित समस्त पशुओं के दुग्ध आदि से निर्मित पुरोडाश को ही पवित्र बताया जाता है । सारी नदियाँ ही सरस्वती का रूप हैं और समस्त पर्वत ही पुण्यमय प्रदेश हैं । जाजले! यह आत्मा ही प्रधान तीर्थ है, आप तीर्थसेवन के लिये देश-देश में मत भटकिये । जो यहाँ मेरे बताये हुए अहिंसाप्रधान धर्मों का आचरण करता है, वह कल्याणकारी लोकों को प्राप्त होता है ।

भीष्म उवाच

श्रद्धा वैवस्वती सेयं सूर्यस्य दुहिता द्विज ।
सावित्री प्रसवित्री च हविर्वाङ्मनसी ततः ।।२६४/८।।
वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धं च जाजले ।
श्रद्धावृद्धं वाङ्भनसी न यज्ञस्त्रातुमर्हति ।।९।।

भीष्मजी कहते हैं, ब्रह्मन्! श्रद्धा सूर्य की पुत्री है, इसीलिये उसे वैवस्वती, सावित्री और प्रसवित्री (विशुद्ध जन्मदायिनी) भी कहते हैं । वाणी और मन भी श्रद्धा की अपेक्षा बहिरंग है । भरतनन्दन! यदि वाणी के दोष से मन्त्र के उच्चारण में त्रुटि रह जाय और मन की चञ्चलता के कारण इष्टदेवता का ध्यान आदि कर्म सम्पन्न न हो सके तो भी यदि श्रद्धा हो तो वह वाणी और मन के दोष को दूर करके उस कर्म

की रक्षा कर सकती है । परन्तु यदि श्रद्धा न होने के कारण कर्म में त्रुटि रह जाय तो वाणी और मन (मन्त्रोच्चारण और ध्यान) उस कर्म की रक्षा नहीं कर सकते हैं ।

भीष्म उवाच

ततोऽचिरेण कालेन तुलाधारः स एव च ।
दिवं गत्वा महाप्राज्ञौ विहरेतां यथासुखम् ॥२६४/२०॥
स्वं-स्वं स्थानमुपागम्य स्वकर्मफलनिर्जितम् ।
एवं बहुविधार्थं च तुलाधारेण भाषितम् ॥२१॥
सम्यक्चैवमुपालब्धो धर्मश्चोक्तः सनातनः ।
तस्य विख्यातवीर्यस्य श्रुत्वा वाक्यानि स द्विजः ॥२२॥
तुलाधारस्य कौन्तेय शान्तिमेवान्वपद्यत ।
एवं बहुमतार्थं च तुलाधारेण भाषितम् ॥२३॥

राजन्! तदनन्तर थोड़े ही समय में तुलाधार और जाजलि दोनों महाज्ञानी पुरुष परमधाम में जाकर अपने शुभकर्मों के फलस्वरूप अपने-अपने स्थान को पाकर वहाँ सुखपूर्वक विहार करने लगे । इस प्रकार तुलाधार ने नाना प्रकार के वक्तव्य विषयों से युक्त उत्तम भाषण किया । उन्होंने सनातन धर्म का भी वर्णन किया । ब्राह्मण जाजलि ने विख्यात प्रभावशाली तुलाधार के वे वचन सुनकर उनके इस तात्पर्य को भलीभाँति हृदयंगम किया । कुन्तीनन्दन! तुलाधार ने जो उपदेश दिया था, वह बहुजनसम्मत अर्थ से युक्त था । उसे सुनकर जाजलि को परम शान्ति प्राप्त हुई ।

शान्तिपर्व

धर्माधर्म के स्वरूप का निर्णय

युधिष्ठिर उवाच

इमे वै मानसाः सर्वे धर्मं प्रति विशंकिताः ।
कोऽयं धर्मः कुतो धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२६४/१॥
धर्मस्त्वयमिहार्थः किममुत्रार्थोपि वा भवेत् ।
उभयार्थो हि वा धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥

युधिष्ठिरजी ने पूछा- पितामह! ये सभी मनुष्य प्रायः धर्म के विषय में संशयशील हैं, अतः मैं जानना चाहता हूँ कि धर्म क्या हैं और उसकी उत्पति कहाँ से हुई है? यह मुझे बताइये । पितामह! इस लोक में सुख पाने के लिये जो कर्म किया जाता है, वहीं धर्म है या परलोक में कल्याण के लिये जो कुछ किया जाता है, उसे धर्म कहते हैं? अथवा लोक-परलोक दोनों के सुधार के लिये कुछ किया जानेवाला कर्म ही धर्म कहलाता है? यह मुझे बताइये ।

भीष्म उवाच

सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम् ।
चतुर्थमर्थमप्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ।।३।।
अविध्युक्तानि कर्माणि व्यवस्यन्त्युप्तमूषरे ।
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः ।।४।।
उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च ।
अलब्ध्वा निपुणं धर्मं पापः पापेन युज्यते ।।५।।
न च पापकृतः पापान्मुच्यन्ते केचिदापदि ।
अपापवादी भवति यथा भवति धर्मकृत् ।
धर्मस्य निष्ठा स्वाचारस्तमेवाश्रित्य चावसेत् ।।६।।
सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम् ।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।१०।।
अपि पापकृतो रौद्राः सत्यं कृत्वा मिथःकृतम् ।
अद्रोहमविसंवादं प्रवर्तन्ते तदाश्रयाः ।।११।।
ते चेन्मिथ्याधृतिं कुर्युर्विनश्येयुरसंशयम् ।
न हर्तव्यं परधनमिति धर्मविदो विदुः ।।१२।।

भीष्मजी कहते हैं- युधिष्ठिर! वेद, स्मृति और सदाचार- ये तीन धर्म के स्वरूप को लक्षित करानेवाले हैं । कुछ विद्वान् अर्थ को भी धर्म का चतुर्थ लक्षण बताते हैं । अशास्त्रीय कर्मों का सम्पादन ऊषर भूमि में बीज बोने जैसा ही निष्फल होता है । लोकयात्रा का निर्वाह करने के लिये ही महर्षियों ने यहाँ धर्म की मर्यादा स्थापित की है । धर्म का पालन करने से आगे चलकर इस लोक और परलोक में भी सुख मिलता है । पापी मनुष्य विचारपूर्वक धर्म का आश्रय न लेने से पाप में प्रवृत्त हो उसके दुःखरूप फल का भागी होता है । पापाचारी मनुष्य आपत्तिकाल में कष्ट भोगकर भी उस पाप से मुक्त नहीं होते और धर्म का आचरण करनेवाले लोग आपत्तिकाल में भी पाप का समर्थन नहीं करते हैं । आचार (शौचाचार-सदाचार) ही धर्म का आधार है । अतः युधिष्ठिर! तुम उस आचार का आश्रय लेकर ही धर्म के यथार्थ स्वरूप को जान सकोगे । सत्य बोलना शुभ कर्म है । सत्य से बढ़कर कोई दूसरा कार्य नहीं है । सत्य ने ही सबको धारण कर रखा है और सत्य में ही सबकुछ प्रतिष्ठित है । क्रूर स्वभाव वाले पापी भी सत्य की शपथ खाकर ही आपस में द्रोह या विवाद से बचे रहते हैं । इतना ही नहीं, वे सत्य का आश्रय लेकर सत्य की ही दुहाई देकर अपने-अपने कर्मों में प्रवृत होते हैं । वे यदि आपस की शपथ को भंग

कर दें तो निस्संदेह परस्पर लड़-भिड़कर नष्ट हो जायँ । दूसरों के धन का अपहरण नहीं करना चाहिये । ऐसा वेदज्ञ बताते हैं ।

दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः ।
तं मन्यन्ते धनयुताः कृपणैः सम्प्रवर्तितम् ॥१८॥
यदा नियतिकार्पण्यमथैषामेव रोचते ।
धनवन्तोपि नात्यन्तं भवन्ति सुखिनोपि वा ॥१९॥
यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः ।
न तत्परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥२०॥
जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥२२॥
सर्वं प्रियाभ्युपगतं पुण्यमाहुर्मनीषिणः ।
पश्यैतं लक्षणोद्देशं धर्माधर्मे युधिष्ठिर ॥२५॥

समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहनेवाले महात्माओं ने- दान करना चाहिये, ऐसा कहकर इसे धर्म बताया है, परन्तु बहुत से धनवान् उसे दरिद्रों का चलाया हुआ धर्म समझते हैं । परन्तु यदि भाग्यवश वे भी निर्धन या दर-दर के भिखारी हो जाते हैं; उस समय उनको भी यह धर्म उत्तम जान पड़ता है, क्योंकि कोई भी न तो अत्यन्त धनवान् होते हैं और न अतिशय सुखी ही हुआ करते हैं । (अतः धन का अभिमान नहीं करना चाहिये) मनुष्य दूसरों के द्वारा किये हुए जिस व्यवहार को अपने लिये वाञ्छनीय नहीं मानता, दूसरों के प्रति भी वह वैसा बर्ताव न करे । उसे यह जानना चाहिये कि जो बर्ताव अपने लिये अप्रिय है, वह दूसरों के लिये भी प्रिय नहीं हो सकता । जो स्वयं जीवित रहना चाहता हो वह दूसरों के प्राण कैसे ले सकता है? मनुष्य अपने लिये जो-जो सुख-सुविधा चाहे, वहीं दूसरे के लिये भी सुलभ कराने की बात सोचे ।

युधिष्ठिर! सबके साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव करने से जो कुछ प्राप्त होता है, वह सब धर्म है, ऐसा मनीषियों का कथन है तथा जो इसके विपरीत है, वह अधर्म है । तुम धर्म और अधर्म का संक्षेप से यही लक्षण समझो ।

भगवान् श्रीकृष्ण का अर्जुन को अपने प्रभाव का वर्णन करते हुए अपने नामों की व्युत्पत्ति एवं माहात्म्य बताना

अर्जुन उवाच

भगवन्भूतभव्येश सर्वभूतसृगव्यय ।

लोकधाम जगन्नाथ लोकानामभयप्रद ।।२४१/५।।
यानि नामानि ते देव कीर्तितानि महर्षिभिः ।
वेदेषु सपुराणेषु यानि गुह्यानि कर्मभिः ।।६।।
तेषां निरुक्तं त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि केशव ।
न ह्यन्यो वर्णयेन्नाम्नां निरुक्तं त्वामृते प्रभो ।।७।।

अर्जुन बोले- भूत, वर्तमान और भविष्य- तीनों कालों के स्वामी, सम्पूर्ण भूतों के स्रष्टा अविनाशी, जगदाधार तथा सम्पूर्ण लोकों को अभय देनेवाले जगन्नाथ भगवन् नारायण देव! महर्षियों ने आपके जो-जो नाम कहे हैं तथा पुराणों और वेदों में कर्मानुसार जो-जो गोपनीय नाम पढ़े गये हैं, उन सबकी व्याख्या मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ । प्रभो! केशव! आपके सिवा दूसरा कोई उन नामों की व्युत्पत्ति नहीं बता सकता है ।।5-7।।

श्रीभगवानुवाच

ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु ।
पुराणेषूपनिषत्सु तथैव ज्योतिषेऽर्जुन ।।८।।
साङ्ख्ये च योगशास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च ।
बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः ।।९।।
गौणानि तत्र नामानि कर्मजानि च कानिचित् ।
निरुक्तं कर्मजानां त्वं श्रृणुष्व प्रयतोऽनघ ।।१०।।

श्रीभगवान् ने कहा- अर्जुन! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उपनिषद्, पुराण, ज्योतिष्, सांख्य, योग तथा आयुर्वेद में महर्षियों ने मेरे बहुत से नाम कहे हैं । उनमें कुछ नाम तो गुणों के अनुसार हैं और कुछ कर्मो से हुए हैं । निष्पाप अर्जुन! तुम पहले एकाग्रचित्त होकर मेरे कर्मजनित नामों की व्याख्या सुनो ।।8-10।।

कथ्यमानं मया तात त्वं हि मेऽर्ध स्मृतः पुरा ।
नमोऽतियशसे तस्मै देवानां परमात्मने ।।११।।

तात! मैं तुमझे उन नामों की व्युत्पत्ति बताता हैं क्योंकि पूर्वकाल से ही तुम मेरे आधे शरीर माने गये हो । जो समस्त देहधारियों के उत्कृष्ट आत्मा हैं, उन महायशस्वी (नारायण) को मेरा नमस्कार है ।11।

नारायणाय विश्वाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रश्च क्रोधसम्भवः ।।१२।।
योऽसौ योनिर्हि सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
अष्टादशगुणं यत्तत्सत्त्वं सत्त्ववतांवर ।।१३।।
प्रकृतिः सा परा मह्यं रोदसी लोकधारिणी ।
ऋता सत्याऽमरा जय्या लोकानामात्मसंज्ञिता ।।१४।।

तस्मात्सर्वाः प्रवर्तन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः ।
तपो यज्ञश्च यष्टा च पुराणः पुरुषो विराट् ॥१५॥
अनिरुद्ध इति प्रोक्तो लोकानां प्रभवाप्ययः ।
ब्राह्मे रात्रिक्षये प्राप्ते तस्य ह्यमिततेजसः ॥१६॥
प्रसादात्प्रादुरभवत्पद्‌ममर्कनिभं क्षणात् ।
तत्र ब्रह्मा समभवत्स तस्यैव प्रसादजः ॥१७॥
अहःक्षये ललाटाच्च सुतो देवस्य वै तथा ।
क्रोधाविष्टस्य संजज्ञे रुद्रः संहारकारकः ॥१८॥

निर्गुण-सगुणरूप विश्वात्मा भगवान् नारायणदेव को नमस्कार है, जिनके प्रसाद से ब्रह्मा और क्रोध से रुद्र प्रकट हुए हैं, वे श्रीहरि ही सम्पूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं । बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अर्जुन! अठारह गुणों वाला (प्रीति, प्रकाश, उत्कर्ष, हल्कापन, सुख, कृपणता का अभाव, रोषाभाव, सन्तोष, श्रद्धा, क्षमा, धृति, अहिंसा, शौच, अक्रोध, सरलता, समता, सत्य तथा दोषदृष्टि का अभाव- ये सत्त्व के अठारह गुण हैं) जो सत्त्व है अर्थात् आदिपुरुष है, वही मेरी परा प्रकृति है । पृथिवी और आकाश की आत्मस्वरूपा वह योगबल से समस्त लोकों को धारण करनेवाली है । वही ऋता (कर्मफलभूत गतिस्वरूपा), सत्या (त्रिकालाबाधित ब्रह्मरूपा), अमर, अजेय तथा सम्पूर्ण लोकों की आत्मा है, उसी से सृष्टि और प्रलय आदि सम्पूर्ण विकार प्रकट होते हैं । वही तप, यज्ञ और यजमान है, वही पुरातन विराट् पुरुष है, उसे ही अनिरुद्ध कहा गया है । उसी से लोकों की सृष्टि और प्रलय होती है । जब प्रलय की रात व्यतीत हुई थी, उस समय उन अमित तेजस्वी अनिरुद्ध के प्रसाद से ही एक कमल प्रकट हुआ और उसी कमल से ब्रह्माजी का प्रादुभाव हुआ । ब्रह्मा का दिन बीतने पर क्रोध के आवेश में आये हुए उस देव के ललाट से उनके पुत्ररूप में संहारकारी रुद्र प्रकट हुए । ये दोनां श्रेष्ठ देवता ब्रह्मा और रुद्र भगवान् के प्रसाद और क्रोध से प्रकट हुए हैं तथा उन्हीं के बताये हुए मार्ग का आश्रय लेकर सृष्टि और संहार का कार्य पूर्ण करते हैं ।

निमित्तमात्रं तावत्र सर्वप्राणिवरप्रदौ ।
कपर्दी जटिलो मुण्डः श्मशानगृहसेवकः ॥२०॥
उग्रव्रतचरो रुद्रो योगी त्रिपुरदारणः ।
दक्षक्रतुहरश्चैव भगनेत्रहरस्तथा ॥२१॥
नारायणात्मको ज्ञेयः पाण्डवेय युगे युगे ।
तस्मिन्हि पूज्यमाने वै देवदेवे महेश्वरे ॥२२॥
सम्पूजितो भवेत्पार्थ देवो नारायणः प्रभुः ।

अहमात्मा हि लोकानां विश्वेषां पाण्डुनन्दन ॥२३॥
तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रं सम्पूजयाम्यहम् ।
यद्यहं नार्चयेयं वै ईशानं वरदं शिवम् ॥२४॥
आत्मानं नार्चयेत्कश्चिदिति मे भावितात्मनः ।
मया प्रमाणं हि कृतं लोकः समनुवर्तते ॥२५॥
प्रमाणानि हि पूज्यानि ततस्तं पूजयाम्यहम् ।
यस्तं वेत्ति स मां वेत्ति योऽनु तं स हि मामनु ॥२६॥
रुद्रो नारायणश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम् ।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु ॥२७॥

समस्त प्राणियों को वर देनेवाले वे दोनों देवता सृष्टि और प्रलय के निमित्त मात्र हैं । (वास्तव में तो सब कुछ भगवान् की इच्छा से ही होता है ।) इनमें से संहारकारी रुद्र के कपर्दी (जटाजूटधारी), जटिल, मुण्ड, श्मशानगृह का सेवन करनेवाले, उग्र वृत्त का आचरण करनेवाले, रुद्र, योगी, परमदारुण, दक्षयज्ञविध्वंसक तथा भगनेत्रहारी आदि अनेक नाम हैं । पाण्डुनन्दन! इन भगवान् रुद्र को नारायणस्वरूप ही जानना चाहिये । पार्थ! प्रत्येक युग में उन देवाधिदेव महेश्वर की पूजा करने से सर्वसमर्थ भगवान् नारायण की ही पूजा होती है । पाण्डुकुमार! मैं सम्पूर्ण जगत् का आत्मा हूँ, अतः मैं पहले अपने आत्मरूप रुद्र की ही पूजा करता हूँ । यदि में वरदाता भगवान् शिव की पूजा न करूँ तो दूसरा कोई भी उन आत्मरूप शंकर का पूजन नहीं करेगा, ऐसी मेरी धारणा है । मेरे किये हुए कार्य को प्रमाण या आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुसरण करते हैं । जिनकी पूजनीयता वेद-शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है, उन्हीं देवताओं की पूजा करनी चाहिये । ऐसा सोचकर ही मैं रुद्रदेव की पूजा करता हूँ । जो रुद्र को जानता है, वह मुझे जानता है, जो उनका अनुगामी है, वह मेरा भी अनुगामी है । कुन्तीनन्दन! रुद्र और नारायण दोनों एक ही स्वरूप हैं, जो दो स्वरूप धारण करके भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में स्थित हो संसार में यज्ञ आदि सब कर्मों में प्रवृत्त होते हैं ।

न हि मे केनचिद्देयो वरः पाण्डवनन्दन ।
इति संचिन्त्य मनसा पुराणं रुद्रमीश्वरम् ॥२८॥
पुत्रार्थमाराधितवानहमात्मानमात्मना ।
न हि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद्विबुधाय च ॥२९॥
ऋते आत्मानमेवेति ततो रुद्रं भजाम्यहम् ।
सब्रह्मकाः सरुद्राश्च सेन्द्रा देवाः सहर्षिभिः ॥३०॥
अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम् ।
भविष्यतां वर्ततां च भूतानां चैव भारत ॥३१॥

सर्वेषामग्रणीर्विष्णुः सेव्यः पूज्यश्च नित्यशः ।
नमस्व हव्यदं विष्णुं तथा शरणदं नम ।।३२।।
वरदं नमस्व कौन्तेय हव्यकव्यभुजं नम ।
चतुर्विधा मम जना भक्ता एव हि मे श्रुतम् ।३३।।
तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठा ये चैवानन्यदेवताः ।
अहमेव गतिस्तेषां निराशीः कर्मकारिणाम् ।।३४।।
ये च शिष्टास्त्रयो भक्ताः फलकामा हि ते मताः ।
सर्वे च्यवनधर्माणः प्रतिबुद्धस्तु श्रेष्ठभाक् ।३५।।

पाण्डवों को आनन्दित करनेवाले अर्जुन! मुझे दूसरा कोई वर नहीं दे सकता; यहीं सोचकर मैंने पुत्रप्राप्ति के लिये स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप पुराणपुरुष जगदीश्वर रुद्र की आराधना की थी । विष्णु अपने आत्मस्वरूप रुद्र के सिवा किसी दूसरे देवता को प्रणाम नहीं करते; इसलिये मैं रुद्र का भजन करता हूँ । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा ऋषियों सहित सम्पूर्ण देवता सुरश्रेष्ठ नारायणदेव श्रीहरि की अर्चना करते हैं । भरतनन्दन! भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में होनेवाले समस्त पुरुषों के भगवान् विष्णु ही अग्रगण्य हैं; अतः सबको सदा उन्हीं की सेवा-पूजा करनी चाहिये । कुन्तीकुमार! तुम हव्यदाता विष्णु को नमस्कार करो, शरणदाता श्रीहरि को शीश झुकाओ, वरदाता विष्णु की वन्दना करो तथा हव्यकव्यभोक्ता भगवान् को प्रणाम करो । तुमने मुझसे सुना है कि आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के मनुष्य मेरे भक्त हैं । इनमें जो एकान्ततः मेरा ही भजन करते हैं; दूसरे देवताओं में भी मुझसे अतिरिक्त अन्य को नहीं देखते, वे सबसे श्रेष्ठ हैं । निष्काम भाव से समस्त कर्म करनेवाले उन भक्तों की परमगति मैं ही हूँ । जो शेष तीन प्रकार के भक्त हैं; वे फल की इच्छा रखनेवाले माने गये हैं अतः वे सभी नीचे गिरनेवाले होते हैं- पुण्यभोग के अनन्तर स्वर्गादि लोकों से च्युत हो जाते हैं, परन्तु ज्ञानी भक्त सर्वश्रेष्ठ फल (भगवत्प्राप्ति) का भागी होता है ।

ब्रह्माणं शितिकण्ठं च याश्चान्या देवताः स्मृताः ।
प्रबुद्धचर्याः सेवन्तो मामेवैष्यन्ति यत्फलम् ।।३६।।
भक्तं प्रति विशेषस्ते एष पार्थानुकीर्तितः ।
त्वं चैवाहं च कौन्तेय नरनारायणौ स्मृतौ ।।३७।।
भारावतरणार्थं तु प्रविष्टौ मानुषीं तनुम् ।
जानाम्यध्यात्मयोगांश्च योऽहं यस्माच्च भारत ।।३८।।
निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तथाऽऽभ्युदयिकोऽपि च ।
नराणामयनं ख्यातमहमेकः सनातनः ।।३९।।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं मम ताः पूर्वमतो नारायणोऽस्म्यहम् ।।४०।।
छादयामि जगद्विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् ।।४१।।
गतिश्च सर्वभूतानां प्रजनश्चापि भारत ।
व्याप्ता मे रोदसी पार्थ कान्तिश्चाभ्यधिका मम ।।४२।।
अधिभूतनिविष्टश्च तद्विश्वं चास्मि भारत ।
क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः ।।४३।।

ज्ञानी भक्त ब्रह्मा, शिव तथा दूसरे देवताओं की निष्कामभाव से सेवा करते हुए भी अन्त में मुझ परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं । पार्थ! यह तुमसे मैंने भक्तों का अन्तर बतलाया है । कुन्तीनन्दन! तुम और मैं दोनों ही नर-नारायण नामक ऋषि हैं और पृथ्वी का भार उतारने के लिये हमने मानव-शरीर में प्रवेश किया है । भारत! मैं अध्यात्म योगों को जानता हूँ तथा मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ- इस बात का भी मुझे ज्ञान है । लौकिक-अभ्युदय का साधक प्रवृतिकार्य और निःश्रेयस प्रदान करनेवाला निवृत्तिधर्म भी मुझसे अज्ञात नहीं है । एकमात्र मैं सनातन पुरुष ही सम्पूर्ण मनुष्यों का सुविख्यात आश्रयभूत नारायण हूँ । नर से उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहा गया है । वह नार (जल) पहले मेरा अयन (निवास स्थान) था; इसलिये ही मैं नारायण कहलाता हूँ । (जो सबसे व्याप्त हो अथवा जो किसी का निवास स्थान हो, उसे वास्तु कहते है ।) मैं ही सूर्यरूप धारण करके अपनी किरणों से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करता हूँ तथा मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों का वास स्थान हूँ; इसलिये मेरा नाम 'वासुदेव' है । भारत! मैं सम्पूर्ण प्राणियों की गति और उत्पत्ति का स्थान हूँ । पार्थ! मैंने आकाश और पृथिवी को व्याप्त कर रखा है । मेरी कान्ति सबसे बढ़कर है । भरतनन्दन! समस्त प्राणी अन्तकाल में जिस ब्रह्म को पाने की इच्छा करते हैं, वह भी मैं ही हूँ! कुन्तीकुमार! मैं सबका अतिक्रमण करके स्थित हूँ । इन सभी कारणों से मेरा नाम 'विष्णु' हुआ है ।

दमात्सिद्धिं परीप्सन्तो मां जनाः कामयन्ति ह ।
दिवं चोर्वीं च मध्यं च तस्माद्दामोदरो ह्यहम् ।।४४।।
पृश्निरित्युच्यते चान्नं वेदा आपोऽमृतं तथा ।
ममैतानि सदा गर्भः पृश्निगर्भस्ततो ह्यहम् ।।४५।।
ऋषयः प्राहुरेवं मां त्रितं कूपनिपातितम् ।
पृश्निगर्भ त्रितं पाहीत्येकतद्वितपातितम् ।।४६।।
ततः स ब्रह्मणः पुत्र आद्यो ह्यषिवरस्त्रितः ।

उत्ततारोदपानाद्वै पृश्निगर्भानुकीर्तनात् ॥४७॥
सूर्यस्य तपतो लोकानग्नेः सोमस्य चाप्युत ।
अंशवो यत्प्रकाशन्ते ममैते केशसंज्ञिताः ॥४८॥
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्द्विजसत्तमाः ।
एवं हि वरदं नाम केशवेति ममार्जुन ।
देवानामथ सर्वेषामृषीणां च महात्मनाम् ॥४९॥
अग्निः सोमेन संयुक्त एकयोनित्वमागतः ।
अग्नीषोममयं तस्माज्जगत्कृत्स्नं चराचरम् ॥५०॥
अपि हि पुराणे भवति एकयोन्यात्मकाग्नीषोमौ देवाश्चाग्निमुखा इति ।
एकयोनित्वाच्च परस्परं हर्षयन्तो लोकान्धारयन्त इति ॥५१॥

मनुष्य दम्भ (इन्द्रियसंयम) के द्वारा सिद्धि पाने की इच्छा करते हुए मुझे पाना चाहते हैं तथा दम्भ के द्वारा ही वे पृथ्वी, स्वर्ग तथा मध्यवर्ती लोकों में ऊँची स्थिति पाने की अभिलाषा करते हैं, इसलिये मैं दामोदर' कहलाता हूँ (दम एव दामः तेन उदीर्यति उन्नतिं प्राप्नोति यस्मात् स दामोदरः, यह दामोदर शब्द की व्युत्पत्ति है ।) अन्न, वेद, जल और अमृत को पृश्नि कहते हैं । ये सदा मेरे गर्भ में रहते हैं; इसलिये मेरा नाम 'पृश्निगर्भ' है । जब त्रितमुनि अपने भाइयों द्वारा कुएँ में गिरा दिये गये; उस समय ऋषियों ने मुझसे इस प्रकार प्रार्थना की- 'पृश्निगर्भ' आप एकत और द्वित के गिराये हुए त्रित को डूबने से बचाइये । उस समय मेरे पृश्निगर्भ नाम का बारम्बार कीर्तन करने से ब्रह्माजी के आदिपुत्र ऋषिप्रवर त्रित उस कुएँ से बाहर हो गये । जगत् को तपानेवाले सूर्य की तथा अग्नि और चन्द्रमा की जो किरणें प्रकाशित होती हैं, वे सब मेरा केश कहलाती हैं । उस केश से युक्त होने के कारण सर्वज्ञ द्विजश्रेष्ठ मुझे केशव कहते है । अर्जुन! इस प्रकार मेरा केशव नाम सम्पूर्ण देवताओं महात्माओं और ऋषियों के लिये वरदायक है । अग्नि ही सोम के साथ संयुक्त हो एक योनि को प्राप्त हुए, इसलिये सम्पूर्ण चराचर जगत् अग्नि-सोममय है । पुराण में यह कहा गया है कि अग्नि और सोम एकयोनि हैं तथा सम्पूर्ण देवताओं के मुख अग्नि हैं । एक योनि होने के कारण ये एक-दूसरे को आनन्द प्रदान करते है और समस्त लोकों को धारण करते है ।

ब्राह्मणमाहात्म्य-

श्रीभगवानुवाच

अथ ब्राह्मणमाहात्म्यं कथयाम्यहमर्जुन ।
ब्राह्मणो जगतां तीर्थं सदा पूज्योऽस्मदादिभिः ॥(स्वकीय)
ब्रह्मा विश्वं सृजत्पूर्वं सर्वादिर्निरवस्कृतम् ।

ब्रह्मघोषैर्दिवं तिष्ठन्त्यमरा ब्रह्मयोनयः ।।३४२/१६।।
ब्राह्मणानां मतिर्वाक्यं कर्मश्रद्धातपांसि च ।
धारयन्ति महीं द्यां च शैक्यो वागमृतं तथा ।।१७।।
नास्ति सत्यात्परो धर्मो नास्ति मातृसमो गुरुः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति प्रेत्य चेह च भूतये ।।१८।।
नैषामुक्षा वर्धते नोत वाहा न गर्गरो मथ्यते सम्प्रदाने ।
अपध्वस्ता दस्युभूता भवन्ति येषां राष्ट्रे ब्राह्मणा वृत्तिहीनाः ।।१९।।
वेदपुराणेतिहासप्रामाण्यान्नारायणमुखोद्गताः ।
सर्वात्मानः सर्वकर्तारः सर्वभावनाश्च ब्राह्मणाश्च ।।२०।।
वाक्संयमकाले हितस्य देवदेवस्य वरप्रदस्य ब्राह्मणाः प्रथमं प्रादुर्भूता,
ब्राह्मणेभ्यश्च शेषा वर्णाः प्रादुर्भूताः ।।२१।।
इत्थं च सुरासुरविशिष्टा ब्राह्मणा यदा मया
ब्रह्मभूतेन पुरा स्वयमेवोत्पादिताः सुरासुरमहर्षयो
भूतविशेषाः स्थापिता निगृहीताश्च ।।२२।।
यथा गौतमादिशापादिन्द्रादयो निगृहीताः ।

श्री भगवान् बोले- हे अर्जुन! अब मैं ब्राह्मणों के माहात्मय को कहता हूँ । ब्राह्मण सम्पूर्ण जगत् के तीर्थ हैं, इसलिये हम सबके द्वारा पूज्य हैं । सबके आदिकारण ब्रह्माजी ने (जो ब्राह्मण हैं) पहले निर्मल विश्व की सृष्टि की थी । ब्रह्म ही जिनकी उत्पत्ति के स्थान हैं, वे अमर देवता ब्राह्मणों की वेदध्वनि से ही स्वर्गलोक को जाते हैं । जैसे छींका दूध, दही आदि भी धारण करता है उसी प्रकार ब्राह्मणों की बुद्धि वाक्य, कर्म, श्रद्धा, तप और वचनामृत, पृथिवी और स्वर्ग को धारण करती है । सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है । माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है तथा ब्राह्मणों से बढ़कर इहलोक और परलोक में कल्याण करनेवाला और कोई नहीं है । जिनके राज्य में ब्राह्मणों के लिये व्यवस्थित आजीविका न हो, उन राजाओं की सवारी बैल और अश्व नहीं रहते, दूसरों को देने लिये उनके यहाँ दही, दूध के मटके नहीं मथे जाते हैं तथा वे अपनी मर्यादा से भ्रष्ट होकर लुटेरे हो जाते हैं । वेद, पुराण और इतिहास के प्रमाण से यह सिद्ध है कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति भगवान् नारायण के मुख से हुई है, अतः वे ब्राह्मण सर्वात्मा, सर्वकर्ता और सर्वभावस्वरूप हैं । वाणी के संयम करने में सबके हितैषी, वरदाता, देवाधिदेव ब्रह्माजी के द्वारा सबसे पहले ब्राह्मण उत्पन्न हुए, फिर ब्राह्मणों से शेष वर्णो का प्रादुर्भाव हुआ । इस प्रकार ब्राह्मण देवताओं और असुरों से भी श्रेष्ठ हैं । पूर्व काल में मैंने स्वयं ही ब्रह्मा का रूप होकर उन ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था । देवता, असुर और महर्षि आदि जो भूतविशेष हैं, उन्हें ब्राह्मणों ने

ही उनके अधिकार पर सीापित किया और उनके द्वारा अपराध होने पर उन्हें दण्ड भी दिया । जैसे गौतम आदि के शाप से इन्द्रादि दण्डित हुए ।

न ह्यृते मन्त्राणां हवनमस्ति न विना पुरुषं तपः सम्भवति ।
हविर्मन्त्राणां सम्पूजा विद्यते देवमानुषऋषीणामनेन त्वं होतेति नियुक्तः ।
ये च मानुषहोत्राधिकारास्ते चक्रुर्ब्राह्मणस्य हि याजनं विधीयते
न क्षत्रवैश्ययोर्द्विजात्योस्तस्माद् ब्राह्मणा ह्यग्निभूता यज्ञानुद्वहन्ति ।
यज्ञास्ते देवांस्तर्पयन्ति देवाः पृथिवीं भावयन्ति शतपथे हि ब्राह्मणमुखे भवति ॥१३॥
अग्नौ समिद्धे स जुहोति यो विद्वान् ब्राह्मणमुखेनाहुतिं जुहोति ॥१४॥
एवमप्यग्निभूता ब्राह्मणा विद्वांसोऽग्निं भावयन्ति ।
अग्निर्विष्णुः सर्वभूतान्यनुप्रविश्य प्राणान्धारयति ॥१५॥

मन्त्रों के बिना हवन नहीं होता और पुरुष के बिना तपस्या सम्भव नहीं होती । हविष्ययुक्त मन्त्रों के सम्बन्ध से देवताओं, मनुष्यों और ऋषियों की पूजा होती है, इसलिये हे अग्निदेव! तुम होता नियुक्त किये गये हो । जो मनुष्यों में हौत्रकर्म के अधिकारी हैं, वे ब्राह्मण ही हैं, क्योंकि उसी के लिये यज्ञ कराने का विधान है । द्विजातियों में जो क्षत्रिय और वैश्य हैं, उन्हें यज्ञ कराने का अधिकार नहीं है । इसलिये अग्निस्वरूप ब्राह्मण ही यज्ञों का भार वहन करते हैं । वे यज्ञ देवताओं को तृप्त करते हैं और देवता भूमण्डल को धन-धान्य से सम्पन्न बनाते हैं । शतपथ ब्राह्मण में भी ब्राह्मण के मुख में आहुति देने की बात कहीं गयी है, जो विद्वान् ब्राह्मण के मुखरूपी अग्नि में दिव्यान्न की आहुति देता है, वह मानो प्रज्वलित अग्नि में ही होम करता है । इस प्रकार ब्राह्मण अग्निस्वरूप हैं । विद्वान् ब्राह्मण अग्नि की आराधना करते हैं । अग्निदेव विष्णु हैं । वे समस्त प्राणियों के भीतर प्रवेश करके उनके प्राणों को धारण करते हैं ।।15।।

<u>ब्रह्मपुराण</u>

श्री राधे

इस पद्य को गौतमजी के प्रसंग में जोड़े- ऋषियों का कौटिल्य

विनायक उवाच

यथा नान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने ।
गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥७४।५७

ब्रह्मोवाच

तथा चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता ।
यत्रासीद्गौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥७४.५६॥

जगाम शालीन् खादन्तीं तां ददर्श स गौतमः ।
गां दृष्ट्वा विकृतां विप्रस्तां तृणेन न्यवारयत् ।। ७४.६० ।।
निवार्यमाणा सा तेन स्वनं कृत्वा पपात गौः ।
तस्यां तु पतितायां च हाहाकारो महानभूत् ।। ७४.६१ ।।

विनायक बोले- मंगलमुखि! जिसको दूसरे न जान सकें, इस रूप से कार्य करो । तुम गौ का रूप धारण कर जहाँ गौतम हैं, वहाँ जाओ । ब्रह्मा बोले- विघ्नराज के मत को मानकर जया ने वैसा ही किया । वह जया गोरूप धारण कर वहाँ गयी जहाँ विप्र गौतम विराजमान थे । वहाँ जाकर चावल खाने लगी । गौतम ने चावल खाती हुई उस गाय को देखा और उसे दुर्बल जानकर एक तिनके से उसे हाँकने लगे । उसको गौतम ही हाँक रहे थे कि वह निर्मल गौ कारुण क्रन्दन कर गिर पड़ी । उसके गिर जाने पर वहाँ महान् हाहाकार हुआ ।

गोवर्धनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अथ गोवर्धनं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ।
पितॄणां पुण्यजननं स्मरणादपि पापनुत् ।।६१.१।।
तस्य प्रभाव एष स्यान्मया दृष्टस्तु नारद ।
ब्राह्मणः कर्षकः कश्चिज्जाबालिरिति विश्रुतः ।।६१.२।।
न विमुंचत्यनड्वाहो मध्यं यातेऽपि भास्करे ।
प्रतोदेन प्रतुदति पृष्ठतोऽपि च पार्श्वयोः ।।६१.३।।
तौ गावावश्रुपूर्णाक्षौ दृष्ट्वा गौः कामदोहिनी ।
सुरभिर्जगतां माता नन्दिने सर्वमब्रवीत् ।।६१.४।।

ब्रह्माजी ने कहा- अब सर्वपापनाशक और पितरों को सुख देनेवाला गोवर्धन तीर्थ है, जिसके स्मरण से ही पाप नष्ट हो जाते हैं । नारद! उसका प्रभाव मैंने अपने नेत्रों से देखा है, वह इस प्रकार है- जाबालि नाम से प्रसिद्ध कोई कृषक ब्राह्मण था । वह मध्याह्न हो जाने पर भी अपने बैलों को नहीं छोड़ता था अपितु चाबुक से उनके पृष्ठ और पार्श्वभाग पर मारता था । इस प्रकार पीड़ित आँसुओं से भरे नेत्र वाले बैलों को देखकर जगत् की माता कामधेनु गौ ने नन्दी से जाकर सबकुछ कहा ।

स चापि व्यथितो भूत्वा शम्भवे तन्न्यवेदयत् ।
शम्भुश्च वृषभं प्राह सर्वं सिद्ध्यतु ते वचः ।। ६१.५ ।।
शिवाज्ञासहितो नन्दी गोजातं सर्वमाहरत् ।
नष्टेषु गोषु सर्वेषु स्वर्गे मर्त्ये ततस्त्वरा ।। ६१.६ ।।
मामवोचन् सुरगणा विना गोभिर्न जीव्यते ।

तानवोचं सुरान् सर्वान् शंकरं यात याचत ।। ६१.७ ।।
तथैवेशं तु ते सर्वे स्तुत्वा कार्यं न्यवेदयन् ।
ईशोऽपि विबुधानाह जानाति वृषभो मम ।। ६१.८ ।।
ते वृषं प्रोचुरमरा देहि गा उपकारिणः ।
वृषोऽपि विबुधानाह गोसवः क्रियतां क्रतुः ।। ६१.६ ।।
ततः प्राप्स्यथ गाः सर्वा या दिव्या याश्च मानुषाः ।
ततः प्रवर्तते यज्ञो गोसवो देवनिर्मितः ।। ६१.१० ।।
गौतम्याश्च शुभे पार्श्वे गावो ववृधिरे ततः ।
गोवर्धनं तु तत्तीर्थं देवानां प्रीतिवर्धनम् ।। ६१.११ ।।
तत्र स्नानं मुनिश्रेष्ठ गोसहस्रफलप्रदम् ।
किंचिद्दानादिना यत्स्यात्फलं तत्तु न विद्महे ।। ६१.१२ ।।

नन्दी ने भी उन मूक पशुओं की व्यथा से व्यथित होकर भगवान् शंकर से निवेदन किया । शम्भु ने नन्दी से कहा कि तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार हो कार्यसिद्धि होगी । नन्दी ने शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण गोसमूह को ही छिपा दिया, इस प्रकार गोसमूह के नष्ट हो जाने पर स्वर्ग और मृत्युलोक में खलबली मच गयी । देवताओं ने शीघ्रता से मेरे पास आकर कहा कि गौओं के बिना हम सब कैसे जी सकते हैं । उन देवताओं से मैंने कहा कि शंकर के पास जाओ और उनसे याचना करो । मेरे कथनानुसार उन सब देवताओं ने शिव की स्तुति कर उनसे अपना अभिप्राय व्यक्त किया । शंकर ने भी कहा कि इस विषय को मेरा वृषभ नन्दी ही जानता है । इन देवताओं ने पुनः नन्दी से कहा कि उपकारी गौओं को दे दो । नन्दी ने भी उनसे कहा कि आप लोग गोसव नामक यज्ञ करें । तभी जितनी दिव्य और और मृत्युलोक की गौएँ हैं वे सभी प्राप्त हो सकती हैं । तदनन्तर देवों की योजना के अनुसार गोसव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ । यज्ञ के परिणामस्वरूप गौतमी के पवित्र किनारे में गौओं की वृद्धि होने लगी । मुनिश्रेष्ठ! उस तीर्थ का स्नान सहस्र गोदान का फल देता है। वहाँ दान देने का जो फल है, उसको तो मैं भी नहीं जानता अतः कहने में असमर्थ हूँ ।

महर्षि दधीचि के द्वारा अस्थि दान के लिये उद्यत होने पर देवताओं ने गौ से प्रार्थना की-

देवा ऊचुः
वज्रं मुखं वः क्रियते हितार्थं गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन ।
दधीचिदेहं तु विदार्य यूयमस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य ।।११०/५४।।
ब्रह्मोवाच

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रुः संलिह्य चास्थीनि ददुः सुराणाम् ।
सुरास्त्वरा जग्मुरदीनसत्त्वाः स्वमालयं चापि तथैव गावः ॥५५॥

देवों ने कहा- गौओ! आज देवों के हित के लिये तुम सभी का मुख वज्र के समान कठोर बना दिया जाता है, इसलिये तत्काल ही दधीचि के शरीर को विदीर्णकर अस्थियों को शुद्ध कर दो । जिससे कि देवों के लिये अस्त्र-शस्त्र बनाये जायँ । ब्रह्मा ने कहा- उन गौओं ने देवों के कथनानुसार वैसा ही किया, अस्थियों को चाट-चाट कर स्वच्छ पवित्र कर देवताओं को दे दिया । सफल मनोरथ हो पराक्रमी देवता शीघ्र ही अपने-अपने स्थान को चले गये, इसी प्रकार गौओं ने भी अपना मार्गावलम्बन किया ।

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके ।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति प्राणान् प्रियान् पुण्यभाजो मनुष्याः ॥६३॥

इस मनुष्यलोक में जो कुछ उत्पन्न होता है वह नश्वर है, इसलिये इसके विषय में शोक करना व्यर्थ है, परन्तु वे मनुष्य अत्यन्त पुण्यात्मा हैं, जो गौ, विप्र और देवों के लिये अपने प्रिय प्राणों का बलिदान करते हैं ।

गोरक्षतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् ।
अशेषपापशमनं तत्र वृत्तमिदं श्रृणु ॥ १३१.१ ॥
तत्राख्यानमिदं त्वासीदितिहासं पुरातनम् ।
सरमेति प्रसिद्धाऽस्ति नाम्ना देवशुनी मुने ॥ १३१.२ ॥
तस्याः पुत्रौ महाश्रेष्ठौ श्वानौ नित्यं जनाननु ।
गामिनौ पवनाहारौ चतुरक्षौ यमप्रियौ ॥ १३१.३ ॥
गा रक्षति स्म देवानां यज्ञार्थं कल्पितान् पशून् ।
रक्षन्तीमनुजग्मुस्ते राक्षसा दैत्यदानवाः ॥ १३१.४ ॥
रक्षन्तीं तां महाप्राज्ञाः श्वानयोर्मातरं शुनीम् ।
प्रलोभयित्वा विविधैर्वाक्यैर्दानैश्च यत्नतः ॥ १३१.५ ॥
हृता गा राक्षसैः पापैः पश्वर्थे कल्पिताः शुभाः ।
तत आगत्य सा देवानिदमाह क्रमाच्छुनी ॥ १३१.६ ॥

सरमोवाच -

मां बद्ध्वा राक्षसैः पाशैस्ताडयित्वा प्रहारकैः ।
नीता गा यज्ञसिद्ध्यर्थं कल्पिताः पशवः सुराः ॥१३१.७॥

ब्रह्मोवाच -

तस्या वाचं निशम्याशु सुरान् प्राह बृहस्पतिः ।।१३१.८।।

ब्रह्माजी ने कहा- अब पितरों की प्रीति को बढ़ानेवाला तथा समस्त पापों को दूर करनेवाला एक यमतीर्थ है, उस तीर्थ की घटना को सुनो । उसके विषय में यह एक पुराना इतिहास सुना जाता है । मुने! सरमा नाम की एक प्रसिद्ध देवशुनी (कुतिया) थी, उसके दो बहुत अच्छे पुत्र थे, जो वायु पीकर रहनेवाले, सर्वदा प्यार से देवों के पीछे चलनेवाले, चतुरक्ष और यम के प्रिय थे । वह देवशुनी यज्ञ के लिये पालित पशुओं और गायों की रक्षा करती थी । एक बार राक्षस और दैत्य उस रक्षा करनेवाली कुतिया के पास गये और उसको चतुराई से विविध प्रकार के खाद्य पदार्थो के लोभ में फँसाकर और चटुल वचनों के द्वारा उसको धोखा देकर वे पापी राक्षस सब गायों और पशुओं को चुरा ले गये । उन पशुओं को अपने यज्ञ का शुभ पशु भी बना लिया । तब वह कुतिया देवों के पास आकर बोली ।

सरमा ने कहा- देवगण! राक्षसों ने मुझे रस्सी से बाँधकर डण्डों से खूब पीटा है और यज्ञ के लिये सब गायों को ले जाकर अपने पशु बना लिया है ।

ब्रह्माजी ने कहा- उसकी बातों को सुनकर बृहस्पति ने देवों से कहा ।

बृहस्पतिरुवाच -

इयं विकृतरूपास्ते अस्याः पापं च लक्षये ।
अस्या मतेन ता गावो नीता नान्येन हेतुना ।
पापेयं सुकृतीवेति लक्ष्यते देहचेष्टितैः ।।१३१.९।।

यह इस समय विकृत रूप दिखायी देती है, जिससे इसका पाप स्पष्ट लक्षित हो रहा है । इसकी राय से गौएँ चुरायी गयी हैं और कोई कारण नहीं । यह पापिष्ठा अपनी शारीरिक चेष्टाओं से निर्दोष-सी दिखाई दे रही है ।

ब्रह्मोवाच -

तद्गुरोर्वचनाच्छक्रः पदा तां प्राहरच्छुनीम् ।
पदाघातात्तदा तस्या मुखात्क्षीरं प्रसुस्रुवे ।।१३१.१०।।
पुनः प्राह शचीभर्ता क्षीरं पीतं त्वया शुनि ।
राक्षसैश्च तदा दत्तं तस्मान्नीतास्तु गा मम ।।१३१.११।।

सरमोवाच -

नापराधोऽस्ति मे नाथ न चान्यस्यापि कस्यचित् ।
नापराधो न चोपेक्षा ममास्ति त्रिदशेश्वर ।
तस्माद्दुष्टोऽसि किं नाथ रिपवो बलिनस्तु ते ।।१३१.१२।।

ब्रह्मोवाच -

ततो ध्यात्वा देवगुरुर्ज्ञात्वा तस्या विचेष्टितम् ।
सत्यं शक्र त्वियं दुष्टा रिपूणां पक्षकारिणी ।।१३१.१३।।
ततः शशाप तां शक्रः पापिष्ठे त्वं शुनी भव ।
मर्त्यलोके पापभूता अज्ञानात्पापकारिणी ।।१३१.१४।।
तदेन्द्रस्य तु शापेन मानुषे सा व्यजायत ।
यथा शप्ता मघवता पापात्सा ह्यतिभीषणा ।।१३१.१५।।
गावो या राक्षसैर्नीतास्तासामानयनाय च ।
यत्नं कुर्वन् सुरपतिर्विष्णवे तन्न्यवेदयत् ।।१३१.१६।।
विष्णुर्दैत्यांश्च दनुजान् गोहर्तृंश्चैव राक्षसान् ।
हन्तुं प्रयत्नमकरोज्जगृहे च महद्धनुः ।।१३१.१७।।

ब्रह्मा ने कहा- अपने गुरु की बातों को सुनकर इन्द्र ने उस कुतिया को पैर से मारा । उस समय पैर की चोट से उसके मुहँ से दूध निकल आया । पुनः इन्द्र ने कहा- शुनि! तुमने राक्षसों का दिया हुआ दूध पिया है, इस प्रकार तुम्हारे कारण ही वे मेरी गायों को ले गये हैं । सरमा ने कहा- नाथ! इसमें मेरा अपराध नहीं है, किसी दूसरे का भी नहीं है । देवेश! न तो मेरा अपराध है और न इस विषय में मेरी उदासीनता ही है । नाथ! वे शत्रु बली हैं । आप क्यों रुष्ट हो रहे है? ब्रह्मा ने कहा- तब देवगुरु ने ध्यान लगाकर उसकी कपटचेष्टाओं को जान लिया और कहा- शक्र! यह दुष्टा शत्रुओं का पक्ष करनेवाली है । तब इन्द्र ने उसको शाप दिया- पापिष्ठे! तुम मर्त्यलोक में अज्ञानवश पाप करनेवाली पापरूपिणी कुतिया हो जाओ । तब इन्द्र के शाप से वह मृत्युलोक में, जैसा कि इन्द्र ने शाप दिया था, अपने पापों के कारण भयंकर कुतिया हुई । इधर देवेन्द्र उन राक्षसों द्वारा चुरायी गौओं को ले आने के लिये प्रयत्न करने लगे और यह सारी कथा विष्णुजी से कह सुनायी । विष्णु भगवान् यह सुनकर उन गौओं के चुरानेवाले राक्षसों, दस्युओं और दैत्यों को मारने के लिये उद्यत हो गये । उन्होंने दैत्यों को नष्ट करनेवाले लोकविख्यात महान् शाङ्र्गधनुष को हाथ में लिया ।

शाङ्र्गं यल्लोकविख्यातं दैत्यनाशनमेव च ।
जितारिः पूजितो देवैः स्वयं स्थित्वा जनार्दनः ।।१३१.१८।।
यत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्र्गपाणिर्जगत्प्रभुः ।
तत्रस्थान् दैत्यदनुजान् राक्षसांश्च बलीयसः ।।१३१.१९।।
पुनर्जघ्ने स वै विष्णुर्गा यैर्नीताश्च राक्षसैः ।
तत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्र्गपाणिरिति श्रुतः ।।१३१.२०।।
युध्यमानस्ततो विष्णुर्दितिजै राक्षसैः सह ।

ते जग्मुर्दक्षिणामाशां विष्णोस्त्रासान्महामुने ।।१३१.२१।।
अन्वगच्छत्ततो विष्णुस्तानेव परमेश्वरः ।
गरुत्मता तानवाप्य शार्ङ्गमुक्तैर्मनोजवैः ।।१३१.२२।।
बाणैस्तान् व्याहनद्विष्णुर्गङ्गाया उत्तरे तटे ।
देवारयः क्षयं नीता विष्णुना प्रभविष्णुना ।। १३१.२३ ।।
शार्ङ्गमुक्तैर्महावेगैः सुस्वनैश्च सुमन्त्रितैः ।
क्षयं प्राप्ता विष्णुबाणैस्ततस्ते देवशत्रवः ।। १३१.२४ ।।
गावो लब्धा यत्र देवैर्बाणतीर्थं तदुच्यते ।
वैष्णवं लोकविदितं गोतीर्थं चेति विश्रुतम् ।। १३१.२५ ।।

शत्रुविजयी देवों से पूजित तथा संसार के स्वामी विष्णु साथ में धनुष लेकर उस दण्डकारण्य में गये और वहाँ के बलवान् दैत्य, दनुज और राक्षसों को मारने लगे । पुनः शाङ्र्गपाणि नाम से प्रसिद्ध विष्णुदेव ने गायों को चुरानेवाले उन राक्षसों को भी मार डाला । इसके अनन्तर विष्णु अन्य दैत्यों और राक्षसों से युद्ध करने लगे । महामुने! विष्णु के भय से वे राक्षस दक्षिण दिशा की ओर भाग गये । तब परमेश्वर विष्णु गरुड़ पर सवार होकर उनका पीछा करने लगे और उनको पाकर मन के समान वेगवाले अपने धनुष से छोड़े हुए बाण से गंगा के उत्तर तट पर उन्हें मार गिराया । इस प्रकार पराक्रमी विष्णु ने राक्षसों का संहार कर डाला । तदनन्तर वे सभी देवशत्रु धनुष से फेंके गये सुमन्त्रित गम्भीर शब्द करनेवाले और महावेग वाले विष्णु के बाणों से नष्ट कर दिये गये । जहाँ देवताओं ने गौओं को पाया, उसको बाणतीर्थ कहा जाता है । लोकविदित वैष्णवतीर्थ एवं गोतीर्थ नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई ।

पश्वर्थे कल्पिता गावो गङ्गाया दक्षिणे तटे ।
प्रद्रुतास्ते सुराः सर्वे गङ्गायां सन्न्यवेशयन् ।। १३१.२६ ।।
तन्मध्ये कारयामासुर्द्वीपं चैवाश्रयं गवाम् ।
तैर्गोभिस्तत्र गङ्गायां सुरयज्ञो व्यजायत ।। १३१.२७ ।।

गंगा के दक्षिण तट पर वे गायें यज्ञपशु बनायी गयीं थीं । वे देवता यह देख दौड़ कर गंगा में घुस गये । उसके मध्य में उन्होंने गौओं के रहने के योग्य एक उत्तम द्वीप बनाया, वहीं उन गौओं के द्वारा देवयज्ञ सम्पन्न हुआ ।

यज्ञतीर्थं तु तत्प्रोक्तं गोद्वीपं गाङ्गमध्यतः ।
देवानां यजनं तच्च सर्वकामप्रदं शुभम् ।। १३१.२८ ।।
स्वयं मूर्तिमती भूत्वा गङ्गाशक्तिर्महाद्युते ।
असारापारसंसारसागरोत्तरणे तरिः ।। १३१.२६ ।।
विश्वेश्वरी योगमाया सद्भक्ताभयदायिनी ।

गोरक्षं तु ततस्तीर्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥ १३१.३० ॥
श्वभ्यां च सहितः श्रीमान् दक्षिणाशापतिः प्रभुः ।
सद्भवत्या तोषयामास गङ्गायां सुरसत्तमान् ॥ १३१.३७ ॥
दत्तवन्तो वरं श्रेष्ठं सरमाया विशापकम् ।
अपि दुष्कृतकर्माणः पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥ १३१.५१ ॥

गंगा के मध्य में जहाँ वह सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाला देवों का शुभ यज्ञ हुआ, वह गोतीर्थ और यज्ञतीर्थ कहलाया । महाकान्तिमान्! इस असार और अपार संसारसागर से पार लगाने में नौका के समान, विश्वेश्वरी, योगमाया और भगवद्भक्तों को अभय प्रदान करनेवाली गंगज्ञशक्ति मूर्ति धारण करके उस यज्ञ में उपस्थित थीं । इसके बाद गंगा के दक्षिण तट पर गोरक्ष नामक तीर्थ बना । अपने श्वानों के सहित दक्षिण दिशा के स्वामी प्रभु यम ने सद्भक्ति से युक्त हो गंगा और तत्रस्थित देवताओं को स्तुत्यादि से प्रसन्न किया । देवों ने प्रसन्न होकर सरमा को शापरहित करने के लिये वर प्रदान किया । इस प्रकार अति दुष्कर्म करनेवाला पितर भी इस (मोक्षमाहात्म्य) से मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं ।

कृष्ण उवाच -
गावोऽस्मद्दैवतं तात वयं वनचरा यतः ।
गावोऽस्माकं परावृत्तिः सैवास्माकं परागतिः ॥

कृष्ण ने कहा- हे तात! गौएँ ही हमारी देवता हैं क्योंकि हम वन में विचरण करते हैं । गौएँ ही हमारी श्रेष्ठ जीविका हैं और वे ही हमारी परम गति हैं ।

इस प्रसंग को पृथुजी वाला में जोड़ना है ।
पृथु के द्वारा गोरूपा पृथिवी का दोहन

पृथु के पृथिवी पर रुष्ट हो जाने पर देवताओं ने कहा -
देवा ऊचुः
ततो देवाश्च ऋषयः सान्त्वयित्वा नृपोत्तमम् ।
महीं च मातरं देवीमूचुः सुरगणास्तदा ॥१४१.२३॥
ब्रह्मोवाच
भूमे गोरूपिणी भूत्वा पयोरूपा महौषधीः ।
देहि त्वं पृथवे राज्ञे ततः प्रीतो भवेन्नृपः ।
प्रजासंरक्षणं च स्यात्ततः क्षेमं भविष्यति ॥१४१.२४॥
देवा ऊचुः
ततो गोरूपमास्थाय भूम्यासीत्कपिलान्तिके ।

दुदोह च महौषधीः राजा वेनकरोद्भवः ॥ १४१.२५ ॥
यत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः कपिलो मुनिः ।
महीं गोरूपमापन्नां नर्मदायां महामुने ॥ १४१.२६ ॥
सरस्वत्यां भागीरथ्यां गोदावर्या विशेषतः ।
महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत् ॥ १४१.२७ ॥
सा दुह्यमाना पृथुना पुण्यतोयाऽभवन्नदी ।
गौतम्या संगता चाभूत्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४१.२८ ॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कपिलासंगमं विदुः ।
तत्राष्टाशीतिः पूज्यानि सहस्राणि महामते ॥ १४१.२९ ॥
तीर्थान्याहुर्मुनिगणाः स्मरणादपि नारद ।
पावनानि जगत्यस्मिंस्तानि सर्वाण्यनुक्रमात् ॥ १४१.३० ॥

देवताओं ने कहा- तदनन्तर देवों और ऋषियों ने उस नृपवर्ग को समझा-बुझाकर शान्त किया । तब देवों ने माता पृथिवी देवी से कहा । ब्रह्माजी ने कहा- भूमि! तुम गोरूप होकर दूध के रूप में महौषधियाँ राजा पृथु को दे दो । इससे राजा प्रसन्न हो जायँगे और तब प्रजा की रक्षा भी हो जायगी । इस प्रकार सबका कल्याण हेगा । देवगण बोले- इसके बाद पृथिवी गौ का रूप धारण कर कपिल के समीप खड़ी हो गयी, जहाँ गन्धर्वो के सहित, ऋषि और कपिल मुनि थे । वहाँ वेन के हाथ से उत्पन्न राजा ने महौषधियों को दुहा । महामुनि नारद! गोरूप धारण करनेवाली उस पृथ्वी के दूध को उस राजा ने नर्मदा, सरस्वती, भागीरथी, गोदावरी आदि विशिष्ट महानदियों में भली-भाँति दुहा । पृथु से दुही गयी वह कपिला गौ पवित्र जलवाली नदी बन गयी और वह गौतमी से जाकर मिल गयी । इस प्रकार उसका मिलन एक आश्चर्यजनक घटना हुई, तब से वह तीर्थ कपिलासंगम कहा जाने लगा । महामते! वहाँ पर मुनिगण अस्सी हजार पूज्य तीर्थ बतलाते हैं । नारद! इस संसार में वे सब तीर्थ क्रमशः स्मरण मात्र से सबको पवित्र कर देते हैं ।

पृथिवी का मूल्य एक गाय
कपिलासंगम तीर्थवर्णन

ब्रह्मोवाच -

कपिलातीर्थमाख्यातं तदेवाङ्गिरसं स्मृतम् ।
तदेवादित्यमाख्यातं सैंहिकेयं तदुच्यते ॥ १५५.१ ॥
गौतम्या दक्षिणे पारे आदित्यान्मुनिसत्तम ।
अयाजयन्नङ्गिरसो दक्षिणां ते भुवं ददुः ॥ १५५.२ ॥
अङ्गिरोभ्यस्तदादित्यास्तपसेऽङ्गिरसो ययुः ।
सा भूमिः सैंहिकी भूत्वा जनान् सर्वानभक्षयत् ॥ १५५.३ ॥

तत्रसुस्ते जनाः सर्वे अङ्गिरोभ्यो न्यवेदयन् ।
विभीता ज्ञानतो ज्ञात्वा भुवं तां सैंहिकीमिति ॥ १५५.४ ॥
आदित्याननुगत्वाथ वाचमङ्गिरसोऽब्रुवन् ।
भुवं गृह्णन्तु या दत्ता नेत्यादित्यास्तदाऽब्रुवन् ॥ १५५.५ ॥
निवृत्तां दक्षिणां नैव प्रतिगृह्णन्ति सूरयः ।
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् ॥ १५५.६ ॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ।
भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्वचित् ॥ १५५.७ ॥
पापमस्ति महारौद्रं न स्वीकुर्मः पुनस्तु ताम् ।
एवं यदा स्वदत्ताया हरणे किं तदा भवेत् ॥ १५५.८ ॥

ब्रह्मा बोले - कपिलासंगम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है, उसी को आंगिरस, आदित्य और सैंहिकेय तीर्थ भी कहा जाता है । मुनिश्रेष्ठ! अंगिरसों ने गौतमी के दक्षिण तट पर आदित्यों का यज्ञ कराया । उन आदित्यों ने दक्षिणा में अंगिरसों को पृथिवी दी । अंगिरस तपस्या के लिये चले गये । वह भूमि सैंहिकी बनकर सब लोगों को खाने लगी । वे सब लोग भयत्रस्त हो गये और उन्होंने जाकर अंगिरसों से अपनी कष्टगाथा सुनायी । अपने अन्तर्ज्ञान से उस पृथ्वी का सैंहिकी होना जानकर वे भी डर से गये । इसके बाद वे आदित्यों के पास जाकर बोले- अपनी दी हुई पृथिवी को ले लीजिये । तब आदित्यों ने कहा- नहीं, ज्ञानी दक्षिणा में दिये गये पदार्थ को पुनः स्वयं अपने नहीं लेते । जो अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि को छीन लेता है, वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में कीड़ा बनता हैं । अपनी अथवा दूसरे की दी हुई भूमि को ले लेने की अपेक्षा कदाचित् और दूसरा महाभयंकर पाप नहीं है, इसलिये पुनः उस भूमि को हम नहीं ग्रहण करेंगे । यद्यपि स्वदत्त पृथिवी के पुनः ग्रहण में पाप होता है तब अब क्या होगा ?

तथापि क्रयरूपेण गृह्णीमो दक्षिणां भुवम् ।
तथेत्युक्ते तु ते देवाः कपिलां शुभलक्षणाम् ॥ १५५.९ ॥
गङ्गाया दक्षिणे पारे भुवः स्थाने तु तां ददुः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदः साक्षाद्विष्णुस्तिष्ठति मूर्तिमान् ॥ १५५.१० ॥
कपिलासंगमं तच्च सर्वाघौघविनाशनम् ।
तत्राभवद्दानतोयादापगा कपिलाभिधा ॥ १५५.११ ॥
सस्यवत्या अपि भुवो दानाद्गोदानमुत्तमम् ।
लोकरक्षां चकारासौ कृत्वा विनिमयं मुनिः ॥ १५५.१२ ॥
यत्र तीर्थे च तद्वृत्तं गोतीर्थं तदुदाहृतम् ।
पुण्यदं तत्र तीर्थानां शतमुक्तं मनीषिभिः ॥ १५५.१३ ॥

तत्र स्नानेन दानेन भूमिदानफलं लभेत् ।
संगता गङ्गया तच्च कपिलासंगमं विदुः ।। १५५.१४ ।।

तथापि मूल्य देकर क्रय के रूप में इस दक्षिणा दी हुई पृथ्वी को ले लेता हूँ । ऐसा ही हो, इस तरह अंगिरसों के कहने पर उन आदित्यों ने शुभ लक्षणों वाली कपिला गौ को पृथिवी के निष्क्रय के रूप में गंगा के दक्षिण तीर पर दे दिया । उस स्थान पर भुक्ति और मुक्ति देनेवाले साक्षात् मूर्तिमान् विष्णु निवास करते हैं । वहाँ वह कपिलासंगम नामक एक तीर्थ बन गया जो पापों को दूर करनेवाला है । वहीं दानजल के गिरने से कपिला नाम की एक नदी बन गयी । सस्यसम्पन्न पृथिवी के दान से भी गोदान उत्तम दान है । इस प्रकार उस मुनि ने दान का विनिमय कर लोक रक्षा की । जहाँ वह घटना हुई, उसको गोतीर्थ कहा जाता है । मनीषियों ने वहाँ और पुण्यप्रद सौ तीर्थों को कहा है । वहाँ स्नान और दान करने से भूमिदान का फल प्राप्त होता है । गंगा से मिलने पर उस स्थान को कपिलासंगम कहा जाता है ।

।। अध्याय समाप्त ।।

सर्वस्य जगतः पालौ वत्सपालौ महाव्रजे ।।१८४/४७।।

जो समस्त संसार के पालक हैं, वे महाव्रज में बछड़ों के पालक बने ।

पूतना के उद्धार के बाद नन्द गोप आदि के द्वारा रक्षोघ्न मन्त्रों का पाठ कर भगवान् कृष्ण के ऊपर गोपुच्छभ्रामण

व्यास उवाच -
आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदा च ततो द्विजाः ।
गोपुच्छभ्रामणाद्यैश्च बालदोषमपाकरोत् ।। १८४.१२ ।।
गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके ।
कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वन्निदमुदैरयत् ।। १८४.१३ ।।
नन्दगोप उवाच -
रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः ।
यस्य नाभिसमुद्भूतात्पङ्कजादभवज्जगत् ।। १८४.१४ ।।
येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत् ।
वराहरूपधृग्देवः स त्वां रक्षतु केशवः ।। १८४.१५ ।।
गुह्यं स जठरं विष्णुर्जङ्घापादौ जनार्दनः ।
वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत् ।। १८४.१६ ।।
त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुधः ।

शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः ।। १८४.१७ ।।
मुखबाहू प्रबाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः ।। १८४.१८ ।।
त्वां दिक्षु पातु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः ।
हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ।। १८४.१६ ।।

व्यासजी ने कहा– द्विजगण! तब अत्यन्त त्रस्त यशोदा ने कृष्ण को उठाकर उनके ऊपर गोपुच्छ घुमाने आदि के द्वारा बालदोष का निराकरण किया । नन्दगोप ने भी कृष्ण के मस्तक पर गोबर रखकर यह कहते हुए रक्षा की । नन्दगोप ने स्तुति की– समस्त भूतों के आदिकारण हरि तुम्हारी रक्षा करें । जिनकी नाभि से उत्पन्न कमल से जगत् की सृष्टि हुई और जिन्होंने वराह रूप बनाकर दंष्ट्रा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार कर संसार को धारण किया, वे केशव तुम्हारी रक्षा करें । विष्णु तुम्हारे गुह्यस्थान एवं जंघाओं की रक्षा करें, जनार्दन पैरों की रक्षा करें । वे वामन तुम्हारी सदा रक्षा करें, जो एक ही क्षण में तीन पगों में तीनों लोक को आक्रान्त कर चमकते हुए अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित हो गये थे । गोविन्द तुम्हारे सिर की, केशव कण्ठ की और अप्रतिहत शक्ति वाले अविनाशी नारायण मुख, बाहु, मन तथा समस्त इन्द्रियों की रक्षा करें । दिशाओं में वैकुण्ठ तथा विदिशाओं में मधुसुदन तुम्हारी रक्षा करें ।आकाश में ऋषिकेश और भूमि पर महीधर तुम्हारी रक्षा करें ।

गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटगतौ पुनः ।
तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ।। १८४.३३ ।।

दोनों भाई गौओं के स्थान से क्रीड़ा करते–करते बछड़ों के स्थान पर चले जाते और नवप्रसूत गायों के बछड़ों की पूँछ पकड़कर खींचने लगते थे ।

ऋचश्च यो वेद स वेद वेदान्यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम् ।
सामानि यो वेद स वेद ब्रह्म यो मानसं वेद स वेद सर्वम् ।।२,१५.६८।।
होमार्थं मुनिकल्याभिर्दुह्यमानासु धेनुषु ।
स्थाने मुनिकुमारेषु तं दोहं हि नयत्सु च ।। २,२६.१३ ।।

जो ऋग्वेद को जानता है वह वेदों को जानता है, यजुर्वेद का ज्ञाता यज्ञ को, सामवेदज्ञ ब्रह्म को और मानस को (यज्ञको) जानने वाला सब कुछ को जान लेता है । होमार्थ मुनिश्रेष्ठों के द्वारा धेनुओं के दुहने पर और मुनिकुमारों के स्थान पर दूध को जाने वालों पर ।

<u>हैहयाधिपति सहस्रार्जुन और महर्षि जमदग्नि की धेनु</u>

राजा सहस्रार्जुन ने महर्षि के आतिथ्य से प्रसन्न होकर कहा –

राजोवाच -

महर्षे देहि मेऽनुज्ञां गमिष्यामि स्वकं पुरम् ।
समग्रवाहनबलो ह्यहं तस्मान्महामुने ॥ २,२६.५० ॥
कर्तु न शक्यमातिथ्यं त्वया वन्याशिना वने ।
अथवा त्वं तपःशक्त्या कर्तुमातिथ्यमद्य मे ॥ २,२६.५१ ॥
शक्नोष्यपि पुरीं गन्तुं मामनुज्ञातुमर्हसि ।
अन्यथा चेत्खलैः सैन्यैरत्यर्थं मुनिसत्तम ॥ २,२६.५२ ॥
तपस्विनां भवेत्पीडा नियमक्षयकारिका ।

राजा ने कहा– हे महर्षे! इसलिये आप मुझे आज्ञा दें, मैं समग्र वाहन और सेना के साथ अपने नगर को जाऊँगा । आप वन्याशी के द्वारा हमारा आतिथ्य नहीं हो सकता अथवा अपनी शक्ति से आतिथ्य करने में सक्षम हो सकते हैं । आप मुझे अपने नगर जाने के लिये आज्ञा कर सकते हैं, अन्यथा हे मुनिसत्तम! यदि खल सैनिकों के द्वारा भोजनार्थ उपद्रव किया गया तो तपस्वियों को नियम क्षय करनेवाली पीड़ा हो जायगी ।

वसिष्ठ उवाच -

इत्येवमुक्तः स मुनिस्तं प्राह स्थीयतां क्षणम् ॥ २,२६.५३ ॥
सर्वं सम्पादयिष्येऽहमातिथ्यं सानुगस्य ते ।
इत्युक्त्वाऽऽहूय तां दोग्ध्रीमुवाचायं ममातिथिः ॥ २,२६.५४ ॥
उपागतस्त्वया तस्मात्क्रियतामद्य सत्कृतिः ।
इत्युक्ता मुनिना दोग्ध्री सातिथेयमशेषतः ।
दुदोह नृपतेराशु यद्योग्यं मुनिगौरवात् ॥ २,२६.५५ ॥

वसिष्ठजी ने कहा– राजा के ऐसा कहने पर मुनि ने कहा– आप सभी क्षण भर रुकें । मैं आपके समग्र वाहन, बल सहित आपका आतिथ्य सम्पादन करूँगा । ऐसा कहकर मुनि ने सुरभि को बुलाया और कहा कि ये मेरे अतिथि आये हैं अतः तुम्हारे द्वारा आज इनका सत्कार किया जाना चाहिये । मुनि के ऐसा कहने पर उस धेनु ने राजा के लिये यथायोग्य और मुनि के गौरव के अनुसार सम्पूर्ण आतिथ्य को उत्पन्न कर दिया ।

अथाश्रमं तत्सुरराजसद्मनि सकाशमासीद् भृगुपुङ्गवस्य ।
विभूतिभेदैरविचिन्त्यरूपमनन्यसाध्यं सुरभिप्रभावात् ॥ २,२६.५६ ॥

वसिष्ठ उवाच -

तस्मिन्पुरे सन्तुलितामरेद्रपुरीप्रभावे मुनिवर्यधेनुः ।
विनिर्ममे तेषु गृहेषु पश्चात्तद्योग्यनारीनरवृन्दजातम् ॥ २,२७.१ ॥

सौभाग्यभोगममितं मुनिहोमधेनुः सद्यो विधाय विनिवेदयदाशु तस्मै ।
ज्ञात्वा ततो मुनिवरो द्विजहोमधेन्वा सम्पादितं नरपते रुचिरातिथेयम् ।। २,२७.२० ।।

राजा सपरिवार जब प्रातःकाल उठे तब–

देवतामभिवन्द्येष्टां गां दिव्यस्रग्विभूषणः ।
कृत्वा दूर्वाजनादर्शमंगल्यालम्बनानि च ।।२८।१०
दत्वादानानि चार्थिभ्यो नत्वा गोब्रह्माणानपि ।।२८।११

अपने नगर में जाने के क्रम में राजा ने व्याकुल मन से सोचा –

यथा लब्धेदृशी धेनुः सर्वकामदुहां वरा ।
किं मे सकलराज्येन योगर्द्ध्या वाप्यनल्पया ।। २,२८.२८ ।।
गोरत्नभूता यदियं धेनुर्मुनिवरे स्थिता ।
अनयोत्पादिता नूनं सम्पत्स्वर्गपदामपि ।। २,२८.२९ ।।
ऋद्धमैन्द्रमपि व्यक्तं पदं त्रैलोक्यपूजितम् ।
अस्या धेनोरहं मन्ये कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।। २,२८.३० ।।

राजोवाच -

गत्वा त्वमेव तं विप्रं प्रसाद्य च विशेषतः ।
दत्वा चाभीप्सितं तस्मै तां गामानय मन्त्रिक ।। ब्रह्माण्डे २,२८.६२ ।।

राजा के चिन्तित होने पर धनुगुप्त नामक मन्त्री ने कहा–

गोरत्नभूता नृपतेर्यावर्द्धेनुर्न चालये ।
वर्तते नार्द्धमपि ते राज्यं शून्यं तव प्रभो ।। २,२८.३३ ।।
एवं प्रभावा सा यस्य तस्य किं दुर्लभं भवेत् ।
तस्माद्रत्नार्हसत्त्वेन स्वीकर्तव्या हि गौस्त्वया ।।३६।।

राजा ने मन्त्री से कहा–

राजोवाच

ब्रह्मस्वं नापहर्तव्यमापद्यपि कथंचन ।
ब्रह्मस्वसदृशं लोके दुर्जरं नेह विद्यते ।। २,२८.४० ।।
विषं हन्त्युपयोक्तारं लक्ष्यभूतं तु हैहय ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ।। २,२८.४१ ।।

मन्त्री ने राजा को उकसाया–

दत्वा मूल्यं गवाश्वाद्यमृषेर्धेनुः प्रगृह्यताम् ।
स्वीकर्तव्या हि सा धेनुस्त्वया त्वं रत्नभाग्यतः ।।५७।।

पुनः परशुराम की अनुपस्थिति में सपरिवार राजा मुनि के पास गये और मन्त्री ने कहा–

चन्द्रगुप्त उवाच

ब्रह्मन्नृपतिनाऽऽज्ञप्तं राजा तु भुवि रत्नभाक् ।

रत्नभूता च धेनुः सा भुवि दोग्ध्रीष्वनुत्तमा ॥ २,२८.६६ ॥
तस्माद्रत्नं सुवर्णं वा मूल्यमुक्त्वा यथोचितम् ।
आदाय गोरत्नभूतां धेनुं मे दातुमर्हसि ॥ २,२८.६७ ॥
॥ अध्याय समाप्त ॥

ब्रह्माण्डपुराणम्

जमदग्निरुवाच
होमधेनुरियं मह्यं न दातव्या हि कस्यचित् ।
राजा वदान्यः स कथं ब्रह्मस्वमभिवांछति ॥ २,२८.६८ ॥
मन्त्र्युवाच
रत्नभाक्त्वेन नृपतिर्धेनुं ते प्रतिकाङ्क्षति ।
गवायुतेन तस्मात्त्वं तस्मै तां दातुमर्हसि ॥ २,२८.६६ ॥
जमदग्निरुवाच
क्रयविक्रययोर्नाहं कर्ता जातु कथंचन ।
हविर्धानीं च वै तस्मान्नोत्सहे दातुमंजसा ॥ २,२८.७० ॥
मन्त्र्युवाच
राज्यार्द्धेनाथ वा ब्रह्मन्सकलेनापि भूभृतः ।
देहि धेनुमिमामेकां तत्ते श्रेयो भविष्यति ॥ २,२८.७१ ॥
जमदग्निरुवाच
जीवन्नाहं तु दास्यामि वासवस्यापि दुर्मते ।
गुरुणा याचितं किं ते वचसा नृपतेः पुनः ॥ २,२८.७२ ॥
मन्त्र्युवाच
त्वमेव स्वेच्छया राज्ञे देहि धेनुं सुहृत्तया ।
यथा बलेन नीतायां तस्यां त्वं किं करिष्यसि ॥ २,२८.७३ ॥
जमदग्निरुवाच
दाता द्विजानां नृपतिः स यद्यप्याहरिष्यति ।
विप्रोऽहं किं करिष्यामि स्वेच्छा वितरणं विना ॥ २,२८.७४ ॥
वसिष्ठ उवाच
इत्येवमुक्तः संक्रुद्धः स मन्त्री पापचेतनः ।
प्रसह्य नेतुमारेभे मुनेस्तस्य पयस्विनीम् ॥ २,२८.७५ ॥
वसिष्ठ उवाच
जमदग्निस्ततो भूयस्तमुवाच रुषान्वितः ।
ब्रह्मस्वं नापहर्तव्यं पुरुषेण विजानता ॥२।२९।१॥
प्रसह्य गां मे हरतो पापमाप्स्यसि दुर्मते ।
आयुर्जाने परिक्षीणं न चेदेतत्करिष्यति ॥२॥
इत्युक्तस्तेन संक्रुद्धः स मन्त्री कालचोदितः ।

बद्ध्वा तां गां दृढैः पाशैर्विचकर्ष बलान्वितः ॥३॥
जमदग्निरथ क्रोधाद्भाविकर्मप्रचोदितः ।
रुरोध तं यथाशक्ति विकर्षन्तं पयस्विनीम् ॥४॥
जीवन्न प्रतिमोक्ष्यामि गामेनामित्यमर्षितः ।
जग्राह सुदृढं कण्ठे बाहुभ्यां तां महामुनिः ॥५॥
ततः क्रोधपरीतात्मा चन्द्रगुप्तोऽतिनिर्घृणः ।
उत्सारयध्वमित्येनमादिदेश स्वसैनिकान् ॥६॥
अप्रधृष्यतमं लोके तमृषिं राजकिङ्कराः ।
भर्त्राज्ञया प्रसह्यैनं परिवव्रुः समन्ततः ॥७॥
दण्डैः कशाभिर्लकुडैर्विनिघ्नन्तश्च मुष्टिभिः ।
ते समुत्सारयन् धेनोः सुदूरतरमन्तिकात् ॥८॥
स तथा हन्यमानोऽपि व्यथितः क्षमयान्वितः ।
न चुक्रोधाक्रोधनत्वं सतो हि परमं धनम् ॥११॥
स च शक्तः स्वतपसा संहर्तुमपि रक्षितुम् ।
जगत्सर्वं क्षयं तस्य चिन्तयन्न प्रचुक्रुधे ॥१२॥
स पूर्वं क्रोधनोऽत्यर्थं मातुरर्थे प्रसादितः ।
रामेणाभूत्ततो नित्यं शान्त एव महातपाः ॥१३॥
स हन्यमानः सुभृशं चूर्णिताङ्गास्थिबन्धनः ।
निपपात महातेजा धरण्यां गतचेतनः ॥१४॥
तस्मिन्मुनौ निपतिते स दुरात्मा विशङ्कितः ।
किङ्करानादिशच्छीघ्रं धेनोरानयने बलात् ॥१५॥
ततः सवत्सां ता धेनुं बद्ध्वा पाशैर्दृढैर्नृपः ।
कशाभिरभिहन्यन्त चक्षुश्च निनीषया ॥१६॥
आकृष्यमाणा बहुभिः कशाभिर्लगुडैरपि ।
हन्यमाना भृशं तैश्च चुक्रुधे च पयस्विनी ॥१७॥
व्यथितातिकशापातैः क्रोधेन महतान्विता ।
आकृष्य पाशान् सुदृढान् कृत्वात्मानममोचयत् ॥१८॥
विमुक्तपाशबन्धा सा सर्वतोऽभिवृता बलैः ।
हुंहारवं प्रकुर्वाणा सर्वतोऽह्यपतद्रुषा ॥१९॥
विषाणखुरपुच्छाग्रैरभिहत्य समन्ततः ।
राजमन्त्रिबलं सर्वं व्यद्रावयदमर्षिता ॥२०॥
विद्राव्य किङ्करान्सर्वांस्तरसैव पयस्विनी ।
पश्यतां सर्वभूतानां गगनं प्रत्यपद्यत ॥२१॥
ततस्ते भग्नसंकल्पाः संभग्नक्षतविग्रहाः ।
प्रसह्य बद्ध्वा तद्वत्सं जग्मुरेवातिनिर्घृणाः ॥२२॥

पयस्विनीं विना वत्सं गृहीत्वा किङ्करैः सह ।
स पापस्तरसा राज्ञः सन्निधिं समुपागमत् ।।२३।।
गत्वा समीपं नृपतेः प्रणम्यास्मै प्रशंसकृत् ।
तद्वृत्तान्तमशेषेण व्याचचक्षे ससाध्वसः ।।२४।।
।। अध्याय समाप्त ।।

ब्राह्मण और गौ के प्रति अपराध करने के कारण परशुरामजी के द्वारा इक्कीस बार आततायी क्षत्रिय कुल का विनाश हुआ-

वसिष्ठ उवाच
श्रुत्वैतत्सकलं राजा जमदग्निवधादिकम् ।
उद्विग्नचेताः सुभृशं चिन्तयामास नैकधा ।।30 |1।।
अहो मे सुनृशंसस्य लोकयोरुभयोरपि ।
ब्रह्मस्वहरणे वांछा तद्धत्या चातिगर्हिता ।। 2 ।।
अहो नाश्रौषमस्याहं ब्राह्मणस्य विजानतः ।
वचनं तर्हि तां जह्यां विमूढात्मा गतत्रपः ।। 3 ।।
इति सन्चितयन्नेव हृदयेन विदूयता ।
स्वपुरं प्रतिचक्राम सबलः सानुगस्ततः ।। 4 ।।
पुरीं प्रतिगते राज्ञि तस्मिन्सपरिवारके ।
आश्रमात्सहसा राजन्विनिश्चक्राम रेणुका ।। 5 ।।
अथ सक्षतसर्वाङ्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ।
निश्चेष्टं पतितं भूमौ ददर्श पतिमात्मनः ।। 6 ।।
ततः सा विहतं मत्वा भर्तारं गतचेतनम् ।
अन्वाहतेवाशनिना मूर्छितान्यपतद्भुवि ।। 7 ।।
चिरादिव पुनर्भूमेरुत्थायातीव दुःखिता ।
पतित्वोत्थाय सा भूयः सुस्वरं प्ररुरोद ह ।। 8 ।।
विललाप च सात्यर्थं धरणीधूलिधूसरा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना पतिता शोकसागरे ।। 9 ।।
हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ दाक्षिण्यामृतसागर ।
हा धिगत्यन्तशान्त त्वं नैव काङ्क्षेत चेदृशम् ।। 10 ।।
आश्रमादभिनिष्क्रान्तः सहसा व्यसनार्णवे ।
क्षिप्त्वानाथामगाधे मां क्व च यातोऽसि मानद ।। 11 ।।
सतां साप्तपदे मैत्रे मुषिताहं त्वया सह ।
यासि यत्र त्वमेकाकी तत्र मां नेतुमर्हसि ।। 12 ।।
दृष्ट्वा त्वामीदृशावस्थमचिराद्हृदयं मम ।

न दीर्यते महाभाग कठिनाः खलु योषितः ॥ 13 ॥
इत्येवं विलपन्ती सा रुदती च मुहुर्मुहुः ।
चुक्रोश रामरामेति भृशं दुःखपरिप्लुता ॥ 14 ॥
तावद्रामोऽपि स वनात्समिद्भारसमन्वितः ।
अकृतव्रणसंयुक्तः स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥ 15 ॥
अपश्यद्भयशंसीनि निमित्तानि बहूनि सः ।
पश्यन्नुद्विग्नहृदयस्तूर्णं प्रापाश्रमं विभुः ॥ 16 ॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य रुदती सा भृशातुरा ।
नवीभूतेन शोकेन प्रारुदद्रेणुका पुनः ॥ 17 ॥
रामस्य पुरतो राजन्भर्तृव्यसनपीडिता ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ॥ 18 ॥
मार्गे विदितवृत्तान्तः सम्यग्रामोऽपि मातरम् ।
कुररीमिव शोकार्त्तां दृष्ट्वा दुःखमुपेयिवान् ॥ 19 ॥
धैर्यमारोप्य मेधावी दुःखशोकपरिप्लुतः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां तस्थौ भूमावधोमुखः ॥ 20 ॥
तं तथागतमालोक्य रामं प्राहाकृतव्रणः ।
किमिदं भृगुशार्दूल नैतत्वय्युपपद्यते ॥ 21 ॥
न त्वादृशा महाभाग भृशं शोचन्ति कुत्रचित् ।
धृतिमन्तो महान्तस्तु दुःखं कुर्वन्ति न व्यये ॥ 22 ॥
शोकः सर्वेन्द्रियाणां हि परिशोषप्रदायकः ।
त्यज शोकं महाबाहो न तत्पात्रं भवदृशाः ॥ 23 ॥
ऐहिकामुष्मिकार्थाणां नूनमेकान्तरोधकः ।
शोकस्तस्यावकाशं त्वं कथं हृदि नियच्छसि ॥ 24 ॥
तत्त्वं धैर्यधनो भूत्वा परिसान्त्वय मातरम् ।
रुदतीं बत वैधव्यशंकापहतचेतनाम् ॥ 25 ॥
नैवागमनमस्तीह व्यतिक्रान्तस्य वस्तुनः ।
तस्मादतीतमखिलं त्यक्त्वा कृत्यं विचिन्तय ॥ 26 ॥
इत्येवं सान्त्वमानश्च तेन दुःखसमन्वितः ।
रामः संस्तम्भयामास शनैरात्मानमात्मना ॥ 27 ॥
दुःखशोकपरीता हि रेणुका त्वरुदन्मुहः ।
त्रिःसप्तकृत्वो हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ॥ 28 ॥
तावत्तदन्तिकं रामः समभ्येत्याश्रुलोचनः ।
रुदतीमलमम्बेति सान्त्वयामास मातरम् ॥ 29 ॥
उवाचापनयन्दुःखाद्भर्तृशोकपरायणाम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो यदिदं त्वया वक्षः समाहतम् ॥ 30 ॥

तावतसंख्यमहं तस्मात्क्षत्रजातमशेषतः ।
हनिष्ये भुवि सर्वत्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ 31 ॥
तस्मात्त्वं शोकमुत्सृज्य धैर्यमातिष्ठ साम्प्रतम् ।
नास्त्येव नूनमायातमतिक्रान्तस्य वस्तुनः ॥ 32 ॥
इत्युक्ता रेणुका तेन भृशं दुःखान्वितापि सा ।
कृच्छ्राद्धैर्यं समालम्ब्य तथेति प्रत्यभाषत ॥ 33 ॥
ततो रामो महाबाहुः पितुः सह सहोदरैः ।
अग्नौ सत्कर्तुमारेभे देहं राजन्यथाविधि ॥ 34 ॥
भर्तृशोकपरिताङ्गी रेणुकापि दृढव्रता ।
पुत्रान्सर्वान्समाहूय त्विदं वचनमब्रवीत् ॥ 35 ॥

रेणुकोवाच

अहं वः पितरं पुत्राः स्वर्गतं पुण्यशीलिनम् ।
अनुगन्तुमिहेच्छामि तन्मेऽनुज्ञातुमर्हथ ॥ 36 ॥
असह्यदुःखं वैधव्यं सहमाना कथं पुनः ।
भर्त्रा विरहिता तेन प्रवर्तिष्ये विनिन्दिता ॥ ३७ ॥
तस्मादनुगमिष्यामि भर्तारं दयितं मम ।
यथा तेन प्रवर्तिष्ये परत्रापि सहानिशम् ॥ 38 ॥
ज्वलन्तमिममेवाग्निं सम्प्रविश्य चिरादिव ।
भर्तुर्मम भविष्यामि पितृलोकप्रियातिथिः ॥ 39 ॥
अनुवादमृते पुत्रा भवद्भिस्तत्र कर्मणि ।
प्रतिभूय न वक्तव्यं यदि मत्प्रियमिच्छथ ॥ 40 ॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं रेणुका दृढनिश्चया ।
अग्निं प्रविश्य भर्तारमनुगन्तुं मनो दधे ॥ 41 ॥
एतस्मिन्नेव काले तु रेणुकां तनयैः सह ।
समाभाष्यातिगम्भीरा वागुवाचा शरीरीणी ॥ 42 ॥
हे रेणुके स्वतनयैर्गिरं मेऽवहिता श्रृणु ।
मा कार्षीः साहसं भद्रे प्रवक्ष्यामि प्रियं तव ॥ 43 ॥
साहसो नैव कर्तव्यः केनाप्यात्महितैषिणा ।
न मर्तव्यन्त्वया सर्वो जीवन्भद्राणि पश्यति ॥ 44 ॥
तस्माद्धैर्यधना भूत्वा भव त्वं कालकाङ्क्षिणी ।
निमित्तमन्तरीकृत्य किंचिदेव शुचिस्मिते ॥ 45 ॥
अचिरेणैव भर्ता ते भविष्यति सचेतनः ।
उत्पन्नजीवितेन त्वं कामं प्राप्स्यसि शोभने ॥४६॥
भवित्री चिररात्राय बहुकल्याणभाजनम् ॥
गोसेवाऽमृतपानेन नाकाले मरणं ध्रुवम् ॥४६॥

वसिष्ठ उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा धृतिमालम्ब्य रेणुका ।
तद्वाक्यगौरवाद्धर्षमवापुस्तनयाश्च ते ॥ 48॥
ततो नीत्वा पितुर्देहमाश्रमाभ्यन्तरं मुनेः ।
शाययित्वा निवाते तु परितः समुपाविशन् ॥ 49 ॥
तेषां तत्रोपविष्टानामप्रहृष्टात्मचेतसाम् ।
निमित्तानि शुभान्यासन्ननेकानि महान्ति च ॥ 50 ॥
तेन ते किंचिदाश्वस्तचेतसो मुनिपुङ्गवाः ।
निषेदुः शयिता मात्रा काङ्क्षन्तो जीवितं पितुः ॥ 51 ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन्भृगुवंशधरो मुनिः ।
विधेर्बलेन मतिमांस्तत्रागच्छद्यदृच्छया ॥ 52 ॥
अथर्वणां विधिः साक्षाद्वेदवेदाङ्गपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञः सकलासुरवन्दितः ॥ 53 ॥
मृतसंजीविनीं विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम् ।
यथा हतान्मृतान्देवैरुत्थापयति दानवान् ॥ 54 ॥
शास्त्रमौशनसं येन राज्ञां राज्यफलप्रदम् ।
प्रणीतमनुजीवन्ति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवाः ॥ 55 ॥
स तदाश्रममासाद्य प्रविष्टोऽन्तर्महामुनिः ।
ददर्श तदवस्थांस्तान्सर्वान्दुःखपरिप्लुतान् ॥ 56 ॥
अथ ते तु भृगुं दृष्ट्वा वंशस्य पितरं मुदा ।
उत्थायास्मै ददुश्चापि सत्कृत्य परमासनम् ॥ 57 ॥
स चाशीर्भिस्तु तान्सर्वानभिनन्द्य महामुनिः ।
पप्रच्छ किमिदं वृत्तं तत्सर्वं ते न्यवेदयन् ॥ 58 ॥
तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मन्त्रवित् ।
संजीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम् ॥ 59॥
यज्ञस्य तपसो वीर्यं ममापि शुभमस्ति चेत् ।
तेनासौ जीवताच्छीघ्रं प्रसुप्त इव चोत्थितः ॥ ६०॥
एवमुक्ते शुभे वाक्ये भृगुणा साधुकारिणा ।
समुत्तस्थावथार्चीकः साक्षाद्गुरुरिवापरः ॥ 61 ॥
दृष्ट्वा तत्र स्थितं वन्द्यं भृगुं स्वस्य पितामहम् ।
ननाम भक्त्या नृपते कृतांजलिरुवाच ह ॥ 62 ॥

जमदग्निरुवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं च मे ।
यत्पश्ये चरणौ तेऽद्य सुरासुरनमस्कृतौ ॥६३॥
भगवन्किं करोम्यद्य शुश्रूषां तव मानद ।

पुनीह्यात्मकुलं स्वस्य चरणाम्बुकणैर्विभो ।।
इत्युक्त्वा सहसाऽनीतं रामेणार्घ्यं मुदान्वितः ।। 64 ।।
प्रददौ पादयोस्तस्य भक्त्या नमितकन्धरः ।
तज्जलं शिरसाऽऽधत्त सकुटुम्बो महामनाः ।। 65 ।।
अथ सत्कृत्य स भृगुं पप्रच्छ विनयान्वितः ।
भगवन् किं कृतं तेन राज्ञा दुष्टेन पातकम् ।। 66 ।।
यस्यातिथ्यं हि कृतवानहं सम्यग्विधानतः ।
साधुबुद्ध्या स दुष्टात्मा किं चकार महामते ।। 67 ।।

वसिष्ठ उवाच

एवं स पृष्टो मतिमान्भृगुः सर्वविदीश्वरः ।
चिरं ध्यात्वा समालोच्य कारणं प्राह भूपते ।। 68 ।।

भृगुरुवाच

श्रृणु तात महाभाग बीजमस्य हि कर्मणः ।
यश्च वै कृतवान्पापं सर्वज्ञस्य तवानघ ।। 69 ।।
शप्तः पुरा वसिष्ठेन नाशार्थं स महीपतिः ।
द्विजापराधतो मूढ वीर्यं ते विनशिष्यते ।। 70 ।।
तत्कथं वचनं तस्य भविष्यत्यन्यथा मुनेः ।
अयं रामो महावीर्यं प्रसह्य नृपपुङ्गवम् ।। 71 ।।
हनिष्यति महाबाहो प्रतिज्ञां कृतवान्पुरा ।
यस्मादुरः प्रतिहतं त्वया मातर्ममाग्रतः ।। 72 ।।
एकविंशतिवारं हि भृशं दुःखपरीतया ।
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम् ।। 73 ।।
अतोऽयं वार्यमाणोऽपि त्वया पित्रा निरन्तरम् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्करिष्यत्येव मानद ।। 74 ।।
स तु राजा महाभागो वृद्धानां पर्युपासिता ।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशाल्लब्धबोधो महामतिः ।। 75 ।।
साक्षाद्भक्तो महात्मा च तद्वधे पातकं भवेत् ।
एवमुक्त्वा महाराज स भृगुर्ब्रह्मणः सुतः ।।७६।।
यथागतं ययौ विद्वान्भविष्यत्कालपर्ययात् ।
गोब्राह्मणापराधेन रामेण दण्डिताः खलाः ।।७७।।
।। अध्याय समाप्त ।।

मैथिलवंशवर्णनम्

निमिवंशवर्णनम्

सूत उवाच

अनुजस्य विकुक्षेस्तु निमेर्वंशं निबोधत ।
योऽसौ निवेशयामास पुरं देवपुरोपमम् ॥ 1 ॥
जयन्तमिति विख्यातं गौतमस्याश्रमान्तिकम् ।
यस्यान्ववाये जज्ञे वै जनको नृपसत्तमः ॥ 2 ॥
निमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्त्वनमस्कृतः ।
आसीत्पुत्रो महाराज चेक्ष्वाकोर्भूरितेजसः ॥ 3 ॥
स शापेन वसिष्ठस्य विदेहः समपद्यत ।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः ॥ 4 ॥
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महायशाः ।
नाम्ना मिथिरिति ख्यातो जननाज्जनकोऽभवत् ॥ 5 ॥
मिथिर्नाम महावीर्यो येनासौ मिथिलाऽभवत् ।
राजाऽसौ नाम जनको जनकाच्चाप्युदावसुः ॥ 6 ॥
उदावसोस्तु धर्मात्मा जातोऽसौ नन्दिवर्द्धनः ।
नन्दिवर्द्धनतः शूरः सुकेतुर्नाम धार्मिकः ॥ 7 ॥
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।
देवरातस्य धर्मात्मा बृहदुक्थ इति श्रुतः ॥ 8 ॥
बृहदुक्थस्य तनयो महावीर्यः प्रतापवान् ।
महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृति स्तस्य चात्मजः ॥ 9 ॥
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परन्तपः ।
धृष्टकेतुसुतश्चापि हर्यश्वो नाम विश्रुतः ॥ 10 ॥
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतिम्बकः ।
प्रतिम्बकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः स्मृतः ॥ 11 ॥
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुतः ।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महाधृतिः ॥ 12 ॥
महाधृतिसुतो राजा कीर्तिरातः प्रतापवान् ।
कीर्तिरातात्मजो विद्वान्महारोमेति विश्रुतः ॥ 13 ॥
महारोम्णस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत ।
स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाऽभवन्नृपः ॥ 14 ॥
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुतः ।
उद्भिन्ना कर्षता येन सीता राज्ञा यशस्विनी ॥ 15 ॥
रामस्य महिषी साध्वी सुव्रता नियतव्रता ।

वैशम्पायन उवाच

कथं सीता समुत्पन्न कृष्यमाण यशस्विनी ॥ 16 ॥
किमर्थं वाऽकृषद्राजा क्षेत्रं यस्मिन् बभूव ह ।

सूत उवाच

अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेधे महात्मनः ॥ 17 ॥
विधिना सुप्रयत्नेन तस्मात्सा तु समुत्थिता ।
सीरध्वजानुजातस्तु भानुमान्नाम मैथिलः ॥ 18 ॥
भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्यधिपतिर्नृपः ।
तस्य भानुमतः पुत्रः प्रद्युम्नश्च प्रतापवान् ॥ 19 ॥
मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवहः स्मृतः ।
ऊर्जवहात्सनद्वाजः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥ 20 ॥
स्वागतः शकुनेः पुत्रः सुवर्चास्तत्सुतः स्मृतः ।
सुतो यस्तस्य दायादः सुश्रुतस्तस्य चात्मजः ॥ 21 ॥
सुश्रुतस्य जयः पुत्रो जयस्य विजयः सुतः ।
विजयस्य क्रतुः पुत्रः क्रतोश्च सुनयः स्मृतः ॥ 22 ॥
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृतिः ।
धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद् बहुलाश्वसुतः कृतिः ॥ 23 ॥
तस्मिन्सन्तिष्ठते वंशो चनकानां महात्मनाम् ।
गोविप्रोपासकाः सर्वे मैथिला ज्ञानसागराः ।
वेदोक्तं कर्म कुर्वाणा निर्द्वन्द्वाः स्वगृहेष्वपि ॥

<u>॥ अध्याय समाप्त॥</u>

त्रैलोक्यविजयप्रदकवचस्तोत्रम्

सगर उवाच

श्रुतं सर्वं मुनिश्रेष्ठ कीर्त्यमानं त्वया विभो ।
कवचं वद सर्वत्र त्रैलोक्यविजयप्रदम् ॥33/1 ॥

वसिष्ठ उवाच

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् ।
मन्त्रं च सिद्धिदं शश्वत्साधकानां सुखावहम् ॥ २ ॥
गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभाय समुच्चरेत् ।
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रो दशार्णो भुक्तिमुक्तिदः ॥ 3 ॥
सदाशिवस्त्वस्य ऋषिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ।
देवता कृष्ण उदितो विनियोगोऽखिलाप्तये ॥ 4 ॥
त्रैलोक्यविजयस्याथ कवचस्य प्रजापतिः ।
ऋषिश्छन्दश्च जगती देवो राजेश्वरः स्वयम् ॥ 5 ॥
त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः ।

प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा ॥ 6 ॥
पायात्कपालं कृष्णाय स्वाहेति सततं मम ।
कृष्णेति पातु नेत्रे मे कृष्णस्वाहेति तारकाम् ॥ 7 ॥
हरये नम इत्येष भ्रूलतां पातु मे सदा ।
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु सन्ततम् ॥ 8 ॥
गोपालाय नमो गण्डं पातु मे सततं मनुः ।
क्लीं कृष्णाय नमः कर्णौ पातु कल्पतरुर्मम ॥ 9 ॥
श्रीं कृष्णाय नमः पातु नित्यं मेऽधरयुग्मकम् ।
ॐ गोपीशाय स्वाहेति दन्तपङ्क्तिं ममावतु ॥ 10 ॥
श्रीकृष्णेति रदच्छिद्रं पातुमे त्र्यक्षरो मनुः ।
ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा ॥ 11 ॥
रामेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा ।
राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं मे पातु सर्वदा ॥ 12 ॥
नमो गोपीगणेशाय ग्रीवां मे पातु सर्वदा ।
ॐ गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धौ पातु सदा मम ॥ 13 ॥
नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं ममावतु ।
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय नमो मनुः ॥ 14 ॥
ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा करौ पातु सदा मम ।
ॐ विष्णवे नमः स्वाहा बाहुयुग्मं ममावतु ॥ 15 ॥
ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखपङ्क्तिं ममावतु ।
नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं ममावतु ॥ 16 ॥
ॐ ह्रीं श्रीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम ।
ॐ सर्वेशाय स्वाहेति केशान्मम सदाऽवतु ॥ 17 ॥
नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदाऽवतु ।
ॐ माधवाय स्वाहेति भालं मे सर्वदाऽवतु ॥ 18 ॥
ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय कटिं मम सदाऽवतु ।
नमो गोपीजनेशाय ऊरू पातु सदा मम ॥ 19 ॥
ॐ नमो दैत्यनाशाय स्वाहेत्यवतु जानुनी ।
यशोदानन्दनायेति नमोऽन्तो जङ्घकेऽवतु ॥ 20 ॥
रासारम्भप्रियायेति स्वाहान्तो ह्रीं ममावतु ।
वृन्दाप्रियाय स्वाहेति सकलाङ्गानि मेऽवतु ॥ २१ ॥
परिपूर्णमनाः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु ।
स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु ॥ 22 ॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदाऽवतु ।
नैर्ॠत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः ॥ 23 ॥

गोविन्दः पातु वायव्यामुत्तरे रसिकेश्वरः ।
ऐशान्यां मे सदा पातु वृन्दावनविहारकृत् ॥ 24 ॥
वृन्दाप्राणेश्वरः शश्वत्पातु मामूर्ध्वदेशतः ।
सदैव मामधः पातु बलिध्वंसी महाबलः ॥ 25 ॥
जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा ।
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां माधवः स्वयम् ॥ 26 ॥
सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तः पातु मां सर्वतो विभुः ।
इति ते कथितं भूप सर्वाघौघविनाशनम् ॥ 27 ॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमेशितुः ।
मया श्रुतं शिवमुखात्प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥ 28 ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥ 29 ॥
स साधकोऽवसद्यत्र तत्र वाणीरमे स्थिते ।
यदि स्यात्सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ 30 ॥
निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
राजसूर्यसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ 31 ॥
महादानानि यान्येव भुवश्चापि प्रदक्षिणा ।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ 32 ॥
व्रतोपवासनियमाः स्वाध्यायाध्ययने तथा ।
स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हन्ति कलामपि ॥ 33 ॥
सिद्धत्वममरत्वं च दासत्वं श्रीहरेरपि ।
यदि स्यात्सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ 34 ॥
स भवेत्सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः ।
यो भवेत्सिद्धकवचो विजयी स भवेद् ध्रुवम् ॥ 35 ॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च भूपते ।
एतत्तु कवचं वत्स न देयं संकटेऽपि च ॥ 36 ॥
मया प्रकाशितं यत्ते चैतेषां त्राणकारणात् ।
ममाज्ञाकरणाच्चैव तद्विद्धि कुलभास्कर ।
इदं धृत्वा तु कवचं चक्रवर्ती भवान्भव ॥ 38 ॥
गोविप्रसाधुरक्षार्थं मया स्तोत्रं प्रकाशितम् ॥
॥ अध्याय समाप्त ॥

श्रीकृष्णप्रेमामृतस्तोत्रम् (श्रीकृष्णशतनामस्तोत्रम्)

धरण्युवाच

अलङ्कृतं जन्म पुंसामपि नन्दव्रजौकसाम् ॥ 13 ॥

तस्य देवस्य कृष्णस्य लीलाविग्रहधारिणः ।
जयोपाधिनियुक्तानि सन्ति नामान्यनेकशः ॥ 14 ॥
तेषु नामानि मुख्यानि श्रोतुकामा चिरादहम् ।
तत्तानि ब्रूहि नामानि वासुदेवस्य वासुके ॥ 15 ॥
नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शेष उवाच
वसुन्धरे वरारोहे जनानामस्ति मुक्तिदम् ॥ 16 ॥
सर्वमङ्गलमूर्द्धन्यमणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ।
महापातककोटिघ्नं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ 17 ॥
समस्तजपयज्ञानां फलदं पापनाशनम् ।
श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोतरं शतम् ॥ 18 ॥
महस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम् ।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥ 19 ॥
तस्मात्पुण्यतरं चैतत्स्तोत्रं पातकनाशनम् ।
नाम्नामष्टोत्तरशतस्याहमेव ऋषिः प्रिये ॥ 20 ॥
छन्दोऽनुष्टुब्देवता तु योगः कृष्णप्रियावहः ।
श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः ॥ 21 ॥
वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः ।
श्रीवत्सकौस्तभधरो यशोदावत्सलो हरिः ॥ 22 ॥
चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशङ्खाद्युदायुधः ।
देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ॥ 23 ॥
यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः ।
पूतनाजीवितहरः शकटासुरभंजनः ॥ 24 ॥
नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः ।
नवनीतविलिप्ताङ्गो नवनीतनटोऽनघः ॥ 25 ॥
नवनीतलवाहारी मुचुकुन्दप्रसादकृत् ।
षोडशस्त्रीसहस्रेशस्त्रिभङ्गी मधुराकृतिः ॥ 26 ॥
शुकवागमृताब्धीन्दुर्गोविन्दो गोविदाम्पतिः ।
वत्सपालनसंचारी धेनुकासुरमर्दनः ॥ 27 ॥
तृणीकृततृणावर्तो यमलार्जुनभंजनः ।
उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः ॥ 28 ॥
गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।
इलापतिः परं ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्वहः ॥ 29 ॥
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ।
गोवर्द्धनाचलोद्धर्ता गोपालः सर्वपालकः ॥ 30 ॥

अजो निरंजनः कामजनकः कंजलोचनः ।
मधुहा मथुरानाथो द्वारकानाथको बली ।। 31 ।।
वृन्दावनान्तसंचारी तुलसीदामभूषणः ।
स्यमन्तकमणेर्हर्ता नरनारायणात्मकः ।। 32 ।।
कुब्जाकृष्टाम्बरधरो मायी परमपूरुषः ।
मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः ।। 33 ।।
संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकान्तकः ।
अनादि ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ।। 34 ।।
शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलान्तकृत् ।
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ।। 35 ।।
सत्यवाक्सत्यसंकल्पः सत्यभामारतो जयी ।
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ।। 36 ।।
जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुवाद्यविशारदः ।
वृषभासुरविध्वंसी बकारिर्बाणबाहुकृत् ।। 37 ।।
युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ।
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ।। 38 ।।
कालीयफणिमाणिक्यरंजितः श्रीपदाम्बुजः ।
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्रविनाशनः ।। 39 ।।
नारायणः परं ब्रह्म पन्नगासनवाहनः ।
जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकः ।। 40 ।।
पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः ।
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः ।। 41 ।।
इत्येवं कृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ।। 42 ।।
स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया श्रुतम् ।
कृष्णप्रेमामृतं नाम परमानन्ददायकम् ।। 43 ।।
अत्युपद्रवदुःखघ्नं परमायुष्यवर्द्धनम् ।
दानं व्रतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ।। 44 ।।
पठतां श्रृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत् ।
पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ।। 45 ।।
धनवाहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।
शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुण्यवर्द्धनम् ।। 46 ।।
बालरोगग्रहादीणां शमनं शान्तिकारकम् ।
अन्ते कृष्णस्मरणदं भवतापत्रयापहम् ।। 47 ।।
असिद्धसाधकं भद्रे जपादिकरमात्मनाम् ।

कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ॥ 48 ॥
नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदान्तवेदिने ।
इमं मन्त्रं महादेवि जपन्नेव दिवा निशम् ॥ 49 ॥
सर्वग्रहानुग्रहभाक्सर्वप्रियतमो भवेत् ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धिसमृद्धिमान् ॥ 50 ॥
निषेव्य भोगानन्तेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ।
॥ अध्याय समाप्त ॥

लिंगमहापुराणम्

शिवाभिषेक

सहस्रकलशैस्तत्र सेचयेत्परमेश्वरम् ।
घृतेन केवलेनापि देवदेवमुमापतिम् ॥ उत्त. २,२८.८८ ॥
पयसा वाऽथ दध्ना वा सर्वद्रव्यैरथापि वा ।
ब्रह्मकूर्चेन वा देवं पंचगव्येन वा पुनः ॥ २,२८.८६ ॥
गायत्र्या चैव गोमूत्रं गोमयं प्रणवेन वा ।
आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥ २,२८.६० ॥
तेजोऽसीत्याज्यमीशानमन्त्रेणैवाभिषेचयेत् ।
देवस्यत्वेति देवेशं कुशाम्बुकलशेन वै ॥ २,२८.६१ ॥
रुद्राध्यायेन वा सर्वं स्नापयेत्परमेश्वरम् ।
सहस्रकलशं शम्भोर्नाम्नां चैव सहस्रकैः ॥ २,२८.६२ ॥
गावश्चाराध्य यत्नेन दातव्याः सुमनोरमाः ।
एवं दत्वा विधानेन शिवमभ्यर्च्य शंकरम् ॥ २,३८.६ ॥
जपेदग्रे यथान्यायं गवां स्तवमनुत्तमम् ।
गावो ममाग्रतो नित्यं गावो नः पृष्ठतस्तथा ॥ २,३८.७ ॥
हृदये मे सदा गावो गवां मध्ये वसाम्यहम् ।
इति कृत्वा द्विजाग्रेभ्यो दत्वा गत्वा प्रदक्षिणम् ॥ २,३८.८ ॥
तद्रोमवर्षसंख्यानि स्वर्गलोके महीयते ॥ २,३८.६ ॥

हिरण्यवृषदानम्

सनत्कुमार उवाच
हिरण्यवृषदानं च कथयामि समासतः ।
वृषरूपं हिरण्येन सहस्रेणाथ कारयेत् ॥ 41/1 ॥
तदर्धार्धेन वा धीमांस्तदर्धार्धेन वा पुनः ।
अष्टोत्तरशतेनापि वृषभं धर्मरूपिणम् ॥ 2 ॥
ललाटे कारयेत्पुण्ड्रमर्धचन्द्रकलाकृतिम् ।

स्फटिकेन तु कर्तव्यं खुरं तु रजतेन वै ॥ 3 ॥
ग्रीवां तु पद्मरागेण ककुद्गोमेदकेन च ।
ग्रीवायां घाण्टवलयं रत्नचित्रं तु कारयेत् ॥ 4 ॥
वृषाङ्कं कारयेत्तत्र किङ्किणीवलयावृतम् ।
पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमण्डले ॥ 5 ॥
वृषेन्द्रं स्थापयेत्तत्र पश्चिमामुखमग्रतः ।
ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या वृषारूढं वृषध्वजम् ॥ 6 ॥
वृषेन्द्रं पूज्य गायत्र्या नमस्कृत्य समाहितः ।
तीक्ष्णश्रृंगाय विद्महे धर्मपादाय धीमहि ।
तन्नो वृषः प्रचोदयात् ॥ 7 ॥
मन्त्रेणानेन संपूज्य वृषं धर्मविवृद्धये ।
होमयेच्च घृतान्नाद्यैर्यथाविभवविस्तरम् ॥ 8 ॥
वृषभः पूज्य दातव्यो ब्राह्मणेभ्यः शिवाय वा ।
दक्षिणा चैव दातव्या यथावित्तानुसारतः ॥ 9 ॥
एतद्यः कुरुते भक्त्या वृषदानमनुत्तमम् ।
शिवस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥ 10 ॥

सनत्कुमार ने कहा- संक्षेप में हिरण्यवृषदानम्-विधि को कहता हूँ।

॥ अध्याय समाप्त ॥

<u>ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्</u>

गुरुं वा ब्राह्मणं वाऽपि देवता प्रतिमामपि ।
दृष्ट्वा शीघ्रं न प्रणमेत्स भवेत्सूकरो भुवि ॥प्र.५१/२१॥

वसिष्ठ उवाच

कामतो गोवधं कृत्वा वर्षं तीर्थं भ्रमेन्नरः ।
यवयावकभोजी च करेण च जलं पिबेत् ॥२५॥
तदा धेनुशतं दिव्यं ब्राह्मणेभ्यः सदक्षिणम् ।
दत्वा मुंचति पापाच्च भोजयित्वा शतं द्विजान् ॥२६॥
प्रायश्चित्ते तु वै चीर्णे सर्वपापान्न मुच्यते ।
पापावशेषाद्भवति दुःखी चाण्डाल एव च ॥२७॥
आतिदेशिकहत्यायां तदर्धं फलमश्नुते ।
प्रायश्चितानुकल्पेन सर्वपापान्न मुच्यते ॥२८॥

गुरु, ब्राह्मण, और देवता की प्रतिमा को देखकर जो सहसा प्रणाम नहीं करता है, वह पृथ्वी पर सूकर होकर उत्पन्न होता है ।

वसिष्ठजी ने कहा- हे राजन्! गोवध की इच्छा रखकर जो गोहत्या करता है, उस मनुष्य को एक वर्ष तीर्थाटन करना चाहिये और यव की लपसी का भोजन करते

हुए हाथ से जल पीना चाहिये । पश्चात् दक्षिणा समेत सौ उत्तम गौएँ ब्राह्मणों को समर्पित करके सौ ब्राह्मणों को भोजन करायें, इससे वह पापमुक्त हो जाता है । किन्तु प्रायश्चित्त करने पर भी वह समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है और इसी कारण उसे दु:खी और चाण्डाल होना पड़ता है । यदि किसी के कहने से वह हत्या करता है, तो उसे आधे फल का भागी होना पड़ता है और वह भी प्रायश्चित्त करने से समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे ।
सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ।।प्र.५४/१३७।।
विप्रपादोदकं चैव पापव्याधिविनाशनम् ।
सर्वतीर्थोदकसमं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ।।१३८।।
विप्रो मानवरूपी च देवदेवो जर्नादनः ।
विप्रेण दत्तं द्रव्यं च भुंजते सर्वदेवताः ।।१३९।

पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं उतने सागर में हैं और सागर में जितने तीर्थ हैं वे सभी ब्राह्मण के चरणों में रहते हैं । इस कारण ब्राह्मण का चरणोदक समस्त रोगों का नाशक, समस्त तीर्थो के जल के समान भुक्ति-मुक्तिदायक और शुभ है । क्योंकि मनुष्य रूप में ब्राह्मण देवाधिदेव जनार्दन हैं और ब्राह्मणों द्वारा दी गई वस्तुओं का उपयोग सभी देवता करते हैं ।

गोलोक एवं कालपरिमाण । सुयज्ञ एपं आस्तीक का संवाद- ब्रह्मवैवर्त्त पुराण

मुनिरूवाच

गोलोको नृप विश्वानां विस्तृतश्च नभः समः ।
तथा नित्यं डिम्बरूपः श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवः ।।५१/५।।
जलेन परिपूर्णश्च कृष्णस्य मुखबिन्दुना ।
सृष्ट्युन्मुखस्यादिसर्गे परिश्रान्तस्य खेलतः ।।६।।
प्रकृत्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप ।
तत्राधारो महाविष्णोर्विश्वाधारस्य विस्तृतः ।।७।।
प्रकृतेर्गर्भसम्भूतडिम्बोद्भूतस्य भूमिप ।
सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट् ।।८।।
राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोडशांशः प्रकीर्तितः ।
दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुजः ।।९।।
वनमालाधरः श्रीमान् शोभितः पीतवाससा ।
ऊर्ध्वं नभसि तद्विष्णोर्नित्यवैकुण्ठ एव च ।।१०।।
आत्माकाशसमो नित्यो विस्तृतश्चन्द्रबिम्बवत् ।

ईश्वरेच्छासमुद्भूतो निर्लक्ष्यश्च निराश्रयः ॥११॥
आकाशवत्सुविस्तारो रत्नौघैश्च विनिर्मितः ।
तत्र नारायणः श्रीमान् वनमाली चतुर्भुजः ॥१२॥

मुनि ने कहा- हे नृप! समस्त विश्वसमूहों के ऊपर गोलोक है जो आकाश की भाँति विस्तृत है तथा भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से उत्पन्न एवं नित्य डिम्ब(अण्ड)रूप में रहता है । आदिसृष्टि के समय सृष्टि के प्रति उन्मुख होने पर खेल से श्रान्त भगवान् श्रीकृष्ण के मुखबिन्दुरूप जल से यह परिपूर्ण है । हे नृप! अपनी निजी कलारूप प्रकृति से युक्त एवं विश्व के आधार महाविष्णु का वहीं विस्तृत आधार है । हे भूमिपाल! वह महाविष्णु प्रकृति के गर्भ से उत्पन्न डिम्ब से प्रकट हुआ है । उसका आधार महाविराट् अतिविस्तृत जलाधार पर शयन करता रहता है । राधेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का वह षोडशांश कहा जाता है जो दूर्वादल की भाँति श्यामल एवं मन्द-मुस्कान करते हुए चार भुजाओं से युक्त है तथा वनमाला धारण किये वह श्रीसुशोभित एवं पीताम्बर भूषित है । आकाश में ऊपर उस विष्णु का नित्य स्थायी वैकुण्ठ लोक है । जो आत्मा एवं आकाश की भँति नित्य, चन्द्रबिम्ब के समान विस्तृत, ईश्वरेच्छा से उत्पन्न, लक्ष्यहीन और निराधार है तथा आकाश की भाँति अति विस्तार में स्थित एवं रत्न-समूहों से सुरचित है । जिसमें श्रीमान् नारायण भगवान् वनमाला धारण किये चार भुजाओं से विराजमान रहते हैं ।

लक्ष्मी सरस्वती गंगा तुलसी पतिरीश्वरः ।
सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥१३॥
सर्वेशः सर्वसिद्धेशो भक्तानुग्रहविग्रहः ।
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ।
ऊर्ध्वं वैकुण्ठलोकाच्च पंचाशत्कोटियोजनात् ॥१५॥
गोलोको वर्त्तुलाकारो वरिष्ठः सर्वलोकतः ।
अमूल्यरत्नखचितैर्मन्दिरैश्च विभूषितः ॥१६॥
रत्नेन्द्रसारखचितैः स्तम्भसोपानचित्रितैः ।
मणीन्द्रदर्पणासक्तैः कपाटैः कलशोज्ज्वलैः ॥१७॥
नानाचित्रविचित्रैश्च शिविरैश्च विराजितः ।
कोटियोजनविस्तीर्णो दैर्घ्ये शतगुणस्तथा ॥१८॥
विरजासरिदाकीर्णैः शतश्रृंगैः सुवेष्टितः ।
सरिदर्धप्रमाणेन दैर्घ्येण विततेन च ॥१९॥
शैलार्धपरिमाणेन युक्तो वृन्दावनेन च ।

तदर्धमानाविलसद्रामण्डलमण्डितः ॥२०॥

उन ईश्वर की लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये चार पत्नियाँ हैं । वे स्वयं सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि पार्षदों से सदा आवृत रहते हैं । सर्वेश्वर, समस्त सिद्धों के अधीश्वर एवं भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण दो भुजाओं और चार भुजाओं से दो रूप धारण कर, चार भुजाओं से वैकुण्ठ में और दो भुजाओं से स्वयं गोलोक में स्थित हैं, जो वैकुण्ठलोक से पचास करोड़ योजन ऊपर स्थित है । यह गोलोक गोलाकार, सभी लोकों से श्रेष्ठ, अमूल्य रत्नों से खचित, असंख्यों मन्दिरों से विभूषित है । वहाँ के स्तम्भ और सोपान उत्तम रत्नों के सारभाग से खचित होने के नाते चित्र-विचित्र हैं । उत्तम मणियों के दर्पणों से युक्त किवाड़ों, उज्ज्वल कलशों और अनेक भाँति के चित्र-विचित्र शिविरों से वह गोलोक सुशोभित है । उसकी चौड़ाई एक करोड़ योजन है और लम्बाई सौगुनी अधिक । विरजानामक नदी से व्याप्त सौ शिखरों वाले पर्वतों से वह आवेष्टित है । उक्त नदी के आधे प्रमाण लम्बे, चौड़े तथा पर्वत के आधे प्रमाण ऊँचे वृन्दावन से वह युक्त है । उसके आधे प्रमाण में स्थित रासमण्डल से मण्डित गोलोक है ।

सरिच्छैलवनादीनां मध्ये गोलोक एव च ।
यथा पंकजमध्ये च कर्णिकासुमनोहरा ॥२१॥
तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले ।
रासेश्वर्या राधिकया संयुक्तः सन्ततं नृप ॥२२॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुर्गोपालरूपधृक् ।
वह्निशुद्धांशुकादानो रत्नभूषणभूषितः ॥२३॥
चन्दनोक्षितसर्वांगो रत्नमालाविराजितः ।
रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नछत्रेण शोभितः ॥२४॥
तथा स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः ।
भूषिताभिश्च गोपीभिर्मालाचन्दनचर्चितः ॥२५॥
सस्मितः सकटाक्षाभिः सुवेषाभिश्च वीक्षितः ।
कथितो लोकविस्तारो यथाशक्ति यथागमम् ॥२६॥

नदी, पर्वत और वन आदि के मध्य में गोलोक इस प्रकार सुशोभित है जैसे-कमल पुष्प के मध्य अतिमनोहर कर्णिका रहती है । हे नृप! उस रासमण्डल में गोपाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण रासेश्वरी राधिका को निरन्तर साथ लिये गौओं, गोपवृन्दों और गोपियों से आवृत रहते हैं । वे सदैव दो भुजाओं वाले रूप से मुरली हाथ में लिये बाल्यावस्था वाले गोपाल रूप धारण किये रहते हैं । अग्नि की भाँति

विशुद्ध वस्त्र धारण किये, रत्नों की माला से सुशोभित होकर रत्नसिंहासन पर वे विराजमान हैं । ऊपर रत्नों का छत्र लगा है और प्रिय गोपालगण श्वेत चँवरों से सेवा करते रहते हैं । उत्तम वेशभूषा धारण करनेवाली गोपियाँ उन्हें माला, चन्दन लगाती हैं और अपने कटाक्षों से बार-बार देखती रहती हैं जिससे भगवान् मन्द-मुस्कान करते रहते हैं । इस प्रकार मैंने गोलोक का विस्तार वेदानुसार यथाशक्ति बता दिया है ।

यथाश्रुतं शम्भुवक्त्रात्कालमानं निशामय ।
पात्रं षट्पलसम्भूतं गम्भीरं चतुरंगुलम् ॥२७॥
स्वर्णमाषकृतच्छिद्रं दण्डैश्च चतुरंगुलैः ।
यावज्जलप्लुतं पात्रं तत्कालं दण्डमेव च ॥२८॥
दण्डद्वयं मुहूर्तं च यामस्तस्य चतुष्टयम् ।
वासरश्चाष्टभिर्यामैः पक्षस्तैर्दशपंचभिः ॥२९॥
मासो द्वाभ्यां च पक्षाभ्यां वर्षं द्वादशमासकैः ।
मासेन वै नराणां च पितॄणां तदहर्निशम् ॥३०॥
कृष्णपक्षे दिनं प्रोक्तं शुक्ले रात्रिः प्रकीर्तिता ।
वत्सरेण नराणां च देवानां च दिवाऽनिशम् ॥३१॥
अयनं ह्युत्तरमहो रात्रिर्वै दक्षिणायनम् ।
युगकर्मानुरूपं च नरादीनां वयो नृप ॥३२॥
प्रकृतेः प्राकृतानां च ब्रह्मादीनां निशामय ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कालश्चेति चतुर्युगम् ॥३३॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैः सावधानं निशामय ।
चत्वारि त्रीणि च द्व्येकं सहस्राणि कृतादिकम् ॥३४॥
तेषां च सन्ध्या-सन्ध्यांशौ द्वे सहस्रे प्रकीर्तिते ।
त्रिचत्वारिंशकैर्लक्षैः सविंशतिसहस्रकैः ॥३५॥

शंकर के मुख से मैंने कालमान के सम्बन्ध में जैसा सुना था वह तुम भी सुन लो । छः पल सोने का बना हुआ, जिसकी गहराई चार अंगुल की हो, उसमें एक-एक मासे स्वर्णनिर्मित चार-चार अगुंल लम्बे चार कीलों से छेद कर दिये जायँ । फिर उस पात्र को जल के ऊपर रख दिया जाय, उन छिद्रों से जल आकर जितनी देर में वह पात्र भर दे, उतने समय को एक दण्ड कहा जाता है । वैसे दो दण्ड का एक मुहूर्त होता है और चार मुहूर्त का एक याम, आठ याम का एक अहोरात्र तथा पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है । मनुष्यों का एकमास पितरों का एक अहोरात्र होता है । उनका दिन कृष्णपक्ष में और रात्रि शुक्लपक्ष में होती है । मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिन-रात होता है ।

उत्तरायण उनका दिन और दक्षिणायण उनकी रात्रि है । हे नृप! युगकर्म के अनुरूप मनुष्य आदि की आयु होती है । अब प्रकृति, प्राकृत पदार्थ एवं ब्रह्मा आदि की भी आयु कहता हूँ, सुनो- कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं । जो दिव्य बारह सहस्र वर्ष के होते हैं । उन्हें सावधानी से सुनो । सत्ययुग चार सहस्र, त्रेता तीन सहस्र, द्वापर दो सहस्र और कलि एक सहस्र वर्ष का होता है, इनके सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो सहस्र वर्ष के होते हैं । मनुष्यों के वर्षप्रमाण से चारों युग ४३ लाख २० सहस्र वर्ष के होते हैं ।

चतुर्युगं परिमितं नरमानक्रमेण च ।
लक्षैश्च सप्तदशभिः साष्टविंशसहस्रकैः ।
कृते युगं नृमानेन संख्याविद्भिः प्रकीर्तितम् ।।३६।।
सहस्रैः षण्णवतिभिर्लक्षैर्द्वादशभिः सह ।
त्रेतायुगं परिमितं कालविद्भिः प्रकीर्तितम् ।।३७।।
अष्टलक्षैः सहमितं चतुःषष्टिसहस्रकम् ।
परिमाणं द्वापरस्य संख्याविद्भिरितीरितम् ।।३८।।
सद्वात्रिंशत्सहस्रैश्च चतुर्लक्षैश्च वत्सरैः ।
नृमानाद्वै कलियुगं विदुः कालविदो बुधाः ।।३९।।
यथा सप्त च वारा वै तिथयः षोडशस्मृताः ।
दिवारात्र्यश्च पक्षौ द्वौ मासो वर्ष च निर्मितम् ।।४०।।
यथा भ्रमति तच्चक्रमेवमेव चतुर्युगम् ।
यथा युगानि राजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च ।।४१।।
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ।
एवं क्रमाद भ्रमन्त्येव मनवश्व चतुर्दश ।।४२।।
पंचविंशतिसाहस्रं षष्ट्यन्तशतपंचकम् ।
नरमानयुगं चैव परं मन्वन्तरं स्मृतम् ।।४३।।

अब चारों युगों का पृथक्-पृथक् वर्षप्रमाण मनुष्यों के मान से बता रहा हूँ - १७ लाख २८ सहस्र मानव वर्ष का सत्ययुगमान, १२ लाख ९६ हजार वर्ष का त्रेता, ८ लाख ६४ हजार वर्ष का द्वापर और ४ लाख ३२ हजार वर्ष का कलिमान होता है, ऐसा संख्याविदों और कालज्ञों ने बताया हैं । इनमें सात दिन, सोलह तिथियाँ, दिवा-रात्रि, दो पक्ष, मास और वर्ष का निर्माण किया गया है । हे राजन्! इसमें चक्र की भाँति चारों युगों का चक्र प्रत्येक युगों के पृथक्-पृथक् चक्र और मन्वन्तरों का चक्र घूमता रहता है । ७१ दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है । इसी भाँति चौदहों

मन्वन्तर क्रमशः घूमा करते हैं । मनुष्यों के मान से २५ हजार ५६० युगों का एक मन्वन्तर होता है ।

॥ अध्याय समाप्त ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१/१७/१७॥

पाप ही रोग का कारण है–

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा ।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः ॥१/१६/५१॥
तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममंगलम् ।
भारते सततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः ॥१/१६/५२॥
नास्ति गंगासमं तीर्थं न च कृष्णात्परः सुरः ।
न शंकराद्वैष्णवश्च न सहिष्णुर्धरा परा ॥ १/११/१६॥
न च सत्यात्परो धर्मो न साध्वी पार्वती परा ।
न दैवाद्बलवान् कश्चिन्न च पुत्रात्परः प्रियः ॥१/११/१७॥
न च व्याधिसमः शत्रुर्न च पूज्यो गुरोः परः ।
नास्ति मातृसमो बन्धुर्न च मित्रं पितुः परम् ॥११/१८॥
एकादशी व्रतान्नान्यत्तपो नानशनात्परम् ।
पर सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नं परं ततः ॥११/१९॥
सर्ववर्णात्परो विप्रो नास्ति विप्रसमो गुरुः ।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञ इत्याह कमलोद्भवः ॥११/२०॥

अपवित्र, पवित्र अथवा सभी अवस्थाओं को प्राप्त करके भी जो कमलनयन भगवान् का स्मरण करता है, वह बाहर-भीतर से पवित्र होता जाता है । पाप से व्याधि, जरा, दीनता, दुःख और भयंकर शोक उत्पन्न हो जाते हैं । इससे पाप महाशत्रु, दोषों का बीज और अमंगलकारक होता है । भारत में पाप के भय से सतत व्याकुल सज्जन मनुष्य कभी भी पापाचरण नहीं करते हैं । गंगा के समान अन्य तीर्थ नहीं, कृष्ण से बढ़कर कोई देवता नहीं, शंकर से श्रेष्ठ कोई वैष्णव नहीं, पृथ्वी से बढ़कर कोई सहिष्णु नहीं, सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं, पार्वती से श्रेष्ठ कोई साध्वी नहीं, प्रारब्ध से बढ़कर कोई बलवान् नहीं, पुत्र से बढ़कर कोई प्रिय नहीं, व्याधि के समान शत्रु नहीं, गुरु के समान कोई पूज्य नहीं, माता के समान कोई बन्धु नहीं, पिता के समान कोई मित्र नहीं, एकादशी के समान कोई व्रत नहीं, उपवास के समान कोई तप नहीं है । सभी धनों में श्रेष्ठ रत्न है एवं विद्या रूपी रत्न सभी रत्नों में भी श्रेष्ठ है

। सभी वर्णों में श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद-वेदांग के तत्त्व को जाननेवाला है । वही सबका गुरु होता है । ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है ।

हरिकीर्तन का फल-

करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम् ।
कालं मृत्युं स जयति जन्म रोगं जरां भयम् ।।प्र.१८/६१।।

भगवान् का प्रसाद तुरन्त खाय-

विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वा फलं जलम् ।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा जनः ।।३६/२८।।

परस्त्रीलम्पट निन्दा-

यस्य चित्तं परस्त्रीषु सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ।
न कर्मफलभाक्पापी निन्द्यो विश्वेषु सर्वतः ।।५५/३२।।
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ।।५७/१२।।

स्त्रियों के ३ रक्षक -

पिता कौमारकाले च सदापालनकारकः ।
भर्ता मध्ये सुतः शेषे त्रिधाऽवस्था सुयोषिताम् ।।गण.४/६।।

माता-पिता आदि का पोषण अनिवार्य -

पिता माता गुरुर्भार्या शिशुश्चानाथबान्धवाः ।
एते पुंसां नित्यपोष्या इत्याह कमलोद्भवः ।। श्रीकृ.६०/५।।
सत्यं हन्ति न सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान् ।
सत्यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च ।। श्रीकृ. ७२/१०/५।।

भक्त का विनाश नहीं होता -

ब्रह्माण्डानि विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा ।
कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रणश्यति ।।प्र.६/१२१।।
श्रुतिस्मृतिपुराणादिपांचरात्रविधिं विना ।
स्वातन्त्र्येण कृता भक्तिरुत्पातायैव केवलम् ।।

जो सर्वदा भगवन्नाम संकीर्तन में रत कहते हैं, वे काल, मृत्यु, जन्म, जरा और भय को जीत लेते हैं । भगवान् विष्णु को निवेदित पुष्प, नैवेद्य, फल अथवा जल जिस समय प्राप्त हो, शीघ्र ही उसका पान कर लेना चाहिये, त्याग से मनुष्य को ब्रह्महत्या का पाप लगता है । जिसका चित्त परस्त्रियों में लगा रहता वह सभी कर्मो में अपवित्र होता है । वह पापी कर्मफल से विहीन और विश्व में सर्वत्र निन्दा का पात्र होता है । जिसकी माता घर में नहीं है तथा जिसकी गृहिणी भी घर में अनुशासित

नहीं है, उसके द्वारा अरण्य को चला जाना चाहिये । क्योंकि उसके लिये जैसा अरण्य वैसा ही घर भी बना हुआ है । सुन्दर योषिताओं (स्त्रियों) की तीन अवस्था के तीन रक्षक होते है; जैसे- कुमारी अवस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र ही रक्षक होते हैं । पिता, माता, गुरु, पत्नी, बच्चे और अनाथ बान्धव सदा सम्पोषण के योग्य होते हैं; ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है । सर्वेश्वर सत्य का हनन नहीं करता है उसकी रक्षा करनेवाला कौन पुरुष हो सकता है? सर्वात्मा सत्य की रक्षा करता है; उसका हन्ता कोई नहीं हो सकता है। ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जाते हैं तथा देवता और ब्रह्मा आदि भी नाशवान् है; परन्तु कल्याण और भक्ति से युक्त मेरे भक्त का कभी भी नाश नहीं होता है । श्रुति, स्मृति, पुराणादि और पाञ्चरात्र की विधि के बिना जो भक्ति स्वतन्त्र रूप से की जाती है; वह केवल उत्पात के लिये ही होती है।

मह्यं द्रुह्यति यःकश्चित्तदप्युपकराम्यहम् ।
यो हि मे हृदयग्राही प्राणांस्तस्मै ददाम्यहम् ।।
यः करोति बहुनीचसंगतिं तेन हानिरनुभूयते ध्रुवम् ।
मत्कुणेन यदि दश्यते जनो मंचकस्य भवति प्रताडनम् ।।
उत्तमं सार्थपाठं च मध्यमं च निरर्थकम् ।
विनार्थं शुद्धपाठश्चेदुत्तमेन समो भवेत् ।।
गोशब्देनोच्यते पृथ्वी सा हि माता शरीरिणाम् ।
शैशवे जननी माता पश्चात्पृथ्वी हि शस्यते ।।
गावो यज्ञार्थमुत्पन्ना यज्ञो वै विश्वजीवनम् ।
श्रौत-स्मार्तेन यज्ञेन गवां रक्षा भवेद्ध्रुवम् ।।
गव्यं हव्यं च कव्यं च देवर्षिपितृप्तये ।
तस्माद्गौरेव संरक्ष्या श्रौत-स्मार्त्ताध्वरादिभिः ।।
गोषु प्रनष्टमानासु यज्ञो नाशं गमिष्यति ।
यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ।।
विश्वस्य जीवनं यज्ञो ब्राह्मणस्तत्प्रयोजकः ।
यज्ञो भवति गव्येन तस्माद्गोब्राह्मणौ वरौ ।।

मुझसे जो कोई द्रोह करता है, मैं उसका भी उपकार ही करता हूँ, और जो मुझे हृदय से चाहता है उसके लिये तो मैं प्राण देने को तैयार रहता हूँ । जो बहुत नीच की संगति करता है उसके द्वारा निश्चय ही हानि का अनुभव किया जाता है । खटमल के द्वारा मनुष्य काटा जाता है परन्तु पहले चारपाई की ही प्रताड़ना होती है । अर्थज्ञान सहित पाठ उत्तम होता है और अर्थज्ञान रहित पाठ मध्यम होता है । बिना अर्थज्ञान के भी यदि शुद्ध पाठ होता है तो वह उत्तम के समान होता है । शुद्ध पाठ का भी बहुत

माहात्म्य है । गायें यज्ञ के लिये प्रकट हुई हैं और यज्ञ ही विश्व का जीवन है; अत: श्रौत-स्मार्त यज्ञ के द्वारा निश्चय ही गोवंश का संरक्षण होना सम्भव है । गव्य हव्य और कव्य देवता, ऋषि तथा पितरों को तृप्त करनेवाले होते हैं; इसलिये श्रौत-स्मार्त यज्ञों के द्वारा निश्चयेन गोवंश का संरक्षण होता है । गोवंश के नष्ट हो जाने पर यज्ञ का नाश होगा और यज्ञ के नष्ट होने पर देवता का नाश पुन: दैवप्रकोप से सर्वनाश हो जाना निश्चित है । यज्ञ-विश्व का जीवन है, ब्राह्मण यज्ञ का प्रयोजक है और यज्ञ गव्य पदार्थ से होता है इसलिये गौ और ब्राह्मण ये दोनों सर्वश्रेष्ठ होते हैं ।

पृथ्वी के भार -

स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिता: ।
श्रद्धाहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेण पीडिता ।।
पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययो: ।
ये न कुर्वन्ति तेषां च न शक्ता भारवाहने ।।
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविहीनका: ।
निन्दका गुरुदेवानां तेषा भारेण पीडिता ।।
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायक: ।
विश्वासघ्न: स्थाप्यहारी तेषां भारेण पीडिता ।।
पूजायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च ।
ये ये मूढा निहन्तारस्तेषां भारेण पीडिता ।।
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् ।
हरिं हरिकथाभक्तिं तेषां भारेण पीडिता ।। श्रीकृष्ण ४,२१,२८

जो स्वधर्म के आचरण से हीन, नित्यकृत्य से विवर्जित और वेदों में श्रद्धा नहीं रखनेवाले हैं; उनके भार से पृथ्वी पीड़ित होती है । पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अपने आश्रितों का जो सम्पोषण नहीं करते हैं, पृथ्वी उसका भारवहन करने में अशक्त होती हैं । हे तात! जो मिथ्यावादी हैं, दया और सत्य से विहीन हैं तथा जो गुरु एवं देवताओं की निन्दा करनेवाले हैं, पृथ्वी उनके भार से पीड़ित होती है । जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, मिथ्या, गवाही देनेवाला, विश्वासघाती और धरोहर का अपहरण करनेवाला है; पृथ्वी उसके भार से पीड़ित होती है । जो पापी गो, विप्र, देवता, वैष्णव, विष्णु, भगवत्कथा तथा भगवान् की भक्ति से द्वेष करते हैं, पृथ्वी उनके भार से पीड़ित होती है ।

धर्मपत्नी के त्याग से नरक की प्राप्ति

अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम् ।
त्यक्त्वा भवेद्यः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा ॥
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः ।
तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम् ॥
न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम् ।
अभिशापेण भार्याया नरकं च परत्र च ॥ श्रीकृ.ज. ११३६-८॥

जो अनपत्य, युवती और सत्कुल में उत्पन्न हुई पतिव्रता का त्याग कर संन्यासी, ब्रह्मचारी या यति हो जाते हैं, अथवा वाणिज्यार्थ या किसी भी प्रकार से प्रवास में चिरकाल के लिये बहुत दूर चले जाते हैं । तीर्थ में, तपस्या के लिये, जन्म-खण्डनार्थ मोक्ष के लिये तो उनको मोक्षप्राप्त नहीं होता और निश्चय ही उनके धर्म का स्खलन होता है तथा भार्या के अभिशाप से परलोक में उसे नरक की प्राप्ति होती है ।

शुक्लयजुर्विधानसूत्रम्

सन्त्वमिति नवभिर्यावत्संख्याया गोस्थानमुपतिष्ठेत् तावत्संख्याका वत्सा भवन्ति गावश्च ॥पृ. ५॥ इहैवस्तमेति यामेव धेनुमिच्छति तस्या एव पतितं गोमयं गृहीत्वा दधिमधुघृताक्तं जुहुयात् तामेव धेनुं लभेत्यमोघं कर्म्मेत्याचक्षते ॥पृ.५॥ द्विपदचतुष्पदानामुपसर्गे भेषजमसीति दधिमधुघृतं जुहुयात् शान्तिर्भवति ॥५॥ उग्रं लोहितेनेति धनकामः पवित्रपाणिः शुचिर्भूत्वाऽऽदित्यं चरुं निर्वपेत् एकादशैव धेनव उत्पद्यन्ते ॥१०॥ उपप्रयन्तोऽअध्वरमिति गोमयेनोपलिप्तांग आहुतीनामष्टसहस्रं जुहुयात् पशवोऽक्षया भवन्ति ॥१०॥ गोकुलेऽगमन्त्रणम् ॥१०॥ रेवतीरमध्वमिति पशुकामः श्रेयस्कामश्च जपं कुर्यात् ॥१०॥ चत्वारि श्रृंगा इत्यार्षभो मन्त्रः सकृदभ्यसनादेव पूतो भवति ॥९॥ गोशब्देनाज्याहुतीः सहस्रं जुहुयाद् गोकामः ॥११॥ कुशपुष्पांगारेष्वाज्याहुतीः सहस्रं जुहुयाद् गोकामः ॥११॥ गवामुपघाते गोष्ठमध्येऽग्निमुपसमाधाय नमस्ते रुद्र मन्यव इति चतुर्भिः प्रत्यृचं वैकंकतसमिधां दध्यक्तानामयुतं जुहुयात् गवां शान्तिर्भवति । द्विगुणेन महाशान्तिर्भवति ॥१६॥ गवामुपघाते गोष्ठमध्येऽग्निमुपसमाधाय इमा रुद्रायेति वैकंकतौदुम्बरीणां समिधां जुहुयाद् गवां शान्तिर्भवति ॥२०॥ ताग्ँुसवितुरिति गोमयं सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा संल्लिप्तशरीरं स्नापयेत् यावज्जीवं तस्य गावो न क्षीयन्ते ॥ दुह्यमानाया नाम संगृह्य परिवेषं कृत्वोदकमवतीर्य तावज्जपेद् यावन्मुक्ता धेनुर्लभ्यते । शमीसमिधामयुतं जुहुयाद् वृषभादिकं लभते । गोशफेनाज्याहुतिसहस्रं जुहुयात् गोशतं भवति ॥२५॥ समास्त्वेति नवर्चेन पायसाहुतीनामयुतं जुहुयात् गोष्ठमध्येऽग्निमुपसमाधाय गोमयेनोपलिप्य यावदिच्छन्ति गावः तावत्संख्यका लभन्ते ॥२७॥ इड एहीति यामेव धेनुमिच्छति तस्या एव नाम परिजाप्य गोस्वामिशब्दं कुर्यात्तस्या एवापतितगोमयेन गोप्रतिकृतिं कृत्वा तेनैव नाम्ना बध्नीयात्सव्येन गृहीत्वा पयोदधिमधुघृतं जुहुयात् तामेव धेनुं लभते । अमोघं कर्मेत्याचक्षते ॥३१॥ गोपशुमरणे गोष्ठमध्येऽग्निमुपसमाधाय उग्रश्चेति वैकंकतसमिधामयुतं जुहुयात् परमशान्तिर्भवति ॥४०॥

पुत्रकामः कपिलायाः सवत्सायाः श्वेतायाश्च वत्सप्रसूताया आद्यं दुग्धं चानीय तेन दुग्धेन चरुं श्रपयित्वा अग्नौ मन्त्रेण कृत्वा चरुं स्वयमुद्धृत्याष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा पत्न्या सह भक्षयेत् आयुष्मतः पुत्रान् दृढशरीरान् जनयति पुष्टिमन्तश्च भवन्ति ॥४६॥ रक्तचन्दनसम्मिश्रं गोमयं घृताक्तं च गायत्र्या सहस्रेन वह्नौ हुत्वा सहस्रगोधनमाप्नोति । यस्या एव गोर्गोमयेन गुटिकाः सघृता गायत्र्या सहस्रं वह्नौ जुहुयात् । शतं गवां लभते ॥४०॥

''सन्त्वमिति'' इन नौ मन्त्रों से यावत्ससंख्याक गौ का उपस्थान किया जाय, तावत्ससंख्याक वत्स और गौ की प्राप्ति होती है । जिस धेनु के प्राप्ति की इच्छा हो उसी का गोवर ग्रहण कर दधि, मधु और घृत से युक्त करके ''इहैवस्तमिति'' मन्त्र से हवन करने से उसी धेनु की प्राप्ति होती है, यह अमोघ प्रयोग है । मनुष्य और पशु के उपद्रव होने पर ''भेषजमसि'' इस मन्त्र से दधि, मधु और घृत का हवन करने से शान्ति होती है । धन और गोधन की कामना से हाथ में पवित्री धारण कर पवित्र होकर ''उग्रं लोहितेन'' इस मन्त्र से आदित्य के लिये चरु का निर्वपन करे तो एकादश धेनु की प्राप्ति होती है । ''उपप्रयन्तोऽअध्वर'' इस मन्त्र से गोमय से उपलिप्त अंगवाला आठ हजार आहुति प्रदान करे तो पशुओं का क्षय नहीं होता है । गोष्ठ में अंगमन्त्रण करे । पशु अथवा कल्याण की कामना से गोष्ठ में ''रेवती रमध्वम्'' इस मन्त्र का जप करे । ''चत्वारि श्रृंगा'' इस आर्षभ मन्त्र के एक बार जप से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है । गोप्राप्ति की कामना से गौ के मूलमन्त्र से एक हजार आज्याहुति दे । कुश और पुष्प के अंगार में एक सहस्र घृताहुति देने से गोधन की प्राप्ति होती है । गोवंश का उपघात होने पर गोष्ठमध्य में अग्नि का उपसमाधान करे और ''नमस्ते रुद्र मन्यव'' आदि चार प्रत्येक ऋचाओं से दधि से युक्त वैकंकती समिधा से अयुत संख्यक हवन करे तो गोवंश की शान्ति होती है । द्विगुण हवन करने से महाशान्ति होती है । गोवंश पर आपत्ति आने पर गोष्ठमध्य में अग्नि का उपसमाधान करके वैकंकत और गूलर की समिधा से ''इमा रुद्राय'' मन्त्र से हवन करने से गोवंश की शान्ति होती है । ''ताग्गुँसवितुः'' मन्त्र से गोबर को एक हजार बार अभिमन्त्रित करके गोस्वामी के शरीर में उसका उपलेपन कर गोमूत्र एवं जल से स्नान कराने से वह जब तक जीवित रहेगा तब तक उसके गोवंश का क्षय नहीं होगा । दुह्यमान गौ का नाम ग्रहणकर उसे भोजन देकर परिक्रमा करे और जल में उतरकर नाममन्त्र का तब तक जप करे जब तक मुक्त धेनु की प्राप्ति न हो जाय । शमी की समिधा से दस हजार आहुति प्रदान करके से वृषभ आदि का लाभ होता है । गोशफ

से एक हजार घृताहुति देने से सौ गौओं की प्राप्ति होती है । ''समास्त्वाग्न'' इन नौ मन्त्रों से गोष्ठमध्य में अग्नि की स्थापना कर पायस की दस हजार आहुति देने से जितनी गौएँ चाहें उनकी प्राप्ति हो जाती है, हवन के समय शरीर में गोबर का उपलेपन भी कर ले । ''इड एहि'' इस मन्त्र से जिस धेनु की इच्छा हो उसके ही नाम का जप कर गोस्वामी के नाम का उच्चाण करे और उसी धेनु के अपतित गोमय से गोप्रतिकृति बनाकर उसी नाम से बाँधकर पुनः सव्य होकर उसे ग्रहण करे और दूध, दही, मधु तथा घृत से हवन करे तो उसी धेनु को प्राप्त करता है । यह अमोघ कर्म है । गोवंश की मृत्यु होने पर गोष्ठमध्य में अग्नि की स्थापना करके ''उग्रश्च मे'' इस मन्त्र से वैकंकती समिधा से दस हजार आहुति देने से परम शान्ति होती है । पुत्र की कामना से श्वेत वर्णवाली वत्सप्रसूता कपिला का आद्य दुग्ध लेकर उस दुग्ध से अग्नि में मन्त्रपूर्वक चरु का श्रपण करे और स्वयं उतारकर आठ हजार मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके पत्नी के साथ भक्षण करे तो आयुष्मान् और बलवान् पुत्रों को जन्म देता है तथा पुत्रवान् करे तो उनके पुत्र भी पुष्ट होते हैं । रक्तचन्दन से मिश्रित घृताक्त गोवर को सहस्र गायत्री से अग्नि में होमकर सहस्र गोधन को प्राप्त करता है । जिस गाय के गोवर की गुटिका में घृत मिलाकर अग्नि में सहस्र गायत्री से हवन करे तो वैसी ही सौ गायों को प्राप्त करता है ।

मूत्रवर्णनाध्यायः

मूत्रनामानि

स्रवणं मेहनं मूत्रं प्रस्रावं प्रस्रवं तथा ।।१।।

अर्थ – स्रवण, मेहन, मूत्र, प्रस्राव (गुह्यनिष्यन्द स्रव) ये मूत्र के नाम हैं ।

गोमूत्रगुणाः

तीक्ष्णं चोष्णं क्षारमेवं कषायं गौल्यं मेध्यं श्लेष्मवातं निहन्ति ।
भेधारक्तं पित्तशान्तिं करोति गुल्मानाहोन्माददोषापहं च ।।२।।
कण्डूकिलासमलशूलमुखाक्षिरोगान्
गुल्मामवातगुदमारुतमूत्ररोधान् ।
कासं सकुष्ठजठरं कृमिकोषजालं
गोमूत्रमेकमपि पीतमहो निहन्ति ।।३।।

अन्यच्च -

गवां मूत्रं कषायं स्यात् कटु तिक्तं लघु स्मृतम् ।
क्षारं चोष्णं च तीक्ष्णं च पाचनं चाग्निदीपनम् ।।४।।
भेदकं पित्तलं मेध्यं किंचिच्च मधुरं सरम् ।

लेखनं बुद्धिदं प्रोक्तं कफवातविनाशनम् ।।५।।
कुष्ठं गुल्मं चोदरं च पाण्डुरोगं किलासकम् ।
शूलं चार्शश्च कण्डूं च श्वासं चामं ज्वरं तथा ।।६।।
आनाहवातं कासं च मलस्तम्भं च शोधकम् ।
मुखाक्षिरोगं त्वग्रोगं कामिन्याश्चातिसारकम् ।।
मूत्ररोगं नाशयति ह्येतच्चैव गुणाधिकम् ।।७।।

अर्थ- गोमूत्र तीक्ष्ण, गर्म, खारी, कषेला, गौल्य, मेधाजनक, कफवात का नाशक, भेदक, रक्त-पित्त को शान्त करनेवाला तथा गुल्म, अनाह और उन्माद दोष को नष्ट करता है । यह किलास, मल, शूल, मुखरोग, नेत्ररोग, गुल्म, आमवात, गुदारोग, मूत्ररोध, खाँसी, कोढ़, उदररोग और कृमि के समूह को समाप्त करता है । गाय का मूत्र कषेला, चरपरा, कड़वा, हल्का, खारी, गर्म, तीक्ष्ण, पाचन, अग्निप्रदीपक, भेदक, पित्तकारक, मेधाजनक, कुछ मधुर, सारक, लेखन, बुद्धिदायक तथा कफ-वातनाशक, कोढ़, गुल्म, उदररोग, पाण्डुरोग, किलास, शूल, बवासीर, खुजली, श्वास, आमज्वर, आनाहवात, खाँसी, मलस्तम्भ, सूजन, मुखरोग, नेत्ररोग, त्वचा के रोग, स्त्रियों का अतिसार और मूत्ररोध को दूर करता है तथा यह गुणों में सर्वाधिक गुणवाला होता है । (मादा गौ का मूत्र ही लेना चाहिये ।)

मूत्रविशेषगुणाः

सौरभेयकमूत्रं तु घनं सान्द्रं प्रशस्यते ।
तच्च वृषणहीनानां किंचिल्लघुतरं स्मृतम् ।।८।।
वृषमूत्रं च शोफघ्नं कृमिदोषविनाशनम् ।
कामलाग्रहणीपाण्डुनाशनं चाग्निदीपनम् ।।९।।

गोमूत्रवैशिष्ट्यम्

सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् ।
अतो विशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ।।१०।।
प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्च्चोग्रहापहम् ।
शूलगुल्मरुजानाह कामलापाण्डुरोगहृत् ।।११।।
गोमूत्रस्य श्रेष्ठत्वं पाने तु सर्वदा मतम् ।।१२।।

अर्थ- बैल का मूत्र गाढ़ा, सान्द्र और श्रेष्ठ होता है और वही बैल वृषणहीन अर्थात् वधिया किया हुआ का मूत्र कुछ हल्का होता है । बैल का मूत्र सूजन को दूर करनेवाला, कृमिदोषनाशक तथा कामलानाशक, संग्रहणीनाशक तथा अग्निप्रदीपक होता है । सब प्रकार के मूत्रों मे गोमूत्र सर्वाधिक गुणवाला होता है । अतएव जहाँ कहीं मूत्र शब्द आवे, वहाँ से गोमूत्र ही समझना चाहिये । गोमूत्र प्लीहा, उदररोग,

श्वाँस, खाँसी, सूजन, मलरोध, शूल, गुल्म, अफारा, कामला, और पाण्डुरोग को दूर करता है । सभी के मत में पीने में गोमूत्र को ही श्रेष्ठ बताया गया है ।

गव्यं पवित्रं च रसायनं च पथ्यं च हृद्यं बलबुद्धिदं स्यात् ।
आयु:प्रदं रक्तविकारहारि त्रिदोषहृद्रोगविषापहं स्यात् ।।
तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने ।
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने ।।
भूमिपर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ।
तत्पुण्यं प्राप्यते सद्यः केवलं धेनुसेवया ।। गोसेवा अंक १६४
गोसाधुदेवताविप्रवेदानां रक्षणाय वै ।
तनुं धते हरिः साक्षाद् भगवानात्मलीलया ।।

दुग्धादिगुणाः

गोदुग्धाध्यायः

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं पीयूषं बालजीवनम् । (नामानि)

अर्थ - दुग्ध, क्षीर, पयस्, स्तन्य, पीयूष और बालजीवन ये दुग्ध के नाम हैं । (अन्यत्र ऊधस्य, अमृत, दोहज, अवदोह एवं दोहापनय भी नाम उपलब्ध होते हैं ।)

दुग्धगुणाः

दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ।
सद्यः शुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्वशरीरिणाम् ।।२।।
जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम् ।
वयःस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ।।३।।
विरेकवान्तिवस्तीनां तुल्यमोजोविवर्द्धनम् ।
जीर्णज्वरे मनोरोगे शोषमूर्च्छाभ्रमेषु च ।।४।।
ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहतृषि हृदामये ।
शूलोदावर्तगुल्मेषु वस्तिरोगगुदांकुरे ।।५।।
रक्तपित्तातिसारे च योनिरोगश्रमक्लमे ।
गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवरैः स्मृतम् ।।६।।
बालवृद्धक्षतक्षीणाः क्षुद्व्यवायकृशाश्च ये ।
तेभ्यः सदाऽतिशयितं हितमेतदुदाहृतम् ।।७।।
विदादीन्यन्निपानानि यानि भुंक्ते हि मानवः ।
तद्विदाहप्रशानत्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ।।८।। (भाव प्रकाश)

अर्थ - दूध मधुर, स्निग्ध, वातपित्तनाशक, अल्प दस्तावर, तत्काल वीर्योत्पत्तिकारक, शीतल, सर्वप्राणियों की आत्मा, जीवन, बृंहण, बलकारक, मेधाजनक, वाजीकरण, अवस्थास्थापक, आयुष्यकारक, सन्धिकर्ता और रसायन होता

है । ओज के बढ़ाने में विरेचन, वमन, और वस्ति के लिये समान गुणकारक तथा जीर्णज्वर, मनोरोग, शोष, मूर्च्छा एवं भ्रम में हितकारक है । संग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृदयरोग, शूल, उदावर्त, गुल्मरोग, वस्तिरोग एवं गुदांकुर में लाभदायक है । रक्तपित, अतिसार, योनिरोग, श्रम, क्लम, और गर्भस्राव में मुनियों के द्वारा निरन्तर हितकारी बताया गया है । जो बाल, वृद्ध, क्षतक्षीण, भूखे और मैथुन करने से क्षीण हो गये हैं, उनके लिये दूध सदैव हितकारी है । मनुष्य जो दाहजनक अन्न और पेय पदार्थों का सेवन करते हैं उनके दाह को शान्त करने के लिये भोजन के अन्त में दूध अवश्य पीना चाहिये ।

क्षीरं स्वादु रसं स्निग्धमौजस्यं धातुवर्द्धनम् ।
वात्तवित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥९॥
जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् ।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥१०॥

अर्थ – दूध स्वादु, रसान्वित, स्निग्ध, औजस्य और धातुवर्द्धक, वात्तपित्तनाशक, वृष्य, कफकारक, शीतल, और भारी है । दूध जीर्णज्वर और कफ के क्षीण होने में अमृत के समान गुणकारी है तथा वही दूध तरुणज्वर में पीना विषवत् होकर मनुष्य के लिये हननकारक है ।

गोदुग्धगुणाः

धेनोः पयः स्यान्मधुरं सुशीतं रसायनं स्निग्धमलं गुरु स्यात् ।
भ्रमश्रमघ्नं विषहृत्सरं च कफावहं शुक्रकरं हि वर्ण्यम् ॥११॥
गव्यं क्षीरं पथ्यमत्यन्तरुच्यं स्वादु स्निग्धं पित्तवातामयघ्नम् ।
कान्तिं प्रज्ञां बुद्धिमेधांगपुष्टिं धते स्पष्टं वीर्यवृद्धिं विधत्ते ॥१२॥
गोक्षीरं जीवनं बल्यं रक्तपित्तानिलापहम् ।
आयुष्यं पुंस्त्वकृत्पथ्यं मेध्यं वृष्यं रसायनम् ॥१३॥
गव्यदुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः ।
शीतलं स्तन्यकृत्स्निग्धं वात्तपित्तादिनाशनम् ॥१४॥
दोषधातुमलस्रोतः किंचित्क्लेदकरं गुरु ।
जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत्सेविनां सदा ॥१५॥

अर्थ – गाय का दूध मधुर, शीतल, रसायन, स्निग्ध, भारी, भ्रमनाशक, श्रमहारक, विषनाशक, सारक, कफकारक, शुक्रजनक और वर्ण को सुन्दर करनेवाला है । गोदुग्ध पथ्य, अत्यन्त रुचिकारी, स्वादिष्ट, स्निग्ध, पित्त और वातरोगनाशक, कान्तिजनक तथा प्रज्ञा, बुद्धि, मेधा, अंग में पुष्टि और वीर्य को बढ़ानेवाला होता है । गोदुग्ध जीवन, बलकारक, रक्तपित्तनाशक, वातनाशक, आयु और पौरुष्यवर्द्धक, पथ्य,

मेधाजनक, वृष्य एवं रसायन है । गाय का दूध विशेष करके रस और पाक में मधुर, शीतल, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, वातनाशक तथा रक्तपित्त का नाशक होता है । यह (धात्वादि) के दोष धातु, मल, स्रोत और किञ्चित् क्लेदकारक होता है, भारी और सदैव सेवन करनेवाले मनुष्यों के जरा तथा सर्वरोगों को शान्त करने वाला है ।

वर्णादिविशेषे गोदुग्धगुणविशेषाः

कृष्णाया गोर्भवेद् दुग्धं वातहारि गुणाधिकम् ।
पीताया हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् ॥
श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्तचित्रा च वातहृत् ॥१६॥
विवत्सा बालवत्सायाः पयो दोषलमीरितम् ।
बष्कयिण्यास्त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः ॥१७॥
जांगलानूपशैलेषु चरन्तीनां यथोत्तरम् ।
पयो गुरुतरं स्नेहो यथाहारं प्रवर्तते ॥१८॥

अर्थ –काली गाय का दूध वातनाशक और सर्वाधिक गुणवाला होता है । पीली गाय का दूध पित्तनाशक और वात का हरण करनेवाला है । सफेद गाय का दूध कफकारक और भारी होता है और लाल एवं चितकबरी गाय का दूध वात का विनाश करता है । जिस का बछड़ा नहीं है अथवा जिसका बछड़ा छोटा है उसका दूध दोषकारक है । बकेनी (बाखरी) गाय का दूध त्रिदोषनाशक, तृप्तिकारक और बलवर्द्धक होता है । जो गाय जांगल, अनूप और पर्वतों में चरती हैं, उनका दूध यथाक्रम से भारी होता है । तथा गायें जैसा आहार करती हैं वैसे ही आहार के अनुसार घृत निकलता है ।

आहारविशेषे दुग्धगुणविशेषाः

स्वल्पान्नभक्षणाज्जातं क्षीरं गुरु कफप्रदम् ।
तत्तु वर्ण्यं परं वृष्यं सुस्थानां गुणदायकम् ॥
पलालतृणकार्पासबीजजातं गुणैर्हितम् ॥१९॥ (भा.प्र.)

अर्थ – जो गाय अल्प मात्रा में अन्न का आहार करती हैं उनका दूध भारी, कफाकारक, वर्ण को सुन्दर करनेवाला, परम वृष्य और स्वस्थ मनुष्यों के लिये गुणदायक होता है । जो पलाल (प्याल) चरी की कुट्टी, घास और बिनोले खाती हैं उनका दूध अत्यन्त हितकारक होता है ।

गोरवस्थाविशेषे दुग्धगुणाः

तरुणीनां गवां दुग्धं मधुरं च रसायनम् ।
त्रिदोषशमनं चैव वृद्धाया दुर्बलं मतम् ॥२०॥
सगर्भायाः समुद्दिष्टं त्रिमासोर्ध्वं च पित्तलम् ।

क्षारं च मधुरं चैव मतवंशोषकारणम् ।।२१।।
प्रथमं च प्रसूताया निःसारं गुणहीनकम् ।
नूत्नप्रसूतगोदुग्धं रूक्षं दाहकरं मतम् ।।२२।।
रक्तदोषस्य जनकं पित्तलं च मतं बुधैः ।
चिरप्रसूतादुग्धं तु मधुरं दाहकं पटु ।।२३।।

अर्थ – तरुणी गाय का दूध मधुर, रसायन और त्रिदोषनाशक है । वृद्धा गाय का दूध दुर्बल होता है । जिस गाय का गर्भ तीन महीने से ऊपर का हो गया हो, उस गाय का दूध पित्तकारक, खारी, मधुर और शोषकारक होता है । जो गाय प्रथम प्रसूता है, उसका दूध सारहीन और गुणों में हीन होता है एवं जो गाय नवप्रसूता है, उसका दूध रूखा, दाहकारक, रक्तदोष को उत्पन्न करनेवाला और पित्तकारक होता है तथा जिस गाय को बच्चा दिये बहुत दिन बीत गये हों, उसका दूध मधुर, दाहकारक, और नमकीन होता है ।

गोदुग्धानां प्राशस्त्याप्राशस्त्यभेदाः

शस्तं वत्सैकवर्णाया धवलीकृष्णयोरपि ।
इक्ष्वादामाषपर्णाद्या ऊर्ध्वश्रृंगी च या भवेत् ।।
तासां गवां हितं क्षीरं श्रृतं वाऽश्रृतमेव वा ।।२४।।

अर्थ – जिन गायों का रंग बछड़े के रंग से मिलता है, उनका दूध तथा काली और सफेद गाय का दूध प्रशंसनीय होता है । जो गाय ईख माषपर्ण (मषवन) आदि को खाती हैं और जिन गायों के सींग ऊपर को उठे हैं, उन गायों का दूध पक्व या अपक्व भी हितकारी है ।

गोदुग्धग्रहणकालनिर्णयः

गव्यं प्रत्युषसि क्षीरं गुरु विष्टम्भि दुर्ज्जरम् ।
तस्मादभ्युदिते सूर्ये यामं यामार्द्धमेव वा ।।
समुत्तार्य्य ततो ग्राह्यं तत्पथ्यं दीपनं लघु ।।२५।।

अर्थ – गाय का दूध प्रातःकाल में भारी, विष्टम्भकारी और दुर्ज्जर होता है । अतः सूर्य के उदय होने पर एक प्रहर अथवा अर्द्धप्रहर समय व्यतीत हो जाने पर गाय का दूध ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार ग्रहण करने से वह दूध पथ्य, दीपन और हल्का होता है ।

दुग्धस्य सात्म्यासात्म्यविधिः

अल्पाम्बुपानव्यायामात् कटुतिक्ताशने लघु ।
पिण्याकाम्लाशिनीनां तु गुर्वभिष्यन्दि शीतलम् ।।२६।।
क्षीणानां दुर्बलानां च तथा जीर्णज्वरार्दिते ।

दीप्ताग्निमानतन्द्राणां श्रमशोषविकारिणाम् ॥२७॥
व्यवायिनामल्परेतः श्वासिनां विषमाग्निनाम् ।
तथा च राजयक्ष्माणां क्षीरपानं विधीयते ॥२८॥
न शस्तं लवणैर्युक्तं क्षीरं चाम्लेन वा पुनः ।
करोति कुष्ठं त्वग्दोषं तस्मान्नैव हितं मतम् ॥२९॥ (हा.सं.)

अर्थ – जो मनुष्य अल्प जल पीते हैं, कसरत करते हैं तथा चटपटे और कड़वे पदार्थ खाते हैं, उनके लिये दूध हल्का होता है तथा जो अम्लरस का सेवन करते हैं; उनके लिये दूध भारी, अभिष्यन्दि और शीतल होता है । क्षीण, दुर्बल, जीर्णज्वर से पीड़ित, जिनकी जठराग्नि उद्दीप्त है, तन्द्राहीन, श्रमवाले, शोषयुक्त, मैथुन करनेवाले, क्षीण वीर्यवाले, श्वासयुक्त, विषम अग्नियुक्त और राजयक्ष्मा रोगवाले मनुष्यों को दूध का सेवन करना चाहिये । लवणयुक्त अथवा अम्लद्रव्ययुक्त दूध का पीना श्रेष्ठ नहीं है । यह कोढ़ एवं त्वचा के रोगों को उत्पन्न करता है; इस कारण यह दूध अहितकारी हो जाता है ।

आमं क्षीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम् ।
ज्ञेयं सर्वमपथ्यं तद् गव्यं माहिषवर्जितम् ॥३०॥

अर्थ – गाय और महिष के दूध को छोड़कर प्रायः सभी दूध अभिष्यन्दि, भारी, कफकारी और अपथ्य होते हैं । (दूध नौ प्रकार के होते हैं- गाय, भैंस, बकरी, भेड़, हथिनी, घोड़ी, गधी, ऊँटनी और स्त्रीदुग्ध) ।

धारोष्णादिदुग्धगुणाः

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम् ।
दीपनं च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत् ॥३१॥
धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतं तु माहिषम् ।
श्रृतोष्णमाविकं पथ्यं श्रृतशीषमजापयः ॥३२॥
श्रृतोष्णं कफवातघ्नं श्रृतशीतं तु पित्तनुत् ।
अर्धोदकं क्षीरशिष्टमामाँल्लघुतरं पयः ॥३३॥
जलेन रहितं दुग्धमतिपक्वं यथा यथा ।
तथा तथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बलविवर्द्धनम् ॥३४॥

अर्थ – गाय का धारोष्ण दूध बलकारी, हल्का, शीतल, अृमत के समान दीपन और त्रिदोषनाशक है । जो गाय के दूध की धार शीतल हो गयी हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये । गाय का धारोष्ण दूध प्रशंसा योग्य है । महिष का दूध धाराशीत उत्तम होता है । भेंड़ का दूध गरमागरम हितकर है और बकरी का दूध औंटाकर शीतल किया हुआ हितकारी होता है । श्रृतोष्ण अर्थात् औंटाकर गर्म किये गये दूध

कफवातनाशक और औंटाकर शीतल किये हुए दूध पित्तनाशक होते हैं। आधा पानी मिलाकर शेष बचा हुआ दूध कच्चे दूध की अपेक्षा हल्का होता है । जल से दूध जैसे-जैसे बहुत औंटता हैं, वैसे-वैसे ही अधिक भारी, स्निग्ध, शुक्रजनक और बलवर्धक होता है ।

प्रभातादिभवदुग्धगुणाः

रात्रौ चन्द्रगुणाधिक्याद् व्यायामाकरणात्तथा ।
प्राभातिकं तदा प्रायो प्रादोषाद् गुरु शीतलम् ।।३५।।
दिवाकरकरावाताद् व्यायामानलसेवनात् ।
प्राभातिकात्तु प्रादोषं लघुवातकफापहम् ।।३६।।

अर्थ - रात्रि में चन्द्रगुण की अधिकता से तथा व्यायाम न करने से प्रातःकाल का दूध प्रायः सायंकाल के दूध से भारी और शीतल होता है । दिन में सूर्य के प्रकाश से तथा व्यायाम की गरमी के सेवन करने से सायंकाल का दूध प्रातःकाल के दूध से हल्का तथा वात और कफ को दूर करनेवाला होता है ।

समयविशेषे दुग्धसेवनगुणाः

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो
मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम् ।
बाले वृद्धिकरं क्षयक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं
रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं क्षीरं सदा सेव्यते ।।३७।।
वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौदनादिकम् ।
भवत्यजीर्णेन शयीत शर्वरीं क्षीरस्य पानस्य न शेषमुत्सृजेत् ।।३८।।
दीप्तानलकृशे पुंसि बाले वृद्धे पयः प्रिये ।
मतं हिततमं दुग्धं सद्यः शुक्रकरं परम् ।।३९।।
भुक्ता ये बहुतीव्रचण्डविदला ये चाम्लतिक्तारसा
रूक्षाः क्षारविदाहशोषणकरा ये चातितापप्रदाः ।
काषायाः कटुरूक्षदुर्जरतराः संसेव्यमाना हठात्
तत्सर्वं बलकृत् करोति तरसा दुग्धं निशासेवितम् ।।४०।।

अर्थ - पूर्वाह्ण काल में पिया हुआ दूध वीर्य बढ़ानेवाला, पुष्टि को करनेवाला और अग्नि का दीपन करनेवाला होता है । मध्याह्न काल में पिया हुआ दूध बलकारक, कफनाशक, पित्तहारक, अग्निप्रदीपक, बालकों को बढ़ानेवाला, क्षय रोग का क्षय करनेवाला और वृद्ध मनुष्यों के वीर्य को उत्पन्न करनेवाला है तथा रात्रि के समय में पिया हुआ दूध अनेक दोषों की शान्ति करता है, पथ्य है । अतः दूध का सेवन नित्य ही करना चाहिये । कोई आयुर्वेद के ऋषि कहते हैं कि रात्रि में केवल

दूध ही पीना चाहिये । उसके साथ चावल आदि न खाने चाहिये, क्योंकि रात्रि में ओदनादि भोजन करने से अजीर्ण हो जाता है, और नींद नहीं आती है तथा पीते हुए दूध को शेष नहीं छोड़े । जिनकी जठराग्नि दीप्त है और जिनका शरीर दुर्बल है, बालक, वृद्ध और जिनको दूध प्यारा है उनके लिये दूध अत्यन्त हितकर है और तत्काल शुक्र को उत्पन्न करनेवाला होता है । जो मनुष्य अत्यन्त तीव्र तथा अनेक दोषों को कुपित करनेवाले विदलों को खाते हैं और जो मनुष्य अम्ल, कड़वे, रूखे, खारी, दाहजनक, शोषजनक, तापजनक, कषैले, चटपटे, रूखे और दुर्ज्जर पदार्थो का सेवन करते हैं, उन सबको रात्रि में सेवन किया हुआ दूध बल को देनेवाला होता है ।

निन्दितदुग्धम्

विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रन्थिलं पयः ।
वर्जयेदम्ललवणयुक्तं कुष्ठादिकृद्यतः ।।४१।।
क्षीरं मुहूर्तत्रितयोषितं यदतप्तमेतद्विकृतिं प्रयाति ।
षष्ठे तु दोषं कुरुते तदूर्ध्वं विषोपमं स्यादुषितं दशानाम् ।।४२।।

अर्थ - जो दूध बुरे रंग का, बुरे स्वादवाला, खट्टा, दुर्गन्धित और गाँतदार हो, उसको नहीं पीना चाहिये तथा खटाई और नमकीन पदार्थो के साथ भी दूध का सेवन नहीं करना चाहिये । कुष्ठादि रोगयुक्त के दूध का भी सेवन न करे । तीन मुहूर्त तक रखा हुआ कच्चा दूध विकार को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् बिगड़ जाता है । छः मुहूर्त तक रखा हुआ दूध अनेक प्रकार के दोषों को उत्पन्न करता है और दस मुहूर्त तक रखा हुआ दूध विष के समान हो जाता है ।

मतान्तरेण निन्दितदुग्धम्

मुहूर्तं पंचकादूर्ध्वं क्षीरं भजति विक्रियाम् ।
तदेव द्विगुणे काले विषवद्धन्ति मानवम् ।।४३।।
अक्वथितं दशघटिकाक्वथितं द्विगुणास्ताश्च पयः पथ्यम् ।
कोष्णं च स्वरसाढ्यां यावत्तावत्पयः प्राश्यम् ।
तस्माच्छृतं वाऽप्यश्रृतं पयस्तात्कालिकं पिबेत् ।।४४।।

अर्थ - पाँच मुहूर्त के पश्चात् बिना औंटाया हुआ दूध विकार को प्राप्त हो जाता है, और वहीं दश मुहूर्त के बाद विष के समान मनुष्य को मार देता है । कच्चा दूध दस घड़ी तक और औंटा हुआ दूध बीस घड़ी तक पीने योग्य और पथ्य होता है । ऐसा मतान्तर है । मन्दोष्ण और जब तक रसयुक्त होय तब तक दूध पीने योग्य होता है, इस कारण औंटा हुआ अथवा बिना औंटा हुआ तत्काल का दूध पीना चाहिये ।

क्षीरसात्म्यासात्म्यम्

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपयम् ।
तदेव तरुणपीतं विषवद्धन्ति मानवम् ।।४५।।
चतुर्थभागं सलिलं निधाय यत्नाद्यदावर्तितमुत्तमं तत् ।
सर्वामयघ्नं बलपुष्टिकारि वीर्यप्रदं क्षीरमतिप्रशस्तम् ।।४६।।
येषां न सात्म्यं क्षीरेण पीतं चाध्मानकारकम् ।
तेषामर्द्धजलं दत्वा नागरं पिप्पलीयुतम् ।।४७।।
आवर्त्तयेत् क्षीरशेषं तत्पीत्वा सुखमाप्नुयात् ।
गव्यं पूर्वाह्णकाले स्यादपराह्णे तु माहिषम् ।।४८।।
क्षीरं सशर्करं पथ्यं यद्धा सात्म्यं च सर्वदा ।
स्निग्धं शीतं गुरु क्षीरं सर्वकालं न सेवयेत् ।।४९।।
दीप्ताग्निं कुरुते मन्दं मन्दाग्निं नष्टमेव च ।
नित्यं तीव्राग्निना सेव्यं सुपक्वं माहिषं पयः ।।५०।।
पुष्यन्ति धातवः सर्वे बलपुष्टिविवर्द्धनम् ।
खण्डेन सहितं दुग्धं कफकृत् पवनापहम् ।।५१।।
सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं त्रिमलापहम् ।
सगुडं मूत्रकृच्छ्रघ्नं पित्तश्लेष्मकरं मतम् ।।५२।।

अर्थ – दूध जीर्णज्वर, कफ और निर्बलता में अमृत के समान है और वही दूध नवीन ज्वर में पिया हुआ विष के समान मनुष्य का मारक होता है । दूध में चौथा भाग पानी मिलाकर औंटावे । जब वह पानी जल जाय तब उस दूध का सेवन करे तो वह दूध श्रेष्ठ, सर्वरोगनाशक, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, वीर्यजनक और अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होता है । जिनको दूध नहीं पचता है और जिनके दूध पीने से अफारा हो जाता है, उनको चाहिये कि दूध में आधा भाग पानी मिलाकर एक तोला सोंठ और एक तोला पीपल डालकर फिर औंटावे । जब पानी जल जाय तब उतारकर खूब मिलावे । तदन्नतर सेवन करने से वह पच जाता है और सुख उत्पन्न होता है । गाय का दूध पूर्वाह्णकाल में और भैंस का दूध अपराह्णकाल में पीना चाहिये । शर्करा से युक्त और गर्म किया हुआ दूध सर्वकाल में श्रेष्ठ है । स्निग्ध, शीतल और गाढ़ा दूध सर्वकाल में सेवन नहीं करना चाहिये । पका हुआ महिष का दूध उद्दीप्त अग्नि को मन्द करता है और मन्दाग्नि को तो नष्ट ही कर देता है । इस कारण सदैव तीव्राग्नि वाले मनुष्य को महिष का दूध पीना चाहिये और मन्दाग्नि वाले मनुष्य को तो कभी भी महिष का दूध नहीं पीना चाहिये । खाण्डयुक्त दूध सभी धातुओं की पुष्टि करनेवाला, बल, तथा पुष्टि को बढ़ानेवाला, कफकारक और वातका विनाश

करनेवाला होता है । मिश्री के साथ दूध शुक्रजनक और त्रिदोषनाशक है एवं गुड़ के साथ दूध मूत्रकृच्छ्रनाशक और पित्तश्लेष्म को उत्पन्न करता है ।

पर्युषितक्षीरगुणाः

क्षीरं पर्य्युषितं सर्वं गुरु विष्टम्भि दुर्ज्जरम् ।।५३।।

अर्थ – सभी प्रकार के बासी दूध भारी, विष्टम्भकारी और देर में पचते हैं ।

पीयूषकिलाटक्षीरशाकतक्रपिण्डमोरहानां लक्षणानि गुणाश्च

क्षीरं तत्कालसूताया घनं पीयूषमुच्यते ।
नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः ।।५४।।
अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीरशाकं हि तत्पयः ।
दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा ।।५५।।
द्रवभावेन सहितं तक्रपिण्डः स उच्यते ।
नष्टदुग्धं भवेन्नीरं मोरटं जैय्यटोऽब्रवीत् ।।५६।।
पीयूषं च किलाटश्च क्षीरशाकं तथैव च ।
तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणा बलवर्द्धनाः ।।५७।।
गुरवः श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः ।
दीप्ताग्नीनां विनिद्राणां विद्रधौ चाभिपूजिताः ।।५८।।
मुखशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरप्रणुत् ।
लघुर्बलकरो रुच्यो मोरटः स्यात्सितायुतः ।।५९।।

अर्थ – तत्काल की प्रसूता गाय, महिषादि के गाढ़े दूध को पीयूष (खीस) कहते हैं । जो दूध अग्नि से जलकर पिण्डी बँध जाय उसको किलाट (मावा, खोवा) कहते है । बिना औंटाये ही जो कच्चा दूध फट जाय उसको क्षीरशाक (फटा दूध) कहते हैं । जो दूध–दही अथवा मट्ठे के पड़ने से नष्ट हो गया हो फिर उस दही या छाछ से फटे हुए दूध को झीने वस्त्र से बाँधकर उसका पानी निकाल डाले । जब उसका पिण्ड हो जाय और जल का उसमें कुछ अंश न रहे तब उसको तक्रपिण्ड कहते हैं । फटे दूध के पानी की जय्यटदेव ने मोरट कहा है । पीयूष, किलाट, क्षीरशक और तक्रपिण्ड ये सब वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, भारी, कफकारी, हृदय को हितकारी और वातपित्त को दूर करनेवाले हैं । जिनकी जठराग्नि का दीपन है, जिनको निद्रा नहीं आती है और जिनको निद्राधिरोग है, उन मनुष्यों के लिये ये परम हितकारी हैं । चीनी के साथ मोरट (फटे दूध) के पानी को पीने से मुखशोष, तृषा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर दूर होता है तथा लघु, बलकारक और रुचिकारक है ।

क्षीरसन्तानिकागुणाः

सन्तानिका गुरुः शीतावृष्यापित्तास्रदाहनुत् ।

तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलासबलशुक्रदा ।।६०।।

अर्थ - दूध की मलाई भारी, शीतल, वीर्यवर्द्धक, रक्तपित्त का नाश करनेवाली, दाहनिवारक, तृप्तिकारक, पुष्टिजनक, स्निग्ध तथा कफ, बल तथा शुक्र को करनेवाली है ।

चण्डातकक्षीरगुणाः

क्षीरं गव्यमथाजं वा कोष्णं दण्डाहतं पिबेत् ।
लघु वृष्यं ज्वरहरं वात पित्तकफापहम् ।।६१।।

अर्थ - गाय तथा अजा के दुग्ध को अल्प उष्ण करके रई से मथकर उसे पिये तो वह मथा हुआ दूध हल्का, वीर्यवर्द्धक, ज्वरनाशक तथा वात, पित्त और कफ को नष्ट करनेवाला होता है ।

जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत् सेविनां सदा ।
तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ।।

दुग्ध सेवन करनेवाले के जरा आदि समस्त रोगों को शान्त करनेवाला है । दूध बालक और वृद्ध के लिये हितकारी है । शिशु के लिये तो दूध अमृत के समान है ।

गोदुग्धादिभवफेनादिगुणाः

गोदुग्धप्रभवं किं वा छागीदुग्धसमुद्भवम् ।
भवेत्फेनं त्रिदोषघ्नं रोचनं बलवर्द्धनम् ।।६२।।
वह्निवृद्धिकरं वृष्यं सद्यस्तृप्तिकरं लघु ।
अतिसारेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ।।६३।।(भा.प्र.)
पयसः केवलस्यापि पदार्था बलवृष्यदाः ।
हिताः सुगन्धिनः पुष्टिधातुवृद्धिकराग्निदाः ।।६४।।(नि.र.)

अर्थ - गोदुग्ध अथवा अजादुग्ध के झाग त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, बलवर्द्धक, अग्निवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, तत्काल तृप्तिकारक, हल्के तथा अतीसार, मन्दाग्नि और जीर्णज्वर में हितकारी हैं । पेड़े, बरफी, रबड़ी इत्यादि शुद्ध दूध से बने हुए पदार्थ बलकारक, वीर्यवर्द्धक, हितकारी, सुगन्धिजनक तथा पुष्टिप्रद, धातु और अग्निवर्द्धक हैं ।

।। इति ।।

<u>गोदधिवर्णनम्</u>

दधिनामानि- दधि पयस्यं मंगल्यं विरलं च दधिद्रप्सकम् ।।१।।

अर्थ - दधि, पयस्य, मंगल्य, विरल, दधिद्रप्स, (घनेतर, क्षीरज, क्षीरोद्भव, दिग्ध, तक्रजन्म एवं साम्लक) ये दही के नाम हैं ।

साधारणदधिगुणाः

पाकेऽम्लमुष्मं दधि दीपनं च स्निग्धं कषायं सरसं गुरु स्यात् ।
संग्राहि पित्तास्रकफप्रदं स्यान्मेदःप्रदे शोफकरं प्रसिद्धम् ।।२।।

अन्यच्च -

दध्यम्लं गुरु वातदोषशमनं संग्राहि मूत्रावहं
बल्यं शोफकफार्त्यरुच्यशमनं वह्नेश्च शान्तिप्रदम् ।
कासश्वाससपीनसेषु विषमे शीतज्वरे स्याद्धितं
रक्तोद्रेककरं करोति सततं शुक्रस्य वृद्धिं पराम् ।।३।।

अन्यच्च -

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ।
पाकेऽम्लं ग्राहि पित्तास्रशोफमेदःकफप्रदम् ।।४।।
मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतके विषमज्वरे ।
अतिसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते बलवर्द्धनम् ।।५।।

अन्यच्च -

दधि स्वाद्वग्निदं हृद्यं स्नेहनं रोचनं गुरु ।
पाकेऽम्लमुष्मं वातघ्नं मांगल्यं बृंहणं परम् ।।६।।

अर्थ - दही पचने में खट्टा, गरम, दीपन, स्निग्ध, कषेला, भारी, मलरोधक, रक्तपित्त, कफकारक, मदजनक और सूजन को उत्पन्न करता है । दही अम्ल, भारी, वातविकार को दूर करनेवाला, मलरोधक, मूत्रजनक, बलकारक, शोफनाशक, कफहारक, अरुचिनिवारक और अग्नि को शान्त करनेवाला होता है । यह खाँसी, श्वास, पीनस, विषमज्वर और शीतज्वर को दूर करता है तथा रक्तपित्त और शुक्रवर्द्धक है । दही गर्म, दीपन, स्निग्ध, कुछ कषेला, भारी, पाक में अम्ल, मलरोधक तथा रक्तपित्त, सूजन, मेद और कफ को करनेवाला है । मूत्रकृच्छ्र, प्रतिश्याय, शीत, विषमज्वर, अतिसार, अरुचि और कृशता में दही हितकारी है तथा बलवर्द्धक है । दही स्वादिष्ट, अग्निजनक, हृदय की हितकारी, स्निग्ध, रुचिकारी, भारी, पाक में अम्ल, गर्म, वातनाशक, मंगलकारक और पुष्टिकारक है ।

दधिभेदाः

आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लं च ततः परम् ।
अम्लं चतुर्थमत्यम्लं पंचमं दधि पंचधा ।।७।।

अर्थ- प्रथम मन्द फिर मधुर, फिर मधुर खट्टा, उसके उपरान्त खट्टा और फिर अत्यन्त खट्टा ऐसे दही पाँच प्रकार का होता है ।

मन्दादीनां लक्षणानि गुणाश्च

मन्दं दुग्धवदव्यक्तं रसकिंचिद्घनं भवेत् ।

मन्दं स्यात्सृष्टविण्मूत्रं दोषत्रयविदाहकृत् ।।८।।
यत्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तं स्वादु रसं भवेत् ।
अव्यक्ताम्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ।।९।।
स्वादु स्यादत्यभिष्यन्दि वृष्यं मेदःकफावहम् ।
वातघ्नं मधुरं पाके रक्तपित्तप्रसादनम् ।।१०।।
स्वाद्वम्लं सान्द्रमधुरं कषायानुरसं भवेत् ।
स्वाद्वम्लस्य गुणा ज्ञेया सामान्यदधिवज्जनैः ।।११।।
यत्तिरोहितमाधुर्यं व्यक्ताम्लत्वं तदम्लकम् ।
अम्लं तु दीपनं पथ्यं रक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ।।१२।।
तदत्यम्लं दन्तरोमहर्षकण्ठादिदाहकृत् ।
अत्यम्लं दीपनं रक्तपित्तपुष्टिकरं परम् ।।१३।।

अर्थ – जो दूध कुछ जमकर गाढ़ा पड़ गया हो और जिसमें मधुर अम्लादिक किसी प्रकार का स्वाद न मालूम हो, उस दही को मन्द कहते है । मन्द दही मलमूत्र को करनेवाला तथा त्रिदोष और दाह को उत्पन्न करता है । जो जमकर गाड़ा हो गया हो और जिसमें स्वादुरस मालूम हो एवं अम्लरस प्रकट न हो उसको स्वादु दही जानना चाहिये । स्वादु दही अत्यन्त अभिष्यन्दि, वीर्यवर्द्धक, मेदजनक, कफकारी, वातजनक, पचने में मधुर और रक्तपित्त को कुपित करता है । जो दही अम्ल और मधुर दोनों रस से युक्त हो एवं सान्द्र तथा कुछ कषेला हो, उसको स्वाद्वम्ल दही कहते हैं । स्वाद्वम्ल दही के गुण सामान्य दही के समान होते हैं । जिस दही की मधुरता का नाश होकर खट्टा हो गया हो, उस दही को अम्ल दही कहते है । अम्ल दही दीपन, रक्तपित्त और कफकारक होता है । जो दही अत्यन्त खट्टा हो, दाँतो को खट्टा करे, जिसके खाने से रोमांच हो आये और कण्ठ आदि में दाह को उत्पन्न करे, उस दही को अत्यम्ल दही कहते हैं । अत्यम्ल दही दीपन, रुधिरविकार, वात और पित्त का कारक होता है ।

मधुरं भक्षयेच्चैव चात्यम्लं वर्जयेत्सदा ।
मधुरं दधि रोगघ्नमत्यम्लं रोगकारकम् ।।१४।।

अर्थ – मधुर दही खाना चाहिये और अत्यन्त खट्टा दही नहीं खाना चाहिये । कारण यह है कि मधुर दही रोगनाशक और अत्यन्त खट्टा दही रोगकारक होता है ।

गव्यदधिगुणाः

दधिगव्यमतिपवित्रशीतस्निग्धं च दीपनं बलकृत् ।
मधुरमरोचकहारि ग्राहि च वातामयघ्नं च ।।१५।।

अन्वय -

गव्यं दध्युत्तमं बल्यं पाके स्वादु रुचिप्रदम् ।
पवित्रं दीपनं स्निग्धं पुष्टिकृत्पवनापहम् ।।
उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम् ।।१६।।
अरोचके पीनसकासकृच्छ्रे शीतज्वरे तद्विषमज्वरे च ।
दुर्नामरोगे ग्रहणीगदे च गव्यं प्रशस्तं दधि सर्वदैव ।।१७।।

अर्थ - गाय का दही अत्यन्त पवित्र, शीतल, स्निग्ध, दीपन, बल को करनेवाला, मधुर, अरुचि को हरने वाला, मलरोधक और वातरोगनाशक है । गाय का दही उत्तम, बलकारक, पचने में स्वादिष्ट, रुचिकारक, पवित्र, दीपन, स्निग्ध, पुष्टिकारक और वातविनाशक है । सभी दहियों में गाय का दही सर्वाधिक गुणवाला होता है । गाय का दही अरुचि, पीनस, खाँसी, मूत्रकृच्छ्र, शीतज्वर, विषमज्वर, बवासीर और संग्रहणी रोग में हितकारी होता है ।

ऋतुषु दधिगुणाः

वार्षिकदधिगुणाः

वार्षिकं पित्तकृद्वातशमनं कफकोपनम् ।
गुल्मार्शःकुष्ठरोगे च रक्तपित्ते न शस्यते ।।१८।।

शारदीयधिगुणाः

शारदं दधि गुर्व्वम्लं रक्तपित्तविवर्द्धनम् ।
शोफतृष्णाज्वरार्त्ताणां करोति विषमज्वरम् ।।१९।।

हैमन्तिकदधिगुणाः

गुरु स्निग्धं सुमधुरं कफकृद्बलवर्द्धनम् ।
वृष्यं मेध्यं च हैमन्तं पुष्टिदं तुष्टिवृद्धिदम् ।।२०।।

शैशिरदधिगुणाः

वृष्यं बलकरं पैत्तं श्रमस्यापहरं परम् ।
शैशिरं सघनं चाम्लं पिच्छिलं गुरु चैव च ।।२१।।

वासन्तिकदधिगुणाः

वातलं मधुरं स्निग्धं किंचिदम्लं कफात्मकम् ।
बलकृद्वीर्यकृत्प्रोवतं वसन्ते न प्रशस्यते ।।२२।।

ग्रैष्मिकदधिगुणाः

लघु चाम्लं भवेद्ग्रीष्मे चात्युष्णं रक्तपित्तकृत् ।
शोषभ्रमपिपासाकृद्दधि प्रोक्तं न ग्रैष्मिके ।।२३।।

अर्थ- वर्षा ऋतु का दही पित्तकारक, वातनिवारक, कफ को कुपित करनेवाला तथा गुल्म, बवासीर, कुष्ठ और रक्तपित्त रोग में हितकारी नहीं है । शरद् ऋतु का दही भारी, खट्टा, रक्तपित्तवर्द्धक तथा सूजन, तृषा और ज्वर से पीड़ित मनुष्यों के

विषमज्वर को उत्पन्न करता है । हेमन्त ऋतु का दही भारी, स्निग्ध, मधुर, कफकारक, बलवर्द्धक, वीर्यजनक, मेधाकारक, पुष्टि, तुष्टि और बल की वृद्धि करनेवाला होता है । शिशिर ऋतु का दही वीर्यवर्द्धक, बलकारक, पित्तजनक, श्रमनाशक, गाढ़ा, खट्टा, पिच्छिल और भारी होता है । बसन्त ऋतु का दही वादी, मधुर, स्निग्ध, कुछ खट्टा, कफकारी, बलकारक, वीर्यवर्द्धक होने से श्रेष्ठ प्रायः नहीं होता है । ग्रीष्म ऋतु का दही हल्का खट्टा, अत्यन्त गर्म, रक्तपित्तकारक तथा शोष, भ्रम और प्यास को करनेवाला है, अतः इस ऋतु का दही उत्तम नहीं होता है ।

पक्वदुग्धभवदधिगुणाः

पक्वदुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्तमम् ।
पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्द्धनम् ।।२४।।

निःसारदधिगुणाः

असारं दधि संग्राहि शीतलं वातलं लघु ।
विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोगनाशनम् ।।२५।।

गालितदधिगुणाः

गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफकृद् गुरु ।
बलपुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नातिपित्तकृत् ।।२६।।

सितायुक्तदधिगुणाः

सितायुक्तं दधि प्रोक्तं पित्तदाहतृषाहरम् ।
रक्तदोषहरं चैव मुनिभिः परिकीर्तितम् ।।२७।।

गुडयुक्तदधिगुणाः

गुडयुक्तं दधिप्रोक्तं तर्पणं धातुवर्द्धकम् ।
गुरु वातहरं चैव मुनिभिः परिकीर्तितम् ।।२८।।

अर्थ- औंटाये हुए दूध का दही रुचिकारक, स्निग्ध, गुणों में श्रेष्ठ, पित्तवातनाशक तथा सम्पूर्ण धातु, अग्नि और बल को बढ़ानेवाला होता है जिस दही का मक्खन निकाल लिया गया हो, फिर उसको जमा दिया गया हो; ऐसा असार दही मलरोधक, शीतल, वातकारक, हल्का, विष्टम्भकारक, दीपन, रुचिकारी और संग्रहणी रोग को दूर करनेवाला होता है । छाना और निचोड़ा हुआ दही स्निग्ध, वातनाशक, कफकारक, भारी, बलकारक, पुष्टिजनक, रुचिकारक, मधुर और अत्यन्त पित्तकारक नहीं होता है । चीनी से युक्त दही दाह, तृषा और रुधिर के विकारों को दूर करता है । गुडमिश्रित दही तृप्तिकारक, धातुवर्द्धक, भारी और वातविनाशक होता है; ऐस मुनियों ने कहा है ।

दधिभक्षणनिषिद्धता

न नक्तं दधि भुंजीत न चाप्यघृतशर्करम् ।
नामुद्‌गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णमामलकैर्विना ।।२९।।
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ।।३०।।

अक्रमदधिभक्षणदोषाः

ज्वरासृक्पित्तवीसर्पदकुष्ठपाण्डूवामयान्भ्रमान् ।
प्राप्नुयात्कामलां चापि विधिं हित्वा दधिप्रियः ।।३१।।

त्रिकट्वादियुक्तदधिगुणाः

दधि त्रिकटुकयुक्तं राजिकाचूर्णमिश्रं
कफहरमनिलघ्नं वह्निसन्धुक्षणं च ।
तुहिनशिशिरकाले सेवितं चातिपथ्यं
रचयति तनुदार्ढ्यं कान्तिमत्वं च नृणाम् ।।३२।।

अर्थ– रात्रि में दही नहीं खाना चाहिये तथा घृतरहित दही मिश्री, मूँग की दाल, मधु और आमले के बिना तथा उष्ण दही नहीं खाना चाहिये । शरद्, ग्रीष्म और वसन्त ऋतु में दही प्रायः अपकार करनेवाला होता है और हेमन्त, शिशिर तथा वर्षा ऋतु में दही हितकारी होता है । बिना नियम के दही को खाने से ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डु, भ्रम और कामला आदि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं । दही में त्रिकटु का चूर्ण, सैन्धा नमक और राई का चूर्ण मिलाकर हेमन्त और शिशिर ऋतु में खाने से कफ को दूर करता है, वातनाश एवं अग्नि का दीपन करता है, अत्यन्त पथ्य तथा शरीर को दृढ़ करके अंग में कान्ति को उत्पन्न करता है ।

सरस्यमस्तुनश्च लक्षणानि गुणाश्च

दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः ।
स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ।।३३।।
सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवह्निप्रणाशनः ।
साम्लो वस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ।।३४।।
मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ।
स्रोतोऽतिशोधनं ह्लादिकफतृष्णाऽनिलापहम् ।।
अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसंचयम् ।।३५।।

दधिकूर्चिकलक्षणानि गुणाश्च

अर्द्धोदके पयस्युष्णे दध्यम्लं दधिकूर्चिका ।
वातघ्नी ग्राहिणी रूक्षा दुर्जरा दधिकूर्चिका ।।३६।।

अर्थ –दही के ऊपर के स्नेहयुक्त गाढ़े भाग को लोक में सर (मलाई) कहते हैं और दही के जल को मस्तु (तोड़) कहते हैं । दही की मलाई स्वादिष्ट, भारी,

वीर्यवर्द्धक, वातविनाशक, जठराग्नि को मन्द करनेवाली, खट्टी, वस्तिरोग व नाश करनेवाली, पित्त और कफ को बढ़ाने वाली है । दही का जल क्लमनाशक, बलकारक, भोजन में रुचि को करने व शरीर के स्रोतों को शोधने वाला, आनन्दजनक, कफनाशक, तृषानाशक, वातविनाशक, अवृष्य, तृप्तिकारक और शीघ्र ही मल के सञ्चय को भेदने वाला है ।

इति

तक्रवर्णनम्

नामानि- तक्रं दण्डाहतं घोलं गोरसः कटुरं द्रवः ।
मथितं कंगरं चाम्लं मलिनं भग्नसन्धिकम् ।।१।।

अर्थ – तक्र, दण्डाहत, घोल, गोरस, कटुर, द्रव, मथित, कंगर, अम्ल, मलिन, भग्नसन्धिक (गोरसज, कालशेय, विलोडित, अरिष्ठ, उदश्वित्, प्रमथित, अम्बर, कटूवर, घल, केवल, छच्छिका) ये तक्र के नाम हैं ।

तक्रनामभिन्नलक्षणानि

तेषां नामानि भिन्नानि लक्षणानि समानि च ।
घोलन्तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकाऽपि च ।।२।।
ससारं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् ।
तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्वर्द्धवारिकम् ।।
छच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका ।।३।।

अर्थ- घोल, मथित, तक्र, उदश्वित् और छच्छिका इन भेदों से तक्र पाँच प्रकार का होता है । जो तक्र मलाई सहित मथा गया हो और जिसमें पानी न पड़ा हो, उसको घोल कहते हैं । जिसमें से मलाई निकालकर बिना पानी डाले मथा गया हो उसको मथित कहते हैं । जिसमें तीन भाग दही हो और एक भाग पानी गेरकर मथा गया हो, उसको तक्र (मठा) कहते हैं । जिसमें आधा दही और आधा पानी पड़ा तो उसको उदश्वित् कहते हैं तथा जिसमें प्रचुर मात्रा में पानी ही पड़ा हो उसको सारहीन स्वच्छ छच्छिका (छाछ) कहते हैं ।

एतेषां गुणाः

वातपित्तहरं घोलं मथितं कफपित्तनुत् ।
तक्रं ग्राहि कषायाम्लं स्वादु पाकं रसं लघु ।।४।।
वीर्य्योष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ।
ग्रहण्यादिमतां पथ्यं भवेत्संग्राहि लाघवात् ।।५।।
किंचित्स्वादु विपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ।

अम्लोष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥६॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चापि कफापहम् ॥७॥
न तक्रसेवी व्यथते कदाचन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ।
यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥८॥
उदश्वित्कफकृद्बल्यं श्रमघ्नं परमं मतम् ।
छच्छिका शीतला लघ्वी पित्तश्रमतृषाहरी ।
वातनुत्कफनुत्सा तु दीपनी लवणान्विता ॥९॥

अर्थ – घोल वात्त और पित्त का नाशक होता है । मथित कफ और पित्त का नाशक है । तक्र मलरोधक, कषेला, खट्टा, पचने में स्वादु, रस में भी स्वादु, हल्का, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, वीर्यवर्द्धक, तृप्तिकारक, वातनाशक और संग्रहणी तथा अतीसारादि रोगों में पथ्य है । तक्र हल्का होने से ग्राहि और स्वादुपाकी होने से पित्त को कुपित नहीं करता । अम्ल उष्ण, दीपन, वृष्य, प्रीणन, वातनाश करनेवाला होता है । कषाय उष्ण, विकाशि और रूक्ष होने से कफ का नाश करता है । तक्र का सेवन करनेवाला कभी रोगी नहीं होता, तक्र से भस्म किये रोग पुनः कभी उत्पन्न नहीं होते । जैसे देवताओं के सुख के लिये अमृत है, वैसे ही इस पृथिवी पर मनुष्यों के लिये तक्र है । उदश्वित् कफकारक, बलवर्द्धक और श्रमनाशक होता है । छच्छिका शीतल, हल्की, पित्तनाशक, श्रमकारक, तृषानिवारक और लवण के साथ वातनाशक, कफहारक तथा अग्नि का दीपन करनेवाला होता है ।

अन्यच्च -

घोलं मारुतपित्तहारि मथितं वातापहं श्लेष्महृत्
पित्तश्लेष्मविनाश्युदश्विदधिकं तक्रं त्रिदोषापहम् ।
मन्दाग्नावरुचौ तथैव नितरामन्येषु रोगेष्वपि
श्रेष्ठं तक्रमिदं वदन्ति मुनयस्तेनोत्तमं प्राणिनाम् ॥१०॥
तक्रं त्रिदोषशमनं स्वादु पाकरसं लघु ।
वीर्योष्णं मूत्रकृच्छ्रघ्नं कषायमम्लमग्निदम् ॥११॥
अम्लेन वातं मधुरेण पित्तं कफं कषायेण निहन्ति सद्यः ।
यथा सुराणाममृतं हिताय तथा नराणामिह तक्रमाहुः ॥१२॥

अन्यच्च -

तक्रं स्वादु कषायमम्लकरसं भक्ष्यं लघूष्णं हितं
गुल्मार्शःपरिणामशूलशमनं छर्द्दिप्रसेकापहम् ।
तृष्णारोचकशोफमेदगरजिच्छलेष्माऽनिलघ्नं परं
सेव्यं मूत्रगदापहं ज्वरहरं स्नेहोत्थपीडापहम् ॥१३॥

अर्थ – घोल वातपित्तनाशक, मथित वात और कफनाशक, उदश्वित् पित्त और कफनाशक तथा तक्र त्रिदोषनाशक है, यह मन्दाग्नि, अरुचि एवं अन्य रोगों में हितकारी होता है, ऐसा मुनियों ने सभी प्राणियों के हितकारी तक्र को श्रेष्ठ और उत्तम बताया है । तक्र त्रिदोषनाशक, स्वादुपाकी, स्वादुरसयुक्त, हल्का, उष्णवीर्य, मूत्रकृच्छ्ररोगनिवारक, कषेला, खट्टा और जठराग्नि को उत्पन्न करनेवाला है । यह अम्लता से वात का, मधुरता से पित्त का और कषेलेपन से कफ का नाश करता है । इस प्रकार तक तीनों दोषों का नाश करने वाला होता है । जैसे देवताओं के हितार्थ अमृत है वैसे ही इस मर्त्यलोक में मनुष्यों के लिये तक्र है ।

तक्र स्वादिष्ट, कषेला, खट्टा, भक्षण के योग्य, हल्का, गर्म, हितजनक तथा गुल्म, बवासीर, परिणामशूल, वमन, प्रसेक, तृषा, अरुचि, सूजन, मेद, विष, कफ, वात, मूत्ररोग, ज्वर और स्नेह से उत्पन्न हुई पीड़ा को दूर करता है ।

अन्यच्च -

आमातिसारे च विषूचिकायां वातज्वरे पाण्डुषु कामलायाम् ।
प्रमेहगुल्मोदरवातशूले नित्यं पिबेत् तक्रमरोचके च ।।१४।।
तथा च त्रिविधं तक्रं कथ्यते श्रृणु पुत्रक ।
यथायोगेन तत्सम्यक् शस्यते येषु रोगिषु ।।१५।।
समुद्धृतघृतं तक्रमर्द्धोद्धृतघृतं च यत् ।
अनुद्धृतघृतं चान्यदित्येतत् त्रिविधं मतम् ।।१६।।
पूर्वं लघु च पथ्यं च त्रिदोषशमनं परम् ।
ततः परं वृष्यतरं क्रमेण समुदीरितम् ।।१७।।
अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु विद्यात्कफात्मकम् ।
बलप्रदं तु क्षीणानामामशोफातिसारकृत ।।१८।।
तत्पुनर्मधुरं श्लेष्मप्रकोपनकरं परम् ।
वातघ्नं पित्तशमनमम्लन्तु पित्तकृत्सदा ।।१९।।

अर्थ – तक्र आमातिसार, विषूचिका, वातस्वर, पाण्डुरोग, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदररोग, वातशूल और अरुचि में सदैव पीना चाहिये । आत्रेयजी कहते हैं कि हे पुत्र! सुनो, तक्र तीन प्रकार का होता है और यह तक्र जिन रोगों में हितकारी होता है उसे बताता हूँ । घृतहीन, अल्प घी से युक्त और घृतसंयुक्त– इस भेद से तक्र तीन प्रकार का है । उनमें घृतहीन अर्थात् जिस तक्र में से घृत निकाल लिया गया हो ऐसा तक्र हल्का, पथ्य और त्रिदोषनाशक होता है । अल्पघृत से युक्त अर्थात् जिसमें से थोड़ा घृत निकाला गया हो ऐसा तक्र वीर्यवर्द्धक होता है । घृतसंयुक्त अर्थात् जिसमें

से घी नहीं निकाला गया हो ऐसा तक गाढ़ा, भारी, सूजन और अतिसार को दूर करता है । मीठा तक्र कफकारक, वातनाशक और पित्त को शान्त करनेवाला होता है तथा खट्टा तक्र सदैव पित्तकारक होता है ।

पक्वापक्वतक्रगुणाः

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च ।
पीनसश्वासकासेषु पक्वमेव प्रयुज्यते ।।अ.२०/१।।

अर्थ - कच्चा तक्र कोष्ठ के कफ को दूर करके कण्ठ में कर देता है । इस कारण पीनस, श्वास और खाँसी में तो पक्का तक्र ही देना चाहिये ।

दोषविशेषे व्याधिविशेषे च तक्रविशेषाः

वातेऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठीसैन्धवसंयुतम् ।
पित्ते स्वादुसितायुक्तं सव्योषमधिके कफे ।।२१।।
हिंगुजीरयुतं घोलं सैन्धवेन सुसंयुतम् ।
भवेदतीव वातघ्नमर्शोऽतीसारहृत्परम् ।।२२।।
सुरुच्यं पुष्टिदं बल्यं वस्तीशूलविनाशनम् ।
मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम् ।।२३।।

अर्थ- वातरोग में सोंठ और सैन्धव लवण का चूर्ण मिलाकर खट्टा तक्र पीना चाहिये । पित्तरोग में बूरा मिलाकर मीठा तक्र पीना चाहिये और अधिक कफ में त्रिकुटे का चूर्ण मिलाकर तक्रपान करना चाहिये । घोल हींग, जीरा और सैन्धव लवण से युक्त अत्यन्त वातनाशक होता है तथा बवासीर और अतिसार को दूर करता है । यह रुचिकारक, पुष्टिजनक, बलकारक और वस्तिशूल को निर्मूल कर देता है । घोल मूत्रकृच्छ्र में गुड़ के साथ पीना चाहिये और पाण्डुरोग में चीनी के साथ पीना चाहिये ।

तक्रसेवननिमित्तानि

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च तथा वातामयेषु च ।
अरुचौ स्रोतसां रोधं तक्रं स्यादमृतोपमम् ।।२४।।
तत्तु हन्ति गरच्छर्दिप्रसेकविषमज्वरान् ।
पाण्डुमेदोग्रहण्यर्शोमूत्रग्रहभगन्दरान् ।।२५।।
मेहं गुल्ममतीसारं शूलप्लीहोदरारुचीः ।
श्वित्रकोष्ठगतव्याधीन् कुष्ठशोथतृषाकृमीन् ।।२६।।

अन्यच्च -

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोत्थेष्वामयेषु च ।
मार्गावरोधे कुष्ठे च वायौ तक्रं प्रशस्यते ।।२७।।

अर्थ- शीतऋतु, मन्दाग्नि, वातरोग, अरुचि और छिद्रों के रोग में तक्र अमृत के समान गुणकारी होता है । यह विष, वमन, प्रसेक, विषमज्वर, पाण्डुरोग में, मेदरोग

में, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, अतीसार, शूलरोग, प्लीहा, उदररोग, अरुचि, श्वित्रकुष्ठ, कोष्ठरोग, कोढ़, सूजन, तृषा और कृमिरोग में हितकारी होता है । शीतकाल में मन्दाग्नि में, कफ से उत्पन्न हुए रोगों में, मार्ग चलने की थकावट में तथा कुष्ठ और वात के रोगों में तक्र हितकारी होता है ।

रोगविशेषे तक्रनिषेधः

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले ।
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके ॥२८॥

अर्थ – क्षतरोग, उष्णकाल, दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्त रोग में तक्र नहीं देना चाहिये ।

गोतक्रगुणाः

गव्यं त्रिदोषशमनं पथ्ये श्रेष्ठं तदुच्यते ।
दीपनं रुचिकृन्मेध्यमर्शोदरविकारजित् ॥२९॥

अर्थ – गाय का तक्र त्रिदोषनाशक, पथ्यों में उत्तम, दीपन, रुचिकारक, मेधाजनक तथा बवासीर और उदर के विकारों को दूर करता है ।

इति

नवनीतवर्णनम्

नवनीतनामानि

म्रक्षणं सरजं सारं नवनीतं नवोद्धृतम् ॥१॥

म्रक्षण, सरज, सार, नवनीत, नवोद्धृत (मन्थज, हैयंगवीन, दधिसार, नवनी, कलम्बुट और दधिज) ये नवनीत के नाम हैं ।

साधारणनवनीतगुणाः

शीतं वर्णबलावहं सुमधुरं वृष्यं च संग्राहकं
वातघ्नं कफकारकं रुचिकरं सर्वांगशूलापहम् ।
कासघ्नं श्रमनाशनं सुखकरं कान्तिप्रदं पुष्टिदं
चक्षुष्यं नवनीतमुद्धृतनवं गोः सर्वदोषापहम् ॥२॥ (रा.नि.)
शीतं बलाढ्यं मधुराम्लवृष्यं श्लेष्मावहं पित्तमरुत्प्रणाशम् ।
शोफक्षयक्षीणकृशोऽतिवृद्धबालेषु पथ्यं नवनीतमुक्तम् ॥३॥ (द्र.गु.दी.)

अपिच -

नवनीतं नवं ग्राहि हृद्यं चोल्वनदीपकम् ।
क्षयारुच्यर्दितप्लीहग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥४॥
चक्षुष्यं शिशिरं स्निग्धं वृष्यं जीवनबृंहणम् ।
क्षीणे द्रवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगनुत् ॥५॥

स्मृतिवाय्वग्निशुकत्रक्रौजः कफमेदोविवर्द्धनम् ।
वातपित्तकफोन्मादशोफालक्ष्मीज्वरापहम् ।।
सर्वदा पापहं शीतं मधुरं रसपाकयोः ।।६।। (हा.स.)

अर्थ – ताजा नवनीत शीतल, वर्ण को सुन्दर करनेवाला, बलकारक, मधुर, वीर्यवर्द्धक, मलरोधक, वातनाशक, कफकारक, रुचिकर, शरीर के सब प्रकार के शूलों को हरनेवाला, खाँसी को दूर करनेवाला, श्रमनाशक, सुखकारक, कान्तिजनक, पुष्टिकारक, नेत्रों को हितकारी और इन्द्रियों के सर्वदोषों को भी दूर करनेवाला होता है । नवनीत शीतल, बलकारक, मधुर, खट्टा, वीर्यवर्द्धक, श्लेष्मकारक, पित्तवातनाशक तथा शोफरोगी, क्षयरोगी, क्षीण, अत्यन्त कृश, वृद्ध और बालकों के लिये हितकारी होता है । नवीन नवनीत ग्राही, हृदय को हितकारी, अग्नि का दीपन करनेवाला, क्षयनाशक, अरुचि को हरनेवाला, संग्रहणी को हरनेवाला तथा बवासीर को नष्ट करनेवाला होता है । यह नेत्रों को हितकारी, शीतल, स्निग्ध, वृष्य, प्राणरक्षक, पुष्टिकारक, क्षीण मनुष्य को हितकारी, शीतवीर्य, मलरोधक, रक्तपित्तनाशक, और नेत्ररोग का निवारण करता है । नवनीत स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाला, वातवर्द्धक, वीर्यकारक, अग्निजनक, ओजवर्द्धक, कफकारक, मेदजनक तथा वात, पित्त, कफ, उन्माद, सूजन, अलक्ष्मी, ज्वर और सर्वदोषनाशक है तथा पाक और रस में मधु है ।

गव्यनवनीतविशेषगुणाः

नवनीतं हितं गव्यं वर्णवीर्यबलाग्निकृत् ।
संग्राहि वातपितासृक्क्षयार्शोदितकासजित् ।।
तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ।।७।।

अर्थ – गाय का नवनीत हितकारी, वीर्यवर्द्धक, वर्णकारक, बलकारक, अग्निप्रदीपक, ग्राही तथा वातपित्त, रुधिरविकार, क्षय, बवासीर, लकवा और खाँसी को दूर करता है । बालक और वृद्धों को हितकारी तथा विशेष करके यह मक्खन बालकों के लिये अमृत के समान गुणकारी होता है ।

दुग्धजातनवनीतगुणाः

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत् ।
वृष्यं बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ।।८।।

अर्थ –दूध में से निकाला हुआ मक्खन नेत्रों को हितकारी, रक्तपित्तदोषनाशक, वृष्य, बलवर्द्धक, अतिस्निग्ध, मधुर, ग्राहि और शीतल होता है ।

नवीननवनीतगुणाः

नवनीतमिदं नवमेवहितं हिमशुक्रबलानलकान्तिकरम् ।

ग्रहणात्मकमर्दितपितमरुद्गुदजक्षतजक्षयकासहरम् ॥९॥

अर्थ – नवीन अर्थात् ताजा मक्खन हिताकरी, शीतल, शुक्रजनक, बलकारक, अग्निप्रदीपक, कान्तिकारक, संग्रहणी, लकवा, पित्त, वात, गुदरोग, क्षतरोग, क्षयरोग और खाँसी को दूर करता है ।

प्राचीननवनीतगुणाः

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शः कुष्ठकारकम् ।
श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तरम् ॥१०॥

अर्थ – पुराना नवनीत खारा, चरपरा, खट्टा, वमनकारक, बवासीर को उत्पन्न करनेवाला, कुष्ठकारक, कफकारक, भारी और मेद को हरनेवाला होता है ।

<u>इति (१६४)</u>

<u>घृतवर्णनाध्यायः</u>

घृतनामानि

घृतमाज्यं हविः सर्पिः पुरोडाश् नवनीतकम् ।
पवित्रं वह्निभोग्यं च तैजसं चाभिघारकम् ॥१॥

अर्थ – घृत, आज्य, हविष्, सर्पिष्, पुरोडाश्, नवनीतक, पवित्र, वह्निभोग्य, तैजस, अभिघारक (आज, तोदय, पीथ, अमृत, अडिघार, होम्य, आयु, नवनीतज, भोजनार्ह, जीवन) ये घृत के नाम हैं ।

घृतगुणाः

घृतं तु सौम्यं शीतवीर्यं मधुरममृतमल्पाभिष्यन्दि स्नेहन-
मुदावर्त्तोन्मादापस्मारशूलज्वरानाहवातपित्तशमनमग्निदीपन-
स्मृतिमतिमेधाकरं स्वरलावण्यसौकुमार्यौजिस्तेजोबल-
करमायुष्यं वृष्यं मेध्यं वयःस्थापनं गुरु चक्षुष्यं श्लेष्माभिवर्द्धनं
पापालक्ष्मीप्रशमनं विषहरं रक्षोघ्नं च ॥२॥ (सुश्रुत)

अर्थ – घृत सौम्य, शीतवीर्य, कोमल, मधुर, अमृत के समान गुणकारी, अल्प अभिष्यन्दि, स्निग्ध और उदावर्त्त, उन्माद, अपस्मार, शूल, ज्वर, अनाह, वात तथा पित्त को दूर करनेवाला, अग्निप्रदीपक तथा स्मरणशक्ति, मति, मेधा, कान्ति, स्वर, लावण्य, सुकुमारता, ओज, तेज और बल को करनेवाला है, आयु को बढ़ानेवाला, वीर्य को बढ़ानेवाला, मेध्य, अवस्था का स्थापन करनेवाला, भारी, नेत्रों को हितकारी, कफकारी, पाप और अलक्ष्मी का प्रशमन करनेवाला, विषविनाशक, और राक्षसबाधा को हरनेवाला है ।

अन्यच्च -

घृतं शीतं रसे पाके मधुरं जीवनं मतम् ।
स्नेहेषु चोत्तमं वृष्यं कान्तिकृद् धातुवर्द्धकम् ।।३।।
कण्ठ्यं स्वर्च्यं चेन्द्रियाणां तृप्तिकृद् भेदकं मतम् ।
व्रण्यं वयःस्थापकं च भेदकं च मृदु स्मृतम् ।।४।।
चक्षुष्यं कफकृत्प्रोक्तमग्निदीप्तिकरं गुरु ।
बुद्धिमेधास्मृतिप्रज्ञातेजौजोबलपुष्टिकृत् ।।५।।
सौकुमार्यस्य मेदस्य लावण्यस्य च वर्द्धकम् ।
श्लेष्मकृद् बालवृद्धानां हितकृद् रुचिदं मतम् ।।६।।
स्निग्धं रसायनं चैव क्षतक्षीणे हितं मतम् ।
विसर्पं चाग्निदग्धं च शस्त्रक्षीणे हितं मतम् ।।७।।
अजीर्णोन्मादशूलानि ह्युदावर्त्तं क्षयं तथा ।
आनाहं रक्तपित्तं च वातपित्तं व्रणं तथा ।।८।।
रक्तदोषं क्षतं दाहं योनिनेत्रश्रुतीरुजम् ।
दद्रुशिरोरुजं शोथं त्रिदोषं चैव नाशयेत् ।।९।।
निरामवातज्वरिणां हितं चामे विषोपमम् ।।१०।। (नि.२०)

अर्थ - घृत रस में शीतल, पाक में मधुर, प्राणरक्षक, स्नेहों में उत्तम, वृष्य, कान्तिकारक, धातुवर्द्धक कण्ठ को हितकारी, स्वर को शुद्ध करनेवाला, इन्द्रियों की तृप्ति करनेवाला, भेदक, घाव को भरनेवाला अवस्था का स्थापक, मृदु, नेत्रों की हत करनेवाला, कफकारक, अग्निप्रदीपक, भारी तथा बुद्धि, मेधा, स्मरणशक्ति, प्रज्ञा, तेज, ओज, बल और पुष्टि को करनेवाला सुकुमारता, मेद, लावण्य, और श्लेष्मा को बढ़ानेवाला है तथा बाल एवं वृद्धों को हितकारी, रुचिकारी, स्निग्ध, रसायन, क्षतक्षय, विसर्प, अग्निदग्धव्रण, शस्त्रक्षत और क्षीणता में हितकारी है । अजीर्ण, उन्माद, शूल, उदावर्त, क्षय, अनाहवात, रक्तपित्त, वातपित्त, व्रण, रुधिरविकार, क्षत, दाह, योनिरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, दाद, शिरोरोग, सूजन और त्रिदोष का नाश करता है तथा निराम, वातज्वर वाले मनुष्य को हितकारी और आमज्वर में विष के समान दोषकारी है ।

अन्यच्च -

ओजस्तेजोऽभिवृद्धिं जनयति सुखदं कान्तिकृत्सम्यगुक्तं
पापालक्ष्मीश्रमघ्नं श्वसनकसनहाऽजीर्णजातज्वरघ्नम् ।
शूलोदावर्तरोगग्रहणिमदरुजं नाशयत्याशु पीडां
पित्तघ्नं वातनाशि स्वरकरमगदं क्षुद्भ्रमे चैव सेव्यम् ।।११।।
चक्षुष्यं वृष्यमायुः स्मृतिधृतिकरणं राजयक्ष्माविनाशं
रूक्षे क्षीणे च पथ्यं वलिपलितहरं सामदोषप्रकोपे ।
भूतोन्मादप्रमत्ते बहुतिमिरकरे कृच्छ्रपस्माररोगे

सर्वेषां सर्वदैव प्रथितगुणगणं साधु पथ्यं घृतं स्यात् ।।१२।।

अर्थ – घृत ओज और तेज को बढ़ानेवाला, सुख को उत्पन्न करनेवाला, कान्तिजनक, पाप, अलक्ष्मी, श्रम, श्वाँस, खाँसी, अजीर्ण से उत्पन्न हुआ ज्वर, शूल, उदावर्त रोग, संग्रहणी और मदरोग का नाश करता है; पीडानाशक, पित्तनिवारक, वातविनाशक, स्वर को सुन्दर करनेवाला तथा क्षुधा और भ्रमरोग में सेवनीय है । नेत्रों को हितकारी वीर्य को बढ़ानेवाला तथा आयु, स्मरणशक्ति और धारणाशक्ति को करनेवाला है । राजयक्ष्मा रोग का नाश करनेवाला, रूक्ष और क्षीणमनुष्य को हितकारी, वलीपलित का विनाशक तथा आमदोष, भूतोन्माद, प्रमत्त, बहुतिमिर, मूत्रकृच्छ्र और अपस्मार रोग में सब मनुष्यों के लिये सर्वकाल में पथ्य है ।

गव्यघृतविशेषगुणाः

धीकान्तिस्मृतिदायकं बलकरं मेधाप्रदं पुष्टिकृद्
वातश्लेष्महरं श्रमोपशमनं पित्तामहं हृद्धितम् ।
वह्नेर्वृद्धिकरं विपाकमधुरं वृष्यं वपुः स्थैर्य्यदं
गव्यं हव्यतमं घृतं बहुगुणं भोग्यं भवेद् भाग्यतः ।।१३।।

अन्यच्च -

सर्पिर्गवां चाप्यमृतं विषघ्नं चाक्षुष्यमारोग्यकरं च वृष्यम् ।
रसायनं चेदमतीव मेध्यं स्नेहोत्तमां गां विबुधाः स्तुवन्ति ।।१४।।

अर्थ – गाय का घी बुद्धि, कान्ति और और स्मरण शक्ति को देनेवाला, बलकारक, मेधाजनक, पुष्टिकारक, वातश्लेष्महारक, श्रमनिवारक, पितनाशक, हृदय को हितकारी, अग्निप्रदीपक, पचने में मधुर, वीर्यवर्द्धक, शरीर को स्थिरता प्रदान करनेवाला, हव्यतम, बहुगुणयुक्त और अत्यन्त भाग्य से प्राप्त होनेवाला है । गोघृत अृमत के समान गुणकारी, विषविनाशक, नेत्रज्योतिवर्द्धक, आरोग्यप्रद, वीर्यवर्द्धक, रसायन, मेधाजनक है । इसीलिये बुधजन सब प्रकार से उत्तम स्नेह प्रदान करनेवाली गौ की स्तुति करते हैं ।

हैयंगवीनघृतगुणाः

हैयंगवीनं चक्षुष्यं रुच्यं चाग्निप्रदीपकम् ।
बल्यं वृष्यं धातुकरं विशेषाज्ज्वरनाशकम् ।।१५।।

अर्थ – हैयंगवीन नेत्रों को हितकारी, रुचिकारी, अग्निप्रदीपक, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, धातुकारक और विशेष करके ज्वरनाशक है ।

दुग्धोद्भवघृतगुणाः

घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्ररोगनुत् ।
निहन्ति पित्तदाहास्रमदमूर्च्छाभ्रमानिलान् ।।१६।।

अर्थ – दूध में से निकाला हुआ घी मलरोधक, शीतल, नेत्ररोगनाशक तथा पित्त, दाह रक्तविकार, मद, मूर्च्छा, भ्रम और वायु को दूर करता है ।

शतधौतघृतगुणाः

शतधौतं घृतं प्रोक्तं दाहमोहज्ज्वरापहम् ।।१७।।

सौ बार का धुला हुआ घी दाह, मोह, और ज्वर का नाशक है ।

नूतनघृतगुणाः

नूतनं तु घृतं तृप्तिकारकं दुर्बले हितम् ।
भोजने स्वादुदं प्रोक्तं नेत्र्यं पाण्डुरुजापहम् ।।१८।।

अर्थ – नवीन घी तृप्तिकारक, दुर्बल मनुष्य को हितकारी, भोजन में स्वाद देनेवाला, नेत्रों को हितकारी और पाण्डुरोगनाशक है ।

पुराणघृतगुणाः

सर्पिः पुराणं तिमिरप्रतिश्यायामकासजित् ।
मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।।१९।।
उग्रगन्धं पुराणं स्याद्दशवर्षस्थितं घृतम् ।
लाक्षारसनिभं शीतं प्रपुराणमतः परम् ।।
यथा यथा भवेज्जीर्णं गुणवत्स्यात्तथा परम् ।।२०।। (रा.व.)

मतान्तरे -

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत् त्रिदोषनुत् ।
मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम् ।।२१।।
यथा यथाऽखिलं सर्पिः पुराणमधिकं भवेत् ।
तथा तथा गणैः स्वैः स्वैरधिकं तदुदाहृतम् ।।२२।। (भा.प्र.)

अर्थ – पुराना घृत तिमिर रोग, प्रतिश्याय, आम और खाँसी को दूर करता है तथा मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, ग्रहपीडा और मृगी रोग का नाश करनेवाला होता है । दस वर्ष का रखा हुआ और उग्र गन्धवाला तथा लाक्षा के रंग के समान लाल रंग के घी को पुराना घी कहते हैं । दस वर्ष से अधिक रखे हुए घी को प्रपुराना घी कहते है । घी जितना अधिक पुराना होता है, उतना ही अधिक गुणवाला होता है । भावमिश्र ने एक वर्ष बीत जाने पर घी को पुराना कहा है । वह पुराना घी त्रिदोषनाशक तथा मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, अपस्मार और तिमिररोगनाशक होता है । घी जितने अधिक पुराने होते जाते हैं, उतने ही जो-जो गुण जिस-जिस घी में कहे गये हैं, उन-उन गुणों की अधिकता करते हैं ।

नूतनघृतविषयाः-

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ।

बलक्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥२३॥
ज्वरेविबन्धे च विषूचिकायामरोचके वा शमिते तथाऽग्नौ ।
पानात्यये वाऽपि मदात्यये वा शस्तं न सर्पिर्बहु मन्यते सुधीः ॥२४॥

अन्यच्च -

शतवर्षसहस्रं वा स्थितकौम्भमिति स्मृतम् ।
एकादशशताद्यं च महाघृतमिति स्मृतम् ॥२५॥

अर्थ – भोजन, तर्पण, श्रम, बलक्षय, पाण्डुरोग, कामला और नेत्ररोग में नवीन घृत ही देना चाहिये । ज्वर, विबन्ध, विषूचिका, अरोचक, मन्दाग्नि, पानात्यय और मदात्यय रोग में बहुत घी नहीं देना चाहिये । सौ वर्ष के पुराने अथवा सहस्र वर्ष के पुराने घी को कौम्भ कहते हैं और इसके उपरान्त वाले घी को महाघृत कहा जाता है ।

॥ इति ॥

अमरकोषः- द्वितीयकाण्डम्, वैश्यवर्गः- गवादिनामानि

पंच यवागू- यवागुरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा ।
गोरसस्यैकम् - गव्यं त्रिषु गवां सर्वम्,
(गव्यं नपुंसकं ज्यायां रागद्रव्येऽप्यथ स्त्रियाम् ।)
गोसमूहे त्रिलिंगं मु गोदुग्धादौ च गोहिते ।।मेदिनी)

द्वे गोमयस्य - गोविट् गोमयमस्त्रियाम् ॥२/५०॥
शुष्कगोमयस्यैकम् - तत्तु शुष्कं करीषोऽस्त्री -
त्रीणि दुग्धस्य - दुग्धं क्षीरं पयः समम् ।
एकम् घृतदध्यादेः - पयस्यमाज्यदध्यादि -
एकम् शिथिलदध्नः - द्रप्सं दधि घनेतरत् ॥२॥५१॥
चत्वारि घृतस्य - घृतमाज्यं हविः सर्पिः -
एकम् अकृतानि संयोगस्य नवोद्धृतस्य- नवनीतं नवोद्धृतम् ।
एकम् एकरात्रपर्युषिताद्दध्न उत्पन्नस्य घृतस्य- तत्तु हैयंगवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् ॥२/५२॥
चत्वारि घोलस्य - दण्डाहतं कालशेयमरिष्टमपि गोरसः ।
('अरिष्टमशुभे तक्रे सूतिकागार आसवे । शुभे मरणचिह्ने च' इति विश्वः)
एकैकं क्रमेण चतुर्थांशजलघोलर्धिजलघोलनिर्जलघोलानाम् -
तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्ब्वर्धाम्बु निर्जलम् ॥२/५३॥
एकम् वस्त्रनिःसृतदधिजलस्य - मण्डं दधिभवं मस्तु -
एकं नवप्रसूताया गोःक्षीरस्य - पीयूषोऽभिनवं पयः ।
त्रीणि क्षुधः - अशनाया बुभुक्षा क्षुत् -

द्वे ग्रासस्य - ग्रासस्तु कवलः पुमान् ।।२/५४।।
द्वे बहुभिः संमील्य पानस्य - सपीतिः स्त्री तुल्यपानम् -
द्वे बहुभिः संमील्य भोजनस्य - सग्धिः स्त्रीसहभोजनम् ।
चत्वारि पिपासायाः - उदन्या तु पिपासा तृट् तर्षः ।
सत्त भोजनस्य - जग्धिस्तुभोजनम् । जेमनं लेह आहारो निघसो न्याद इत्यपि ।
त्रीणि तृप्तेः - सौहित्यं तर्पणं तृप्तिः -
द्वे भुक्तोत्सृष्ट्स्य - फेला भुक्तसमुज्झितम् ।।२/५६।।
षड् इच्छानतिक्रमस्य - कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम् ।
षड् गोपालानाम् - गोपे गोपालगोसंख्यगोधुगाभीरबल्लवाः ।।२/५७।।
एकम् - गोमहिष्यादिकं पादबन्धनम् -
त्रीणि गवां स्वामिनः - द्वौ गवीश्वरे । गोमान् गोमी -
द्वे गोसंघातस्य - गोकुलं तु गोधनं स्याद्गवां व्रजे ।।२/५८।।
एकं पूर्वगवां चरणस्थानस्य - त्रिष्वाशितं गवीनं तग्गावो यत्राशिताः पुरा ।
नव वृषभस्य - उक्षा भद्रो वलीवर्द ऋषभो वृषभो वृषः ।।२/५९।।
अनड्वान् सौरभेयो गौः -
एकं वृषसंघस्य - उक्ष्णां संहतिरौक्षकम् ।
द्वे गोसमूहस्य - गव्या गोत्रा गवाम् -
वत्सधेनुसमूहयोः प्रत्येकैकम् - वत्सधेन्वोर्वात्सकधैनुके ।।२/६०।।
एकम् महोक्षस्य - उक्षा महान्महोक्षः स्यात् -
द्वे वृद्धवृषभस्य - वृद्धोक्षस्तु जरद्गवः ।
एकं भ्रष्टदम्यभावस्य - उत्पन्न उक्षा जातोक्षः -
एकं सद्योजातवत्सस्य - सद्यो जातस्तु तर्णकः ।।२/६१।।
द्वे वत्सस्य - शकृत्करिस्तु वत्सः स्यात् -
द्वे वत्सभावमतीत्य द्वितीयं वयः स्पृष्टस्य - दम्भवत्सतरौ समौ ।
एकम् स्पष्टतारुण्यस्य - आर्षभ्यः षण्डतायोग्यः -
त्रीणि 'साँड' इति ख्यातस्य - षण्डो गोपतिरिट्चरः ।।२/६२।।
एकं वृषस्कन्धस्य - स्कन्धप्रदेशस्तु वहः -
द्वे गलकम्बलस्य - सास्ना तु गलकम्बलः ।
द्वे नासारज्जुयुक्तस्य - स्यान्नस्तितस्तु नस्योतः
द्वे दमनकाले कण्ठारोपितकाष्ठवाहस्य- प्रष्ठवाड् युगपार्श्वगः ।।२/६३।।
क्रमेणैकैकम् रथादिबाह्यश्ववृषभानाम् - युगादीनां च वोढारो युग्यप्रासंग्यशाकटाः ।
द्वे उक्तार्थेषु नाम्नी - खनति तेन तद्वोढारस्येदं हालिकसैरिकौ ।।२/६४।।
पंच धुरन्धरवृषभस्य - धूर्वहे धुर्यधौरेयधुरीणाः सधुरन्धराः ।
त्रीणि धुरन्धरस्य - उभावैकधुरीणैकधुरावेकधुरावहे ।।२/६५।।

द्वे धुरीणश्रेष्ठस्य - स तु सर्वधुरीणो यो भवेत्सर्वधुरावहः ।
नव गवि - माहेयी सौरभेयी गौरुस्रा माता च श्रृंगिणी ।
अर्जुन्यघ्न्या रोहिणी स्यात्- (माता-मानपूजायाम्)
मातरौ गोजनन्यौ द्वे ('माता गौर्यादि जननी गो ब्रह्माण्यादि भूमिषु' इति विश्वः)
एकं श्रेष्ठायां गोः - उत्तमा गोषु नैचिकी । (नैचिकी गौरुत्तमा तु नीचिकी सा प्रकीर्तिता)
धवलापि संज्ञानाम् - वर्णादिभेदात्संज्ञाः स्युः शबलीधवलादयः ॥२/६६७॥
(आदिना प्रमाणावयवादि विग्रहः- वर्णा- कृष्णा कपिला पाटला इत्यादयः, प्रमाणभेदात्- दीर्घा, ह्रस्वा, खर्वा, वामनी, इत्यादयः, अंगभेदात् - पिंगाक्षी, लम्बकर्णी, वक्रश्रृंगी इत्यादयः)
द्वे द्विवर्षाया गोः - द्विहायनी द्विवर्षा गौः
द्वे एकवर्षाया गोः - एकाब्दा त्वेकहायणी ।
द्वे चतुर्वर्षाया गोः - चतुरब्दा चतुर्हायणी -
द्वे त्रिवर्षाया गोः - एवं त्र्यब्दा त्रिहायणी ॥२/६८॥
द्वे वन्ध्यायाः - वशा वन्ध्या (वशो जनस्पृहायत्तेष्वायघ्नत्वप्रभुत्वयोः । वशा नार्यां वन्ध्य-
गव्यां हस्तिन्यां कुहितर्यपि ॥) हैमः ।
द्वे अकस्मात्पतितगर्भायाः- अवतोका तु स्रवद्गर्भा -
एकं कृतमैथुनायाः - अथ सन्धिनी आक्रान्ता वृषभेण -
(सन्धिनी वृषमाक्रान्ता कालदुग्धोस्तयोः स्त्रियाम्) इति मेदिनी
द्वे वृषयोगेन गर्भपातिन्याः - अथ वेहद्गर्भोपघातिनी ॥२/६९॥
एकं गर्भग्रहणयोग्यायाः - काल्योपसर्या प्रजने -
द्वे प्रथमं गर्भं धृतवत्याः - प्रष्ठौही बालगर्भिणी ।
द्वे सुशीलायाः - स्यादचण्डी तु सुकरा -
द्वे बहुप्रसूतायाः - बहुसूतिः परेष्टुका ॥७०॥
द्वे दीर्घकालेन प्रसूतायाः - चिरसूता वष्कयणी -
द्वे नूतन प्रसूतायाः - धेनुः स्यान्नवसूतिका ।
('धेनुर्गोमात्रके दोग्ध्र्याम्' इति हैमः)
द्वे सुशीलायाः - सुव्रता सुख सन्दोह्या -
द्वे स्थूलस्तन्याः - पीनोघ्नी पीवरस्तनी ॥२/७१॥
द्वे द्रोणपरिमितदुग्धदात्र्याम् - द्रोणक्षीरा द्रोणदुग्धा -
एकं बन्धनस्थिताया गोः - धेनुष्या बन्धके स्थिता ।
एकं प्रतिवर्षं प्रसवित्र्या गोः - समांसमीना सा यैव प्रतिवर्षं प्रसूयते ॥७२॥
द्वे क्षीराशयस्य - ऊधस्तु क्लीबमापीनम् ।
द्वे पशुबन्धनकाष्ठस्य - समौ शिवककीलकौ ।

द्वे दोहनकाले पादबन्धन रज्जोः- न पुंसि दाम सन्दानम् ।
द्वे पशुबन्धनरज्जोः - पशुरज्जस्तु दामनी ।।७३।।
पंच मन्थनदण्डस्य - वैशाखमन्थमन्थानमन्थानो मन्थदण्डके ।
द्वे मन्थबन्धनकाष्ठस्य, गर्गरीमुखस्य वा, मन्थदण्डधारककाष्ठस्य वा -
कुठरो दण्डविष्कम्भे -
द्वे मन्थनपात्रस्य - मन्थनी गर्गरी समे ।।७४।

सुरभिः- सुरभिर्हेम्निचम्पके जातीफले मातृभेदे रम्ये चैत्रवसन्तयोः ।
सुगन्धौ गवि शल्लक्याम् - इति हैमः ।
सुरभिर्गवि च स्त्रियाम् - सुरभिः शल्लकीमातृभित्सुरगोषु योषिति ।
चम्पके च वसन्ते च तथा जातीफले पुमान् ।
स्वर्णे गन्धोत्पले क्लीवं सुगन्धिकान्तयोस्त्रिषु ।
('विख्याते सचिवे धीरे चैत्रेऽपि च पुमानयम्' इति मेदिनी)

अर्जुनी - अर्जुनः ककुभे पार्थे कार्तवीर्यमयूरयोः ।
मातुरेकसुतेऽपि, स्याद्धवले पुनरन्यवत् ।
नपुंसकं तृणे नेत्ररोगे स्यादर्जुनी गवि ।
उषायां वाहुदानद्यां दुहिन्यामपि च क्वचित्' विश्वः, मेदिनी)

स्त्रीणां रजोयोगे विशेषः गारुडे-
प्रारब्धतपसां स्त्रीणां रजो हन्याद् व्रतं न हि ।
अन्यैर्दानादिकं कुर्यात्कायिकं स्वयमाचरेत् ।।१२९।१६।।
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभंगो भवेद्यदि ।
दिनत्रयं न भुंजीत शिरसो मुण्डनं भवेत् ।।१२९।१७।।

डायरी २।१ से

श्रीहरिः

हविर्धान्यभवत्पूर्व सुरभिः सुरपूजिता ।
जग्मुर्मुदं तदा देवा दानवाश्च महामते ।। प.पु.सृ.ख.४/४५

श्रीराधे

ॐ सुरभ्यै नमः

दिलीपवृत्तान्तवर्णनम्

देवल ने सन्तानाभाव से पीड़ित वैश्य को कहा कि-

देवल उवाच

वसिष्ठेन यथापूर्व दिलीपस्य महीपतेः ।
तच्छ्रुत्वा स यथा राजा नन्दिनीं समतोषयत् ।।
सस्त्रीकस्त्वं तथा वैश्य गौरीं तोषय कामदाम् ।।२०१/९९।।
सा यथाऽऽराधिता राज्ञे दिलीपाय ददौ सुतम् ।
आराधय तथा गौरीं त्वं सा तुभ्यं च दास्यति ।।२०१/१००।।

देवल ने कहा- वसिष्ठ के द्वारा उपदेश करने पर जैसे महाराज दिलीप ने नन्दिनी गौ को प्रसन्न किया, हे वैश्य! वैसे ही तुम भी कामप्रदा गौरी को प्रसन्न करो । वह जैसे

राजा दिलीप के आराधन से प्रसन्न होकर पुत्र प्रदान किया, वैसे ही तुम भी आराधन करो । वे प्रसन्न होकर तुम्हें भी पुत्र देंगी ।

वैश्य उवाच

दिलीप इति भूपः कः का च सा नन्दिनी मुने ।
यामाराध्य सुतं लेभे स भूयो भूपसत्तमः ।।२०१/१०१।।
महेशादि सुरान्मुक्त्वा त्रिवर्गफलदायिनः ।
आराधिता कुतः सैव सुतार्थं तेन भूभुजा ।।२०१/१०२।।
एतत्सर्वं समाख्याहि मुने यत्पृष्टवानहम् ।
श्रुत्वा ततो गिरिसुतां सेविष्ये सह भार्यया ।।२०१/१०३।।

शिवशर्मोवाच

गदितमिति निशम्य विष्णुशर्मन् विनययुतेन विशा मदीयपित्रा ।
मुनिरिति गदितं दिलीपवृत्तं जगति पवित्रतरं विचक्रमे सः ।।१०४।।

वैश्य ने कहा - हे मुने! दिलीप नाम वाले राजा कौन थे और वह नन्दिनी कौन थी, जिसका आराधन करके नृपश्रेष्ठ दिलीप ने पुत्र को प्राप्त किया था ।।101।। त्रिवर्ग फलप्रदान करनेवाले महेश आदि देवताओं को छोड़कर सत्पुत्रप्राप्त्यर्थ राजा ने नन्दिनी का आराधन कैसे किया ।।102।। हे मुने! मैंने जो पूछा है, उन सबका सम्यक् प्रकार से वर्णन करें । जिसे सुनकर पत्नीसहित मैं गिरिजा का सेवन करूँगा ।।103।।

शिवशर्मा ने कहा - हे विष्णुशर्मन्! मैंने सुना है, ऐसा कहकर विनययुक्त मेरे पिता वैश्य के द्वारा मुनि के द्वारा कहा गया जगत् को पवित्र करनेवाला महाराज दिलीप के वृत्तान्त को सुनाया ।।104।।

अध्याय २०२

देवल उवाच

शृणुष्व भो महाप्राज्ञ! दिलीपस्य महीपतेः ।
कथां दिव्यां विचित्रां च शृण्वतां पापनाशिनीम् ।।१।।
वैवस्वतमनोर्वंशे दिलीपो भूभुजां वरः ।
आसीत्प्राचीनबर्हिस्तु स्वायम्भुवमनोरिव ।।२।।
स तु धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मेण प्रतिपालयन् ।
महीं महीपतिर्लोकान् गुणैराढ्यैररंजयत् ।।३।।
मगधाधिपतेः पुत्री महिषी तस्य भूपतेः ।
सुदक्षिणाख्यया ख्याता शचीवासीद् दिवस्पतेः ।।४।।
गते महति काले तु महिष्यां नाऽभवत्सुतः ।
दध्याविति निजस्वान्ते स सम्राट् कोशलाधिपः ।।५।।
रत्नाकरसुमेर्वादि नगरत्नैर्विराजितम् ।।

धृतं भूवलयं दोषो भूषायै नाप्रजस्य मे ।।६।।
वर्गत्रयी यथाकालं सेविता न विरोधिता ।
तथापि मेऽनपत्यस्य न सौख्यं विद्यते हृदि ।।७।।

देवल ने कहा – हे महाप्राज्ञ! सुनो महाराज दिलीप की कथा अतिदिव्य और विचित्र है; जिसको सुनने से सुननेवाले के सम्पूर्ण पापों का विनाश हो जाता है ।।1।। वैवस्वत मनु के वंश में राजाओं में श्रेष्ठ दिलीप नाम का राजा हुआ जो इन्द्र के समान प्रतापी और स्वायम्भुव मनु के समान सर्वप्रिय प्रजापालक था ।।2।। वह धार्मिकों में श्रेष्ठ और धर्म से प्रजाओं का पालन करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी और लोकों को अपने दिव्य गुणों से प्रसन्न रखता था ।।3।। मगधराज की पुत्री सुदक्षिणा उनकी पत्नी थी, जो इन्द्र की पत्नी शची के समान गुणवाली थी ।।4।। बहुत काल बीत जाने पर भी सुदक्षिणा से पुत्र का जन्म नहीं हुआ । तब कोशलनरेश सम्राट् दिलीप ने अपने–आप में सोचा ।।5।। रत्नाकर और सुमेरु आदि पर्वतरत्नों से सुशोभित भूपरिधि रूपी कंकण मेरे द्वारा धारण किये हुए हैं, तथापि मुझ पुत्रहीन के लिये ये सब आभूषण जैसे नहीं लगते हैं ।।6।। वर्गत्रय- धर्म, अर्थ और काम का यथासमय मैंने सेवन किया, उनसे विरोध नहीं किया; तथापि मुझ अनपत्य के हृदय में कोई सुख विद्यमान नहीं है ।।7।।

यज्ञैराराधितो विष्णुरिन्द्राद्याश्च सुरोत्तमाः ।
दीर्घिकारामकूपाश्च कारिताः सर्वतो भुवि ।।८।।
गोभूहिरण्यवासोभिः षड्रसान्वितभोजनैः ।
विप्रा अतिथयश्चैव भक्त्या सन्तोषिता मया ।।९।।
वृत्त्यर्थं पृथिवीपालानुद्धृत्य युधि धर्मतः ।
धनेन महता कोशो मया हि बहुलीकृतः ।।१०।।
उन्मार्गगामिनो मत्ता निजधर्मविलंघिनः ।
विमुखाः पितृदेवेभ्यो दण्ड्यास्ते दण्डिता मया ।।११।।
पंचपर्वसु वैष्णव्यां रवौ पित्र्ये च कर्मणि ।
दशम्येकादशी तिथ्योर्न स्त्रीसेवा कृता मया ।।१२।।
ऋतुकालावधौ स्नातां स्वस्त्रियं नाहमत्यजम् ।
अनृतावपि तद्योग्ये काले चेत्प्रार्थितस्तया ।।१३।।
तदा तस्यां सकामिन्यां सकामं रमितं मया ।
एवं धर्मार्थकामा मे यथाकालं निषेविताः ।।१४।।
महिष्यां केन दोषेण जायते मे न सन्ततिः ।
अतीतानागतज्ञानो वसिष्ठो गुरुरेव नः ।।

कथयिष्यति तं दोषं यन्मे पुत्रो न जायते ॥१५॥

यज्ञों के द्वारा विधिपूर्वक विष्णु और इन्द्रादि देवताओं का मैंने आराधन किया, इस पृथ्वी पर सर्वत्र बड़े-बड़े सरोवर, उद्यान एवं कूपों का भी निर्माण कराया ।।8।। गोदान, पृथ्वीदान, वस्त्रदान और छः प्रकार के रसों से युक्त भोजन के द्वारा विप्रों और अतिथियों को भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट किया ।।9।। युद्ध में धर्मपूर्वक वृत्त्यर्थ अनेक राजाओं को पराजित कर अपने कोश को धनादि से परिपुष्ट किया ।।10।। स्वधर्मभ्रष्ट, कुमार्गगामी मदोन्मत- जो पितरों और देवताओं से विमुख थे, वे भी मेरे द्वारा दण्डित हुए ।।11।। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति आदि पाँच पर्वतिथि, द्वादशी, रविवार, श्राद्धदिन, दशमी और एकादशी को मैंने स्त्रीसेवन नहीं किया ।।12।। ऋतुकाल की अवधि में स्नान की हुई अपनी स्त्री का त्याग भी नहीं किया, ऋतुकाल से रहित भी योग्य समय में पत्नी के द्वारा प्रार्थित होने पर ।।13।। उस कामिनी के साथ सकाम रमण किया । इसी प्रकार यथाकाल धर्म, अर्थ और काम का वैध सेवन किया ।।14।। तथापि किस दोष के कारण मेरी पत्नी से पुत्र उत्पन्न नहीं हो रहा है, इस बात को भूत और भविष्य के ज्ञाता हमारे गुरु वसिष्ठ ही बतायेंगे कि किस दोष के कारण मुझे पुत्र की प्राप्ति नहीं हो रही है ।।15।।

देवल उवाच

इत्यालोच्य स भूपालो गमिष्यन्नाश्रमं गुरोः ।
मन्त्रिष्वारोपयामास कोशलामृद्धिकोशलाम् ॥१६॥
अथ प्रजासृजं देवं पूजयित्वाऽऽश्रमं गुरोः ।
प्रतस्थाते पुत्रकामौ दम्पती तौ शुभेऽहनि ॥१७॥
कतिचिद्वासरैर्मार्गमुल्लंघ्यैकरथे स्थितौ ।
तौ दम्पती गुरोः सायमाश्रमं प्रापतुः शुभम् ॥१८॥
वैश्वदेवान्तसम्प्राप्तातिथिसत्कारकृन्मुनिम् ।
हुताशनहुतद्रव्यप्रसरद्धूममालया ॥१९॥
पवित्रयन्तमात्मस्थान्मुनीनागन्तुकानपि ।
मृगैर्दूर्वाप्रतानौघप्रदपूर्णौघमन्थरम् ॥२०॥
अभ्यागच्छद्भिरभितो मण्डपं स मृगीगणैः ।
वासवृक्षमिलत्पक्षिकुलकोलाहलाकुलम् ॥२१॥
परस्परविनिर्मुक्तवैरव्याघ्रमृगादिकम् ।
जपध्यानपरर्षीणां क्षणश्रान्तश्रुतिध्वनिम् ॥२२॥
अनध्ययनकालोत्थक्रीडासक्तकुमारकम् ।
तस्मिन्वसिष्ठमद्राष्टां दम्पती तौ कृतक्रियम् ॥२३॥

वृष्यां निषण्णमव्यग्रमरुन्धत्योपसेवितम् ।
स ववन्दे गुरोः पादौ महिषी सा च तत्स्त्रियः ॥२४॥
आशिषा गुरुरप्येनं युयोजाऽरुन्धती च ताम् ।
अतिथिं तमथाभ्यर्च्य मधुपर्कादिभिर्गुरुः ।
अर्हणैरर्हतां श्रेष्ठो वसिष्ठ इति पृष्टवान् ॥२५॥

देवल ने कहा – ऐसा सोचकर वह राजा गुरु के आश्रम में जाने को उद्यत होकर मन्त्रियों पर कोशल की प्रजा एवं सम्पदा का भार सौंप दिया ।।16।। इसके बाद पुत्रोत्पत्ति में सहायक देवता की पूजा कर शुभमुहूर्त में दोनों पति-पत्नी पुत्र की कामना से गुरु के आश्रम हेतु प्रस्थान कर गये ।।17।। एक रथ में स्थित दोनों दम्पती कुछ दिनों में मार्ग को पारकर सायंकाल में गुरु के शुभ आश्रम को प्राप्त किये ।।18।। वैश्वदेवान्त नित्यक्रिया का सम्पादन कर अतिथिसत्कार किये हुए मुनि को जो अग्नि में हुतद्रव्य से फैली हुई धूमराशि को आश्रमस्थ मुनि और आगन्तुकों को पवित्र करते हुए ।।19।। फैली हुई दूर्वाराशि को प्रदान करनेवाला एवं पूर्ण जलयुक्त स्थान को आये हुए हरिणियों के साथ हरिणों के द्वारा मण्डप के समीप एवं निवासस्थान वाले वृक्ष को प्राप्त किए हुए पक्षियों के समूह के कोलाहल से पूर्ण ।।20।। और परस्पर वैर-भाव से मुक्त व्याघ्र, हरिण आदि को देखा तथा जप-ध्यान में परायण ऋषियों के क्षण-श्रान्त श्रुतिध्वनि के पश्चात् ।।22।। अनध्याय का समय हो जाने पर क्रीडासक्त कुमारों के मध्य उस आश्रम में वसिष्ठ मुनि को देखा, जो अपनी नित्यक्रिया को कर चुके थे ।।23।। कुशासन पर स्थिर चित्र से विराजमान अरुन्धती से सुसेवित वसिष्ठ को अन्य सखियों से युक्त पत्नी के साथ राजा ने पादवन्दन किया ।।24।। गुरु ने आशीर्वाद देते हुए राजा को तथा अरुन्धती ने सुदक्षिणा को गले से लगाया । उसके बाद गुरु ने समागत अतिथि को मधुपर्कादि से अर्चन किया तथा पूजनीयों में श्रेष्ठ वसिष्ठ ने राजा से पूछा ।।25।।

वसिष्ठ उवाच

भो भो भूमिभृतां श्रेष्ठ राज्ये कुशलमस्ति ते ।
कुले च कच्चिल्लोके च निजधर्मानुवर्त्तिनि ॥२६॥
धर्मेण पालिता कच्चित्वया वीर वसुन्धरा ।
संवर्द्धयति ते कोशं धर्मधीरिव सात्त्विकी ॥२७॥
तव जानपदा राजन् पौराश्च स्थितिमात्मनः ।
सारवन्तो विमुंचन्ति कच्चिन्नाम्बुधयो यथा ॥२८॥
स्नेहेन साहचर्येण सहवासतया प्रभो ।
लक्ष्मीनारायणायेते कच्चित्ते पुरदम्पती ॥२९॥

काम्यव्रतानि राजेन्द्र प्रजानां नगरे तव ।
फलन्ति वांछितं कच्चिद्धरिचन्दनवद्दिवि ।।३०।।

वसिष्ठ ने कहा – हे भूपालों में श्रेष्ठ राजन्! तुम्हारे राज्य में सब कुशल तो हैं, तुम्हारे कुल में, लोक में और स्वधर्म में अनुवर्त्तन करनेवालों में सब कुशल हैं? ।।26।। हे वीर! वसुन्धरा तुम से पालित होकर तुम्हारे कोश का संवर्धन करती है । जैसे सात्त्विकी बुद्धि धर्मबुद्धि का ।।27।। हे राजन्! तुम्हारी प्रजा और पुरवासी आत्मस्थिति को प्राप्त कर प्रसन्नता से कर प्रदान करती हैं, जैसे– अम्बुधि जल का ।।28।। हे प्रभुत्वसम्पन्न राजन् ! तुम्हारे नगर के दम्पती स्नेहपूर्वक साहचर्यभाव से लक्ष्मी–नारायण भगवान् के लिये समर्पित हैं ।।29।। जो काम्यव्रत का सम्पादन करते हैं, वे वाञ्छित फल को प्रदान करते हैं; जैसे स्वर्ग में हरिचन्दन कल्पवृक्ष वाञ्छित फल प्रदान करते हैं ।।30।।

देवल उवाच

पृष्ट्वैवं स मुनिश्रेष्ठो वसिष्ठो मुनिपुंगवः ।
योगप्रभावोपनतैर्नृपं भोज्यैरभोजयत् ।।३१।।
अरुन्धती च तां राज्ञीं बह्वादरसमन्विता ।
नानाव्यंजनपक्वान्नैरभोजयदुदारधीः ।।३२।।
कृतभोजनमासीनं स्वस्थः स्वस्थं मुनिर्नृपम् ।
पुनः पप्रच्छ संग्रह्य पाणिना पाणिमानतम् ।।३३।।

देवल ने कहा – मुनिपुंगव मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने इस प्रकार से राजा का समाचार पूछकर योगबल से प्राप्त विशिष्ट भोज्य पदार्थ से राजा को भोजन कराया ।।31।। अतिशय सम्मान से युक्त उदार चित्तवाली अरुन्धती ने भी नाना प्रकार के व्य×जन और पक्वान्नों से महारानी सुदक्षिणा को भोजन कराया ।।32।। भोजनोपरान्त बैठे हुए सिर झुकाये और हाथ जोड़े हुए स्वस्थचित्त राजा का हाथ पकड़कर स्वस्थचित्त मुनि ने पुनः पूछा ।।33।।

वसिष्ठ उवाच

सप्तांगसंयुतं राज्यं निजधर्मरतप्रजम् ।
प्रीतबन्धुजनामात्यं शस्त्रास्त्रविधिवद्भटम् ।।३४।।
वश्यमित्रं हतामित्रं कृष्णार्चापरमानसम् ।
यस्यास्ति नृपते राज्यं स्वर्गराज्येन तस्य किम् ।।३५।।
इक्ष्वाकुवंशराजानः पुत्रानुत्पाद्यधार्मिकाः ।
राज्यं स तेषु विन्यस्य प्रपन्नास्तपसि प्रभो ।।३६।।
त्वं युवाऽदृष्टपुत्रास्यो नाधिकारी तपोविधौ ।

किमर्थमागतो ह्यत्र राज्यं त्यक्त्वा तथाविधम् ।।३७।।

वसिष्ठ ने पूछा– सात अंगों से युक्त राज्य, स्वधर्मरत प्रजा, बन्धुजन और अमात्यों से प्रेम, विधिवत् शस्त्रास्त्रस×चालन में दक्ष योद्धा, स्वानुकूल मित्र, पराजित शत्रु और कृष्ण (नारायण) के पूजन में परायण मन– इन गुणों से परिपूर्ण जिस राजा का राज्य हो, उसे स्वर्ग के राज्य का क्या प्रयोजन? ।।35।। हे विभो! इक्ष्वाकुवंश के धार्मिक राजा सत्पुत्रों को उत्पन्न करके राज–काज में उनको नियुक्त कर तपस्या में संलग्न हो भगवान् की शरण को प्राप्त करते हैं ।।36।। तुम अभी युवा हो और पुत्र का मुख भी नहीं देख पाये हो, अतः तपस्या की विधि में तुम्हारा अधिकार नहीं है: फिर उपर्युक्त सभी गुणों और अंगों से परिपूर्ण राज्य का परित्याग कर यहाँ क्यों आये हो ।।37।।

राजोवाच

ब्रह्मन्नाहं तपः कर्तुमागतस्तावकाश्रमे ।
स्वर्गकामनया त्यक्त्वा राज्यमत्र तथाविधम् ।।३८।।
ब्रह्मन् सत्यमिदं चोक्तं भवता यत्तपोवनम् ।
राज्यमारोप्य पुत्रेषु प्राप्त इक्ष्वाकुवंशजाः ।।३९।।
न तैस्त्यक्तं महीराज्यमिदं स्वर्गगतैरपि ।
तन्मूर्तिरस्यां विमनास्तिष्ठति ह्येष सन्ततिः ।।४०।।
यथा बाल्यं गतं तात यौवनं च समागतम् ।
यास्यत्यदोऽपि च तथा जराऽप्येष्यति निश्चितम् ।।४१।।
जरसोऽनन्तरं मृत्युः पुरुषस्य न संशयः ।
मृत्युं गते मयि ब्रह्मन् विना तनयसम्भवम् ।।४२।।
कस्येदं जगती राज्यं भविष्यति गुरो वद ।
तस्मादपत्यहीनस्य राज्येऽति मम तिष्ठति ।।४३।।
ममत्वं विद्यते नात्र पुरस्तात्तदभावतः ।
वर्गत्रयस्य वै सम्यक् संवेत्ता त्वं गुरो! मम ।।४४।।
केन दोषेण मे पुत्रो जायते न तपोनिधे! ।
ध्यानेन दोषमालोक्य तं गुरो कथयाशु मे ।।
तस्य प्रतिक्रियां कुर्या श्रुत्वा सन्तानलब्धये ।।४५।।

राजा ने कहा – हे ब्रह्मन्! मैं तपस्या करने के लिये आपके आश्रम में नहीं आया हूँ और न तो सर्वगुणसम्पन्न राज्य का परित्याग कर स्वर्ग की कामना से ही आया हूँ ।।38।। हे ब्रह्मन्! आपके द्वारा सत्य ही कहा गया है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं ने अपने पुत्रों को राज्यसिंहासन पर स्थापित कर तपोवन को प्राप्त किया है

।।39।। उनके द्वारा स्वर्गगमन हो जाने पर भी सम्पूर्ण भूमण्डल के राज्य को उन्होंने त्याग नहीं किया गया है । इस पृथ्वी पर सन्तति के रूप में उनकी मूर्ति ही अप्रसन्न हो विराज रही है ।।40।। हे तात! जिस प्रकार बाल्यावस्था व्यतीत हुई, यौवन आ गया, यह भी चला ही जायगा; उसी प्रकार वृद्धावस्था का भी आगमन निश्चित ही है ।।41।। जरावस्था के बाद फिर पुरुष की मृत्यु भी निश्चित है, इसमें संशय नहीं । हे ब्रह्मन्! पुत्र उत्पन्न किये बिना मेरी मृत्यु हो जाने पर इस संसार में किसका यह राज्य होगा? हे गुरो! कृपा करके बतायें । इसलिये मुझ पुत्रहीन राजा के राज्य में मेरे मुख्यरूप से रहते हुए भी ।।43।। इसमें मुझे कोई ममता नहीं है । (हे गुरो!) मेरे धर्म, अर्थ और काम को भली प्रकार से आप जानते हैं ।।44।।

हे तपोनिधे! किस दोष के कारण मुझे पुत्र नहीं हुआ है? ध्यान से इस दोष का अवलोकन कर मुझे शीघ्र ही बताने की कृपा करें ।। उसको सुनकर पुत्रप्राप्ति के लिये उसकी जो भी प्रतिक्रिया होगी; मैं उसका सम्पादन करूँगा ।।45।।

देवल उवाच

इत्याकर्ण्य वसिष्ठस्तु वचस्तस्य महीपतेः ।
उवाच सन्ततिस्तम्भहेतुं वीक्ष्य समाधिना ॥४६॥

देवल ने कहा – राजा के ऐसे वचन को सुनकर वसिष्ठ ने समाधि से सन्तति में अवरोधक कारण को जानकर कहा ।।46।।

वसिष्ठ उवाच

त्वं पुरा राजशार्दूल! संसेव्य सुरनायकम् ।
स्नातामिमां वधूं स्मृत्वा चलितो निजमन्दिरम् ॥४७॥
गच्छतस्त्वरया तात! सन्तानोत्कण्ठितस्य ते ।
आसीत् सुरतरोर्मूले कामधेनुः स्थिता पथि ॥४८॥
उत्पादिता त्वया तस्याः पूज्यांघ्रिरजसोतिऽरुट् ।
प्रदक्षिणनमस्कारसदाचारमकुर्वता ॥४९॥
साऽशपत्त्वामतिक्रोधात्पुत्रो नोत्पत्स्यते तव ।
मम सन्तानशुश्रूषां यावत्त्वं न करिष्यसि ॥५०॥
गच्छंस्त्वमृतुदानाय त्वरया सुतकामुकः ।
उन्मना नाश्रृणोः शापं न यन्ताक्षनिनादतः ॥५१॥
तस्याः सुतासुतां धेनुं नन्दिनीं ससुतां मम ।
आराधयानया वध्वा सार्द्धं सा दास्यते सुतम् ॥५२॥

वसिष्ठ ने कहा- हे राजशार्दूल! पूर्वकाल में तुमने सुरेन्द्र का पूजन करके ऋतुकालस्नाता इस वधू का स्मरण कर स्वगृह में चले गये थे ।।47।। हे तात!

सन्तान की उत्कण्ठा लिये शीघ्रता से जाते समय तुमने मार्ग में कल्पवृक्ष के मूल में अवस्थित कामधेनु थी ।।48।। उनके पादरजोवन्दन, प्रदक्षिणा एवं नमस्कारादि सदाचार नहीं करने से वह अत्यन्त पीड़ित हो गयी थी ।।49।। उसने अतिक्रोध से यह शाप दिया था कि मेरी सन्तान की तुम जब तक सेवा नहीं करोगे, तब तक तुम्हें पुत्र नहीं होगा ।।50।। पुत्र की कामना से आतुर हो शीघ्रता से ऋतुदान के लिये जाते हुए रथ की धुरी की ध्वनि के कारण तुमने शाप को नहीं सुना ।।51।। उस कामधेनु की दौहित्री मेरी नन्दिनी की सपत्नीक तुम सेवा करो, वहीं तुम्हें पुत्र प्रदान करेगी ।।52।।

देवल उवाच

इत्युक्तवति तत्रर्षौ वसिष्ठे सा तु नन्दिनी ।
तपोवनात्समायाता वत्सस्नेहस्नुतस्तनी ।।५३।।
तां दृष्ट्वा हृष्टहृदयो वसिष्ठो मुनिपुंगवः ।
उवाच भूपतिं भूयो दर्शयित्वा च नन्दिनीम् ।।५४।।

देवल ने कहा - महर्षि वसिष्ठ के ऐसा कहने पर वत्स के स्नेह से क्षीरस्रवित स्तनवाली वह कामधेनु नन्दिनी तपोवन से आ गयी ।।53।। नन्दिनी को बार-बार देखकर प्रसन्न हृदय मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ ने राजा से कहा ।।54।।

वसिष्ठ उवाच

राजन् समागता ह्येषा स्मृतमात्रशुभाह्वया ।
अतो विद्धि समीपस्थां कार्यसिद्धिमिहात्मनः ।।५५।।
आराधिताऽनुगत्वेयं त्वयाऽरण्ये तथाऽऽश्रमे ।
वध्वा प्रसादात्ते पुत्रं दास्यते नात्र संशयः ।।५६।।
यथा नाभिभवेदेनां जन्तुः कश्चिद्वनोद्भवः ।
तथा चारय राजेन्द्र! वने हिंस्रो धनुर्धरः ।।५७।।

वसिष्ठ ने कहा- हे राजन्! नाम के शुभस्मरण मात्र से ही नन्दिनी आ गयी; अतः अपनी कार्यसिद्ध को समीप ही जानो ।।55।। सपत्नीक तुम्हारे द्वारा वन में तथा आश्रम में अनुगमन करते हुए आराधित होकर अपनी कृपादृष्टि से तुम्हें पुत्र प्रदान करेगी ।।56।। हे राजेन्द्र! जिस प्रकार कोई जंगली हिंसक जन्तु नन्दिनी का अतिक्रमण न करे वैसे ही धनुष धारण कर वन में इसे चराओ ।।57।।

देवल उवाच

तथेति लघुवादिने नृपतये स्नुषायै च स
क्षपाशयनहेतवे सदुजटं ददौ तापसः ।
स तत्र सहभार्यया समधिशय्य दर्भास्तृतां
महीमगमयन्निशां नियतमानसो विट्पते ।।५८।।

देवल ने कहा – ऐसा ही करूँगा, इस प्रकार के अल्पवादी नृपति और पुत्रवधू के समान सुदक्षिणा के लिये महर्षि ने रात्रि में शयन के हेतु सुन्दर पर्णकुटी दी । हे अभिशप्त वैश्य! दृढ़ निश्चय वाला उस राजा ने अपनी भार्या के साथ पृथ्वी पर बिछाई हुई दर्भशय्या पर रात्रिशयन किया ।।58।। ***// इति //***

देवलवैश्यसंवादे राज्ञा दिलीपेन स्वमहिष्या सह
वसिष्ठधेनोर्नन्दिन्याश्चारणादि सेवाकरणं नन्दिनीकृतपरीक्षणं
मायासिंहस्य दिलीपेन संवादो नन्दिन्या वरदानं च (२०३ उ.स.)

देवल उवाच

अथोषसि नराधीशः पूजितां कुसुमादिभिः ।
महिष्या नन्दिनीं धेनुं नीत्वाऽरण्यं जगाम सः ।।२०३/१।।
गच्छन्तीमनु तां देवीं छायेव नृपतिर्ययौ ।
खादन्तीमनुशष्पादि सोऽपि मूलाद्यभक्षयत् ।।२।।
तरुच्छायामुपासीनामनु सोऽप्युपविष्टवान् ।
पिबन्तीमनुपानीयं राजाऽपि सलिलं पपौ ।।३।।
स च राजा मृदुग्रासैर्दंशापनयनेन च ।
कण्डूयनैः कामधेनुं गुरोरेवमसेवत ।।४।।

देवल ने कहा– तदनन्तर उषःकाल में महाराज दिलीप ने अपनी महारानी सुदक्षिणा के साथ पुष्पादि से सुपूजित नन्दिनी धेनु को लेकर चराने हेतु वन को गये ।।1।। जाती हुई नन्दिनी देवी के पीछे–पीछे छाया की तरह राजा गये, उनके नवीन घास आदि खाने के बाद उन्होंने भी मूलादि का भक्षण किया ।।2।। नन्दिनी जब वृक्ष की छाया में बैठ जाती थी तब राजा भी बैठते थे और जब वह जल पीती थी तब राजा भी जल का पान करते थे ।।3।। वह राजा गुरु वसिष्ठ की कामधेनु की कोमल घास, मच्छर आदि भगाना और अंगों को सहलाने आदि क्रियाओं से सेवा में रत रहते थे ।।4।।

अथ प्रत्याश्रमं सायं न्यवर्तत महीपतेः ।
अंगं पवित्रयन्ती सा खुरोद्धूतै रजःकणैः ।।५।।

वह राजा के अंग को अपने खुर से उत्पन्न रजःकणों से पवित्र करती हुई सायंकाल में आश्रम में लौट जाती थी ।।5।।

ऊधोभारेण गुरुणा गच्छन्ती मन्थरं बभौ ।
महीपालमहाकार्यभाराक्रान्तेव नन्दिनी ।।६।।
तां मुनेराश्रमाभ्याशे राज्ञी प्रत्युज्जगाम ह ।
चन्दनाक्षतनैवेद्यधूपादीनुपनीय च ।।७।।

तां पूजयित्वा विधिवत्प्रणम्य च पुनः पुनः ।
कृत्वा प्रदक्षिणं राज्ञी तस्थौ प्रांजलिरग्रतः ॥८॥
सा गृहीत्वा च तां पूजां विहितां श्रद्धया तया ।
राज्ञा निश्चलमास्थाय ययौ ताभ्यां सहाश्रमम् ॥९॥
आराधयति तामेवं दिलीपे तु दृढव्रते ।
एकाधिका व्यतीयाय दिनानां वैश्य विंशतिः ॥१०॥
अथ भूमिपतेस्तस्य भावजिज्ञासया तु सा ।
विवेश निर्भयस्वान्ता सशष्पां हिमवद्गुहाम् ॥११॥
पश्यता हिमवत्सानु शोभामथ महीभृता ।
अलक्षितागमः सिंहो बलाज्जग्राह नन्दिनीम् ॥१२॥

बृहत् ऊधस् (ऐन, औड़ी) के भार से युक्त राजा के महान् कार्यभार से अधिकृत हो वह नन्दिनी शिथिलता के कारण शनैःशनैः जाती हुई सुशोभित हो रही थी ।।6।। महारानी भी चन्दन, अक्षत, नैवेद्य और धूप आदि लाकर मुनि के आश्रम के समीप उस धेनु के पास गयी ।।7।। धेनु का विधिवत् पूजन और बार-बार प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा करके रानी उनके आगे अ×जलिबद्ध हो खड़ी हो गयी ।।8।। वह नन्दिनी दोनों के द्वारा अतिशय श्रद्धा से की हुई विधिवत् पूजा को स्वीकार कर विश्राम के लिये उन दोनों के साथ आश्रम को गयी ।।9।। हे वैश्य! दृढ़व्रती दिलीप के द्वारा एक से एक सेवा से वह बीस दिनों तक आराधित होती रही ।।10।। इसके बाद उस राजा की भावपूर्ण जिज्ञासा से वह नन्दिनी अपने आप में निर्भय हो नवीन घास युक्त शीतल गुफा में प्रवेश कर गयी ।।11।। राजा के द्वारा शीतलता से युक्त वन-पर्वत को देखते हुए पूर्व से अदृष्ट सिंह आ गया और बलपूर्वक नन्दिनी को पकड़ लिया ।।12।।

सा चक्रन्द भृशं धेनुर्दुःखितेव दयास्वना ।
चित्ते धनुर्भृतस्तस्य जनयन्ती दयोदयम् ॥१३॥
तदा क्रन्दितमाकर्ण्य तस्याः स जगतीपतिः ।
हिमवत्सानुसंलग्नां निजदृष्टिं न्यवर्त्तयत् ॥१४॥
उपर्युपरि तां धेनुं स्रवदश्रुमुखीं नृपः ।
तीक्ष्णदंष्ट्रनखं सिंहं दृष्ट्वा स व्यथितोऽभवत् ॥१५॥
गृहान्तां तेन सिंहेन तामालक्ष्य धनुर्धरः ।
निषंगाद् बाणमुद्धर्तुं प्राहिणोद्दक्षिणं भुजम् ॥१६॥
बाणमुद्धृत्य तूणीरान्निहन्तुं तं मृगाधिपम् ।
गुणेनापूर्णमायोज्य चकर्ष वसुधाधिपः ॥१७॥
जडीभूतसमस्तागस्तत्सिंहालोकनेन सः ।

नाशकद् बाणमुत्स्रष्टुं राजाऽऽसीद्विस्मितस्ततः ॥१८॥
तादृशं नृपमास्थाय जगाद स मृगाधिपः ।
नरवाचाभृशं भूयो विस्मयं प्रापयन्निदम् ॥१९॥

वह धेनु अत्यन्त दु:खिता के समान उस धनुर्धारी राजा के चित्त में दया को उत्पन्न करती हुई दया के लिये उच्चध्वनि से खूब रोने लगी ।।13।। तब वह राजा नन्दिनी के क्रन्दन को सुनकर हिमवत् वनशिला से संलग्न अपनी दृष्टि को लौटायी ।।14।। वह राजा से आँसू गिराती हुई धेनु को तथा उसके ऊपर तीक्ष्ण दाढ़ एवं नख वाले सिंह को देखकर अत्यन्त व्यथित हुआ ।।15।। उस धनुर्धर ने गुफा के अन्दर सिंह के द्वारा पकड़ी हुई नन्दिनी को देखकर तरकस से बाण निकालने के लिये अपनी दक्षिण भुजा को उठायी ।।16।। तरकस से बाण निकालकर उस मृगराज को मारने के लिये राजा ने धनुष की प्रत्य×चा चढ़ायी ।।17।। तब सिंह के दृष्टिमात्र से ही उनके सभी अंग शिथिल हो गये और वह राजा बाण छोड़ने में सक्षम नहीं हो सका । इससे राजा बहुत विस्मित हुआ ।।18।। इस प्रकार से जडीभूत राजा को देखकर वह मृगराज सिंह जोर से मनुष्य की भाषा में बोला । जिसको सुनकर राजा बार-बार विस्मय को प्राप्त हुये ।।19।।

सिंह उवाच

दिलीपं त्वामहं राजन् जानामि रविवंशजम् ।
त्वं जानीहि मां शम्भोर्गणं कुम्भोदराभिधम् ॥२०॥
देवदारुरयं यस्ते वर्त्तते दृष्टिगोचरे ।
पार्वत्या पुत्रवद्वीर! पालितः स्निग्धचित्तया ॥२१॥
एकदाऽमुष्य वन्येन गजेनाघर्षता कटम् ।
उदपाटि महाराज! वल्कलं मृदुलं भृशम् ॥२२॥
एवं तादृशमालक्ष्य मृडानीकरुषाऽन्विता ।
मामत्र स्थापयामास सिंहं कृत्वाऽस्य रक्षणे ॥२३॥
मामाह चेति सा देवी कुम्भोदर निशाम्यताम् ।
योऽत्र जन्तुः समागच्छेत्तं खादेस्त्वं वसन्निह ॥२४॥
ततः प्रभृति राजेन्द्र! तदाज्ञां पालयन्नहम् ।
पालितां त्रिदशैः सर्वैः कन्दरेऽत्र वसाम्यहम् ॥२५॥
जडीभावे स्वदेहस्य त्वया कार्यो न विस्मयः ।
महती शाम्भवी माया वर्त्ततेऽत्र हिमाचले ॥२६॥
अन्यस्मिन्निव सिंहे त्वं प्रहर्तुं न मयि क्षमः ।
यतो मत्पृष्ठमारुह्य वृषमारोहति प्रभुः ॥२७॥
निवर्त्तस्व निजं देहं रक्ष सर्वार्थसाधनम् ।

दैवेनासादिता वीर! गौरियं भक्षणाय वै ॥२८॥

सिंह ने कहा – हे राजन् ! तुम सूर्यवंशी महाराज दिलीप को मैं जानता हूँ । तुम मुझे कुम्भोदर नाम वाला शिव का गण जानो । वरना यह जो देवदारु वृक्ष तुम देख रहे हो । हे वीर! यह पार्वती के द्वारा बड़े स्नेह से पुत्र के समान पाला गया है ।।21।। हे महाराज! एक बार किसी जंगली हाथी के द्वारा गण्डस्थल का घर्षण करते हुए इसको उखाड़ दिया गया; इसकी छाल वल्कलवस्त्र के लिये बहुत कोमल होती है ।।22।। इस प्रकार से ऐसा देखकर शिव की सेना अत्यन्त रुष्ट हो गयी और इसके संरक्षण में मुझे सिंह के रूप में यहाँ स्थापित कर दिया ।।23।। इसके बाद देवी पार्वती ने मुझसे कहा कि हे कुम्भोदर! सुनो, यहाँ जो भी जन्तु आये तुम यहीं पर निवास करते हुए उसका भक्षण कर लिया करो ।।24।।

हे राजेन्द्र! उसके बाद से उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सभी देवताओं से सुरक्षित इस गुफा में मैं निवास करता हूँ ।।25।। अपने देह के जडीभूत हो जाने पर तुम्हें विस्मय नहीं करना चाहिये । क्योंकि इस हिमालय में महती शाम्भवी माया विराजती है ।।26।। अन्य सिंह के समान तुम मुझ पर प्रहार करने में सक्षम नहीं हो सकते, क्योंकि मेरी पीठ पर चढ़कर ही भगवान् शिव– जो मेरे स्वामी हैं, वृष पर चढ़ते हैं ।।27।। इसलिये तुम सभी पुरुषार्थो का साधन अपने देह को पीछे कर लो और उसकी रक्षा करो । दैववश ही यह गौ भक्षण के लिये मुझे प्राप्त हुई है, यह निश्चित है ।।28।।

देवल उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य वीर सम्बोधनान्वितम् ।
प्रत्युवाच दिलीपस्तं स जडीभूतविग्रहः ॥२९॥

देवल ने कहा – जडीभूत अंग वाले महाराज दिलीप ने वीर सम्बोधन से युक्त उस (सिंह) के वचन को सुनकर पुनः कहा ।।29।।

राजोवाच

सर्गस्थितिविसर्गाणां कारणं जगतः शिवम् ।
अम्बिकां जगदम्बां च नमामि मृगराज तौ ॥३०॥
त्वं च तत्सेवकत्वेन मान्यो मम मृगाधिप! ।
ब्रवीमि यदहं वाक्यं श्रुत्वा शाधि करोमि किम् ॥३१॥
वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो गुरुर्नो विदितस्तव ।
तस्येयं नन्दिनी नाम धेनुः सर्वार्थसाधिका ॥३२॥

राजा ने कहा – हे मृगराज! संसार के सर्ग, स्थिति और विसर्ग के कारण शिव तथा जगज्जननी अम्बिका उन दोनों को मैं प्रणाम करता हूँ ।।30।। हे मृगाधिप! आप भी उनका सेवक होने से मेरे सम्मान के पात्र हैं । मैं जो कुछ भी कहता हूँ, आप उसे सुनो और मैं क्या करूँ इसका निर्देश करें ।।31।। ब्रह्मा के पुत्र महर्षि वसिष्ठ हमारे गुरु है; इसे आप जानते ही हैं। उन्हीं की नन्दिनी नाम की यह धेनु है जो सभी पुरुषार्थो की साधिका है।।32।।

सन्तानोत्पत्तये तेन दत्ताऽऽराधयितुं मम ।
येयमाराधिता सम्यग्दिनानि कतिचिन्मया ।।३३।।
लघुतर्णकमातेयं धृता ते गिरिकन्दरे ।
शम्भुभृत्याद् बलात्त्वत्तोऽशक्ता मोचयितुं मया ।।३४।।
अहं मस्य मुनेरग्रे गच्छाम्येनामृते कथम् ।
कामधेनोस्तु दौहित्री जगत्सेव्या यशस्विनी ।।३५।।
अनया सदृशी नाऽन्या गौर्यया तोषयामि तम् ।
तस्माद्विमुच्य गामेनां मया कुरु निजाशनम् ।।३६।।
ददामि देहमात्मीयमपकीर्तिमलीमसम् ।
एवं न धर्महानिः स्याद्दृषेस्तव तु भोजनम् ।।
गवार्थे त्यजतः प्राणान् ममाऽपि गतिरुत्तमा ।।३७।।

महर्षि के द्वारा मेरी सन्तान की उत्पत्ति के लिये आराधनार्थ यह गौ मुझे प्रदान की गई है । ये कुछ दिनों से मेरे द्वारा सम्यक् प्रकार से आराधित हो रही हैं ।।33।। छोटे बछड़े वाली यह गोमाता तुम्हारे द्वारा पर्वत की इस गुफा में पकड़ ली गयी है, तुम्हारे शिव का सेवक होने से बलपूर्वक मेरे द्वारा यह तुमसे मुक्त नहीं की जा सकती है ।।34।। मैं इसके बिना उस मुनि के सामने कैसे जाऊँगा ? यह नन्दिनी सम्पूर्ण संसार के द्वारा सेव्या और यशस्विनी कामधेनु की दौहित्री है ।।35।। इसके समान कोई दूसरी गौ नहीं है, जिससे मैं मुनि को प्रसन्न करूँ, इसलिये इस गाय को छोड़कर मुझसे ही अपनी क्षुधानिवृत्ति करें ।।36।। मैं अपकीर्ति से अपवित्र मलिन होनेवाले अपने देह को आपके लिये समर्पित करता हूँ । इससे ऋषि की धर्महानि भी नहीं होगी और आपका भोजन भी हो जायगा, पुनः गौ के लिये अपने प्राणों का त्याग करते हुए मुझे उत्तम गति की प्राप्ति भी हो जायगी ।।37।।

देवल उवाच

एवमाकर्ण्य सिंहेन कृते मौने विशाम्पते ।
तदग्रेऽवाङ्मुखो राजा न्यपतद् धर्मकोविदः ।।३८।।
तस्य प्रतीक्षमाणस्य सिंहपातं सुदुःसहम् ।

पपातोपरि पुष्पाणां वृष्टिर्मुक्ता सुरेश्वरैः ॥३९॥
पुत्रोतिष्ठेति वचनं श्रुत्वा राजा स उत्थितः ।
जननीमिव तां धेनुं ददर्श न मृगाधिपम् ॥
तं विस्मितमुवाचेदं नन्दिनी नृपसत्तमम् ॥४०॥

देवल ने कहा- हे वैश्याधिप! ऐसा सुनकर सिंह के द्वारा मौन धारण कर लेने पर वह धर्मज्ञ राजा सिंह के आगे मुख नीचे करके गिर पड़े ।।38।। सिंह के दु:सह प्रहार की प्रतीक्षा करते हुए उस राजा के ऊपर सुरश्रेष्ठों के द्वारा पुष्पों की मुक्त वृष्टि की गई ।।39।। हे पुत्र! उठो, ऐसा वचन सुनकर वह राजा उठा तो उन्होंने जननी के समान ही उस धेनु को देखा, मृगराज सिंह को नहीं । इस प्रकार से विस्मय को प्राप्त हुए उस नृपश्रेष्ठ को देखकर नन्दिनी ने यह वचन कहा ।।40।।

नन्दिन्युवाच

मायया सिंहरूपिण्या त्वं मयाऽसि परीक्षितः ।
मुनिप्रभावान्मां राजन्ग्रहीतुं न क्षमोऽन्तकः ॥४२॥
मनसाऽपि कुतोऽन्येषां मद्ग्रहे शक्तिरंगिनाम् ।
स्वशरीरस्य दानेन त्वं मां रक्षितुमुद्यतः ॥
अतस्तेऽहं प्रसन्नाऽस्मि बृणीष्व वरमीप्सितम् ॥४३॥

नन्दिनी ने कहा - हे राजन्! सिंह रूपी माया के द्वारा तुम मुझसे ही परीक्षित हुए हो । मुनि के प्रभाव से स्वयं यमराज भी मुझे ग्रहण करने में सक्षम नहीं हैं ।।42।। फिर किसी अन्य देहधारी की मन से भी भला मेरे पकड़ने में शक्ति कहाँ से हो सकती है ? अपने शरीर के दान से भी तुम मेरी रक्षा के लिये उद्यत हुए; इसलिये! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम अपने मनोऽभिलषित वर का वरण करो ।।43।।

राजोवाच

न गुप्तं देहिनामन्तर्वर्तिवृत्तं भवादृशाम् ।
अतो जननि जानासि वांछितं मम देहि तत् ॥४४॥
मगधेश सुतायां मे वंशकर्तारमात्मजम् ।
प्रयच्छ किंचित्स्वछानां नासाध्यं हि भवादृशाम् ॥४५॥
इत्युक्त्वाऽजलिमाधाय तत्पुरस्तस्थिवान् नृपः ।
तूष्णीं तदुत्तरापेक्षी तत्पुरो बद्धलोचनः ॥४६॥

राजा ने कहा - हे जननि! आप जैसों के द्वारा शरीरधारियों के अन्त:करण का वृत्त छिपा नहीं है, आप सब कुछ जानती हो । अत: जो मेरा वाञ्छित है, उसे आप प्रदान करें ।।44।। मगधराज की पुत्री सुदक्षिणा में मेरे वंश को चलानेवाले पुत्र प्रदान करिये, आप सदृश स्वच्छहृदय वालों के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है ।।45।। ऐसा

कहकर वह राजा अ×जलिबद्ध हो सिर झुकाकर नेत्र बन्द कर उत्तर की अपेक्षा में उस नन्दिनी के सामने स्थिर भाव से चुप होकर खड़े हो गये ।।46।।

देवल उवाच

निशम्येति वचस्तस्य भूपतेरिदमब्रवीत् ।
नन्दिनी पितृदेवर्षिनरभूतार्थसाधिका ।।४७।।

देवल ने कहा– उस राजा का ऐसा वचन सुनकर पितर, देवता, ऋषि, मनुष्य और प्राणिमात्र की सर्वार्थसाधिका नन्दिनी ने कहा ।।47।।

नन्दिन्युवाच

पुत्र! पत्रपुटे दुग्ध्वा पयो मम पिबेप्सितम् ।
आश्रमे गुरुणाऽऽज्ञप्तः पुनः पास्यसि शेषितम् ।।
भविता वंशकर्ता ते सुतः शस्त्रास्त्रतत्त्ववित् ।।४८।।

नन्दिनी ने कहा– हे पुत्र! पत्ते के दोने में इच्छा के अनुसार मेरा दूध दुहकर पी लो । पुनः आश्रम में गुरु से आज्ञा लेकर शेष दूध को पीना । ऐसा करने पर शस्त्र, अस्त्र और सम्पूर्ण तत्त्वों का ज्ञाता वंश को चलाने वाला पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा ।।48।।

देवल उवाच

इत्युक्तः सौरभेय्या तामुवाच विनयेन सः ।।४९।।

देवल ने कहा– सुरभि की पुत्री सौरभेयी के द्वारा ऐसा कहने पर राजा ने विनयपूर्वक उस नन्दिनी से कहा ।।49।।

दिलीप उवाच

मातस्तवैव पास्यामि शेषं सर्वक्रियाविधेः ।
तृप्तोऽहं मातरासाद्य मिष्टं ते वचनामृतम् ।।५०।।
नान्यदिच्छामि सारंगः कादम्बिन्या यथा जलम् ।
तव शुश्रूषणान्मातरभवं सकलोद्भवः ।।५१।।
समस्तजनपूज्याया विद्याया इव मूढधीः ।
तव मातामहीदत्तः शापोऽप्यासीद्वरो मम ।।५२।।
तमृते पुत्रलाभो मे कुतस्तव च दर्शनम् ।
वरायैव तथाऽप्यम्ब समाराध्या भवादृशः ।।
नहि कश्चिद्विषाकांक्षी महादेवात् त्रिवर्गदात् ।।५३।।

दिलीप ने कहा – हे मातः! सम्पूर्ण यागादि क्रिया की विधि से बचे हुए शेष तुम्हारे दुग्ध का पान करूँगा । हे जननि! तुम्हें प्राप्त कर तुम्हारे वचन रूपी अमृत से ही मैं तृप्त हो गया हूँ ।।50।। सारंग (हरिण) जैसे बादलों की पंक्ति से जल की अपेक्षा नहीं करता, वैसे ही अन्य कुछ भी मैं भी नहीं चाहता हूँ । हे मातः! तुम्हारी

सेवा से ही सकल पदार्थों की प्राप्ति हो गयी ।।51।। समस्तजनपूज्या विद्या से मूढधी के समान क्या माँगू । तुम्हारी मातामही कामधेनु के द्वारा दिया हुआ शाप भी मेरे लिये वरदान के ही समान था ।।52।। उस शाप के बिना मुझे कहाँ से पुत्र लाभ होता और कहाँ तुम्हारा दर्शन होता ? तथापि, हे अम्ब! वर के लिये ही आप जैसे समाराधनीय होते हैं । परन्तु, त्रिवर्ग प्रदान करनेवाले महादेव से कोई विष की आकांक्षा नहीं रखता है ।।53।।

देवल उवाच

श्रुत्वेति तद्वचः सा गौः प्रसन्ना साधु साध्विति ।
आभाष्य हिमवद्गर्भाद् ययौ तेन सहाश्रमम् ।।५४।।
पूर्वेद्युरिव तत्रापि पूजिता राजभार्यया ।
प्रसन्ना सा बभौ धेनुः कार्यसिद्धिरिवांगभाक् ।।५५।।
मुखं प्रसन्नमालक्ष्य मृगाक्षी सा क्षितीशितुः ।
अज्ञासीत्तं निजं कार्यं सिद्धं यत्नस्तु यत्कृते ।।५६।।
अथ तौ दम्पती धेन्वा विधिवद्विहितार्चया ।
तया सह गुरोरग्रे कृतकृत्यस्य जग्मतुः ।।५७।।
निरीक्ष्य तौ मुनिवरः प्रसन्नमुखपंकजौ ।
अतीन्द्रियज्ञाननिधिः प्रोवाचेदं प्रहर्षयन् ।।५८।।

देवल ने कहा- राजा का ऐसा वचन सुनकर अतिप्रसन्न गौ ने साधु साधु ऐसा कहा और हिमालय के गर्भ से उस राजा के साथ आश्रम में गयी ।।54।। वहाँ भी पूर्वदिन के समान ही राजपत्नी के द्वारा सुपूजित होकर वह धेनु अत्यन्त प्रसन्न हुई, जैसे उत्तराधिकारी पुत्रप्राप्ति रूप कार्यसिद्धि से राजा । मृगनयनी उस रानी ने राजा के मुख को प्रसन्न मुद्रा में देखकर अपने कार्य को सिद्ध होना जान लिया, जिसके लिये यत्न किया जा रहा था ।।56।। इसके बाद दोनों दम्पती ने धेनु की विधिवत् शास्त्रोक्त पूजा की और नन्दिनी के साथ नित्यकृत्य से निवृत्त गुरु के सामने गये ।।57।। अतीन्द्रियज्ञाननिधि मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने दोनों के मुखकमल को प्रसन्न देखकर प्रहर्षित होते हुए कहा ।।58।।

वसिष्ठ उवाच

राजन् जानामि गौरेषा प्रसन्ना वामभूत्किल ।
अपूर्वा युवयोरद्य मुखकान्तिर्हि लक्ष्यते ।।५९।।
सुरभिः सुरशाखी च विश्रुतौ कामपूरिणौ ।
तदपत्यं समाराध्य सिद्धोऽर्थः स्यात्किमद्भुतम् ।।६०।।
यो ददाति निखिलं मनोरथं कीर्तितेयमनघाऽपि दूरतः ।

श्रद्धया निकट एव सेविता किं पनुः सुरतरंगिणीव सा ॥६१॥
ज्ञानतो विदितमद्भुतं मया त्वत्कृतं यदनया परीक्षणम् ।
भूपते त्वमपि धर्ममात्मनो रक्षसिस्म च यथा तथा च तत् ॥६२॥
त्वय्यसौ मम मनोऽनुकूलता भावमात्मनि विबुध्यते तथा ।
तुष्यतिस्म कमला यथा हरेः पार्वतीव गिरिशस्य सज्जने ॥६३॥
रात्रिरत्र सह भार्ययाऽनया धेनुपूजनपरेण नीयताम् ।
भूप भव्यभवता गमिष्यते श्वः समाप्तविधिना निजां पुरीम् ॥६४॥

वसिष्ठ ने कहा- हे राजन्! मैं जानता हूँ कि यह गौ तुम दोनों पर प्रसन्न हो गई; क्योंकि तुम दोनों की मुखकान्ति अपूर्व दिख रही है ।।59।। सुरभि और कल्पवृक्ष ये दोनों कामना की पूर्ति करनेवालों में सुविख्यात हैं । उसी सुरभि की सन्तान के समाराधन में सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति हो, इसमें क्या आश्चर्य है? ।।60।। जो कल्पवृक्ष सेवन से निखिल मनोरथों को प्रदान करता है, वही दूर से भी स्मरण-कीर्तन करने पर अनघा गौ सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करती है । किं पुनः देवनदी गंगा के समान वह गौ श्रद्धापूर्वक निकट से सेवित हो तो क्या कहना ।।61।। हे भूपते! इस गौ के द्वारा तुम्हारा जो अद्भुत परीक्षण किया गया है उसे मैंने अपने ज्ञान से जान लिया है । तुमने भी जैसे अपने धर्म की रक्षा की है वैसे ही उसने भी ।।62।। तुझमें मेरी जो यह मनोऽनुकूलता है वह तुम्हारे अन्तःकरण के भाव को वैसे ही जानती है, जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णु को प्रसन्न करती हैं और पार्वती के समान शिव की वेश-भूषा सँवारने में प्रसन्न करती हैं ।।63।। हे भूप! धेनुपूजन के पश्चात् यहाँ अपनी भार्या के साथ रात्रि व्यतीत करो । हे भाग्यवान्! कल सम्पूर्ण गोपूजनविधि को सम्पन्न कर आप अपने नगर के लिये प्रस्थान कर लीजियेगा ।।64।।

देवल उवाच

वैश्येवं धेनुमाराध्य सभार्यः प्राप्तवांछितः ।
प्रातर्युक्तरथः प्राप्य गुरोराज्ञामगाद् गृहम् ॥६५॥
कतिचिद्वासरैस्तस्य दिलीपस्याभवद्रघुः ।
यस्य नाम्ना रवेर्वंशः पृथिव्या विश्रुतोऽभवत् ॥६६।
यः पठिष्यति भूपस्य दिलीपस्य कथामिमाम् ।
धनं धान्यं सुतं वैश्य लप्स्यते सपुमानिह ॥६७॥
शरभ वरसुताप्तये स्वबुद्ध्या सममनया परितोषयाशु गौरीम् ।
त्वमपि कुलधरं गुणान्वितं सा सुतमनघं खलु दास्यते च तुभ्यम् ॥६८॥

देवल ने कहा- हे वैश्य! इस प्रकार धेनु की आराधना से अपनी मनोवा×छा को प्राप्त करके पत्नीसहित वह राजा प्रातःकाल में उपर्युक्त रथ को प्राप्त कर गुरु की आज्ञा से अपने घर गया ।।65।। कुछ समय के बाद उस दिलीप के रघुनामक महाप्रतापी पुत्र हुए । जिसके नाम से (रघुवंश) सूर्य का वंश इस पृथ्वी पर विख्यात हुआ ।।66।। जो महाराज दिलीप की इस कथा को पढेगा; हे वैश्य! वह मनृष्य धन, धान्य, पुत्र और सम्पूर्ण पुरुषार्थो शीघ्र ही को प्राप्त करेगा ।।67।। हे शरभ! श्रेष्ठ सुत की प्राप्ति के लिये इसके साथ अपनी बुद्धि से शीघ्र ही गौरी को प्रसन्न करो । वह तुम को कुलधर, गुणों से परिपूर्ण और निष्पाप पुत्र प्रदान करेगी ।।68।।

शिवशर्मोवाच

मुनिरिति चरितं दिलीपराज्ञो ललिततरं शरभाय पुण्यमुक्त्वा ।
अभिमतगतिमात्मनः प्रपेदे विधिमुपदिश्य च पूजनेऽम्बिकायाः ॥६९॥

शिवशर्मा ने कहा- मुनि ने महाराज दिलीप के इस ललित एवं पुण्यप्रद चरित को शरभ वैश्य के लिये कहकर अम्बिका की पूजनविधि का उपदेश दिया और अपने अभीष्ट स्थान को प्रस्थान कर गये ।।69।। *// इति //*

गोतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

महादेव उवाच

तीर्थानां प्रवरं तीर्थं महापातकनाशनम् ।
गोतीर्थमिति विख्यातं काश्यपह्रदसमीपतः ॥१॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
गोतीर्थे तु ततः स्नात्वा भ्रश्यन्ते नात्र संशयः ॥२॥
गावः कृष्णां तनुं प्राप्य पूर्वपातकयोगतः ।
यत्र तीर्थे ततः स्नात्वा शुक्लत्वं पुनरागताः ॥३॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दत्वा गोभ्यो गवाह्निकम् ।
गोमातॄणां प्रसादेन मातॄणामनृणी भवेत् ॥४॥
गोतीर्थे तु नरो गत्वा स्नात्वा गां तु पयस्विनीम् ।
ददाति विप्रमुख्येभ्यः स याति ब्रह्मणः पदम् ॥५॥ प.पु.उ.ख.१६३

महादेव ने कहा- काश्यप सरोवर के समीप तीर्थो में श्रेष्ठ और महापातक का नाश करने वाला गोतीर्थ विख्यात है ।।1।। जिस गोतीर्थ में स्नान करने से ब्रह्महत्या के समान पाप भी नष्ट हो जाते हैं ।।2।। जिस तीर्थ में गौएँ पूर्वपातक के योग से कृष्ण शरीर को प्राप्त कर लेने पर स्नान मात्र से पुनः शुक्लता को प्राप्त कर गई थीं ।।3।। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके गायों के लिये गवाह्निक का दान करे तो

गोमाता के आशीर्वाद से वह मातृ ऋण से मुक्त हो जाता है ।।4।। मनुष्य गोतीर्थ में जाकर स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये पयस्विनी गौ का दान करे तो वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है ।।5।। **प.पु.उ.ख.१६३ अ.**

पुष्करे नन्दानामसरितीर्थमाहात्म्यम्
(नन्दाभिधानकरणे प्रभंजनराजकथानकम्)

पुलस्त्य उवाच

नन्दानाम सरिच्छ्रेष्ठा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
मीननक्रझषोपेता विमलोदकपूरिता ।।१८/२५३।।

पुलस्त्य ने कहा– तीनों लोकों में विश्रुत मीन, मगरमच्छ, और बड़ी मछलियों से युक्त निर्मल जल से परिपूरित सरोवरों में श्रेष्ठ नन्दानाम का सरोवर है ।।253।।

सूत उवाच

अथ देवव्रतः प्राह किमन्या सा सरिद्वरा ।
एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्नन्दाशब्दा सरस्वती ।।२५४।।
यथा भूता येन कृता कारणेन सरिद्वरा ।
एवमुक्ते पुलस्त्यः स भीष्मायैतत्पुरातनम् ।।२५५।।
आख्यातुमुपचक्राम नन्दानाम यतः स्मृता ।
क्षत्रव्रतधरो नित्यमासीद्राजा प्रभंजनः ।।२५६।।
प्रवृत्तोऽसौ मृगान्हन्तुं वने तस्मिन् महाबलः ।
स ददर्श ततस्तस्मिन्मृगीं गुल्मान्तरे स्थिताम् ।।२५७।।
मार्गणेन सुतीक्ष्णेन तां विव्याध पुरोगताम् ।
सा विलोक्य दिशः सर्वास्तं दृष्ट्वा शरपाणिनम् ।।२५८।।

सूतजी ने कहा– तब देवव्रत ने कहा कि हे ब्रह्मन् ! नन्दानाम वाली सरस्वती सरित् कौन है? इस विषय को बताइये ।।254।। जैसे और जिस कारण से वह सरोवरों में श्रेष्ठ नन्दा उत्पन्न हुई है? बताइये ।। ऐसा कहने पर पुलस्त्य ने भीष्म के लिये प्राचीन आख्यान को बताया, जिससे वह नन्दा नाम वाली हुई । सदैव क्षात्रव्रत को धारण करनेवाला प्रभ×जन नाम का राजा था ।।255–256।।। वह महाबली उस वन में मृगों के शिकार में प्रवृत्त था । तब उसने वहीं झाड़ी में स्थित एक मृगी को देखा ।।257।। अतिशय तीक्ष्ण बाण के द्वारा सामने में आयी हुई मृगी का उसने वेधन कर डाला । तब वह सभी को देखकर हाथ में धनुष–बाण धारण किये उस राजा को देखा ।।258।।

आह किं ते कृतं मूढ त्वयैतत्कर्म दुष्करम् ।

स्तनं तावत्प्रयच्छामि सुतस्याधोमुखी स्थिता ॥२५९॥
मांसलोभेन विद्धाऽहं तरसां ह्यकुतोभया ।
पिबन्तं गुप्तवत्सं च गूढ़मैथुनमागतम् ॥२६०॥
एवं विधं मृगं राजन्न हन्यात्प्राङ् मया श्रुतम् ।
स्तनं तु तनयस्यास्य प्रयच्छन्ती त्वया हता ॥२६१॥
बाणेनाशनिकल्पेन निर्दोषा वनमागता ।
तस्मात्त्वमपि दुर्बुद्धे क्रव्यादत्वमवाप्स्यसि ॥२६२॥
वनेऽस्मिन्कंटकाकीर्णे व्याघ्ररूपं त्वमाप्नुहि ।
शापप्रदानं श्रुत्वैवं स राजा पुरतः स्थितः ॥२६३॥
प्रोवाच प्रांजलिर्भूत्वा तां मृगीं व्यथितेन्द्रियः ।
स्तनं तु तनयस्येह प्रयच्छन्ती न मे मता ॥२६४॥
अज्ञानेन हता भद्रे प्रसीद सुसमाधिना ।
व्याघ्ररूपमहं त्यक्त्वा प्राप्स्यामि मानुषं कदा ॥२६५॥

और कहा कि आह, मूढ़! तुमने यह दुष्कर कर्म क्या किया है? अधोमुख हुई मैं तब तक अपने पुत्र को स्तन प्रदान करती हूँ ।।259।। मांसलोभ के कारण तुमने मुझ संरक्षित को बाण से विद्ध किया है । पीते हुए रक्षित मृगशावक को एवं आये हुए काक को (या गुप्त मैथुन की इच्छा से आये हुए) ।।260।। इस प्रकार के मृग को नहीं मारना चाहिये । हे राजन्! ऐसा मैंने पहले सुना है । इस शिशु को स्तन पिलाती हुई मृगी को तुमने मारा है ।।261।। वन में आयी हुई मुझ निर्दोष को वज्र के समान बाण से तुमने मारा है, इसलिये हे दुर्बुद्धे! तुम भी कच्चा मास खाने वाला हिंसक जीव हो जाओगे ।।262।। कण्टकाकीर्ण इस वन में तुम व्याघ्र रूप को प्राप्त कर जाओ । इस प्रकार का शाप सुनकर वह राजा मृगी के सम्मुख स्थित होकर ।।263।। अत्यन्त व्याकुलतावश अ×जलिबद्ध होकर उस मृगी से कहा कि इस समय अपने पुत्र को तुम स्तन पिला रही थी यह मैं समझ पाया ।।264।। हे भद्रे! अज्ञानता से तुम मुझसे मारी गयी । तुम प्रसन्न हो कृपा करो और बताओ कि कब सुन्दर समाधि के द्वारा मैं व्याघ्र रूप का त्याग कर मनुष्य शरीर धारण करूँगा ?।।265।।

एवं विधस्य शापस्य विमोक्षं शंस मे मृगि ।
एवमुक्ते मृगी तस्य प्रोवाच वचनं शुभम् ॥२६६॥
राजन्नब्दशतान्ते तु शापस्यागतया गवा ।
नन्दया सह संवादमासाद्यान्तो भविष्यति ॥२६७॥
मृग्योक्ते वचने राजा व्याघ्र एवाभवत्तदा ।
नखदंष्ट्रायुधोपेतो व्याघ्ररूपोऽतिभीषणः ॥२६८॥

तत्रासौ भक्षयन्नास्ते मृगान्हत्वा चतुष्पदः ।
द्विपदानपि तत्रस्थान्कालेन क्रमयोजितान् ॥२६९॥
एवं तत्र वने तस्य संवत्सरशतं गतम् ।
आत्मानं निन्दमानस्य मृगमांसानि खादतः ॥२७०॥
कदाऽहं मानुषं भावं गमिष्यामीदृशं पुनः ।
कुत्सितं न करिष्यामि वियोनिकरणं महत् ॥२७१॥
कुर्वता मांसलोभेन मृगयां परिधावता ।
आपदासहितं प्राप्तं मानुषाणां भयावहम् ॥२७२॥

हे मृगि! इस प्रकार के शाप की मुक्ति मुझे बताओ । ऐसा कहने पर मृगी ने राजा के लिये सुन्दर वचन कहा ।।266।। हे राजन्! सौ वर्षो के बाद अपने पास आयी हुई नन्दा गौ के साथ संवाद को प्राप्तकर तुम्हारे शाप का अन्त होगा ।।267।। मृगी के ऐसा वचन कहने पर राजा उसी समय व्याघ्र रूप को प्राप्त कर गया । नख और दाढ़ रूपी आयुध से युक्त वह व्याघ्र का रूप अत्यन्त भयानक था ।।268।। उस वन में वह मृगों, अन्य पशुओं और मनुष्यों को खाते हुए रहता था ।।269।। इस प्रकार से उस वन में मृगादि के मांसों को खाते हुए और अपने को धिक्कारते हुए उसके सौ वर्ष बीत गये ।।270।। कब मैं मनुष्य भाव को प्राप्त करूँगा । और पुनः इस प्रकार के हिंसक योनि को प्राप्त करानेवाले भयंकर कुत्सित कर्म को नहीं करूँगा ।।271।। मांसलोभ से शिकार के लिये दौड़ता हुआ मनुष्यों के लिये अत्यन्त भयावह आपत्ति को मैंने प्राप्त कर लिया ।।272।।

दर्शनं दुःखदं मह्यं मृगाणां मानुषैः सह ।
पापेन पापतां नीतो ह्यपापेऽपि सतां कुले ॥२७३॥
उत्पन्नो विकृतिं नीतः पश्य कालस्य पर्ययम् ।
तस्मान्मे सुकृतं नास्ति हिंसाऽप्येकं विग्रहिता ॥२७४॥
तया तु प्राप्यते दुःखं न च मोक्षो भविष्यति ।
कथं मे भविता मोक्षः कथं सत्या मृगी भवेत् ॥२७५॥
गते वर्षशते तस्य वसतस्तद्वने तदा ।
आयातं गोकुलं काले यवसोदककारणात् ॥२७६॥
गोवाटवाटीसंस्थानं तत्तत्र समवस्थितम् ।
वनोपकण्ठे मन्थानरवेणापूरितं च यत् ॥२७७॥
क्षीबैर्गोपैः समाकीर्णं पादपैरपि तद्वनम् ।
निशि वंशरवोपेतं गोपीनां च शुभप्रदम् ॥२७८॥
एवं तु वसतस्तस्य खर्जूरवनसंसदि ।
हृष्टा तुष्टा च पुष्टा च नन्दा वै नाम नामतः ॥२७९॥

अनेक मनुष्यों के साथ मृगों का दर्शन मेरे लिये दुःखदायी हुआ । निष्पाप सत्कुल में उत्पन्न होने पर भी अपने पाप से पापयोनि को प्राप्त कर गया ।।273।। सत्कुल में उत्पन्न होकर भी मैंने विकृति को प्राप्त किया । देखो; समय का यही खेल है । विगर्हित कर्म हिंसा के करने से मेरे एक भी सुकृत नहीं रहा ।।274।। उस हिंसा से मुझे दुःख प्राप्त होता है, उससे मोक्ष नहीं होगा क्या? कब मुझे इस शापयोनि से मुक्ति मिलेगी? कब मृगी की वाणी सत्य होगी? ।।275।। उस वन में बसते हुए उसके सौ वर्ष बीत जाने पर ताजे घास एवं जल के लिये गौओं का झुण्ड वहाँ आया ।।276।। गोशाला और चारे का स्थान यथास्थान व्यवस्थित था । वन के द्वार पर मथानी की ध्वनि से वह संस्थान पूरित था ।।277।। मतवाले गोपों और अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त वह वन था । रात्रि में गोपियों की बाँसुरी की शुभप्रद ध्वनि भी होती रहती थी ।।278।। इस प्रकार से उस खर्जूर वृक्ष से घिरे हुए उस वन में उस (व्याघ्र) के निवास करते हुए (जब शाप का समय पूरा हो गया तब) हृष्ट, पुष्ट एवं प्रसन्न नन्दानाम वाली ।।279।।

गोमण्डलस्य सा मुख्या हंसवर्णा घटस्रवा ।
दीर्घघोणा विभक्तांगी बन्धुरांगी तनुत्वचा ।।२८०।।
नीलकण्टा शुभग्रीवा घण्टाली मधुरस्वना ।
सा च यूथस्य सर्वस्य पुरश्चरति निर्भया ।।२८१।।
घासस्थानं चरेच्छन्नं गत्वैका च यथासुखम् ।
यथेष्टकामा सुरभिश्छन्नं चरति वै तृणम् ।।२८२।।
रोहितो नाम तत्रान्यः पर्वतः सरितस्तटे ।
अनेककन्दरदरीगुहासत्त्वनिषेवितः ।।२८३।।
तस्य पूर्वोत्तरे भागे घोरे तृणसमाकुले ।
संकटे विषमे दुर्गे भैरवे लोमहर्षणे ।।२८४।।
मृगसिंहसमाकीर्णे बहुश्वापदसेविते ।
वल्लीवृक्षादिगहने शिवाशतनिनादिते ।।२८५।।
दुर्गेऽस्मिन्वसते रौद्रः कामरूपी भयंकरः ।
द्वीपी शोणितदिग्धांसो घोरदंष्ट्रो नखायुधः ।।२८६।।

वह उस गोसमूह की मुख्य थी । वह हंसवर्णा, घटस्रवा, घटवत् स्तनवाली, लम्बी थूथन एवं विभक्त अंगवाली, मनोहर अंग और कोमल त्वचा वाली, नीले कण्ठवाली, शुभ ग्रीवा, घण्टी और मधुर स्वरवाली वह (नन्दा) सम्पूर्ण गोसमूह के आगे निर्भय होकर विचरण करती थी ।।281।। एक गौ स्वेच्छानुसार घास से आच्छादित स्थान में चुपचाप चरने चली गयी । वहाँ यथेच्छ रूप से सुरभि छिपे हुए

तृण को चरती थी ।।282।। वही सरोवर के तट पर रोहित नाम का एक पर्वत था जो अनेक घाटियों, झरनों एवं सुन्दर गुफाओं से युक्त था ।।283।। उसके ईशान भाग में तृण से समाकुल भयंकर संकटपूर्ण रोंगटे खड़े करनेवाले भीषण विषम दुर्ग में ।।284।। मृग, सिंह तथा हिंसक जानवरों से युक्त, लता एवं वृक्षों से समन्वित और सैकडों, श्रृंगालों के निनाद से युक्त ।।285।। उस भयानक वन में अत्यन्त प्रचण्ड कामरूपी भयंकर व्याघ्र निवास करता था, जो रक्त से सना हुआ कन्धावाला, भयानक दाढ़वाला एवं नखरूपी तीक्ष्ण आयुधवाला था ।।286।।

नन्दो नाम स धर्मात्मा स च गोपीहिते रतः ।
अच्छिन्नाग्रैस्तृणैर्दीर्घैर्गोधनं परिरक्षति ।।२८७।।
तस्य यूथपरिभ्रष्टा सा नन्दा तृणलिप्सया ।
चरन्ती व्याघ्रपुरतः सा धेनुः प्रत्युपस्थिता ।।२८८।।
अभ्युद्रवश्व तां द्वीपी तिष्ठ तिष्ठेति सोऽब्रवीत् ।
त्वमद्य विहितो भक्षः स्वयं प्राप्ताऽसि धेनुके ।।२८९।।
द्वीपिनश्च वचः श्रुत्वा निष्ठुरं रोमहर्षणम् ।
शुक्लरूपान्वितं बालं भद्रमिन्दुसमप्रभम् ।।२९०।।
वत्सं स्मरति सा धेनुः स्नेहाक्ता गद्गदाक्षरम् ।
दह्यन्ती पुत्रशोकेन नन्दा सा पुत्रवत्सला ।।२९१।।
रुदन्ती करुणं चैव निराशा पुत्रदर्शने ।
द्वीपी दृष्ट्वा तु तां धेनुं क्रन्दमानां सुदुःखिताम् ।।२९२।।
उवाच वचनं घोरं धेनुके किं प्ररुद्यते ।
दैवात्सुखोपपन्नासि भक्षस्त्वं मे यदृच्छया ।।२९३।।

गोपियों के हित में रत नन्द नामक धर्मात्मा गोप अच्छिन्नाग्र (जिसका अग्रभाग काटा नही गया है) घासों से सर्वतोभावेन गोधन की रक्षा करता था ।।287।। उसके समूह से निकलकर नन्दा गौ अन्न-तृण के लोभ से चरती हुई व्याघ्र के सामने चली गयी ।।288।। झपटकर उस व्याघ्र ने नन्दा को कहा कि ठहरो, ठहरो । हे धेनो! तुम आज मेरे योग्य भक्ष स्वयं ही प्राप्त हो गयी हो ।।289।। व्याघ्र के ऐसे निष्ठुर और रोमाञ्चित करनेवाले वचन सुनकर शुक्ल रूप वाले चन्द्रमा की आभा से युक्त अपने सुन्दर वत्सबालक का स्मरण कर वह नन्दा नामवाली धेनु स्नेहयुक्त विलाप करती और पुत्रशोक से दग्ध हुई वह पुत्रवत्सला ।।290-291।। करुण स्वर से रोती हुई पुत्रदर्शन के लिये निराश हो गयी । व्याघ्र ने उस अत्यन्त दुःखी रोती हुई उस धेनु को देखकर यह भयंकर वचन बोला- हे धेनुके! तुम क्यों रोती हो? दैववश अपने आप ही सुखपूर्वक मेरा भक्ष मुझे प्राप्त हो गयी हो ।।292-293।।

रुदन्त्या वा हसन्त्या वा तवात्तं जीवितं भवेत् ।
विहितं भुज्यते लोके स्वयं प्राप्ताऽसि धेनुके ।।२९४।।
मृत्युस्ते विहितोऽद्यैव वृथा किमनुशोचसि ।
पप्रच्छ तां पुनर्द्वीपी किमर्थं रुदितं त्वया ।।२९५।।

नन्दोवाच

कौतुकं चात्र मे जातं महन्मे कथयस्व वै ।
त्वां समासाद्य लोकस्य परित्राणं न विद्यते ।।२९६।।
जीवितार्थं न शोचामि प्राप्तव्यं मरणं मया ।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।।२९७।।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोचामि मृगाधिप ।
देवैरपि यथा सर्वैर्मर्तव्यमवशैर्ध्रुवम् ।।२९८।।
तस्मात्तु नाहमेवैका व्याघ्र शोचामि जीवितम् ।
किन्तु स्नेहेन वै साधो दुःखेन रुदितं मया ।।२९९।।
इष्टः प्रथमजातश्च सुतस्तु मम बालकः ।
क्षीरशायी च मे वत्सस्तृणं नाद्यापि जिघ्रति ।।३००।।

रोती हुई अथवा हँसती हुई जीवित अवस्था में तुम्हारी प्राप्ति हो, जो लोक में मेरा आहार विहित है । हे धेनुके! ऐसी तुम मुझे स्वयं ही प्राप्त हुई हो ।।294।। तुम्हारी मृत्यु आज ही निश्चित है, तुम वृथा ही बार-बार क्यों शोक करती हो? फिर व्याघ्र ने उससे रोने का कारण पूछा ।।295।। (नन्दा ने कहा कि) आज मुझे बहुत कौतुहल हो रहा है । बताइये कि तुम को प्राप्त कर लोक का परित्राण नहीं होता है ।।296।। मैं अपने जीवन के लिये नहीं शोक करती हूँ, मृत्यु तो यथाकाल प्राप्त होनेवाली ही है । क्योंकि उत्पन्न हुए की मृत्यु एवं मरे हुए का जन्म तो निश्चित ही है ।।298।। इसलिये हे व्याघ्र! अकेली मैं ही जीवित रहने के लिये नहीं सोचती हूँ, किन्तु हे साधो! अत्यन्त स्नेह के कारण दुःखी होकर मैं रो रही हूँ ।।299।। मेरा इत्सित प्रथम गर्भ से उत्पन्न पुत्र जो अभी छोटा बालक है और मेरा दूध ही पीकर वह जीवन धारण करता है, वह अभी तक घास को सूँघता भी नहीं है ।।300।।

स च गोपकुले बद्धः क्षुधार्तो मामवेक्षते ।
तमहं चानुशोचामि कथं जीविष्यते सुतः ।।३०१।।
तस्येच्छामि स्तनं दातुं पुत्रस्नेहवशं गता ।
पाययित्वा स्तनं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि ।।३०२।।
सखीनामर्पयित्वा तु सन्दिश्य च हिताहितम् ।
पुनः प्रत्यागमिष्यामि यथेष्टं भक्षयिष्यसि ।।३०३।।
स नन्दाया वचः श्रुत्वा मृगेन्द्रः पुनरब्रवीत् ।

किं ते पुत्रेण कर्त्तव्यं मरणं कि न बुध्यसे ।।३०४।।
त्रस्यन्ति सर्वभूतानि म्रियन्ते मां निरीक्ष्य च ।
त्वं पुनः कृपयाऽऽविष्टा पुत्र पुत्रेति भाषसे ।।३०५।।
न पुत्रा न तपो दानं न माता च पिता गुरुः ।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालप्रपीडितम् ।।३०६।।
कथं त्वं गोकुलं गत्वा गोपीजनसमाकुलम् ।
वृषभैर्नादितं दिव्यं बालवत्सविभूषितम् ।।३०७।।

वह गोप के घर में बँधा हुआ भूख से व्याकुल होकर मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा, मैं उसके लिये शोक करती हूँ कि वह मेरा पुत्र कैसे जीवित रहेगा ।।301।। उसी को मैं दूध पिलाना चाहती हूँ । पुत्रस्नेह के कारण अपने वत्स को स्तन पिलाकर और उसके सिर को चाटकर ।।302।। अपने सखियों को अर्पण कर तथा उसके हिताहित का निर्देश करके मैं पुनः आ जाऊँगी तब यथेष्ट मेरा भक्षण कर लेना ।।303।। नन्दा का वचन सुनकर वह मृगेन्द्र पुनः बोला- तुम्हारे पुत्र से मेरा क्या प्रयोजन, तुम अपनी मृत्यु को नहीं जान रही हो ? ।।304।। मुझे देखते ही सभी जीव भयभीत होते हैं और मर जाते हैं । पुनः तुम कृपा से युक्त होकर पुत्र-पुत्र कर रही हो ।।305।। काल से पीड़ित हुए की रक्षा करने में समर्थ उनके पुत्र, तप, दान, माता, पिता और गुरु भी नहीं हो सकते ।।306।। तुम गोकुल जाकर गोपीजन से युक्त, वृषभों के दिव्य नाद और बाल-बछड़ों से विभूषित होकर कैसे ।।307।।

29.01.12 तक

भूषणं देवलोकस्य स्वर्गतुल्यं न संशयः ।
नित्यं प्रमुदितं दिव्यं सर्वदेवप्रपूजितम् ।।३१०।।
यत्पवित्रं पवित्राणां मंगलानां च मंगलम् ।
यत्तीर्थं सर्वतीर्थानां धन्यानां धन्यमुत्तमम् ।।३११।।
समस्तगुणसम्पन्नमीश्वरायतनं महत् ।
यत्ख्यातं सर्वतीर्थानां भूमिस्वर्गमनुत्तमम् ।।३१२।।
गोपीमन्थनशब्देन बालवत्सरवेण च ।
गवां हुंकारशब्देन अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते ।।३१३।।
यत्र वत्साश्च हुंकारं करुणं मातृकांक्षया ।
यद्गोपैः पालितं शूरैर्बाहुयुद्धकृतश्रमैः ।।३१४।।
प्रगीतनृत्यसंलापं नन्दितास्फोटनादितम् ।
इतस्ततः स्थितैर्वत्सैर्नर्द्यमानं समन्ततः ।।३१५।।
सरोवद्राजते गोष्ठं चलद्भिरिव पंकजैः ।

तं श्रीनिकेतनं सौम्यं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ।।३१६।।
गोलोकप्रतिमं दृष्टवा कथं प्रत्यागमिष्यसि ।
पंचभूतानि मे भद्रे पिबन्तु रुधिरं तव ।।३१७।।
न निर्विण्णनि भूतानि वाङ्मात्रेण करोम्यहम् ।
नन्दोवाच
एवं प्रथमवत्साया मृगेन्द्र श्रृणु मे वचः ।।३१८।।
दृष्ट्वा सखीं सुतं बालं गोपांश्च प्रतिपालकान् ।
गोपीजनमुपामन्त्र्य जननीं च विशेषतः ।।३१९।।
शपथैरागमिष्यामि मन्यसे यदि मुंच माम् ।
यत्पापं ब्रह्मवध्यायां मातापितृवधेषु च ।।३२०।।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
यत्पापं लुब्धकानां तु म्लेच्छानां गरदायिनाम् ।।३२१।।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
गोषु विघ्नांश्च ये कुर्युः स्वपन्तीं ताडयन्ति च ।।३२२।।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
सकृद्दत्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति ।।३२३।।
तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
यस्त्वनर्हान्बलीवर्दान्विषमे वाहयेत्पुमान् ।।३२४।।
कथायां कथ्यमानायां विघ्नं कारयते तु यः ।
तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।।३२५।।
गृहे यस्यागतं मित्रं निराशं प्रतिगच्छति ।
तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।।३२६।।
इत्येतैः पातकैर्घोरैरागमिष्याम्यहं पुनः ।
बुद्ध्वा सप्रत्ययं द्वीपी पुनर्वचनमब्रवीत् ।।३२७।।
व्याघ्र उवाच
संजातः प्रत्ययोऽस्माकं शपथैर्धेनुके तव ।
कदाचिन्मन्यसे गत्वा मूर्खोऽयं वंचितो मया ।।३२८।।
अत्रापि केचिद् वक्ष्यन्ति शपथे नास्ति पातकम् ।
कामिनीषु विवाहेषु गवां मुक्तौ तथैव च ।।३२९।।
प्राणत्यागे समुत्पन्ने श्रद्धातव्यं न च त्वया ।
लोकेऽस्मिन् नास्तिकाः केचिन्मूर्खाः पण्डितमानिनः ।।३३०।।
भ्रामयिष्यन्ति ते चित्रं चक्रारूढमिव क्षणात् ।
कुतर्कहेतुवृत्तान्तैरज्ञानावृतचेतसः ।।३३१।।
मोहयन्ति नराः क्षुद्रा आगमार्थविशारदाः ।
अतथ्यानपि तथ्यानि दर्शयन्त्यतिपेशलाः ।।३३२।।

स मे निम्नोन्नतानीव चित्रकर्मविदो जनाः ।
प्रायः कृतार्थो लोकोऽयं मन्यते नोपकारिणम् ।।३३३।।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ।
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन्कृते प्रतिकरोति यः ।।३३४।।
सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते ।
ऋषिदेवासुरनरैः शपथाः कार्यसिद्धये ।।३३५।।
कृताः परस्परं पूर्वं तान्न मन्यामहे वयम् ।
सत्येनापि शपेद्यस्तु देवाग्निगुरुसन्निधौ ।।३३६।।
तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्द्धं निकृन्तति ।
मा ते बुद्धिर्भवेदेवं शपथैरेष वंचितः ।।३३७।।
त्वयैव दर्शितं सर्वं यथेष्टं कुरु साम्प्रतम् ।

नन्दोवाच

एवमेव महासाधो कस्त्वां वंचयितुं क्षमः ।।३३८।।
आत्मैव वंचितस्तेन यः परं वंचयिष्यति ।

द्वीप्युवाच

धेनुके पश्य गच्छ त्वं पुत्रकं पुत्रवत्सले ।।३३९।।
पाययित्वा स्तनं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि ।
मातरं भ्रातरं दृष्ट्वा सखीस्वजनबान्धवान् ।।३४०।।
सत्यमेवाग्रतः कृत्वा शीघ्रमागमनं कुरु ।
एवं सा शपथं कृत्वा धेनुर्वै सत्यवादिनी ।।३४१।।
अनुज्ञाता मृगेन्द्रेण प्रयाता पुत्रवत्सला ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना वेपमाना सुदुःखिता ।।३४२।।
हुम्भारवं प्रमुंचन्ती पतिता शोकसागरे ।
करीव चरणग्राहं गृहीतः सलिलाशये ।।३४३।।
अशक्ता स्वपरित्राणे विलपन्ती मुहुर्मुहुः ।
सा तत्र गोकुलं प्राप्ता हरिन्नद्यास्तटे स्थितम् ।।३४४।।
श्रुत्वा वत्सं तु क्रोशन्तं पर्यधावत सम्मुखी ।
उपसृत्य च तं बालं बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ।।३४५।।
सम्प्राप्य मातरं वत्सः शंकितः परिपृच्छति ।
न ते पश्याम्यहं स्वास्थ्यं धैर्यं नैवाद्य लक्षये ।।३४६।।
उद्विग्ना नापि ते दृष्टिर्भीता चातीव लक्ष्यसे ।

नन्दोवाच

पिब पुत्र स्तनं मेऽद्य कारणं यदि पृच्छसि ।।३४७।।
अशक्ताऽहं तवाख्यातुं कुरु तृप्तिं यथेप्सिताम् ।
अपश्चिमं तु ते पुत्र दुर्लभं मातृदर्शनम् ।।३४८।।

एकाहमद्य मे पीत्वा प्रभाते कस्य पास्यसि ।
त्वां त्यक्त्वा पुत्र गन्तव्यं शपथैरागता ह्यहम् ।।३४९।।
क्षुत्क्षामस्य च व्याघ्रस्य दातव्यमात्मजीवितम् ।
नन्दायाश्च वचः श्रुत्वा वत्सो वचनमब्रवीत् ।।३५०।।
वत्स उवाच
अहं तत्र गमिष्यामि यत्र त्वं गन्तुमिच्छसि ।
श्लाघ्यं ममापि मरणं त्वया सह न संशयः ।।३५१।।
एकाकिनाऽपि मर्तव्यं मयाऽऽर्तेन त्वया विना ।
यदि मांसं हितं मातर्वने व्याघ्रो हनिष्यति ।।३५२।।
या गतिर्मातृभक्तानां ध्रुवं सा मे भविष्यति ।
तस्मादवश्यं यास्यामि त्वया सह न संशयः ।।३५३।।
अथवा तिष्ठ मातस्त्वं शपथाः सन्तु ते मम ।
जनन्या च वियुक्तस्य जीविते किं प्रयोजनम् ।।३५४।।
अनाथस्य वने नित्यं को मे नाथो भविष्यति ।
नास्ति मातृसमो बन्धुर्बालानां क्षीरजीविनाम् ।।३५५।।
नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः ।
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं सुखम् ।।३५६।।
नास्ति मातृसमो देव इह लोके परत्र च ।
एवं वै परमो धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ।।३५७।।
ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमां गतिम् ।
नन्दोवाच
ममैव विहितो मृत्युर्न त्वं पुत्रागमिष्यसि ।।३५८।।
न चायमन्यजीवानां मृत्युः स्यादन्यमृत्युना ।
अपश्चिममिमं पुत्र मातृसन्देशमुत्तमम् ।।३५९।।
अत्रातिष्ठस्व मद्वाक्यात्ततः शुश्रूषणं पुनः ।
जले स्थले च विचरन्प्रमादं तात मा कुरु ।।३६०।।
प्रमादात्सर्वभूतानि विनश्यन्ति न संशयः ।
न च लोभेन वर्तव्यं विषमस्थं तृणं क्वचित् ।।३६१।।
लोभाद्विनाशः सर्वेषामिहलोके परत्र च ।
समुद्रमटवीं पुत्र विशन्ति लोभमोहिताः ।।३६२।।
लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत् ।
लोभात्प्रमादात् विस्रंभात् त्रिभिर्नाशो भवेद्ध्रुवम् ।।३६३।।
तस्माल्लोभं न कुर्वीत न प्रमादं न विश्वसेत् ।
आत्मा च सततं पुत्र रक्षितव्यः प्रयत्नतः ।।३६४।।
सर्पेभ्यः श्वापदेभ्यश्च म्लेच्छचोरादिसंकटे ।

तिरश्चां पापजातीनामेकत्र वसतामपि ॥३६५॥
विपरीतानि चित्तानि विज्ञायन्ते न पुत्रक ।
नखीनां च नदीनां च शृङ्गिणां शस्त्रधारिणाम् ॥३६६॥
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणां वेश्याजनस्य च ।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत् ॥३६७॥
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ।
न विश्वसेत् स्वदेहेऽपि बलिष्ठे भीतचेतसि ॥३६८॥
वक्ष्यन्ति गूढमत्यर्थं सुप्तं मत्तं प्रमादतः ।
गन्धः सर्वत्र सततमाघ्रातव्यः प्रयत्नतः ॥३६९॥
गावः पश्यन्ति गन्धेन राजानश्चारचक्षुषा ।
नैकस्तिष्ठेद्वने घोरे धर्ममेकं च चिन्तयेत् ॥३७०॥
न चोद्वेगस्त्वया कार्यः सर्वस्य मरणं ध्रुवम् ।
यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति ॥३७१॥
विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः ।
पुत्र नित्यं जगत्सर्वं तत्रैकः शोचसे कथम् ॥३७२॥
तावत्त्वं शोकमुत्सृज्य मद्वाक्यमनुपालय ।
शिरस्याघ्राय तं वत्समवलिह्य च मूर्धनि ॥३७३॥
शोकेन महताऽऽविष्टा बाष्पव्याकुललोचना ।
विनिःश्वसन्ती नागीव दीर्घमुष्णं मुहुर्मुहुः ॥३७४॥
पुत्रहीनं जगत्सर्वं पश्यन्त्यन्तीव साऽभवत् ।
महापङ्कविनिर्मग्ना तिष्ठन्त्येवात्र सीदति ॥ ३७५॥
विलप्य बहुला पुत्रमुवाचेदं पुनर्वचः ।
नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति पुत्रसमं सुखम ॥३७६॥
नास्ति पुत्रसमा प्रीतिर्नास्ति पुत्रसमा गतिः ।
अपुत्रस्य जगच्छून्यमपुत्रस्य गृहं कुतः ॥३७७॥
पुत्रेण जयते लोकान्पुत्रेण नरकं जयेत् ।
लोको वदति वाक्यानि चन्दनं किल शीतलम् ॥३७८॥
पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादपि शीतलः ।
इति पुत्रगुणानुक्त्वा निरीक्ष्य च पुनः पुनः ॥३७९॥
स्वमातरं सखीर्गोपीस्त्वरमाणा च पृच्छति ।
यूथस्याग्रे चरन्तीं मामाससाद मृगाधिपः ॥३८०॥
मुक्ताऽहं तेन शपथैः पुनर्यास्यामि तत्र वै ।
सुतं च मातरं चैव सखीर्द्रष्टुं च गोकुलम् ॥३८१॥
आगता सत्यवाक्येन पुनर्यास्यामि तत्र वै ।
मातः क्षमस्व तत्सर्वं दौःशील्यादि कृतं मम ॥३८२॥

बालस्तवायं दौहित्रः किमत्रान्यद् ब्रवीम्यहम् ।
विपुले चम्पके दामे भद्रे सुरभि मानिनि ॥३८३॥
वसुधारे प्रियानन्दे महानन्दे घटस्रवे ।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि यदुक्तं क्वचिदप्रियम् ॥३८४॥
तत्क्षमध्वं महाभागाः पश्चाद्यच्च कृतं मया ।
सर्वाः सर्वगुणोपेताः सर्वा लोकस्य मातरः ॥३८५॥
सर्वाः सर्वप्रदा नित्यं रक्षध्वं मम बालकम् ।
अनाथमबलं दीनं सीदन्तं मम पुत्रकम् ॥३८६॥
मातृशोकाभिसन्तप्तं भगिन्यः पालयिष्यथ ।
भगिनीनामयं पुत्रो ह्यर्पितस्स्वसुतो मया ॥३८७॥
पाल्यो बालश्च सर्वाभिः पोष्यः पाल्यश्च पुत्रवत् ।
तस्मादनाथमबलं पुत्रवत्पालयिष्यथ ॥३८८।
क्षमध्वं च महाभागा यास्येऽहं सत्यसंश्रया ।
न चिन्ता महती कार्या सखीभिश्च कथंचन ॥३८९॥
प्रथमस्यास्य जातस्य स्थितं मरणमग्रतः ।
श्रुत्वा तु नन्दावचनं माता सख्यश्च दुःखिताः ॥३९०॥
विषादं परमं जग्मुरिदमूचुः सुविस्मिताः ।
अहोऽत्र महदाश्चर्यं यद्व्याघ्रवचनं त्वया ॥३९१॥
प्रकर्तुमुद्यतं भीमं नन्दा त्वं सत्यवादिनी ।
शपथैः सत्यवाक्येन वंचयित्वा महाभयम् ॥३९२॥
नाशनीयं प्रयत्नेन न गन्तव्यं कथंचन ।
नन्दे न चैव गन्तव्यमधर्मं क्रियते त्वया ॥३९३॥
यद्बालं स्वसुतं त्यक्त्वा सत्यलोभेन गम्यते ।
अत्र गाथा पुरा प्रोक्ता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३९४॥
प्राणत्यागे समुत्पन्ने शपथैर्नास्ति पातकम् ।
उक्त्वाऽनृतं भवेद्यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥३९५॥
अनृतं तत्र वै सत्यं सत्यं चैवानृतं भवेत् ।
कामिनीषु विवाहेषु गवां कार्ये तथैव च ॥३९६॥
ब्राह्मणानां विपत्तौ च शपथैर्नास्ति पातकम् ।
नन्दोवाच
परेषां प्राणरक्षार्थं वदाम्येवानृतं वचः ॥३९७॥
नात्मार्थमुत्सहे वक्तुं जीवितार्थे कथंचन ।
एकः संश्लिष्यते गर्भे मरणे भरणे तथा ॥३९८॥
भुङ्क्ते चैकः सुखं दुःखं मातः सत्यं वदाम्यहम ।
सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥३९९॥

उदधिः सत्यवाक्येन मर्यादां न विलङ्घयति ।
विष्णवे पृथिवीं दत्वा बलिः पातालमाश्रितः ॥४००॥
छद्मनाऽपि बलिर्बद्धः सत्यवाक्यं न चात्यजत् ।
प्रवर्धमानः शैलेन्द्रः शतः श्रृंगः समुत्थितः ॥४०१॥
सत्येन संस्थितो विन्ध्यः प्रबन्धं नातिवर्तते ।
स्वर्गापवर्गनरकाः सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः ॥४०२॥
यस्तु लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम् ।
योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ॥४०३॥
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ।
यास्यामि नरकं घोरं विलोप्यात्मानमात्मना ॥४०४॥
तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्द्धं निकृन्तति ।
अगाधे सलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमा ह्रदे ॥४०५॥
स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ।
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ॥
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥४०६॥
सत्यं साधुफलं श्रुतं च परमं क्लेशादिभिर्वर्जितं
साधूनां निकटं सतां कुलधनं सर्वाश्रमाणां फलम् ।
स्वाधीनं च सुदुर्लभं च जगतः साधारणं भूषणं
यन्म्लेच्छोऽप्यभिधार्य गच्छति दिवं तत्त्यज्यते वा कथम् ॥४०७॥
सख्य ऊचुः
नन्दे सा त्वं नमस्कार्या सर्वैरपि सुरासुरैः ।
या त्वं परमसत्त्वेन प्राणांस्त्यजसि दुस्त्यजान् ॥४०८॥
ब्रूमः किं तत्र कल्याणि सा त्वं धर्मधुरन्धरा ।
त्यागेनानेन न प्राप्यं त्रैलोक्ये वस्तु किंचन ॥४०९॥
अवियोगं च पश्यामस्त्यागादस्मात्सुतेन हि ।
नार्याः कल्याणचित्तायानापदः सन्ति कुत्रचित् ॥४१०॥
दृष्ट्वा गोपीजनं सर्वं परिक्रम्य च गोकुलम् ।
नन्दा सम्प्रस्थिता देवान्वृक्षांश्चापृच्छ्य सा पुनः ॥४११॥
क्षितिं वरुणमग्निं च वायुं चापि निशाकरम् ।
दशदिग्देवता वृक्षान्नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥४१२॥
सर्वान्विज्ञापयामास प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
ये संश्रिता वने सिद्धाः सर्वाश्च वनदेवताः ॥४१३॥
वने चरन्तं मे बालं ते रक्षन्तु सुतं मम ।
चम्पकाशोकपुंनागसरलार्जुनकिंशुकाः ॥४१४॥
श्रृण्वन्तु पादपाः सर्वे सन्देशं मम विक्लवम् ।

वत्समेकाकिनं दीनं चरन्तं विषमे वने ।।।४१५।।
रक्षध्वं वत्सकं बालं स्नेहात्पुत्रमिवौरसम् ।
मात्रा पित्रा विहीनं च अनाथं दीनमानसम् ।।४१६।।
विचरन्तमिमां भूमिं क्रन्दमानं सुदुःखितम् ।
तस्येह क्रन्दमानस्य मत्पुत्रस्य महावने ।।४१७।।
महाशोकाभिभूतस्य क्षुत्पिपासातुरस्य च ।
शून्यस्यैकाकिनः सर्वं जगच्छून्यं प्रपश्यतः ।।४१८।।
चरमाणस्य कर्तव्यं सानुक्रोशैस्तु रक्षणम् ।
सन्दिश्य नन्दा प्रीत्यैवं पुत्रस्नेहवशं गता ।।४१९।।
शोकाग्निना च सन्दीप्ता विच्छिन्ना पुत्रदर्शने ।
वियुक्ता चक्रवाकीव लतेव पतिता तरोः ।।४२०।।
अन्धेव दृष्टिरहिता प्रस्खलन्ती पदे पदे ।
अगच्छत्सा पुनस्तत्र यत्रासौ पिशिताशनः ।।४२१।।
आस्ते विस्फूर्जितमुखस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ।
तावत्तस्याः सुतो वत्स ऊर्ध्वपुच्छोऽतिवेगवान् ।।।४२२।।
आगत्य मातुरग्रेऽसौ मृगेन्द्रस्याग्रतोऽभवत् ।
आगतं तु सुतं दृष्ट्वा मृत्युं तमग्रतः स्थितम् ।।४२३।।
व्याघ्रं दृष्ट्वा तु सा धेनुरिदं वचनमब्रवीत् ।
भो भो मृगेन्द्रागताऽहं सत्यधर्मव्रते स्थिता ।।४२४।।
कुरु तृप्तिं यथाकामं मम मांसेन साम्प्रतम् ।
सन्तर्पयस्व भूतानि पिब त्वं शोणितं मम ।।४२५।।
मृतायां तु मयि त्वं भो भक्षयेमं तु बालकम् ।

द्वीप्युवाच

स्वागतं तव कल्याणि धेनुके सत्यवादिनि ।।४२६।।
न हि सत्यवतां किंचिदशुभं विद्यते क्वचित् ।
त्वयोक्तं धेनुके पूर्वं सत्यं प्रत्यागमे पुनः ।।४२७।।
तेन मे कौतुकं प्राप्तं प्राप्तागच्छेत्कथं पुनः ।
तव सत्यपरीक्षार्थं प्रेषिताऽसि मया पुनः ।।४२८।।
अन्यथा मां समासाद्य जीवन्ती यास्यसे कथम् ।
यच्च नः कौतुकं जातं सत्यस्यान्वेषणं मम ।।४२९।।
तस्मादनेन सत्येन मुक्ताऽसि च मयाऽधुना ।
भगिनी भवती मह्यं भागिनेयः सुतस्तव ।।४३०।।
दत्तोपदेशस्य शुभे मम पापिष्ठकर्मणः ।
सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः ।।४३१।।
सत्येन गौः क्षीरधारां प्रमुंचन्ति हविः प्रियाम् ।

सर्वे धन्यतमो गोपो यस्त्वत्क्षीरेण जीवति ।।४३२।।
भूमिप्रदेशा धन्यास्ते सतृणावीरुधः शुभे ।
ते धन्याश्च कृतार्थश्च तैरेव सुकृतं कृतम् ।।४३३।।
तैराप्तं जन्मनः सारं ये पिबन्ति पयस्तव ।
मृगेन्द्रः प्रत्ययं गत्वा विस्मयं परमं गतः ।।४३४।।
प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सत्यं देवैः प्रदर्शितः ।
सत्यमिष्टं गवां दृष्ट्वा न मे वांछाऽस्ति जीवितम् ।।४३५।।
तत्करिष्याम्यहं कर्म येन मोक्ष्यामि किल्बिषात् ।
मया जीवसहस्राणि भक्षितानि हतानि च ।।४३६।।
गतिं कामिह गच्छामि दृष्ट्वा गोः सत्यमीदृशम् ।
अहं पापो दुराचारो नृशंसो जीवघातकः ।।४३७।।
कांस्तु लोकान्गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् ।
गमिष्ये पुण्यतीर्थानि करिष्ये पापशोधनम् ।।४३८।।
पतिष्ये गिरिमासाद्य प्रवेक्ष्ये वा हुताशनम् ।
धेनोऽद्य यन्मया कार्यं तपः पापाद्विशुद्धये ।।४३९।।
तदा दिशस्व संक्षेपान्न कालो विस्तरस्य तु ।

धेनुरुवाच

तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानमेव च ।।४४०।।
द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौ युगे ।
सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम् ।।४४१।।
अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम् ।
चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति ।।४४२।।
स सर्वभयनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ।
नास्त्यहिंसापरं दानं नास्त्यहिंसासमं तपः ।।४४३।।
यथा हस्तिपदे त्वन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते ।
सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्र विधीयन्ते ह्यहिंसया ।।४४४।।
योगवृक्षस्य या छाया तापत्रयविनाशिनी ।
धर्मज्ञाने च पुष्पाणि स्वर्गमोक्षौ फलानि च ।।४४५।।
दुःखत्रयाभितप्तस्य छाया योगतरोः स्मृता ।
न बाध्यते पुनर्दुःखैः प्राप्य निर्वाणमुत्तमम् ।।४४६।।
इत्येतत्परमं श्रेयः कीर्तितं ते समासतः ।
ज्ञातं चैव त्वया सर्वं केवलं मां हि पृच्छसि ।।४४७।।

द्वीप्युवाच

अहं मृग्या पुरो शप्तो व्याघ्ररूपेण संस्थितः ।
ततः प्राणिवधात्सर्वमक्षेषं मम विस्मृतम् ।।४४८।।

त्वत्सम्पर्कोपदेशाभ्यां संजातं स्मरणं मम ।
त्वं चाप्यनेन सत्येन गमिष्यसि परां गतिम् ।।४४९।
तदहं त्वां पुनः पृच्छे प्रश्नमेकं हृदि स्थितम् ।
साग्रं वर्षशतं जातं चिन्तयानस्य मे शुभे ।।४५०।।
भवत्या भाग्ययोगेन कदाचित्स्वर्गशोभने ।
कृतं धर्मस्य संस्थानं सतां मार्गे प्रतिष्ठितम् ।।४५१।
किन्तेऽभिधानं कल्याणि ब्रूहि मेऽज्ञस्य सुव्रते ।
नन्दोवाच
मम नन्देति संज्ञा तु कृता नन्देन स्वामिना ।।४५२।।
साम्प्रतं भक्षयामीति ह्यतिष्ठः केन हेतुना ।
नन्देति श्रुत्वा तन्नाम मुक्तशापप्रभंजनः ।।४५३।।
पुनर्नृपत्वमापन्नो बलरूपसमन्वितः ।
एतस्तिन्नन्तरे धर्मस्तां ज्ञात्वा सत्यवादिनीम् ।।४५४।।
द्रष्टुं समागतस्तत्र प्राब्रवीच्च पयस्विनीम् ।
तव सत्यव्रताद्धृष्टो धर्मोऽहमिह चागतः ।।४५५।।
नन्दे वृणीष्व भद्रं ते वरं वरतमं हि यत् ।
एवमुक्ता हि सा देवी नन्दा तं प्रार्थयद्वरम् ।।४५६।।
तवानुभावात्ससुता गच्छामि पदमुत्तमम् ।
भवेदिदं शुभं तीर्थं मुनीनां धर्मदायकम् ।।४५७।।
मन्नाम्ना च सरिदियं नन्दा नाम सरस्वती ।
वरप्रदानाद्देवेश तदेतत्प्रार्थितं मया ।।४५८।।
पुलस्त्य उवाच
सा तत्क्षणाद्गता देवी स्थानं सत्यवतां शुभम् ।
प्रभंजनोऽपि तद्राज्यं सम्प्राप्तः प्रागुपार्जितम् ।।४५९।।
नन्दा येन गता स्वर्गं नन्दां प्राप्य सरस्वतीम् ।
तेनाख्यया बुधैस्तस्याः प्रोक्ता नन्दा सरस्वती ।।४६०।।
सरस्वती पुनस्तस्माद्वनात्खर्जूरसंज्ञितात् ।
दक्षिणेन पुनर्याता प्लावयन्ती धरातलम् ।।४६१।।
आगच्छन्नपि यस्तस्या नाम गृह्णाति मानवः ।
जीवन्सुखं स आप्नोति मृतो भवति खेचरः ।।४६२।।
तत्र ये शुभकर्माणस्त्यजन्ति स्वां तनुं नराः ।
ते विद्याधरराजाणो भवन्ति सुखिनो जनाः ।।४६३।।
नराणां स्वर्गनिःश्रेणी स्नानात्पानात्सरस्वती ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वन्ती येऽष्टम्यां सुसमाहिताः ।।४६४।।
ते मृताः स्वर्गमासाद्य मोदन्ते सुमनोरमाः ।

सरस्वती सदा स्त्रीणां तत्र सौभाग्यदायिका ।।४६५।।
उपोषिता तृतीयायामपि सौभाग्यभाजना ।
तत्र तद्दर्शनेनापि मुच्यते पापसंचयात् ।।४६६।।
स्पृशन्ति ये नराः केचित्तेऽपि ज्ञेया मुनीश्वराः ।
रजतस्य प्रदानेन रूपवान् जायते नरः ।।४६७।।
पुण्या पुण्यजलोपेता नदीयं ब्रह्मणः सुता ।
नन्दानामेति विपुला प्रवृत्ता दक्षिणामुखी ।।४६८।।
गत्वा ततो नातिदूरं पुनर्याता पराङ्मुखी ।
ततः प्रभृति सा देवी प्रसभप्रकटा स्थिता ।।४६९।।
तस्यास्तटेषु पुण्येषु तीर्थान्यायतनानि च ।
संसेवितानि मुनिभिः सिद्धैश्चापि समन्ततः ।।४७०।।
तेषु सर्वेषु भवति धर्मे हेतुः सरस्वती ।
स्नानात्पानात्प्रदानाद्वा हिरण्यस्य महानदी ।।४७१।।
हाटकक्षितिगौरीणां नन्दातीर्थे महोदयम् ।
दानं दत्तं नरैः स्नातैर्जनयत्यक्षयं फलम् ।।४७२।।
धान्यप्रदानं प्रवदन्ति शस्तं वसुप्रदानं च तथा मुनीन्द्राः ।
यैस्तेषु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुः प्रवरं प्रदिष्टम् ।।४७३।।
प्रायोपवेशं प्रयतः प्रयत्नाद् यस्तत्र कुर्यात्प्रमदा पुमान्वा ।
तीर्थेषु सायुज्यमवाप्य सोऽयं भुंक्ते फलं ब्रह्मगृहे यथेष्टम् ।।४७४।।
तस्योपकण्ठे तु मृतास्तु ये वै कर्मक्षयात्स्थावरजंगमाश्च ।
तैश्चापि सर्वैः सहसा प्रसह्य लभ्येत यज्ञस्य फलं दुरापम् ।।४७५।।
ततस्तु सा धर्मफलप्रदा भवेज्जन्मादि दुःखार्दितचेतसां नृणाम् ।
सर्वात्मना पुण्यफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषैर्महानदी ।।४७६।।
।। इति नन्दाप्राचीमाहात्म्यम् ।।

गुडादिदशविधधेनुदानविधिवर्णनम्

भीष्म उवाच
गुडधेनुविधानं च समाचक्ष्व मुनीश्वर ।
किं रूपा केन मन्त्रेण दातव्या तदिहोच्यताम् ।।५०।।
पुलस्त्य उवाच
गुडधेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम् ।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् ।।५१।।
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद् भुवि ।
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ।।५२।।
लघ्वेणकाजिनं तद्वद्वत्सं च परिकल्पयेत् ।

प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुं मृदा वा गां सवत्सकाम् ॥५३॥
उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भारचतुष्टयम् ।
वत्सं भारेण कुर्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता ॥५४॥
अर्द्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु ।
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवित्तानुसारतः ॥५५॥
धेनुवत्सौ कृतौ चोभौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ ।
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥५६॥
सितसूत्रसिराजालौ सितकम्बलकम्बलौ ।
ताम्रगण्डकपृष्ठौ द्वौ क्षितचामरलोमकौ ॥५७॥
विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ।
कांचनाक्षियुगोपेताविन्द्रनीलकनीनिकौ ॥५८।
क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहौ शुभ्रातिकमनीयकौ ।
सुवर्णश्रृंगाभरणौ राजताख्यखुरौ च तौ ॥५८॥
नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ ।
इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैस्तथाऽर्चयेत् ॥५९॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥६१॥
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसौ ।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे ॥६२॥
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः ।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माद् भूतिं प्रयच्छ मे ॥६३॥
एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवदयेत् ।
विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामपि पठ्यते ॥६४॥
यास्तु पापविनाशिन्यः पठ्यन्ते दशधेनवः ।
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ॥६५॥
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुस्थापरा ।
तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलनामिका ॥६६॥
क्षीरधेनुः पंचमी च मधुधेनुस्तथा परा ।
सप्तमी शर्कराधेनुरष्टमी दधिकल्पिता ॥६७॥
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ।
कुम्भाः स्यू रसधेनूनामितरासां स्वराशयः ॥६८॥
सुवर्णधेनुं चाप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ।
नवनीतेन तैलैश्च तथाऽन्येपि महर्षयः ॥६९॥
एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः ।
मन्त्रवाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि ॥७०॥

यथाश्राद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।
गुडधेनुप्रसंगेन सर्वास्तत्र मयोदिताः ॥७१॥
अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः ॥७२॥

वृषोत्सर्गमाहात्म्यम्

वृषो हि भगवान् धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः ।
वृणोमि तमहं भक्त्या स मां रक्षतु सर्वतः ॥१॥
यस्मिंस्तडागे स जलं तृषार्तः पातुं समागच्छति तत्पितॄणाम् ।
दिव्यां तु पूर्णा सकलां महीपते! लोके परे तृप्तिमसौ विधत्ते ॥१॥
सरिद्वरां कांचिदथोपयाति तृष्णान्वितस्तस्य पितामहानाम् ।
तृप्तिं विधत्ते सरितां वरिष्ठा सुदीर्घकालं विविधाम्बुवाहा ॥२॥
दर्पेण पूर्णः स विषाणघातैर्धरां यदा दारयते नरेन्द्र! ।
पित्रादयस्तस्य तदत्र कूटां ध्रुवं लभन्तीति न संशयोऽत्र ॥३॥
रोम्नां च तुल्यानि शतानि राजन् मोक्ता तथा तस्य दिवं प्रयाति ।
संवत्सराणां परिपूर्णकामः स सेव्यमानस्त्रिदशांगनाभिः ॥४॥
॥ इति ॥

वसिष्ठधेनुकथानकम्

श्राद्धासमर्थे सति कर्तव्यनिर्णयः

श्रीभगवानुवाच
अकर्तव्यशतं कृत्वा श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।
तच्च कर्तव्यतामेति स्वयमुक्तं विरिंचिना ॥२८२॥
श्रृणु पुत्र पुरावृत्तं बहूनां च वदाम्यहम् ।
गुरोर्गोहननं कृत्वा ददुः श्राद्धं ययुर्दिवम् ॥२८३॥
तेषां च कीर्तनादेव श्राद्धं भवति चाक्षयम् ।
वसिष्ठस्य मुनेः शिष्या ब्राह्मणः सप्त सुव्रताः ॥२८४॥
पितृश्राद्धे समायाते होमधेनुं गुरोः प्रियाम् ।
प्रार्थयित्वा गृहं नीत्वा सप्तभिर्भ्रातृभिर्मुदा ॥२८५॥
गव्यार्थे पितृयज्ञे तां धेनुं हत्वा विमृश्य च ।
ददुर्मांसं च विप्रे च शेषं विप्रांस्त्वभोजयन् ॥२८६॥
समाप्य पितृकर्माणि वत्सं संगृह्य ते द्विजाः ।
गुरौ समर्पयामासुर्धेनुर्व्याघ्रेण भक्षिताः ॥२८७॥
ततस्तपोबलादेव ज्ञात्वा तेषां च कारणम् ।
स शशाप ततः शिष्यांश्चाण्डालाश्च भविष्यथ ॥२८८॥
वेपमानास्ततो विप्राः कृतांजलिपुटाः स्थिताः ॥२८९॥

शिष्या ऊचुः
धेनोर्मासप्रदातारः पितृकृत्ये सदाऽनघ ।
अकर्तव्यसहस्राणि महान्ति पातकानि च ॥
कुर्वन्तः पितृकार्येषु पापात्पूता दिवं गताः ॥२९०॥
श्रुतं बहुविधं नाथ मुखात्ते तु पुरातनम् ।
क्षन्तुमर्हसि धर्मज्ञ शापस्यान्तो विधीयताम् ॥२९१॥
वसिष्ठ उवाच
शापो वोऽथ यथा पात्मा न तु धर्मविचारणात् ।
चाण्डालादौ समुत्पन्नाः पुरावृत्तं स्मरिष्यथ ॥२९२॥
न च वो ज्ञानलोपश्च स्मृतिशास्त्रमनष्टकम् ।
पापयोनिं समुत्तीर्य पश्चान्मोक्षं गमिष्यथ ॥२९३॥
ततः प्राणान्परित्यज्य गुरुशापात्तु ते द्विजाः ।
जाताश्चाण्डालयोनौ तु सर्वे ज्ञानसमन्विताः ॥२९४॥
स्तन्यं तैस्तु न पीतं वै स्मरद्भिः पूर्वजन्म तत् ।
मृता जाता मृगाः सर्वे चक्रवाकाः पुनर्वने ॥२९५॥
हंसास्तु मानसे तीर्थे शुक्ला जाताः पुनर्द्विजाः ।
मुमूर्षवो महाभागा मृतास्ते खेदकारणात् ॥२९६॥
तस्मिन्काले महाराजो धर्मकेतुरिति स्मृतः ।
ययौ स्नातुं ततस्तीर्थं सदारः सपरिच्छदः ॥२९७॥
ततो हंसास्त्रयो मोहाद्राज्यं भोग्यं तु योषितः ।
भक्ष्याणि चिन्तयन्तश्च लोकान्तरमयुस्तदा ॥२९८॥
ज्ञात्वा वेदं च वेदांगं मोक्षं यास्यामहे वयम् ।
चिन्तयन्तो गता अन्ये ततो लोकान्तरं प्रति ॥२९९॥
अथ त्रयो नृपा जाताश्चत्वारो विप्रसत्तमाः ।
कुरुक्षेत्रे ततो वेदान् वेदांगानि समन्ततः ॥३००॥
तपोबलाद्विदन्तिस्म वार्ता चामुत्र चेह च ।
त्रयो राजकुले जाता राजानो मदमोहिताः ॥३०१॥
ज्ञानलोपात्परं लोकं न जानन्ति हिताहितम् ।
ते च विप्राश्च सन्देहादाहूय चेटकं स्वकम् ॥३०२॥
विप्रा ऊचुः
राज्ञो गच्छ स्वकार्पण्यात्पत्रं देहि च सम्भ्रमात् ॥३०३॥
सप्तव्याधादशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥३०४॥
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥३०५॥

श्रीभगवानुवाच

गृहीत्वा चेटको लेखं राज्ञस्तु समदर्शयत् ।
दृष्ट्वा लेखं तु राजानो राज्यं त्यक्त्वा ययुर्द्विजान् ।।३०६।।
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषां गतास्ते च तपोधनाः ।
अचिरेणैव कालेन मोक्षं याताश्च तैः सह ।।३०७।।
य इदं श्रृणुयाच्छ्राद्धे सप्तव्याधादिकं द्विज ।
अक्षयं चान्नपानं च पितृणामुपतिष्ठति ।।३०८।।

द्विज उवाच

वित्तहीनस्य विप्रस्य पितृकार्यं कथं भवेत् ।
तपस्विनां वनस्थस्य गृहस्थस्य च केशव ।।३०९।।

भगवानुवाच

तृणकाष्ठार्जनं कृत्वा प्रार्थयित्वा वराटकम् ।
करोति पितृकार्याणि ततो लक्षगुणं भवेत् ।।३१०।।
अकर्त्तव्यशतं कृत्वा पितृश्राद्धं करोति यः ।
सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गे याति च मानवः ।।३११।।
सर्वाभावे पितृतिथौ गोभ्यो घासं ददाति यः ।
फलं च पिण्डदानस्य सम्प्राप्नोत्यधिकं नरः ।।३१२।।
पुरा वैराटविषये रुरोदातीव दीनकः ।
पितृतिथौ स्वयं प्राप्ते सर्वाभावाच्च रोदिति ।।३१३।।
रुदित्वा सुचिरं सोऽपि पप्रच्छ कोविदं द्विजम् ।।३१४।।

दीन उवाच

ब्रह्मन् पितृतिथावद्य किंस्वित्कृत्वा हितं भवेत् ।।३१५।।
वराटकश्च मे नास्ति धनं ब्रह्मविदांवर ।
उपदेशं च मे देहि येन धर्मे स्थितो ह्यहम् ।।३१६।।

द्विज उवाच

गच्छ शीघ्रं वने तात मुहूर्ते कुतपेऽधुना ।
घासं पितरमुद्दिश्य गवे देहीति सत्वरम् ।।३१७।।

भगवानुवाच

ततस्तस्योपदेशेन गृहीत्वा घासपूलकम् ।
गवे दत्वा यथा हृष्टा पुष्टयर्थं पितुरेव च ।।३१८।।
एतत्पुण्यप्रसादेन गतोऽसौ सुरमन्दिरम् ।
स्वर्गं च सुचिरं भुक्त्वा उत्पन्नो धनिनां कुले ।।३१९।।
धनवान्स पुरा पुण्यात् पितृयज्ञस्य कारणात् ।
स ददाति पितुः पिण्डं सर्वस्वेन धनेन च ।।३२०।।
तत्रैकजन्मनोऽभ्यासाद् गतोऽसौ विष्णुमन्दिरम् ।

भुक्त्वाऽनन्तसुखं तत्र सार्वभौमोऽभवन्नृपः ।।३२१।।
पितृयज्ञात्परो यस्माद्धर्मोनास्ति कथंचन ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शक्त्या कुर्यादमत्सरः ।।३२२।।
यः पठेद्धर्मसन्तानं जनानामग्रतो नरः ।
विष्णुपद्या जले स्नानं प्रतिलोकं च लभ्यते ।।३२३।।
जन्म-जन्मकृतो येन महापातकसंचयः ।
तत्सर्वं प्रलयं याति सकदुच्चरिते श्रुते ।।३२४।।
।। इति पितृश्राद्धे गोधासप्रदानमाहात्म्यम् ।।

ब्राह्मणवृत्तिः, विपत्तौ विप्रवृत्तिकथनं गोमाहात्म्यवर्णनं च

ब्रह्मोवाच

लोके विप्रसमो नास्ति पूजनीयो जगद्गुरुः ।
हत्वा तं यद् भवेत्पापं तत्परं च न विद्यते ।।६१।।
देववत्पूजनीयोऽसौ देवासुरगणैर्नरैः ।
ब्राह्मणस्य समो नास्ति त्रिषु लोकेषु निश्चितम् ।।६२।।

नारद उवाच

कां वृत्तिं समुपाश्रित्य जीवितव्यं द्विजेन हि ।
अपानेन सुरश्रेष्ठ तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ।।६३।।

ब्रह्मोवाच

अयाचिता च या भिक्षा प्रशस्ता सा प्रकीर्तिता ।
उ×छवृत्तिस्ततो भद्रा सुभद्रा सर्ववृत्तिषु ।।
यामाश्रित्य मुनिश्रेष्ठा गच्छन्ति ब्रह्मणः पदम् ।।६४।।
दक्षिणा यज्ञशेषाणां ग्राह्या यज्ञगतेन हि ।
पाठनं याजनं कृत्वा ग्रहीतव्यं धनं द्विजैः ।।६५।।
पाठयित्वा पठित्वा च कृत्वा स्वस्त्ययनं शुभम् ।
ब्राह्मणानामिदं जीव्यं शिष्टा वृत्तिः प्रतिग्रहः ।।६९।।
अभावात्क्षत्रिया वृत्तिर्ब्राह्मणैरुपजीव्यते ।
न्याययुद्धेषु योद्धव्यं चरेद् वीरव्रतं शुभम् ।।७०।।
स तया च द्विजो वृत्त्या यद्धनं लभते नृपात् ।
पितृयज्ञादिदानेषु मेध्यं तद्धनमुच्यते ।।७१।।
समभ्यसेद्धनुर्विद्यां वेदयुक्तां सदाऽनघः ।
शक्तिकुन्तगदाखड्गपरिघाणां समन्ततः ।।७२।।
सम्मुखे न्याययुद्धेन पतन्ति ब्राह्मणा रणे ।
ते व्रजन्ति परं स्थानं न गम्यं ब्रह्मवादिनाम् ।।७७।।

ब्रह्मोवाच

विपत्तौ वैश्यवृत्तिं च कारयेद् द्विजसत्तमः ।
वैश्यवृत्तिं वणिग्भावं कृषिं चैव तथा परैः ॥५०/९२॥
कारयेत्कृषिवाणिज्यं विप्रकर्म न च त्यजेत् ।
वणिग्भावान्मृषाऽत्युक्तौ दुर्गतिं प्राप्नुयाद् द्विजः ॥९३॥
स निस्तरति दुर्गाणि स्वर्गमक्षय्यमश्नुते ।
वाणिज्यं कारयेद्विप्रो मिथ्याऽवश्यं परित्यजेत् ॥१००॥
वृद्धिं च निक्षिपेत्तीर्थे स्वयं शेषं तु भोजयेत् ।
देहे क्लेशात्तत्सहस्रगुणं भवति सर्वदा ॥१०१॥
पुण्यकर्मरतो विप्रः कृषिं हि परिकारयेत् ।
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं बलीवर्दचतुष्टयम् ॥१०९॥
अभावात्त्रितयं चैव अविश्रामं न कारयेत् ।
चारयेच्च तृणेऽच्छिन्ने चोरव्याघ्रविवर्जिते ॥११०॥
दद्याद् घासं यथेष्टं च नित्यमातर्पयेत्स्वयम् ।
गोष्ठं च कारयेत्तस्य किंचिद्विघ्नविवर्जितम् ॥१११॥
सदा गोमयमूत्राभ्यां विघसैश्च विवर्जितम् ।
न मलं निक्षिपेद् गोष्ठे सर्वदेवनिकेतने ॥११२॥
आत्मनः शयनीयस्य सदृशं कारयेद् बुधः ।
समं निर्वापयेद्यत्नाच्छीतवातरजस्तथा ॥११३॥
प्राणस्य सदृशं पश्येद् गां च सामान्यविग्रहम् ।
अस्य देहे सुखं दुःखं तथा तस्यैव कल्पते ॥११४॥
अनेन विधिना यस्तु कृषिकर्माणि कारयेत् ।
स च गोवाहनैर्दोषैर्न लिप्येत धनी भवेत् ॥११५॥
दुर्बलं पीडयेद्यस्तु तथैव गदसंयुतम् ।
अतिबालातिवृद्धं च स गोहत्यां समालभेत् ॥११६॥
विषमं वाहयेद्यस्तु दुर्बलं सबलं तथा ।
स गोहत्यासमं पापं प्राप्नोतीह न संशयः ॥११७॥
यो वाहयेद्विना सस्यं खादन्तं गां निवारयेत् ।
मोहात्तृणं जलं वापि स गोहत्यासमं लभेत् ॥११८॥
संक्रान्त्यां पौर्णमास्यां चामावास्यायां तथैव च ।
हलस्य वाहनात्पापं गवामयुतहत्यया ॥११९॥
अमूषु पूजयेद्यस्तु सितैश्चित्रादिभिर्नरः ।
कज्जलैः कुसुमैस्तैलैः सोऽक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥१२०॥
घासमुष्टिं परगवे यो ददाति सदाऽह्निकम् ।

सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्ग चाक्षय्यमश्नुते ।।१२१।।
यथा विप्रस्तथा गौश्च द्वयोः पूजाफलं समम् ।
विचारे ब्राह्मणो मुख्यो नृणां गावः पशौ तथा ।।१२२।।
नारद उवाच
विप्रो ब्रह्ममुखे जातः कथितो मे त्वयाऽनघ ।
कथं गोभिः समो नाथ विस्मयो मे विधे ध्रुवम् ।।१२३।।
ब्रह्मोवाच
श्रृणु चात्र यथातथ्यं ब्राह्मणानां गवां यथा ।
एकपिण्डक्रियैक्यं तु पुरुषैर्निर्मितं पुरा ।।१२४।।
पुरा ब्रह्ममुखोद्भूतं कूटं तेजोमयं महत् ।
चतुर्भागप्रजातं तद् वेदोऽग्निर्गौर्द्विजस्तथा ।।१२५।।
प्राक्तेजःसम्भवो वेदो वह्निरेव तथैव च ।
परतो गौस्तथा विप्रो जातश्चैवं पृथक्पृथक् ।।१२६।।
तत्र सृष्टा मया चादौ वेदाश्चत्वार एकशः ।
स्थित्यर्थं सर्वलोकानां भुवनानां समन्ततः ।।१२७।।
अग्निर्हव्यानि भुंजीत देवहेतोस्तथा द्विजः ।
आज्यं गोप्रभवं विद्धि तस्मादेते प्रसूतकाः ।।१२८।।
न सन्ति यदि लोकेषु चत्वारोऽमी महत्तराः ।
तदाऽखिलं च भुवनं नष्टं स्थावरजंगमम् ।।१२९।।
एभिर्धृताः सदा लोकाः प्रतिष्ठन्ति स्वभावतः ।
स्वभावो ब्रह्मरूपोऽसावेते ब्रह्ममयाः स्मृताः ।।१३०।।
तस्माद् गौः पूजनीयोऽसौ विप्रदेवासुरैरपि ।
उदारः सर्वकार्येषु जातस्तथ्यो गुणाकरः ।।१३१।।
सर्वदेवमयः साक्षात्सर्वसत्त्वानुकम्पकः ।
अस्य कार्यं मया सृष्टं पुरैव पोषणं प्रति ।।१३२।।
अत एव मया दत्तं वरं चातिसुशोभनम् ।
एकजन्मनि ते मोक्षस्तवास्त्विति विनिश्चितम् ।।१३३।।
अत्रैव ये मृता गावस्त्वागच्छन्ति ममालयम् ।
पापस्य कणमात्रं तु तेषां देहे न तिष्ठति ।।१३४।।
देवी गौर्धेनुका देवाश्चादिदेवी त्रिशक्तिका ।
प्रसादाद्यस्य यज्ञानां प्रभवो हि विनिश्चितः ।।१३५।।
गवां सर्वपवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत् ।
मूत्रं गोर्गोमयं क्षीरं दधिसर्पिस्तथैव च ।।१३६।।
अमीषां भक्षणे पापं न तिष्ठति कलेवरे ।
तस्माद् घृतं दधि क्षीरं नित्यं खादन्ति धार्मिकाः ।।१३७।।

विशिष्टं सर्वद्रव्येषु गव्यमिष्टं परं शुभम् ।
यस्यास्ये भोजनं नास्ति तस्य मूर्तिस्तु पूतिका ॥१३८॥
अन्नाद्यं पंचरात्रेण सप्तरात्रेण वै पयः ।
दधि विंशतिरात्रेण घृतं स्यान्मासमेककम् ॥१३९॥
अगव्यैर्यस्तु भुंक्ते वै मासमेकं निरन्तरम् ।
भोजने तस्य मर्तस्य प्रेताः खादन्ति चैव हि ॥१४०॥
परमान्नं परं शुद्धं स्विन्नं चातपतण्डुलैः ।
भुक्त्वा तु यत्कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥१४१॥
अन्यच्चापि च यद्द्रव्यं हविष्यं शास्त्रनिर्मितम् ।
तद्भुक्त्वा यत्कृतं कर्म सर्व लक्षगुणं भवेत् ॥१४२॥
निरामिषं च यत्किंचित्तस्माद्यद्यत्फलं लभेत् ।
तस्माद् गौः सर्वकार्येषु धर्मकामार्थमोक्षदा ॥१४३॥

नारद उवाच

केषु किं वा प्रयोगेन परं पुण्यं प्रकीर्तितम् ।
वद तत् सर्वलोकेश यथा जानामि तत्त्वतः ॥१४४॥

ब्रह्मोवाच

सकृत्प्रदक्षिणं कृत्वा गोधनं चाभिवन्दयेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गं चाक्षय्यमश्नुते ॥१४५॥
सुराचार्यो यथा वन्द्यः पूज्योऽसौ माधवो यथा ।
सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा चैश्वर्यात्पाकशासनः ॥१४६॥
कल्य उत्थाय गोमध्ये पात्रं गृह्य सहोदकम् ।
निषिंचेद्यो गवां श्रृंगमस्तके नैव तज्जलम् ॥१४७॥
प्रतीच्छेत निराहरस्तस्य पुण्यं निबोध मे ।
श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु नारद ॥१४८॥
सिद्धचारणयुक्तानि सेवितानि महर्षिभिः ।
अभिषेकः समस्तेषां गवां श्रृंगोदकस्य च ॥१४९॥
प्रातरुत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गां च घृतं मधु ।
सर्षपांश्च प्रियंगूंश्च कल्मषात्प्रतिमुच्यते ॥१५०॥
घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ।
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥१५१॥
घृतं मे सर्वगात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम् ॥१५१॥
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ।
गावश्च सर्वगात्रेषु गवां मध्ये वसात्यहम् ॥१५२॥
इत्याचम्य जपेन्मन्त्रं सायं प्रातरिदं शुचिः ।
सर्वपापक्षयस्तस्य स्वलोके पूजितो भवेत् ॥१५३॥

यथा गौश्च तथा विप्रो यथा विप्रस्तथा हरिः ।
हरिर्यथा तथा गंगा एते नह्यवृषाः स्मृताः ॥१५४॥
गावो बन्धुर्मनुष्याणां मनुष्या बान्धवा गवाम् ।
गौश्च यस्मिन्नगृहे नास्ति तद् बन्धुरहितं गृहम् ॥१५५॥
गोमुखे चाश्रिता वेदाः सषडंगपदक्रमाः ।
श्रृंगयोश्च स्थितौ नित्यं सदैव हरिकेशवौ ॥१५६॥
उदरेऽवस्थितः स्कन्दः शीर्षे ब्रह्मा स्थितः सदा ।
वृषध्वजी ललाटे च श्रृंगाग्र इन्द्र एव च ॥१५७॥
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोः शशिभास्करौ ।
दन्तेषु गरुडो देवो जिह्वायां च सरस्वती ॥१५८॥
अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्रावे चैव जाह्नवी ।
ऋषयो रोमकूपेषु मुख्यतः पृष्ठतो यमः ॥१५९॥
धनदो वरुणश्चैव दक्षिणं पाश्र्वमाश्रितौ ।
वामपाश्र्वे स्थिता यक्षास्तेजस्वन्तो महाबलाः ॥१६०॥
मुखमध्ये च गन्धर्वा नासाग्रे पन्नगास्तथा ।
खुराणां पश्चिमे पाश्र्वेऽप्सरश्च समाश्रिताः ॥१६१॥
गोमये वसते लक्ष्मीर्गोमूत्रे सर्वमंगला ।
पादाग्रे खेचरा वेद्या हम्भाशब्दे प्रजापतिः ॥१६२॥
चत्वारः सागराः पूर्णाः धेनूनां च स्तनेषु वै ॥१६३॥
गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः ।
अतो मर्त्यः प्रपुष्टैस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१६४॥
गवां रजः खुरोद्भूतं शिरसा यस्तु धारयेत् ।
स च तीर्थजले स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१६५॥

नारद उवाच

गवां च दशवर्णानां कस्य दाने च किं फलम् ।
ब्रूहि तत्त्वं गुरुश्रेष्ठ परमेष्ठिन् प्रियं यदि ॥१६६॥

ब्रह्मोवाच

श्वेता गां ब्राह्मणे दत्वा मानवश्चेश्वरो भवेत् ।
प्रासादे वसते नित्यं भोगी च सुखमेधते ॥१६७॥
धूम्रा तु स्वर्गकान्तारसंसारे पापमोक्षिणी ।
अक्षयं कपिलादानं कृष्णां दत्वा न सीदति ॥१६८॥
पाण्डुरा दुर्लभा लोके गौरी च कुलनन्दिनी ।
रक्ताक्षी रूपकामस्य धनकामस्य नीलिका ॥ ॥१६९॥
एकां च कपिलां दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यत्तु बाल्यकृतं पापं यौवने वार्द्धके कृतम् ॥१७०॥

वाचा कृतं कर्मकृतं मनसा यत् प्रचिन्तितम् ।
अगम्यागमनं चैव मित्रद्रोहे च पातकम् ।।१७१।।
मानकूटं तुलाकूटं कन्याऽनृतं गवानृतम् ।
सर्वं च नाशयेत् क्षिप्रं कपिलां यः प्रयच्छति ।।१७२।।
दशयोजनविस्तीर्णा महापारा महानदी ।
नारा च जलकान्तारे प्रसृते चोदकार्णवे ।।१७३।।
यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ मुखं यावन्न जायते ।
तावद् गौः पृथिवी ज्ञेया यावद् गर्भ न मुंचति ।।१७४।।
सुवर्णश्रृंगीं वस्त्राढ्यां सर्वालंकारभूषिताम् ।
ताम्रपृष्ठीं रौप्यखुरां तथा कांस्योपदोहिनाम् ।।१७५।।
शोभितां गन्धपुष्पैश्च सर्वालंकारभूषिताम् ।
ईदृशीं कपिलां दद्याद् द्विजातौ वेदपारगे ।।१७६।।
सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुलोकेऽच्युतो भवेत् ।।१७७।।
तस्यां तु दुह्यमानायां भूमौ पतन्ति बिन्दवः ।
आरामादि विजायन्ते बहुपुष्पफलोत्तमाः ।।१७८।।
यत्र कामफला वृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः ।
प्रासादाश्चापि सौवर्णास्तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः ।।१७९।।
दशधेनूश्च यो दद्यादेकं चैव धुरन्धरम् ।
समानं तु फलं प्रोक्तं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।।१८०।।
एकं च दशभिर्दद्यात् सहस्राणां शतं फलम् ।
तस्यानुसारतो वेद्यं फलं नारद यत्नतः ।।१८१।।
पितॄनुद्दिश्य यः पुत्रो वृषं च मोक्षयेद् भुवि ।
पितरो विष्णुलोकेषु महीयन्ते यथेप्सितम् ।।१८२।।
चसम्रो वत्सतर्यश्च एकस्यैव वृषस्य च ।
मोक्ष्यन्ते सर्वतः पुत्र विधिरेष सनातनः ।।१८३।।
यावन्ति चैव रोमाणि तस्य तासां च सर्वशः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गं भुंजन्ति मानवाः ।।१८४।।
लांगूलेन वृषो यच्च जलं चोत्क्षिपति ध्रुवम् ।
तत्तोयं तु सहस्राब्दं पितॄणाममृतं भवेत् ।।१८५।।
खुरेण कर्षयेद् भूमिं ततो लोष्टं च कर्दमः ।
पितृभ्यश्च स्वधा तत्र लक्षकोटिगुणं भवेत् ।।१८६।।
विद्यमाने च जनके यदि माता विनश्यति ।
चन्दनेनांकिता धेनुस्तस्याः स्वर्गाय दीयते ।।१८७।।
दाता चैव पितॄणां च ऋणं चैव प्रमुंचति ।
अक्षयं लभते स्वर्गं पूजितो मघवा यथा ।।१८८।।

सर्वलक्षणसंयुक्ता तरुणी गौः पयस्विनी ।
समा प्रसूतिका भद्रा सा च गौः पृथिवी स्मृता ।।१८९।।
तस्य दानेन मन्त्रस्य पृथ्वीदानसमं फलम् ।
शतक्रतुसमो मर्त्यः कुलमुद्धरते शतम् ।।१९०।।
गवां च हरणं कृत्वा मृते गोरथ वत्सके ।
कृमिपूर्णे स कूपे च तिष्ठेदाभूतसम्प्लवम् ।।१९१।।
गवां चैव वधं कृत्वा पितृभिः सह पच्यते ।
रौरवे नरके घोरे तावत्कालं प्रतिक्रिया ।।१९२।।
गोप्रचारप्रभग्नश्च षण्डवाहनबन्धनः ।
अक्षयं नरकं प्रायात् पुनर्जन्मनि जन्मनि ।।१९३।।
सकृच्च श्रावयेद्यस्तु कथां पुण्यतमामिमाम् ।
सर्वपापक्षयस्तस्य देवैश्च सह मोदते ।।१९४।।
य इदं श्रृणुयाद्वाऽपि परं पुण्यतमं महत् ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते तत्क्षणेन हि ।।१९५।।
।। इति गोमाहात्म्यम् ।।

इसे धेनु और व्याघ्र की कथा में संलग्न करें ।

धेनुरुवाच

महागण वरं ब्रूहि जगतां प्रीतिकारकम् ।
यदिच्छसि वरं काम्यं ददामि तव भक्तितः ।।७।।

गण उवाच

विश्वोपकारकरणे समर्थाः कामधेनवः ।
भवद्वर्गासु विश्वासात् सदाऽतु सुखितं जगत् ।।८।।
भवत्प्रजारता ये वा भवत्प्रजापरायणाः ।
तेषां च सर्वा सिद्धिः स्याद् भवदीयप्रसादतः ।।९।।

श्रीकृष्ण उवाच

एवमस्त्विति साऽप्युक्ता व्याघ्रः शिवपुरं ययौ ।
कामधेनुश्च सन्तुष्टा वसिष्ठाश्रममाययौ ।।१०।।
एवमुक्तं गोत्रिरात्रं कृत्वा नारी नरोऽपि वा ।
प्राप्नोति सकलान् कामान् सप्तजन्मनि सुव्रते ।।११।।

हेमाद्रिके २१२/२८८ पृ०से अतिबृहत् गोत्रिरात्रव्रत कथा के ये कुछ पद्य मात्र लिखे गये है, इच्छानुसार सम्पूर्ण लिखें ।

रामाश्वमेधे जनकेन नरकस्य प्राणिमोचनम्

धेनुव्रतवर्णनम्

सुमतिरुवाच

श्रृणुष्वावहितः स्वामिन् वैष्णवस्य कथाः शुभाः ।
याः श्रुत्वा मुच्यते पापाद् ब्रह्महत्या समादपि ॥३०/१०॥
जीवन्मुक्तो वरीवर्ति रामाङ्घ्र्यम्बुजषट्पदः ।
सत्यवान् यज्ञयज्ञांगज्ञाता कर्ताऽविता महान् ॥११॥
धेनुं प्रसाद्य बहुर्भिर्व्रतैर्य प्राप तत्पिता ।
ऋतम्भराख्यो जगति ख्यातः परमधार्मिकः ॥१२॥
गौः प्रसन्ना ददौ पुत्रमनेकगुणसंस्कृतम् ।
सत्यवन्तं सुशोभाढ्यं तं जानीहि नृपोत्तमम् ॥१३॥

शत्रुघ्न उवाच

को वा ऋतम्भरो राजा किमर्थं धेनुपूजनम् ।
कथं प्राप्तः सुतस्तस्य वैष्णवो विष्णुसेवकः९ ॥१४॥
सर्वमेतत्समाचक्ष्व वैष्णवस्य कथानकम् ।
श्रुतं हरति जन्तूनां महापातकपर्वतम् ॥१५॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य महार्थकम् ।
कथयामास विशदं तदुत्पत्तिकथानकम् ॥१६॥
ऋतम्भरो नरपतिरनपत्यः पुराऽभवत् ।
कलत्राणि बहून्यस्य न पुत्रं प्राप तेषु वै ॥१७॥
तदा जाबालिनामानं मुनिं दैवादुपागतम् ।
पप्रच्छ कुशलोद्युक्तः स पुत्रोत्पत्तिकारणम् ॥१८॥

ऋतम्भर उवाच

स्वामिन् वन्ध्यस्य मे ब्रूहि पुत्रोत्पत्तिकरं वचः ।
यत्कृत्वा जायतेऽपत्यं मम वंशधरं परम् ॥१९॥
तज्ज्ञात्वा भवतो भव्यं प्रकुर्यान्निश्चितं वचः ।
दानं व्रतं वा तीर्थं वा मखं वा मुनिसत्तम ॥२०॥
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा जगाद मुनिसत्तमः ।
सुतोत्पत्तिकरं वाक्यं प्रणताय सुतार्थिनः ॥२१॥
अपत्यप्राप्तिकामस्य सन्त्युपायास्त्रयः प्रभो ।
विष्णोः प्रसादो गोश्चापि शिवस्याप्यथवा पुनः ॥२२॥
तस्मात्त्वं कुरु वै पूजां धेनोर्देवतनोर्नृप ।
यस्याः पुच्छे मुखे श्रृंगे पृष्ठे देवाः प्रतिष्ठिताः ॥२३॥

सा तुष्टा दास्यति क्षिप्रं वांछितं धर्मसंयुतम् ।
एवं विदित्वा गोपूजां विधेहि त्वमृतम्भर ॥२४॥
यो वै नित्यं पूजयति गां गेहे यवसादिभिः ।
तस्य देवाश्च पितरो नित्यं तृप्ता भवन्ति हि ॥२५॥
यो वै गवाह्निकं दद्यान्नियमेन शुभव्रतः ।
तेन सत्येन तस्य स्युः सर्वे पूर्णा मनोरथाः ॥२६॥
तृषिता गौर्गृहे बद्धा गेहे कन्या रजस्वला ।
देवता च सनिर्माल्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥२७॥
यो वै गां प्रतिषिद्ध्येत चरन्तीं स्वं तृणं नरः ।
तस्य पूर्वे च पितरः कम्पन्ते पतनोन्मुखाः ॥२८॥
यो वै यष्ट्या ताडयति धेनुं मर्त्यो विमूढधीः ।
धर्मराजस्य नगरं स याति करवर्जितः ॥२९॥
यो वै दंशान्वारयति तस्य पूर्वे ह्यधोगताः ।
नृत्यन्ति मत्सुतो ह्यस्मांस्तारयिष्यति भाग्यवान् ॥३०॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
जनकस्य पुरावृत्तं धर्मराजपुरेऽद्भुतम् ॥३१॥
एकदा जनको राजा योगेनासून्समत्यजत् ।
तदा विमानं सम्प्राप्तं किंकिणीजालभूषितम् ॥३२॥
तदारुह्य गतो राजा सेवकैरूढदेहवान् ।
मार्गे जगाम धर्मस्य संयमिन्याः पुरोऽन्तिके ॥३३॥
तदा नरककोटीषु पीड्यन्ते पापकारिणः ।
जनकस्यांगपवनं प्राप्य सौख्यं प्रपेदिरे ॥३४॥
निरये दाहजा पीडा जातैषां सुखकारिणी ।
महादुःखं तदा नष्टं जनकस्यांगवायुना ॥३५॥
तदा तं निर्गतं दृष्ट्वा जन्तवः पापपीडिताः ।
अत्यन्तं चुक्रुशुर्भीतास्तद्वियोगमनिच्छवः ॥३६॥
ऊचुस्ते करुणां वाचं मां गच्छ सुकृतिन्नितः ।
त्वदंगवायुसंस्पर्शात्सुखिनः स्याम पीडिताः ॥३७॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य राजा परमधार्मिकः ।
मानसे चिन्तयामास करुणापूरपूरितः ॥३८॥
चेन्मत्तः प्राणिनां सौख्यं भवेदिह तदा पुनः ।
अत्रैव च पुरे स्थास्ये स्वर्ग एष मनोरमः ॥३९॥
एवं कृत्वा नृपस्तस्थौ तत्रैव निरयाग्रतः ।
विदधत्प्राणिनां सौख्यमनुकम्पितमानसः ॥४०॥
तत्र धर्मस्तु सम्प्राप्तो निरयद्वारिदुःखदे ।

कारयन्यातनास्तीव्रा नानापातककारिणाम् ।।४१।।
तदा ददर्श राजानं जनकं द्वारि संस्थितम् ।
विमानेन महापुण्यकारिणं दयया युतम् ।।४२।।
तमुवाच प्रेतपतिर्जनकं स हसन्गिरा ।
राजन्कुतस्त्वं सम्प्राप्तः सर्वधर्मशिरोमणिः ।।४३।।
एतत्स्थानं पातकिनां दुष्टानां प्राणघातिनाम् ।
नायान्ति पुरुषा भूप! त्वादृशाः पुण्यकारिणः ।।४४।।
अत्रायान्ति नरास्ते वै ये परद्रोहतत्पराः ।
परापवादनिरताः परद्रव्यपरायणाः ।।४५।।
यो वै कलत्रं धर्मिष्ठं निजसेवापरायणम् ।
अपराधादृते जह्यात्स नरोऽत्र समाव्रजेत् ।।४६।।
मित्रं व×चयते यस्तु धनलोभेन लोभितः ।
आगत्यात्र नरः पीडां मत्तः प्राप्नोति दारुणाम् ।।४७।।
यो रामं मनसा वाचा कर्मणा दम्भतोऽपि वा ।
द्वेषाद्वाचोपहासाद्वा न स्मरत्येव मूढधीः ।।४८।।
तं बध्नामि पुनस्त्वेषु निक्षिप्य श्रपयामि च ।
यैः स्मृतो न रमानाथो नरकक्लेशवारकः ।।४९।।
तावत्पापं मनुष्याणामंगेषु नृप! तिष्ठति ।
यावद्रामं न रसना गृणाति कलिदुर्मतेः ।।५०।।
महापापकरा राजन् ये भवन्ति महामते ।
तानानयन्ति मद्भृत्यास्त्वादृशान् द्रष्टुमक्षमाः ।।५१।।
तस्माद् गच्छ महाराज! भुंक्ष्व भोगाननेकशः ।
विमानवरमारुह्य भुंक्ष्व पुण्यमुपार्जितम् ।।५२।।
इति वाक्यं समाकर्ण्य धर्मराजस्य तत्पतेः ।
उवाच धर्मराजं स करुणापूरपूरितः ।।५३।।

जनक उवाच

अहं गच्छामि नो नाथ! जीवानामनुकम्पया ।
मदंगवायुना ह्येते सुखं प्राप्ताःस्म संस्थिताः ।।५४।।
एतान्मु×चसि चेद्राजन्सर्वान् वै निरयस्थितान् ।
ततो गच्छामि सुखितः स्वर्गपुण्यजनाश्रितम् ।।५५।।

जाबालिरुवाच

इति वाक्यमथाश्रुत्य जनकं प्रत्युवाच सः ।
प्रत्येकं निर्दिशन् जीवान्निरयस्थाननेकशः ।।५६।।

धर्म उवाच

अयं मित्रकलत्रं वै विश्वस्तमनुजग्मिवान् ।

तस्मादेनं लोहशंकौ वर्षायुतमपीपचम् ॥५७॥
पश्चादेनं सूकराणां योनौ निक्षिप्य दोषिणम् ।
मानुषेष्वतार्योऽयं षण्ढचिह्नेन चिह्नितः ॥५८॥
अनेन परदाराश्च बलादालिंगिता मुहुः ।
तस्मादयं पच्यतेऽत्र रौरवे शतहायनम् ॥५९॥
अयं तु परकीयं स्वं मुषित्वा बुभुजे कुधीः ।
तस्मादस्य करौ छित्वा पचेयं पूयशोणिते ॥६०॥
अयं सायन्तने प्राप्तमतिथिं क्षुधयाऽर्दितम् ।
वाण्यापिनो सच्चकार नाब्रवीत्स्वागतं वचः ॥६१॥
तस्मादयं पातनीयस्तामिस्रेऽन्धेन पूरिते ।
भ्रमरैः पीडितो यातु यातनां शतहायनम् ॥६२॥
अयं तावत्परस्योच्चैर्निन्दां कुर्वन्न लज्जितः ।
अयमप्यश्रृणोत्कर्णौ प्रेरयन्बहुशस्तु ताम् ॥६३॥
तस्मादिमावन्धकूपे पतितौ दुःखदुःखितौ ।
अयं मित्रध्रुगुद्विग्नः पच्यते रौरवे भृशम् ॥६४॥
तस्मादेतान्पापभोगान्कारयित्वा विमोचये ।
त्वं गच्छ नरशार्दूल पुण्यराशिविधायकः ॥६५॥

जबालिरुवाच

एवं स निर्दिश×जीवांस्तूष्णीमासाघकारिणः ।
प्रोवाच रामभक्तोऽसौ करुणापूरितेक्षणः ॥६६॥

जनक उवाच

कथं निरयनिर्मुक्तिर्जीवानां दुःखिनां भवेत् ।
तदाशु कथय त्वं वै यत्कृत्वा सुखमाप्नुयुः ॥६७॥

धर्म उवाच

नैभिराराधितो विष्णुर्नैभिस्तस्य कथाः श्रुताः ।
कथं निरयनिर्मुक्तिर्भवेद्वै पापकारिणाम् ॥६८॥
यदि त्वं मोचयस्येतान्महापापकरानपि ।
तर्ह्यर्पय महाराज! पुण्यं तत्कथयामि यत् ॥६९॥
एकदा प्रातरुत्थाय शुद्धभावेन चेतसा ।
ध्यातः श्रीरघुनाथोऽसौ महापापहराभिधः ॥७०॥
राम रामेति यच्चोक्तं त्वया शुद्धेन चेतसा ।
तत्पुण्यमर्पयैतेभ्यो येन स्यान्निरयाच्च्युतिः ॥७१॥

जाबालिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य धर्मराजस्य धीमतः ।
पुण्यं ददौ महाराज आजन्म समुपार्जितम् ॥७२॥

यदा जन्मकृतैः पुण्यै रघुनाथार्चनोद्भवैः ।
एतेषां निरयान्मुक्तिर्भवत्वत्र मनोरमा ।।७३।।
एवं कथयतस्तस्य जीवा निरयसंस्थिताः ।
तत्क्षणान्निरयान्मुक्ता जाता दिव्यवपुर्धराः ।।७४।।
ऊचुस्ते जनकं राजंस्त्वप्रसादाद्वयं क्षणात् ।
दुःखदान्निरयान्मुक्ता यास्यामः परमं पदम् ।।७५।।
तान् दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् नरान्निरयनिःसृतान् ।
तुतोष चित्ते सुभृशं सर्वभूतदयापरः ।।७६।।
ते सर्वे प्रययुर्लोकं दिवं देवैरलंकृतम् ।
जनकं तु प्रशंसन्तो महाराजं दयानिधिम् ।।७७।।
।। इति जनकेन रामनामद्वारा नरकस्थप्राणिमोचनम् ।।

जनकस्य नगरमार्गगमनकारणवर्णने
धेनुव्रतवर्णनम्

जबालिरुवाच
अथ तेषु प्रयातेषु नरकस्थेषु वै नृषु ।
राजा पप्रच्छ कीनाशं सर्वधर्मविदांवरम् ।।३१/१।।
राजोवाच
धर्मराज! त्वया प्रोक्तं यत्पातककरा नराः ।
आयान्ति तवसंस्थानं न च धर्मकथारताः ।।२।।
मदागमनमत्राभूत्केन पापेन धार्मिक ।
तद्वै कथय सर्वं मे पापकार्यं यथा तथा ।।३।।
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं धर्मराजः परन्तप ।
कथयामास तस्यैवं यमपुर्यागमं तदा ।।४।।
धर्मराज उवाच
राजंस्तव महत्पुण्यं नैतादृक्कस्य भूतले ।
रघुनाथ पदद्वन्द्वमकरन्दमधुव्रत ।।५।।
त्वत्कीर्तिस्स्वर्धुनी सर्वान्पापिनो मलसंयुतान् ।
पुनाति परमाह्लादकारिणी दुष्टतारिणी ।।६।।
तथापि पापलेशस्ते वर्तते नृपसत्तम ।
येन संयमिनीपार्श्वमागतः पुण्यपूरितः ।।७।।
एकदा तु चरन्तीं गां वारयामास वै भवान् ।
तेन पापविपाकेन निरयद्वारदर्शनम् ।।८।।
इदानीं पापनिर्मुक्तो बहुपुण्यसमन्वितः ।
भुंक्ष्व भोगान्सुविपुलान्निजपुण्यार्जितान् बहून् ।।९।।

एतेषां करुणावार्धी रघुनाथो सुखं हरन् ।
संयमिन्या महामार्गे प्रेरयामास वैष्णवम् ॥१०॥
नागमिष्यो यदि त्वं वै मार्गेणानेन सुव्रत ।
अभविष्यत्कथं तेषां निरयात्परिमोचनम् ॥११॥
त्वादृशाः परदुःखेन दुःखिताः करुणालयाः ।
प्राणिनां दुःखविच्छेदं कुर्वन्त्येव महामते! ॥१२॥
जाबालिरुवाच
एवं वदन्तं शमनं प्रणम्य स दिवं गतः ।
दिव्येन सुविमानेन अप्सरोगणशोभिना ॥१३॥
तस्माद्गावोऽनिशं पूज्या मनसाऽपि न गर्हयेत् ।
गर्हयन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१४॥
तस्मात्त्वं नृपतिश्रेष्ठ! गोपूजां वै समाचर ।
सा तुष्टा दास्यति क्षिप्रं पुत्रं धर्मपरायणम् ॥१५॥
सुमतिरुवाच
तच्छ्रुत्वा धेनूपूजां स पप्रच्छ कथमादरात् ।
पूजनीया प्रयत्नेन कीदृशं कुरुते नरम् ॥१६॥
जाबालि! कथयामास धेनुपूजां यथाविधि ।
प्रत्यहं विपिनं गच्छेच्चारणार्थं व्रती तु गोः ॥१७॥
गवे यवांस्तु सम्भोज्य गोमयस्थान्समाहरेत् ।
भक्षणीया यवास्ते तु पुत्रकामेन भूपते! ॥१८॥
सा यदा पिबते तोयं तदा पेयं जलं शुचि ।
सोच्चैः स्थाने यदा तिष्ठेत्तदानीं चासनस्थितः ॥१९॥
दंशान्निवारयेन्नित्यं यवसं स्वयमाहरेत् ।
एवं प्रकुर्वतः पुत्रं दास्यते धर्मतत्परम् ॥२०॥
सुमतिरुवाच
इति वाक्यं समाकर्ण्य पुत्रकाम ऋतम्भरः ।
व्रतं चकार धर्मात्मा धेनुपूजां समाचरन् ॥२१॥
प्रत्यहं कुरुते गां वै यवसाद्येन तोषिताम् ।
दंशान्न्यवारयद्धीमान् यवभक्षकृतादरः ॥२२॥
एवं धेनुं पूजयतो गतास्तु दिवसा घनाः ।
वनमध्ये तृणादींश्च चरन्तीमकुतोभयाम् ॥२३॥
एकदा नृपतिस्तस्य वनस्य श्रीनिरीक्षणे ।
न्यस्तदृष्टिः सपरितो बभ्राम सकुतूहली ॥२४॥
तदाऽऽगत्याहनद् गां वै प×चास्यः काननान्तरात् ।
क्रोशन्तीं बहुधा दीनां सिंहभारेण दुःखिताम् ॥२५॥

तदा नृपः समागत्य विलोक्य निजमातरम् ।
सिंहेन निहतां पश्यन् रुरोदातीवविह्वलः ॥२६॥
स दुःखितः समागत्य जाबालिं मुनिसत्तमम् ।
निष्कृतिं तस्य पप्रच्छ गोवधस्य प्रमादतः ॥२७॥

ऋतम्भर उवाच

स्वामिंस्त्वदाज्ञया धेनुं पालयन् वनमास्थितः ।
कुतोऽप्यागत्य तां सिंहो जघानादृष्टिगोचरः ॥२८॥
तस्य पापस्य निष्कृत्यै किं करोमि त्वदाज्ञया ।
कथं वा व्रतसम्पूर्तिर्मम पुत्रप्रदायिनी ॥२९॥
इत्युक्तवन्तं तं भूपं जगाद मुनिसत्तमः ।
सन्त्युपाया महीपाल! पापस्यास्यापनुत्तये ॥३०॥
ब्रह्मघ्नस्य कृतघ्नस्य सुरापस्य महामते ।
प्रायश्चित्तानि वर्तन्ते सर्वपापहराणि च ॥३१॥
कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैर्दानैर्व्रतैः सनियमैर्यमैः ।
पापानि प्रलयं यान्ति नियमादनुतिष्ठतः ॥३२॥
द्वयोश्च निष्कृतिर्नास्ति पापपु×जकृतोस्तयोः ।
मत्या गोवधकर्तुश्च नारायणविनिन्दितुः ॥३३॥
गवां यो मनसा दुःखं वा×छत्यधमसत्तमः ।
स याति निरयस्थानं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३४॥
योऽपि देवं हरिं निन्देत् सकृद् दुर्भाग्यवान्नरः ।
स चापि नरकं पश्येत् पुत्रपौत्रपरीवृतः ॥३५॥
तस्माज्ज्ञात्वा हरिं निन्दन्गोषु दुःखं समाचरन् ।
कदापि नरकान्मुक्तिं न प्राप्नोति नरेश्वर ॥३६॥
अज्ञानप्राप्तगोहत्याप्रायश्चित्तं तु विद्यते ।
रामभक्तं तु धीमन्तं याहि त्वमृतुपर्णकम् ॥३७॥
स वै समदृशा सर्वा×छत्रुमित्राणि पश्यति ।
कथयिष्यति ते क्षिप्रं गोवधस्यास्य निष्कृतिम् ॥३८॥
तस्य देशांस्त्वमाक्रामंस्तेन निर्वासितः पुरा ।
वैरिभावं परित्यज्य गच्छ त्वमृतुपर्णकम् ॥३९॥
स यद्वदिष्यति क्षिप्रं तत्कुरुष्व समाहितः ।
यथा त्वत्कृतपापस्य निष्कृतिर्हि भविष्यति ॥४०॥
स तु तद्वचनं श्रुत्वा जगाम ऋतुपर्णकम् ।
रामभक्तं रिपौ मित्रे समदृष्ट्या सम×जसम् ॥४१॥
स तस्मै कथयामास यज्जातं गोवधादिकम् ।

तस्य पापस्य निष्कृत्यै ह्युपायं सोऽप्यचिन्तयत् ॥४२॥
क्षणं ध्यात्वाऽथ तं राजा ऋतुपर्णं ऋतम्भरम् ।
उवाच प्रहसन् वाक्यं बुद्धिमान् धर्मकोविदः ॥४३॥
कोऽहं राजन्मुनीनां वै पुरतः शास्त्रवेदिनाम् ।
तान् हित्वा किन्तु मां प्राप्तो मूर्खं पण्डितमानिनम् ॥४४॥
तव मय्यस्ति चेच्छ्रद्धा तदा कि×चद् ब्रवीम्यहम् ।
श्रृणुष्व नरशार्दूल! गदितं मम सादरः ॥४५॥
भज श्रीरघुनाथं त्वं कर्मणा मनसा गिरा ।
नैष्कापट्येन लोकेशं तोषयस्व महामते! ॥४६॥
स तुष्टो दास्यते सर्वं त्वद्धृदिस्थं मनोरथम् ।
अज्ञानकृतगोहत्यापापनाशं करिष्यति ॥४७॥
रामं स्मरंस्त्वं धर्मात्मन् धेनुं पालय सत्तम ।
दत्वा द्विजाय कनकं पापनिष्कृतिमाप्स्यसि ॥४८॥
सुमतिरुवाच
एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्यमृतम्भरनृपस्तदा ।
विधाय रामस्मरणं पूतात्मा व्रतमाचरत् ॥४९॥
पूर्ववत्पालयन् धेनुं जगाम विपिनं महत् ।
रामनाम स्मरन्नित्यं सर्वभूतहिते रतः ॥५०॥
तस्मै तुष्टा तु सुरभिः प्रोवाच परितोषिता ।
राजन् वरय मत्तो वै वरं हृत्स्थं मनोरथम् ॥५१॥
तदा प्रोवाच वै राजा पुत्रं देहि मनोरमम् ।
रामभक्तं पितृरतं स्वधर्मप्रतिपालकम् ॥५२॥
तुष्टा दत्वा वरं साऽपि तस्मै राज्ञे सुतार्थिने ।
जगामादर्शनं देवी कामधेनुः कृपावती ॥५३॥
स काले प्राप्तवान् पुत्रं वैष्णवं रामसेवकम् ।
सत्यवत्संज्ञया युक्तमकरोत्तत्र तत्पिता ॥५४॥
सत्यवन्तं सुतं लब्ध्वा पितृभक्तिपरं महान् ।
परमं हर्षमापेदे शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥५५॥
स राजा धार्मिकं पुत्रं प्राप्य हर्षेण निर्भरः ।
राज्यं तस्मिन् महन्न्यस्य जगाम तपसे वनम् ॥५६॥
तत्राराध्य हृषीकेशं भक्तियुक्तेन चेतसा ।
निर्धूतपापः सतनुरगाद्धरिपदं नृपः ॥५७॥
॥ इति धेनुव्रतवर्णनम् ॥

गोत्रिरात्रव्रतविधिः (स्कान्दे)

स्कन्द उवाच

देव देव महादेव परब्रह्म महेश्वर ।
आयुर्यशोऽर्थपुत्रश्रीर्धर्म मत्कुलकारकम् ।।१।।
व्रतं ब्रूहि महेशाय सर्वशोकप्रणाशनम् ।
जाताः पुत्राश्च जायन्ते अरोगाः सुखिनस्तथा ।।२।।
तेषां पुत्राश्च वध्वश्च दृश्यन्ते च सुशोभनाः ।
सौभाग्यं चातुलं प्राप्यमपत्नी नैव जायते ।।३।।
येन सर्वं सुखं भुक्त्वा वैकुण्ठभवनं व्रजेत् ।।४।।

ईश्वर उवाच

व्रतानामुत्तमं स्कन्द तव वक्ष्ये सनातनम् ।
येनैव चीर्णमात्रेण सर्वयज्ञफलं लभेत् ।।५।।
यत्कृत्वा सर्वदानस्य फलमाप्नोति मानवः ।
गोत्रिरात्रमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।।६।।
नारी वाऽथ नरो वाऽथ त्रिरात्रव्रतमाचरेत् ।
कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मासि चाश्वयुजे तथा ।।७।।
दीपोत्सवसमीपे तु व्रतमेतत्समाचरेत् ।
प्रातः स्नात्वा त्रयोदश्यां कृत्वा वै दन्तधावनम् ।।८।।
त्रिरात्रं नियमं कुर्याद् गोविन्दभक्तिभावितः ।।९।।
नियममन्त्रः- गोविन्द जगतां नाथ गोवर्धनधरानघ ।
गोत्रिरात्रं करिष्यामि शरणं मे भवाच्युत ।।१०।।
गोष्ठे वा गोपथे वाऽथ कृत्वा भूमिगृहं शुभम् ।
अष्टहस्तं चतुर्हस्तं चतुरस्रं सुशोभनम् ।।११।।
वितानं पुष्पमालाभिः फलैर्नानाविधैरपि ।
मध्ये वेदिं ततः कृत्वा मण्डलं तत्र कारयेत् ।।१२।।
सर्वतोभद्रनामाऽथ नवनालमथापि वा ।
तन्मध्ये विन्यसेद्देवं गोवर्धनधरं हरिम् ।।१३।।
रुक्मिणी मित्रविन्दा च शैव्या जाम्बवती तथा ।
वामभागे तु देवस्य पूज्या वै भक्तिभावतः ।।
सत्यभामा च राधा च वासुदेवाग्निजित्तथा ।।१४।।
दक्षिणे चैव पूज्यास्तु नन्दं च पुरतो यजेत् ।
बलभद्रं यशोदां च पृष्ठतः पूजयेच्छुभम् ।।१५।।
सुरभी च सुनन्दा च सुभद्रा नाम धेनवः ।
एताश्चतस्रो देव्यश्च कृष्णस्य पुरतो न्यसेत् ।।१६।।
सुवर्णमाषकाः कार्याः षोडशप्रतिमाः शुभाः ।
गोवर्धनश्च कर्त्तव्यो राजतः पलसम्मितः ।।१७।।

छत्राकारैर्महावृक्षैः शोभितः पक्षिभिः शुभः ।
गोपीगोपसमाकीर्णो महावृक्षसमन्वितः ॥१८॥
एवं संस्थाप्य यत्नेन ततः पूजां समाचरेत् ।
आवाहनम् - ॐ आगच्छ भगवन् कृष्ण गोपगोपीसमन्वित ।
रुक्मिण्यादिभी राज्ञीभिर्मम पूजां गृहाण च ॥१९॥
नमः कृष्णाय पादौ च हरये जानुनी नमः ।
उदरं बलदेवाय मुकुन्दाय नमः कटिम् ॥२०॥
चक्रिणे च भुजौ पूज्यौ कण्ठं श्रीकण्ठधारिणे ।
मुखं पद्ममुखायेति गोविन्दाय नमः शिरः ॥
प्रणवादि नमोऽन्तैश्च अष्टांगं पूजयेद्धरेः ॥२१॥
गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक ।
विष्णुबाहुकृतोद्धार पूजयामि नगोत्तम ॥२२॥
एवं सम्पूज्य विधिवत् पश्चादर्घ्यं प्रदापयेत् ।
गवामाधार गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ।
गोपगोपीसमीपे तमर्घ्यं गृहण नमोऽस्तुते ॥२३॥
एवं पूजां समाप्यैव भक्तिभावपुरःसरम् ।
ग्वामर्घ्यं प्रदातव्यं सायाह्ने तु दिनत्रयम् ॥
मन्त्रेणानेन विधिवद्विशन्तीनां स्वशक्तितः ॥२४॥
अर्घ्यम् - रुद्राणां चैव या माता वसूनां दुहिता च या ।
आदित्यानां च भगिनी सा नः शान्तिं प्रयच्छतु ॥२५॥
पूजनम् - नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो धर्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥२६॥
ग्रासदानम् - सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।
प्रतिगृह्णातु मे ग्रासं सौरभी मे प्रसीदतु ॥२७॥
प्रार्थना - गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥२८॥
मा वियोगोऽस्तु मे पुत्रैर्भर्त्रा च सह बान्धवैः ।
त्वत्प्रसादेन मे भक्तिर्निश्चलाऽस्तु सदा त्वयि ॥२९॥
एवं सम्पूज्य गाश्चैव गोविन्दं च विशेषतः ।
पुष्पैर्गन्धैश्च दीपैश्च धूपैर्नानाविधैरपि ॥३०॥
नैवेद्यैर्घृतपक्वैश्च फलैर्नानाविधैरपि ।
सप्तधान्यैर्विरूढैश्च दशपात्रस्थितैः शुभैः ॥३१॥
सुवासिन्यस्तथा पूज्या नित्यं ताम्बूलकुंकुमैः ।
कण्ठसूत्रैस्तथा पुष्पैस्तथा च कनकादिभिः ॥३२॥
एवं सम्पूज्य विधिवद् गोविन्दं तु दिनत्रयम् ।

उपवासत्रयं कृत्वा चतुर्थे दिवसे पुनः ।।३३।।
ततः शुचिः समुत्थाय कृत्वा स्नानं प्रयत्नतः ।
प्रणम्याचार्यमुख्येन होमं तत्रैव कारयेत ।।३४।।
तिलैरष्टोत्तरशतं गायत्र्या होममाचरेत् ।
ततो विसृज्य देवेशं गुरवे प्रतिपाद्य च ।।३५।।
गावः पुच्छे समालम्ब्य पुरस्कृत्य द्विजर्षभान् ।
हृष्टेन मनसा स्कन्द गृहमागम्य यत्नतः ।।३६।।
मिथुनानि द्वादशाष्टौ भूषणाच्छादनादिभिः ।
सम्पूज्य भोजनं दत्वा गोदानानि च दापयेत् ।।३७।।
गुरोर्दम्पत्यमर्चित्वा वासोभूषणसंयुतम् ।
भक्त्या गोवर्धनं कृष्णं गोपीगोपसमन्वितम् ।।३८।।
गृहोपकरणैर्युक्तं यथाशक्त्या च भक्तितः ।
गुरोः सम्पादयेद्धीमान् दक्षिणासहितं हरिम् ।।३९।।
क्षमाप्य च गुरूं तत्र भुंजीत शुचि संस्कृतम् ।
इष्टैः शिष्टैः समासीनो वाग्यतो विष्णुतत्परः ।।४०।।
दीपोत्सवैर्व्रतमिदं शुचिमानसेन कृत्वा नरः सकलसन्ततिवृद्धिकारि ।
भुक्त्वोपयोगनिचयं सुखसम्प्रयुक्तो हयन्ते प्रयाति भवनं मनुजो मुरारेः ।।
।। इति ।।

क्षीरकुण्डमाहात्म्य

मुद्गल उवाच

माधवाहं प्रतिदिनं सायः प्रातरिहाग्नये ।
त्वद्रूपाय नवप्रीत्यं सुरभेः पयसा हरे ।। स्कन्द पु. ३ ब्रह्मखण्ड ३७/३६।।
होतुमिच्छामि वरद! तन्मे देहि वरान्तरम् ।
पयसा नित्यहोमो हि द्विकालं श्रुतिचोदितः ।।३७।।
न मे सुरभयः सन्ति तापसस्याधनस्य च ।

सूत उवाच

इत्युक्ते मुद्गलेनाथ देवो नारायणो हरिः ।।३८।।
आहूय विश्वकर्माणं त्वष्टारममृताशिनम् ।
एकं सरः कारयित्वा शिल्पिना तेन शोभनम् ।।३९।।
स्फटिकादिशिलाभेदैस्तेनासौ विश्वकर्मणा ।
समीचकार च पुनस्तत्प्राकाराद्यलंकृतम् ।।४०।।
तत आहूय भगवान् सुरभिं वाक्यमब्रवीत् ।

श्रीहरिरुवाच

मुद्गलो मम भक्तोऽयं सुरभे! प्रत्यहं मुदा ।।४१।।

मत्प्रीत्यर्थं पयोहोमं कर्तुमिच्छति साम्प्रतम् ।
मत्प्रीत्यर्थमितो देवि त्वमतो मत्प्रचोदिता ।।४२।।
सायं प्रातरिहागत्य प्रत्यहं सुरभे शुभे ।
पयसा त्वत्प्रसूतेन सर एतत्प्रपूरय ।।४३।।
तेनासौ पयसा नित्यं सायम्प्रातश्च होष्यति ।
सूत उवाच
ओमित्युक्त्वाऽथ सुरभिरेवं नारायणेरिता ।।४४।।
अथ नारायणो देवो मुद्गरं प्रत्यभाषत ।
श्रीहरिरुवाच
सुरभेः पयसा नित्यमस्मिन् सरसि तिष्ठता ।।४५।।
सायं प्रातः प्रतिदिनं मत्प्रीत्यर्थमिहाग्नये ।
जुहुधि त्वं महाभाग! तेन प्रीणाम्यहं तव ।।४६।।
मत्प्रीत्या तेऽखिला सिद्धिर्भविष्यति च मुद्गल ।
इदं क्षीरसरोनाम तीर्थं ख्यातं भविष्यति ।।४७।।
अस्मिन् क्षीरसरस्तीर्थे स्नातानां पंचपातकम् ।
अन्यान्यपि च पापानि नाशं यास्यन्ति तत्क्षणात् ।।४८।।
मुद्गल त्वं च मां याहि देहान्ते मुक्तबन्धनः ।
सूत उवाच
इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तं समालिंग्य मुद्गलम् ।।४९।।
नमस्कृतश्च तेनायं तत्रैवान्तरधीयत ।
मुद्गलोऽपि गते विष्णावनेकशतवत्सरम् ।।५०।।
सुरभेः पयसा जुह्वन्नग्नये हरितुष्टये ।
उवास प्रयतो नित्यं फुल्लग्रामे विमुक्तिदे ।।५१।।
देहान्ते मुक्तिमगमद् विष्णुसायुज्यरूपिणीम् ।
एवमेतद् द्विजवर युष्माकं कथितं मया ।।५२।।
।। इति ।।

स्कान्दे १ माहेश्वरे दधीचिसंवादे
इन्द्र उवाच
अथासने मुनिश्रेष्ठं ददृशुः परमास्थितम् ।
तेजसा परमेणैव भ्राजमानं यथा रविम् ।।१६/८१।।
तं प्रणम्य ततो देवा वचनं चेदमब्रुवन् ।
त्वं दाता त्रिषु लोकेषु त्वत्सकाशमिहागताः ।।८२।।
निशम्य वचनं तेषां देवानां मुनिरब्रवीत् ।

किमर्थमागताः सर्वे बदध्वं तत्सुरोत्तमाः ॥८४॥
प्रयच्छामि न सन्देहो नान्यथा मम भाषितम् ।
तदोचुः सहिताः सर्वे दधीचिं स्वार्थकामुकाः ॥८५॥
भयभीता वयं विप्र भवदर्शनकांक्षिणः ।
त्रातारं त्वां समाकर्ण्य ब्राह्मणानोदिता वयम् ॥८६॥
सम्प्राप्ता विद्धि तत्सर्वं दातुमर्होऽथ सुव्रत ।
निशम्य वचनं तेषां किं दातव्यं तदुच्यताम् ॥८७॥
देवास्ततोऽब्रुवन् विप्र दैत्यानां निधनाय नः ।
शस्त्रनिर्माणकार्यार्थे तवास्थीनि प्रयच्छ वै ॥८८॥
प्रहस्योवाच विप्रर्षिस्तिष्ठध्वं क्षणमेव हि ।
स्वयमेव त्वहं देवास्त्यक्ष्याम्यद्य कलेवरम् ॥८९॥
इत्युक्त्वा तानथो पत्नीं समाहूय सुवर्चसम् ।
प्रोवाच स महातेजाः श्रृणु देवि शुचिस्मिते ॥९०॥
अस्थ्यर्थं याचितो देवैस्त्यजाम्येतत्कलेवरम् ।
ब्रह्मलोकं व्रजाम्यद्य परमेण समाधिना ॥९१॥
मयि याते ब्रह्मलोकं त्वं स्वधर्मेण तत्र माम् ।
प्राप्स्यस्येव न सन्देहो वृथा चिन्तां च मा कृथाः ॥९२॥
इत्युक्त्वा तां स्वपत्नीं स प्रेषयामास चाश्रमम् ।
ततो देवाग्रतो विप्रः समाधिमगमत्तदा ॥९३॥
समाधिना परेणैव विसृज्य स्वं कलेवरम् ।
ब्रह्मलोकं गतः सद्यः पुनर्नावर्तते यतः ॥९४॥
दधीचिनामा मुनिवृन्दवर्यः शिवप्रियः शिवदीक्षाभियुक्तः ।
परोपकारार्थमिदं कलेवरं शीघ्रं स विप्रोऽत्यजदात्मना तदा ॥६२॥

अध्याय - १७

लोमश उवाच

तत इन्द्रादयो देवा दृष्ट्वा तं विलयं गतम् ।
चिन्तयन्तः सुरगणाः कथं च विदधामहे ॥१७/१॥
सुरभिं चाहवयित्वाऽथ तदोवाच शचीपतिः ।
कलेवरं दधीचस्य लिह्यास्त्वं वचनान्मम ॥२॥
तथेति च वचो मत्वा तत्क्षणादेव लिह्य तत् ।
निर्मांसं च कृतं सद्यस्तथा धेन्वा कलेवरम् ॥३॥
जगृहुस्तानि चास्थीनि चक्रुः शस्त्राणि वै पुरा ।
तस्य वंशोद्भवं वज्रं शिरो ब्रह्मशिरस्तथा ॥४॥
अन्यानि चास्थीनि बहूनि तस्य ऋषेस्तदानीं जगृहुः सुराश्च ।

तथा शिराजालमयांश्च पाशांश्चक्रुः सुरा वैरयुताश्च दैत्यान् ।।५।।
शस्त्राणि कृत्वा ते सर्वे महाबलपराक्रमाः ।
ययुर्देवास्त्वरा युक्ता वृत्रघातनतत्पराः ।।६।।

प्रदोषव्रतोद्यापनविधिः (स्क.१।१७)
इन्द्र उवाच
उद्यापनविधिं ब्रूहि प्रदोषस्य च मेऽधुना ।।१७/११२।।
बृहस्पतिरुवाच
कार्त्तिके मासि सम्प्राप्ते मन्दवारे त्रयोदशी ।
सम्पूर्तिस्तु भवेत्तत्र सम्पूर्णव्रतसिद्धये ।।११३।।
वृषभो राजतः कार्यः पृष्ठे तस्य सुपीठकम् ।
तस्योपरि न्यसेद्देवमुमाकान्तं त्रिलोचनम् ।।११४।।
पंचवक्त्रं दशभुजमर्धांगे गिरिजां सतीम् ।
एवं चोमां महेशं च सौवर्णं कारयेद् बुधः ।।११५।।
सवृषं ताम्रपत्रेण वस्त्रेण परिगुण्ठिते ।
स्थापयित्वोमया सार्द्धं नानाभोगसमन्वितम् ।।११६।।
विधिना जागरं कुर्याद्रात्रौ श्रद्धासमन्वितः ।
पंचामृतेन स्नपनं कार्यमादौ प्रयत्नतः ।।११७।।
पूजनीयो विधानज्ञैस्तस्यां रात्रौ प्रयत्नतः ।
पश्चाज्जागरणं कार्यं गृहे वा देवताऽलये ।।११८।।
वितानमण्डपं कृत्वा नानाऽऽश्चर्यसमन्वितम् ।
गीतवादित्रनृत्येन चार्चनीयः सदाशिवः ।।११९।।
अनेनैव विधानेन प्रदोषोद्यापने विधिः ।
कार्यो विधिमता शक्र सर्वकार्यार्थसिद्धये ।।१२०।।

<u>सत्पात्रे दानम्</u>

ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते ।। स्क.मा.के. ५/१०।।
दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते ।
तद्दत्तं गामतिक्रम्य गर्दभस्य गवाह्निकम् ।।११।।
ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभाण्डे च गोदुहम् ।
भस्मनीव हुतं हव्यं मूर्खे दानमशाश्वतम् ।।१२।।
विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
न केवलं हि तद्याति शेषं पुण्यं प्रणश्यति ।।१३।।

भूराप्ता गौस्तथा भोगाः सुवर्णं देहमेव च ।
अश्वश्चक्षुस्तथा वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥१४॥
घ्नन्ति तस्मादविद्वांस्तु विभियाच्च प्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तु पंके गौरिव सीदति ॥१५॥
तस्माद्ये गूढतपसो गूढस्वाध्यायसाधकाः ।
स्वदारनिरताः शान्तास्तेषु दत्तं सदाऽक्षयम् ॥१६॥

<u>कामधेनु को अर्घ्य देने का विधान</u>

कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च बीजपूरैश्च दाडिमैः ।
अर्घ्यं दत्वा च सम्पूज्य कामधेनुं प्रसादयेत् ॥२/२/२९८॥

<u>कामधेनुपूजा</u>

(करसम्पुटं कृत्वा कामधेनोरग्रे इति वाच्यम्)
रोगाणि हन्तु मम कामदुधा प्रसन्ना
पापानि हन्तु मम कामदुधा प्रसन्ना ।
सौख्यं ददातु मम कामदुधा प्रसन्ना ।
पुत्रान् ददातु मम कामदुधा प्रसन्ना ॥१॥

<u>हेमाद्रौ- ४।२२०</u>

<u>प्रायश्चित्तप्रकरणम्</u>

धेनुहरणप्रायश्चित्तम्

<u>अनडुहहरण</u>

कपिलां सूयमानां गां होमधेनुमथापि वा ।
विप्रो वा राजतनयो वणिग्वा पादभूर्यदा ॥
हत्वा नरकमाप्नोति रोगी स्यात् पूर्ववत्तदा ॥१॥
चान्द्रायणद्वयं प्रोक्तं कपिलाहरणे द्विज ।
चान्द्रं तु सूयमानायां होमधेनौ षडब्दकम् ॥२॥
(प्राजापत्यं कृच्छ्रं षडब्दमिति)
राज्ञस्तु द्विगुणं प्रोक्तमूरुजे तत् त्रयं स्मृतम् ।
पादजे हस्तविच्छेदो नारीणामर्द्धमुच्यते ॥३॥
(विप्रांगनाया विप्रस्यार्द्धं प्रायश्चित्तम् । इतरेषामंगनानां तदर्धं प्रायश्चित्तमिति ॥)
अनडुह्हरणप्रायश्चित्तम् (२३२) (मरीचिः)
विप्रो यः पारकं राजन् बलीवर्दं तृषातुरम् ।
युवानं वनमध्ये वा राज्यक्षोभे महापथे ॥१॥
हत्वा च नरकं भुक्त्वा भुवि भूयाज्जनंगमः ।

तस्य पापविशुद्ध्यर्थं तप्तकृच्छ्रद्वयं स्मृतम् ॥२॥
पौगण्डे कृच्छ्रमात्रं स्याद् बालेऽर्धं मुनिभिः स्मृतम् ।
तन्नारीणां तदर्धं स्याद् बाहुजोऽसौ द्विजातिवत् ॥३॥

<u>वत्सहरणप्रायश्चित्तम्</u>

ताम्रपात्रस्थितगव्यभक्षणे प्रायश्चित्तम् ।।

मरीचिः

पारक्यं धेनुजं विप्रः पौगण्डकमथापि वा ।
महान्तं नरकं गत्वा जायते स जनंगमः ॥१॥
तद्दोषपरिहारार्थं प्राजापत्यं विशोधनम् ।
पौगण्डे सूतिपर्यन्तं कुर्यात्तच्चान्द्रभक्षणम् ॥
कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति नान्यथा वत्सहारिणि ॥२॥ इति

पराशरः

नालिकेरोदकं कांस्यपात्रस्थं गव्यमेव च ।
लवणाक्तं पयश्चैव पीत्वाऽऽघ्राय सुरां तथा ॥१॥
द्विजो ज्ञानाच्चरेच्चान्द्रं पीत्वाऽज्ञानात्प्रजापतिम् ।
अन्यथा दोषमाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥२॥

देवलः

हिन्ताल-तालखर्जूर-नारिकेलवने चरन् ।
दैवाद्वायुवशात्प्राप्तं घ्रात्वा विप्रस्य दक्षिणम् ॥१॥
हस्तमाघ्राय सहसा शुद्धिमाप्नोति तत्क्षणात् ।
अभावे भास्करं पश्येत् स्पृष्ट्वा कर्णं जपेद्धरिम् ॥२॥
(पुनः नाक ढँककर आगे जाय, विप्रादि के लिये यही विधान है ।)

देवलः

ताम्रपात्रस्थितं दुग्धं गोमूत्रं तक्रमेव वा ।
दधि वा ताम्रपात्रस्थं नारिकेलोदकं तथा ॥१॥
द्विजः पीत्वा सुरापानं कृतवान् नात्र संशयः ।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि सुरापानसमं विदुः ॥२॥

धेनुविक्रयप्रायश्चित्तम् (लिंगपुराणे)

धेनुं सम्पाद्य विप्राय अग्निहोत्रार्थमादरात् ।

दुग्धाभावे रुषा युक्तो विक्रयेद्यदि पापधीः ॥२॥
स वै नरकमासाद्य चाण्डालत्वमवाप्नुयात् ।
बालपौगण्डके वाऽपि धेनू वा द्रव्यलोभवान् ॥३॥
विक्रयेद्यदि मूढात्मा दहत्यासप्तमं कुलम् ।
बाले चान्द्रं तु पौगण्डे महाचान्द्रमुदीरितम् ॥४॥
युवतीं विक्रयित्वा तु तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः ।
धेनुं द्विजो विक्रयित्वा गोसूक्तं मण्डलं जपेत् ॥६॥
आसायम्प्रातरारभ्य स्नात्वाऽभुंजन् फलं मुदा ।
मण्डलेन विशुद्धिः स्यात् पंचगव्यं ततः परम् ॥७॥

बलीवर्दहननप्रायश्चित्तम्

शिवधर्मोत्तरे

अनड्वान् हन्यते विप्रै रज्जुदण्डशिलादिभिः ।
गृहे वा विपिने तोये भारोद्वाहनकर्मणि ॥१॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि रोषाद्वा मत्सरादपि ।
न तेषां निष्कृतिश्चास्ति तप्तकृच्छ्रैस्त्रिभिर्विना ॥२॥

(खरोष्ट्रहरिणीमृतवत्सगवीमहिषीक्षीरपानप्रायश्चित्तम्)

उष्ट्रक्षीरं मृगक्षीरं सान्धिन्यं यामलं तथा ।
मुखेनोदकपानं च मृतवत्सापयस्तथा ॥१॥
पिबेद् द्विजः सकृन्मोहाद्यदि वा महिषीपयः ।
तस्योपनयनं भूयस्तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥२॥

गौतमः

औषधार्थं द्विजः पीत्वा दुग्धं खर-क्रमेलयोः ।
तप्तकृच्छ्रं चरेत्पश्चात्पुनः कर्म्म न गौरवात् ॥३॥

साक्षाद्धेनुप्रतिग्रहप्रायश्चित्तम् स्कन्दपुराणे

धेनुं विप्रोऽनुगृह्णीयाद् वृथा भोगपरायणः ।
अकृत्वा निष्कृतिं लोभाद् व्यालीभवति कानने ॥१॥
तद्दोषपरिहारार्थं जपेद्रुद्रमथायुतम् ।
तदा दोषविनिर्मुक्तः शुद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२॥

गोत्रिरात्रव्रतकथा- हेमाद्रि २।२।२९३

निवृत्ते भारते युद्धे कुरुसैन्ये क्षयं गते ।
राजा धर्मसुतः श्रीमान् भ्रातृभिः सह मोदितः ।।१।।
मागधैस्स्तूयमानश्च स्वसैन्यगणशोभितः ।
श्रीकृष्णेन समायुक्तः प्रययौ हस्तिनापुरम् ।।२।।
अभिषेकं ततश्चक्रे पुरोधा मुनिसंयुतः ।
दूर्वायवांकुरैर्युक्तं चक्रुर्वद्ध्वापणं स्त्रियः ।।३।।
रत्नैर्दुकूलैर्धर्मात्मा तोषयामास तान् गणान् ।
नृपांश्च स्वनरोपेतान् मागधांश्चावनीपकान् ।।४।।
ऋषींश्च सर्वान् प्रस्थाप्य स्वे स्वे स्थाने नृपानपि ।
स्तुत्या सन्तोषयामास श्रीकृष्णं पाण्डुनन्दनः ।।५।।
''देवदेव जगन्नाथ भक्तानामभयप्रद ।
प्रसादात्तव गोविन्द कौरवा युधिनिर्जिताः ।।६।।
राज्यं निष्टकण्टकं प्राप्तं भक्तियोगात्तवानघ ।
मत्सेवापरियुक्तानां प्रसादं कुरु केशव ।।७।।''
एवमुक्त्वा स्थिते पाण्डौ पुत्रभ्रातृसमन्विते ।
पांचाली परया भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।।८।।
बद्धांजलिपुटा साध्वी प्रोवाच परमेश्वरम् ।
करुणाकारसम्पूर्ण कंसासुरनिकृन्तन ।।९।।
दुकूलहरणाद्यच्च दुःखं त्वद्भक्तिभाविता ।
न ज्ञातं देवदेवेश प्रसादं कुरु केशव ।।१०।।
किमपि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो व्रतमनुत्तमम् ।
येन चीर्णेन नारीणां सौभाग्यं पतिभक्तितः ।।११।।

श्रीकृष्ण उवाच

गौर्या स्कन्दस्य पुरतः शम्भुना कथितं व्रतम् ।
गोत्रिरात्रमिदं ख्यातं पवित्रं कथयामि ते ।।१२।।
सावित्रीपुरतो धात्रा वसिष्ठेन महर्षिणा ।
अरुन्धत्या प्रागुदितं तदव्रतं श्रृणु सुव्रते ।।१३।।

द्रौपद्युवाच

कस्मिन् मासे प्रकर्त्तव्यं यथा दानं तथा विधिः ।
तत्सर्वं कथयाशु त्वं यदि तुष्टोऽसि माधव ।।१४।।

श्रीकृष्ण उवाच

नभस्ये च सिते पक्षे त्रयोदशीति या तिथिः ।
कार्त्तिके वा प्रकर्तव्यं सौभाग्यधनवांछया ।।१५।।
सूर्योदये समुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।
लक्ष्मीनारायणस्याग्रे त्रिरात्रोपोषणं गृहे ।।१६।।

कुर्यात्स्नानं ततश्चैव स्नापयेत्कमलापतिम् ।
पंचामृतेन श्रीखण्डैः कुसुमैरर्चयेत्ततः ।।१७।।
शतपत्रैश्च पद्माद्यैः पुष्पैः पूजां प्रकल्पयेत् ।।१८।।
''पादौ नमामि बलिदानवमर्द्दनाय जानू नमामि भुवनत्रयपालनाय ।
स्कन्धौ नमामि कमलारमणाय चित्ते योगीश्वराय करचक्रसुधाप्रियाय ।।१९।।
क्षीराब्धिकृतसम्बान वासुदेव जगत्प्रभो ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सौभाग्यं देहि मे सदा ।।२०।।''
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च बीजपूरैश्च दाडिमैः ।
अर्घ्यं दत्वा च सम्पूज्य कामधेनुं प्रसादयेत् ।।२१।।
''रोगाणि हन्तु मम कामदुघा प्रसन्ना
पापानि हन्तु मम कामदुघा प्रसन्ना ।
सौख्यं ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना
पुत्रान् ददातु मम कामदुघा प्रसन्ना ।।२२।।''
तृतीये दिवसे प्राप्ते वंशपात्रत्रयं ततः ।
विरूढकसमापन्नं सम्यक् फलसमन्वितम् ।।२३।।
दद्यात्कामदुघायै च व्रतसम्पूर्णहेतवे ।
रात्रौ च सर्वतोभद्रं मण्डलं च प्रकल्पयेत् ।।२४।।
माषैकस्य सुवर्णस्य लक्ष्मीनारायणं प्रभुम् ।
कृत्वा तत्र न्यसेद्देवं व्रतसम्पूर्तिहेतवे ।।२५।।
रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवादित्रकौतुकैः ।
ततः प्रभातसमये होमं कुर्याद्यथाविधि ।।२६।।
दम्पत्योः परिधानाय शुभैर्वस्त्रैः स्वशक्तितः ।
देया धेनुश्च विप्राय निवेद्य पृष्ठतो व्रजेत् ।।२७।।
पदे-पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ।
अथान्यदपि ते वच्मि इतिहासं पुरातनम् ।।२८।।
व्याघ्रधेन्वोः सुसंवादं नीतिशास्त्रमयं शुभम् ।
वसिष्ठस्याश्रमात्काचिद्दिव्यगोवंशसम्भवा ।।२९।।
स्वेच्छया प्रययौ धेनुश्चरती गह्वरे वने ।
सिंहव्याघ्रादिजीवेभ्यो निर्भया तपसो बलात् ।।३०।।
मुनीश्वरस्य सा धेनुः प्रययौ गिरिगह्वरम् ।
शिवशापपरिभ्रष्टव्याघ्रव्यापी महाबलः ।।३१।।
महादंष्ट्रो महाकायो नाम्नाऽसौ जलवर्द्धनः ।
प्रसारितकरो वीरो ययौ वृत्तिं शुभाशुभाम् ।।३२।।
व्याघ्र उवाच
दिवसा बहवो जाताः क्षुधया पीडितस्य मे ।

त्वं दृष्ट्वा दैववशत आहाराय प्रकल्पिता ॥३३॥

धेनुरुवाच

वसिष्ठस्य प्रभावेन दुष्टजीवैर्महाबलैः ।
न हिंस्याऽहमवश्यं हि जानीयाद् व्याघ्रसत्तम ॥३४॥
वाक्यमेकं महाबाहो श्रृणुष्वैकाग्रमानसः ।
स्वीयजीवाशया चाहं व ब्रवीमि तवाग्रतः ॥३५॥
अध्रुवेण शरीरेण मलमूत्रयुतेन च ।
परोपकृतिहीनेन किं कार्यं क्षत्रियेण च ॥३६॥
वाङ्मनःकर्मणा ये वै शरीरनाशनेऽपि वा ।
उपकारं न कुर्वन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ॥३७॥
मरणे वाऽन्यचित्ता ये रणे दीनवचो भटाः ।
ते यान्ति नरकं घोरमित्याहुः पूर्वसूरयः ॥३८॥
कलत्रपुत्रबन्धूनां मायारहितमानसाः ।
पुराणपुरुषे भक्तास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥३९॥
सोमवासरसंजातो बालो मम गृहे स्थितः ।
ममागमनसन्दृष्टिः स्नेहदुःखं च मे हृदि ॥४०॥
सखी दुग्धेन तं बालं स्वेच्छया परितोष्यति ।
सखीमकथयित्वाऽऽशु आयामि तव सन्निधौ ॥४१॥

व्याघ्र उवाच

वेदशास्त्रपुराणेषु पठ्यते पूर्वसूरिभिः ।
स्त्री-विप्र-धेनुपीडासु विवाहे राजविग्रहे ॥४२॥
प्राणात्ययेऽप्यसत्यं हि वाच्यमन्यत्र नैव हि ।
आपद्गतश्च यो जन्तुर्यश्च वैरिवशं गतः ॥४३॥
आत्मा वै रक्षितो येन तत् करोति न संशयः ।
यस्य चाग्रे स्थितं भक्ष्यमादिष्टं परमेष्ठिना ॥४४॥
न गृह्णाति च यो मूर्खो ह्यनन्दानकरं व्रजेत् ।
न सुरैर्न मनुष्यैश्च न यक्षैर्न पिशाचकैः ।॥४५॥
सत्यं हि निश्चितं वाक्यं प्राणिभिः प्राप्य चापदम् ।
तृणवारिसमाहारकृतसन्तोषवर्तिनाम् ।
आपद्गतानामनृतं तत् पशूनां च का कथा ॥४६॥
पृथिवी च तथाऽऽदित्याः सत्ये तिष्ठन्ति देवताः ।
तस्मात्सत्यं त्वया कार्यं वाच्यं चैव वृषांगणे ॥४७॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा बालकस्नेहपीडिता ।
चक्रे तत्र प्रतिज्ञां वै व्याघ्रस्याग्रे पुनः पुनः ॥४८॥

धेनुरुवाच

द्विजो भूत्वा ततो व्याघ्र वेदभ्रष्टोऽभिजायते ।
स्वाध्यायसन्ध्यारहितः सत्यशौचविवर्जितः ॥४९॥
अविक्रेयाणां विक्रेता अयाज्यानां च याजकः ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥५०॥
दुष्टबुद्धौ शठे धूर्त्ते यत्पापं परवंचके ।
दाने दत्ते प्रदत्तं च प्रसक्तिं कुरुते नरः ॥५१॥
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
वेदविक्रयणे चैव शवसूतकभोजने ॥५२॥
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
मृतवत्सां ग्रहीता यो मातापित्रोरपोषकः ॥५३॥
देवधेनुगुरुद्रव्यं ब्रह्मद्रव्यं हरेत्तु यः ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥५४॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम् ।
अवैष्णवे तु यत्पापं यत्पापं दम्भकर्तृके ॥५५॥
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।
मुक्तेन्द्रिये च धूर्त्ते च परदोषापवादके ॥५६॥
कृतघ्ने च कदर्ये च परद्रव्यरते शठे ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥५७॥
सदाचारविहीने च परपीडाप्रदायके ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥५८॥
परापवादसन्तुष्टे सर्वधर्मविवर्जिते ।
यत्पापं ब्रह्महत्यायां मातापितृवधे तथा ।
तेषां तु पातकं मह्यं यद्यहं नागमे पुनः ॥५९॥
द्विभार्यः पुरुषो यस्तु यस्मादेकां विवर्जयेत् ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६०॥
यत्पापं लुब्धकानां च स्वस्थानां विषदायिनाम् ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६१॥
यत्पापं नास्तिकानां च पौराणां विषयैषिणाम् ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६२॥
यस्त्रीन् हले बलीवर्दान् विषमं वाहयेत्तु यः ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६३॥
गोरवज्ञां प्रकुर्वन्ति दण्डेन ताऽडयन्ति ये ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६४॥
सकृत्कन्यां तु यो दत्वा द्वितीये दातुमिच्छति ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६५॥

कथायां कथ्यमानायामन्तरायं करोति यः ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६६॥
यतिनिन्दाकरो नित्यं वेदनिन्दापरस्तथा ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६७॥
यस्य संग्रहणी भार्या ब्राह्मणी च विशेषतः ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६८॥
अकर्म्मनिरते क्रूरे कुलधर्मविवर्जिते ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥६९॥
मूर्खे पाषण्डके चौरे तिलविक्रयकारके ।
एको मिष्टान्नमश्नाति भार्या पुत्रमपोषकः ॥७०॥
आत्मम्भरा दुराचारा देवद्रव्यविलोपकः ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥७१॥
ब्रह्मघ्ना गुरुनिन्दोद्याः स्वामिनिन्दाकरास्तथा ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥७२॥
कुरुक्षेत्रे महापर्वे ग्रस्ते चन्द्रे दिवाकरे ।
ये गृह्णन्ति महादानं हव्यकव्यविवर्जितम् ॥
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥७३॥
कूटसाक्षी मृषावादी परद्रव्यभिलाषुकः ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥७४॥
परदाराभिगामी च यश्च विश्वासघातकः ।
भर्तारमर्थहीनं च महाव्याधिप्रपीडितम् ॥७५॥
या न पूजयते नारी रूपयौवनगर्व्विता ।
तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥७६॥
अथ किं बहुनोक्तेन मृगराज तवाग्रतः ।
यदि नायामि शीघ्राऽहं मम सत्यं भवेन्न च ॥७७॥
तेन वाक्येन सन्तुष्टो व्याघ्र आहारनिस्पृहः ।
प्रसारितकरं त्यक्त्वा गच्छ धेनो स्वकं गृहम् ॥७८॥
व्याघ्रेन मुक्ता सा धेनुरागता च स्वमाश्रमम् ।
उत्कर्ष तर्णकं दृष्ट्वा जात प्रस्रवती भृशम् ॥७९॥
सन्तर्प्य पयसा बालं सखीषु च विनिक्षिपेत् ।
ता दृष्ट्वा दुःखिता गावो मातृस्नेहसमन्विताः ॥
दृष्ट्वा दुःखतरो बालो न जाने च तथाऽस्तु मे ॥८०॥
तत्तद् बालमुपादाय पप्रच्छुस्तत्र कारणम् ।
विश्राव्य तासु वृत्तान्तं बालकं तमुवाच सा ॥८१॥
अनुयाहि व्रज त्वं हि सत्यवाक्यसमन्विता ।

व्रजामि तद्वनं शीघ्रं व्याघ्रो वसति यत्र च ॥८२॥
सख्युवाच
कृतप्रतिज्ञे मूढाऽसि नन्दिनीवंशसम्भवे ।
व्याघ्रधेन्वोः परं वैरं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥८३॥
विप्रस्त्रीबालकार्येषु सम्प्राप्ते वैरसंकटे ।
प्राणापहारे मुनिभिरसत्यं नैव दूषितम् ॥८४॥
देवेशेन पुरा जघ्ने वृत्रः सुररिपुर्बली ।
शपथान् कृत्वा च विष्णुः शंखं विश्वासवर्जितम् ॥८५॥
तत्र त्वं स्वगृहे तिष्ठ परिवारेण संयुता ।
मुनिप्रवरास्तिष्ठन्ति न दुष्टा जन्तवः कदा ॥८६॥
धेनुरुवाच
सत्येन तपते भानुः सत्येन तपते शशी ।
चतुर्मुखोऽपि सत्येन सत्येन सकलं जगत् ॥८७॥
सत्यवाक्यपरिभ्रष्टोऽसोमो जीवेत्कदाचन ।
सत्येन सत्यलोकोऽस्ति सत्यं वेदे प्रतिष्ठितम् ॥८८॥
व्रजामि सत्यवाक्येन तद् व्याघ्रं प्रति निर्भया ।
तद्वने चैव गां दृष्ट्वा व्याघ्रो यातामुपागताम् ॥८९॥
व्याघ्र उवाच
अहो मे भाग्यमतुलं कामधेनुः समागता ।
दुष्टयोनिविनिर्मुक्तो यास्यामि हरसन्निधौ ॥१॥(२/२/३०२)
यावत्प्राप्ता कलिमलहरा पावनी कामधेनुस्-
तावद् व्याघ्रः शशधरगणः सर्वसम्पत्तिदेहः ।
बद्ध्वा पाणी विमलमणिभिर्दीप्यमाने किरीटे
धेनुं भक्त्या मधुरवचनैराह सम्पूज्य सम्यक् ॥२॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कामधेनोः प्रसादतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याम्यहं हरसन्निधौ ॥३॥
गावो रक्षन्तु मे पुण्यं गावो रक्षन्तु मे यशः ।
गावो रक्षन्तु मे वर्ग कलत्रपुत्रपौत्रकम् ॥४॥
सम्पूजितास्तु ता गावो मादृशां बहुसम्पदाः ।
सर्वपापहरा गावः सर्वपुण्यफलप्रदाः ॥५॥
नमोऽस्तु कामधेनुभ्यो याः पुनन्ति जगत्त्रयम् ।
यदाधारस्थितं विश्वं नन्दादिभ्यो नमो नमः ॥६॥
धेनुरुवाच
महागण वरं ब्रूहि जगतां प्रीतिकारकम् ।
यदिच्छसि वरं काम्यं ददामि तव भक्तितः ॥७॥

गण उवाच

विश्वोपकारकरणे समर्थाः कामधेनवः ।
भवद्वर्गासु विश्वासात् सदाऽस्तु सुखितं जगत् ।।८।।
भवत्प्रजारता ये वा भवत्प्रजापरायणाः ।
तेषां च सर्वा सिद्धिः स्याद् भवदीयप्रसादतः ।।९।।

श्रीकृष्ण उवाच

एवमस्त्विति साऽप्युक्ता व्याघ्रः शिवपुरं ययौ ।
कामधेनुश्च सन्तुष्टा वसिष्ठाश्रममाययौ ।।१०।।
एवमुक्तं गोत्रिरात्रं कृत्वा नारी नरोऽपि वा ।
प्राप्नोति सकलान् कामान् सप्तजन्मनि सुव्रते ।।११।।

अथर्वणगोपथब्राह्मणे घृतावेक्षणविधिः

''आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् ।
आज्येन देवास्तृप्यन्ति आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ।।१।।
भौमान्तरीक्षदिव्यं वा यत्ते कल्मषमागतम् ।
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु ।।२।।''
अयमाज्यावेक्षणस्य प्रोक्तो विधिरथर्वणः ।
एवं समाचरेत्सम्यक् प्रयतः सुसमाहितः ।।३।।
उपास्योदयकाले तु स राजा जयमिच्छया ।
स राजा जयते राष्ट्रं न पश्यन्ते तु शत्रवः ।।४।।
पश्चादानीय कपिलां राजा दद्याद् द्विजातमे ।
आशीर्वादं ततश्चैव श्रुत्वा तन्मुखनिःसृतम् ।।५।।
गुरुणावेदिते तस्माद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
पुत्रान् पौत्रांश्च मित्राणि लभते नात्र संशयः ।।६।।
आयुष्यमथ वर्चस्यं सौभाग्यं शत्रुतापनम् ।
दुःस्वप्ननाशनं धन्यं घृतावेक्षणमुच्यते ।।७।। इति ।

शिवधर्मोतरे

घृतस्नपनविधिः

घृताभिषेकं यः कुर्यादहोरात्रं शिवस्य तु ।
नियतं श्लक्ष्णधाराभिः पुष्यमासे समुद्यतः ।।१।।
गीतनृत्योपहारेण शंखवादित्रनिःस्वनैः ।
कुर्याज्जागरणं तत्र प्रदीपाद्युपशोभया ।।२।।

समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः ।
ज्वलद्भिः स महायानैरसंख्येयैर्नगोत्तमैः ।।३।।
युक्तः शिवपुरे नित्यं मोदते शिववत्सुखी ।
ग्रहणे विषुवे चैव पुण्येषु दिवसेषु च ।।४।।
घृताभिषेकं यः पश्येदासमाप्तिमुपोषितः ।
विधूय सर्वपापानि शिवलोकं स गच्छति ।।५।।
एकः पूजयते भक्त्या अन्यो भक्त्या प्रशस्यति ।
तुल्यमेव फलं ताभ्यां भक्तिरेवात्र कारणम् ।।६।। इति ।।

वृषव्रतम्

कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ।
शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रतमिदं स्मृतम् ।।प.पु./हे.२/२/२४२।।

वृषोत्सर्गे गोविवाहः

मनुरुवाच

अश्वमेधसमं पुण्यं वृषोत्सर्गादवाप्यते ।
रेवत्यां वाऽश्विने मासि कृत्तिकां कार्तिकस्य वा ।।१।।
गोविवाहोऽथ वा कार्यो माघ्यां वा फाल्गुनेऽपि वा ।
शिवोमामंगलं चैत्रे तृतीयायां महाफलम् ।।२।।
अश्वत्थोदुम्बरीयोगं विवाहविधिना भवेत् ।
सतोरणं भवेत्तीर्थे उत्संगे गोकुलेऽपि वा ।।३।।
चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वे वा सम्भवतोऽपि वा ।
वत्सं सर्वांगसम्पूर्णं कन्या सा वत्सिका भवेत् ।।४।।
अलंकृत्वा यथाशोभमुत्सर्गं कारयेन्मुने ।
विवाहमेकवात्सर्यं नीलेन लभते सदा ।।५।।
वृषेण चाश्वमेधस्य यागस्य लभते फलम् ।
जायेरन् बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।।६।।
यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।।७।।
रोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णस्वरो वृषः ।
सलांगूलं शिरः श्वेतं स वै नीलवृषः स्मृतः ।।८।।
अंकं वोत्सृज्य वै पूर्वं गां वाऽलंकृत्य सर्वतः ।
तदाप्ते वामतश्चक्रं याम्ये शूलं समालिखेत् ।।९।।
धातुना हेमतारेण आयसेनाथवाऽंकयेत् ।
एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् ।।१०।।
यमुद्दिश्योत्सृजेद्वत्सं स लभेताविचारणात् ।
यथा शिवोमयोरर्चा पूजिता सर्वकामदा ।।११।।

एवं देवत्रयं यष्ट्वा अनन्तं लभते फलम् ।
मंगलं विहितं यच्च कृत्वा गोदानजं फलम् ।।
क्रतोः सहस्रं कृत्वा यद् वृषोत्सर्गादवाप्नुयात् ।।१२।।

स्त्रीभिः किं व्रतं कार्यम् ? विष्णुधर्मोत्तरे २।३५
राम उवाच
स्त्रीणां पूज्यतमा लोके देवतास्त्वं प्रकीर्तय ।
तासां कालं विधानं च फलं पूजनतस्तथा ।।२/३५/१।।
पुष्कर उवाच
श्रियः सम्पूजनं कार्यं स्त्रीभिस्तु सततं गृहे ।
पुष्पार्घमाल्यनैवेद्यधूपदीपानुलेपनैः ।।२।।
गृहसम्मार्जनं राम! तथा तस्योपलेपनम् ।
पुष्पोहारकरणं सुधाशुक्लत्वमेव च ।।३।।
सर्वमेतद् विजानीयाच्छ्रियः सम्पूजनं द्विज ।
स्नानानुलेपनं यच्च गन्धवर्णावधारणम् ।।४।।
सुवर्णता च नारीणां श्रियः सम्पूजनाद्भवेत् ।।५।।
सोपवासा तु या नारी कृष्णपक्षस्य कार्तिके ।।२२।।
द्वादश्यां पूजयेद् विष्णुं गां सवत्सामनन्तरम् ।
गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा ।।२३।।
नैवेद्य गोरसं सर्वं वर्जनीयं प्रयत्नतः ।
भोक्तव्यं च न धर्मज्ञ दोग्धव्या नैव चार्जुने ।।२४।।
गाश्च प्राप्नोति कृत्वैवं नात्र कार्या विचारणा ।
धेनुं तां यदि विप्राय प्रददाति यथाविधि ।।२५।।
स्वर्गलोकमथासाद्य न ततो विनिवर्त्तते ।।२६।।

श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणे २।४२
गोमती विद्या
पुष्कर उवाच
गवां हि पालनं राज्ञा कर्तव्यं भृगुनन्दन ।
गावः पवित्रा संगत्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।।४२/१।।
गावो वितन्वते यज्ञं गावो विश्वस्य मातरः ।
शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं स्मृतम् ।।२।।

तद्धि सेव्यं प्रयत्नेन तत्र लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ।
उद्वेगं च न गन्तव्यं शकृन्मूत्रस्य जानता ॥३॥
गवां मूत्रपुरीषेषु ष्ठीवनाद्यं न सन्त्यजेत् ।
गोरजः परमं पुण्यमलक्ष्मीविघ्ननाशनम् ॥४॥
गवां कण्डूयनं चैव सर्वकल्मषनाशनम् ।
तासां श्रृंगोदकं चैव जाह्नवीजलसन्निभम् ॥५॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च रोचनम् ।
षडंगमेतन्मांगल्यं पवित्रं तु पृथक् पृथक् ॥६॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
पवित्रं परमं ज्ञेयं स्नाने पाने च भार्गव ॥७॥
रक्षोघ्नमेतन्मांगल्यं कलिदुःखप्रणाशनम् ।
रोचना च तथा धन्या रक्षोरगगदापहा ॥८॥
यस्तु कल्ये समुत्थाय मुखमाज्ये निरीक्षते ।
तस्यालक्ष्मीः क्षयं याति वर्धते न तु किल्विषम् ॥९॥
गवां ग्रासप्रदानेन पुण्यं सुमहदश्नुते ।
यावत्यः शक्नुयाद् गावः सुखं धारयितुं गृहे ॥१०॥
धारयेत्तावतीर्नित्यं क्षुधितास्तु न धारयेत् ।
दुःखिता धेनवो यस्य वसन्ति द्विजमन्दिरे ॥११॥
नरकं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।
दत्वा परगवे ग्रासं पुण्यं सुमहदश्नुते ॥१२॥
शैशिरं सकलं कालं ग्रासं परगवे तथा ।
दत्वा स्वर्गमवाप्नोति संवत्सरशतानि षट् ॥१३॥
अग्रभक्तं नरो दत्वा नित्यमेव तथा गवाम् ।
मासषट्केन लभते नाकलोकं समायुतम् ॥१४॥
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ।
तत्रैवमशनं दत्वा गवां नित्यमतन्द्रितः ॥१५॥
द्वितीयं यः समश्नाति तेन संवत्सरान्नरः ।
गवां लोकमवाप्नोति यावन्मन्वन्तरं द्विज ॥१६॥
गवां प्रचारे पानीयं दत्वा पुरुषसत्तमः ।
वारुणं लोकमासाद्य क्रीडत्यब्दगणायुतम् ।
परां तृप्तिमवाप्नोति यत्र यत्राभिजायते ॥१७॥
गवां प्रचारभूमिं तु वाहयित्वा हलादिना ।
नरकं महदाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१८॥
गवां पानप्रवृत्तानां यस्तु विघ्नं समाचरेत् ।
ब्रह्महत्या कृता तेन घोरा भवति भार्गव ॥

सिंहव्याघ्रभयत्रस्तां पंकमग्नां जले गताम् ।।१९।।
गामुद्धृत्य नरः स्वर्गे कल्पभोगानुपाश्नुते ।
गवां यवसदानेन रूपवानभिजायते ।।२०।।
सौभाग्यं महदाप्नोति लावण्यं च द्विजोत्तम ।
औषधं च तथा दत्वा विरोगस्त्वभिजायते ।।२१।।
औषधं लवणं तोयमाहारं च प्रयच्छतः ।
विपत्तौ पातकं नास्य भवत्युद्बन्धनादिकम् ।।२२।।
वक्तव्यता दिवा काले रात्रौ स्वामी न तद्गृहे ।
तत्रापि तन्नियुक्तश्च कश्चिदन्यो न चेद् भवेत् ।।२३।।
तासां चेदविरुद्धानां चरन्तीनां मिथो वने ।
यामुत्पत्य वृको हन्यान्नपालस्तत्र किल्बिषी ।।२४।।
संरुद्धासु तथैवासु वृकः पाले त्वनायति ।
यामुत्पत्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषं भवेत् ।।२५।।
गोवधेन नरो याति नरकानेकविंशतिम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं तासां तु पालनम् ।।२६।।
विक्रयाच्च गवां राम न भद्रं प्रतिपद्यते ।
तासां च कीर्तनादेव नरः पापाद्विमुच्यते ।।२७।।
तासां संस्पर्शनं धन्यं सर्वकल्मषनाशनम् ।
दानेन च तथा तासां कुलान्यपि समुद्धरेत् ।।२८।।
उदक्या सूतिको दोषो नैव तत्र गृहे भवेत् ।
भूमिदोषास्तथाऽन्येऽपि यत्रैका वसते तु गौः ।।२९।।
गवां निःश्वासवातेन परा शान्तिर्भवेद् गृहे ।
नीराजनं तत्परमं सर्वस्थानेषु कीर्तितम् ।।३०।।
गवां संस्पर्शनाद्राम क्षीयते किल्बिषं नृणाम् ।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।।३१।।
एकरात्रोपवासं च श्वपाकमपि शोधयेत् ।
पृथक्त्वप्रत्ययाभ्यस्तमतिसन्तपनं स्मृतम् ।।३२।।
सर्वाशुभविमोक्षाय पुरा चारितमीश्वरैः ।
प्रत्येकं च त्र्यहाभ्यस्तं चातिसान्तपनं स्मृतम् ।।३३।।
सर्वकामप्रदं राम सर्वाशुभविनाशनम् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।।३४।।
निर्मलास्तेन चीर्णेन भवन्ति पुरुषोत्तमाः ।
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।।३५।।
त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ।
तप्तकृच्छ्रमिदं प्रोक्तं सर्वाशुभविनाशनम् ।।३६।।

शीतकृच्छ्रस्तथैवैष क्रमाच्छीतैः प्रकीर्तितः ।
सर्वाशुभविनाशाय निर्मितो ब्रह्मणा स्वयम् ॥३७॥
गोमूत्रेण चरेत्स्नानं वृत्तिं कुर्यात्तु गोरसैः ।
उत्थितामुत्थितस्तिष्ठेदुपविष्टास्तु नास्थितः ॥३८॥
अभुक्तवत्सु नाश्नीयादपीतासु च न पिबेत् ।
त्राणं तु रामाकृत्वैव तथा देवे प्रवर्षति ॥३९॥
त्राणं नैवात्मनः कार्यं भयार्त्ताश्च समुद्धरेत् ।
आत्मानमपि सन्त्यज्य गोव्रतं तत्प्रकीर्तितम् ॥४०॥
सर्वपापप्रशमनं मासेनैकेन भार्गव ।
व्रतेनानेन चीर्णेन गोलोकं पुरुषो व्रजेत् ॥४१॥
अभीष्टमथ वा राम यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
गवां निर्हारनिर्मुक्तानश्नन् प्रतिदिनं यवान् ॥४२॥
मासेन तदवाप्नोति यत्किंचिन्मनसेच्छति ।
गोमतीं च तथा विद्यां सायं प्रातस्तथा जपन् ॥४३॥
नरो गोलोकमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।
उपर्युपरि सर्वेषां गवां लोकः प्रकीर्तितः ॥४४॥
निवसन्ति सदा यत्र गावस्त्वाकाशगा दिवि ।
विमानेषु विचित्रेषु वृतेष्वप्सरसां गणैः ॥४५॥
किंकिणीजालचित्रेषु वीणामुरजनादिषु ।
सदा कामजला नद्यः क्षीरपायसकर्दमाः ॥४६॥
शीतलामलपानीयाः सुवर्णसिकतास्तथा ।
पुष्करिण्यः शुभास्तत्र वैडूर्यकमलोत्पलाः ॥४७॥
मानसी च तथा सिद्धिस्तत्रलोके भृगूत्तम ।
तं च लोकं नरा यान्ति गवां भक्त्या न संशयः ॥४८॥
गोमतीं कीर्तयिष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
तां तु मे वदतो विप्र श्रृणुष्व सुसमाहितः ॥४९॥
गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः ।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परम् ॥५०॥
अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ।
पावनं सर्वभूतानां रक्षन्ति च वहन्ति च ॥५१॥
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान् दिवि ।
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमे प्रयोजिताः ॥५२॥
सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम् ।
गावः पवित्रं परमं गावो मंगलमुत्तमम् ॥५३॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः ।

ॐ नमो गोभ्य: श्रीमतीभ्य: सौरभेयीभ्य एव च ।।५४।।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नम: ।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।।५५।।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।
देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभि: सकलं जगत् ।।५६।।
धार्यते वै सदा: तस्मात्सर्वे पूज्यतमा: सदा ।
यत्र तीर्थे सदा गाव: पिबन्ति तृषिता जलम् ।।
उत्तरन्ति पथा येन स्थिता तत्र सरस्वती ।।५७।।
गवां हि तीर्थे वसतीह गंगा
पुष्टिस्तथा तद्रजसि प्रवृद्धा ।
लक्ष्मी: करीषे प्रणतौ च धर्मस्-
तासां प्रणामं सततं च कुर्यात् ।।५८।।
।। इति गोमती विद्या ।।

वि.ध. गोचिकित्सितम्

पुष्कर उवाच

अत: परं प्रवक्ष्यामि तव राम चिकित्सितम् ।
संक्षेवेण गवां पुण्यं सारभूतं श्रृणुष्व तत् ।।४३/१।।
श्रृंगमूलेषु धेनूनां तैलं दद्यात्ससैन्धवम् ।
श्रृंगीवीरबलामांसीकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ।।२।।
सिमिचूर्णयुतं देवमथवाऽपि तथा घृतम् ।
कर्णमूलेषु सर्वेषु मंजिष्ठाहिंगुसैन्धवै: ।।३।।
सिद्धं तैलं प्रदातव्यं गोरसो वाऽथवा पुन: ।
माक्षिकं सैन्धवं शंखं तगरीं पिप्पलीं सिहाम् ।।४।।
अजाक्षीरेण सम्पेष्य गुलिकां कारयेद् भिषक् ।
एतन्नेत्रांजनं श्रेष्ठं घृतमाक्षिकसंयुतम् ।।५।।
बिल्वमूलमपामार्गं धातकीं च सपाटलाम् ।
कुटजं दन्तमूलेषु लेपं तच्छूलनाशनम् ।।६।।
दन्तशूलहरैर्द्रव्यैर्घृतं राम विपाचितम् ।
मुखरोगहरं ज्ञेयं जिह्वारोगेषु सैन्धवम् ।।७।।
श्रृंगवेरं हरिद्रे द्वे त्रिफलां च गलग्रहे ।
श्रृंगवेरं हरिद्रे द्वे वल्कलं कुटजस्य च ।।८।।
अपामार्गविडंगांश्च लवणेन विमिश्रितम् ।
औषधं मुखरोगघ्नं ज्वरदाहविनाशनम् ।।९।।

हृच्छूले बस्तिशूले च वातरोगे क्षते तथा ।
त्रिफलाघृतसम्मिश्रं गवां पानं प्रशस्यते ॥१०॥
शतपुष्पायुतं पक्वं तैलं कुटजचित्रकैः ।
गवां राम प्रदातव्यं सर्वहृद्रोगनाशनम् ॥११॥
अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठां चैव प्रदापयेत् ।
आनाहे घृतसंयुक्तां दापयेत्पद्मचारिणीम् ॥१२॥
सर्वेषु कुष्ठरोगेषु तथा शाखागदेषु च ।
श्रृंगवेरं च दार्वी च कासे श्वासे प्रदापयेत् ॥१३॥
दातव्या भग्नसन्धाने प्रियंगुर्लवणान्विता ।
वातरोगेषु सर्वेषु शतपुष्पाविपाचितम् ॥१४॥
गवां तैलं प्रदातव्यं सर्ववातगदापहम् ।
यूषणं मधुसम्मिश्रं कफरोगेषु दापयेत् ॥१५॥
पित्तरोगेषु सर्वेषु मधुयष्टिविपाचितम् ।
गव्यमाज्यं प्रदातव्यं सर्वपित्तगदापहम् ॥१६॥
शाखोटकरसापानं रक्तपित्ते प्रशस्यते ।
गोधूमानां च चूर्णानि माषाश्चैव ससर्षपाः ॥१७॥
पयसा च समालोड्य गुडमिश्राः प्रदापयेत् ।
रक्तस्रावेषु कृच्छ्रेषु गवामेतत् प्रशस्यते ॥१८॥
तिलाम्भकरुहांश्चैव हरितालं घृतं तथा ।
भग्नक्षतानां धेनूनां लेपने तत्प्रशस्यते ॥१९॥
वत्सानां च सरोगाणां पाठां तक्रेण पाययेत् ।
हरिद्रां क्षीरसंयुक्तामथवा रोगशान्तये ॥२०॥
माषास्तिलाः सगोधूमाः पशुक्षीरं घृतं तथा ।
एषां पिण्डाः प्रदातव्याः लवणेन सुसंस्कृताः ॥
पुष्टिप्रदास्तु वत्सानां वृषभानां बलप्रदाः ॥२१॥
देवदारुवचामांसी गुग्गुलुहिंगुसर्षपाः ।
एष धूपः प्रदातव्यः किंचिद्घृतपरिप्लुतः ॥२२॥
सर्वग्रहविनाशाय पलंकसयुतः शुभः ।
घण्टा चापि गवां कार्या धूपेनानेन धूपिता ॥२३॥
अश्वगन्धा तिलं चुक्रं बस्तियोगे प्रशस्यते ।
अश्वगन्धायुतं तक्रं तिलान् बस्तौ प्रशस्यते ॥
भवति क्षीरिणी तेन धेनुर्भृगुकुलोद्भव ॥२४॥
पिण्याकमेव निर्दिष्टं गवां राम रसायनम् ।
शीतोदपानमार्द्रं च यवसं च विवर्जयेत् ॥२५॥
जराऽन्विता तथा स्थानं तच्च शीतं द्विजोत्तम ।

धार्य चैव गवां मध्ये मत्तोजः सर्वथा भवेत् ।।२६।।
गवां वेश्मनि दीपास्तु दातव्या राम रात्रिकाः ।।२७।।
गवां हि रोगोपशमाय शस्तं गतेऽर्द्धमासे लवणं सदैव ।
आनाहशूलारुचिनाशनं तदजाविकस्यापि तथा प्रशस्तम् ।।२८।।
।। इति गोचिकित्सिताध्यायः ।।

<u>विष्णुधर्मोत्तरे २।४४</u>

गवां शान्तिकर्म

पुष्कर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शान्तिकर्म गवां तव ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं तथा पुष्टिविवर्द्धनम् ।।४९/१।।
पंचमीषु च शुक्लासु श्रियः पूजा विधीयते ।
गवां पुरीषे धर्मज्ञ धूपदीपान्नसम्पदा ।।२।।
वन्यैः सुकुसुमैर्भक्त्या ब्राह्मणानां च पूजनम् ।
तत्रैवाहनि कर्त्तव्यं वासुदेवस्य पूजनम् ।।३।।
स हि सर्वगतो देवः क्षीरोदधिनिकेतनः ।
त्रैलोक्याधारभूतानां विशेषेण तथा गवाम् ।।४।।
आश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पंचदश्यां भृगूत्तम ।
वृत्रान्तकस्य कर्त्तव्यस्तदा यागस्तु गोमता ।।५।।
गन्धधूपनमस्कारपुष्पदीपान्नसम्पदा ।
इह प्रजायाः साम्राधः पृषदश्वा तथैव च ।।६।।
घृतप्रतीकश्च तथा रौद्रीभिश्च भृगूत्तम ।
नित्याभिश्च तथा वह्निं घृतेन जुहुयाद् बुधः ।।७।।
अम्भस्थेति च मन्त्रेण लवणं चाभिमन्त्रयेत् ।
दध्ना सम्प्राशनं कार्यं दधिक्राव्णेत्यनन्तरम् ।।८।।
यजमानेन देया च धेनुः स्याच्छतधेनुना ।
तदूनवित्तो दद्याच्च होत्रे शक्त्यैव दक्षिणाम् ।।९।।
गावः स्वलंकृताः पश्चाद् गन्धमाल्यफलादिभिः ।
स्वाशिता मुक्तवत्साश्च कुर्युर्वह्निं प्रदक्षिणम् ।।१०।।
क्ष्वेडाकिलकिलाशब्दैः शंखवाद्यरवैस्तथा ।
वृषाणां योजयेद्युद्धं गोपालानां तथैव च ।।११।।
द्वितीयेऽहनि धेनूनां वृषाणां सह वत्सकैः ।
लवणं तत्प्रदातव्यं ब्राह्मणेनाभिमन्त्रितम् ।।१२।।
भोजनं गोरसप्रायं ब्राह्मणांश्चात्र भोजयेत् ।
स्वस्ति वाच्यं ततः पश्चाद्दत्तदायान्विसर्जयेत् ।।१३।।

नित्यमेतत्तु वो दिष्टं शान्ति कर्म शुभं गवाम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि कर्म नैमित्तिकं तव ॥१४॥
धेनूनां मारके प्राप्ते तथा रोगाद्युपद्रवे ।
क्षीरक्षये तथाऽन्यस्मिन्प्रकृतेस्तु विपर्यये ॥१५॥
त्रिरात्रोपोषितो विद्वानेकरात्रोषितोऽथ वा ।
गवां मध्ये शुभे देशे स्थण्डिलं परिकल्पयेत् ॥१६॥
अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम् ।
पूजयेत्कर्णिकामध्ये वासुदेवं श्रिया सह ॥१७॥
कृसरैः पूजनं कार्यं देवतानां यथाक्रमम् ।
यासां तासां प्रवक्ष्यामि तव नामानि भार्गव ॥१८॥
सुभद्रां नाम दिग्धेनुं पूर्वभागे समर्चयेत् ।
पूजनीयस्ततो ब्रह्मा सुरभिस्तदनन्तरम् ॥१९॥
ततः सूर्यस्ततो धेनुर्बहुरूपा द्विजोत्तम ।
ततस्तु पृथिवीं देवीं ततोऽनन्तं प्रपूजयेत् ॥२०॥
ततश्च विश्वरूपाक्षं दिग्धेनुं तदनन्तरम् ।
ततः सिद्धिं ततो ऋद्धिं ततः शान्तिं समर्चयेत् ॥२१॥
रोहिणी नाम दिग्धेनुस्ततः पूज्या द्विजोत्तम ।
ततश्चन्द्रमसं देवं महादेववृषं ततः ॥२२॥
महादेवं ततो देवं पूजयेत्तदनन्तरम् ।
इत्येता देवताः प्रोक्ताः कृसरे तव षोडश ॥२३॥
पत्रेषु पूजनीयाश्च दिक्पालाश्च यथादिशम् ।
गन्दामाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा ॥२४॥
प्रत्येकां पूजयेद्राम देवतां प्रयतो द्विजः ।
पूर्णकुम्भानि सर्वाणि प्रत्येकं विनिवेदयेत् ॥२५॥
भक्त्या स्थगितवक्त्राणि वर्धमानैः सतण्डुलैः ।
सहिरण्यैर्यथाशक्ति ततो होमं समारभेत् ॥२६॥
वेदिं कृत्वा यथाशास्त्रं समिध्य च हुताशनम् ।
एकैकं दैवतं राम समुद्दिश्य यथाविधि ॥२७॥
चतुर्थ्यन्तेन धर्मज्ञ नाम्ना तु प्रणवादिना ।
होमद्रव्यैस्तथैकैकं शतसंख्यं तु होमयेत् ॥२८॥
समिधः क्षीरवृक्षस्य अक्षतानि तिलांस्तथा ।
सिद्धार्थकान्यथाज्यं च प्रत्येकं जुहुयात्क्रमात् ॥२९॥
ततो रक्षोहणैर्मन्त्रैर्जुहुयाद् गौरसर्षपान् ।
ततः समापयेद्विद्वानग्निकर्म यथाविधि ॥॥३०॥
सुवर्णं च तथा कांस्यं धेनुं वस्त्रयुगं तथा ।

कर्तुर्देयमुपद्रष्टुर्वस्त्रयुग्मं गुरोस्तथा ।।३१।।
भोजनं गोरसप्रायं ब्राह्मणांश्चात्र भोजयेत् ।
स्वस्ति वाच्यं ततः पश्चाद्दत्तदाया द्विजोतमाः ।।३२।।
रक्षोहणैस्तथा मन्त्रैः कुर्युरभ्युक्षणं गवाम् ।
गवां च पूजा कर्तव्या गन्धमाल्यानुलेपनैः ।।३३।।
मोक्तव्याश्च तदा वत्सा यथाकामं द्विजोत्तम ।
शान्तिकर्म गवामेतत्सर्वोत्पातप्रशान्तये ।।३४।।
कर्तव्यं भृगुशार्दूल परमं कर्म दारुणम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि काम्यं कर्म तवानघ ।।३५।।
कर्त्ता तूपवसेत्तत्र कारकैश्च तथैव च ।
पूर्वभाद्रपदायोगमाहिर्बुध्न्यगते तथा ।।३६।।
स्नानं निशाकरे कुर्याद् द्वितीयेऽहनि शास्त्रवित् ।
उदुम्बरस्य पत्राणि पंचगव्यं कुशोदकम् ।।३७।।
रोचनां च समंगां च क्षिपेत्कुम्भद्वये ततः ।
कुम्भद्वयं बुधः कुर्याद् गन्धमाल्योज्ज्वलं दृढम् ।।३८।।
अकालमूलं संस्थाप्य कर्ता तेन तदा भवेत् ।
स्नात्वा गोवालचीराणि परिधाय समाहितः ।।३९।।
पूजयेच्चाप्यहिर्बुध्न्यमादित्यं च तथैव च ।
वरुणं च शशांकं च गन्धमाल्यान्नसम्पदा ।।४०।।
धूपदीपनमस्कारैस्तथैव बलिकर्मणा ।
अक्षतानां च पात्राणि ततो राम चर्तुदश । ।।४१।।
अहिर्बुध्न्याय रुद्राय सफलांश्च निवेदयेत् ।
खट्वांगेन तु दातव्यं तथा धूपं द्विजोत्तम ।।४२।।
ततस्तु पूजा कर्तव्या देवदेवस्य चक्रिणः ।
ॐकारपूर्वमाज्यं च सर्वासां जुहुयात्ततः ।।४३।।
देवतानां यथोक्तानामेकैकस्य शतं शतम् ।
गोवालशफश्रृंगैश्च त्रिवृतं कारयेन्मणिम् ।।४४।।
धारणं तस्य कर्तव्यं कण्ठे मूर्ध्न्यथवा भुजे ।
कर्त्रे चैवोपद्रष्ट्रे च शक्त्या देया च दक्षिणा ।।४५।।
ब्राह्मणानां च सर्वेषां यथावदनुपूर्वशः ।
अलंघयन्भद्रपदामथान्त्यां करोति यः स्नानमिदं सदैव ।
भवन्ति तस्यायुतशश्च गावः परामवाप्नोति तथैव वृद्धिम् ।।४६।।
।। इति गवां शान्तिकर्म ।।

हंस उवाच

गावः पवित्रा मंगल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
यथा देवा यथा वेदा ब्राह्मणाश्च यथा द्विजाः ।।२७१/१।।
तथा गावो विनिर्दिष्टाः सर्वलोकसुखावहाः ।
एकैकं ब्राह्मणं ज्ञेयं तयोर्यज्ञः प्रतिष्ठितः ।।२।।
विप्रेषु मन्त्रास्तिष्ठन्ति गोषु सन्तिष्ठते हविः ।
गवां दानं द्विजश्रेष्ठा दुष्कृतान्यपकर्षति ।।३।।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च पंचमम् ।
पवित्रमेतन्निर्दिष्टं नराणां शोधनं परम् ।।४।।
मंगल्याश्च पवित्राश्च रक्षोघ्ना रोचनास्तथा ।
तासां श्रृंगोदकं विप्रा जाह्नवीसलिलोपमम् ।।५।।
गवां कण्डूयनान्मर्त्यः सर्वं पापं व्यपोहति ।
तासां ग्रासप्रदानेन महत्पुण्यमवाप्नुयात् ।।६।।
तासां च प्रचरं कृत्वा तथैव सलिलाशयम् ।
स्वर्गलोकमुपाश्नन्ति बहून्यब्दगणानि तु ।।७।।
तासां प्रचारभूमिं तु कृत्वा सौभाग्यवान्नरः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।।८।।
तासामावसथं कृत्वा नगराधिपतिर्भवेत् ।
तथा लवणदानेन सौभाग्यं महदश्नुते ।।९।।
आतुरां पंकलग्नां वा चौरव्याघ्रभयार्दिताम् ।
मोक्षयित्वा द्विजश्रेष्ठास्त्वश्वमेधफलं लभेत् ।।१०।।
तासामौषधदानेन विरोगस्त्वभिजायते ।
विप्रमोच्य भयेभ्यश्च न भयं विद्यते क्वचित् ।।११।।
क्रीत्वा चण्डालहस्ताच्च गोमेधस्य फलं लभेत् ।
गोपकस्त्वस्य चान्यस्य क्रीत्वा हस्तात्तथैव च ।।१२।।
कृत्वा शीतातपत्राणं तासां स्वर्गमवाप्नुयात् ।
उत्थितासूत्थितस्तिष्ठेद्विष्ठितासु च विष्ठितः ।।१३।।
भुक्तवत्सु तु चाश्नीयाज्जले पीते पिबेत्तु च ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं गोपुरीषात्तथा यवैः ।।१४।।
शरीरयात्रां कुर्वीत गोरसैरथ वा द्विजाः ।
एतद्धि गोव्रतं मासात्सर्वकल्पषनाशनम् ।।१५।।
एकां गां धारयेन्मासं दद्यात्तस्यास्तथा यवान् ।
गोमयात्तान्समश्नीयान्मासमेकमतः शुचिः ।।१६।।
मासान्ते तां तथा धेनुं दद्याद्विप्राय भक्तिमान् ।
व्रतमेतत्समुद्दिष्टं सर्वकल्मषनाशनम् ।।१७।।

राजसूयाश्वमेधाभ्यां व्रतमेतत्तथाऽधिकम् ।
व्रतेनानेन चीर्णेन कामानिष्टानवाप्नुयात् ॥१८॥
विमानेनार्कवर्णेन ब्रह्मलोकं च गच्छति ।
विनाऽपि गोप्रदानेन व्रतमेतन्महाफलम् ॥१९॥
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा शक्तिं ज्ञात्वा तथा स्वकाम् ।
गवां निर्हारनिर्मुक्तैर्वृत्तिं कृत्वा तथा यवैः ॥२०॥
पापमोक्षमवाप्नोति पुण्यं च महदश्नुते ।
रजश्च गोखुरोद्धूतं सर्वकल्पषनाशनम् ॥२१॥
यादृशात्तादृशाद्देशान्नात्र कार्या विचारणा ।
मंगल्यं च पवित्रं च तदलक्ष्मीविनाशनम् ॥२२॥
गवां हि परिवासेन भूमिः शुद्धिमवाप्नुयात् ।
तद्धि शुद्धं यदा वेश्म यत्र तिष्ठन्ति धेनवः ॥२३॥
तासां निःश्वासवातेन परं नीराजनं भवेत् ।
तासां संस्पर्शनं पुण्यं दुःस्वप्नाघविनाशनम् ॥२४॥
ग्रीवामस्तकसन्धौ तु तासां गंगा प्रतिष्ठिता ।
सर्वदेवमया गावः सर्वतीर्थमयास्तथा ॥२५॥
तासां लोमानि पुण्यानि पवित्राणि तथा द्विजाः ।
गोमयेनोपलिप्तं तु शुचि स्थानं प्रकीर्तितम् ॥२६॥
अग्न्यागारसुरागारान्गोमयेनोपलेपयेत् ।
गोमये तु सदा लक्ष्मीः स्वयमेव व्यवस्थिता ॥२७॥
गोमूत्रे च तथा गंगा दधिक्षीरघृतेषु च ।
सदा व्यवस्थितं सोमं रोचनायां सरस्वती ॥२८॥
विष्णुर्यज्ञः समाख्यातः स च गोषु प्रतिष्ठितः ।
तस्माद् गावो विनिर्दिष्टा विष्णुरेव पुरातनैः ॥२९॥
पूज्यास्तास्तु नमस्कार्याः कीर्तनीयाश्च तास्तथा ।
तासामाहारदानं च कार्यं शुश्रूषणं तथा ॥३०॥
शुश्रूषणेनेह गवां द्विजेन्द्राः प्राप्नोति लोकानमलान्विशोकान् ।
तस्मात्प्रयत्नेन गवां हि कार्यं शुश्रूषणं धर्मपरैर्मनुष्यैः ॥३१॥
॥ इति गोशुश्रूषानामाध्यायः ॥

गोदानफलनिरूपणाध्यायः

हंस उवाच

गावः पवित्रा मंगल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
तास्वायत्तानि यज्ञानि देवताऽतिथिपूजनम् ॥३०६/१॥
बलं तुष्टिश्च पुष्टिश्च तथा श्राद्धक्रिया द्विजाः ।

नासौ सम्पन्नमश्नाति यस्य धेनुर्न विद्यते ।।२।।
तस्मात्सर्वप्रदानानां गवां दानमनुत्तमम् ।
हीनांगीं क्षीरपां वृद्धां दुग्धदोहां निरिन्द्रियाम् ।।३।।
व्याधितां विषमां व्यालां तथैव प्रपलायिनीम् ।
मूल्यैस्तथाऽप्यसंशुद्धैर्हृतां च द्विजपुंगवात् ।।४।।
न दातव्या स्मृता धेनुर्दत्वा नरकमाप्नुयात् ।
ब्राह्मणो यस्तु कुरुते गोरसानां तु विक्रयम् ।।५।।
गवां च विक्रयं विप्रा विषमो यस्तथा गवाम् ।
अपात्रदोषयुक्तश्च न देया तस्य चाप्यथ ।।६।।
नैका बहूनां दातव्या न द्वयोर्द्विजपुंगवाः ।
सा तु विक्रयमापन्ना दातुर्नरकदायिनी ।।७।।
एकं पात्रमथासाद्य देयास्तु बहवः स्मृताः ।
गवां प्रदाने यत्नेन परीक्ष्यो ब्राह्मणो भवेत् ।।८।।
यथा कथंचिद्दत्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा ।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ।।९।।
दत्वा वत्सतरीं विप्रा स्वर्गलोके महीयते ।
गुर्विणीं च तथा दत्वा वसूनां लोकमश्नुते ।।१०।।
प्रसूयमानां तां दत्वा भूमिदानफलं लभेत् ।
स्रवन्त्यां च तथा दत्वा नन्दने मोदते नरः ।।११।।
श्वेतां दत्वा सोमलोके रक्तां दत्वा विभावसोः ।
कृष्णां दत्वा तथा याम्ये नीलां दत्वा च वारुणे ।।१२।।
इन्द्रलोके तु शबलामिन्दुलोके तु रोहिणीम् ।
वातरेणुसवर्णा तु वायुलोके महीयते ।।१३।।
धूम्रवर्णा तथा दत्वा वसूनां लोकमश्नुते ।
आषाढेन सवर्णा तु लोकं वारुणमाप्नुयात् ।।१४।।
सुवर्णवर्णा कौबेरं ताम्रामांगिरसं तथा ।
पलालधूम्रवर्णाभां पितृलोकं तथैव च ।।१५।।
शितिकण्ठाप्रदानेन वैश्वदेवमवाप्नुयात् ।
गौरीं दत्वा भृगूणां च वैराटाभां प्रजापतेः ।।१६।।
पाण्डुकम्बलवर्णाभां रुद्राणां लोकमाप्नुयात् ।
शुक्लबिन्दुचितां कृष्णां गन्धर्वैः सह मोदते ।।१७।।
कपिलां च तथा दत्वा यथेष्टं लोकमाप्नुयात् ।
गावः प्रकृतिवर्णास्तु कपिलाः परिकीर्तिताः ।।१८।।
कृतं तु वर्णवैचित्र्यं पूर्वं तासां तु शम्भुना ।
यथा तु गंगा सरितां धेनूनां कपिला तथा ।।१९।।

सायं प्रातश्च सततं होमकाले द्विजोत्तमाः ।
गावो ददति वै हौम्यमृषिभ्यो नात्र संशयः ॥२०॥
दुष्कृतानि दुरिष्टानि दुर्गाणि विषमाणि च ।
तरन्ति चैव पापेभ्यो धेनुदानेन मानवाः ॥२१॥
एकां गां दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।
शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ॥२२॥
शतवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं सुदुश्चरम् ।
गोभिः पूर्वविसृष्टाभिर्गच्छेम श्रेष्ठतामिति ॥२३॥
लोकेऽस्मिन्दक्षिणानां च सर्वा गा वयसोत्तराः ।
भवे तानि च लिंप्येम दोषेणाति परन्तपाः ॥२४॥
शकृत्तासां पवित्रार्थं कुर्वीरन्देवमानुषाः ।
तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥२५॥
प्रदातारश्च गोलोकान्गच्छेयुरिति मानदाः ।
एतद्धनं ददौ तासां सर्वमेव पितामहः ॥२६॥
सुरभिर्देवधेनुर्या तस्याः पुत्रत्वमागताः ।
धर्मो वृषभरूपेण महादेवध्वजः स्मृतः ॥२७॥
दशधेनुप्रदानेन यथेष्टां गतिमाप्नुयात् ।
शतं च दत्वा धर्मज्ञः शक्रलोकमुपागतः ॥२८॥
कल्पावशेषं स सुखी मोदयत्यप्सरोगणैः ।
दत्वा सहस्रं धेनूनां सर्वपापैर्विमुच्यते ॥२९॥
उक्ष्णां च ये प्रयच्छन्ति शतेन सह यूथपम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते प्रयन्त्यमरावतीम् ॥३०॥
कल्पावशेषं त्रिदिवे सुखमुष्य नरोत्तमाः ।
मानुष्ये धनसंयुक्ता भवन्ति सुखिनस्ततः ॥३१॥
सहस्रेण गवां सार्द्धं ये प्रयच्छन्ति यूथपम् ।
अलंकृतं यथा शक्त्या गोलोकं यान्ति ते नराः ॥३२॥
उक्षाणमिन्द्रियोपेतं यस्तु दद्याद् द्विजातये ।
दशधेनुफलं तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥३३॥
गोयुगं ये प्रयच्छन्ति सीरयूपशतं द्विजाः ।
सर्वकामसमृद्धस्य प्राप्नुवन्ति फलं नराः ॥३४॥
गोभिश्चतुर्भिः संयुक्तं रथं दत्वा द्विजातये ।
धान्यैर्वस्त्रैर्युतं शक्त्या शक्रलोकं व्रजन्ति ते ॥३५॥
मानुष्यमासाद्य तथा भवन्ति वसुधाधिपाः ।
शकटस्य प्रदानं तु विना गोभिर्महाफलम् ॥३६॥
विशेषेण महाभागास्तस्य गोभिर्युतस्य च ।

सशस्यं शकटं दत्वा नाकलोकं महीयते ।।३७।।
दत्वा तु धेनुं होमार्थं ब्राह्मणायाहिताग्नये ।
गोदानफलमाप्नोति होमदानफलं तथा ।।३८।।
स्नपनार्थं तथा दत्वा धेनुं रुद्रसुरालये ।
रुद्रलोकमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।।३९।।
दत्वा सचैलं वृषभं महादेवालये नरः ।
रुद्रलोकमवाप्नोति कुलमद्धरते तथा ।।४०।।
धेनूनां कपिला श्रेष्ठा वृषभः श्वेत उच्यते ।
श्वेतं तु वृषभं दत्वा फलस्यानन्त्यमश्नुते ।।४१।।
दधिक्षीररहितार्थाय वासुदेवसुरालये ।
दत्वा गां मधुपर्कार्थं चानन्तं फलमाप्नुयात् ।।४२।।
गोप्रदानरता यान्ति गोलोकं मानवोत्तमाः ।
सहाप्यसरोभिर्मुदिता विमानवरमास्थिताः ।।४३।।
अपामधस्ताल्लोको यो तस्योपरि महीधराः ।
नागानामुपरिष्टाद्भूः पृथिव्युपरि मानवाः ।।४४।।
मनुष्यलोकादूर्ध्वन्तु खगानां गतिरुच्यते ।
आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य तत्स्मृतम् ।।४५।।
देवलोकः परस्तस्माद् ब्रह्मलोकस्ततः परम् ।
तत्रोपरि गवां लोको विष्णुलोकस्ततः परम् ।।४६।।
एकस्त्वधो दुष्कृतिनां कर्मिणां पृथिवी मता ।
ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः सनातनः ।।४७।।
गवामेव हि गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः ।
एकान्तिनो विष्णुभक्ता विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ।।४८।।
गोप्रदानरता यान्ति गोलोकं सर्वकामदम् ।
तत्र कामफला वृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः ।।४९।।
सुवर्णसिकताश्चान्या विमलाम्बुयुताः शुभाः ।
यथाकामेप्सितास्तत्र भवन्ति शुभकर्मिणाम् ।।५०।।
देशा मनोहराः शुभ्रा देवारामविभूषणाः ।
दिव्येन नृत्यगीतेन वादित्रेण मनोहराः ।।५१।।
तत्रेप्सितानां कामानामाप्तिर्भवति नित्यदा ।
हेमश्रृंगीं रूप्यखुरां मुक्तालांगूलभूषणाम् ।।५२।।
अहतां वरसंवीतां तथा कांस्योपदोहिनीम् ।
त्रिरात्रं स्थण्डिले सुप्त्वा त्रिरात्रं गोरसाशनः ।।५३।।
तृप्तां तु तर्पिते दत्त्वा वाससा संवृतां द्विजाः ।
सदक्षिणां महाभागास्त्रिरात्रं गोरसैस्ततः ।।५४।।

प्राणसन्धारणं कृत्वा गवां लोके महीयते ।
यावन्ति धेनुरोमाणि तावद्वर्षाणि मानवः ॥५५॥
दत्वैवं कपिलां विप्राः प्राप्नोत्यभ्यधिकं फलम् ।
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ॥५६॥
तत्रैककालमश्नन्तो द्वितीयादशनान्नरः ।
यथोक्तं विधिना दद्यात् क्रीत्वा तु कपिलां नरः ॥५७॥
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।
गवां लोकमवाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकम् ॥५८॥
गोरसानां प्रदानेन तृप्तिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ।
तत्र वाऽश्वयुजे मासे यस्तु दद्याद् द्विजातिषु ॥५९॥
आरोग्यं महदाप्नोति यत्र यत्राभिजायते ।
तथा दध्नः प्रदानेन मंगलान्याप्नुते सदा ॥६०॥
क्षीरदस्तृप्तिमाप्नोति सर्वदुःखैर्विमुच्यते ।
क्षीरेण स्नपनं कृत्वा हरस्य प्रयतो नरः ॥६१॥
मनोऽभितापनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ।
परमान्नप्रदानेन कामानाप्नोति शाश्वतान् ॥६२॥
मासि मासि तु रेवत्यां ब्राह्मणान् घृतपायसम् ।
सदक्षिणां भोजयित्वा रूपमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥६३॥
आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् ।
आज्यं सुराणामाहारश्चाज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥६४॥
आज्येन लिंगस्नपनं नरः कृत्वा तु शूलिनः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ॥६५॥
अलक्ष्मीशमनं प्रोक्तं घृतस्नानं तथा द्विजाः ।
कल्यमुत्थाय यो गव्यघृते मुखमथात्मनः ॥६६॥
पश्यते स जहात्येव कृत्वा पापमहर्निशम् ।
अलक्ष्मीर्नश्यते चास्य क्षिप्रमेषा करीषिणी ॥६७॥
घृतदानान्नरो याति स्वर्गलोकमसंशयम् ।
मासे चाश्वयुजे नित्यं घृतं यस्तु प्रयच्छति ॥६८॥
कल्यमुत्थाय विप्रेभ्यः प्रीणयेच्च तथाऽश्विनौ ।
स रूपं महदाप्नोति तथा रोगैश्च मुच्यते ।
एवं महाफलं दानं गोरसानां तथा गवाम् ॥६९॥
प्रयच्छते यः कपिलां सचैलां कांस्योपदोहां कनकाग्रश्रृंगीम् ।
तैस्तैर्गुणैः कामदुधा च भूत्वा नरं प्रदातारमुपैति सा गौः ॥७०॥
यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वास्तावत्फलं प्राप्नुते गोप्रदाता ।
पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुलं च सर्वमासप्तमं तारयते परत्र ॥७१॥

॥ इति गोदानफलनिरूपणाध्यायः ॥

घृतधेनुदानम्

हंस उवाच

घृतधेनुप्रदानं च निबोधत द्विजोत्तमाः ।
गव्यस्य सर्पिषः कुम्भं पूर्णं तु परिकल्पयेत् ॥१॥
कलशं च तथा पूर्णं तस्या वत्सं प्रकल्पयेत् ।
कांस्यापिधानसच्छन्नसितवस्त्रयुतं तथा ॥२॥
हिरण्यगर्भौ कर्तव्यावनुलिप्तौ च बाह्यतः ।
इक्षुयष्टिमयान्पादान्खुरान् रूप्यमयांस्तथा ॥३॥
सौवर्णे चाक्षिणी कार्ये श्रृंगे चागुरुकाष्ठजे ।
सप्तधान्यैश्च कर्तव्ये तस्य पार्श्वे पृथक्कृते ॥४॥
तस्य पट्टं च कर्तव्यं कम्बलं च द्विजोत्तमाः ।
कुर्यात् तुरुष्करं दूरे प्राणे हेममयांस्तनान् ॥५॥
तद्वच्छर्करया जिह्वां गुडक्षीरमयं मुखम् ।
क्षौमसूत्रेण लांगूलं रोमाणि सितसर्षपैः ॥६॥
ताम्रपत्रमयं पृष्ठं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।
एतद्विरचनं कृत्वा घृतक्षीराभिषेचनैः ॥७॥
हरिर्घृतार्चिषेत्येवं नाम्ना सम्पूजयेद्विभुम् ।
ततस्तु गन्धपुष्पान्नधूपवस्त्रादिभिर्नरः ॥८॥
घृतेन दीपं दद्याच्च तथैव च घृतं दिशः ।
होमं विप्रा यदा धेनुं दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥९॥
घृताची प्रीयते विप्रं कल्पयित्वा घृतार्चिषम् ।
एकरात्रं च तां दत्वा घृताहारी भवेन्नरः ॥१०॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लोकमाप्नोति शाश्वतम् ।
अनेन विधिना स्नात्वा सोपवासो नरः शुचिः ॥११॥
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।
विमानेनार्कवर्णेन गवां लोके महीयते ॥१२॥
घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः ।
यत्र कामफला वृक्षा यत्र सिद्धिस्तु मानसी ॥१३॥
गन्धर्वाप्सरसां यत्र सततं गीतनर्तनम् ।
तत्रास्ते सुचिरं लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१४॥
मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगः शीलेन रूपेण धनेन युक्तः ।
मनोऽभिरामः प्रमदाप्रियश्च धनान्वितः सर्वसुखोपपन्नः ॥१५॥
॥ इति घृतधेनुदानकल्पवर्णनम् ॥

अथ तिलधेनुदानाध्यायः

हंस उवाच

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वपापभयापहम् ।
धेन्वाकारां तु तां कुर्यादाविकेकं बले बुधः ॥३०८/१॥
तिलषोडशभिः प्रस्थैश्चतुर्भिर्वत्समेव तु ।
तिलप्रसारणं कुर्याद्धेन्वा धेनुप्रमाणतः ॥२॥
ततस्तु रचयेद्धेनुं रत्नैर्वक्ष्याम्यहं द्विजाः ।
हेमश्रृंगी रूप्यखुरां गन्धघ्राणवतीं शुभाम् ॥३॥
मिष्टान्नजिह्वां कुर्वीत गुडास्यां सूत्रकम्बलाम् ।
इक्षुपादां ताम्रपृष्ठां कुर्यान्मुक्ताफलेक्षणाम् ॥४॥
प्रशस्तपत्रश्रवणां फलदन्तवतीं शुभाम् ।
स्रग्दामपुष्पां कुर्वीत नवनीतस्तनान्विताम् ॥५॥
फलैर्मनोहरैर्भक्ष्यैर्मणिमुक्ताफलान्विताम् ।
शुभ्रवस्त्रयुगच्छन्नां चारुच्छत्रसमन्विताम् ॥६॥
कांस्योपदोहनां कृत्वा वासुदेवं तु पूजयेत् ।
गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा ॥७॥
जुहुयाच्च तिलानेव नाम्ना तस्यैव मानवः ।
तमेव प्रीणये दद्याद् धेनुं तामाहिताग्नये ॥८॥
त्रिरात्रं यस्तिलाहारस्तिलधेनुं प्रयच्छति ।
दत्वैकरात्रं च पुनस्तिलानत्ति द्विजोत्तमाः ॥९॥
चान्द्रायणादभ्यधिकं शस्तं तत्तिलभक्षणम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पितरं सपितामहम् ॥१०॥
तस्यापि पितरं चैव तारयेद्दुष्कृतान्नरः ।
आत्मानं पुत्रपौत्रांश्च प्रपौत्रमपि तारयेत् ॥११॥
सुहृदं वाऽप्यथोद्दिश्य तिलधेनुप्रदो नरः ।
तारयेद्दुष्कृतात्तं च यमुद्दिश्य प्रयच्छति ॥१२॥
यश्च गृह्णाति विधिवद्दीयमानां च पश्यति ।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥१३॥
महापातकसंयुक्तो युक्तो यश्चोपपातकैः ।
तिलधेनुप्रदानेन सोऽपि पावनमाप्नुयात् ॥१४॥
स लोकमासाद्य नरो वसूनां तत्रापि भुक्त्वा त्रिदशेन्द्रभोगान् ।
मानुष्यामासाद्य भवत्यरोगो धनान्वितो रूपसुखोपपन्नः ॥१५॥
॥ इति तिलधेनुदानम् ॥

जलधेनुदानाध्यायः

हंस उवाच

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीतये जलशायिनः ।
जलकुम्भं द्विजश्रेष्ठाः सुवर्णरजतान्वितम् ॥१॥
कल्पयेद्रत्नगर्भं च स्थापयेत्तं यवोपरि ।
सर्वधान्यैस्तथा ग्राम्यैः समन्तात्परिवारयेत् ॥२॥
सितवस्त्रयुगच्छन्नं दूर्वापल्लवशोभितम् ।
कुष्ठमांसीमुरोशीरबालुकाऽऽमलकैर्युतम् ॥३॥
प्रियंगुपत्रसहितं सितयज्ञोपवीतिनम् ।
सच्छत्रोपानहं चैव सोष्णीषं परिकल्पयेत् ॥४॥
तिलपात्रैर्युतं कृत्वा सहिरण्यैश्चतुर्दिशम् ।
दध्योदनयुतेनाथ पात्रेण स्थगितं मुखे ॥५॥
कल्पयेदेवमेवं तु वारिधानीं तु वत्सकम् ।
उपोषितः समभ्यर्च्य देवेशं जलशायिनम् ॥६॥
पुष्पधूपोपहारैस्तु यथा विभवमाश्रितः ।
अहताम्बरवीताय दद्याद्विप्राय भक्तिमान् ॥७॥
जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ।
इति चोच्चार्य तं दद्यात्प्रीणयेच्च द्विजोऽपि तम् ॥८॥
अहोरात्रोषितो दद्याद्यथाविधि मयेप्सितम् ।
अपक्वान्नाशिना स्थेयमहोरात्रमतः परम् ॥९॥
अनेन विधिना दत्वा जलधेनुं द्विजोत्तमान् ।
सर्वाह्लादमवाप्नोति कामानाप्नोति शाश्वतान् ॥१०॥
मोक्षमाप्नोति सर्वेभ्यस्तपोभ्यः स तथा नरः ।
सौभाग्यं महदाप्नोति रूपं च परमं तथा ॥११॥
पुरुषः स तथा याति यस्य यस्य च दर्शनम् ।
करोति परमाह्लादं तस्य तस्य द्विजोत्तमाः ॥१२॥
नित्याभितृप्तो भवति तथैव च निरामयः ।
सर्वबाधाप्रशमनं प्राप्नोति गतकल्मषः ॥१३॥
वारुणं लोकमाप्नोति सकृद्दाता द्विजोत्तमः ।
दत्वा तामसकृद्विप्र लोकमाप्नोति वैष्णवम् ॥१४॥
आह्लादहेतोः परमं पवित्रं दानं मयेदं कथितं द्विजेन्द्राः ।
धन्यं यशस्यं दुरितापहारि कामप्रदं लोकहितं प्रशस्तम् ॥१५॥

इति जलधेनुदानाध्यायः

श्रीराधे

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पंचेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।।प.सृ.१९।३१५।।
सुकर्मधर्मार्जितजीवितानां सदा च सन्तुष्य गृहे रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि धर्मो नियमस्थितानाम् ।।३१६।।
न शब्दशास्त्रे निरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ।।३१७।।
एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।
अध्यात्मयोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य ।।३१८।।
अपमाने न कुप्येत सम्माने न प्रहृष्यति ।
समदुःखसुखो धीरः स शान्त इति कीर्त्यते ।।३३०।।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति ।
दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ।। प.पु.सृ.५/१३१/
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः ।
अतीवरोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य ।।५।१३२।।
नवनीतोपमा वाणी करुणाकोमलं मनः ।
धर्मबीजप्रसूतानामेतत्प्रत्यक्षलक्षणम् ।।१३३।।
दयादारिद्र्यहृदयं वचः क्रकचकर्कशम् ।
पापबीजप्रसूतानामेतत्प्रत्यक्षलक्षणम् ।।१३४।।

डायरी २।२ से

<u>वराहपुराणे</u> नाचिकेतोपाख्याने गोमहिमा चित्रगुप्तोक्तः

सर्वदेवमया देव्यः सर्ववेदमयास्तथा ।
अमृतं धारयन्त्यश्च प्रचरन्ति महीतले ।।२०४/२०।।
तीर्थानां परमं तीर्थमतस्तीर्थं न विद्यते ।
पवित्रं च पवित्राणां पुष्टीनां पुष्टिरेव च ।।२१।।
तस्मात्पुरस्तु दातव्यं गवां वै मेध्यकारणात् ।
दध्नो हि त्रिदशाः सर्वे क्षीरेण च महेश्वरः ।।२२।।
घृतेन पावको नित्यं पायसेन पितामहः ।
सकृद्दत्तेन प्रीयन्ते वर्षाणां हि त्रयोदश ११२३।।
तां दत्वा चैव पीत्वा च प्रेतो मेध्यस्तु जायते ।
पंचगव्येन पीतेन वाजिमेधफलं लभेत् ।।
गव्यं तु परमं मेध्यं गव्यादन्यन्न विद्यते ।।२४।।

दन्तेषु मरुतो देवा जिह्वायां तु सरस्वती ।
खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु तु पन्नगाः ॥२५॥
सर्वसन्धिषु साध्याश्च चन्द्रादित्यौ तु लोचने ।
सर्वर्क्षाणि च ककुदे लांगूले धर्म आश्रितः ॥२६॥
अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्रवे जाह्नवी नदी ।
नानाद्वीपसमाकीर्णाश्चत्वारः सागरास्तथा ॥२७॥
ऋषयो रोमकूपेषु गोमये पद्मधारिणी ।
रोमेषु सन्ति विद्याश्च त्वक्केशेष्वयनद्वयम् ॥२८॥
धैर्यं धृतिश्च शान्तिश्च पुष्टिर्वृद्धिस्तथैव च ।
स्मृतिर्मेधा तथा लज्जा वपुः कीर्तिस्तथैव च ॥२९॥
विद्या शान्तिर्मतिश्चैव सन्नतिः परमा तथा ।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति एता गावो न संशयः ॥३०॥
यत्र गावो जगत्तत्र देवदेवपुरोगमाः ।
यत्र गावस्तत्र लक्ष्मीः सांख्यधर्मश्च शाश्वतः ॥
सर्वरूपेषु ता गावस्तिष्ठन्त्यभिमताः सदा ॥३१॥
॥इति ॥

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥१९१/४५॥

यमादेशः

उच्छिष्टान्नप्रदातारं पापाचारमधार्मिकम् ।
अंगारैः पच्यतामेष त्रीणि वर्षशतानि च ॥२००/६५॥

<u>तिलधेनुदानम् माहात्म्यम्</u>

राजा श्वेत के प्रश्न पूछने पर वसिष्ठ ने कहा –

श्वेत उवाच

अदत्तस्य सम्प्राप्तिस्तन्ममाक्ष्व पृच्छतः ।
शिरसा भक्तियुक्तेन याचितोऽसि महामुने ॥९८/७७॥

वसिष्ठ उवाच

अस्त्येकं कारणं मीन जायते तन्न संशयः ।
तच्छृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं मयाऽनघ ॥७८॥

वसिष्ठ उवाच

आसीद्राजा पुराकल्पे विनीताश्वेति विश्रुतः ।
स सर्वमेधमारेभे स्वयं क्रतुवरं नृप ॥७९॥
यजतानेन विप्रभ्यो दत्ता गावो द्विपा वसु ।

नान्नं तेन तदा दत्तं स्वल्पं मत्वा यथा त्वया ।
ततः कालेन महता मृतोऽसौ जाह्नवीजले ॥८०॥
कृत्वा पुण्यं विनीताश्वः सार्वभौमो नृपो महान् ।
स्वर्गं च गतवान् सोऽपि यथा राजन् भवान् प्रभो ॥८१॥
असावपि क्षुधाविष्ट एवमेव गतो नृपः ।
मर्त्यलोके नदीतीरं गंगायां नीलपर्वतम् ॥८२॥
विमानेनार्कवर्णेन भास्वता देववन्नृपः ।
ददर्श च तदा राजा क्षुधितः स्वं कलेवरम् ॥८३॥
पुरोहित ददर्शाथ होतारं जाह्नवीतटे ।
तं दृष्ट्वाऽसावपि नृपः पप्रच्छ मुनिसत्तमम् ।
क्षुधायाः कारणं किं मे स होता तमुवाच ह ॥८४॥
तिलधेनुं भवान् राजन् जलधेनुं च सत्तम ।
घृतधेनुं दधिधेनुं रसधेनुं च पार्थिव ॥८५॥
देहि शीघ्रं येन भवान् क्षुधया वर्जितो भवेत् ।
तपते यावदादित्यस्तपते वाऽपि चन्द्रमाः ॥८६॥
एवमुक्तस्ततो राजा तं पुनः पृष्टवानिदम् ।
तिलधेनोर्विधानं तु विनीताश्वो नराधिपः ॥८७॥
विनीताश्व उवाच
कथं सा दीयते ब्रह्मंस्तिलधेनुर्जिगीषुभिः ।
भुंक्ते स्वर्गं च विपेन्द्र तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥८८॥
होता उवाच
विधानं तिलधेनोस्तु त्वं श्रृणुष्व नराधिप ॥८९॥
चतुर्भिः कुडवैश्चैव प्रस्थ एकः प्रकीर्तितः ।
तैः षोडशैः भवेत्सा तु चतुर्भिर्वत्सको भवेत् ॥९०॥
इक्षुदण्डमयाः पादाः दन्ताः पुष्पमयाः शुभाः ।
नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयी शुभा ॥९१॥
पुच्छे स्रक्कल्पनीया स्याद् घण्टाऽऽभरणभूषिता ।
ईदृशीं कल्पयित्वा तु स्वर्णश्रृंगीं तु कारयेत् ॥९२॥
कांस्यदोहां रौप्यखुरां पूर्वधेनुविधानतः ।
कृत्वा तां ब्राह्मणायाशु दापयेत नराधिप ॥९३॥
कृष्णाजिनं धेनुवासो नन्दितां कल्पितां शुभाम् ।
सूत्रेण सूत्रितां कृत्वा सर्वरत्नसमन्विताम् ।
सर्वौषधिसमायुक्तां मन्त्रपूतां तु दापयेत् ॥९४॥
अन्नं मे जायतामन्यत्पानं सर्वरसास्तथा ।
सर्वं सम्पादयास्माकं तिलधेनो द्विजार्पितम् ॥९५॥

गृह्णामि देवि त्वां भक्त्या कुटुम्बार्थं विशेषतः ।
भजस्व कामान् मां देवि तिलधेनो नमोऽस्तुते ॥९६॥
एवं विधां ततो दद्यात् तिलधेनुं नृपोत्तम ।
सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते नात्र संशयः ॥९७॥
यश्चेदं श्रृणुयाद् भक्त्या कुर्यात्कारयतेऽपि वा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं च गच्छति ॥९८॥
।।इति तिलधेनुदानविधिवर्णनम् ।।

जलधेनुदानविधिवर्णनम्

होता उवाच

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
गोमयीमण्डलं कृत्वा गोचर्म तदनन्तरम् ॥१॥
तत्र मध्ये च राजेन्द्र पूर्णकुम्भं तु विन्यसेत् ।
जलपूर्वं सुगन्धाढ्यं कर्पूरागुरुचन्दनैः ।
वासितं गन्धतोयेन तां धेनुं परिकल्पयेत् ॥२॥
वत्सं तथाऽपरं कल्प्य घृतेन परिपूरितम् ।
वर्द्धनीकं महाराज पत्रपुष्पैः समन्वितम् ॥
दूर्वाकुरैरुपस्तीर्य स्रग्दानैश्च विभूषितम् ॥३॥
पंचरत्नानि निक्षिप्य तस्मिन् कुम्भे नराधिप ।
मांसीमुशीरं कुष्ठं च तथा शैलेयबालुकम् ॥४॥
आमलाः सर्षपाः श्वेताः सर्वधान्यानि पार्थिव ।
चतुर्दिक्ष्वपि पात्राणि चत्वार्येव प्रकल्पयेत् ॥५॥
एकं घृतमयं पात्रं द्वितीयं दधिपूरितम् ।
तृतीयं मधुनश्चैव चतुर्थं शर्कराऽऽवृतम् ॥६॥
सुवर्णमुखचक्षूंषि श्रृंगाः कृष्णागरेषु च ।
प्रशस्तपत्रश्रवणां मुक्ताफलमयीक्षणाम् ॥७॥
ताम्रपृष्ठां कांस्यदोहां दर्भरोमसमन्विताम् ।
पुच्छं सूत्रमयं कृत्वा कृष्णाभरणघण्टिकाम् ॥८॥
कम्बले पुष्पमालां च गुडास्यां शुक्तिदन्तिकाम् ।
जिह्वां शर्करया कृत्वा नवनीतेन च स्तनम् ॥
इक्षुपादां तु राजेन्द्र गन्धपुष्पोपशोभिताम् ॥९॥
कृष्णाजिनोपरि स्थाप्य वस्त्रैराच्छादितां तु ताम् ।
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य विप्राय विनिवेदयेत् ॥१०॥
एवं धेनुं तदा दत्वा ब्राह्मणे वेदपारगे ।
साधुविप्राय राजेन्द्र श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥

तपोवृद्धे वयोवृद्धे दातव्यं च कुटुम्बिने ।।११।।
यो ददाति नरो राजन् पश्यति च श्रृणोति च ।
प्रतिगृह्णाति यो विप्रः सर्वे तरन्ति दुष्कृतम् ।।१२।।
ब्रह्महा दस्युहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
विमुक्तः सर्वपापैस्तु विष्णुलोकं स गच्छति ।।१३।।
योऽश्वमेधेन यजते समाप्तवरदक्षिणः ।
जलधेनुं च यो दद्यात् सममेतन्नराधिप ।।१४।।
जलाहारस्त्वेकदिनं तिष्ठेच्च जलधेनुदः ।
अथ पयोव्रतस्तिष्ठेदेकाहं व्रतमास्थितः ।।
ग्राहकोऽपि त्रिरात्रं वै तिष्ठेदेवं न संशयः ।।१५।।
यत्र क्षीरवरा नद्यो मधुपायसकर्दमाः ।
यत्र चाप्सरसां गीतं तत्र यान्ति जलप्रदाः ।।१६।।
दाता च दापकश्चैव प्रतिग्राही च यो द्विजः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुमेति न संशयः ।।१७।।
जलधेनुविधानं यः श्रृणुयात्कीर्तयेत वा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गमेति जितेन्द्रियः ।।१८।।
।। इति जलधेनुदानविधिः ।।

रसधेनुदानविधिवर्णनम्

रसधेनुं महाराज कथयामि समासतः।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशास्तरे ।।१००/१।।
रसस्य तु घटं राजन् सम्पूर्णं स्थापयेत्ततः ।
तुरीयांशेन वत्सं तु तत्पार्श्वे स्थापयेत्सुधीः ।।२।।
एवं कार्या रसधेनुरिक्षुपादसमन्विता ।
सुवर्णश्रृंगाभरणा वस्त्रपुच्छा घृतस्तनी ।।
पुष्पकम्बलसंयुक्ता शर्करामुखजिह्विका ।।३।।
दन्ताः फलमयास्तस्याः पृष्ठताम्रमयीं शुभाम् ।।
पुष्परोमां तु राजेन्द्र मुक्ताफलकृतेक्षणाम् ।
सप्तव्रीहिसमायुक्तां चतुर्दिक्षु च दीपिकाम् ।।४।।
सर्वोपस्करसंयुक्तां सर्वगन्धादिवासिताम् ।
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्षु निवेशयेत् ।।५।।
ब्रह्मणे वेदविदुषे श्रोत्रियायाहिताग्नये ।
पुराणज्ञे विशेषेण साधुवृत्ताय धीमते ।
तादृशाय प्रदातव्या रसधेनुः कुटम्बिने ।।६।।
दाता स्वर्गमवाप्नोति सर्वपातकवर्जितः ।

दाता च ग्राहको वाऽथ एकाहं रसभोजने ।।७।।
सोमपानफलं तस्य सर्वक्रतुफलं भवेत् ।
दीयमानां तु पश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ।।८।।
धेनुं च पूजयित्वाऽग्रे गन्धधूपस्रगादिभिः ।।
पूर्वोक्तान् धेनुमन्त्रांश्च तान् सर्वान् प्रयतः स्मरेत् ।।९।।
एवमुच्चारयित्वा तु दीयते वै द्विजोत्तमे ।
दशपूर्वान् परांश्चैव आत्मानं चैकविंशकम् ।
प्रापयेत्परमं स्थानं स्वर्गान्नावर्तते पुनः ।।१०।।
एषा ते कथिता राजन् रसधेनुरनुत्तमा ।
ददस्व च महाराज परं स्थानं तथाऽऽप्नुहि ।।११।।
य इदं पठते नित्यं श्रृणुयादथ भक्तितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।।१२।।
।। इति रसधेनुदानविधिः ।।

<u>गुडधेनुदानविधिः</u>

गुडधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वकामार्थसाधिनीम् ।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशास्तृते ।।
तस्योपरि कृतं वस्त्रं गुडमानीय पुष्कलम् ।।१०१/१।।
कृत्वा गुडमयीं धेनुं सवत्सां कांस्यदोहिनीम् ।
सौवर्णमुखश्रृंगीं च दन्ताश्च मणिमौक्तिकैः ।।२।।
ग्रीवा रत्नमयी त्वस्या घ्राणं गन्धमयं तथा ।
श्रृंगौ चागुरुकाष्ठेन पृष्ठिं ताम्रमयीं तथा ।।३।।
कांस्योपदोहनं तस्याः पुच्छं क्षौममयं स्मृतम् ।
इक्षुपादां रौप्यखुरां कम्बले पट्टसूत्रकम् ।।४।।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन घण्टाचामरभूषिताम् ।
कांस्योपदोहनीं पात्रीं सर्वाभरणभूषिताम् ।।५।।
प्रशस्तपत्रश्रवणां नवनीतस्तनीं बुधः ।
फलैर्नानाविधैस्तस्या उपशोभं प्रकल्पयेत् ।।६।।
उत्तमा गुडधेनुः स्यात् सदा भारचतुष्टयम् ।
मागधेन तु तौल्येन चतुर्थांशेन वत्सकम् ।।७।।
मध्यमा च तदर्धेन भारेणैकेन चाधमा ।
वित्तहीनो यथाशक्त्या शतैरष्टाभिरेव च ।
अत ऊर्ध्वं तु कर्तव्यं गृहवित्तानुसारतः ।।८।।
गन्धपुष्पादिभिः कृत्वा धूपनैवेद्यदीपकान् ।
ईदृशीं कल्पभित्वा तु ब्राह्मणाय निवदयेत् ।।

साधुवृत्ताय शान्ताय तथाऽमत्सरिणे नृप ।।९।।
एवं कृत्वा द्विजेन्द्राय आहिताग्नेर्विशेषतः ।
ईदृशाय प्रदातव्या सहस्रकनकेन तु ।।१०।।
तदर्धेन महाराज तस्याप्यर्द्धेन वा पुनः ।
शतेन वा शतार्धेन यथाशक्त्या तु दापयेत् ।।११।।
छत्रिका पादुके दत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।१२।।
या श्रियादीनि मन्त्राणि पूर्वोक्तानि स्मरेद् बुधः ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।१३।।
वाचाकृतं कर्मकृतं मनसा यद्विचिन्तितम् ।
मानकूटं तुलाकूटं कन्याऽनृतं गवानृतम् ।
तत्सर्वं नाशयेत्पापं गुडधेनुर्द्विजार्पिता ।।१४।।
दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ।
यत्र क्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ।
मुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ।।१५।।
दश पूर्वान् दश परान् तारयेद् गुडधेनुदः ।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।।
सर्वदैव प्रदातव्या पात्रं दृष्ट्वा महामते ।।१६।।
एतदेव विधानं स्यादेते चोपस्कराः स्मृताः ।
मन्त्रावाहनसंयोगः सदा पर्वणि पर्वणि ।।१७।।
गुडधेनुः प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
सर्वकामप्रदा नित्यं सर्वपापहरा शुभा ।।१८।।
गुडधेनोः प्रसादात्तु सौभाग्यमखिलं लभेत् ।
वैष्णवं पदमाप्नोति स्मरणे स्मरणे हरेः ।।१९।।
।। इति गुडधेनुदानविधिः ।।

शार्कराधेनुदानविधिः

तद्वच्च शर्कराधेनुं श्रृणु राजन् यथार्थतः ।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ।।१०२/१।।
धेनुं शर्करया राजन् कृत्वा भारचतुष्टयम् ।
उत्तमा कथ्यते सद्भिश्चतुर्थांशेन वत्सकम् ।।२।।
तदर्द्धं मध्यमा प्रोक्ता कनिष्ठा भारकेण तु ।
तद्वद्वत्सं प्रकुर्वीत चतुर्थांशेन तत्त्वतः ।।३।।
अथ कुर्यादष्टशतैरूर्ध्वं नृपतिसत्तम ।
स्वशक्त्या कारयेद्धेनुं यथात्मानं न पीडयेत् ।।४।।

सर्वबीजानि संस्थाप्य चतुर्दिक्षु समन्ततः।
सौवर्णमुखश्रृंगे च मौक्तिकानयने तथा ॥५॥
गुडेन तु मुखं कार्यं जिह्वा पिष्टमयी तथा ।
कम्बलं पट्टसूत्रेण कण्ठाभरणभूषितम् ॥६॥
इक्षुपादां रौप्यखुरां नवनीतमयस्तनाम् ।
प्रशस्तपत्रश्रवणां सितचामरभूषिताम् ॥
पंचरत्नसमायुक्तां वस्त्रैराच्छादितोपरि ॥७॥
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
श्रोत्रियाय दरिद्राय साधुवृत्ताय धीमते ॥८॥
वेदवेदांगविदुषे आहिताग्नेर्विशेषतः ।
अदुष्टाय प्रदातव्या न तु मत्सरिणे क्वचित् ॥९॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते शशिक्षिये ।
एषु पुण्येषु कालेषु यदृच्छा वा सदाऽर्पयेत् ॥१०॥
सत्पात्रन्तु द्विजं दृष्ट्वा आगतं श्रोत्रियं गृहे ।
तादृशाय प्रदातव्या पुच्छदेशे विगृह्य च ॥११॥
पूर्वाभिमुखमास्थाय अथवा स उदङ्मुखः ।
धेनुं पूर्वामुखीं कृत्वा वत्समुत्तरतो न्यसेत् ॥१२॥
दानकाले तु ये मन्त्रास्तान् पठित्वा समर्पयेत् ।
संपूज्य विधिवद्विप्रं मुद्रिकाकर्णभूषणैः ॥१३॥
स्वशक्त्या दक्षिणां दत्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥
विप्रहस्ते तु तद्दत्वा गन्धपुष्पं सचन्दनम् ।
धेनुं समर्पयेत्तस्य मुखं च न विलोकयेत् ॥१४॥
एकाहं शर्कराहारो ब्राह्मणस्त्रिदिनं वसेत् ।
सर्वपापहरा धेनुः सर्वकामप्रदायिनी ॥
सर्वकामसमृद्धस्तु जायते नात्र संशयः ॥१५॥
विष्णुलोकं नरो गच्छेद्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
स्वपितृंस्तारयेच्चैव मातामहसमन्वितान् ॥
आत्मानं विष्णुसायुज्यं नयते नात्र संशयः ॥१६॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
॥ इति शर्कराधेनुदानविधिः ॥

<u>अथ मधुधेनुदानविधिः</u>

होता उवाच

मधुधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशिनीम् ।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥१॥

धेनुं मधुमयीं कृत्वा सम्पूर्णघटषोडशीम् ।
चतुर्थेन तथांशेन वत्सकं परिकल्पयेत् ।।२।।
सौवर्णं तु मुखं कृत्वा श्रृंगे चागुरुचन्दनैः ।
पृष्ठं ताम्रमयं कृत्वा सास्नां पट्टमयीं तथा ।।३।।
पादानिक्षुमयान् कृत्वा सितकम्बलकम्बलाम् ।
मुखं गुडमयं कृत्वा जिहवां शर्करया तथा ।।४।।
ओष्ठौ पुष्पमयौ तस्या दन्ताः फलमयाः स्मृताः ।
दर्भरोमा धरादेवी रौप्यखुरविभूषिता ।।५।।
प्रशस्ते पत्रश्रवणां प्रमाणात् परितस्तता ।
सर्वलक्षणसंयुक्ता सप्तधान्यानि दापयेत् ।।६।।
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्ष्वपि दापयेत् ।
छादितां वस्त्रयुग्मेन घण्टाभरणभूषिताम् ।।
कांस्योपदोहिनीं कृत्वा गन्धपुष्पैस्तु धूपिताम् ।।७।।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।
संक्रान्त्यामुपरागे च सर्वकालं यदृच्छया ।।८।।
द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तिं दृष्ट्वा तां तु प्रदापयेत् ।
ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।।९।।
आर्यावर्त्ते समुत्पन्ने वेदवेदांगपारगे ।
तादृशाय प्रदातव्या मधुधेनुर्नृपोत्तम ।।१०।।
पुच्छदेशोपविष्टस्तु गन्धधूपादिपूजिताम् ।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन मुद्रिकाकर्णमात्रकैः ।।११।।
स्वशक्त्या दक्षिणां दत्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
जपपूर्वं तु कर्तव्यं पश्चाद्दानं समर्पयेत् ।।१२।।
''रसज्ञा सर्वदेवानां सर्वभूतहिते रता ।
प्रीयन्तां पितृदेवाश्च मधुधेनो नमोऽस्तुते ।।''
एवमुच्चार्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।१३।।
''अहं गृह्णामि त्वां देवि कुटुम्बार्थे विशेषतः ।
कामं कामदुधे कामान् मधुधेनो नमोऽस्तुते ।।१४।।''
मधु व्वातेति मन्त्रेण दापयाशुचिकेन तु ।
दत्वा धेनुं महाराज छत्रिकोपानहौ तथा ।।१५।।
एवं यः कुरुते भक्त्या मधुधेनुं नराधिप ।
दत्वा दानं पायसेन मधुना च दिनं नयेत् ।।१६।।
ब्राह्मणोऽपि त्रिरात्रं तु मधुपायससंयुतम् ।
एवं कृते तु यत्पुण्यं तन्निबोध नराधिप ।।१७।।
यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ।।

ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र गच्छति धेनुदः ।।१८।।
तत्र भोगानथो भुंक्ते ब्रह्मलोके स तिष्ठति ।
कीडित्वा सुचिरं कालं पुनर्मृत्युमुपागतः ।।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगान् विष्णुलोकं स गच्छति ।।१९।।
दश पूवान् दश परानात्मानं चैकविंशतिम् ।
नयते विष्णुसायुज्यं मधुधेनुप्रसादतः ।।२०।।
य इदं श्रृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वाऽपि मानवः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।।२।।।

।। इति मधुधेनुदानविधिः ।।

<u>क्षीरधेनुदानम्</u>

क्षीरधेनुं प्रवक्ष्यामि तां निबोध नराधिप ।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे गोमयेन नृपोत्तम ।।१।।
गोचर्ममात्रमानेन कुशानास्तीर्य सर्वतः ।
तत्रोपरि महाराज न्यसेत्कृष्णाजिनं बुधः ।।२।।
तत्रोपरि कुण्डलिकां गोमयेन कृतामपि ।
क्षीरकुम्भं ततः स्थाप्य चतुर्थांशेन वत्सकम् ।।३।।
सुवर्णमुखश्रृंगे च चन्दनागुरुसंयुते ।
प्रशस्तपत्रश्रवणां तिलपात्रोपरि न्यसेत् ।।४।।
मुखं गुडमयं तस्या जिहवा शर्करया तथा ।
फलप्रशस्तदशनां मुक्ताफलमयेक्षणाम् ।।५।।
इक्षुपादां दर्भरोमां सितकम्बलकम्बलाम् ।
ताम्रपृष्ठीं कांस्यदोहां पट्टसूत्रमयं शुभम् ।।६।।
पुच्छं च नृपशार्दूल नवनीतमयस्तनीम् ।
स्वर्णश्रृंगां रौप्यखुरां पंचरत्नसमन्विताम् ।।७।।
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्ष्वपि स्थापयेत् ।
सप्तव्रीहिसमायुक्तां दिक्षु सर्वासु स्थापयेत् ।।८।।
एवं लक्षणसुंयुक्तां क्षीरधेनुं प्रकल्येत् ।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ।।९।।
धूपदीपादिकं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
आच्छाद्यालंकृतां कृत्वा मुद्रिकाकर्णकुण्डलैः।।१०।।
पट्टकोपानहौ छत्रं दत्वा दानं समर्पयेत् ।
अनेनैव तु मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रदापयेत् ।।११।।
या धेनुः सर्वभूतानामित्यादि नरपुंगव ।
आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रसादयेत् ।।१२।।
यो गृहणाति पठेन्मन्त्रं ग्राहको राजसत्तम ।

दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ।।१३।।
एतां हेमसहस्रेण शतेनाथ स्वशक्तितः ।
शतार्द्धमथवाप्यर्द्धं तथार्द्धं च यथेच्छया ।।
दत्वा धेनुं महाराज श्रृणु तस्यापि यत्फलम् ।।१४।।
षष्टिवर्षसहस्रन्तु रुद्रलोके महीयते ।।
पितृपितामहैः सार्द्धं ब्रह्मणो भवनं व्रजेत् ।।१५।।
दिव्यं विमानमारूढो दिव्यस्रगनुलेपनः ।
क्रीडित्वा सुचिरं कालं विष्णुलोकं स गच्छति ।।१६।।
द्वादशदित्यसंकाशे विमाने वरमण्डिते ।
गीतवादित्रनिर्घोषैरप्सरोगणसेविते ।।
तत्रोष्य विष्णोः सौराजं विष्णसायुज्यतां व्रजेत् ।।१७।।
य इदं श्रावयेद्राजन् पठेद्वा भक्तिभावितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।।१८।। इति

<u>अथ दधिधेनुदानम्</u>

होता उवाच

दधिधेनोर्महाराज विधानं श्रृणु साम्प्रतम् ।
अनुलिप्ते महीभागे गोमयेन नराधिप ।।१।।
गोचर्ममात्रे तु पुनः पुष्पप्रकरशोभिते ।
कुशैरास्तीर्य वसुधां कृष्णाजिनकुशोत्तराम् ।।२।।
दधिकुम्भं सुसंस्थाप्य सदा धान्यचयोपरि।
चतुर्थांशेन वत्सन्तु सौवर्णमुखमण्डितम् ।।३।।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन पुष्पगन्धैस्तु पूजिताम् ।
ब्राह्मणाय कुलीनाय साधुवृत्ताय धीमते ।।
क्षमादमशमोपेते तादृशाय प्रदापयेत् ।।४।।
पुच्छदेशोपविष्टस्तु मुद्रिकाकर्णमात्रकैः ।
पादुकोपानहौ छत्रं दत्वा मन्त्रमिमं पठेत् ।
दधिक्राव्णेतिमन्त्रेण दधिधेनुं प्रदापयेत् ।।५।।
एवं दधिमयां धेनुं दत्वा राजर्षिसत्तम ।
एकाहारो दिनं तिष्ठेद्दध्ना च नृपनन्दन ।।६।।
यजमानो वसेद्राजन् त्रिरात्रं च द्विजोत्तम ।
दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमं पदम् ।।७।।
दश पूर्वान् दश परानात्मानं चैकविंशतिम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।
दाता च दापकश्चैव ते यान्ति परमां गतिम् ।।८।।
यत्र दधिवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ।

मुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥९॥
य इदं श्रावयेद् भक्त्या श्रृणुयाद्वापि मानवः।
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१०॥
॥ इति दधिधेनुदानम् ॥

नवनीतधेनुदानम्

होता उवाच

नवनीतमयीं धेनुं श्रृणु राजन् प्रयत्नतः ।
यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥
गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ गोचर्ममानतः ॥१॥
तत्रोपरि कृष्णमृगस्य चर्म प्रसारितं नवनीतस्य कुम्भम् ।
संस्थापयेत प्रयतो मनुष्यो वत्सं तथा तस्य चतुर्थभागे ॥२॥
कृत्वा विधानेन च राजसिंह सुवर्णश्रृंगा सुमुखा च कार्या ॥३॥
नेत्रे च तस्या मणिमौक्तिकैस्तु कृत्वा तथाऽऽस्यं च गुडेन तस्याः ।
जिह्वां तथा शर्करया प्रकल्प्य फलानि दन्ताः कम्बलं पट्टसूत्रम् ॥४॥
नवनीतस्तनीं राजन्निक्षुपादां प्रकल्पयेत् ।
ताम्रपृष्ठीं कांस्यदोहां दर्भरोमकृतच्छविम् ॥५॥
स्वर्गश्रृंगीं रौप्यखुरां पंचरत्नसमन्विताम् ।
चतुर्भिस्तिलपात्रैश्च संयुतां सर्वतो दिशः ॥६॥
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्धपुष्पैरलंकृताम् ।
दिक्षु दीपांश्च प्रज्वाल्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७॥
वेदवेदांगविदुषे आहिताग्निजितात्मने ।
मन्त्रास्त एव जप्तव्याः सर्वधेनुषु ये स्मृताः ॥८॥
पुरा देवासुरैः सर्वैः सागरस्य तु मन्थने ।
उत्पन्नं दिव्यममृतं नवनीतमिदं शुभम् ।
आप्यायनं च भूतानां नवनीत नमोऽस्तु ते ॥९॥
एवमुच्चार्य तां दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
धेनुं च दत्वा सुव्रतां सोपधानं नयेद् गृहम् ॥१०॥
विप्रवर्यस्य भूपाल हविष्यं सरसं तथा ।
भुक्त्वा तिष्ठेद्दिनत्रीणि धेनुदो राजसत्तम ॥११॥
यः प्रपश्यति तां धेनुं दीयमानां नरोत्तम ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यतां व्रजेत् ॥१२॥
पितृभिः पूर्वजैः सार्द्धं भविष्यद्भिश्च मानवः ।
विष्णुलोकं व्रजत्याशु यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१३॥
य इदं श्रृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वाऽपि मानवः।

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ।।१४।।

।। इति नवनीतधेनुदानम् ।।

लवणधेनुदानम्

होता उवाच

वक्ष्यामि लावणीं धेनुं तां निबोध महीपते ।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ।।१।।
कृत्वा तु लावणीं धेनुं षोडशप्रस्थसंयुताम् ।
वत्सं चतुर्भी राजेन्द्र इक्षुपादांश्च कारयेत् ।।२।।
सौवर्णमुखश्रृंगे च खुरा रौप्यमयास्तथा ।
मुखं गुडमयं तस्या दन्ताः फलमया नृप ।।३।।
जिह्वां शर्करया राजन् घ्राणं गन्धमयन्तथा ।
नेत्रे रत्नमये कुर्यात् कर्णौ पत्रमयौ तथा ।
श्रीखण्डं श्रृंगकोष्ठौ च नवनीतमयाः स्तनाः ।।४।।
सूत्रपुच्छां ताम्रपृष्ठां दर्भरोम्णीं पयस्विनीम् ।
कास्योपदोहां राजेन्द्र घण्टाभरणभूषिताम् ।।५।।
सुगन्धपुष्पधूपैश्च पूजयित्वा विधानतः ।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।६।।
ग्रहणे वाथ संक्रान्तौ व्यतीपाते तथायने ।
नक्षत्रग्रहपीडासु सर्वकालं प्रदापयेत् ।।७।।
द्विजाय साधुवृत्ताय कुलीनाय च धीमते ।
वेदवेदाङ्गविदुषे श्रोत्रियायाहिताग्नये ।।८।।
ईदृशाय प्रदातव्या तथाऽमत्सरिणे नृप ।
जप्तव्यमेव मन्त्रं तु पुच्छदेशोपविश्य च ।।९।।
छत्रकोपानहौ देयौ मुद्रिकापर्णमात्रकौ ।
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन दक्षिणां कम्बलं ददेत् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन स्वशक्त्या कनकेन तु ।।१०।।
इमां गृहाण भो विप्र धेनु कामदुधां शुभाम् ।
भरस्व कामैर्मा देवि रुद्ररूपे नमोऽस्तु ते ।।११।।
रराज सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृता ।
कामं कामदुधे कामं लवणधेनो नमोऽस्तु ते ।।१२।।
दत्वा धेनुं लवणं वर्ज्यमेकाहं चैव तिष्ठति ।
स्वयं त्रिरात्रं विप्रेण तथैव लवणाशिना ।।१३।।
सहस्रेण शतेनाथ स्वशक्त्या कनकेन तु ।
दत्वेमां स्वर्गमाप्नोति यत्र देवो वृषध्वजः ।।१४।।

य इदं श्रृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं च गच्छति ।।
।। इति लवणधेनुदानम् ।।

कार्पासधेनुदानम्

होता उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि धेनुं कार्पासिकीं नृप ।
यत्प्रदानान्नरा यान्ति ऐन्द्रलोकमनुत्तमम् ।।१०८।१।।
विषुवे त्वयने पुण्ये युगादौ ग्रहणे तथा ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु दुःस्वप्नारिष्टदर्शने ।
पुण्ये ह्यायतने राजन् शुचिदेशे गवां गणे ।।२।।
गोमयेनोपलिप्तायां दर्भानास्तीर्य वै तिलान् ।।
तन्मध्ये स्थापयेद्धेनुं वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।
नैवेद्यधूपदीपाद्यैः पूजयेच्च विमत्सरः ।।३।।
चतुर्भिरुत्तमा भारैस्तदर्द्धेन तु मध्यमा ।
भारेण चाधमा प्रोक्ता वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
चतुर्थांशेन कृत्वा वै वत्सन्तु परिकल्पयेत् ।।४।।
कर्तव्या रुक्मशृङ्गैस्तु रजतक्षुरसंयुता ।
नानाफलमया दन्ता रत्नगर्भसमन्विताः ।।५।।
इत्येवं सर्वसंपूर्णां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः ।
आवाहयेत्तां कार्पासधेनुं मन्त्रैर्द्विजातये ।।६।।
दद्यादथ दर्भपाणिः प्रयत्नः श्रद्धयान्वितः ।
पूर्वोक्तस्तु विधिः कार्यो दानमन्त्रपुरस्सरः ।।७।।
यथा देवगणः सर्वस्त्वया हीनो न वर्तते ।
तथा मामुद्धरेद्देवि पाहि संसारसागरात् ।।८।। *।। इति ।।*

धान्यधेनुदानविधिः

होता उवाच

श्रृणु राजन् प्रयत्नेन दानमाहात्म्यमुत्तमम् ।
यस्य संकीर्तनादेव सन्तुष्येत्पार्वती स्वयम् ।।
विषुवे चायने वाऽपि कार्तिक्यां तु विशेषतः ।।१।।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि धान्यधेनोर्विधिं परम् ।
यां दत्वा सर्वपापेभ्यो विमुक्तो राजसत्तम ।।
शोभते कान्तिमान् मुक्तः शशांक इव राहुणा ।।२।।
दशधेनुप्रदानेन यत्फलं राजसत्तम ।

तत्सर्वमेव प्राप्नोति व्रीहिधेनुप्रदो नरः ।।३।।
कृष्णाजिनं समीचीनं प्रागग्रीवं विन्यसेद् बुधः ।
गोमयेनानुलिप्तायां शोभनां वस्त्रसंयुताम् ।
पूजयेद् वेदिमध्ये तु वेदनिर्घोषमंगलैः ।।४।।
उत्तमा या तु धेनुः स्याद् द्रोणैश्चापि चतुष्टयम् ।
मध्यमा च तदर्धेन वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
चतुर्थांशेन धेन्वा वै वत्सं तु परिकल्पयेत् ।।५।।
कर्तव्ये रुक्मश्रृंगे तु राजतं खुरसंयुतम् ।
गोमेधा कुक्षि संकुर्याद् घ्राणं चागरुचन्दनम् ।।६।।
मुक्ताफलमया दन्ता घृतक्षौद्रमयं मुखम् ।
प्रशस्तपत्रश्रवणां कांस्यदोहनकान्विताम् ।।७।।
इक्षुयष्टिमयाः पादाः क्षौमपुच्छसमन्विताम् ।
नानाफलसमोपेतां रत्नगर्भसमन्विताम् ।
पादुकोपानहच्छत्रं भाजनं तर्पणं तथा ।।८।।
इत्येवं रचयित्वा तां कृत्वा दीपार्चनादिकम् ।
पुण्यं फलं च सम्प्राप्य स्नातः शुक्लाम्बरो गृही ।।
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य इमान् मन्त्रान् प्रकीर्तयेत् ।।९।।
''त्वं हि विप्र महाभाग वेदवेदांगपारग ।
एतां ममोपकाराय गृहृणीष्व त्वं द्विजोत्तम ।।
प्रीयतां मम देवेशो भगवान् मधुसुदनः ।।१०।।
त्वमेका लक्ष्मीगोविन्दो स्वाहा या च विभावसोः ।
शक्रे शचीति विख्याता शिवे गौरीति संस्मिता ।।११।।
गायत्री ब्रह्मणे प्रोक्ता ज्योत्सना चन्द्रे रवेः प्रभा ।
बुद्धिर्बृहस्पतेः ख्याता मेधा मुनिषु सत्तम ।।
तस्मात्सर्वमयी देवी धान्यरूपेण संस्थिता ।।१२।।
एवमुच्चार्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
दत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा तं क्षमाप्य द्विजोत्तम ।।१३।।
यावच्च पृथिवी सर्वा वसुरत्नानि भूपते ।
तावत्पुण्यसमाधिक्यं व्रीहिधेनोश्च तत्फलम् ।।१४।।
तस्मान्नरेन्द्र दातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
इह लोके च सौभाग्यमायुरारोग्यवर्द्धनम् ।।१५।।
विमानेनार्कवर्णेन किंकिणीरत्नमालिना ।
स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च स याति शिवमन्दिरम् ।।१६।।
यावच्च स्मरते जन्म तावत्स्वर्गे महीयते ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ।।१७।।

एवं हरमुखोद्गीर्णं श्रुत्वा वाक्यं नरोत्तम ।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ॥१८॥
।। इति धान्यधेनुदानम् ।।

कपिलाधेनुदानम्

होता उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कपिलाधेनुमुत्तमाम् ।
यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥११०।१॥
पूर्वोक्तेन विधानेन दद्याद्धेनुं सवत्सकाम् ।
सर्वालंकारसंयुक्तां सर्वरत्नसमन्विताम् ॥२॥
कपिलायाः शिरोग्रीवां सर्वतीर्थानि भामिनि ।
पितामहनियोगाच्च निवसन्ति हि नित्यशः ॥३॥
प्रातरुत्थाय यो मर्त्यः कपिलागलमस्तकात् ।
च्युतं तु भक्त्या पानीयं शिरसा वन्दते शुचिः ॥४॥
स तेन पुण्यतोयेन तत्क्षणाद्दग्धकिल्विषः ।
त्रिंशद्वर्षकृतं पापं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥५॥
कल्यमुत्थाय यो मर्त्यः कुर्यात्तस्याः प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्याद्वसुन्धरे ॥६॥
प्रदक्षिणेन चैकेन श्रद्धायुक्तेन तत्क्षणात् ।
दशजन्मकृतं पापं तस्य नश्यत्यसंशयम् ॥७॥
कपिलायास्तु मूत्रेण स्नायाच्चैव शुचिव्रतः ।
स गंगादिषु तीर्थेषु स्नातो भवति मानवः ॥८॥
तेन स्नानेन चैकेन भावयुक्तेन वै नरः ।
यावज्जीवकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥९॥
गोसहस्रं तु यो दद्यादेकां च कपिलां नरः ।
सममेतत्पुरा प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१०॥
गवामस्थि न तप्येत मृतगन्धे न दूषयेत् ।
यावज्जिघ्रति तं गन्धं तावत्पुण्यैस्तु पूयते ॥११॥
गवां कण्डूयनं श्रेष्ठं तथा च परिपालनम् ।
तुल्यं गोशतदानस्य भयरोगादिपालने ॥१२॥
तृणोदकानि यो दद्यात् क्षुद्यितानां गवाह्निकम् ।
गोमेधस्य फलं दिव्यं लभते मानवोत्तमः ॥१३॥
विमानैर्विविधैर्दिव्यैः कन्याभिरभितोऽर्पितैः ।
सेव्यमानः सुगन्धैर्वै दीप्यमाना यथाऽग्नयः ॥१४॥
सुवर्णकपिला पूर्व द्वितीयं गौरपिंगला ।

तृतीया चैव रक्ताक्षी चतुर्थी गुडपिंगला ॥१५॥
पंचमी बहुवर्णा स्यात् षष्ठी च श्वेतपिंगला ।
सप्तमी श्वेतपिंगाक्षी अष्टमी कृष्णपिंगला ॥१६॥
नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुच्छपिंगला ।
एकादशी खुरश्वेता त्वेतासां सर्वलक्षणा ॥१७॥
सर्वलक्षणसंयुक्ता सर्वालंकृतसुन्दरी ।
ब्राह्मणाय प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा गावो विष्णुलोके स गच्छति ॥१८॥ *//इति//*

कपिलामाहात्म्यम्

होता उवाच
अतः परं महाराजोभयमुख्याः समासतः ।
विधानं यद्वराहेण धरण्याः कथितं पुरा ॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि तव पुण्यफलं च यत् ॥१॥
धरण्युवाच
या त्वया कपिला नाम पूर्वमुत्पादिता प्रभो ।
होमधेनुः सदा पुण्या सा ज्ञेया कतिलक्षणा ॥२॥
कियत्यः कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
प्रसूयमाना दानेन किं पुण्यं स्याच्च माधव ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण जगद्गुरो ॥३॥
वराह उवाच
श्रृणुष्व भद्रे तत्त्वेन पवित्रं पापनाशनम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥४॥
कपिला अग्निहोत्रार्थे यज्ञार्थे च वरानने ।
उद्धृत्य सर्वतेजांसि ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥५॥
पवित्राणां पवित्रं च मंगलानां च मंगलम् ।
पुण्यानां परमं पुण्यं कपिला च वसुन्धरे ॥६॥
तपसां तप एवाग्रं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
दानानामुत्तमं दानं निधीनां ह्येतदक्षयम् ॥७॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि गुह्यान्यायतनानि च ।
पवित्राणि च पुण्यानि सर्वलोकेषु सुन्दरि ॥८॥
होतव्यान्यग्निहोत्राणि सायं प्रातर्द्विजातिभिः ।
कपिलाया घृतेनेह दध्ना क्षीरेण वा पुनः ॥९॥
जुह्वते ह्यग्निहोत्राणि मन्त्रैश्च विविधैः सदा ।
पूजयन्नितिथींश्चैव परां भक्तिमुपागताः ।

ते यान्त्यादित्यवर्णैश्च विमानैर्द्विजसत्तमाः ॥१०॥
सूर्यमण्डलमध्येन ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ।
कपिला या पिंगलाक्षी सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥
सिद्धिबुद्धिप्रदा धेनुः कपिलाऽनन्तरूपिणी ॥११॥
एकादशी समाख्याताः कपिलास्ते वरानने ।
सर्वा ह्येता महाभागास्तारयन्ति न संशयः ।
संगमेषु प्रशस्ताश्च सर्वपापप्रनाशनाः ॥१२॥
अग्निपुच्छा अग्निमुखा अग्निलोमाऽनलप्रभा ।
तथाग्नेयी सदा देवी सुवर्णाख्या प्रवर्तते ॥१३॥
गृहीत्वा कपिलां शूद्रः कामतः सदृशीं पिबेत् ।
अतीतः स द्विजातीनां चण्डालसदृशो हि सः ॥१४॥
तस्मान्न प्रतिगृह्णीयाच्छूद्राद्विप्रः प्रतिग्रहम् ।
दूरतः प्रतिहर्तव्याः श्वानस्तु क्षमिनां वरे ॥१५॥
पर्वकाले हि सर्वे वै वर्जिताः पितृदैवतैः ।
असंभाष्याऽप्रतिग्राह्याः शूद्रास्ते पापकर्मिणः ॥१६॥
पिबन्ति यावत् कपिलां तावत् तेषां पितामहाः ।
भूमेर्मलं समश्नन्ति जायन्ते विड्भुजश्चिरम् ॥१७॥
तासां क्षीरं घृतं वापि नवनीतमथापि वा ।
उपजीवन्ति ये शूद्रास्तेषां गतिमतः श्रृणु ॥१८॥
कपिलोपजीविनः शूद्राः क्रूरा गच्छन्ति रौरवम् ।
रौरवेषु च पच्यन्ते वर्षकोटिशतं धरे ॥१९॥
ततो विमुक्ताः कालेन श्वानयोनिं व्रजन्ति ते ।
श्वानयोन्या विमुक्तस्तु विष्ठायां जायते कृमिः ॥२०॥
विष्ठास्थानेषु पापिष्ठो दुर्गन्धिषु तु नित्यशः ।
भूयो भूयो जायमानाः सद्यो नाशं व्रजन्ति ते ॥२१॥
ब्राह्मणश्चैव यो विद्वान् कुर्यात् तेषां प्रतिग्रहम् ।
ततः प्रभृत्यमेधान्तः पितरस्तस्य शेरते ॥२२॥
न तं विप्रं सुसम्भाषेन्न चैवैकासनं विशेत् ।
स नित्यं वर्जनीयो हि दूरात्तु ब्राह्मणोद्ध्वरे ॥२३॥
यस्तेन सह सम्भाषेत् तथा चैकासनं व्रजेत् ।
प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं तेन शुद्ध्यति स द्विजः ॥२४॥
एकस्य गोप्रदानस्य सहस्रांशेन पूर्यते ।
किमन्यैर्बहुभिर्दानैः कोटिसंख्यातविस्तरैः ॥२५॥
श्रोत्रियाय दरिद्राय सुवृतायाहिताग्नये ।
आसन्नप्रसवां धेनुं दानार्थी प्रतिपालयेत् ।

कपिलाऽर्धप्रसूता वै दातव्या च द्विजन्मने ।।२६।।
जायमानस्य वत्सस्य मुखं योन्यां प्रदृश्यते ।
तावत् सा पृथिवी ज्ञेया यावद् गर्भं न मुच्छति ।।२७।।
धेन्वा यावन्ति रोमाणि सवत्साया वसुन्धरे ।
तस्याश्च पांशवो यावद् गर्भोदकपरिप्लुताः ।।२८।।
तावत्यो वर्षकोट्यस्तु ब्रह्मवादिभिरर्चिताः ।
ब्रह्मलोके निवसन्ति ये च वै कपिलाप्रदाः ।।२९।।
सुवर्णश्रृंगीं यः कृत्वा रौप्यमुक्तखुरां तथा ।
ब्राह्मणस्य करे दत्वा सुवर्ण रौप्यमेव च ।।३०।।
कपिलायास्तदा पुच्छं ब्राह्मणस्य करे न्यसेत् ।
उदकं च करे दत्वा वाचयेच्छुद्धया गिरा ।।३१।।
ससमुद्रवना तेन सशैल वनकानना ।
रत्नपूर्णा भवेद्दता पृथिवी नात्र संशयः ।।३२।।
पृथिवीदानतुल्येन दानेनैतेन वै नरः ।
नन्दितो याति पितृभिर्विष्वाख्यं परमं पदम् ।।३३।।
ब्रह्मस्वहारिणो गोघ्नो भ्रूणहा पाकभेदकः ।
महापातकयुक्तोऽपि बन्धको ब्रह्मदूषकः ।।३४।।
निन्दको ब्राह्मणानां च तथा धर्मोपदूषकः ।
एतैः पातकयुक्तोऽपि गवां दानेन शुद्धयति ।।३५।।
यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्विताम् ।
तद्दिनं पायसाहारं पयसा वातिवाहयेत् ।।३६।।
सुवर्णस्य सहस्रेण तदर्धेनापि भामिनि ।
तस्याप्यर्धशतेनाथ पंचाशच्च ततोऽर्धकम् ।
यथाशक्त्या प्रदातव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।।३७।।
इमां गृह्योभयमुखीं भयत्राता ममाशु च ।
ददे वंशविवृद्धयर्थं सदा स्वस्तिकरी भव ।।३८।।
प्रतिगृह्यामि त्वां धेनो कुटुम्बार्थे विशेषतः ।
स्वस्तिर्भवतु मे नित्यं रुद्रांगे ते नमो नमः ।।३९।।
द्यौस्त्वा ददात्विति पुनर्मन्त्रेण प्रतिगृह्णति ।
कोऽदादिति मन्त्रेण प्रतिगृह्य वसुन्धरे ।।
विसृज्य ब्राह्मणं देवि तां धेनुं तद्गृहं नयेत् ।।४०।।
एवं प्रसूयमानां यो गां ददाति वसुन्धरे ।
पृथिवी तेन दत्ता स्यात् सप्तद्वीपा न संशयः ।।४१।।
चरन्ति तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णाः ।
महासितत्त्वास्तनुवृद्धामध्याः सेवन्त्यजस्रं कुलिता ही देवाः ।।४२।।

प्रातरुत्थाय यो भक्तः कल्पं धेन्वा मुदा युतम् ।
जितेन्द्रियः शुचिर्भूत्वा पठेद् भक्त्या समाहितः ॥४३॥
त्रिःसदावर्तनं कृत्वा पापं वर्षशतं च यत् ।
नश्यते तत्क्षणादेव वायुना पांशवो यथा ॥४४॥
श्राद्धकाले पठेद् यस्तु इदं पावनमुत्तमम् ।
तस्यान्नं संस्कृतं तद्धि पितरोऽश्नन्ति धीमतः ॥४५॥
अमायां वाऽथ यः कश्चिद् द्विजानामग्रतः पठेत् ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति वर्षाणां शतमेव च ॥४६॥
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं तद्गतेनान्तरात्मना ।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥४७॥

होता उवाच

इदं रहस्यं राजेन्द्र वराहेण पुरातनम् ।
धरण्यै कथितं राजन् धेनुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
मया ते कथितं सर्वं सर्वपापप्रणाशनम् ॥४८॥
द्वादश्यां माघमासस्य शुक्लायां तिलधेनुदः ।
सर्वकामसमृद्धार्थे वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥४९॥
द्वादश्यां श्रावणे मासि शुक्लायां राजसत्तम ।
प्रत्यक्षधेनुर्दातव्या सहिरण्या नृपोतम ॥५०॥
सर्वदा सर्वधेनूनां प्रदानं राजसत्तम ।
सर्वपापप्रशमनं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५१॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं समासाद् बहुविस्तरम् ।
अपारफलमुद्दिष्टं ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥५२॥

॥ इति ॥

<u>गोमयलेपनमाहात्म्यम्</u>

श्रीवराह उवाच

श्रृणु तत्त्वेन मे देवि लिप्यमानस्य यत्फलम् ।
सर्वं ते कथयिष्यामि यथा प्राप्नोति मानवः ॥१३९/१॥
गोमयं गृह्य वै भूमिं मम वेश्मोपलेपयेत् ।
यावन्त्येव पदा न्यस्ताः समन्तादुपलेपनात् ।
तावद्वर्षसहस्राणि दिव्यानि दिवि मोदते ॥२॥
यदि द्वादश वर्षाणि लिप्यते मम कर्मसु ।
जायते विपुले शुद्धे धनधान्यसमाकुले ॥३॥
नमस्कारं च प्राप्नोति कुशद्वीपाय गच्छति ।
कुशद्वीपमनुप्राप्य सहस्रं जीवते दश ।

मद्भक्तश्चैव जायेत यशोवान् गुणवान् शुचिः ॥४॥
कुशद्वीपात्परिभ्रष्टो मम कर्मपरायणः ।
राजा वै जायते सुभ्रु सर्वधर्मेषु निष्ठितः॥५॥
लेपनस्य प्रभावेण मम कर्मपरायणः ।
भक्त्या व्यवस्थितश्चापि सर्वशास्त्राणि पृच्छते ॥६॥
देवि कारयते सर्वं मम चायतनानि च ।
कारयित्वा यथान्यायं मम लोकाय गच्छति ॥७॥
गोमयस्य तु वक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
गोमयं तु समासाद्य यान् लोकान् स गच्छति ॥८॥
समीपे यदि वा दूरे गत्वा नयति गोमयम् ।
यावन्त्यस्य पदाग्राणि तावत्स्वर्गे महीयते ॥९॥
एकादशसहस्राणि एकादशशतानि च ।
रमते च मुदा युक्तो गोमयानयने नरः ॥१०॥
शाल्मले तु परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ।
मद्भक्तैश्च जायेत सर्वधर्मविदां वरः ॥११॥
अथ द्वादशवर्षाणि एकचित्तपरायणः ।
वहते गोमयं सुभ्रु मम लोकाय गच्छति ॥१२॥
स्नानोपलेपने भूमिं सलिलं यो ददाति माम् ।
तस्य पुण्यं महाभागे श्रृणु तत्त्वेन निष्फलम् ॥१३॥
यावन्तो बिन्दवस्तत्र पानीयस्य वसुन्धरे ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥१४॥
स्वर्गलोकात्परिभ्रष्टः क्रौंचद्वीपं च गच्छति ।
क्रौंचद्वीपात्परिभ्रष्टः सर्वधर्मपरायणः ॥
सर्वसंगान् परित्यज्य मम लोकाय गच्छति ॥१५॥
सम्मार्जनं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
यां गतिं पुरुषो याति स्त्रियो वा कर्मणि स्थिताः ॥
शुचिर्भागवतः शुद्धश्चापराधविवर्जितः ॥१६॥
यावन्तः पांसवो भूमेरुड्डीयन्ते तु चालिताः ।
तवद्वर्षशतान्याशु स्वर्गलोके महीयते ॥१७॥
स्वर्गलोकात्परिभ्रष्टः शाकद्वीपाय गच्छति ।
तत्र स्थित्वा चिरं कालं राजा भवति धार्मिकः ॥१८॥
ततो भुक्त्वा सर्वभोगान् स्थित्वा संसारसागरे ।
शाकद्वीपात्परिभ्रष्टो मम लोकाय गच्छति ॥१९॥
हृष्टपुष्टमना भूत्वा सर्वकामसमन्वितः ।
नन्दनं वनमासाद्य मोदते चामरैः सह ॥२०॥

नन्दनाच्च परिभ्रष्टो मम भक्त्या व्यवस्थितः ।
श्वेतद्वीपं ततो गच्छेन्मत्कर्मनिरतः शुचिः ॥२१॥
॥ इति गोमयमाहात्म्यम् ॥

गोमेधारम्भः

धरण्युवाच

स्वर्गे विद्युत्सुविद्युच्च तौ च किं चक्रतुस्तदा ।
एतन्मे संशयं देव कथयस्व प्रसादतः ॥४॥

श्रीवराह उवाच

दुर्जयेन जितो धात्रि देवराजः शतक्रतुः ।
भारते हि सदा वर्षे वाराणस्यां तु पूर्वतः ॥
आश्रित्य संस्थितो देवैः सह यक्षमहोरगैः ॥५॥
विद्युत्सुविद्युच्च तदा योगमास्थाय शोभने ।
दीर्घतापज्वरं वायुकर्मयोगेन संश्रितौ ॥
लोकपालाभितं कृत्स्नं चक्रतुर्योगमायया ॥६॥
तं दुर्लभं मृतं श्रुत्वा समुद्रान्तःस्थितं तदा ।
आनीय चतुरंगं तु देवान् प्रति विजिग्मतुः ॥७॥
आगत्य तौ तदा दैत्यौ महासैन्येन पर्वतम् ।
हिमवन्तं समाश्रित्य संस्थितौ तु बभूवतुः ॥८॥
देवा अपि महासैन्यं संहत्य कृतदंशिताः ।
मन्त्रयांचक्रुरव्यग्रा ऐन्द्रं पदमभीप्सवः ॥९॥
अब्रवीत्तत्र देवानां गुरुरांगिरसो मुनिः ।
गोमेधेन यजध्वं वै प्रथमेन तदन्तरम् ॥१०॥
यष्टव्यं क्रतुभिः सर्वैरेकस्थितिरथामराः ।
उपदेशो मया दत्तः क्रियतां शीघ्रमेष वै ॥११॥
एवमुक्तास्तदा देवा गाः पशूश्चानुकल्प्य ते ।
मुमुचुश्चरणार्थाय रक्षार्थं सरमां ददुः ॥१२॥
ताश्च गावो देवशुन्या रक्ष्यमाणा धराधरे ।
तत्र जग्मुस्तदा गावश्चरन्त्यो यत्र तेऽसुराः ॥१३॥
ते च गावश्च ता दृष्ट्वा शुक्रमूचुः पुरोहितम् ।
पश्वर्थं देवगा ब्रह्मंश्चार्यन्ते रक्षमाणया ।
देवशुन्या सरमया वद किं क्रियतेऽधुना ॥१४॥
एवमुक्तस्तदा शुक्रः प्रत्युवाचासुरांस्तदा ।
एता गा ह्रियतां शीघ्रमसुरा मा विलम्बथ ॥१५॥

एवमुक्तास्तदा दैत्या जहुरुस्ता गा यदृच्छया ।
हृतासु तासु सरमा मार्गमन्वेषणे रता ।।१६।।
अपश्यत्सा दितेः पुत्रैर्नीता गावो धराधरे ।
दैत्यैरपि शुनी दृष्टा दृष्टमार्गा विशेषतः ।।१७।।
दृष्ट्वा ते तां च साम्नैव सामपूर्वमिदं वचः ।
आसां गवां तु दुग्ध्वैव क्षीरं त्वं सरमे शुभे ।।१८।।
पिबस्वैवमिति प्रोक्ता तस्यै तद्दुरंजसा ।
दत्वा तु क्षीरपानं तु तस्यै ते दैत्यनायकाः ।।१९।।
मा भद्रे देवराजाय गाश्चेमा विनिवेदय ।
एवमुक्त्वा ततो दैत्या मुमुचुस्तां शुनीं वने ।।२०।।
तैर्मुक्ता सा सुरांस्तूर्ण जगाम खलु वेपती ।
नमश्चक्रे च देवेन्द्रं सरमा सुरसत्तमम् ।।२१।।
तस्याश्च मरुतो देवा देवेन्द्रेण निरूपिताः ।
गूढं गच्छत रक्षार्थं देवशुन्या महाबलाः ।।२२।।
इत्युक्तास्तेन सूक्ष्मेण वपुषा जग्मुरंजसा ।
तेऽप्यागम्य सुरेन्द्राय नमश्चक्रुर्धराधरे ।।२३।।
तां देवराजः पप्रच्छ क्व गावः सरमेऽभवन् ।
एवमुक्ता तु सरमा न जानामीति चाब्रवीत् ।।२४।।
तत इन्द्रो रुषा युक्तो यज्ञार्थमुपकल्पिताः ।
गावः क्व चेति मरुतः प्रोवाचेदं शुनी कथम् ।।२५।।
एवमुक्तास्तु मरुतो देवेन्द्रेण धराधरे ।
कथयामासुरव्यग्राः कर्म तत्सरमाकृतम् ।।२६।।
तत इन्द्रः समुत्थाय पदा सन्ताडयच्छुनीम् ।
क्रोधेन महताविष्टो देवेन्द्रः पाकशासनः ।।२७।।
क्षीरं पीतं त्वया मूढे गावस्ताश्चासुरैर्हृताः ।
एवमुक्त्वा पदा तेन ताडिता सरमा धरे ।।२८।।
तस्येन्द्रपापघातेन क्षीरं वक्त्रात्प्रसुस्रुवे ।
स्रुवता तेन पयसा सा गा यत्राभवन् शुनी ।
जगाम तत्र देवेन्द्रः सहसैन्यस्तदा धरे ।।२९।।
गत्वा चापश्यद्देवेन्द्रस्ता गा दैत्यैरुपाहृताः ।
पालनां चक्रुर्ये दैत्यास्ते दैत्या बलिनो भृशम् ।।
ते सैन्यैर्निहताः सद्यस्तत्यजुर्गाः स्वमूर्तिभिः ।।३०।।
सामन्तैश्च सुरेन्द्रोऽथ वृतः परमहर्षितैः ।
ताश्च लब्ध्वा महेन्द्रस्तु मुदा परमया युतः ।।३१।।
चकार यज्ञान् विविधान् सहस्रानपि स प्रभुः ।

क्रियमाणैस्ततो यज्ञैरिन्द्रस्य ववृधे बलम् ॥३२॥
वर्द्धितेन बलेनेन्द्रो देवसैन्यमुवाच ह ।
सन्नह्यन्तां सुराः शीघ्रं दैत्यानां वधकर्मणि ॥३३॥
एवमुक्तास्ततो देवाः सन्नद्धास्तत्क्षणेऽभवन् ।
असुराणामभावाय जग्मुर्देवाः सवासवाः ॥३४॥
गत्वा तु युयुधुस्तूर्णं विजिग्युस्त्वासुरीं चमूम् ।
जिताश्च देवैरसुरा हतशेषा धराधरे ॥
ममज्जुः सागरजले भयत्रस्ता विचेतसः ॥३५॥
देवराजोऽपि त्रिदिवं लोकपालैः समं धरे ।
आरुह्य बुभुजे प्राग्वत् स देवो देवराट् प्रभुः ॥३६॥
य एनं श्रृणुयान्नित्यं सरमाऽऽख्यानमुत्तमम् ।
स गोमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३७॥
भ्रष्टराज्यश्च यो राजा श्रृणोतीदं समाहितः ।
स देवेन्द्र इव स्वर्गं राज्यं स्वं लभते नरः ॥३८॥
॥ इति गोमेधोपक्रमे गवापहरणम् ॥

गोनिष्क्रमणतीर्थमाहात्म्यम्

श्रीवराह उवाच

अहमीश्वरेण देवेशि पूर्वमेव समागतः ।
तस्य वै तप्यमानस्य लोकायतनमन्तिके ॥१४॥
मम रुद्रप्रसादेन ईश्वरसमजेतसः ।
जातो नन्दीश्वरस्तत्र ईश्वरे दक्षिणे स्थितः ॥१५॥
ईश्वरस्य प्रियश्रेष्ठो वयस्यो नन्दिकेश्वरः ।
विमुच्य मथुरां देवि गृह्य गावो यथोचितः ॥
गण्डक्याश्चोत्तरे कूले गोष्ठं कुर्याद्यशस्विनि ॥१६॥

पुनः वराह ने शालंकायण से कहा । विष्णु ने कहा -

ईश्वरस्य प्रियश्रेष्ठो नाम्ना वै नन्दिकेश्वरः ।
त्वद्दक्षिणांगात्सम्भूतः पुत्रस्तव मुनीश्वर ॥
संहरस्व तपो ब्रह्मन् शान्तिं गच्छ महामुने ।
अद्य वै तस्य जातस्य कल्पानि सप्त सप्त च ॥४४॥
न त्वं जानासि विपेन्द्र स जातो नन्दिकेश्वरः ।
मायायोगबलोपेतो द्वारि तिष्ठति शंकरात् ॥४५॥

धरण्युवाच

एकं मे परमं गुह्यं धर्मं परमनिश्चयम् ।
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रमस्ति तीर्थं वरं क्वचित् ॥३॥

श्रीवराह उवाच

श्रृणु भूमे प्रयत्नेन रहस्यमिदमुत्तमम् ।
गोनिष्क्रमणकं तीर्थं गावो यत्रावतारिताः ।।५।।
यथा निष्क्रमणं प्राप्य सौरभाणां महायशाः ।
सप्ततिर्यत्र कल्याणि और्वो यत्र प्रजापतिः ।।६।।
अथ और्वो महाभागे तप्यते मम दर्शनात् ।
पद्मानां कारणाद्देवि गंगाद्वारमुपागतः ।।११।।
तं निर्गतं ततो ज्ञात्वा अथ सर्वतपस्विनम् ।
महेश्वरो महातेजाः सम्भ्रमं समुपागतः।।१२।।
फलपुष्पसमाकीर्णं लक्ष्म्या चैवोपशोभितम् ।
आश्रमं रूपसम्पन्नं सर्वकामफलोदकम् ।।
रुद्रस्य तेजसा तद्वै भस्मकूटप्रतिष्ठितम् ।।१३।।
दग्ध्वा तं चाश्रमं रम्यमपूर्वस्य महत्प्रियम् ।
ईश्वरोऽपि पुनः प्राप्तः शीघ्रमेव महालयम् ।।१४।।
एतस्मिन्नन्तरे देवि गृह्य पुष्पकरण्डकम् ।
और्वश्च स्वाश्रमं प्राप्तः क्षान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ।।१५।।
दृष्ट्वा तं चाश्रमं दग्धं बहुपुष्पफलोदकम् ।
मन्युना परमाविष्टो दुःखेन च परिप्लुतः ।।१६।।
उवाच क्रोधरक्ताक्षो वचनं निर्दहन्निव ।
येनैष चाश्रमो दग्धो बहुपुष्पफलोदकः ।।
सोऽपि दुःखेन सन्तप्तः सर्वलोकान् भ्रमिष्यति ।।१७।।
एवं शापे विमुक्ते तु और्वेण च सुसुन्दरि ।
भीषणात्सर्वलोकानां न कश्चित्पर्यवारयत् ।।१८।।
तत्क्षणादेव सुश्रोणि स ईशोऽपि जनेश्वरः ।
दाहेन परमं तप्तो रुद्रो देवीमुवाच ह ।।१९।।
अस्माकमपि सुश्रोणि दाहो हृदि च वर्तते ।
तेन दाहेन सन्तप्तो न शक्नोमि विचेष्टितुम् ।।२०।।
पार्वत्या च ततः प्रोक्तमावां नारायणं प्रति ।
गच्छावस्तस्य वाक्येन सुखं तव भविष्यति ।।२१।।
ततो नारायणं गत्वा सह तेन तमौर्वकम् ।
गत्वा नारायणश्चौर्वमूचेऽयं रुद्र ईश्वरः ।।
त्वच्छापेन वयं तप्तास्तस्य तापं निवर्तय ।।२२।।

ऊर्व उवाच

मृषा मया च नोक्तव्यं कथं तापो निवर्तते ।
ततो धेनूः समानीय गव्यैस्तं स्नापयन्तु वै ।।

तस्मात्तस्य शिवायेह तापो निर्वत्स्यते ध्रुवम् ॥२३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि मया गावोऽवतारिताः ।
सप्तसप्तति कल्याणि सुरभीणां महौजसाम् ॥२४॥
तेनाह्लादितदेहाश्च परां निर्वृतिमागताः ।
तच्च गोनिष्क्रमं नाम क्षेत्रं भागवतप्रियम् ॥२५॥
तत्र स्नानं च कुर्वीत एकरात्रोषितो नरः ।
गोलोकं च समासाद्य मोदते नात्र संशयः ॥२६॥
अथात्र मुंचते प्राणान् स्वकर्मपरिनिष्ठितः ।
ब्रह्मलोकं समुत्सृज्य मम लोके महीयते ॥४५॥
तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे आश्चर्यं श्रृणु सुन्दरि ।
गवां वै श्रूयते शब्दो मम कर्णसुखावहः ॥४६॥
अथात्र ज्येष्ठमासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशीम् ।
श्रूयते सुमहान् शब्दः स्वयमेतन्न संशयः ॥४७॥
एवं गोस्थलके पुण्ये महाभागवतः शुचिः ।
करोति शुभकर्माणि शीघ्रं मुच्येत किल्बिषात् ॥४८॥
एवं तेन महाभागे ईश्वरेण यशस्विनि ।
शापदाहो विनिर्मुक्तः सर्वैः सह मरुद्गणैः ॥४९॥
एतत्गोस्थलकं नाम सर्वशान्तिकरं परम् ।
कथितं देवि कार्त्स्येन तवानुग्रहकाम्यया ॥४०॥
एषोऽध्यायो महाभागे सर्वमंगलकारकः ।
मम मार्गानुसाराणां मम प्रीतिविवर्द्धनः ॥४१॥
एतत्ते परमं भद्रे गुह्यं धर्मसमन्वितम् ।
मम क्षेत्रं महाभागे यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥६०॥

धरण्युवाच

अहो गवां च माहात्म्यं तव चैव महाप्रभो ।
यच्छ्रुत्वाऽहं जगन्नाथ जाताऽस्मि परिनिर्वृता ॥१४६/१॥

नारद उवाच

समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
धर्मराज महाबाहो पितुस्तुल्यपराक्रम ॥२॥
सर्वेषामपि वर्णानां श्रेयो वाच्यं महामते ।
यथा धर्महितं वाक्यं शूद्राणामपि कथ्यताम् ॥५॥

यम उवाच

अहं मे कथमिष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य नित्यशः ।
यद्धितं धर्मयुक्तं च नित्यं भवति सुव्रत ॥६॥
केवलं श्रुतिसंयोगाच्छ्रद्धया नियमेन च ।

करोति पापनाशार्थमिदं वक्ष्यामि वच्छृणु ।।७।।
गावः पवित्रा मंगल्या देवानामपि देवताः ।
यस्ताः शुश्रूषते भक्त्या स पापेभ्यः प्रमुच्यते ।।८।।
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पंचगव्यं तु यः पिबेत् ।
यावज्जीवकृतात्पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते ।।९।।
लांगूलेनोद्धृतं तोयं मूर्घ्ना गृह्णाति यो नरः ।
सर्वतीर्थफलं प्राप्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१०।।
प्रस्रावेन तु यः स्नायाद्रोहिण्यां मानवो द्विज ।
सर्वपापकृतान् दोषान् दहत्याशु न संशयः ।।११।।
धेनुस्तनाद्विनिष्क्रान्तां धारां क्षीरस्य यो नरः ।
शिरसा प्रतिगृह्णाति स पापेभ्यः प्रमुच्यते ।।१२।।
द्विजं शुश्रूषते यस्तु तर्पयित्वा तु भक्तितः ।
नमस्येत्प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते ।।१७।। इति

भ.पु.उ.प.८४

आश्विनशुक्लविशोकाद्वादशीव्रतप्रकरणे गुडधेनुदानम्

धेनुप्रार्थना दशविधधेनवश्च

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ।।८४/३८।।
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसौ ।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपाऽस्तु सा श्रियै ।।३९।।
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।
या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे ।।४०।।
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां पुनः ।
सर्वपापहरे धेनो तस्माद् भूतिं प्रयच्छ मे ।।४१।।
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुरथापरा ।
तिलधेनुस्तृतीया स्याच्चतुर्थी मधुधेनुका ।।४४।।
जलधेनुः पंचमी तु षष्ठी तु क्षीरसम्भवा ।
सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुरथाष्टमी ।।४५।।
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात् स्वरूपतः ।
कुम्भाः स्युर्दशधेनूनामितरासां तु राशयः ।।४६।।
सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ।
नवनीतेन रत्नैश्च तथाऽप्यन्ये महर्षयः ।।४७।।
एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः ।
यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।।४८।।

जो लक्ष्मी समस्त प्राणियों में तथा देवताओं में व्यवस्थित है, वही देवी धेनुरूप के द्वारा मेरे पापों को नष्ट करे ।।38।। विष्णु के वक्षःस्थल पर सुशोभित, अग्नि में स्वाहा रूप से वर्तमान रहनेवाली तथा चन्द्र, सूर्य एवं इन्द्र की शक्तिस्वरूपा लक्ष्मी अपने धेनुरूप द्वारा मेरी भी समृद्धि करे ।।39।। उसी प्रकार चतुर्मुख ब्रह्मा, कुबेर एवं लोकपालों की लक्ष्मी अपने धेनुरूप से मेरे लिये वर प्रदान करनेवाली हों ।।40।। तुम पितरों की शक्ति स्वधा और यज्ञभोक्ता यज्ञपुरुष की शक्ति स्वाहा हो; अतः सभी पापों का हरण करनेवाली हे देवि! धेनो! तुम अपने इस रूप से मुझे ऐश्वर्य प्रदान करने की कृपा करो ।।41।। प्रथम गुडधेनु, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चतुर्थी मधुधेनु, पाँचवी जलधेनु, छठी क्षीरधेनु, सातवी शर्कराधेनु, आठवी दधिधेनु, नवी रसधेनु और दसवी स्वरूपतः साक्षात् धेनु कही गयी है । दस धेनुओं के निर्माण में कुम्भ और अन्यों के लिये धान्यराशि की कल्पना की गयी है ।।44-46।। कुछ विद्वानों के अनुसार सुवर्ण की धेनु, नवनीतधेनु और रत्नधेनुओं का विधान भी बताया गया है ।।47।। इन सभी धेनुओं के दान का विधान प्रायः समान ही बताया गया है और इनके दान समान ही उपस्करण एवं सम्भार का भी विधान है । भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली इन धेनुओं का दान श्रद्धापूर्वक करना चाहिये ।।48।।

धेनुमाहात्म्यम्

महाबली वैनतेय (अनुरु) से कहा -

सप्ताश्वतिलक उवाच

दत्तगोदोहसम्भूतः षडक्षरविधानतः ।
रविसम्पूजितः शीघ्रं नराणां तुल्यता भृशम् ।।१८७/४६।।
सुरासुरैर्मथ्यमानात् क्षीरोदात् सागरात्पुरा ।
पंच गावः समुत्पन्नाः सर्वलोकस्य मातरः ।।४७।।
नन्दा सुभद्रा सुरभी सुमना शोभनावती ।
गावः सूर्यसमा भासा उत्पन्नाः कृतिमागताः ।।४८।।
सर्वलोकोपकारार्थं देवानां तर्पणाय च ।
मामाश्रित्य स्थिता गावः स्नानार्थं भास्करस्य तु ।।४९।।
तासामंगानि पुण्यानि षड्रसाः खगसत्तम ।
खगादिषु च सर्वेषु स्थिराणीत्युपधारय ।।५०।।
गोमयं रोचनं मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् ।
षडंगानि पवित्राणि सर्वसिद्धिकराणि च ।।५१।।
गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षोऽर्कवल्लभः ।
तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीर्वृक्षस्तेन च स स्मृतः ।।५२।।

पंकान्युत्पलपद्‌मानि पुनर्जातानि गोमयात् ।
गोरोचनं च मांगल्यं पवित्रं सर्वकामदम् ।।५३।।
गोमूत्राद् गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः ।
आहारः सर्वदेवानां भास्करस्य विशेषतः ।।५४।।

षडक्षर (**ॐ नमः खषोल्क**) सूर्यमन्त्र के विधानपूर्वक गोदुग्ध द्वारा सूर्य की पूजा करने से वह मनुष्य भी सूर्य के समान हो जाता है ।।46।। पूर्वकाल में देवता और राक्षसों ने मिलकर क्षीरसागर का मन्थन किया था, उसी से पाँच गायें, जो समस्त लोकों की माताएँ हैं, उत्पन्न हुई हैं ।।47।। नन्दा, सुभद्रा, सुरभी, सुमना तथा शोभनावती- इन नाम की पाँच गायों ने सूर्य के समान तेजस्वी रूप धारण किया ।।48।। समस्त लोकों के उपकारार्थ, देवताओं की तृप्ति एवं भास्कर के स्नानार्थ ये गायें मेरे आश्रित स्थित हुई ।।49।। हे खगसत्तम! उनके अंग एवं छः रस पक्षी आदि सब प्राणियों में स्थित हैं, ऐसा समझना चाहिये ।।50।। गोबर, गोरोचन, मूत्र, दूध, दही तथा घी- गौओं के यही छहो अंग पवित्र एवं सर्वसिद्धिकारक हैं ।।51।। गोमय द्वारा बिल्ववृक्ष का उत्थान हुआ है, जो श्रीसम्पन्न एवं सूर्यप्रिय है ।।52।। उसी वृक्ष पर पद्‌महस्ता श्री निवास करती है, इसीलिये उस वृक्ष का स्मरण किया जाता है ।।52।। पुनः उसी गोमय द्वारा पंक, उससे नीलकमल तथा रक्तकमल की उत्पत्ति हुई है और मांगलिक, पवित्र एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले गोरोचन की भी ।।53।। गोमूत्र द्वारा गुग्गुल की उत्पत्ति हुई है, जो सुगन्धित एवं मनमोहक होता है । यह समस्त देवों एवं विशेषकर भास्कर का अतिप्रिय आहार है ।।54।।

यद्‌बीजं जगतः किंचित्तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् ।
दध्नः सर्वाणि जातानि मांगल्यान्यर्थसिद्धये ।।५५।।
घृतादमृतमुत्पन्नममराणामतिप्रियम् ।
तस्माद्‌घृतेन पयसा दध्ना यः स्नापयेद्रविम् ।।५६।।
तदन्ते चोष्णतोयेन कषायैश्च निरूपयेत् ।
स्नाप्य शीताम्बुना पश्चाद् भानुं रोचनया लभेत् ।।५७।।
पूजयेद् बिल्वपत्रैश्च पद्‌मैर्नीलोत्पलैस्तथा ।
अर्घ्यं दद्यात्ततः पश्चात्सवज्रं गुग्गुलं खग ।।५८।।
पायसं दधिभक्तं च वज्रं च मधुना सह ।
निवेदयेच्च सद्‌भक्त्या भक्ष्याणि विविधानि च ।।५९।।
कृत्वा प्रदक्षिणं पश्चात् प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।
अनेन विधिना भानुं षडंगेन दिवस्पतिम् ।।६०।।
इह लोके परे चैव सर्वान् कामान् स गच्छति ।

षडंगविधिना तं च पूज्यैवं सुमना रविम् ।।६१।।
स्वर्गं नयेत्स धीमांस्तु कुलानामेकविंशतिम् ।
स्वर्गे स्थाप्य स्वयं गच्छेज्ज्यौतिषं नाम तत्पदम् ।।६२।।
पुष्पं पत्रं फलं तोयं यद्गतं भास्करार्चने ।
सौरा गावश्च गच्छन्ति सूर्यलोकं न संशयः ।।६५।।

घी द्वारा अमृत की उत्पत्ति हुई है, जो देवों को अतिप्रिय है । इसीलिये घी, दूध एवं दही से प्रथम सूर्य को स्नान कराकर पुनः गर्म जल तथा कषायों द्वारा स्नान कराने के उपरान्त शीत जल से स्नान कराकर सूर्य के शरीर में गोरोचन का लेपन करना चाहिये ।।56-57।। इसके उपरान्त बिल्वपत्र, रक्तकमल, नीलकमल आदि के द्वारा उनका पूजन कर अर्घ्य प्रदान करे और वज्रसहित गुग्गुल भी प्रदान करे । हे खग! इस प्रकार दूध तथा दही द्वारा बने हुए उत्तम भक्ष्य पदार्थ- जैसे पायस, दही-भात आदि जिसमें मधुयुक्त वज्र भी हो, ऐसे व्य×जनों को भक्तिपूर्वक समर्पित करे ।।58-59।। पश्चात् प्रदक्षिणपूर्वक प्रणाम करके षडंग द्वारा विधानपूर्वक पूजित सूर्य से क्षमा-प्रार्थना करे । इस भाँति करनेवाले के लोक-परलोक की सभी कामनायें सफल होती हैं । प्रसन्नचित्त होकर षडंगविधानपूर्वक सूर्य की पूजा करने से वह बुद्धिमान् अपने इक्कीस पीढ़ी के लोगों को स्वर्ग पहुँचाकर स्वयं 'ज्यौतिष्' नामक उत्तम स्थान की प्राप्ति करता है ।।60-62।। सूर्य की पूजा में पुष्प, पत्र, फल, जल एवं सौर गायें- ये जो कुछ सहायता प्रदान करने के लिये उत्पन्न किये गये हैं, वे सभी निस्सन्देह सूर्यलोक की प्राप्ति कराते हैं ।।65।।

यः पिबेद् भोजने धेनोरदत्तं भानवे पयः ।
स गच्छेन्नरकं घोरमकुर्वस्तर्पणं रवेः ।।६६।।
एककालं पिबेत्क्षीरं धेनूनां भास्करस्य तु ।
अनेन स्नापयेद्देवं क्षीरेण खगसत्तम ।।६७।।
प्रत्यूषे यद्भवेत्क्षीरं धेनूनां भास्करस्य तु ।
स्नापयेत्तेन वै भानुं कृत्स्नेन गरुडाग्रज ।।६८।।
यस्तु लोको भजेत्सर्वं न देवाय निवदयेत् ।
यावन्तो रोमकूपाश्च गवां देहे खगाधिप ।।
तावद्वर्षसहस्राणि नरके पच्यते खग ।।६९।।
पूजितं पूज्यमानं वा यः कश्चिच्छृणुयाद्रविम् ।
श्रुत्वाऽनुमोदते यस्तु स यज्ञफलमश्नुते ।।७०।।

जो सूर्य को दिये बिना भोजन में दुग्धपान करता है, उसे घोर नरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि उसने सूर्य को उससे तृप्त नहीं किया ।।66।। खगसत्तम! उन सौर

गायों के दुग्ध का पान एक समय करना चाहिये और उसी दूध से सूर्यदेव का स्नान भी कराना चाहिये ।।67।। गरुडाग्रज! प्रातःकाल उन सौर गायों के दूध से सूर्य को भली–भाँति स्नान कराकर उसका पान करे ।।68।। जो देवता को अर्पित किये बिना स्वयं ही गोदुग्धपान कर लेता है, हे खगाधिप! गय के शरीर में जितने रोमकूप हैं उतने सहस्र वर्षो तक उसे नरक में रहना पडता है । सूर्य की की गई पूजा अथवा की जानेवाली पूजा को सुनकर जो उसका अनुमोदन करता है, उसे यज्ञफल की प्राप्ति होती है ।।70।।

।।इति।।

गोप्रचारदानविधिवर्णनम् वैशिष्ट्य×च

सूत उवाच

गोप्रचारं पुनर्वक्ष्ये विशेषं तत्र मे श्रृणु ।
यजेद्विष्णुं सलक्ष्मीकमुपचारैः पृथग्विधैः ।।१।।
उपचारैश्च ब्रह्माणं रुद्रं चैव करालिकाम् ।
वराहं सोमसूर्ये च महादेवं यथाक्रमम् ।।२।।
होमं चैव यथा विष्णोः कमलायास्त्रयं त्रयम् ।
आज्येन क्षेत्रपालानामन्येषां मधुमिश्रितैः ।।३।।
एकैकामाहुतिं दद्याल्लाजादिषु पृथक्पृथक् ।
समुत्सृज्य विधानेन यूपं संस्थाप्य पूजयेत् ।।४।।
त्रिहस्तमात्रं रचितं कुर्यान्नागफणान्वितम् ।
रोपयेदेकहस्तेन गर्भे होमं प्रयोजयेत् ।।५।।
लाजासंयुक्तविधिना विश्वेषामिति संजपन् ।
नागाधिपतये तद्वदच्युताय तृतीयकम् ।।६।।
भौमायेति चतुर्थं च ततो यूपं निवेदयेत् ।
'मयि गृभ्णामी'ति सम्पूज्य यूपं च रुद्रदैवतम् ।।७।।
सम्पूज्य रुद्रं पंचांगं धान्यं वस्त्रं च दक्षिणाम् ।
आचार्याय तथा होत्रे अन्येषामिष्टदक्षिणाम् ।।८।।
गोप्रचारे च शैलेयं यूपं हस्तद्वयान्वितम् ।
पंचशीर्षान्वितं कुर्याद्धस्तमात्रं प्ररोपयेत् ।।९।।

सूतजी ने कहा – मैं उस गोप्रचार को पुनः बता रहा हूँ, उसके विधिविशेष को सुनिये । लक्ष्मीसहित विष्णु की पूजा पृथक्–पृथक् उपचारों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिये । तत्पश्चात् विविध उपचारों से ब्रह्मा, रुद्र, करालिका, वराह, चन्द्र, सूर्य और

महादेव का पूजन क्रमशः सुसम्पन्न करके यथाविधान विष्णु और कमला के लिये खीर की तीन-तीन आहुति प्रदान करके क्षेत्रपालों के लिये मधुमिश्रित लाजा आदि की एक-एक पृथक्-पृथक् आहुति देने के पश्चात् विधानपूर्वक यूप का स्थापन और पूजन करना चाहिये । तीन हाथ के नाग के फण की भाँति उसकी रचना करके एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट करने के उपरान्त हवन कर्म प्रारम्भ करना चाहिये; 'विश्वेषा' मिति इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए लाजामिश्रित (खीर) की आहुति विधानपूर्वक नागाधिपति, अच्युत और भौम के लिये प्रदान करके 'मयि गृभ्णामीति' इस मन्त्र के द्वारा पूजन और आहुति उस रुद्रदेवता वाले यूप के लिये समर्पित करनी चाहिये । प×चांग समेत रुद्र की उपासना करके आचार्य के लिये धान्य, वस्त्र सहित अभीष्ट दक्षिणा देकर होता के लिये भी उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये । गो-प्रचार कर्म में शिलाखण्ड के बने हुए यूपस्तम्भ के- जिसका आकार-प्रकार दो हाथ का एवं पाँच शिखर बने रहते हैं । एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट कर उसका स्थापन पूजन करना चाहिये ।

यूपं च चैत्रवृक्षं च कुण्डलीमठपीठिकाम् ।
संस्पृश्याचम्य वै विप्राः प्राणायामेन शुध्यति ।।१०।।
चतुर्हस्तप्रमाणेन शतकुण्डेन सम्मितम् ।
तदर्ध च कनिष्ठेन अष्टकाष्टाधिकं भवेत् ।।११।।
भूमौ रत्नं च संस्थाप्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् ।
'शिवलोकस्थिता गावः सर्वदेवसुपूजिताः ।।१२।।
गोभ्य एषा मया भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना ।'
एवं निवेदयेद्यस्तु गोप्रचारं समाहितः ।।१३।।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ।
यावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति भूमौ शुभानि च ।।१४।।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
पूर्वे सीमां निबघ्नीत कृत्वा वृक्षस्य रोपणम् ।।१५।।
सेतुं कृत्वा दक्षिणतः पश्चिमेंऽगाररोपणम् ।
उत्तरे खानयेत्कूपं तस्य सीमां न लंघयेत् ।।१६।।
ततः सहस्रधारां च शस्येन परिपूरिताम् ।
प्रदद्याद्वा ततो विप्राः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१७।।
नगरग्रामपूर्वे वा उत्तरे पश्चिमेऽपि वा ।
न कुर्यादग्निदिग्भागे दक्षिणां वा ततः शुभाम् ।।१८।।

विप्रवृन्द! यूप, चैत्रवृक्ष, कुण्डली और मठपीठिका के स्पर्श करने पर आचमन और प्राणायाम द्वारा शुद्धि होती है । शतकुण्डी में उसे चार हाथ के प्रमाण का बनाना चाहिये और भूमि में रत्न स्थापित करके इस मन्त्र का उच्चारण करना बताया गया है । शिवलोक में स्थित गौएँ समस्त देव की पूजनीय हैं, इसलिये कल्याणार्थ मैंने गौओं के लिये इस भूमि का दान किया है; इस भाँति जो मनुष्य गोप्रचार (चारागाह) का विधान सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है । तृण-गुल्मों की जितने दिनों तक पृथिवी तल पर स्थिति रहती है, उसने सहस्र वर्षो तक वह स्वर्गलोक में पूजित होता है । पूर्व प्रदेश में सीमा सीमित करके वृक्ष का रोपण करना चाहिये । दक्षिण में सेतुनिर्माण पूर्वक पश्चिम में अग्निशाला और उत्तर की ओर कूपनिर्माण करके इसकी सीमा पार नहीं करनी चाहिये ।।16।। विप्रो! इसके पश्चात् सहस्रधारा का- जो शस्य-श्यामल पूर्ण हो- का जो दान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है । नगर गांव के पूर्व, उत्तर और पश्चिम में करे । अग्निकोण और दक्षिण में सम्बद्ध गोप्रचार नहीं करना चाहिये ।।17-18।।

गोप्रचारं खनेद्यस्तु वाहयेद्वा कथंचन ।
कुलानि पातयत्याशु ब्रह्महत्याश्च विन्दति ।।१९।।
स्वर्ग नयति गोचर्म सम्यग्दत्तं सदक्षिणम् ।
यावत्तृणानि तद्भूमौ सप्तसंख्यानि संख्यया ।।२०।।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे विष्णुलोकान्न तच्च्युतिः ।।२१।।

गोप्रचार का खनन अथवा उद्वाहन करनेवाले मनुष्य का कुल विनष्ट हो जाता है और उसे ब्रह्महत्या का दोष लगता है । दक्षिणासहित गोचर्म परिमित भूमि का दान करने से भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है, उस भूमि में जितने दिन तृण-गुल्म आदि की स्थिति रहती है, उसके सप्तगुण पर्यन्त समय तक वह स्वर्ग में निवास करता है, पश्चात् विष्णुलोक से उसका पतन कभी नहीं होता है ।।19-21।।

महायागावसाने च यो न तर्पयति द्विजान् ।
निरर्थकं तस्य कर्म प्रयासफलमात्रकम् ।।२२।।
वृषोत्सर्गावसाने तु प्रदद्याद्यो महीं द्विजाः ।
न याति विप्राः प्रेतत्वं तस्माद्विप्रादमत्सरा ।।२३।।
तत्र मानं पृथक्चैव श्रृणुतात्र समागताः ।
अमानेन ददेद्यस्तु नरकं याति रौरवम् ।।२४।।
गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठयर्यान्त्रतः ।
तद् गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाघनाशनम् ।।२५।।
गोप्रचारस्य देवस्य ब्राह्मणस्य च भो द्विजाः ।

यावत्कालावधेः सीमा अतीते नास्ति पातकम् ॥२६॥

महायाग की समाप्ति में जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट नहीं करता है, उसका किया हुआ कर्म निष्फल एवं श्रमफल मात्र ही होता है । विप्रवृन्द! वृषोत्सर्ग की समाप्ति में जो मनुष्य पृथिवी दान करता है, उसको कभी प्रेत नहीं होना पड़ता है । उसमें गोचर्म मान का पृथक् विधान बताया गया है, मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो! क्योंकि मानहीन पूर्वक उस कर्म की समाप्ति करने से रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है । जितने स्थान में सौ गायों के साथ एक वृष (साण्ड) भी स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करता है, उसे 'गोचर्म' कहा जाता है और वही सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला होता है । द्विजो! गोप्रचारक किसी भी ब्राह्मण एवं देवता को उसके समयावधि के अन्दर उसकी सीमा पार करने में दोष भागी नहीं होना पड़ता है ।।22-26।।

इस सम्पूर्ण अध्याय को भी लिखा जा सकता है ।

गोप्रचारार्थ भूमिदान का विशेष विधान है, मैंने संक्षेप में संकेत मात्र प्रकरण लिखा है ।

<u>गोप्रचारविधिवर्णनम्</u>

सूत उवाच

अत्र दण्डे च विप्रेन्द्राश्चतुरस्रे समन्ततः ।
षष्टिहस्तमितां भूमिं तस्य पूर्णां मनोरमाम् ॥१७/१॥
प्रचारार्थं गवां चैव यो दद्यात्सुसमाहितः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥२॥
तदर्धं च तदर्धं च तदर्धं वा समुत्सृजेत् ।
यो दद्यात्केवलां भूमिं कन्यां दासीं तथा वृषम् ॥३॥
अलंकारं विना धेनुं फलस्यार्द्धं प्रकीर्तितम् ।
अमण्डपे शुभे स्थाने शर्करादिविवर्जिते ॥४॥
द्विहस्तवेदिकामध्ये प्रकुर्यात्सेतुमण्डपम् ।
तत्र सम्पूज्येद् भद्रं ब्रह्माणं च शचीपतिम् ॥५॥
गणेशं क्षेत्रपालं च शेषं चैव दिगीश्वरान् ।
पंचोपचारैर्विधिवत् पूजयेत्पायसादिना ॥६॥
स्थालीपाकेन जुहुयादन्ते वै विप्रभोजनम् ।
अत्र यागे श्राद्धवर्ज्यं पूर्वेद्युरधिवासयेत् ॥७॥
त्र्यम्बकेनैव मन्त्रेण भूमिं संस्थाप्य पूजयेत् ।
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गन्धतैलं सचन्दनम् ॥८॥

प्रदद्यादसुनीतेति पुनः संस्थापयेच्छुचिः ।
पंचगव्येन च पुनः श्रीश्चतेति च पुष्पकम् ।।९।।
एवं यूपस्य च तथा अधिगृह्णाति मन्त्रकम् ।
गन्धद्वारेति गन्धेन अंशुनातेति तैलकम् ।।१०।।

सूतजी बोले– विप्रश्रेष्ठो! उस दण्ड (यूप) में जो मन लगाकर चारों ओर से चौकोर साठ हाथ परिणाम की सुन्दर एवं पूर्ण मनोरम भूमि का दान गौओं के प्रचारार्थ (चारागाह) करता है, वह साठ हजार वर्षपर्यन्त रुद्रलोक में सम्मानित होता रहता है, अथवा उसकी आधी, चौथाई या आठवें आग की भूमि अथवा यथासाध्य केवल भूमि, कन्या, दासी तथा वृषभ और धेनु– ये अलंकृत किये बिना दान करने से आधा फल देते हैं । मण्डपहीन किसी शुभस्थान में जो मनोरम एवं दोषहीन हो, वहाँ दो हाथ की वेदी बनाकर मध्य में सेतुमण्डप का निर्माण करके उसमें भद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश, क्षेत्रपाल, शेष और दिक्पालों की प×चोपचार से पूजा करते हुए पाकविधान द्वारा बनी हुई खीर से हवन और अन्त में ब्राह्मणभोजन सुसम्पन्न करना चाहिये । इस विधान में श्राद्ध (नान्दीमुक्त) करना निषिद्ध बताया गया है । पर पहले दिन अधिवासन कर्म अवश्य करना चाहिये । पुनः 'त्र्यम्बकमिति' से भूमि का स्थापन एवं पूजन, 'तद्विष्णोरिति' से गन्ध, तैल, चन्दन प्रदान करने में 'असुनीतेति' मन्त्र से पुनः स्थापन कर प×चगव्य का प्रोक्षण करे एवं 'श्रीश्चते' इस मन्त्र से पुष्प प्रदान कर यूप का अधिग्रहण करे और 'गन्धद्वारेति' से गन्ध, 'अंशुनातेति' से तैल प्रदान करे ।।1-10।।

'सुरासुरेति' कुसुमं दूर्वामन्त्रेण दूर्विकाम् ।
प्रभाते पूजयेद्देवान् रुद्रमुद्दिश्य होमयेत् ।।११।।
स्थालीपाकेन विधिना अन्येषां पूर्ववच्चरेत् ।
उत्सृज्यारोपयेद्दीपं स्थिरो भवेति वै ऋचा ।।।१२।।
तन्त्रेण निर्मितं कुर्यात् सफलं च त्रिहस्तकम् ।
हस्तैकं प्रापयेन्मध्ये क्षेत्रे चैव विशेषतः ।।१३।।
स्थाप्येत्तत्र मन्त्रेण पंचगव्येन यत्नतः ।
मधुवातेति मधुना आप्यायस्वेति वै दधि ।।१४।।
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण घटतोयैरनन्तरम् ।
पृथिवीं च वराहं च कूर्मं माधवशक्तिकान् ।।१५।।
वास्तोष्पतिं च विष्णुं च यूपे सम्पूजयेत्क्रमात् ।
दद्यादर्घ्यं च विवरे गर्ते होमं विवर्जयेत् ।।१६।।
अर्घ्यपाद्ये च दुष्टे च हस्तेनोत्सृज्य सत्तमाः ।
(ॐ अद्येत्यादि गोब्राह्मणसर्वसत्त्वेभ्यः पर्यटनार्थाय इमां भूमिं सुपूजितां

विष्णुदैवतां गोप्रचाररूपिणीं श्रुतिस्मृत्याद्युक्तफलप्राप्तयेऽहमुत्सृजे ।।)

शिवलोके स्थिता गावः सर्वदेवैः सुपूजिताः ।

एवं निवेदयेद्विप्रो गोप्रचारं समाहितः ।

स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ।।१७।।

यावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति भूमौ शुभानि च ।

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।१८।।

।।इति गोप्रचारविधिवर्णनम् ।।

'सुरासुरेति' से कुसुम, दूर्वा के मन्त्र से दूर्वा प्रदान कर प्रभात काल में देवों की पूजा करके रुद्र के उद्देश्य से हवन करते हुए अन्यों के लिये भी पाक द्वारा आहुति प्रदान करनी चाहिये । उत्सर्जन कर्म के अनन्तर 'स्थिरो भवेति' से दीप-स्थापन एवं तीन हाथ के प्रमाण में जिसमें एक हाथ का प्रमाण उसका मध्य भाग रहता है, मन्त्रोच्चारण पूर्वक प×चगव्य का प्रोक्षण कर 'मधुवातेति' से मधु, 'आप्यायस्वेति' से दही और 'तद्विष्णोरिति' मन्त्र से घटजल अर्पित करके उस यूप (यज्ञीय-स्तम्भ) में पृथिवी, वराह, कूर्म, माधव, शक्ति, वास्तोष्पति एवं विष्णु की क्रमशः पूजा करके उस विवर में अर्घ्य प्रदान करके केवल गर्त में नहीं बल्कि कुण्ड में होम करना चाहिये । विप्रो! उस अर्घ्य एवं पाद्य के दुष्ट होने पर उसे हाथ से हटा देना चाहिये । 'ओम् अद्येत्यादि' संकल्प कहकर 'ब्राह्मण समेत सभी सात्त्विक प्राणियों के विचरण करने के उद्देश्य से मैं इस गोप्रचार रूप वाली विष्णुदैवत सुपूजित भूमिका श्रुति-स्मृति विहित फल की प्राप्ति के लिये उत्सर्जन करता हूँ; ऐसा कहते हुए प्रार्थना करनी चाहिये - 'शिवलोक में अवस्थित गौएँ समस्त देवों द्वारा पूजित हैं' । जो ब्राह्मण गोप्रचार कर्म में मन लगाकर इस भाँति निवेदन करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में सम्मानित होता है । पुनः इस भूतल पर जितने दिन शुभ तृण-गुल्मों की स्थिति सुरक्षित रहती है, उतने सहस्र वर्ष स्वर्गलोक में वह सम्मान प्राप्त करता रहता है ।।11-18।।

गोपदतृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ! भाद्रपदे मासे शुक्लपक्षे दिनोदये ।

तृतीयायां चतुर्थ्यां च शुद्धायां प्रतिवत्सरम् ।।१७/१।।

उपवासेन गृह्णीयाद् व्रतं नाम्ना तु गोपदम् ।

स्नात्वा नरो वा नारी वा पुष्पधूपविलेपनैः ।।२।।

दध्यक्षतैश्च मालाभिः पिष्टकैर्वनमालया ।

अभ्यंजयेद् गवां श्रृंगं खुरं पुच्छान्तमेव च ।।३।।

दद्याद् गवाह्निकं भक्त्या तासां पूर्वापराह्णयोः ।
अनग्निपाकं भुंजीत तैलक्षारविवर्जितम् ।।४।।
व्रजन्तीनां गवां नित्यमायान्तीनां च भारत ।
पुरद्वारेऽथवा गोष्ठे मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।।५।।
अर्घ्यं प्रदद्याद् गृष्ट्यां वा गवां पादेषु पाण्डव ।
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।।६।।
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।७।।
इत्थं सम्पूज्य दत्वाऽर्घं ततो गच्छेद् गृहाश्रमम् ।
पंचम्यां क्रोधरहितो भुंजीत गोरसं दधि ।।८।।

श्रीकृष्णजी बोले – पार्थ! प्रतिवर्ष भाद्रपदमास के शुक्ल पक्ष में शुद्ध तृतीया और चतुर्थी के दिन उपवास पूर्वक गोपद व्रत को सुसम्पन्न किया जाता है । उस दिन सूर्योदय के समय स्त्री या पुरुष स्नान के उपरान्त पुष्प, धूप, लेपन, दही, अक्षत, माला, पीठी, और वनमाला से गौ के सींग, खुर आदि पुच्छ पर्यन्त विभूषित करना चाहिये । पूर्वाह्ण और अपराह्ण दोनों समय भक्तिपूर्वक गवाह्निक प्रदान के उपरान्त तैल और क्षार लवण विवर्जित अनग्निपक्व (आमान्न) पदार्थ का भोजन करना चाहिये । भारत! घर से गौओं के जाते समय और चरकर आते समय नगर के द्वार या गोष्ठस्थान में उस सकृत्प्रसूता के चरणों में अर्घ्य प्रदान करना चाहिये । हे पाण्डव! मन्त्रवेत्ता इस मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करे – ''माता रुद्राणां .... गामनागामदितिं वधिष्ट'' ।।1-6।। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे – ''मेरे सामने, पीछे और हृदय प्रदेश में गौएँ स्थित हों । मैं सदैव गौओं के मध्य में निवास करूँ'' । इस प्रकार पूजनपूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान कर घर जाकर प×चमी तिथि को शान्तचित्त हो गोरस (मठा) और दही का भक्षण करे ।।7-8।।

शालिपिष्टं फलं शाकं तिलमन्नं च शोभनम् ।
भुक्तावसाने राजेन्द्र संयतस्तां निशां स्वपेत् ।।९।।
प्रभाते गोपदं दत्वा ब्राह्मणाय हिरणमयम् ।
प्रार्थयेच्च गवां नाथं गोविन्दं गरुडध्वजम् ।।१०।।
अर्च्यतेऽत्र यथा गावस्तथा गोवर्धनो गिरिः ।
प्रणम्याच्युतमुद्दिश्च श्रृणु यत्फलमाप्नुयात् ।।११।।
गोभक्तो गोव्रतं कृत्वा भक्त्या शक्त्या च गोष्पदम् ।
सौभाग्यं रूपलावण्यं प्राप्नोति पृथिवीतले ।।१२।।

गोतर्णकाकुलं गेहं गोकुलं च समासतः ।
धनधान्यसमोपेतशालीक्षुरसमृद्धिमान् ।।१३।।
सन्तानं पूजितं लब्ध्वा ततः स्वर्गेऽमरो भवेत् ।
दिव्यरूपधरः स्रग्वी दिव्यालंकारभूषितः ।।१४।।
गन्धर्वैर्गीतवाद्येन सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।
दिव्यं युगशतं छित्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ।।१५।।
यो गोपदव्रतमिदं कुरुते त्रिरात्रं गा वै प्रपूजयति गोरसपूजनाच्च ।
गोविन्दमादिपुरुषं प्रणतः सवित्रामालोकमुत्तममुपैति गवां पवित्रम् ।।१६।।
।। इति श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे गोष्पदतृतीयाव्रतम् ।।

उसके साथ चावल की पिष्टी, फल, शाक, तिल और उत्तम हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये, इसके बाद संयमपूर्वक रात्रि में शयन का विधान है ।।9।। प्रातःकाल होने पर स्नानादि नित्यकर्म का सम्पादन करने के पश्चात् सुवर्णमय गोष्पद ब्राह्मण को अर्पित करके उन गौओं के पालक स्वामी गरुडध्वज गोविन्द भगवान् की प्रार्थना करे । जिस प्रकार गौओं की पूजा की जाती है उसी प्रकार गोवर्धन पर्वत की भी अर्चना करके उन अच्युत भगवान् को प्रणाम करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! जो भक्त पुरुष भक्तिपूर्वक गोव्रत को सुसम्पन्न करता और अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्णमय गोपद ब्राह्मण को अर्पित करता है, वह सौभाग्य और रूपलावण्य की प्राप्ति करता है तथा इस पृथिवी पर उसे गाय, बछड़े, गृह, गोकुल, धन-धान्य, शाली, क्षुर एवं समृद्धि की प्राप्ति से युक्त सम्मानित सन्तान और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है । वहाँ देवरूप होकर सुन्दर मालाओं और अलंकारों से विभूषित होने पर गन्धर्वगण और अप्सरायें गीत-वाद्यादि से उसकी सेवा करती हैं । इस प्रकार वहाँ दिव्य सौ युगों तक सुखपूर्वक समय व्यतीत कर पश्चात् विष्णुलोक को चला जाता है । इस प्रकार जो पुरुष तीन रात्रि में इस गोपद व्रत को सुसम्पन्न करते हुए गोपूजन, गोरसपूजन और आदिपुरुष गोविन्द का अनुनय-विनय पूर्वक सूर्यदेव से प्रार्थना करता है, उसे उत्तम एवं पवित्र गोलोक की प्राप्ति होती है ।।10-16।।

।। इति गोपदव्रतम् ।।

गोवत्सद्वादशीव्रतवर्णनम् - ६७

युधिष्ठिर उवाच

अक्षौहिण्यौ दशाष्टौ च मद्राज्यार्थे क्षयं गताः ।
तेन पापेन मे चित्ते जुगुप्साऽतीव वर्तते ।।६७/१।।
तत्र ब्राह्मणराजन्यवैश्यशूद्रादयो हताः ।

भीष्मद्रोणकलिंगादिकर्णशल्यसुयोधनाः ॥२॥
तेषां वधेन यत्पापं तन्मे मर्माणि कृन्तति ।
पापप्रक्षालनं कंचिद् धर्मं ब्रूहि जगत्पते ॥३॥
श्रीकृष्ण उवाच
सुमहत्पुण्यजननं गोवत्सद्वादशीव्रतम् ।
अस्ति पार्थ महाबाहो पाण्डवानां धुरन्धर ॥४॥
युधिष्ठिर उवाच
केयं गोद्वादशी नाम विधानं तत्र कीदृशम् ।
कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्काले जर्नादन ॥५॥
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि पाहि मां नरकार्णवात् ॥६॥
श्रीकृष्ण उवाच
पुरा कृतयुगे पार्थ मुनिकोटिः समागता ।
तपश्चचार विपुलं नामव्रतधरा गिरौ ॥७॥
हर्षेण महताविष्टा देवदर्शनकांक्षया ।
जम्बूमार्गे महापुण्ये नामतीर्थविभूषिते ॥८॥
पारियात्रे सिद्धपात्रे रम्ये तन्दुलिकाश्रमे ।
टण्टाविरिति विख्याते उत्तमे शिखरे नृप ॥९॥

युधिष्ठिर ने कहा - जगत्पते! मेरे राज्यप्राप्ति के निमित्त अठारह अक्षौहिणी सैनिकों का वध हुआ, उस पाप के कारण मेरे चित्त में अत्यन्त जुगुप्सा हो रही है; क्योंकि उस युद्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आदि जाति के अनेक सैनिक आहत हुए हैं और भीष्म, द्रोण, कलिंगादिक कर्ण, शल्य तथा सुयोधन - इन सभी के वधजनित पाप मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण कर रहा है । अतः इन पापों के प्रक्षालनार्थ किसी धर्माचरण का उपदेश करने की कृपा कीजिये । श्रीकृष्ण बोले - पाण्डवों में धुरन्धर! महाबाहो! पार्थ! अत्यन्त पुण्यजनक गोवत्सद्वादशी नामक व्रत का विधान तुम्हें बता रहा हूँ ।।1-4।। युधिष्ठिर ने कहा - जर्नादन! गोवत्सद्वादशी किसे कहते हैं? उसका विधान क्या है? और किस समय (इस लोक में) उसका आविर्भाव हुआ है? हरे! इन सबका विस्तारपूर्वक उत्तर देते हुए आप मुझे इस नरकार्णव से रक्षित रखने की कृपा करें ।।5-6।। श्रीकृष्ण बोले- पार्थ पूर्वकाल में कोटि मुनियों ने देवदर्शन की अभिलाषा से हर्षमग्न होकर अनेक प्रकार के व्रतानुष्ठान पूर्वक उस पर्वतशिखर पर तप करना आरम्भ किया जो 'टण्टावि' के नाम से प्रख्यात जम्बू मार्ग में परमोत्तम महापुरुष एवं अनेक तीर्थो से सुशोभित है ।।7-8।। उस आश्रम का नाम तन्दुलिकाश्रम है, जो सोमापर्वत और सिद्ध प्रदेशों से सम्मिलित है ।।9।।

तपसाऽरण्यमतुलं दिव्यकाननमण्डितम् ।
वसिष्ठशुकांगिरसक्रतुदक्षादिभिर्वृतम् ।।१०।।
वल्कलाजिनसंवीतैर्भृगोराश्रममण्डलम् ।
नानामृगगणैर्जुष्टं शाखामृगगणैर्युतम् ।।११।।
प्रशान्तसिंहहरिणं सर्ववस्तुगतद्रुमम् ।
गहनं निर्झरं रम्यं लतासन्तानसंकुलम् ।।१२।।
सिंहव्याघ्रगजैर्भिन्नहरिणैः शबरैः शशैः ।
वराहैरुरुसंयुक्तैः समन्तादुपशोभितम् ।।१३।।
तपस्यता तत्र तेषां मुनीनां दर्शनार्थिनाम् ।
व्याजं चक्रे महीनाथ द्वादशार्धार्धलोचनः ।।१४।।
बभूव ब्राह्मणो वृद्धो जरापाण्डुरमूर्धजः ।
श्लथच्चर्मतनुः कुब्जो यष्टिपाणिः स वेपथुः ।।
उमाऽपि चके गोरूपं श्रृणु तत् पार्थ यादृशम् ।।१५।।
क्षीरोदतोयसम्भूता याः पुराऽमृतमन्थने ।
पंच गावः शुभाः पार्थ पंच लोकस्य मातरः ।।१६।।
नन्दा सुभ्रदा सुरभी सुशीला बहुला इति ।
एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च ।।१७।।

नृप! तपस्या से अरण्य के विस्तृत क्षेत्र में दिव्य वन की अतुल शोभा निखरी सी रहती है, जो वल्कल एवं मृगचर्मधारी वसिष्ठ, शुक, अंगिरापुत्र, क्रतु, दक्ष आदि से चारों ओर से आवृत एवं भृगु के आश्रममण्डल से विभूषित है । वहाँ वन के सभी प्रकार के जन्तुगण आपस में प्रीतिपूर्वक निवास करते हैं । शाखामृगगण (वानरों) के मनोहर दृश्य सदैव होते रहते हैं । सिंह और हरिण अत्यन्त शान्त दिखाई देते हैं । वहाँ सभी वस्तु तथा सभी भाँति के वृक्ष हैं, जो इस प्रकार गहन, रम्य निर्झर एवं अनेक प्रकार की लताओं से आच्छन्न उस आश्रम की भूमि में सिंह, व्याघ्र, गज, नानाविध हरिण, जंगली जाति, शशाक, एवं श्रेष्ठ बड़े वराहों के समूह स्वच्छन्द चारों ओर निर्बाध भ्रमण करते हैं । उस आश्रम में उन दर्शनार्थी महात्माओं की तपोनिष्ठा को देखकर त्रिनेत्र शिवजी ने (जो प×चदश नेत्रों से भी अलंकृत हैं) कुछ ब्याजपूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया । उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया, वयोवृद्ध होने के नाते उनके सिर के केश अत्यन्त पीतवर्ण के हो गये थे, शरीर की त्वचा (मांस से) शिथिल होकर झूल रही थी, शरीर में कूबड़ निकल आया था और वे स्वयं हाथ में छड़ी लिये हिलते-काँपते चल रहे थे । पार्थ! उधर उमादेवी ने भी जिस प्रकार का गोरूप धारण किया था, मैं बता रहा हूँ, सुनो- पूर्वकाल में क्षीरसागर के

मथने पर उसमें से पाँच सौन्दर्यपूर्ण गौओं की उत्पत्ति हुई थी, जो पाँचों लोकमाताएँ कही जाती हैं- नन्दा, सुभद्रा, सुरभी, सुशीला और बहुला के नाम से प्रख्यात होकर लोक के उपकार और देवताओं की तृप्ति के लिये आविर्भूत हुई थीं ।।10-17।।

जमदग्निभरद्वाजवसिष्ठासितगौतमाः ।
जगृहुः कामदाः पंच गावो दत्ताः सुरैस्ततः ॥१८॥
गोमयं रोचनं मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् ।
षडंगानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च ॥१९॥
गोमयादुत्थितः श्रीमान् बिल्ववृक्षः शिवप्रियः ।
तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ॥
बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात् ॥२०॥
गोरोचना च मांगल्या पवित्रा सर्वसाधिका ।
गोमूत्राद् गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः ॥
आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः ॥२१॥
यद्बीजं जगतः किंचित्तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् ।
दध्ना सर्वाणि जातानि मंगलान्यर्थसिद्धये ॥
घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम् ॥२२॥
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥२३॥

इन पाँचों कामधेनु गौओं को देवों से सप्रेम प्रदान करने पर जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित एवं गौतम ने सहर्ष ग्रहण किया । गौओं के षडंग पदार्थ गोमय, गोरोचन, मूत्र, क्षीर, दधि और घृत अत्यन्त पवित्र एवं संशुद्धिकारक माने जाते हैं; गोमय से उत्पन्न होने के नाते बिल्ववृक्ष भी श्रीसम्पन्न तथा शिवप्रिय है । उस वृक्ष पर पद्महस्ता लक्ष्मी सदैव सुशोभित हो विराजमान रहती है, इसीलिये उसे श्रीवृक्ष भी कहा जाता है । उसी गोमय द्वारा नीलकमल आदि के बीज भी पुनः उत्पन्न हुए हैं । गोरोचन मांगलिक पवित्र एवं सर्वसाधिका है । गोमूत्र से अत्यन्त सुगन्धित मनोहारी गुग्गुल की उत्पत्ति हुई है, जो समस्त देवताओं एवं विशेषकर शिवजी का प्रिय आहार है । इस समस्त जगत् का जो कुछ भी बीज है वह गोक्षीर से ही उत्पन्न हुआ है । दधि से सर्वार्थसिद्धि के लिये सब प्रकार के मांगलिक द्रव्य उत्पन्न हुए हैं और घृत से देवताओं की तृप्ति का मूल कारण अमृत उत्पन्न हुआ है । ब्राह्मण और गौओं का एक ही कुल दो प्रकार से विभाजित है । ब्राह्मणों में मन्त्र प्रतिष्ठित हैं और गौओं में यज्ञीय हव्य पदार्थ की प्रतिष्ठा है (जिन दोनों के संयोग से यज्ञ सम्पन्न होता है ।) ।।18/23।।

गोषु यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः ।
गोषु वेदाः समुत्कीर्णाः सषडंगपदक्रमाः ।।२४।।
श्रृंगमूले गवां नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च संस्थितौ ।
श्रृंगाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ।।२५।।
शिरोमध्ये महादेवः सर्वकारणकारणम् ।
ललाटे संस्थिता गौरी नासिकायां च षणमुखः ।।२६।।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नासापुटसमाश्रितौ ।
कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्भ्यां शशिभास्करौ ।।२७।।
दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः ।
सरस्वती च हुंकारे मासपक्षौ व गण्डयोः ।।२८।।
सन्ध्याद्वयमोष्ठयोश्च ग्रीवायां च पुरन्दरः ।
रक्षांसि पार्श्वदेशे तु साध्या उरसि संस्थिताः ।।२९।।
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जंघासु तिष्ठति ।
खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ।।३०।।
खुराणां पश्चिमे भागे संस्थिता ह्यप्सरोगणाः ।
रुद्रा एकादश पृष्ठे वायवः सर्वसन्धिषु ।।३१।।
श्रोणीतस्थाः पितरः कपोले मानवास्तथा ।
श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहाऽलंकारमाश्रिता ।।३२।।
आदित्यरश्मयः पुच्छे पिण्डीभूता व्यवस्थिताः ।
साक्षाद् गंगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ।।३३।।
त्रयस्त्रिंशद् देवकोट्यो रोमकूपेषु संस्थिताः ।
उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ।।३४।।
चत्वारः सागराः प्रोक्ता गवां ये तु पयोधराः ।
पर्जन्यः क्षीरधारासु मेघा बिन्दौ व्यवस्थिताः ।।३५।।
जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थितः ।
कण्ठ आहवनीयोऽग्निः सभ्योऽग्निस्तालुनि स्थितः ।।३६।।
अस्थिव्यवस्थिताः शैला मज्जासु क्रतवः स्थिताः ।
ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा ।।३७।।
सुरक्तपीतकृष्णादौ गवां वर्णे व्यवस्थिताः ।
तासां रूपमुमा स्मृत्वा सुरभीनां युधिष्ठिर ।।३८।।
संस्मृत्य तत्क्षणाद् गौरी इयेष सदृशीं तनम् ।
आत्मानं विदधे देवी धर्मराज श्रृणुष्व ताम् ।।३९।।

गौओं में समस्त यज्ञ प्रवर्तित होता है, गौओं में सभी देवगण प्रतिष्ठित हैं तथा पद-क्रमसहित षडंग वेद भी गौओं में व्याप्त है ।।24।। गौओं के श्रृंगमूल में ब्रह्मा

और विष्णु नित्य अवस्थित हैं, और श्रृंग के अग्रभाग में समस्त तीर्थ, स्थावर एवं जंगम स्थित हैं ।।25।। शिरोमध्य में समस्त कारणों के मूलकारण महादेव शिव विराजते हैं, ललाट में गौरी एवं नासिका में स्वामी कार्त्तिकेय निवास करते हैं ।।26।। नासापुट में कम्बल और अश्वतर नामक नाग कानों में अश्विनी कुमार और नेत्रों में चन्द्र एवं सूर्य विराजते हैं ।।27।। दाँतों में सभी वसुन्धरा, जिह्वा में वरुण, हुंकार में सरस्वती एवं यम तथा यक्ष (पाठान्तर से मास, पक्ष) गण्डस्थल में निवास करते हैं ।।28।। ओष्ठप्रदेश में दोनों सन्ध्यायें, ग्रीवा में इन्द्र पार्श्वदेश में रक्षोगण तथा हृदयप्रदेश में साध्यगण अवस्थित हैं ।। (द्यौश्च पार्ष्णिकाये व्यवस्थिता- एँडी में द्युदेवता विराजमान हैं।)।।29।। चार पादों से युक्त सम्पूर्ण धर्म उनकी जंघाओं में नित्य निवास करते हैं । खुरों के मध्य में गन्धर्व, खुराग्र भाग में सर्प, खुरों के पृष्ठ भाग में अप्सरोगण निवास करते हैं, पृष्ठ भाग (पीठ) में एकादश रुद्र और समस्त संधियों में वायुदेवता का निवास है ।।30-31।। नितम्ब (चूतड़) प्रदेश सभी पितर, कपोल में मानव मात्र, अपान में लख्मी एवं गौओं के अलंकार में नित्य ही स्वाहा का निवास रहता है ।।32।। पुच्छभाग में आदित्य रश्मियाँ पिण्डीभूत होकर व्यवस्थित रहती हैं, गोमूत्र में साक्षात् गंगा एवं गोमय में साक्षात् यमुना का नित्य ही निवास होता है ।।33।। गौओं के रोमकूपों में तैंतीस कोटि देवताओं का विशेषरूप से नित्य निवास रहता है और उदर में पर्वत, वन एवं काननों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी निवास करती है ।।34।। गायों के पयोधर में चारों सागर निवास करते हैं, क्षीरधाराओं में पर्जन्य तथा क्षीरबिन्दु में मेघों का निवास रहता है ।।35।। उसी प्रकार जठर में गार्हपत्याग्नि, हृदय में दक्षिणाग्नि, कण्ठ में आहवनीयाग्नि तथा तालु में सभ्याग्नि स्थित हैं ।।36।। अस्थियों में पर्वतसमूह, मज्जाओं में यज्ञ तथा ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद एवं यजुर्वेद क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्णादि वर्ण के गौओं में व्यवस्थित हैं । गौओं के रूपों का स्मरण करके उमा ने उनके समान रूप धारण किया। धर्मराज! देवी उमा ने जिस प्रकार का रूप धारण किया है, मैं बता रहा हुँ सनो - ।।39।।

षडुन्नतां पंचनिम्नां मण्डूकांक्षीं सुवालधिम् ।
ताम्रस्तनीः रौप्यकटिं सुखुरीं सुमुखीं सिताम् ।।४०।।
सुशीलां च सुतस्नेहां सुक्षीरां सुपयोधराम् ।
गोरूपिणीमुमां स्पृष्ट्वा स्वामिनीं तां सवत्सिकाम् ।।४१।।
चर्यया प्रतरन् हृष्टो महोदवः स्वचेतसि ।
शनैः शनैर्ययौ पार्थ विप्ररूपी महाश्रमम् ।।४२।।

उनके इस मनोहारी शरीर के अंग छः स्थानों से उन्नत, पाँच स्थानों में निम्न, मण्डूक के समान नेत्र, सुन्दर बालों से युक्त पुच्छ, ताम्रवर्ण के स्तन, रजत के समान कटिभाग, सुन्दर खुर, सुन्दर मुख, श्वेत वर्णा ।।40।। सुशील बछड़े को स्नेह देनेवाली, सुन्दर दुग्धवती, सुन्दर पयोधर वाली और सुन्दर वत्स से युक्त उस गोरूपिणी स्वामिनी उमा का स्पर्शकर ।।41।। हे पार्थ! उनकी चर्या से अपने हृदय में प्रसन्नता का अनुभव करते हुए विप्ररूपी महादेव धीरे-धीरे उनके पीछे चलते हुए महाश्रम को प्राप्त हो गये ।।42।।

दत्वा कुलपतेः पार्श्वे भृगोस्तां गां न्यवेदयत् ।
तपस्विनां महातेजास्तां च सर्वेषु पाण्डव ।।४३।।
न्यासरूपां ददौ धेनुं रक्षित्वा तां दिनद्वयम् ।
यावत्स्नात्वा इतस्तीर्त्वा जम्बूमार्गे वियाम्यहम् ।।४४।।
रक्षिष्यामः प्रतिज्ञाते मुनिभिः सुरभीमिमाम् ।
अन्तर्धिमगमद्देवः पुनर्व्याघ्रो बभूव ह ।।४५।।
वज्रचक्रनखो दर्वी ज्वलत् पिंगललोचनः ।
जिहवाकरालवदनो जिहवा लांगूलदारुणः ।।४६।।
सम्प्रदायादाश्रमपदं तां च धेनुं सवत्सिकाम् ।
त्रासयामास तां देवो मुनीनां दिक्ष्वस्थितः ।।४७।।
ऋषयोऽपि समाक्रान्ता आर्त्तनादं प्रचक्रिरे ।
हाहेत्युच्चैः केचिदूचुर्हुं हुंकारैस्तथाऽपरे ।।४८।।
तालांस्फोटान् ददुः केचिद् व्याघ्रं दृष्ट्वाऽतिभैरवम् ।
साऽपि हंभारवांश्चक्रे गौरुत्पलुत्य सवत्सिका ।।४९।।
तस्या व्याघ्रभयार्ताया: कपिलाया युधिष्ठिर ।
पलायन्त्याः शिलामध्ये क्षणं खुरचतुष्टयम् ।।५०।।

पाण्डव! उन महातेजस्वी महादेव ने कुलपति भृगु के पार्श्व में उस गौ को देकर सभी तपस्वियों के समक्ष निवेदन किया ।।43।। महादेव ने कहा कि धरोहर के रूप में यह गौ आप लोगों के पास रख रहा हूँ, जम्बूतीर्थ में स्नान कर दो दिन में लौट आऊँगा, तब तक आपलोग उसकी रक्षा करें ।।44।। हमलोग इस सुरभी की रक्षा अवश्य करेंगे । इस भाँति मुनियों के प्रतिज्ञाबद्ध होने पर महादेव ने अन्तर्हित होकर पुनः व्याघ्र का रूप धारण कर लिया ।।45।। वज्र के चक्र के समान कठोर एवं तीक्ष्ण करछी के समान नख, जलते हुए अंगार के समान पिंगलनेत्र, लम्बी जिह्वा से युक्त विकराल मुख तथा भयंकर जिह्वा और पूँछ वाला वह व्याघ्ररूपधारी महादेव सभी दिशाओं में अवस्थित होकर मुनियों के उस सवत्सा गौ को आश्रम में जाकर

त्रास देने लगे ।।46।। ऋषिगण भी उसके आक्रमण से आर्त्तनाद करने लगे । कोई उच्च स्वर से हाहाकार कर रहे थे और कोई हुँ हुँ का उच्चस्वर से उच्चारण कर रहे थे ।।47।। कोई ताली तथा चुटकी आदि का स्फोट कर रहे थे और वह गौ भी अतिभयंकर व्याघ्र को देखकर जोर-जोर से रंभाती हुई अपने बछड़े के साथ इधर-उधर उछलने-कूदने लगी ।।49।। हे युधिष्ठिर! व्याघ्र के भय से आर्त्त उस कपिला के पलायन करने से शिलाओं के मध्य में उस गौ के चारों खुर के चिह्न क्षणभर में वहाँ अंकित हो गये ।।50।। वहाँ वत्स और व्याघ्र के पदचिह्न अंकित हो गये थे ।

व्याघ्रवत्सकयोस्तत्र वन्दितं सुरकिन्नरैः ।
दृश्यतेऽतीव सुव्यक्तं तदद्यापि चतुष्टयम् ।।५१।।
सजलं शिवलिंग च शम्भोस्तीर्थं तदुत्तमम् ।
यः संस्पृशति राजेन्द्र स गोवध्यां व्यपोहति ।।५२।।
तत्र स्नात्वा महातीर्थे जम्बूमार्गे नराधिप ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।५३।।
ततस्ते मुनयः क्रुद्धा ब्रह्मदत्तां महास्वनाम् ।
जघ्नुर्घटां सुरैर्दत्तां गिरिकन्दरपूरणीम् ।।५४।।
शब्देन तेन व्याघ्रोऽपि मुक्त्वा गां तां सवत्सिकाम् ।
विप्रैस्तत्र कृतं नाम ढुण्ढागिरिरिति श्रुतिः ।।
तं प्रपश्यन्ति ये पार्थ ते रुद्रा नात्र संशयः ।।५५।।
अथ प्रत्यक्षतां श्रेष्ठस्तेषां देवो महेश्वरः ।
शूलपाणिस्त्रिपुरहा कामघ्नो वृषभे स्थितः ।।५६।।
उमासहायो वरदः सस्वामी सविनायकः ।
सनन्दिः समहाकालः सश्रृंगी समनो हरिः ।।५७।।
वीरभद्रा च चामुण्डा घण्टाकर्णादिभिर्वृता ।
मातृभिर्भूतसंघातैर्यक्षराक्षसगुह्यकैः ।
देवदानवगन्धर्वमुनिविद्याधरोरगैः ।।५८।।
प्रणम्य देवदेवाय पत्नीभिः सहितैरुमा ।
गोरूपिणी सवत्सा च पूजिता ब्रह्मचारिभिः ।।५९।।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां नन्दिनीव्रतम् ।
ततः प्रभृति राजेन्द्र अवतीर्णं महीतले ।।६०।।
उत्तानपादेन तथा व्रतं चीर्णमिदं श्रृणु ।
उत्तानपादनामासीत्क्षत्रियः पृथिवीपते ।।६१।।
तस्य भार्या द्वयं चासीद्रुचिशुघ्नीति विश्रुतम् ।

शुघ्नीजातो ध्रुवः पुत्रो वामपादधरोऽलसः ।।६२।।
रुच्याः समर्पितः शुध्न्या ध्रुवोऽयं रक्ष्यतां सखि ।
अहं करिष्ये शुश्रूषां भर्तुस्तावत्सदा स्वयम् ।।६३।।

जो सुरकिन्नरों से वन्दित हैं, आज भी अत्यन्त स्फुटित दिखाई देते हैं । राजेन्द्र! भगवान शम्भु का वह सजल एवं परमोत्तम शिवलिंग वहाँ सुशोभित है, जिसके स्पर्श करने से मनुष्य गोहत्या के पाप से शीघ्र मुक्त हो जाता है । नराधिप! वहाँ के जम्बूमार्ग नामक महातीर्थ में स्नान करने पर ब्रह्महत्यादि पाप से प्राणी अवश्य मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं । अनन्तर उन मुनिवृन्दों ने क्रुद्ध होकर भीषण ध्वनि करनेवाले उस देवदत्त नामक घण्टा को बजाया, जो सुरगण प्रदत्त था, उसके भीषण रव से व्याप्त होने पर गिरिकन्दरों द्वारा भीषण श्रुतिध्वनि हुई, जिसके कारण उस व्याघ्र ने बछड़े समेत गाय को छोड़ दिया । ब्राह्मणों ने उस स्थान की 'ढुण्ढागिरि' नाम से ख्याति की है । पार्थ! उसके दर्शन करनेवाले अवश्य रुद्ररूप हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । तदुपरान्त महादेव ने उन ऋषियों के सम्मुख प्रत्यक्ष होकर उस रूप से दर्शन दिया जो अत्यन्त सौम्य था- त्रिपुरान्तक एवं कामविनाशी शिव हाथ में त्रिशूल लिये, उमासमेत वृषभवाहन पर शोभित, स्वामी कार्तिकेय, विनायक, नन्दी, महाकाल, भृंगी, वीरभद्रा, चामुण्डा और घण्टाकर्ण आदि से विभूषित थे । मातृकायें, भूतगण, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, देव, दानक, गन्धर्व, विद्याधर, पन्नग आदि ब्रह्मचारिगणों ने उमासमेत देवाधिदेव भगवान् शिव को प्रणाम कर वत्स-गोरूपधारिणी उमा की कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन अर्चना की है । राजेन्द्र! उसी समय से इस पृथिवीतल पर यह व्रत अवतरित हुआ है । राजा उत्तानपाद ने भी इस व्रत को सविधान सम्पन्न किया है, मैं बता रहा हूँ, सुनो । पृथिवीपते! उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय थे । रुचि और शुघ्नी नाम की उनकी दो स्त्रियाँ थीं । शुघ्नी पुत्र ध्रुव के उत्पन्न होने पर जो बालपन के चरण से विभूषित उस समय अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण दिखाई देते थे, शुघ्नी ने अपनी सौत रुचि को वह पुत्र अर्पित कर दिया और कहा- सखि! इस बालक ध्रुव की देखभाल तुम करो ।।51-64।।

रुची रसवतीं नित्यं प्रत्यहं कुरुते गृहे ।
अकरोद् भर्तृशुश्रूषां शुघ्नी नित्यं पतिव्रता ।।६४।।
कदाचितत्क्रोधमात्सर्यात् सापत्न्यं दर्शितं तया ।
स्वयं रुच्या निहत्यासौ शिशुः खण्डलशः कृतः ।।६५।।
तापिकायां तथा स्थाल्यां पक्वसिद्धः सुसंस्कृतः ।
अन्नभोजनवेलायां ददाति नृपभाजने ।।६६।।

तं वै भक्षयितुं दुष्टा सामिषं भोजनं किल ।
अथ भोजनवेलायां बव्रे जीवितमाप्तवान् ॥६७॥
तथैव प्रहसन् बालो मातुरुत्संगजोऽभवत् ।
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुचिः पप्रच्छ विस्मिता ॥६८॥
किमेतद् ब्रूहि वृत्तान्तं कस्येयं व्युष्टिरुत्तमा ।
किं त्वयाऽऽचरितं किंचिद् व्रतं दत्तं हुतं तथा ॥६९॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं येन जीवति ते सुतः ।
मयाऽयं सप्त्वारांस्तु विशल्य शकलीकृतः ॥७०॥
पक्वः स्वयंकृतः स्थाल्यां व्यंजनैः सह भोजने ।
परिविष्यमाणः स पुनः कथं जीवितमाप्तवान् ॥७१॥
किं ते सिद्धा महाविद्या मृतसंजीवनी शुभा ।
रत्नं मणिर्महारत्नं योगांजनमहौषधम् ॥७२॥

रुचि सदैव अपने पति के निमित्त भण्डारगृह में सरस भोजन बनाती थी और पतिव्रता शुघ्नी नित्य प्रति पति की सेवा करती थी । एक बार सापत्न्य वैर के उत्पन्न हो जाने से अत्यन्त क्रुद्ध होकर रुचि ने शुघ्नी के पुत्र ध्रुव को खण्ड-खण्ड करके भोजनपाकपात्र में रखकर प्रज्वलित चूल्हे पर चढा दिया । भोजन के समय राजा के सामने बालक के उस पक्व मांस को भी रखा, तत्पश्चात् भोजन के समय वह पुत्र जीवित होकर अपनी माता की गोद मे हँसते-खेलते दिखाई दिया । उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर रुचि ने शुघ्नी से पूछा कि इस वृतान्त को तुम बताओ कि यह किस सत्कर्म का परमोत्तम फल है ? तुमने किस व्रत का अनुष्ठान, हवन अथवा दान किया है ? यह सत्य और सत्य एवं परम सत्य है । क्योंकि उसी कारण तुम्हारा यह पुत्र जीवित है । मैने इसे सात बार स्वयं अपने हाथों से खण्ड-खण्ड करके पकाया है और अन्य व्य×जन आदि भोजनों में इसे उलट-पुलट कर अत्यन्त सम्मिलित कर दिया था, फिर भी कैसे यह जीवित हो पाया ? क्या तुम उस सिद्ध एवं मृतस×जीवनी महाविद्या को जानती हो ? अथवा तुम्हारे पास कोई रत्न, मणि, महारत्न, योगा×जन या महौषध है?।।64-72।।

कथयस्व महाभागे सत्यं सत्यं भगिन्यसि ।
एवमुक्ते रुचिस्तस्यै व्याचख्यौ वत्सगोव्रतम् ॥७३॥
कार्तिके चैव द्वादश्यां यथा चानुष्ठितं पुरा ।
व्रतस्यास्य प्रभावेण पुनर्जीवति मे सुतः ॥७४॥
वत्सो मे वत्सवेलायां मृतोऽर्थं लभते पुनः ।
समागमश्च भवति व्रतैः प्रवसितैरपि ॥७५॥

यथार्थमेतद् व्याख्यातं ते च गोद्वादशीव्रतम् ।
रुचे तवापि तत्सर्वं भविष्यति शुभं प्रियम् ।।७६।।
एवमुक्तं व्रतं चीर्णं रुच्याः पुत्राः सुखं धनम् ।
सम्प्राप्ता जीवितान्ते च ध्रुवस्थाने निवेशिता ।।७७।।

महाभागे! इस वृत्तान्त को सत्य सत्य बताना, क्योंकि तुम मेरी बहन हो । इस प्रकार रुचि के कहने पर शुघ्नी ने इस वत्सगोव्रत का विधान उसे सुनाया- पहले समय में मैंने कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन इस व्रतानुष्ठान को सविधान सुसम्पन किया था, जिसके प्रभाव से यह मेरा पुत्र पुनर्जीवित हुआ है । यह मेरा वत्स वत्सवेला (सायं-प्रातःकाल) में अमृत प्राप्त करता है तथा प्रवासी होने पर भी इसका समागम होता है । इस प्रकार मैंने गोवत्सद्वादशी व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया । इसलिये हे रुचि देवि! तुम्हारी भी इष्टसिद्धि इससे पूर्ण होगी । इस शुघ्नी के बताये हुए उस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न कर रुचि ने भी अनेक पुत्र, धन एवं सम्पूर्ण सुखोपभोगों को प्राप्त करने के अनन्तर ध्रुवलोक में ध्रुवपद को प्राप्त किया ।।73-76।।

ब्रह्मणा सृष्टिकारेण रुचिर्भर्त्रा सहासिता ।
दशनक्षत्रसंयुक्तो ध्रुवः सोऽद्यापि दृश्यते ।।
ध्रुवर्क्षे च यदा दृष्टे लोकः पापैः प्रमुच्यते ।।७८।।

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्विधानं च तन्मे ब्रूहि जर्नादन ।
यत्कृतं शुघ्निवचनाद्रुच्या यदुकुलोद्भव ।।७९।।

श्रीकृष्ण उवाच

सम्प्राप्ते कार्तिके मासि शुक्लपक्षे कुरूत्तम ।
द्वादश्यां कृतसंकल्पः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ।।
नरो वा यदि वा नारी एकभुक्तं प्रकल्पयेत् ।।८०।।
ततो मध्याह्नसमये दृष्ट्वा धेनुं सवत्सिकाम् ।
सुशीलां वत्सलां श्वेतां कपिलां रक्तरूपिणीम् ।।८१।।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां स्त्रीजनेश्वर ।
यथाक्रमेण पूज्यैनां गन्धपुष्पजलाक्षतैः ।।८२।।
कुंकुमालक्तकैर्दीपैर्माषान्नवटकैः शुभैः ।
कुसुमैर्वत्सके चापि मन्त्रेणानेन पाण्डवः ।।८३।।
ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट नमो नमः स्वाहा ।।८४।।
इत्थं सम्पूज्य गां स्पृष्ट्वा पश्चात्तां च क्षमापयेत् ।
ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि ।

मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥८५॥
एवमभ्यर्चयेदेकां गामेतद्धि गवाह्निकम् ।
पर्युक्ष्य वारिणा भक्त्या प्रणम्य सुरभीं ततः ॥८६॥
तद्दिने तापिकापक्वं स्थालीपाकं च वर्जयेत् ।
भूमौ स्वयं ब्रह्मचारी शयीत फलमाप्नुयात् ॥८७॥
यावन्ति गात्रे रोमाणि गवां कौरवनन्दन ।
तावत्कालं स वसति गोलोके नात्र संशयः ॥८८॥
मेरोः पुर्यष्टकं रम्यमिन्द्राग्नियमरक्षसाम् ।
वरुणानिलयक्षाणां रुद्रस्य च युधिष्ठिर ।
तासामुपरि गोलोकस्तत्र याति स गोव्रती ॥८९॥
ऊर्जे सिते द्विदशमेहनि गां सवत्सां
याः पूजयन्ति कुसुमैर्वटकैश्च हृद्यैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगविभूतिभाजो
मर्त्ये वसन्ति सुचिरं बहुजीववत्साः ॥९०॥
॥ इति श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे गोवत्सद्वादशीव्रतम् ॥

वह रुचि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के समान अपने पति के साथ वहाँ सदैव सुशोभित होकर निवास करती है । दस ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों से युक्त ध्रुव आज भी दिखाई देते है, उनके नक्षत्र के दिन ध्रुव का दर्शन करने से मनुष्यों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।।78।। युधिष्ठिर ने कहा- हे यदुकुलोद्भव जर्नादन! इस व्रत का विधान मुझे बताने की कृपा करें । जिसे शुघ्नी के कहने पर रुचि ने सम्पन्न किया था ।।79।। श्री कृष्ण बोले- कुरूत्तम! कार्तिक मास की शुक्ला द्वादशी के दिन प्रातः किसी पवित्र जलाशय में स्नान करके व्रत के लिये संकल्प करते हुए उस स्त्री या पुरुष को एकाहारी होना चाहिये । तदनन्तर मध्याह्न के समय सुशीला, वत्सला ओर सवत्सा गौ का दर्शन पूजन करे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यथाक्रम से सवत्सा, श्वेत, कपिल और रक्तवर्णा गौ का पूजन करे । गन्ध, पुष्प, जल, अक्षत, कुंकुम, अलक्तक, दीप और माषान्न (उड़द) के सुशोभन वटक (बड़े) द्वारा गौ की और पुष्पादि के द्वारा उसके वत्स की समन्त्रक अर्चना करनी चाहिये । हे पाण्डव! ''माता रुद्राणां.... '' आदि मन्त्रों से उस सवत्सा गौ की पूजा सुसम्पन्न कर गौ का स्पर्श करे और उससे क्षमा की प्रार्थना करे- ''समस्त देवमयी और सम्पूर्ण लोकों का शुभ करनेवाली है माता नन्दिनि! मेरी भी सम्पूर्ण अभिलाषा को सम्पन्न करो ।'' इस प्रकार गौ की अर्चना कर गवाह्निक दे क्षमा-प्रार्थना के अनन्तर सभी वस्तुओं को जल से अभिषि×चत् करते हुए सुरभी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और उस दिन तवे पर पकाये हुए तथा

अन्य पक्व भोजन का त्याग करे । पुनः ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भूमि पर शयन करे इससे उसकी सम्पूर्ण मनःकामनायें पूर्ण हो जाती हैं ।।87।। हे कौरवनन्दन! गौ के शरीर में जितने रोम हैं, उतने दिन तक वह सुखपूर्वक गोलोक में निवास करता है, इसमें सन्देह नहीं है । हे युधिष्ठिर! सुमेरु के आठ पुरियों में अतिरमणीय इन्द्र, अग्नि, यम, रक्षोगण, वरुण, वायु, यक्ष, और रुद्र की जो पुरियाँ हैं, इन सब के ऊपर गोलोक धाम है, गोव्रती उसी गोलोक धाम को प्राप्त करते हैं ।।89।। इस प्रकार कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन पुष्प और हितकारी बटक (बड़े) आदि के द्वारा जो सवत्सा गौ की पूजा करते हैं, वे इस लोक में सभी कामनाओं की पूर्ति से युक्त हो सम्पूर्ण सुख, भोग और बहुल ऐश्वर्य को प्राप्त करके चिरकाल तक निवास करते हुए सत्पुत्रों का समुचित आनन्द प्राप्त करते हैं ।।20।।

।। इति गोवत्सद्वादशीव्रतम् ।।

नानाविधदानमाहात्म्यम्

वृषदानम्

येषां सदा वै श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ।।१५०/१६।।
गात्रे दृढं भारसहं सुपुष्टं सुश्रृंगिणं सर्वगुणोपपन्नम् ।
दत्वार्षभं गोदशकेन तुल्यं सत्यं भवन्ति भुवि तत्फलभागिनस्ते ।।१५०/१७।।

जिनके कर्णविवर सदैव वेदशब्दों से पूर्ण हों, जितेन्द्रिय, हिंसावृति से रहित और प्रतिग्रह लेने में संकोची हों वे ही गृहस्थ ब्राह्मण मानव का उद्धार करने में समर्थ होते हैं ।।16।। जो शरीर से दृढ़, भार वहन करने में सक्षम, सुपुष्ट, सुन्दर सींग और उत्तम वृष के समस्त गुणों से युक्त हो, वह वृष दस गौओं के समान होता है । उस वृष का दान करनेवाले इस भूतल में दस गौ के दान के समान फल प्राप्त करनेवाले होते हैं, यह सत्य है ।।17।।

प्रत्यक्षधेनुदानम् - १५२/४१

गोभ्योऽधिकं जगति नापरमस्ति किंचिद्दानं पवित्रमिति शास्त्रविदो वदन्ति ।
तत्सम्पदः सुरसदश्च समीहमानैर्देयाः सदैव विधिना द्विजपुंगवाय ।।१५/३७।।

शास्त्रवेत्ताओं के अनुसार गोदान से श्रेष्ठ एवं पवित्र कोई अन्य दान नहीं है । अत: सुरसदन में दैवी सम्पदा के इच्छुकों को किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये सविधान गोदान अवश्य अर्पित करना चाहिये ।।51/37।।

तिलधेनुदानम्

धेनुं धनाधिपतयो मगधोद्भवेन मानेन ये तिलमयीं चतुराढकेन ।
कृत्वा यथोक्तरचनां कृतचारुवत्सां यच्छन्ति ते भुवि भवन्ति विमुक्तपापा: ।।१५२/४१।।

मगधोद्भव के मानानुसार चार आढ़क तिल की सौन्दर्यपूर्ण सवत्स धेनु का निर्माण कर विधानपूर्वक दान देनेवाले धनाधीश्वरगण पापमुक्त होकर इस पृथिवी पर सुख का अनुभव करते हैं ।

जलधेनुदानम् - १५३/७२

इष्टेन किं क्रतुशतेन सुदुष्करेण क्लेशाधिकेन सुकृतैर्नियमैर्व्रतैश्च ।
दत्वा द्विजाय पितृराजगृहं गतस्य ह्येकाऽपि गौर्जलमयी सुखमातनोति ।।१५३/७२।।

सैकड़ों सुदुष्कर क्लेशसाध्य यज्ञ से क्या? श्रेष्ठ नियम, संयम, और व्रतादि सुकृतों से क्या? जबकि पितृलोक गये हुए प्राणी के निमित्त किसी ब्राह्मण को सादर समर्पित की हुई जलधेनु उसको विस्तृत सुख प्रदान करती है ।

घृतधेनुदानम् - १५४/१७

मायाजलं सुतकलत्रमहोर्मिमालं लोभोग्रनक्रविषयं बहुपुण्यभाज: ।
लग्ना निमग्ननवपुषो घृतधेनुपुच्छे संसारसागरमपारमहो तरन्ति ।।१५४/१७।।

इस अपार संसार सागर को- जिसमें मायारूपी जल, सुत एवं स्त्री आदि परिवार रूपी भीषण तरंग समूह और लोभरूपी उग्र नक्र है, घृतधेनु का दान करनेवाला अत्यन्त पुण्य पात्र होने के नाते समस्त शरीर के उसमें निमग्न रहने पर भी घृतधेनु की पूँछ के सहारे पार कर जाता है ।

लवणधेनुदानम् - १५५/२३।।

पर्णौर्णकम्बलगलां लवणाढकेन कृत्वा फलस्तनवतीमपि लावणाख्याम् ।
दत्वा द्विजाय विधिवद्रसधेनुमेनां लोकं गवां सकलसौख्ययुतो विशेत्स: ।।१५५/२३।।

ब्राह्मण के लिये विधिपूर्वक लवणधेनु का दान करने पर- जिसके पत्ते और ऊर्णा से निर्मित गलकम्बल, आढ़क प्रमाण लवण द्वारा अन्य अंग एवं फलों से स्तननिर्मित रहते हैं, सकल सौख्य समेत उसे गोलोक की प्राप्ति होती है ।

सुवर्णधेनुदानम् - १५६।। गोप्रार्थना

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरभूषणाऽसि विश्वेश्वरत्रिपथगोदधिपर्वतनाम् ।
श्रद्धाऽम्बुतीक्ष्णशकलीकृतपातकौघः प्राप्नोति निर्वृतिमतीव परां नमामि ॥१२॥
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भयमाग्भवतीह मर्त्यः ।
संसारदुःखशमनाय यतस्वकामांस्त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति ॥१३॥
आमन्त्र्य साधुकुलशीलगुणान्विताय विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।
प्राप्नोति सिद्धमुनिकिन्नरदेवजुष्टं कन्याशतैः परिवृतं पदमिन्दुमौलेः ॥२७॥

हे गोमातः! तू विष्णुप्रिया गंगा, समुद्र और पर्वतों के निवासी तथा समस्त देवताओं के मन्दिर की आभूषण हो । तुम्हारा दान और पादवन्दन करने पर श्रद्धारूपी जल की तीक्ष्णता से उसके समस्त पाप विनष्ट होने से प्राणी अत्यन्त उत्तम शान्ति को प्राप्त करता है । अतः मैं तुम्हें प्रणाम करता है ।।12।। इस लोक में यथेच्छ फल प्रदान करनेवाली तुम्हें प्राप्त कर कौन मनुष्य निर्भय होकर भाग्यवान् नहीं होता है? अतः वेद के निष्णात निष्काम विद्वान् संसारदुःख के शमनार्थ तुम्हें ही कामधेनु कहते हैं ।।13।। साधु, कुलीन, शीलवान् एवं प्रशस्त गुणयुक्त किसी विप्र को सुवर्णधेनु अर्पित करने पर वह प्राणी सिद्ध, किन्नर और देवताओं से सेवित तथा सैकड़ों कन्याओं से परिवृत उत्तम शिवलोक को प्राप्त करता है ।।27।।

<u>रत्नधेनुदानम् - १५७</u>

त्वां सर्वदेवगणधामनिधिं स्तुवन्ति रुद्रेन्द्रचन्द्रकमलासनवासुदेवाः ।
तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेहयुक्तां मां पाहि देवि भवसागरमग्नमाशु ॥१३॥
इह सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम् ।
सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदनसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः ॥१८॥

हे देवि! रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा एवं भगवान् वासुदेव तुम्हें समस्त देवगणों का धाम एवं निधि जानकर ही तुम्हारी स्तुति करते हैं, अतः त्रिभुवनों की देह का स्वरूप तुम मेरी शीघ्र रक्षा करो । भवसागर में निमग्न मुझे केवल तुम्हीं उबार सकती हो ।।13।। इस संसार में रत्नधेनु का दान करने पर उस समस्त विधानवेत्ता को देदीप्यमान विमान की प्राप्तिपूर्वक पापमुक्त होने के नाते पुत्र, पौत्र एवं बान्धवों के समेत कामदेव के समान सौन्दर्य तथा शिव का परमपद प्राप्त होता है ।।18।।

<u>उभयमुखीगोदानम् - १५८</u>

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णाः ।
महानितम्बास्तनुवृत्तमध्याः सेवन्त्यजस्रं नलिनाभनेत्राः ॥१४॥

उभयमुखी गोदान करनेवाले की सेवा ऐसी स्त्रियाँ निरन्तर करती रहती हैं, जिनके चन्द्रमा के समान मुख, तपाये हुए सुवर्ण के समान देह, महान् मध्यभाग (कटि) सर्वथा क्षीण (पतली) और कमल की आभा के समान नेत्र हैं ।।14।।

सहस्रगोदानम् - १५९

न त्वेवेदं दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
तस्मादेताः सर्वभूषासमेताः पात्रे काले क्षीरवत्यो विधानात् ॥४४॥
एकाऽपि गौर्बहुगुणा गुणिने प्रदत्ता दातुः कुलं त्रिपुरुषं विधिवत्पुनाति ।
यः श्रद्धया वितरतीह गवां सहस्रं शक्यं फलं न नृपतेऽस्य मयाऽभिधातुम् ॥४५॥

केवल दानमात्र की ही प्रशंसा नहीं है, अपितु पात्र, काल, उत्तम गौ और उत्तम विधान भी प्रशंसनीय है । अतः सुअवसर प्राप्त होने पर सर्वाभरण से विभूषित पयस्विनी गौ का दान सविधि किसी सुपात्र ब्राह्मण को करना चाहिये ।।44।। हे राजन्! सविधान अनेक गुणसम्पन्न एक ही गौ किसी गुणज्ञ ब्राह्मण को समर्पित करने पर वह गौ दाता के तीन पीढ़ी को पवित्र करती है और जिसने श्रद्धायुक्त हो गोसहस्र का दान किया है उसका फल वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ ।।45।।

वृषभदानमाहात्म्यम् १६०

ये क्षान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधान्निवृत्ताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥१५॥
ऊर्जस्विनं भरसहं दृढकन्धरं च यच्छन्ति ये वृषमशेषगुणोपपन्नम् ।
दत्तेन यद् भवति गोदशकेन पुण्यं सत्यं भवन्ति भुविततत्फलभागिनस्ते ॥१६॥

जो सहनशील, शुद्ध, वेदाध्यायी, संयमी, हिंसारहित और प्रतिग्रह लेने में संकोच करते हों, वही गृहस्थ ब्राह्मण दाता का उद्धार करने में समर्थ होते हैं ।।15।। बलशाली, भारवहन करने में समर्थ, दृढ़ स्कन्ध और समस्त गुणसम्पन्न वृष का दान करनेवाला प्राणी दस गोदान के पुण्य का भागी होता है, यह सत्य है ।।16।।

कपिलादानम् - १६१

प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णां महानितम्बां तनुवृत्तमध्याम् ।
अर्द्धप्रसूतां द्विमुखीं सुशीलां सेवन्त्यजस्रं कपिलां हि देवाः ॥७३॥

भलीभाँति प्रतप्त किये सुवर्ण के समान वर्ण, महान् नितम्ब (चूतड़), सूक्ष्म कटि, अर्द्धप्रसव से युक्त दो मुखवाली और सुशीला कपिला गौ की सेवा समस्त देवगण सदैव किया करते हैं ।।63।।

भूमिदानम् - १३४-१३५

यच्छन्ति ये द्विजवराय महीं सुकृष्टां ते यान्ति शक्रसदनं सुविशुद्धदेहाः ।
ये लोपयन्त्यतिबलादथ कामलोभात् ते रौरवातिगहनान्न समुत्तरन्ति ॥४२॥

भलीभाँति जुताई आदि करके सस्यश्यामला भूमि किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करनेवाले विशुद्धात्मा होकर इन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं और काम, लोभ अथवा बलात् इसका नाश करनेवाले अतिगहन रौरवादि नरक से कभी मुक्त नहीं होते हैं ।।42।।

द्वीपादिकर्षविषमां विधिवद् विधाय हैमीं महीं सुरमहीमिव विन्ध्यमध्याम् ।
लोकेशब्रह्मशिवकेशवसंयुतां च प्रायच्छ पार्थ तव किं बहुनोदितेन ॥१३५/३३॥

पार्थ! सविधान सुवर्णमयी पृथिवी का दान अवश्य ही करना चाहिये । वह विषम कर्षसम्मित हो । वह सम्पूर्ण द्वीपादि से युक्त होने के कारण इन्द्रादि लोकपति, ब्रह्मा, शिव, और केशव से युक्त होती है । विशेष कहने से क्या प्रयोजन? ।।33।।

हलपंक्तिदानम् - १६६

ये सन्ति लांगलमुखोत्थरजोविकारा यावन्ति तद्गतधुरन्धररोमकाणि ।
तावन्ति शंकरपुरे त्रियुगानि तिष्ठेत् पंक्तिप्रदानमिह यत्कुरुते मनुष्यः ॥२८॥
युक्तां वृषैरतिबलैर्हलपंक्तिमेतां पुण्येऽह्नि भक्तिसहितां द्विजपुंगवेभ्यः ।
यच्छन्ति ये सुकृतिनो वसुधासमेतां ते भुभुजो भुवमुपेत्य भवन्ति भव्याः ॥२९॥

हल के मुख (फल) द्वारा निकाली हुई मिट्टी के रजःकण और धुरन्धर बैलों के रोम की संख्या के त्रिगुण युगों तक शिव की पुरी में हल की पंक्ति का दान करनेवाले मनुष्य निवास करते हैं ।।28।। अत्यन्त श्रेष्ठ बलवान् बैलों से युक्त और पृथिवीसमेत हलपंक्ति का दान ब्राह्मणों को करनेवाले दाता पुण्यात्मा मनुष्य इस भूमि पर भव्य राजा होते हैं ।।29।।

अपाकभाण्डदानम् - १६७

निष्पाद्य भाण्डनिचयोच्चतरं प्रयत्नादापाकदानमिह या कुरुते वरस्त्री ।
सा पुत्रपौत्रपशुवृद्धिसुखानि भुक्त्वा प्रेत्य स्वभर्तृसहिता सुखिनी सदाऽऽस्ते ॥३८॥

भाण्डसमूहों को सप्रयत्न बनाकर उसका ढेर लगाकर अपाकभाण्ड का दान करनेवाली स्त्री, पुत्र, पौत्र और पशुवृद्धि आदि सुखों का अनुभव करती हुई परलोक में भी अपने पति के सहित सदैव सुखिनी रहती है ।।38।।

गृहदानम् - १६८

यः कारयेत् सुदृढहर्म्यवतीं महार्हां सत्सेवितां द्विजपुरीं सुजनोपभोग्याम् ।
दिव्याप्सरोभिरभिनन्दितचित्तवृत्तिः प्राप्नोत्यसावनवमं पदमिन्दुमौलेः ॥४५॥

सद्ब्राह्मणों से सेवित पुरी को जो दृढ़ भवनों से युक्त, महार्ह (मूल्यवान्) और सुजनोपभोग्य बनाता है, वह दिव्य अप्सराओं से अभिनन्दित चित्तवृत्तिवाला शिव के शाश्वत पद को प्राप्त करता है ।।45।।

अन्नदानम् - १६९

यच्छन्ति येऽनुदिवसं द्विजपुंगवानामन्नं विशुद्धमनसो भृशमागतानाम् ।
मर्त्ये विहृत्य सुचिरं ससुहृज्जनास्ते प्रेत्य प्रयान्ति भवनं मुदिता मुरारेः ॥६५॥

विशुद्ध चित्त होकर प्रतिदिन अतिथि रूप में आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अन्नदान से सन्तृप्त करनेवाले सज्जनवृन्द इस भूतल में चिरकाल तक आनन्द से विहार करते हुए परलोक में दिव्य कृष्ण के भवन को प्राप्त करते हैं ।।65।।

स्थालीदानम् - १७०

स्थालीं विशालवदनां च सतण्डुलां च यच्छन्ति ये मधुरशुल्बमयी द्विजेभ्यः ।
तेषां सुहृत्स्वजनविप्रजनेन भोज्यं सम्भुज्यमानमपि कृष्ण न याति नाशम् ॥३२॥

युधिष्ठिर ने अपना एक स्मरण कृष्ण से बताया- हे कृष्ण! विशाल आकार की बनी हुई ताम्रमयी स्थाली या हण्डी आदि जो बहुत सुन्दर हों, उन्हें तण्डुल, मधुर और सजल जलपात्र से युक्त दान करनेवाले के यहाँ मित्र, बन्धुवर्ग और ब्राह्मण के समूह के भोजन करने पर भी उनके पात्र कभी रिक्त नहीं होते ।।32।।

वापीदानम् - १७२

सुस्वादुशीतसलिला क्लमनाशिनी च प्रान्ते पुरस्य पथि पान्थसमाजभूमौ ।
यस्य प्रपा भवति सर्वजनोपभोग्या धर्मोत्तरः स खलु जीवति जीवलोके ॥२६॥

सुस्वादों, शीतल जल से पूर्ण, श्रम का नाश करनेवाली और सर्वजनोपभाग्या प्रपा (प्याऊ) का निर्माण नगर में, नगर के रास्ते में, नगर के मुख्य द्वार तथा सार्वजनिक स्थल-चौराहे आदि पर निर्माण करवाने वाला मनुष्य धर्ममूर्ति के रूप में ही इस जीवलोक में सुशोभित रहता है ।

अग्नीष्टिका (अंगीठी) दानम् - १७३

चैत्ये सुरां गणसभाऽवसथे सुभव्यां येऽग्नीष्टिकां प्रचुरकाष्ठवतीं प्रदद्युः ।
हेमन्तशैशिरऋतौ सुखदा जनानां कायाग्निदीपनमलं पुनराप्नुवन्ति ।।१२।।

जो चैत्य, देवालय के प्रांगण, सभा, सार्वजनिक स्थल-चौराहे आदि पर हेमन्त और शिशिर ऋतु के दिनों में प्रचुर काष्ठों की अंगीठी का- जो सबके लिये सुन्दर और सुखप्रद होती है, दान करते हैं वे कायाग्निदीपन पूर्वक सबको स्वस्थ बनाने के फल को प्राप्त करते हैं ।।12।।

विद्यादानम् - १७४

दानं विशेषफलदं जगतीह नान्यद् विद्यां विहाय वदनाब्जकृताधिवासाम् ।
गोभूहिरण्यगजवाजिरथादिसर्व तां यच्छतां किमिह पार्थ भवेन्न दत्तम् ।।२७।।

हे पार्थ! मुखकमल में निवास करनेवाली विद्या के अतिरिक्त अन्य दान इस भूतल में विशेष फलप्रद नहीं, अतः विद्यादान करनेवाले पुरुष ने गौ, भूमि, हिरण्य, गज, अश्व एवं रथ आदि का दान नहीं किया क्या? अर्थात् सब कुछ कर लिया ।।27।।

तुलापुरुषदानम्

ब्रह्मेशकेशवपरोऽस्ति न पूजनीयो नैवाश्वमेधसदृशः क्रतुरस्ति कश्चित् ।
गंगासमं त्रिभुवनेऽपि न तीर्थमस्ति दानं तुलापुरुषदानमिहास्ति नान्यत् ।।

तीनों लोकों में ब्रह्मा, शिव, और विष्णु से श्रेष्ठ कोई पूजनीय नहीं है । अश्वमेध के समान कोई यज्ञ नहीं, गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं और तुलापुरुषदान के समान कोई दान नहीं है ।

ब्रह्माण्डदानम्

ब्रह्माण्डखण्डयुगलं सकुलाचलं च दिग्भागसागरसरोवरसिद्धजुष्टम् ।
दिक्संख्यया गुणवतां द्विजसत्तमानां दत्वा पुमान्पदमुपैति पितामहस्य ।।४६।।

ब्रह्माण्ड के सुवर्णनिर्मित दो खण्ड बनाकर जिनमें समस्त पर्वत, दिशायें, सागर और सरोवर आदि बने रहते हैं, ऐसे गुणी एवं श्रेष्ठ दस ब्राह्मणों को अर्पित करने से दाता को ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है ।

शय्यादानम् १८४

शय्याप्रदानममलं तव पाण्डुपुत्र संकीर्तये सकलसौख्यनिधानमेतत् ।
सद्यो ददाति विधिवत् स्वयमेव नाके तल्पे विकल्परहितः स विभाति सत्यम् ।।२३।।

पाण्डुनन्दन! निर्मल और सोपकरण शय्या का दान करनेवाला पुरुष समस्त सुख के निधान का ही दान कर लिया । इसका महत्त्व बताता हूँ- जो विधिवत् शय्या का दान करता है, वह स्वर्ग में सभी विघ्न-बाधाओं से रहित होकर सुख को प्राप्त करता है ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र- गोऽध्यक्षप्रकरणम्

गोऽध्यक्षो वेतनोपग्रहिकं करप्रतिकरं भग्नोत्सृष्टकं भागानुप्रविष्टकं व्रजपर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघृतसंजातं चोपलभेत ।।१।। गोपालकपिण्डारकदोहकमन्यकलुब्धकाः शतं शतं धेनूनां हिरण्यभृताः पालयेयुः । क्षीरघृतभृता हि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम् ।।२।। जरद्गुधेनुगर्भिणीपष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत् । घृतस्याष्टौ वारकान् पणिकं पुच्छं अंकचर्म व वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः ।।३।। व्याधितान्यंगानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतं पालयन्तस्तज्जातिकं भागं दद्युरिति भग्नोत्सृष्टकम् ।।४।।

गौ आदि की देखरेख में नियुक्त अधिकारी (गोऽध्यक्ष) को चाहिये कि वह- (1) वेतनोपग्राहिक, (2) करप्रतिकर, (3) भग्नोत्सृष्टक, (4) भागानुप्रविष्टक, (5) व्रजपर्यग्र, (6) नष्ट, (7) विनष्ट, और (8) क्षीरघृतस×जात- इन आठों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करे ।।1।। गायों को पालनेवाले (गोपालक), महिषियों को पालनेवाले (पिण्डारक), गाय-महिषी को दुहनेवाले (दोहक), दही को मथनेवाले (मन्थक) और हिंसक पशुओं से गौ आदि की रक्षा करनेवाले (लुब्धक)- ये पाँच-पाँच व्यक्ति मिलकर सौ-सौ गौओं का पालन करें । वेतन में इनको नकद द्रव्यादि प्रदान करना चाहिये । सेवा आदि के निमित्त यदि ये लोग दूध, घी का हिस्सा लेते हैं तो ये लोग प्रायः बछडों को मार ही देते हैं । गाय आदि की रक्षा के इस उपाय का नाम 'वेतनोपग्राहिक' है ।।2।। वृद्घा, दूध देनेवाली, गर्भिणी, प्रष्ठौही (पठोरी) और बछिया - इन पाँच प्रकार की गायों को बीस-बीस के क्रम से सौ बनाकर उन्हें किसी गोसवेक चरवाहे को ठेके पर दिया जाय । इसमें बदले में चरवाहा गोस्वामी को आठ वारक घी, प्रत्येक के लिये एक-एक पण और सरकारी मुहर से युक्त पशु का चर्म प्रतिवर्ष दिया करे; रक्षा के इस उपाय को 'करप्रतिकर' कहते हैं

।।3।। बीमार, कानी, लँगड़ी, एकहथी (अनन्यदोही), मुश्किल से दुही जाने योग्य और बच्चों को खानेवाली (पुत्रघ्नी) – इन पाँच प्रकार की गायों को भी पूर्ववत् सौ बनाकर किसी व्यक्ति को ठेके पर दिया जाय । गोपालक को चाहिये कि वह स्थिति के अनुसार घी आदि को आधा या तिहाई हिस्सा मालिक को दे दिया करे; इस उपाय का नाम 'भग्नोत्सृष्टक' है ।।4।।

परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्युरिति भागानुप्रविष्टकम् ॥५॥ वत्सा वत्सरा दम्या वाहिनो वृषा उक्षाणश्च पुंगवाः ॥६॥ युगवाहनशकटवहा वृषभाः सूनामहिषाः पृष्ठस्कन्धवाहिनश्च महिषाः ॥७॥ वत्सिका वत्सतरी प्रष्ठौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता वन्ध्याश्च गावो महिष्यश्च ॥ मासद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च । मासद्विमासजातानंकयेत् । मासद्विमासपर्युषितमंकयेत् । अंकं चिह्नं वर्ण श्रृंगान्तरं च लक्षणम्, एवमुपजा निबन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम् ॥८॥ चोरहृतमन्ययूथप्रविष्टमवलीनं वा नष्टम् ॥९॥

शत्रुओं अथवा चोरों के डर से जो गोपालक अपनी गायों को सरकारी चारागाह में ही बन्द करके रखे, उसको चाहिये कि वह गायों की आमदनी का दसवाँ भाग राजा को प्रदान करे । गाय आदि की रक्षा के इस उपाय को 'भागानुप्रविष्टक' कहते हैं ।।5।। दूध पीनेवाला बछड़ा, बड़ा बछड़ा, कृषियोग्य बछड़ा (दम्य), बोझ ढोने योग्य वृष, उक्षाण (जोतने योग्य बैल) और अण्डकोश समेत (साण्ड) – ये छः प्रकार के बैल होते हैं ।।6।। जूआ-हल-गाड़ी आदि में जोते जाने योग्य, रेत:सि×चक वृषभ, सूनामहिष (मांसमात्रोपयोगी महिष), बोझा ढोने योग्य महिष और साण्ड महिष होते हैं ।।7।। वत्सिका, वत्सतरी, प्रष्ठौही (बालगर्भिणी), गर्भिणी, धेनु, अप्रजाता और वन्ध्या – सात प्रकार की गायें एवं महिषियाँ होती हैं । उनके दो महीने या एक महीने के उत्पन्न हुए बछड़ों को उपजा (लयेरू) कहते हैं । उन लयेरू बछडों को लोहे के गर्म छल्लों से अंकन कर देना चाहिये । दो मास तक सरकारी चारागाह में रहनेवाली गाय और महिषियों को भी अंकित कर देना चाहिये । उनके स्वामियों का पता लगे या न लगे- राजकीय मुहर अथवा छल्ले आदि से अंकित गौ, महिषी तथा लयेरू बछडों के रंग, सींग आदि विशेष चिह्नों का उल्लेख लेखनीपुस्तिका में किया जाय । गायों की रक्षा के इस उपाय को 'व्रजपर्यग्र' कहते हैं ।।8।। नष्ट गोधन तीन प्रकार का होता है- 1. चोरों द्वारा अपहरण, 2. दूसरे गोष्ठों में विलयित और 3. अपने गोष्ठ से भ्रष्ट – इसी अवस्था को 'नष्ट' कहते हैं ।।9।।

पंकविषमव्याधिजरातोयाहारावसन्नं वृक्षतटकास्थशिलाभिर्हतमीशानव्यालसर्पग्राहदावाग्निविपन्नं विनष्टम् । प्रमादादभ्यावहेयुः

॥१०॥ एवं रूपाग्रं विद्यात् ॥११। स्वयं हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः । परपशूनां राजांकेन परिवर्तयिता रूपस्य पूर्वं साहसदण्डं दद्यात् ॥१२॥ स्वदेशीयानां चोरहृतं प्रत्यानीय पणिकं रूपं हरेत् । परदेशीयानां मोक्षयितार्धं हरेत् ॥१३॥ बालवृद्धव्याधितानां गोपालकाः प्रतिकुर्युः ॥१४॥ लुब्धकश्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपरबाधभयमृतुविभक्तमरण्यं चारयेयुः ॥१५॥ सर्पव्याघ्रत्रासनार्थं गोचरानुपातज्ञानार्थं च त्रस्नूनां घण्टातूर्यं च बध्नीयुः ॥१६॥

दल-दल में फँसी, गड्ढे में गिरी, बीमार, बूढ़ी, पानी तथा आहार के अभाव में नष्ट, वृक्ष तले दबी, चट्टान या शिलाओं से जख्मी, बिजली गिर जाने से नष्ट, हिंसक जानवरों से आक्रान्त, साँप, नक्र या जंगली आग से नष्ट गायों को विनष्ट कहते हैं । यदि इस प्रकार गाय आदि का विनाश गायों की असावधानी के कारण होवे तो उस हानि को वे स्वयं पूरा करें ।।10।। अध्यक्ष को चाहिये कि वे इन सभी बातों की पूरी जानकारी रखे ।।11।। यदि कोई ग्वाला गाय को मारे या किसी से मरवाये, उसकी चोरी करे या करवाये तो उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये । जो गाय-भैंस सरकारी नहीं हैं उन पर राजकीय चिह्न कर उनके रूप को बदल देनेवाले व्यक्ति को प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ।।12।। चोरों से चुराये गये अपने देश के पशुओं को जो व्यक्ति उन के वास्तविक स्वामियों को वापिस कर दे, उसके मालिक से वह प्रति पशु के पीछे एक पण वसूल कर ले । चोरों से छुड़ाये गये परदेश के पशुओं का आधा हिस्सा मालिक का और आधा हिस्सा छुड़ाने वाले का होता है ।।13।। गोपालकों को चाहिये कि वे बछड़ों, बीमार और बूढ़े पशु की उचित परिचर्या करे ।।14।। गोपालकों को चाहिये कि वे शिकारियों, बहेलियो, चोरों, हिंसकों और शत्रु की बाधाओं आदि से सावधान रहकर ऋतु के अनुसार सुरक्षित जंगलों में गायों को चराये ।।15।। सर्प-व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं को डराने के लिये, चरागाह में गाय की पहचान के लिये और घबराने वाले पशुओं की गर्दन में लोहे की घंटी बांध देनी चाहिये ।।16।।

समव्यूढतीर्थमकर्दमग्राहमुदकमवतारयेयुः पालयेयुश्च । स्तेनव्याघ्रसर्पग्राहगृहीतं व्याधिजरावसन्नं च आवेदयेयुरन्यथा रूपमूल्यं भजेरन् ॥१७॥ कारणमृतस्यांकचर्म गोमहिषस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमंकचर्म चाश्वखरोष्ट्राणां बालचर्मबस्तिपित्तस्नायुदन्तखुरश्रृंगास्थीनि चाहरेयुः ॥१८॥ मांसमाममार्दं शुष्कं वा विक्रीणीयुः । उदश्वित् श्ववराहेभ्यो दद्युः । कूर्चिकां सेनाभक्तार्थमाहरेयुः। किलाटो धाणपिण्याकक्लेदार्थः ॥१९॥ पशुविक्रेता पादिकं रूपं दद्यात् ॥२०॥ वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुह्युः । शिशिरवसन्तग्रीष्मानेककालम् । द्वितीयकाले दोग्धुरंगुष्ठच्छेदो दण्डः ॥२१॥ दोहनकालमतिक्रामतस्तम्फलहानं दण्डः ॥२२॥

पशुओं को पानी पिलाने एवं नहलाने के लिये ऐसे स्थान में उताड़ना चाहिये, जहाँ चौरस घाट बने हों और दलदल एवं हिंसक जलचर जन्तु दोनों न हो; गोपालक पूरी सावधानी से उनकी रक्षा करता रहे । गोपालकों का कर्तव्य है कि वे चोर, व्याघ्र, सर्प एवं नक्र आदि से आक्रान्त और बीमारी तथा बुढ़ापे से मरे हुए पशुओं की सूचना अध्यक्ष को दे, अन्यथा मृतपशु के नुकसान का दायित्व उन पर समझा जायगा ।।17।। यदि भैंस मर गई हो तो उसका दगा हुआ चमड़ा, अजा तथा भेड़ के चिह्नित कान, और घोड़ा, गधा एवं ऊँट की पूँछ लाकर ग्वालाध्यक्ष के सामने रख दे, साथ ही उस मरे हुए पशु के बाल, चर्म, मूत्राशय, पित्ता, आँत, दाँत, खुर, सींग और हड्डी- इन सब चीजों का संग्रह करके रख ले ।।18।। गीले या सूखे मांस को बेच देना चाहिये । मठा को श्वानों और वराहों में वितरित कर देना चाहिये । का×जी को सैनिकों के लिये देनी चाहिये । फटे हुए दूध को गाय-भैंसों की सानी में डाल देना चाहिये ।।19।। पशुओं का व्यापारी प्रत्येक पशु के पीछे उसकी लागत का चतुर्थांश अध्यक्ष को दे ।।20।। ग्वालों को चाहिये कि सावन, भादो, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष महीनों में गाय-भैंस को दो समय दुहे । माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ में केवल सायंकाल ही दुहे ।।21।। इन छह महीनों में गाय-भैंसों को दोनों समय दुहनेवाले व्यक्ति का अंगूठा काट देना चाहिये । जो ग्वाला ठीक समय पर न दुहे, उसे उस दिन का वेतन न दिया जाय ।।22।।

एतेन नस्यदम्ययुगपिंगनवर्तनकाला व्याख्याताः ॥२३॥ क्षीरद्रोणे गवां घृतप्रस्थः । पंचभागाधिको महिषीणाम् । द्विभागाधिकोऽजावीनाम् । मन्थो या सर्वेषां प्रमाणं, भूमितृणोदकविशेषाद्धि क्षीरघृतवृद्धिर्भवति ॥२४॥ यूथवृषं वृषेणावपायतः पूर्वः साहसदण्डः घातयत उत्तमः ॥२५॥ वर्णावरोधेन दशती रक्षाः । उपनिवेशदिग्विभागो गोप्रचाराद् बलान्वयतो वा गवां रक्षासामर्थ्याच्च । अजावीनां षाण्मासिकामूर्णां ग्राहयेत् । तेनाश्वखरोष्ट्रवराहवज्रा व्याख्याताः ॥२६॥ बलीवर्दानां नश्याश्वभद्रगतिवाहिनां यवसस्यार्धभारः, तृणस्य द्विगुणं, तुला धाणपिण्याकस्य, दशाढकं कणकुण्डकस्य, पंचपलिकं मुखलवणं, तैलकुडवो नस्यं, प्रस्थः पानम् । मांसतुला, दध्नश्चाढकं, यवद्रोणं, माषाणां वा पुलाकः । क्षीरद्रोणमर्धाढकं वा सुरायाः, स्नेहप्रस्थः क्षारदशपलं श्रृंगिबेरपलं च प्रतिपानम् ॥२७॥ पादोनमश्वतरगोखराणां, द्विगुणं महिषोष्ट्राणां कर्मकरबलीवर्दानाम् । पायनार्थं च धेनूनाम् । कर्मकालतः फलतश्च विधानम् । सर्वेषां तृणोदकप्राकाम्यम् । इति गोमण्डलं व्याख्यातम् ॥२८॥

॥ इति गोऽध्यक्षप्रकरणम् ॥

इसी प्रकार जो व्यक्ति ठीक समय पर बैलों को न नाथे, ठीक समय पर बैलों को दम्य कर्म में न लगावे, नौसिखिये तथा पूरे बैल को एक साथ जोते, बैलों को ठीक समय पर न सिखाये– उन्हें भी उस दिन का वेतन नहीं देना चाहिये ।।23।। एक द्रोण गाय के दूध में एक प्रस्थ घी निकलता है । यदि एक द्रोण भैंस का दूध हो तो उससे पाँच प्रस्थ घी निकलता है । बकरी और भेड़ के एक द्रोण दूध में दो भाग अधिक घी निकलता है । किसी भी पशु के दही को मथकर ही उससे निकलने वाले घी का ठीक परिणाम निर्धारित किया जा सकजा है । भूमि, घास, पानी आदि की अधिक सुविधाओं के ऊपर ही दूध–घी की वृद्धि निर्भर है ।।24।। यदि कोई व्यक्ति गोष्ठ के सांड को किसी दूसरे सांड से लड़ाये तो उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये, उसको मारे तब भी उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ।।25।। एक रंग की दस गौएँ, इस प्रकार की दस वर्णो की सौ गौएँ करके किसी ग्वाले को रक्षा के लिए दे देनी चाहिये । गायों के रहने और चरने के निमित्त व्यवस्था, उनकी अधिकता के अनुसार ही उनकी सुरक्षा करनी चाहिये । बकड़ी और भेड़ की ऊन छह मास बाद उतार लेनी चाहिये । गाय, भैंसों के अनुसार ही घोड़े, गधे, ऊँट, और सूअरों की भी यथोचित व्यवस्था की जानी चाहिये । नथे हुए घोडों और बैलों के रथ पर जुते जानेवाले श्रेष्ठ बैलों को आधा भास (10 तुला) हरी घास, उससे दुगुनी भूसी, दस आढक सानी, पाँच पल नमक, एक कुडव तेल नस्य में, एक प्रस्थ तेल पीने के लिये देना चाहिये । इसके अतिरिक्त सौ पल एक आढक दही, एक द्रोण जौ या उड़द इन सब चीजों का साँदा बनाकर भी दिया जाना चाहिये । ण्क द्रोण दूध या आधा आढक खुरा, एक प्रस्थ तेल या घी, दस पल गुड़ या एक पल सोंठ– इन सबको एकत्र करके बैलों को देना चाहिये ।।27।। बैलों की इस खुराक का चतुर्थांश कम खुराक खच्चरों तथा गधों को, बैलों की दुगुनी खुराक भैसों, ऊँटों, एवं खेतों में काम करनेवाले बैलों तथा दूध देनेवाली गायों को देनी चाहिये । काम करनेवाले बैलों एवं गायों की खुराक उनके कार्य एवं दूध के औसत के अनुसार ही दी जानी चाहिये । सभी पशुओं को उनकी इच्छानुसार भरपेट घास–पानी देना चाहिये । यहाँ तक गौ आदि की आहारव्यवस्था बताई गई ।।28।।

<u>भविष्य पुराण ७८</u>

श्रीकृष्ण उवाच

तथाऽन्यामपि ते वच्मि गोविन्दद्वादशीं श्रृणु ।

तस्याः सम्यगनुष्ठानात्प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ।।१।।
पौषे मासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः ।
सम्यक्सम्पूज्य गोविन्दनाम्ना देवमधोक्षजम् ।।२।।
धूपपुष्पोपचारैश्च नैवेद्यैश्च समाहितः ।
गोविन्देति जपेन्नाम पुनस्तद्गतमानसः ।।३।।
विप्राय दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या नराधिप ।
स्वयं विबुद्धस्तुलितो गोविन्देति च कीर्तयेत् ।।४।।
पाखण्डिभिर्विकर्मस्थैरालापांश्च विवर्जयेत् ।
गोमूत्रं गोमयं वाऽपि दधिक्षीरमथापि वा ।।५।।
गोदोहतः समुद्भूतं प्राश्नीतात्मविशुद्धये ।
द्वितीयेऽह्नि पुनः स्नानं तथैवाभ्यर्च्य केशवम् ।।६।।
तेनैव नाम्ना सम्पूज्य दत्वा विप्रस्य दक्षिणाम् ।
ततो भुंजीत गोदोहं सम्भूतेन समुद्भवम् ।।७।।
एवमेवाखिलान्मासानुपोष्य प्रयतः शुचिः ।
दद्याद् गवाह्निकं विद्वान्प्रतिमासं तु शक्तितः ।।८।।
पारिते च पुनर्वर्षे गोविन्दं पद्मया सह ।
गोविन्दः प्रीतिमायातु व्रतेनानेन मे सदा ।।९।।
विशेषतः पुनर्दद्यात्तस्मिन्नह्नि गवाह्निकम् ।
भक्त्या परमया राजन् श्रृणु यत्फलमाप्नुयात् ।।१०।।

श्रीकृष्ण बोले– मैं तुम्हें गोविन्दद्वादशी व्रत का विधान बता रहा हूँ, सुनो! जिस अनुष्ठान को सविधि सम्पन्न करने पर मनसेप्सित फल होता है ।।1।। पौष शुक्लपक्ष की द्वादशी को उपवास रहकर पुष्प, धूप और नैवेद्यादि उपचारों से गोविन्ददेव की अर्चना करके समाहित चित्त होकर 'गोविन्द' नाम का जप करना चाहिये । नराधिप! यथाशक्ति ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर देवभावना से गोविन्द नाम का कीर्तन करता रहे । पाखण्डी एवं निन्दित पुरुषों के साथ वार्तालाप का त्याग करे । प्रथम दिन दही, क्षीर अथवा गोदोहन के समय प्राप्त गोमय या गोमूत्र का प्राशन आत्मशुद्ध्यर्थ करना चाहिये । दूसरे दिन उसी भाँति पूर्वोक्त नामोच्चारण द्वारा स्नानपूर्वक भगवान् केशव की पूजा करे और ब्राह्मण के लिये विपुल दक्षिणा प्रदान करे । पुनः गोदोहन के समय उससे उत्पन्न पदार्थों का भोजन करे । इस प्रकार प्रत्येक मास की द्वादशी में उपवास और यथाशक्ति गोविन्द की अर्चना करते हुए वर्षान्त में लक्ष्मीसमेत गोविन्द की अर्चना करके क्षमा-प्रार्थना करे कि – इस व्रतानुष्ठान द्वारा गोविन्ददेव सदैव मुझ पर प्रसन्न रहें । राजन्! उस दिन पुनः विशेष कर परम

भक्तिपूर्वक गवाह्निक प्रदान करे; उसका जो फल प्राप्त होता है । उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ।

स्वर्णश्रृंगं रौप्यखुरं गोशतं वृषभं वरम् ।
प्रतिमासं द्विजातिभ्यो दत्वा यत्फलमश्नुते ।।११।।
तदाप्नोत्यखिलं सम्यग्व्रतमेतदुपोषितः ।
तं च लोकमवाप्नोति गोविन्दो यत्र तिष्ठति ।।१२।।
गोविन्दद्वादशीमेतां समुपोष्य विधानतः ।
विद्योतमाना दृश्यन्ते लोकेऽद्यापि शशांकवत् ।।१३।।
गोविन्दमर्चयति गोरसभोजनस्तु गा वै विनोदयति तद्वद् गवाह्निकश्च ।
यो द्वादशीषु कुरुराज कृतोपवासः प्राप्नोत्यसौ सुरभिलोकमपेतशोकम् ।।१४।।
।। इति गोविन्दद्वादशीव्रतवर्णनम् ।।

सुवर्णजड़ित सींग और रजतभूषित खुरों वाली सौ गौओं समेत परमोत्तम वृषभ का दान करने पर निखिल भोगों के अनन्तर भगवान् गोविन्द के लोक की प्राप्ति होती है । विधानसहित गोविन्दद्वादशी के दिन उपवास तथा भगवान् का पूजन करनेवाले आज भी चन्द्रमा के समान प्रकाशपूर्ण दिखाई देते हैं । कुरुराज! द्वादशी के दिन उपवास करते हुए गोविन्द का पूजन, गोरस का भोजन, गौओं के साथ विनोद-क्रीड़ा एवं गवाह्निक अर्पण करनेवाले सम्पूर्ण शोकों से निवृत्त होकर उत्तम सुरभिलोक को प्राप्त करते हैं ।। इति गोविन्दद्वादशीव्रतम् ।।

स्कन्दपुराण 3 ब्र.ख. 26

<u>शिवद्वारा सुरभि की स्तुति पुनः लिंग प्राप्त करना</u>

हरशापवार्त्तावर्णनम्

गालव उवाच

प्रवृत्तायां शैलपुत्र्यां महत्तपसि दारुणे ।
कन्दर्पेण पराभूतो विचचार महीं हरः ।।२६/१।।
वृक्षच्छायासु तीर्थेषु नदीषु च नदेषु च ।
जलेन सिंचन् स्ववपुः सर्वत्रापि महेश्वरः ।।२।।
तथाऽपि कामाकुलितो न लभं शर्म कर्हिचित् ।
एकदा यमुनां दृष्ट्वा जलकल्लोलमालिनीम् ।।३।।
विगाहितुं मनश्चक्रे तापार्त्ति शमयन्निव ।
कृष्णं बभूव तन्नीरं हरकामाग्निवह्निना ।।४।।
दग्धं विगाहनेनाशु मषीप्रायं तदा बभौ ।
साऽपि दिव्यवपुः पूर्व श्यामा भूता हराद्यतः ।।५।।

स्तुत्वा नत्वा महेशानमुवाच पुनरेव सा ।
प्रसादं कुरु देवेश वशगाऽस्मि सदा तव ॥६॥
ईश्वर उवाच
अस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये यः स्नास्यति नरो भुवि ।
तस्य पापसहस्राणि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥७॥
हरतीर्थमिति ख्यातं पुण्यं लोके भविष्यति ।
इत्युक्त्वा तां प्रणम्याथ तत्रैवान्तरधीयत् ॥८॥
तस्यास्तीरे महेशोऽपि कृत्वा रूपं मनोहरम् ।
कामालयं वाद्यहस्तं कृतपुण्ड्रं जटाधरम् ॥९॥
स्वेच्छया मुनिगेहेषु दर्शयत्यंगचापलम् ।
क्वचिद् गायन्ति गीतानि क्वचिन्नृत्यन्ति छन्दतः ॥१०॥
स च क्रुद्ध्यति हसति स्त्रीणां मध्यगतः क्वचित् ।
एवं विचरतस्तस्य ऋषिपत्न्यः समन्ततः ॥११॥
पत्युः शुश्रूषणं गेहे कार्याण्यपि च तत्क्षणात् ।
तमेव मनसा चक्रुस्तस्य रूपेण मोहिताः ॥१२॥
भ्रमन्त्यश्चैव हास्यानि चक्रुस्ता अपि योषितः ।
ततस्तु मुनयो दृष्ट्वा तासां दुःशीलभावनाम् ॥१३॥
चुक्रुधुर्मुनयः सर्वे रूपं तस्य मनोहरम् ।
गृह्यतां हन्यतामेष कोऽयं दुष्ट उपागतः ॥१४॥
इति ते गृह्य काष्ठानि यदोपस्थे ययुस्तदा ।
पलायितः स बहुधा भयात्तेषां महात्मनाम् ॥१५॥
यो जीवकलया विश्वं व्याप्य तिष्ठति देहिनाम् ।
न ज्ञायते न च ग्राह्यो न भेद्यश्चापि जायते ॥१६॥
न शेकुस्ते यदा सर्वे गृहीतुं तं महेश्वरम् ।
तदा शिवं प्रकुपिताः शेपुरित्थं द्विजातयः ॥१७॥
यस्माल्लिंगार्थमागत्य ह्याश्रमांश्चोरवत्कृतम् ।
परदारापहरणं तल्लिंगं पतितं भुवि ॥१८॥
सद्य एव हि शापं त्वं दुष्टं प्राप्नुहि तापस ।
एवमुक्ते स शापाग्निर्वज्ररूपधरो महान् ॥१९॥
तल्लिंगं धूर्जटेश्छित्वा पातयामास भूतले ।
रुधिरौघपरिव्याप्तो मुमोह भगवान् विभुः ॥२०॥
वेदनार्त्तो ज्वलवपुर्महाशापाभिभूतधीः ।
तं तथा पतितं दृष्ट्वा त आजग्मुर्महर्षयः ॥२१॥
आकाशे सर्वभूतानि त्रेसुर्विश्वं चचाल ह ।
देवाश्च व्याकुला जाता महाभयमुपागताः ॥२२॥

ज्ञात्वा विप्रा महेशानं पीडिता हृदयेऽभवन् ।
शुशुचुर्भृशदुःखार्त्ता दैवं हि बलवत्तरम् ॥२३॥
किं कृतं भगवानेष देवैरपि स सेव्यते ।
साक्षी सर्वस्य जगतोऽस्माभिर्नैवोपलक्षितः ॥२४॥
वयं मूठधियः पापाः परमज्ञानदुर्बलाः ।
कथमस्माभिर्यस्यात्मा श्रुतश्च न निवेदितः ॥२५॥
मयेदृशो गृहस्थाय आत्मा यं च निवेदितः ।
निर्विकारो निर्विषयो निरीहो निरुपद्रवः ॥२६॥
निर्ममो निरहंकारो यः शम्भुर्नोपलक्षितः ।
यस्य लोका इमे सर्वे देहे तिष्ठन्ति मध्यगाः ॥२७॥
स एष जगतां स्वामी हरोऽस्माभिर्न वीक्षितः ।
इत्युक्त्वा ते ह्युपविष्टा यावत्तत्र समागताः ॥२८॥
तान् दृष्ट्वा सहसा त्रस्तः पुनरेव महेश्वरः ।
विप्रशापभयान्नष्टस्त्रिपुरारिर्दिवं ययौ ॥२९॥
सुरभिं गां च गोलोके तां तुष्टाव सुसंयतः ।
हर उवाच
सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्र्यै मात्रे नमो नमः ॥३०॥
या त्वं रसमयैर्भावैराप्याययसि भूतलम् ।
देवानां च तथा संघान् पितॄणामपि वै गणान् ॥३१॥
सवैर्ज्ञाता रसाभिज्ञैर्मधुरास्वाददायिनी ।
त्वया विश्वमिदं सर्वबलस्नेहसमन्वितम् ॥३२॥
त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा ।
आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वांछितसिद्धिदा ॥३३॥
त्वं धृतिस्त्वं तथा पुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा ।
ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिस्तथा मतिः ॥३४॥
कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी ।
त्वथा विरहितं किंचिन्नास्ति त्रिभुवनेष्वपि ॥३५॥
वह्नेस्तृप्तिप्रदात्री च देवादीनां च तृप्तिदा ।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजंगमम् ॥३६॥
पादास्ते वेदाश्चत्वारः समुद्राः स्तनतां ययुः ।
चन्द्रार्कौ लोचने यस्या रोमाग्रेषु च देवताः ॥३७॥
श्रृंगयोः पर्वताः सर्वे कर्णयोर्वायवस्तथा ।
नाभौ चैवामृतं देवि पातालानि खुरास्तथा ॥३८॥
स्कन्धे च भगवान् ब्रह्मा मस्तकस्थः सदाशिवः ।
हृद्देशेऽवस्थितो विष्णुः पुच्छाग्रे पन्नगास्तथा ॥३९॥

शकृत्स्था वसवः सर्वे साध्या मूत्रस्थितास्तव ।
सर्वे यज्ञा ह्यस्थिदेशे किन्नरा गुह्यसंस्थिताः ।।४०।।
पितॄणां च गणाः सर्वे पुरःस्था भान्ति सर्वदा ।
सर्वे यक्षा भालदेशे किन्नराश्च कपोलयोः ।।४१।।
सर्वदेवमयी त्वं हि सर्वभूतविवृद्धिदा ।
सर्वलोकहिता नित्यं मम देहहिता भव ।।४२।।
प्रणतस्तव देवशि पूजये त्वां सदाऽनघे ।
स्तौमि विश्वार्त्तिहन्त्रीं त्वां प्रसन्ना वरदा भव ।।४३।।
विप्रशापाग्निना दग्धं शरीरं मम शोभने ।
स्वतेजसा पुनः कर्तुमर्हस्यमृतसम्भवे ।।४४।।

ईश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य तस्या देहे लयं गतः ।
साऽपि गर्भे दधाराथ सुरभिस्तदनन्तरम् ।।४५।।
कालातिक्रमयोगेन सर्वो व्याकुलतां ययौ ।
तस्मिन् प्रनष्टे देवेशे विप्रशापभयावृते ।।४६।।
देवा महार्तिं प्रययुश्चचाल पृथिवी तथा ।
चन्द्राकौ निष्प्रभौ चैव वायुरुच्चण्ड एव च ।।४७।।
समुद्राः क्षोभमगमंस्तस्मिन्काले द्विजोत्तम ।।४८।।
यस्मिन् जगत्स्थावरजंगमादिकं काले लयं प्राप्य पुनः प्ररोहति ।
तस्मिन् प्रनष्टे द्विजशापपीडिते जगद्धतप्रायमवर्तत क्षणात् ।।४९।।
।। इति ।।

<u>वृषस्तुतिवर्णनम् में अमरकण्टक लिंग का स्थापन</u>

गालव उवाच

तस्मिंस्तु पतिते लिंगे योजनायामविस्तृते ।
विषादार्त्ता ऋषिगणास्तत्र जग्मुः सहस्रशः ।।२७/१।।
व्यलोकयन्त सर्वत्र द्रष्टुं तत्र महेश्वरम् ।
नासौ दृष्टिपथे तेषां बभूव भयविह्वलः ।।२।।
वीर्यं वर्षसहस्राणि बहून्यपि सुसंचितम् ।
पृथिवीं सकलां व्याप्य स्थितं ददृशिरे द्विजाः ।।३।।
तद्दृष्ट्वा सुमहल्लिंगं रुधिराक्तं जलैः प्लुतम् ।
ब्राह्मणाः संशयगता दह्यमाना वसुन्धरा ।।४।।
तल्लिंगं तत्र संस्थाप्य चक्रुस्तां नर्मदां नदीम् ।
तज्जलं नर्मदारूपं लिंगं चामरकण्टकम् ।।५।।

नरकं वारयत्येतत् सेवितं नरकापहम् ।
भूतग्रहाश्च सर्वेऽपि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥६॥
तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ।
सर्वान् कामानवाप्नोति मनुष्यो भुवि दुर्लभान् ॥७॥

वृषस्तुतिवर्णन में अमरकण्टक एवं नर्मदा का प्रादुर्भाव

लिंगानि नार्मदेयानि पूजयिष्यन्ति ये नराः ।
तेषां रुद्रमयो देहो भविष्यति न संशयः ॥८॥
चातुर्मास्ये विशेषेण लिंगपूजा महाफला ।
चातुर्मास्ये रुद्रजपं हरपूजा शिवे रतिः ॥९॥
पंचामृतेन स्नपनं न तेषां गर्भवेदना ।
ये करिष्यन्ति मधुना सेचनं लिंगमस्तके ॥१०॥
तेषां दुःखसहस्राणि यास्यन्ति विलयं धुव्रम् ।
दीपदानं कृतं येन चातुर्मास्ये शिवाग्रतः ॥११॥
कुलकोटिं समुद्धृत्य स्वेच्छया शिवलोकभाक् ।
चन्दनागुरुधूपैश्च सुश्वेतकुसुमैरपि ॥१२॥
नर्मदाजललिंगं ये ह्यर्चयिष्यन्ति ते शिवाः ।
शिलाहरत्वमापन्नाः प्राणिनामपि का कथा ॥१३॥
तत्सम्भूतं महालिंगं जलधारणसंयुतम् ।
पूजयित्वा विधानेन चातुर्मास्ये शिवो भवेत् ॥१४॥
चातुर्मास्ये ये मनुजा नर्मदाऽमरकण्टके ।
तीर्थे स्नाष्यन्ति नियतास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥१५॥

वृषस्तुति के अन्तर्गत ब्राह्मणों की स्तुति

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ते द्विजास्तत्र स्थाप्य लिंगं यथाविधि ।
अमरकण्टकतीर्थे नर्मदां च महानदीम् ॥१६॥
पुनश्चिन्ता परा जाता विश्वस्य क्षोभकारणे ।
पद्मासनगता भूत्वा प्राणायामपरायणाः ॥१७॥
चिन्तयामासुरव्यग्रं हृदयस्थं महेश्वरम् ।
ततो देवा महेन्द्राद्याः सम्प्राप्यामरकण्टकम् ॥१८॥
ब्राह्मणानां स्तुतिं चक्रुर्विनयानतकन्धराः ।
नमोऽस्तु वो द्विजातिभ्यो ब्रह्मविद्भ्यो महेश्वराः ॥१९॥

देवा ऊचुः

भूसुरेभ्यो गुरुभ्यश्च विमुक्तेभ्यश्च बन्धनात् ।

यूयं गुणत्रयातीता गुणरूपा गुणाकराः ॥२०॥
गुणत्रयमयैर्भावैः सततं प्राणबुद्बुदाः ।
येषां वाक्यजलेनैव पापिष्ठा अपि शुद्धताम् ॥२१॥
प्रयान्ति पापपुंजाश्च भस्मसाद्यान्ति पापिनाम् ।
शस्त्रं लोहमयं येषां वागेव तत्समन्विताः ॥२२॥
पापैः परा विभूतानां तेषां लोकोत्तरं बलम् ।
क्षमया पृथिवीतुल्याः कोपे वैश्वानरप्रभाः ॥२३॥
पातनेऽनेकशक्तीनां समर्था यूयमेव हि ।
स्वर्गादीनां तथा याने भवन्तो गतयो ध्रुवम् ॥२४॥
सत्कर्मकारकाश्चैव सत्कर्मनिरताः सदा ।
सत्कर्मफलदातारः सत्कर्मभ्यो मुमुक्षवः ॥२५॥
सावित्रीमन्त्रनिरता ये भवन्तोऽघनाशनाः ।
आत्मानं यजमानं च तारयन्ति न संशयः ॥२६॥
वह्नयश्च तथा विप्रास्तर्पिताः कार्यसाधकाः ।
चातुर्मास्ये विशेषेण तेषां पूजा महाफलाः ॥२७॥
कोपिताः सर्वदेहस्य नाशनाय भवन्ति हि ।
तावन्न वज्रमिन्द्रस्य शूलं नैव पिनाकिनः ॥२८॥
दण्डो यमस्य तावन्नो यावच्छापो द्विजोद्भवः ।
अग्निना ज्वाल्यते दृश्यं शापोऽदृष्टानपि स्वयम् ॥२९॥
हन्ति जातानजातांश्च तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ।
विप्रकोपाग्निना दग्धो नरकान्नैव मुच्यते ॥३०॥
शस्त्रक्षतोऽपि नरकान्मुच्यते नात्र संशयः ।
देवानामपि सर्वेषां सामर्थ्यं भेदने नहि ॥३१॥
वाङ्मात्रेण हि विप्रस्य भिद्यते सकलं जगत् ।
ते यूयं गुरवोऽस्माकं विश्वकारणकारकाः ॥३२॥
प्रसादपरमा नित्यं भवन्तु भुवनेश्वराः ।
ईश्वरेण विना सर्वे वयं लोकाश्च दुःखिताः ॥३३॥
तत्कथ्यतां स भगवान कुत्रास्ते परमेश्वरः ।

गालव उवाच

ज्ञात्वा मुनिभयत्रस्तं देवेशं शूलपाणिनम् ॥३४॥
सुरभीगर्भसम्भूतं देवानूचुर्महर्षयः ।
स्वागतं देवदेवेभ्यो ज्ञातो वै स महेश्वरः ॥३५॥
तत्र गच्छन्तु देवेशा यत्र देवः सनातनः ।
इत्युक्त्वा ते महात्मानः सह देवैर्ययुस्तदा ॥३६॥
गोलोकं देवमार्गेण यत्र पायसकर्दमः ।

घृतनद्यो मधुह्रदा नदीनां यत्र संघशः ॥३७॥
पूर्वजानां गणाः सर्वे दधिपीयूषपाणयः ।
मरीचिपाः सोमपाश्च सिद्धसंघास्तथाऽपरे ॥३८॥
घृतपाश्चैव साद्ध्याश्च यत्र देवाः सनातनाः ।
ते तत्र गत्वा मुनयो ददृशुः सुरभीसुतम् ॥३९॥

वृषस्तुतिवर्णन में सुरभि के गर्भ से शिवलिंग का प्राकट्य

तेजसा भास्करं चैव नीलनामेति विश्रुतम् ।
इतस्ततोऽभिधावन्तं गवां संघातमध्यगम् ॥४०॥
नन्दा सुमसा चैव सुरूपा च सुशीलका ।
कामिनी नन्दिनी चैव मेध्या चैव हिरण्यदा ॥४१॥
धनदा धर्मदा चैव नर्मदा सकलप्रिया ।
वामना लम्बिका कृष्णा दीर्घश्रृंगा सुपिच्छिका ॥४२॥
तारा तरेयिका शान्ता दुर्विषह्या मनोरमा ।
सुनासा दीर्घनासा च गौरा गौरमुखी हया ॥४३॥
हरिद्रवर्णनीला च शंखिनी पंचवर्णका ।
विनताऽभिनता चैव भिन्नवर्णा सुपत्रिका ॥४४॥
जयाऽरुणा च कुण्डोघ्नी सुदती चारुचम्पका ।
एतासां मध्यगं नीलं दृष्ट्वा ता मुनिदेवताः ॥४५॥
विचरन्ति सुरूपं तं संजातं विस्मयोन्मुखाः ।
मुनीश्वराः कृपाऽऽविष्टा इन्द्राद्या हृष्टमानसाः ॥४६॥
स्तुतिमारेभिरे कर्तुं तेजसा तस्य तोषिताः ।

शुद्र उवाच

कथं नालेति नामासौ जातोऽयमद्भुताकृतिः ॥४७॥
किमस्तुवन् प्रसन्नास्ते ब्राह्मणा विश्वकारणम् ।

गालव उवाच

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥४८॥
श्वेतः खुरविषाणेषु स नीलो वृषभः स्मृतः ।
चतुष्पादो धर्मरूपो नीललोहितचिह्नकः ॥४९॥
कपिलः खुरचिह्नेषु स नीलो वृषभः स्थितः ।
योऽसौ महेश्वरो देवो वृषश्चापि स एव हि ॥५०॥
चतुष्पादो धर्मरूपो नालः पंचमुखो हरः ।
यस्य सन्दर्शनादेव वाजपेयफलं लभेत् ॥५१॥
नीले च पूजिते यस्मिन् पूजितं सकलं जगत् ।
स्निग्धं ग्रासप्रदानेन जगदाव्यापितं भवेत् ॥५२॥

यस्य देहे सदा श्रीमान् विश्वव्यापी जनार्दनः ।
नित्यमभ्यर्च्यते योऽसौ वेदमन्त्रैः सनातनैः ।।५३।।

ऋषय ऊचुः

त्वं देवः सर्वगोप्तॄणां विश्वगोप्ता सनातनः ।
विघ्नहर्ता ज्ञानदश्च धर्मरूपश्च मोक्षदः ।।५४।।
त्वमेव धनदः श्रीदः सर्वव्याधिनिषूदनः ।
जगतां शर्मकरणे प्रवृत्तः कनकप्रदः ।।५५।।
तेजसां धाम सर्वेषां सौरभेय महाबल ।
श्रृंगे धृतश्च कैलासः पार्वतीसहितस्त्वया ।।५६।।
वेदस्तुत्यो वेदमयो वेदात्मा वेदवित्तमः ।
वेदवेद्यो वेदयानो वेदरूपो गुणाकरः ।।५७।।
गुणत्रयेभ्योऽपि परो याथात्म्यं वेदकस्तव ।
वृषस्त्वं भगवन् देवं यस्तुभ्यं कुरुते त्वघम् ।।५८।।
वृषलः स तु विज्ञेयो रौरवादिषु पच्यते ।
पदा स्पृष्ट्वा स तु नरो नरकादिषु यातनाः ।।५९।।
सेव्यते पापनिचयैर्निगाढप्रायबन्धनैः ।
क्षुत्क्षामं च तृषाऽऽक्रान्तं महाभारसमन्वितम् ।।६०।।
निर्दया ये प्रशोष्यन्ति मतिस्तेषां न शाश्वती ।
चतुर्भिः सहितं मर्त्या विवाहविधिना तु ये ।।६१।।
विवाहं नीलरूपस्य ये करिष्यन्ति मानवाः ।
पितृनृद्दिश्य तेषां वै कुले नैवास्ति नारकी ।।६२।।
त्वं गतिः सर्वलोकानां त्वं पिता परमेश्वरः ।
त्वया विना जगत्सर्वं तत्क्षणादेव नश्यति ।।६३।।
परा चैव तु पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा ।
चतुर्विधानां वचसामीश्वरं त्वां विदुर्बुधाः ।।६४।।
चतुःश्रृंगं चतुष्पादं द्विशीर्षं सप्तहस्तकम् ।
त्रिधा बद्धं धर्ममयं त्वामेव वृषभं विदुः ।।६५।।
तृप्तिदं सर्वभूतानां विश्वव्यापकमोजसा ।
ब्रह्मधर्ममयं नित्यं त्वामात्मानं विदुर्जनाः ।।६६।।
अच्छेद्यस्त्वमभेद्यस्त्वमप्रमेयो महायशाः ।
अशोकष्यस्त्वमदाह्योऽसि विदुः पौराणिका जनाः ।।६७।।
त्वदाधारमिदं सर्वं त्वदाधारमिदं जगत् ।
त्वदाधाराश्च देवाश्च त्वदाधारं तथाऽमृतम् ।।६८।।
जीवरूपेण लोकास्त्रीन् व्याप्य तिष्ठसि नित्यदा ।

गालव उवाच

एवं स संस्तुतो नीलो विप्रैस्तैः सोमपायिभिः ।।६९।।
प्रसन्नवदनो भूत्वा विप्रान् प्रणति तत्परः ।
पुनरेव वचः प्रोचुर्विप्राः कृतशिवागसः ।।७०।।
वरं ददुर्महेशस्य नीलरूपस्य धर्मतः ।
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः ।।७१।।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतेरपि ।
पुनरेव तु सर्पन्तं दृष्ट्वा नीलं महावृषम् ।।७२।।
स्वल्पक्रोधसमाविष्टं द्विजाश्चक्रुस्तमंकितम् ।
चक्रं च वामभागे तु शूलं पार्श्वे च दक्षिणे ।।७३।।
उत्ससृजुर्गवां मध्ये तं देवैर्गोपितं तदा ।
ततो देवगणाः सर्वे महर्षीणां गणाः पुनः ।
स्वानि स्थानानि ते जग्मुर्मुनयो वीतमत्सराः ।।७४।।
एवं ऋषीणां दयितासु सक्तः कामार्त्तचित्तो मुनिपुंगवानाम् ।
शापं समासाद्य शिवोऽपि भक्त्या रेवाजलेऽगात्सुशिलामयत्वम् ।।७५।।
तस्माद्धरं लिंगरूपं शालग्रामगतं हरिम् ।
येऽर्चयन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुःखयातनाः ।।
।। इति वृषस्तुतिवर्णनम् ।।

स्कन्दब्रह्मोत्तरखण्ड - ११ महर्षि ऋषभ ने राजकुमार (राजपुत्र) से कहा -

ऋषभ उवाच

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु प्रोक्तो धर्मः सनातनः ।
वर्णाश्रमानुरूपेण निषेव्यः सर्वदा जनैः ।।४३/११/१७।।
भज वत्स सतां मार्गं सदेव चरितं चर ।
न देवाज्ञा विलंघेथा मा कार्षीर्देवहेलनम् ।।१८।।
गोदेवगुरुविप्रेषु भक्तिमान् भव सर्वदा ।
चाण्डालमपि सम्प्राप्तं सदा सम्भावयातिथिम् ।।१९।।
सत्यं न त्यज सर्वत्र प्राप्तेऽपि प्राणसंकटे ।
गोब्राह्मणानां रक्षार्थमसत्यं त्वं वद क्वचित् ।।२०।।
स्नाने जपे च होमे च स्वाध्याये पितृतर्पणे ।
गोदेवातिथिपूजासु निरालस्यो भवानघ ।।२३।।
होमेन सर्वकामानां समृद्धिरुपजायते ।
सर्वेषामेव देवानां तुष्टिर्ब्राह्मणभोजनात् ।।स्क. ३/८/३६।।

वृषभो यस्त्रिधा बद्धो रोरवीति महोमयः ।
स नेत्रविषयी चक्रे परमः परमेष्ठिना ।।४/७३/९५।।

श्रृंगाश्चत्वारि यस्यासन् हस्तासः सप्त एव च ।
द्वे शीर्षे च त्रयः पादाः स देवो विधिनैक्षत ।।९६।।

ब्राह्मणमाहात्म्यम्

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम् ।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिनो जनाः ।।५/३८/६१।।
न तत्क्षेत्रं न तत्तीर्थमूषरं पुष्कराणि च ।
ब्राह्मणे मन्युमुत्पाद्य यत्र गत्वा स शुद्ध्यति ।।६२।।
न तच्छास्त्रं यन्न विप्रप्रणीतं न तद्दानं यन्न विप्रप्रदेयम् ।
न तत्सौख्यं यन्न विप्रप्रसादान्न तद्दुःखं यन्न विप्रप्रकोपात् ।।६३।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ।
एकस्य विप्रवाक्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।६४।।

वाराणस्यां कपिलाह्रदोत्पत्तिः

वाराणस्यां तु सम्प्राप्ता गोलोकात्पंचधेनवः ।
सुनन्दा सुमनाश्चापि सुशीला सुरभिस्तथा ।।४/६२/४३।।
पंचमी कपिला चापि सर्वाघौघविघट्टनी ।
वात्सल्यदृष्ट्या भर्गस्य तासामूधांसि सुस्रुवुः ।।४४।।
बवर्षुः पयसाम्पूरैस्तदूधांसि पयोधराः ।
धाराधारैरविच्छिन्नैस्तावद्यावद्ध्रदोऽभवत् ।।४५।।
पयः पयोधिरिव स द्वितीयः प्रैक्षि पार्षदैः ।
विश्वेशसमधिष्ठानात् तत्तीर्थमभवत्परम् ।।४६।।
कपिलाह्रद इत्याख्यां चक्रे तस्य महेश्वरः ।
ततः शिवाज्ञया सर्वे स्नातास्तत्र दिवौकसः ।।४७।।

रेवाखण्डे नर्मदामाहात्म्यम्

कपिलातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यभूतं लोकेषु कापिलं कथयस्व मे ।
यस्मिन्कालेऽथ सम्बन्धे उत्पन्नं तीर्थमुत्तमम् ।।
सर्वपापहरं पुण्यं तीर्थं जातं कथं प्रभो ।।३।।

मार्कण्डेय उवाच

श्रृणु वक्ष्येऽद्य ते राजन् कपिलातीर्थमुत्तमम् ।
येन ते विस्मयः सर्वः श्रुत्वा गच्छति भारत ।।४।।

पुरा कृतयुगस्यादौ ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उत्पादयित्वा सकलं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥५॥
जपहोमपरो भक्त्या क्षणं ध्यात्वा च तिष्ठति ।
ज्वलमानात्तु कपिला तावत्कुण्डात्समुत्थिता ॥६॥
अग्निज्वालोज्ज्वलैः श्रृंगैस्त्रिनेत्रा सुपयस्विनी ।
अग्निपूर्णा ह्यग्निमुखा अग्निघ्राणाग्निलोचना ॥७॥
अग्निसुरा ह्यग्निपृष्ठा अग्निसर्वांगसंस्थितिः ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा घण्टाललितनिःस्वना ॥८॥
दृष्ट्वा तु तां महाभागां कपिलां कुण्डमध्यगाम् ।
ब्रह्मा लोकगुरुस्तात प्रणम्येदमुवाच ह ॥९॥

कपिलातीर्थमाहात्म्य (कपिलास्तुति)

ब्रह्मोवाच

नमस्ते कपिले पुण्ये सर्वलोकनमस्कृते ।
मंगल्ये मंगले देवि त्रिषु लोकेष्वनूपमे ॥३७/१०॥
त्वं लक्ष्मीस्त्वं स्मृतिर्मेधा त्वं धृतिस्त्वं वरानने ।
उमादेवीति विख्याता त्वं सती नात्र संशयः ॥११॥
वैष्णवी त्वं महादेवी ब्रह्माणी त्वं वरानने ।
कुमारी त्वं महाभागे भक्तिः श्रद्धा तथैव च ॥१२॥
कालरात्रिस्तु भूतानां कुमारी परमेश्वरी ।
त्वं लवस्त्वं त्रुटिश्चैव मुहूर्त्तं पक्षमेव च ॥१३॥
संवत्सरस्त्वं मासस्त्वं कालस्त्वं च क्षणस्तथा ।
नास्ति किंचित्त्वया हीनं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१४॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुता तु मानेन कपिला परमेष्ठिना ।
तामुवाच महाभागं प्रहृष्य पद्मसम्भवम् ॥१५॥

कपिलोवाच

प्रसन्ना तव वाक्येन देवदेव जगद्गुरो ।
किं करोमि प्रियं तेऽद्य ब्रूहि सर्वं पितामह ॥१६॥

कपिला का पृथिवी पर अवतरण

ब्रह्मोवाच

जगद्धिताय जनिता मया त्वं परमेश्वरि ।
स्वर्गान्मर्त्यं ततो याहि लोकानां हितकाम्यया ॥१७॥
सर्वदेवमयी त्वं तु सर्वलोकमयी तथा ।
विधिना ये प्रदास्यन्ति तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा ततो देवी ब्रह्माणं परमेश्वरी ।
वन्द्यमाना सुरैः सिद्धैराजगाम धरातलम् ॥१९॥

युधिष्ठिर उवाच

यदा यातेह सा तात ब्रह्मणो वचनाच्छुभा ।
तदा देवाश्च लोकाश्च कथमंगेषु संस्थिताः ॥२०॥
कथं वासं स्थिताऽऽगत्य कपिला सा द्विजोत्तम ।
तीर्थे वाह्यपरे क्षेत्र एतन्मे कथय द्विज ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

सा तदा ब्रह्मणा चोक्ता धात्रा लोकस्य भारत ।
ब्रह्मलोकाद्गता पुण्यां नर्मदां लोकपावनीम् ॥२२॥
तपः कृत्वा सुविपुलं नर्मदातटमाश्रिता ।
चचार पृथिवीं सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥२३॥
तदा प्रभृति राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् ।
सर्वपापहरं ख्यातमृषिसंघैर्निषेवितम् ॥२४॥
तत्तीर्थे विधिवत्स्नात्वा कपिलां यः प्रयच्छति ।
पृथ्वी तेन भवेद्दत्ता सशैलवनकानना ॥२५॥
तां तु पश्यति यो भक्त्या दीयमानां द्विजोत्तमे ।
तस्य वर्षशतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥२६॥
भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनः सत्यं तपस्तथा ।
ते तत्पृष्ठं समाश्रित्य स्थिता लोका नृपोत्तम ॥२७॥
मुखे ह्यग्निः स्थितो देवो दन्तेषु च भुजंगमाः ।
धाता विधाता ह्योष्ठौ च जिह्वायां तु सरस्वती ॥२८॥
सहस्रकिरणौ देवौ चन्द्रादित्यौ सुलोचनौ ।
नासिकामध्यगश्चैव मारुतो नृपसत्तम ॥२९॥
ललाटे तु महादेवो ह्यश्विनौ कर्णसंस्थितौ ।
नरनारायणौ श्रृंगे श्रृंगमध्ये पितामहः ॥३०॥
कम्बलोऽधिगतस्तात पाशधृग्वरुणस्तथा ।
यमश्च भगवान् देव आश्रित्य चोदरं श्रितः ॥३१॥
खुरेषु पन्नगाश्चैवं पुच्छाग्रे सूर्यरश्मयः ।
एवम्भूतां हि कपिलां सर्वदेवमयीं नृप ॥३२॥
ये धारयन्ति च गृहे धन्यास्ते नात्र संशयः ।
प्रातरुत्थाय यस्तस्याः कुरुते तु प्रदक्षिणाम् ॥३३॥
प्रदक्षिणा कृता तेन सशैलवनकानना ।
कपिलापंचगव्येन यः स्नापयति शंकरम् ॥३४॥

उपवासपरो यस्तु तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।
स्नात्वा ह्युक्तविधानेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥३५॥
तस्य ते वंशजाः सर्वे दश पूर्वे दशापरे ।
तृप्ता रोहन्ति वै स्वर्गे ध्यायन्तोऽस्य मनोरस्थान् ॥३६॥
एष ते विधिरुद्दिष्टः सम्भवो नृपसत्तम ।
तीर्थस्य च फलं पुण्यं किमन्यत्परिपृच्छसि ॥३७॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वदुखघ्नमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥३८॥ *॥इति॥*

गोदानमहत्त्वम्

उत्तानपाद उवाच
गोदानस्य फलं ब्रूहि विधिं चापि महेश्वर ।
कस्मै देया प्रयत्नेन तन्माहात्म्यं च किं प्रभो ॥

ईश्वर उवाच
गौर्विप्राय प्रदातव्या गृहस्थाय कुटुम्बिने ।
तद्विधिं श्रृणु राजेन्द्र गोदानस्य तु यत्फलम् ॥५१।५५॥
यावद्वत्सस्य पादौ कौ मुखं योन्यां प्रदृश्यते ।
तावद् गौः पृथिवी ज्ञेया यावद् गर्भं न मुंचति ॥५६॥
येन केनाप्युपायेन ब्राह्मणे तां समर्पयेत् ।
पृथ्वी दत्ता भवेत्तेन सशैलवनकानना ॥५७॥
तारयेन्नियतं दत्ता कुलानामेकविंशतिम् ।
रौप्यखुरीं कांस्यदोहां सवस्त्रां च पयस्विनीम् ॥५८॥
ये प्रयच्छन्ति कृतिनो ग्रस्ते सूर्यनिशाकरे ।
तेषां संख्यां न जानामि पुण्यस्याब्दशतैरपि ॥५९॥
सर्वस्यापि हि दानस्य संख्याऽस्तीह नराधिप ।
चन्द्रसूर्योपरागे च दानसंख्या न विद्यते ॥६०॥
यत्र गौर्दृश्यते राजन् सर्वतीर्थानि तत्र हि ।
तत्र पर्व विजानीयान्नात्र कार्या विचारणा ॥६१॥
॥इति॥

गौ से उत्पन्न लिंग गोपारेश्वरकेशवमाहात्म्य स्क.पु.५।७३

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।
सर्वपापहरं पार्थ गोपारेश्वरमुत्तमम् ।।
गोदेहान्निःसृतं लिंगं पुण्यं भूमितले नृप ।।१।।
युधिष्ठिर उवाच
गोदेहान्निःसृतं कस्माल्लिंगं पापक्षयंकरम् ।
दक्षिणे नर्मदाकूले मणिनागसमीपतः ।।
संक्षेपात्कथ्यतां विप्र गोपारेश्वरसम्भवम् ।।२।।
श्रीमार्कण्डेय उवाच
कामधेनुस्तपस्तत्र पुरा पार्थ चकार ह ।
ध्यायते परया भक्त्या देवदेवं महेश्वरम् ।।३।।
तुष्टस्तस्या जगन्नाथः कपिलाया महेश्वरः ।
निःसृतो देहमध्यात्तु अच्छेद्यः परमेश्वरः ।।४।।
तुष्टो देवि जगन्मातः कपिले परमेश्वरि ।
आराधनं कृतं यस्मात् तद्वदाशु शुभानने ।।५।।
श्रीसुरभ्युवाच
लोकानामुपकाराय सृष्टाऽहं परमेष्ठिना ।
लोककार्याणि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति मत्प्रसादतः ।।६।।
लोकाः स्वर्गं प्रयास्यन्ति मत्प्रसादेन शंकर ।
तीर्थे त्वं भव मे शम्भो लोकानां हितकाम्यया ।।७।।
मार्कण्डेय उवाच
तथेति भगवानुक्त्वा तीर्थे तत्रावसन्मुदा ।
तदा प्रभृति तत्तीर्थं विख्यातं वसुधातले ।।
स्नानेनैकेन राजेन्द्र पापसंघं व्यपोहति ।।८।।
गोपारेश्वरगोदानं यस्तु भक्त्या च कारयेत् ।
योग्ये द्विजोत्तमे देया योग्या धेनुः सकांचना ।।९।।
सवत्सा तरुणी शुभ्रा बहुक्षीरा सवस्त्रका ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा प्रदापयेत् ।।१०।।
सर्वेषु चैव मासेषु कार्तिके च विशेषतः ।
दापयेत्परया भक्त्या द्विजे स्वाध्यायतत्परे ।।११।।
विधिना च प्रदद्याद्यो विधिना यस्तु गृह्णते ।
तावुभौ पुण्यकर्माणौ प्रेक्षकः पुण्यभाजनम् ।।१२।।
पिण्डदानं प्रकुर्याद्यः प्रेतानां भक्तिसंयुतः ।
पिण्डेनैकेन राजेन्द्र प्रेता यान्ति परां गतिम् ।।१३।।

वृषोत्सर्ग का फल

भक्त्या प्रणामं रुद्रस्य ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
तेषां पापं प्रलीयेत भिन्नपात्रे जलं यथा ।।१४।।
तत्र तीर्थे तु यो राजन् वृषभं च समुत्सृजेत् ।
पितरश्चोद्धृतास्तेन शिवलोके महीयते ।।१५।।

युधिष्ठिर उवाच

वृषोत्सर्गे कृते तात फलं यज्जायते नृणाम् ।
तत्सर्वं कथयस्वाशु प्रयत्नेन द्विजोत्तम ।।१६।।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वलक्षणसम्पूर्णे वृषे चैव तु यत्फलम् ।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्व धर्मनन्दन ।।१७।।
कार्तिके चैव वैशाखे पूर्णिमायां नराधिप ।
रुद्रस्य सन्निधौ भूत्वा शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः ।।१८।।
वृषस्यैव समुत्सर्ग कारयेत्प्रीयतां हरः ।
सान्निध्ये कारयेत्पुत्र चतस्रो वत्सिकाः शुभाः ।।१९।।
दत्वा तु विप्रमुख्याय सर्वलक्षणसंयुताः ।
प्रीयतां च महादेवो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ।।२०।।
वृषभे रोमसंख्या या सर्वांगेषु नराधिप ।
तावद्वर्षप्रमाणं तु शिवलोके महीयते ।।२१।।
शिवलोके वसित्वा तु यदा मर्त्येषु जायते ।
कुले महति सम्भूतिर्धनधान्यसमाकुले ।।२२।।
नीरोगो रूपवांश्चैव विद्याढ्यः सत्यवाक् शुचिः ।
गोपारेश्वरमाहात्म्यं मया ख्यातं युधिष्ठिर ।।
गोदेहान्निःसृतं लिंगं नर्मदादक्षिणे तटे ।।२३।।

// इति //

पंचविधो नीलो वृषः

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ।
पिंगः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ।।७८।।
यस्तु सर्वांगपिंगश्च श्वेतः पुच्छखुरेषु च ।
स पिंगो वृष इत्याहुः पितृणां प्रीतिवर्द्धनः ।।७९।।
पारावतसवर्णश्च ललाटे तिलको भवेत् ।
तं वृषं बभ्रमित्याहुः पूर्णं सर्वांगशोभनम् ।।८०।।
सर्वांगेष्वेकवर्णो यः पिंगः पुच्छखुरेषु च ।
खुरपिंगं तमित्याहुः पितृणां सद्गतिप्रदम् ।।८१।।
नीलं सर्वशरीरेण स्वारक्तनयनं दृढम् ।

तमेव नीलमित्याहुर्नीलः पंचविधः स्मृतः ॥८२॥
यस्तु वैश्यगृहे जातः स वै नीलो विशिष्यते ।
न वाहयेद् गृहे जातं वत्सकं तु कदाचन ॥८३॥
तेनैव च वृषोत्सर्गे पितॄनामनृणो भवेत् ॥८४॥
जातं तु स्वगृहे वत्सं द्विजन्मा यस्तु वाहयेत् ।
पतन्ति पितरस्तस्य ब्रह्मलोकगता अपि ॥८५॥
यथा यथा हि पिबति पीत्वा धूनाति मस्तकम् ।
पिबन् पितॄन्प्रीणयति नरकादुद्धरेद्धुनन् ॥८६॥
यथा पुच्छाभिघातेन स्कन्धं गच्छन्ति बिन्दवः ।
नरकादुद्धरन्त्याशु पतितान् गोत्रिणस्तथा ॥८७॥
गर्जन् प्रावृषि काले तु विषाणाभ्यां भुवं लिखन् ।
मृदुद्धृता खुरेभ्यो या तया सम्प्रीणयेदृषीन् ॥८८॥
पिबन् पितॄन् प्रीणयते खादनोल्लेखने सुरान् ।
गर्जन्नृषिमनुष्यांश्च धर्मरूपो हि धर्मज ॥८९॥

// इति //

एवमुक्त्वा ततः शम्भुर्वृषं दध्यौ च तत्क्षणे ।
वृषो हि भगवान् ब्रह्मा वृषरूपीमहेश्वरः ॥५/१८१/१८॥

अज्ञस्यार्द्धप्रबुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत् ।
महानिरयजालेषु स तेन विनियोजितः ॥३।२६॥ म.टी.

डायरी ३

वराहपुराणे

गोवर्धनमहिमा

इन्द्रस्य वर्षतोऽत्यन्तं गवां पीडाकरं जलम् ।।१६४/२३।।
तासां रक्षार्थं संस्तभ्य घृतं गिरिवरं तदा ।।
सोऽन्नकूट इति ख्यातः सर्वतः शक्रपूजितः ।।२४।।
देवा देव्यस्तथा गावो ऋषिभिश्च समन्विताः ।
पूजितास्तर्पिताः श्रेष्ठाः श्रमतो विष्णुना पुरा ।।२५।।

वृषदाने माहात्म्यम् योजनीयम् हे. **१।४९२**

त्वग्दोषजनितं यच्च पूर्वकर्मविपाकिनः ।
इह कर्मोद्भवं वाऽपि मातृदोषेण वा पुनः ।।१।।
पितृदोषेण वा सर्वं रक्तदोषोद्भवं तथा ।
विनाशाय शरीरोत्थं पार्वतीप्रिय शंकर ।।२।।
वृषभस्य प्रदानेन शिवोमाधिष्ठितस्य च ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि भक्त्या परमया युतः ।।३।।
कृतेनानेन कुष्ठानि व्रजन्ति विलयं ध्रुवम् ।
तस्मात्कुष्ठाभिभूतानां करणीयमिदं जगुः ।।४।।

पञ्चगव्यचिकित्साध्यायः चरके चिकित्सास्थाने अपस्माररोगादिचिकित्सा

पञ्चगव्यघृतम्

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।
सिद्धं पिबेदपस्मारकामलाज्वरनाशनम् ।।१।।

गोवर का रस, दही, दूध, गोमूत्र और गोघृत इन पाँचों को समभाग लेकर पकाये एवं घृतमात्र शेष रहने पर कपड़े से छानकर स्वच्छ पात्र में रख ले । इस घृत के पीने से अपस्मार (मृगी) रोग, कामला और ज्वर नष्ट हो जाते हैं ।

महापञ्चगव्यघृतम्

द्वे पंचमूले त्रिफला रजन्यौ कुटजत्वचम् ।
सप्तपर्णमपामार्गनीलिनीं कटुरोहिणीम् ।।२।।
सम्पाकं फल्गुमूलं च पौष्करं सदुरालभम् ।
द्विपलानि जलद्रोणे पक्वापादावशेषिते ।।३।।
भार्गी पाठां त्रिकटुकां त्रिवृतां निचुलानि च ।
श्रेयसीमाढकीं मूर्वा दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ।।४।।
द्वे शारिवे रोहिषं च भूतीकं मदयन्तिकाम् ।
क्षिपेत्पिष्टाक्षमात्राणि तेन प्रस्थं घृतात् पचेत् ।।५।।
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः ।
पंचगव्यमिति ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ।।६।।
अपस्मारे तथोन्मादे श्वयथावुदरेषु च ।
गुल्मार्शः पाण्डुरोगेषु कामलासु भगन्दरे ।।
अलक्ष्मीग्रहरोगघ्नं चातुर्थिकविनाशनम् ।।७।।

लघु पञ्चमूल, बृहत्पञ्चमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुटज कि छाल, सप्तपर्ण (सतौना) की छाल, अपामार्ग, नीलिनी, कुटकी, अमलतास का गूदा, कठूमर, पोहकरमूल और जवासा- इन सबको दो-दो पल लेकर एक द्रोण जल में पकावे और चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान ले । फिर इसमें भारंगी, पाठा, त्रिकुटा, निशोथ, निचुल (वेतस), गजपीपल, आढ़की (अरहर) मूर्वा, दन्ती, चिरायता, चित्रक, दोनों शारिवा, रोहिष तृण, अजवायन और मल्लिका- इन सबको एक-एक अक्ष (२ तोले) लेकर बारीक पीसकर एक प्रस्थ घी के साथ मिलाये । पुनः गोवर का रस एक प्रस्थ, गोमूत्र एक प्रस्थ, दही एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ और दूध एक प्रस्थ लेकर इन सबको मिलाकर पकावे । जब सब पानी आदि जलकर घृतमात्र शेष रहे तो इनको छाननकर पात्र में भर लेवे । यह महापञ्चगव्य नामक घृत अमृत के समान गुणकारी होता है । इसके सेवन से अपस्मार (मृगी), उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्मरोग, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगन्दर, अलक्ष्मी, ग्रहदोष और चौथैया ज्वर नष्ट हो जाते हैं ।

अन्यघृतम्

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेव च ।
पुराणं घृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित् ।।८।।

ब्राह्मी का स्वरस, वच, कूठ और शंखपुष्पी से सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप दूर होते हैं ।।8।।

घृतं सैन्धवहिंगुभ्यां वार्षे वास्ते चतुर्गुणे ।
मूत्रे सिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशनम् ।।९।।
वचासम्पाककैटर्यवय:स्थाहिंगुरोचकै: ।
सिद्धं पलंकषायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मके घृतम् ।।१०।।
तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयै: पलोन्मितै: ।
क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम् ।।११।।
कंसे क्षीरेक्षुरसयो: काश्मर्य्येऽष्टगुणे रसे ।
कार्षिकैर्जीवनीयैश्च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।।१२।।
वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारं नियच्छति ।
तद्वत्काशविदारीक्षुकुशक्वाथश्रृतं घृतम् ।।१३।।

सेंधा नमक और हींग का कल्क एक पाव, घृत एक सेर एवं बैल और बकरे का मूत्र चतुर्गुण- इन सबको मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत अपस्मार, हृदयविकार और ग्रहदोष को दूर करता है । वच, अमलतास, कायफल, बहेड़ा, हींग, राजपलाण्डु और गुग्गुल के कल्क से सिद्ध किये हुए घृत का सेवन करने से वातापस्मार और कफापस्मार दूर हो जाते हैं । पुराना घृत एक प्रस्थ, जीवनीय गण की सभी ओषधियाँ एक-एक पल और गोदुग्ध एक द्रोण लेकर इन सबको मिलाये और पुन: अल्पताप में पकाये । जब घृतमात्र शेष रहे तब छानकर किसी पात्र में भर ले । इस यमकस्नेह को पीने और मालिश करने से अपस्मार रोग दूर हो जाता है । दूध एक आढ़क, इक्षुरस एक आढक, काश्मीरी (कंभारी) का क्वाथ आठ प्रस्थ, जीवनीयगण की प्रत्येक ओषधि एक-एक कर्ष लेकर एक प्रस्थ घृत के साथ मिलाकर पकाये और घृतमात्र शेष रहने पर उतारकर छान ले । इस घृत के सेवन से वातज अपस्मार और पित्तज अपस्मार शान्त हो जाते हैं । अथवा किसी प्रकार काश की जड़, विदारीकन्द, ईख की जड़ और कुशा की जड़- इन सबको जवकूट कर क्वाथ बना ले । उस क्वाथ में और जीवनीयगण की ओषधियों से सिद्ध किया घृत भी पूर्वक्ति गुण को करता है ।

मधुकद्विपले कल्के द्रोणे चामलकीरसात् ।
तद्वत्सिद्धो घृतप्रस्थ: पित्तापस्मारभेषजम् ।।१४।।

मुलेठी दो पल लेकर उसको बारीक पीसकर कल्क बना ले, पुन: आमले का रस एक द्रोण, पुराना घी एक प्रस्थ- इन सबको मिलकार पकाये । जब घृतमात्र शेष

रहे तो उसे छानकर रख ले । इस घृत का सेवन करने से पित्तज अपस्मार दूर हो जाता है ।

गोमूत्र-गोमयाध्याय:

अभ्यंगः सार्षपं तैलं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं स्याद् गोशकृन्मूत्रे स्नानोत्सादनमेव च ।।१५।।
कटभीनिम्बकट्वंगमधुशिग्रुत्वचां रसे ।
सिद्धं मूत्रसमं तैलमभ्यंगार्थे प्रशस्यते ।।१६।।

सरसों का तेल एक भाग और अजमूत्र एक भाग इन दोनों को मिलाकर पकाये । जब मूत्र जलकर तेलमात्र शेष रहे तो सब छानकर ठण्डा कर ले । इस तेल से मालिश करके गौ के गोवर को उबटन के समान सम्पूर्ण शरीर में मले, पुनः गोमूत्र से स्नान कर डाले तो अपस्मार रोग दूर हो जाता है । कटभी, नीम की छाल, सोनापाठी की छाल, मुलेठी और सहजने की छाल- इन सबका क्वाथ करके वह क्वाथ, गोमूत्र तथा समानभाग तेल लेकर इन सबको मिलाकर सिद्ध करे । सिद्ध होने पर इस तेल की मालिश करने पर अपस्मार रोग दूर हो जाता है ।

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः ।
उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ।।१७।।

काली तुलसी, हरड़, कूठ, बालछड़ और चोरक इनको गोमूत्र में रगड़कर शरीर पर मले और गोमूत्र में घोलकर सेवन करने से अपस्मार रोग दूर होता है ।

कपिलानां गवां मूत्रं नावनं परमं हितम् ।।१८।।

कपिला गौ के मूत्र की नस्य लेना अपस्मार रोग में परम हितकर है ।

भाङ्र्गी वचा नागदन्ती श्वेताश्वेताविषाणिका ।
ज्योतिष्मती नागदन्ती पादोत्थामूत्रपेषिताः ।।
योगास्त्रयोऽतः षड्बिन्दून् पंच वा नावयेद् भिषक् ।१९।।

(1)भांरगी, वच और नागदन्ती, (2) सफेद दूर्वा, अश्वेत अपराजिता और मेढ़ासिंगी, (3) मालकांगुनी और नागदन्ती- इन तीनों योगों में से किसी एक को गोमूत्र में पीसकर अपस्मार रोगी के नाक में पाँच या छः बून्द टपकाने से अपस्मार रोग दूर हो जाता है ।

जन्मनक्षत्रजन्यपीडानिवारणम्

शकृन्मूत्रं तु संगृह्य श्वेतस्य वृषभस्य च ।
श्वेतगोः पयसा सार्द्धं स्नातव्यं कुशवारिणा ।
जन्मनक्षत्रपीडायां तस्माद्दोषाद्विमुच्यते ।। वि.ध.१/८९/१।।

गोकर्णाख्याने- वृन्दावनमाहात्म्यम् - प.पु.उ.ख.१९७

गोकर्णसहितः कृष्णः गोपगोपीजनप्रियः ।
गोलोकं समनुप्राप्तः सर्वलोकोपरिस्थितम् ।।
यत्र वृन्दावनं रम्यं शतश्रृंगसमावृतम् ।।१७९/१०९।।
तद्बाह्ये परितो वृतं विजयया ह्यत्यद्भुतं राजतेऽ-
रण्यं यत्र तु मण्डपानि सबहून्यच्छोदवाप्यो ह्रदाः ।
गावः कामदुघाः सुरद्रुमततिच्छायाश्रिता गोपकैः
क्रीडातत्परमानसैः परिवृतो नन्दात्मजः क्रीडति ।।११०।।
मध्ये त्वस्य सुकाननस्य रचितो वृन्दावनेशेच्छया
रम्यं रत्नसमूहभर्मखचितं प्राकारमुद्भासयन् ।
न्यग्रोधः सुमहांस्ततः प्रतिदिशं गोपीजनाध्यासितं
वत्सालंकृतमद्भुताकृति महच्छ्रीगोकुलं राजते ।।१११।।
तन्मध्ये भवनं हरेरधिकृतं प्रोद्भासते भास्वरं
यस्मिन्नन्दगृहेश्वरी समुदितास्ते राधया राधिताः ।
यद्भाग्यं महदप्युमापतिमुखैश्चिन्त्यं सदाऽभ्यन्तरै-
स्तत्सूनोर्मधुराकृतेरधिचकास्त्यण्डौघभास्यांशुभिः ।।११२।।
वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैर्जपयज्ञकर्मभिः ।
असाध्यमप्यायसधेनुसम्भवो लोकं न गाहाख्यमखप्रवर्त्तनात् ।।११३।।

वृषगायत्री

ॐ तीक्ष्णश्रृंगाय विद्महे धर्म्मपादाय धीमहि ।
तन्नो वृषः प्रचोदयात् ।। हे. १/४८६

सुरभ्याकृतिः

सुरभिर्गोमुखा देवी सुरूपा सर्वभूषणा ।
घासमुष्टिं तथा कुण्डीं विभ्राणा भूतिपुष्टिदा ।। हे.२/१/८२।।

वि.ध.१।९३

बाह्याभ्यान्तरशौचार्थं पंचगव्यं प्रकल्पयेत् ।
पयः कांचनवर्णाया नीलायाश्च तथा घृतम् ।।१।।
दधि वै कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ।।
गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः पंचगव्यं प्रकल्पयेत् ।
अथैतानि समस्तानि कपिलायाः समाहरेत् ।।२।।
गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं रथे अक्षेति गोमयम् ।
आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ।।३।।
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं सावित्रेण कुशोदकम् ।

अघमर्षणमन्त्रेण संयोज्य प्रणवेन तु ।।४।।
सर्वत्राभ्युक्षणं कार्यं सावित्र्या तदनन्तरम् ।

....

आधयो व्याधयश्चैव प्रशमं यान्तु सर्वशः ।
रक्षा चास्तु शिवं चास्तु यजमानस्य सर्वतः ।।९३/३३।।
गवां शिवं चास्तु तथा द्विजानां राज्ञां शिवं चास्तु तथा प्रजानाम् ।
आतंकहीनं जगदस्तु सर्वं दोषाः प्रणाशं सकलाः प्रयान्तु ।।३४।।

....

उत्सादयन्तु सकलान् विघ्नान्मे समुपस्थितान् ।
अस्माद्देशात्प्रणश्यन्तु यज्ञघ्ना ब्रह्मराक्षसाः ।।९५/१२१।।
विनायका विघ्नकरा ममोग्रा यज्ञद्विषो ये पिशिताशनाश्च ।
सिद्धार्थकैर्वज्रसमान् कल्पैर्मया निरस्ताः स्वगृहं प्रयान्तु ।।१२२।।

....

रक्षन्तु ते देवगणाः समग्रा धर्मे मतिं चापि सदा दिशन्तु ।
नाशं तथा शत्रुगणस्य चोग्रं भोगान्मनोज्ञान् विपुलां च लक्ष्मीम् ।।१०४/१२।।

....

कृत्वा तडागं च तथा वारुणं लोकमश्नुते ।
गवां प्रचारे तत्कृत्वा गोलोकं प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ।।३/२९६/१०।।

....

गोकथां श्रावयेद्यस्तु गोभक्तान्मानवोत्तमः ।
गोदानफलमाप्नोति स नरस्तेन कर्मणा ।।३/३३४।।

....

ये भग्नक्षतरोगार्त्तान्स्वगोरूपान्बुभुक्षया ।
न पालयन्ति यत्नेन ते गोघ्ना नारका नराः ।। भ.उ.पु. ५/६०।।
वृषाणां वृषणान्येव पापिष्ठा गालयन्ति ये ।
वाहयन्ति च गां वध्यां ते महानारकाः स्मृताः ।।५/६१।।

भग्न, क्षतरोगी तथा गौओं को समय पर भोजन न देनेवाले- ये सभी प्राणी गोहत्यारे एवं नारकीय कहे जाते हैं । बैलों के अण्डकोष को निकालने या गलाने वाले और नाक छेदकर गौओं पर भार लादने वाले प्राणी महानारकीय कहे गये हैं।

गोवंशमहिमामृतश्रवणविधिः

युधिष्ठिर उवाच

गोवंशचरितं दिव्यं श्रोतव्यं किं विधानतः ।
गवां भक्तवरस्त्वं हि ब्रूहि सर्वमशेषतः ।।१।।

गोवंशमहिमाख्यानं सर्वश्रेष्ठं जगत्पते ।
पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि श्रावणात्किं फलं वद ।।२।।
गोभक्तप्रवराः के के के तन्माहात्म्यवाचकाः ।
गवां भक्तिं प्रकुर्वाणा गवां लोकं च के गताः ।।३।।
महिमश्रवणस्थानं कालं कति दिनात्मकम् ।
वाच्यतां वाचकस्यापि लक्षणं चाप्यनुत्तमम् ।।४।।
श्रोतृभिः किं प्रकर्तव्यं श्रवणार्थं महामते ।
भुक्तिमुक्तिकरी यस्माद् गोऽनुकम्पा भवेद् ध्रुवम् ।।५।।

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया- हे भगवन्! आप सर्वश्रेष्ठ गोभक्त हैं, इसलिये गोवंश के दिव्य चरित्र का किस विधान से श्रवण करना चाहिये? सम्पूर्ण रूप से कहिये। हे जगत् के पालन करनेवाले! गोवंश की महिमा का आख्यान सबमें श्रेष्ठ है। इसके पढ़ने, सुनने अथवा सुनाने का क्या फल है? आप बताइये। गोभक्तों में श्रेष्ठ और गौ के दिव्य माहात्य के वक्ता कौन-कौन हुए हैं, गौओं की सेवा में रत रहते हुए साक्षात् गोलोकधाम को किन-किन गोभक्तों ने प्राप्त किया है? इस गोमाहात्म्य के श्रवण का स्थान कैसा हो? कितने दिनों में इसका श्रवण करना चाहिये? और अत्युत्तम वक्ता का लक्षण क्या है? कृपा पूर्वक बताइये। हे महामते! गोमाहात्म्य की कथा के श्रवण के लिये श्रोताओं के द्वारा क्या करना चाहिये? जिससे निश्चित ही भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली गोमाता की विशेष अनुकम्पा प्राप्त हो जाय ।

श्रीकृष्ण उवाच

नमामि श्रीमतीं देवीं सुरभीं लोकमातरम् ।
यत्प्रसादादिहामुत्र सर्वसौख्यं पुरःस्थितम् ।।६।।
हृषितोऽस्मि कुरुश्रेष्ठ गवां भक्तिप्रभावतः ।
अत्याह्लादकरं प्रश्नं श्रुत्वा वच्मि तवाग्रतः ।।७।।
धन्यातिधन्यधन्योऽसि कुरूणां कुलवर्द्धन ।
यथाशक्ति गवां दिव्यं चरित्रं परमाद्‌भुतम् ।।८।।
रहस्यमृषिभिर्गीतं वृद्धैश्च बहुधा श्रुतम् ।
सविस्तरं प्रवक्ष्यामि गोकृपातो न संशयः ।।९।।
वेदादिसर्वशास्त्रेषु गोमाहात्म्यं प्रदृश्यते ।
महत्त्वाच्च बृहत्त्वाच्च वक्तुं केनाप्यशक्यते ।।१०।।
पुनाति सततं लोकान् गव्येन रजसा तथा ।
हव्यकव्यप्रदात्रीयं देवर्षिपितृतृप्तये ।।११।।
गोदिव्यचरिताच्छ्रेष्ठं गोवंशमहिमामृतम् ।
पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि गवां भक्तिविवर्द्धनम् ।।१२।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा– सम्पूर्ण विश्व की माता श्रीमती सुरभी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ । जिसके प्रसन्न हो जाने मात्र से इहलोक और परलोक में सभी सुख सामने ही उपस्थित रहते हैं । हे कुरुश्रेष्ठ! तुम्हारी गोभक्ति के प्रभाव से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। सर्वाधिक आह्लाद करनेवाले इस प्रश्न को सुनकर तुम्हारे सामने रहस्य को प्रकट करता हूँ । हे कुरुओं के कुल का वर्धन करनेवाले। तुम धन्य ही नहीं, अति धन्यों में भी धन्य हो। इसलिए यथासाध्य गौओं के परम अद्भुत दिव्य चरित्र को– जो रहस्य ऋषियों के द्वारा गाया गया है और ज्ञानवृद्ध गोभक्तों के द्वारा अनेक प्रकार से सुना है, गोमाताजी कृपा से विस्तारपूर्वक उसको कहूँगा, इसमें संशय नही है । वेदादि सकल शास्त्रों में प्रचुरतया गोमाहात्म्य देखा जाता है। जिसको अत्यन्त महत्ता और विशालता के कारण सम्पूर्णरूप से कहना किसी के द्वारा भी सम्मव नहीं है। गौ अपने गव्य पदार्थ एवं रज से सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करती है, देवता, ऋषि और पितरों की तृप्ति के लिये हव्य और कव्य भी यही प्रदान करनेवाली है। यह गोवंशमहिमामृत गोवंश के चरित्रों का पावन आख्यान करने के कारण परम श्रेष्ठ है। इसके पठन एवं श्रवण से गो भक्ति की वृद्धि होती है ।

यथा हि गोगव्यरजोऽतिशुद्धं तथैव गोवंशचरित्रसारम् ।
गृहे वने गोष्ठगवां समीपे पठेन्नरो वा श्रृणुयादजस्रम् ।।१३।।
एकदा राघवश्रेष्ठो वसिष्ठं समुपागतः ।
प्रणम्य मुनिशार्दूलं पप्रच्छ विनयान्वितः ।।१४।।

श्रीराम उवाच

ब्रह्मन् सर्वसमर्थोऽसि गुरो ब्रह्मविदुत्तमः ।
सर्वलोकोपकाराय पृच्छामि त्वां महामते ।।१५।।
गवां वंशस्य माहात्म्यं गव्यस्य रजसस्तथा ।
तद्भक्तानामशेषेण सर्वं कथय मे प्रभो ।।१६।।

जैसे गौ, गव्य और गोरज अत्यन्त शुद्ध हैं, निश्चित रूप से वैसे ही सभी शास्त्रों में उपलब्ध गोचरित्रों का सार रूप यह गोवंशमहिमामृतम् अत्यन्त पावन एवं श्रेष्ठ है। घर में, वन में तथा गोष्ठ में गौओं के समीप मनुष्य निरन्तर इसको पढ़े अथवा सुने। एकबार रघुश्रेष्ठ श्रीराम ने मुनिशार्दूल गुरु वसिष्ठ के समीप जाकर प्रणाम किया और विनययुक्त होकर उनसे पूछा । श्रीराम ने प्रश्न किया – हे ब्रह्मन्! हे गुरो! आप ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं सर्वसमर्थ हैं। हे महामते! सम्पूर्ण लोकों के उपकार के लिये में आपसे जिज्ञासा करता हूँ– गोवंश, गव्य, गोरज तथा गोभक्तों के विशेष माहात्म्य को आप सम्पूर्ण रूप से मुझे कहने की कृपा करें ।

श्रीवसिष्ठ उवाच

राम राम रघुश्रेष्ठ लोकानामभयप्रदः ।
गोभक्तिप्रवणादेव पृष्टोऽहमखिलात्मना ।।१७।।
किं न ज्ञातं त्वया राम रहस्यं परमाद्भुतम् ।
तथाऽप्यशेषभूतानां कल्याणं कर्तुमिच्छया ।।१८।।
जगन्मातृगवां दिव्यं माहात्म्यं पृच्छसि स्वयम् ।
सर्वं वक्तुं न शक्तोऽस्मि वेदादिषु यथोदितम् ।।१९।।
तथापि यच्छ्रुतं ज्ञातं वच्मि सर्वमशेषतः ।
श्रृणु राम महाबाहो गोविप्रपालक प्रभो ।।२०।।
सैव देवी परं ब्रह्म ज्योतीरूपा सनातनी ।
यया ततमिदं सर्वं यद्व्याप्तमखिलं जगत् ।।२१।।

श्रीवसिष्ठजी ने कहा- हे राम! हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ राम! तुम सम्पूर्ण लोकों को अभय प्रदान करनेवाले हो । गोभक्ति में अत्यन्त अनुरक्ति के कारण ही तुम अखिलात्मा के द्वारा मैं पूछा गया हूँ । हे राम! तुम परम अद्भुत सभी रहस्यों को जानते हो, तथापि प्राणिमात्र के कल्याण करने की इच्छा से जगन्माता गौ के दिव्य माहात्म्य को स्वयं मुझसे पूछते हो। यद्यपि वेदादि सभी शास्त्रों में गौ के माहात्म्य का जितना विस्तृत वर्णन है, मै उन सबको कहने में समर्थ नहीं हूँ। तथापि जो सुना है और जितना जाना है, विशेष रूप से उनको कहता हूँ। हे राम! महाबाहो! गौ, ब्राह्मण एवं सबका रक्षण-पालन करनेवाले प्रभो! सुनिये । वह गोमाता ही परब्रह्मस्वरूपिणी ज्योतीरूपा सनातनी देवी है। जिससे इस सम्पूर्ण विश्व का विस्तार हुआ है और जिससे सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है।

आद्यश्लोकाः

आद्यामनन्तामजरामनादिं ज्ञानस्वरूपाममलामतुल्याम् ।
ध्येयामशेषाघविनाशिनीं तां धेनुं ववन्दे शिरसा सदाऽहम् ।।१।।
सूर्याम्बिकाविष्णुगणेशरुद्रान् व्यासांजनेयाप्रतिमप्रभावान् ।
सर्वाश्रयां विश्वविनोदिनीं गां नौमीड्यराधायुगलांघ्रिवन्द्यान् ।।२।।
एकदा तीर्थयात्रायां नैमिषं समुपागतम् ।
सूतं पुराणवक्तारं सर्वशास्त्रेषु निष्ठितम् ।।३।।
ध्यायन्तं कामधेनुं तं समभ्यर्च्य तपोधनाः ।
नैमिषस्था महाभागाः शौनकाद्या महर्षयः ।।४।।
स्वाहाकारवषट्कारैर्दिव्यतेजःसमन्विताः ।
पप्रच्छुस्ते महात्मानं गोमाहात्म्यं स्तुवन् हरिम् ।।५।।

ऋषय ऊचुः

हे सूत सर्वशास्त्रज्ञस्त्वां पृच्छामो वयं मुदा ।
सर्वेश्वरी च का देवी का पूज्या देवतादिभिः ॥६॥
का सेव्या का जगत्कर्त्री केह पाति च हन्ति का ।
कस्याः प्रवर्त्तते यज्ञो दुष्टहन्त्री च का स्मृता ॥७॥
तस्या देव्याः स्वरूपं किं जगत्सर्गस्ततः कथम् ।
कैर्व्रतैः सा प्रसन्ना स्यात् सुलभा सर्वदैव हि ॥८॥
तस्याः कतिविधोत्पत्तिर्वंशादिसम्भवः कथम् ।
वर्णाश्रमादिधर्माणां का पात्री का प्रवर्त्तिका ॥९॥
एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते ।
कामधेनुकथाः पुण्याः कथयास्माकमुत्तमाः ॥१०॥

सूत उवाच

वेदादिशास्त्रसाराणां सारं वक्ष्ये सनातनम् ।
लोकोपकारकं दिव्यं गोवंशमहिमामृतम् ॥११॥
एका भगवती साक्षाद्देवी सर्वेश्वरेश्वरी ।
चतुष्पाद्विश्वरूपा या सा मे पातु मखेश्वरी ॥१२॥
कृष्णेन धर्मराजाय सम्यक् प्रोक्तं पुरा यथा ।
व्यासाच्छ्रुतं मया यत्तच्छृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥१३॥

जो आद्याशक्ति, अनन्ता, अजरा, अनादि, ज्ञानस्वरूपिणी, अमला, अतुल्या, ध्येया और पापों का विनाश करनेवाली है, उस कामधेनु गोमाता की सदा ही सिर झुकाकर मैं वन्दना करता हूँ। सूर्य, अम्बिका, विष्णु, गणेश, रुद्र, व्यास, महावीर, हनुमान् और अमित प्रभाव वाले अन्य महापुरुषों तथा विश्व को आनन्द देनेवाली सर्वाश्रया गोमाता को प्रणाम करता हूँ। पुनः सर्वश्रेष्ठ गोरक्षक भगवान् श्रीराधाकृष्ण के वन्दनीय युगलचरणकमलों की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।

एक बार तीर्थयात्रा के प्रसंग में नैमिषारण्य तीर्थ को आये हुए सभी शास्त्रों में परिनिष्ठित पुराणवक्ता सूत जी का- जो उस समय कामधेनु का चिन्तन कर रहे थे, उसी क्षण नैमिषारण्य में निवास करनेवाले महाभाग तपोधन शौनकादि महर्षियों ने उनका भलीभाँति पूजन कर श्रीहरि का स्मरण करते हुए उन महात्मा सूतजी से गोमाहात्म्य के बारे में प्रश्न किया। वे सभी स्वाहाकार तथा स्वधाकार के द्वारा दिव्य तेज से समन्वित थे । शौनकादि महर्षियों ने पूछा- हे सूतजी! आप सभी शास्त्रों को जाननेवाले हैं, हमलोग प्रसन्नचित्त होकर अपसे पूछते हैं। सबकी अधिष्ठात्री सर्वेश्वरी देवी कौन है, देवता आदि के द्वारा भी कौन पूजनीया है। कौन सर्वसेव्या, जगत् की

उत्पत्ति, पालन, रक्षण और संहार करनेवाली है? किससे यज्ञों का प्रवर्तन होता है और दुष्टों का नाश करनेवाली कौन है? उस देवी का स्वरूप क्या है? और उससे जगत् की सृष्टि कैसे होती है? किन व्रतों के द्वारा वह प्रसन्न होती है? सदा ही सबके लिये सुलभ देवी कौन है? उसकी उत्पत्ति कितने प्रकार से होती है? उनके वंशों की सृष्टि कैसे होती है? वर्ण और आश्रम आदि के धर्म का रक्षण और प्रवर्त्तन करनेवाली कौन है? हे महामते! सूत! इन सभी प्रश्नों को तथा अन्य गुप्त रहस्यों को भी आप बताने की कृपा करें। कामधेनु की कथा अत्यन्त उत्तम और पुण्यमयी है। आप उन सबको हमसे कहिये। सूतजी ने कहा- वेदादि सकल शास्त्रों के सार के भी सनातन सारतत्त्व को मैं कहूँगा। यह गोवंशमहिमामृत नामक सत्प्रबन्ध सभी लोकों का उपकार करनेवाला सनातन शास्त्रों के सार का सार है। सर्वेश्वर की भी ईश्वरी एक ही साक्षात् भगवती देवी जो चतुष्पाद और विश्वरूपा है, वह मखेश्वरी गोमाता मेरी रक्षा करे। पूर्वकाल में धर्मराज युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण के द्वारा सम्यक् प्रकार से जो गोमाहात्म्य कहा गया। वह मैने व्यासजी से सुना है। हे मुनिसत्तमो! वही सावधान होकर आप सभी सुनिये।

मनुस्मृतिः

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥३/३॥

अपने धर्म से प्रसिद्ध, पिता से (पिता के अभाव में आचार्य से) ब्रह्मदाय (ब्रह्मभाग अर्थात् ब्रह्मप्राप्ति का साधन वेद) को ग्रहण किये हुए, माला पहने हुए तथा श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुए ब्रह्मचारी की पूजा पिता या आचार्य गव्य आदि के मधुपर्क से करे ।

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥४/४५॥

एक वस्त्र (केवल धोती या लंगोट आदि) पहनकर भोजन न करे। नग्न होकर स्नान न करे। बीच सड़क पर, भस्म पर और गौशाला में मल और मूत्र का त्याग न करे।

नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥५/८७॥

मनुष्य की गीली (रक्तादि से युक्त ताजी) अस्थि छूकर स्नान करने से ब्राह्मण शुद्ध होता है तथा सूखी अस्थि को छूकर आचमन करने, गौ का स्पर्श करने या सूर्यदर्शन करने से शुद्ध होता है।

वासीदश्चन्द्रसालोक्यमाश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥४/१३१॥

वस्त्रदान करनेवाला चन्द्रमा के सालोक्य को, अश्व का दान करनेवाला अश्विनीकुमारों के सालोक्य को, वृषभ का दान करनेवाला बहुत धन को और गाय का दान करनेवाला सूर्यलोक को पाता है।

भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥१०/१०७॥

निर्जन वन में पुत्रसहित निवास करते हुए महातपस्वी भरद्वाज मुनि भूख से पीड़ित होकर वृधु नामक बढ़ई से सौ गौओं का प्रतिगृह (दान) लिये (तथा हीनजाति से दान लेकर भी निन्दित कर्माचरण से पापदूषित नहीं हुए)।

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः ।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥१०/११६॥

(1) विद्या (वेद-वेदांगादि तथा वैद्यक, तर्क, विषनिराकरण आदि की विद्या), (2) शिल्प, (3) धृति, (4) सेवा, (5) गोरक्षण, (6) व्यापार, (7) खेती, (8) धैर्य, (9) भिक्षासमूह और (10) ब्याज ये दस जीवननिर्वाह के हेतु हैं।

सम्प्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ।
धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥८/१४६॥

प्रेम में उपभोग में लायी जाती हुई (दुग्धादि के लिये) गौ, ऊँट तथा अश्व, हल आदि में जोतने योग्य वृषभ आदि पर से स्वामी का अधिकार कभी नष्ट नहीं होता ।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥१/२३॥

ब्रह्माजी ने यज्ञों की सिद्धि के लिये अग्नि, वायु और सूर्यरूपी गौ से सनातन ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को दुहा (प्रकट किया)।

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमेकशफं तथा ।
आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥५/८॥
क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ।
सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात् प्रयत्नेन समाहितः ॥१/९॥
दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवम् ।
यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥५/१०॥

प्रसव करने के दिन से जिसको दस दिन बीते हैं- ऐसी गाय (भैंस, बकरी आदि भी) ऊँटनी, एक खुर वाली घोड़ी, गधी आदि पशु, भेंड़, गर्भवती होने की इच्छा करनेवाली (उठी गरम गई) पशु, जिसका बच्चा मर गया हो ऐसी गाय के दूध को त्याग दे, न पीये। जो अभक्ष्य दूध हैं उनके विकार (बने हुए पदार्थ- दही, खोआ आदि) के खाने पर सज्जन सावधान होकर सात रात्रि का व्रत करे। शुक्तों (कांजी या सिरका आदि जो अधिक समय तक रखने के कारण से स्वभावतः मधुर होते हुए भी खट्टे हो गये हों) में दही और दही के बने पदार्थ (छाछ, मट्ठा, तक्र आदि) और जो शुभ (नशा नहीं करनेवाले) फूल, मूल एवं फल से बने पदार्थ हैं, वे भक्ष्य हैं ।

न विगर्ह्य कथां कुर्याद् बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ।।४/६२।।

हठपूर्वक कोई वार्ता न करे, बाहर करके माला न पहने और गौओं के पीठ पर सवारी करना सर्वथा ही निन्दित है?

गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नं नैव भक्षयेत् ।
गणान्नं गणिकान्नं च विदुषा च जुगुप्सितम् ।।४/२०।।

गौ के सूँघे हुए, किसी के लिये घोषित या अपशब्द से अपमानित किये हुए प्रदत्त अन्न को, समूह के अन्न को, वेश्या के अन्न को और विद्वान् से निन्दित अन्न को न खाय ।

सम्मार्जनोपांजनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवां च परिवासेन भूमिः शुध्यति पंचभिः ।।५/२४।।
पक्षिजग्धं गवा घ्रातमवधूतमवक्षुतम् ।
दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुध्यति ।।६/२४।।
आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ।।५/१२८।।
मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ।।५/१३३।।
अजाश्वं मुखतो मेध्यं गावो मेध्याश्च पृष्ठतः ।
ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्याश्च सर्वतः ।।५/१४१।।
गौरमेध्या मुखे प्रोक्ता अजा मेध्या ततः स्मृता ।
गोः पुरीषं च मूत्रं च मेध्यमित्यब्रवीन्मनुः ।।५/१४१।।

भूमि की शुद्धि झाड़ू देने से, गोवर से लीपने से, गोमूत्र या जलादि के छिड़कने से, ऊपर की कुछ मिट्टी को खोदकर फेंक देने से और गायों के निवास से होती है। पक्षियों के खाये हुए, गौ से सूँघे हुए, जिसके ऊपर छींक दिया गया हो उसकी एवं

बाल तथा कीटाणु आदि से दूषित हुए अन्न की शुद्धि मिट्टी (गोरज) डालने से होती है। जिससे गौ की प्यास दूर हो जाय, जो अपवित्र वस्तु से दूषित न हो, जो वर्ण, रस और गन्ध में ठीक हो- ऐसा पृथ्वी पर स्वभावतः स्थित पानी शुद्ध होता है। मक्खी, बोलने में मुख से निकली छोटी बूँदें, छाया, गौ, अश्व, सूर्यकिरण, घूलि, भूमि, वायु तथा अग्नि को स्पर्श में शुद्ध जानना चाहिये। अजा और अश्व मुख से, गौ पृष्ठभाग से, ब्राह्मण चरणों से एवं स्त्रियाँ सर्वांग से पवित्र होती हैं। गौ का मुख अशुद्ध किन्तु अजा का मुख शुद्ध होता है और गौ के गोवर तथा मूत्र पवित्र होते हैं, ऐसा मनु ने कहा है।

पिण्डनिर्वपनं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ।
गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ।।३/२६०।।

पिण्डदान कर वरयाचना करने के बाद उन पिण्डों को गौ, ब्राह्मण या अजा को खिला दे अथवा अग्नि या जल में विसर्जन कर दे ।

ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ।
गोबीजकांचनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ।।८/८८।।
पंच पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ।।८/९८।।

न्यायाधीश ब्राह्मणों से बोले- कहिये, क्षत्रियों से- सत्य बोलो, वैश्यों से- गौ, बीज और स्वर्ण चुराना पाप है, वह पाप तुम्हें असत्य गवाही देने पर लगेगा तथा शूद्रों से- तुम्हें सब पाप लगेगा, यदि तुम असत्य गवाही दोगे। ऐसा कह कर गवाही ले। पशु के विषय में असत्य बोलने पर पाँच, गौ के विषय में दस, अश्व के विषय में सौ तथा मनुष्य के लिये असत्य बोलने पर सहस्र बान्धवों को नरक में डालता है।

डिम्भाहवहतानां च विधुता पार्थिवेन च ।
गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ।।५/९५।।

नृप से रहित युद्ध में मारे गये, बिजली से मरे हुए, राजा से मारे गये अर्थात् प्राणदण्ड प्राप्त, गौ तथा ब्राह्मण की रक्षा के लिये मारे गये और राजा जिसकी तत्काल शुद्धि चाहता है उसकी तत्काल शुद्धि होती है ।

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ।
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ।।२८/३३९।।

वनस्पतियों के मूल तथा फल, अग्निहोत्र के लिये समिधा और गोग्रास के लिये घास ग्रहण करने को मनु ने चोरी नहीं कहा है ।

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।

स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ।।४/५८।।

अग्निहोत्रशाला में, गौओं के निवास स्थान में, ब्राह्मणों के पास, स्वाध्याय में और भोजन में दाहिनी भुजा को वस्त्र से बाहर रखना चाहिये ।

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ।।११/१२७।।

अनिच्छापूर्वक क्षत्रिय का वध करनेवाला ब्राह्मण अच्छी तरह व्रत कर एक बैल के साथ सहस्र गायों को ब्राह्मण के लिये दान करे ।

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ।।११/१२९।।
एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत् ।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ।।११/१३०।।

अनिच्छापूर्वक सदाचारी वैश्य का वध करनेवाला ब्राह्मण इसी प्रायश्चित्त को करके एक बैल के साथ सौ गौ का दान करे। अनिच्छापूर्वक सदाचारी शूद्र का वध करने पर भी ऐसा ही करे ।

गोवधप्रायश्चित्तम्

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ।।११/१०८।।
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ।।११/१०९।।
दिवानुगच्छेद् गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ।।११/११०।।
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथाऽऽसीनो नियतो वीतमत्सरः ।।११/१११।।
आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पंकलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ।।११/११२।।
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ।।११/११३।।
आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथ वा खले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ।।११/११४।।
अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ।
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ।।११/११५।।
वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ।

अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ।।११/११६।।

उपपातक से युक्त गोघातक सशिख मुण्डन कराकर उस गाय के चर्म से शरीर को ढँककर एक मास यव को पीता हुआ गोशाला में निवास करे। इसके बाद दो मास तक गोमूत्र से स्नान करता हुआ जितेन्द्रिय होकर चौथे काल खारे नमक से रहित थोड़ा हविष्यान्न भोजन करे। दिन में प्रातःकाल गायों के पीछे-पीछे जाय और रुककर उनके खुरों के आघात से उड़ती हुई धुलि का पान करे पुनः उनकी सेवा तथा नमस्कार करके रात्रि में वीरासन से बैठे। पवित्र तथा क्रोधरहित होकर उन गायों के खड़ा होने पर खड़ा हो जाय, चलने पर चले तथा बैठने पर बैठे। रोग या चोर अथवा व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं से भयभीत या घिरी हुई या कीचड़ आदि में फँसी हुई गौ की सब उपायों से रक्षा करे। गर्मी, वर्षा या शीत रहने पर या आँधी चलने पर यथाशक्ति गौ की बिना रक्षा किये अपनी रक्षा न करे। अपने या दूसरे घर, खेत या खलिहान में खाते हुए गाय को तथा पीते हुए बछड़े को किसी रोकने के लिये न कहे। इस विधि से जो गोघातक तीन मास तक गौ का अनुसरण करता है, वह गोहत्या से उत्पन्न पाप को नष्ट कर देता है। इस प्रकार व्रत को समाप्त कर दस गाय तथा एक बैल ब्राह्मण के लिये दान करे तथा इनके पास सम्पत्ति नहीं होने पर अपना सर्वस्व वेदज्ञाता ब्राह्मण के लिये दान कर दे।

कृच्छ्र सान्तपन व्रत

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ।।/११/२१२।।

गोमूत्र, गोवर, दूध, दही, घी और कुशा का जल- इनमें से प्रत्येक को 1-1 दिन भोजन करे, इस प्रकार छः दिन इन्हें भोजन कर सातवें दिन उपवास करे, यह कृच्छ्र सान्तपन व्रत कहा गया है ।

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने ।
पशूनां हरणं चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ।।८/३२५।।

ब्राह्मण की गाय चुराने पर, वन्ध्या गाय को लादने के लिये नाथने पर और यज्ञार्थ लाये गये अजादि पशुओं को चुराने पर राजा अपराधी का आधा पैर तत्काल कटवा दे (या अर्द्धपादिक प्रायश्चित्त कराये)।

यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ।
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ।।९/५०।।

जो दुसरे की गाय में साँड़ सैकड़ो बछड़ों को उत्पन्न कर दे, वे सब बछड़े गाय के स्वामी के होते हैं, साँड़ का वीर्यक्षरण व्यर्थ है ।

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिनः ।
कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ।।९/५१।।

उसी प्रकार क्षेत्र का स्वामी नहीं होते हुए जो पुरुष दूसरे के क्षेत्र में बीज बोये करते हैं, वे क्षेत्रस्वामियों के ही अर्थसाधन हैं, और बीज वाला फल प्राप्त नहीं करता ।

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ।
क्षेत्रबीजसमायोगात् सम्भवः सर्वदेहिनाम् ।।९/३३।।

स्त्री क्षेत्ररूप है और पुरुष बीजरूप है, क्षेत्र तथा बीज के संसर्ग से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है ।

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ।।११/९०।।
गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ।
पयो घृतं वा मरणाद् गोशकृद्रसमेव वा ।।११/९१।।

द्विज मोहवश मदिरा को पीकर अग्नि के समान गर्म मदिरा को पीवे उससे शरीर अर्थात् मुख के जलने पर मनुष्य उससे छुट जाता है अथवा अग्नि के समान वर्णवाले (तप्त) गोमूत्र, पानी, दूध, घी या गोबर के रस को मरने तक पीये ।

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ।।८/१४।।
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।।८/१५।।
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ।।८/१६।।

जिस सभा में सभासदों के सामने धर्म अधर्म से तथा सत्य असत्य से पीड़ित होता है, उस सभा में वे सदस्य ही पाप से नष्ट होते हैं, नष्ट किया गया धर्म ही नष्ट करता है और सुरक्षित धर्म ही रक्षा करता है, अतः धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिये। क्योंकि नहीं नष्ट हुआ अर्थात् सुरक्षित धर्म ही नहीं मारता है अथवा नष्ट हुआ धर्म हमलोगों को नष्ट नहीं करे, यह जानकर धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिये। भगवान् धर्म को वृष कहते है, जो मनुष्य उसका वारण (नाश) करता है, उसे देवता लोग 'वृषल' (वृषं लुनाति छिनत्ति) यानी धर्म को खण्डित करनेवाला कहते हैं, अत धर्म का नाश न करे ।

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादसस्तरेषु कटेषु च ।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ।।२/२०९।।

बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी, छत के ऊपर, बड़ी दरी आदि बिछौना, चटाई, पत्थर, लकड़ी का तख्ता और नाव पर शिष्य भी गुरु के साथ बैठ सकता है।

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निवेश्य च ।
सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति ।।११/२०२।।

मल-मूत्रत्याग करने के वेग से युक्त मनुष्य जलरहित हो अथवा जल में मल-मूत्र का त्याग करके सवस्त्र स्नान कर गाँव के बाहर में गौ का स्पर्श कर मनुष्य शुद्ध होता है ।

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।
तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ।।११/१९३।।
जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ।।११/१९४।।
उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् ।
प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् ।।११/१९५।।
सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ।
गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ।।११/१९६।।

ब्राह्मण लोग जिस निषिद्ध का यज्ञ कराना, दूसरों का श्राद्ध करना, मारण आदि अभिचार कर्म करना आदि कर्मो के आचरण से धन का उपार्जन करते है, उस धन का त्याग तथा आगे कहे जानेवाले जप और तप से वे ब्राह्मण शुद्ध होते हैं। ब्राह्मण तीन सहस्र गायत्री जपकर तथा एकमास तक गोशाला में केवल दुग्धाहार लेकर असत्प्रतिग्रह के दोष से छूट जाता है। दुर्बल तथा गोशाला से लौटे हुए उस ब्राह्मण से- हे सौम्य! क्या हमलोगों की समानता चाहते हो? ऐसा अन्य पवित्र ब्राह्मणलोग पूछे। फिर 'हाँ'- ऐसा प्रश्नकर्ता ब्राह्मणों से कहकर प्रायश्चित्तकर्ता ब्राह्मण गौओं के लिये घास डाल दे तथा गौऔं के पास खाने से पवित्र तीर्थरूप उस भूमि में ब्राह्मणलोग उस ब्राह्मण को अपने व्यवहार में ग्रहण करना स्वीकार कर लें ।

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद् ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ।।४/१६२।।

आचार्य, वेदादि का व्याख्यानकर्ता, पिता, माता, गुरु, ब्राह्मण, गौ और सब प्रकार के तपस्वी- इनकी हिंसा या इनके प्रतिकूल आचरण न करे ।

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ।।३/२७।।

गोमिथुन (गाय और बैल दोनों) या दो गाय अथवा बैल (दोनों में से कोई एक एक या दो दो) यज्ञादि धर्मकार्य करने या कन्या को देने के लिये वर से लेकर विधिपूर्वक कन्यादान करना धर्मयुक्त आर्षविवाह कहा गया है।

पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ।।३/६८।।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।
पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ।।३/६९।।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।३/७०।।
पंचैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ।।३/७१।।

गृहस्थ के लिये चुल्ली, चक्की आदि, झाड़ू, ओखली-मूसल और जल का घर- ये पाँच पाप के स्थान हैं, इन्हें व्यवहृत करता हुआ गृहस्थ (इनका प्रयोग करनेवाले, करवानेवाले अथवा इसके परिणाम का उपभोग करनेवाले- सभी इसी कोटि में हैं- यह कर्तव्याकर्तव्य उन सबके लिये है) पाप से बँधता है। उन सबकी निवृत्ति के लिये महर्षि ने पञ्च महायज्ञ करने का विधान गृहस्थाश्रमियों के लिये बतलाया है। वेद का अध्ययन और अध्यापन करना 'ब्रह्मयज्ञ' है, तर्पण करना 'पितृयज्ञ' है, हवन करना 'देवयज्ञ' है, बलि वैश्वदेव करना 'भूतयज्ञ' है तथा अतिथियों को भोजन आदि से सत्कार करना 'नृयज्ञ' है । यथाशक्ति इन पञ्च महायज्ञों को नहीं छोड़नेवाला द्विज गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी पञ्चसूना के दोषों से युक्त नहीं होता है ।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ।।३/७७।।
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ।।३/७८।।

जिस प्रकार प्राणवायु का आश्रय लेकर सब जीव जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर सभी आश्रम चलते हैं। जिस कारण से तीनों आश्रमवाले गृहस्थाश्रमी से ही ज्ञान (वेदाध्ययनादि) तथा अन्न को प्राप्त करते हैं, इस कारण गृहस्थाश्रमी ही सबसे श्रेष्ठ है ।

स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छतात्यन्तं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ।।३/७९।।
ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ।।३/८०।।

अक्षय स्वर्ग तथा ऐहिक सुख चाहनेवाले मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक गृहस्थाश्रमक का आश्रय करना चाहिये । दुर्बल इन्द्रियों वाले व्यक्ति के द्वारा यह गृहस्थाश्रम धारण करने योग्य नहीं है । ऋषि, पितर, देवता, भूत और अतिथि- ये लोग गृहस्थ से ही अपनी सन्तुष्टि की आशा रखते हैं, अतः शास्त्रज्ञानी को उनके लिये पञ्चमहायज्ञों का सम्पादन अवश्य ही करना चाहिये ।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
स्नात्वा पीत्वा च हुत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत ।। परिशिष्ट
धेनुं श्राद्धे तु यो दद्याद्गृष्टिं कुम्भापदोहनीम् ।
गावस्तमुपतिष्ठन्ति नरं पुष्टिस्तथैव च ।। (ब्रह्माण्ड पुराण ६/२०)

कृत्यसारसमुच्चये गोदोहने

द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ।
द्वौ मासौ त्वेकवेलायां शेषकालं यथारुचिः ।।
टजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका ।
दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति भूमिष्ठं च नवोदकम् ।।

उद्वाहकाले रतिसम्प्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ।
गोब्राह्मणार्थे ह्यनृतं वदेच्चेत्पंचानृतान्याहुरपातकानि ।।

<u>सुरापाने दोषाः विष्णुधर्मोत्तरे</u>

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।।२/७३/१००।।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ।।
गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ।।१०१।।
पयो घृतं वा मरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ।
कणान् वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।।१०२।।
सुरापानापनुत्यर्थं चीरवासा जटी ध्वजी ।
सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।।१०३।।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ।
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।।१०४।।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ।
यक्षरक्षःपिशाचानां मद्यं मांसं सुराऽशनम् ।।१०५।।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ।

माध्वीक्षमैक्षवं टांकं कौलं खार्जूरपानसम् ।।१०६।।
मृद्वीकारसमार्द्वीके मैरेयं नारिकेलजम् ।
असेव्यानि दशैतानि मद्यानि ब्राह्मणस्य च ।।१०७।।
यस्य कामगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ।।१०८।।

विष्णुधर्मोतरपुराण तृ.ख. ३१६

पात्रविशेषेण दानविशेषवर्णनम्

ऋषय ऊचुः
कस्य दानस्य कः पात्रं तद्वदस्व महामते ।
कस्मिन्देशे तथा काले किंचिद्दतं महाफलम् ।।१।।
हंस उवाच
न दानं यशसे दद्यान्न दद्यान्नोपकारिणे ।
न नृत्यगीतशीलेभ्यो नास्तिकेभ्यश्च धार्मिकः ।।२।।
पापशीले न दातव्यं कदाचिदपि किंचन ।
पापशीले तु यद्दतं तद्दातुर्दोषमावहेत् ।।३।।
धनदस्तेन पापेन शीघ्रमेवेह युज्यते ।
तस्मात्प्राप्य धनं पुण्यं पुण्यशीलं समाचरेत् ।।४।।
धनदस्तेन पुण्येन योगमाप्नोत्यसंशयम् ।
अन्नदानेन कर्तव्यं पात्रावेक्षणमण्वपि ।।५।।
अन्नं सर्वत्र दातव्यं धर्मकामेन वै द्विजाः ।
सदोषेऽपि तु निर्दोषं सगुणेऽतिगुणावहम् ।।६।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देयमन्नं सदैव तु ।
विद्याऽध्ययनसक्तानामन्नदानं महाफलम् ।।७।।

ऋषियों ने पूछा- हे महामते! किस दान का कौन पात्र है? इसको बताइये। किस देश अथवा काल में किंचित् दान देने से भी महाफल प्राप्त होता है? हंस ने कहा- धार्मिक व्यक्ति यश के लिये, अनुपकारी के लिये, नृत्य-गीतपरायणों के लिये एवं नास्तिकों के लिये दान न दे । पाप कर्म में प्रवृत्त व्यक्ति के लिये कभी भी कुछ दान नहीं देना चाहिये। पापी को दिया दान दाता के लिये दोष उत्पन्न करता है। पापी को दान देनेवाला शीघ्र ही इस लोक में उसके पाप से युक्त हो जाता है। इसलिये पुण्यात्मा को प्राप्तकर सम्यक् प्रकार से धन और पुण्य का आचरण करे। पुण्यात्मा को धन देनेवाला उसके पुण्य से पुण्यवान् होता है, इसमें संशय नही है। थोड़े से भी अन्नदान के द्वारा पात्र का अवेक्षण करना चाहिये। हे द्विजो! धर्म की कामना से अन्न

सर्वत्र ही प्रदान करना चाहिये, चाहे लेनेवाला दोष युक्त, निर्दोष, गुणवान् अथवा गुणहीन भी क्यों न हो। इसलिये सर्वप्रयत्न से सदैव अन्नदान करना चाहिये। विधाध्ययन में प्रवृत्त व्यक्तियों के लिये अन्नदान करने से महान् फल की प्राप्ति होती है।

शुभानामप्यथाऽन्येषां कर्मणां द्विजपुंगवाः ।
यस्यान्नमुपयुंजानो नरः कर्माणि साधयेत् ।।८।।
कर्म साधयतः पुण्यमन्नदाता तथाऽश्नुते ।
दत्वा नृपतिभीतीनां धनिनां च तथा धनम् ।।९।।
तस्करेभ्यश्च भीतानां फलमक्षयमश्नुते ।
यियक्षिता तथा दत्तं व्यसने हन्तुमिच्छता ।।१०।।
दुःखान्वितानां दीनानां चाक्षयं तत्प्रकीर्तितम् ।
विवाहमेखलाबन्धप्रतिष्ठादिषु कर्मसु ।।११।।
आपन्नेषु च यद्दत्तं तदक्षय्यमुदाहृतम् ।
यज्ञोपकरणं द्रव्यं क्षत्रिये द्विजपुंगवा ।।१२।।
पुण्योपयोगि तद्वैश्ये शूद्रे शिल्पोपजीविनम् ।
यस्योपयोगि यद्द्रव्यं देयं तस्यैव तद्भवेत् ।।१३।।
येन येन च भाण्डेन यस्य वृत्तिरुदाहृता ।
तत्तु तस्यैव दातव्यं पुण्यकामेन धीमता ।।१४।।

हे द्विजपुंगवो! मनुष्य शुभ अथवा तदितर अन्य कर्मो का सम्पादन जिसके अन्न का उपभोग करते हुए करता है, उसके कर्म की साधना से अन्नदाता उस पुण्य को प्राप्त करता है। नृपति से डरे हुए धनियों के धन को देकर और तस्करों से भयभीत हुए के लिये धन देकर अक्षय फल को प्राप्त करता है। याजक, व्यसनहन्ता, दुःखी और दीनों के लिये दिया हुआ धन अक्षयता को प्राप्त करता है। विवाह, यज्ञोपवीत, प्रतिष्ठा आदि कर्मो में तथा विपत्ति से ग्रस्त लोगों के लिये दिया हुआ दान अक्षय होता है। हे द्विजश्रेष्ठो! ब्राह्मण के लिये यज्ञोपकरण और द्रव्य तथा क्षत्रिय, वैश्य एवं शिल्पोपजीवी शूद्र के पुण्योपयोग के लिये जो आवश्यक पदार्थ है वह देना चाहिये, क्योंकि वह उसका ही द्रव्य होता है। जिस-जिस भाण्ड के द्वारा जिसकी वृत्ति बतायी गयी है, पुण्य की कामना बुद्धिमान् के द्वारा वही उसके लिये देना चाहिये।

दण्डं कृष्णाजिनं चैव तथा विप्राः कमण्डलुम् ।
चीरं पुण्यमवाप्नोति दत्वैतान् ब्रह्मचारिणे ।।१५।।
वस्त्रं शय्याऽऽसनं धान्यं द्रव्यं वेश्मपरिच्छदम् ।
गृहस्थाय तु तद्दत्तं ज्ञेयं बहुफलं सदा ।।१६।।

नीवारवल्कलं शाकं फलमूलं च गोरसम् ।
वानप्रस्थाय तद्दत्तमनन्तं परिकीर्तितम् ॥१७॥
भिक्षाप्रदानं यतये पात्रदानं तथा हितम् ।
सौभाग्यद्रव्यताम्बूलरक्तवस्त्रादिकं स्त्रियः ॥१८॥
स्त्रीणां प्रदानं दातव्यं भर्तृहस्ते तु नान्यथा ।
प्रोक्तं संग्रहणं ह्येतद् गुप्तं भर्तुः प्रयच्छतः ॥१९॥
अन्नं प्रतिश्रयं चोभौ पान्थे दत्तं महाफलम् ।
विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारकम् ॥२०॥
यः प्रयच्छति धर्मज्ञाः सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ।
आतुरेभ्यो धनं दत्वा दानं बहुफलं लभेत् ॥२१॥

हे विप्रो! ब्रह्मचारी के लिये दण्ड, कृष्णजिन, कमण्डलु और चीरवस्त्र प्रदान करके पुण्य को प्राप्त करता है। गृहस्थ के लिये वस्त्र, सोपकरण शय्या, धान्य, द्रव्य, गृह और गृहोपकरण का दिया हुआ दान बहुत फल का देनेवाला होता है। वानप्रस्थियों के लिये नीवार (बिना जोते-बोये उत्पन्न जंगली चावल) वल्कल, शाक, फल, मूल और गोरस का दान अनन्त फलप्रद होता है। यति के लिये भिक्षाप्रदान तथा उनके लिये उपयुक्त पात्र का दान हितकर होता है। स्त्रियों को सौभाग्य द्रव्य, ताम्बूल तथा रक्तवस्त्र आदि प्रदान करे। स्त्रियों के निमित्त दिया जानेवाला दान उनके पति के हाथ में देना चाहिये, अन्य प्रकार से नहीं। पति को देने से यह संग्रहण गुप्त कहा गया है। पथिक के लिये अन्न और आश्रय- इन दोनों का दान महान् फल को देनेवाला है। विवाह आदि क्रिया के सम्पादन काल में तत्तत् क्रियाओं की सिद्धि करनेवाले पदार्थ को देना चाहिये। हे धर्मज्ञो! जो इसको प्रदान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। रोग आदि से पीड़ित व्यक्तियों के लिये धन देकर दाता बहुत फल को प्राप्त करता है ।

बाले क्रीडनकं दत्वा मिष्टमन्नं तथैव च ।
फलं मनोहरं वाऽपि अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥२२॥
मिष्टान्नं मानवो दत्वा मिष्टान्नानि तु कांक्षताम् ।
अक्षयं फलमाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥२३॥
श्रीविहीने तथा दत्वा भोजनं द्विजसतमाः ।
वस्त्रं शुभं वा धर्मज्ञाः पुण्यं महदुपाश्नुते ॥२४॥
कृपास्थानपरो विप्रा विद्युतः पुरुषः श्रिया ।
तस्यानुकम्पा कर्तव्या सतां वर्त्मनि तिष्ठतः ॥२५॥
कार्ये समुद्यमं कृत्वा परेषां समुपस्थिते ।
अक्षयं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥

यवसानां प्रदानेन धेनुमत्सु द्विजातिषु ।
लवणानां च धर्मज्ञाः फलमक्षयमश्नुते ॥२७॥
प्रसवेषु तदा दत्तं व्यसनान्युभये ततः ।
तद्दानमक्षयं प्रोक्तं पुरुषस्य विपश्चितः ॥२८॥

बालकों के लिये क्रीड़ा की सामग्री, मिष्टान्न, फल एवं उनके मन को प्रसन्न करनेवाले सामान को देकर दाता अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करता है। मिष्टान्न की आकांक्षा रखनेवाले को मिष्टान देकर मनुष्य अक्षय फल को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक को जाता है। हे द्विजश्रेष्ठो! धर्मज्ञो! धनहीन के लिये भोजन, वस्त्र और शुभ वस्तु प्रदान कर महान् पुण्य को प्राप्त करता है। हे विप्रो! ज्ञान और धन से युक्त पुरुष कृपा करने के स्थान में कृपातत्पर रहता है, वह श्रेष्ठ है। सन्मार्ग में स्थित रहते हुए उसके ऊपर अनुकम्पा करनी चाहिये। दूसरे के समुपस्थित कार्य में भली-भाँति उद्यम करके अक्षय फल को प्राप्त करता है, इस विषय में विचार नहीं करना चाहिये। हे धर्मज्ञो! गौ रखनेवाले द्विजातियों के लिये घास-चारा तथा लवण प्रदान करने से दाता अक्षय फल को प्राप्त करता है। प्रसव के लिये आवश्यक वस्तु का दान बुद्धिमान् पुरुष का अक्षयदान कहलाता है ।

दत्वा ब्राह्मणशार्दूला जलमात्रमथार्थिने ।
फलमक्षयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥२९॥
क्लेशं विना दत्तमथार्थिने तु दानं हि लोके फलदं निरुक्तम् ।
अभ्यर्थितेनाथ ततो न कार्या विमानना त्वर्थिजनस्य शक्त्या ॥३० ॥
॥ इति पात्रविशेषेण दानविशेषवर्णनम् ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! अपेक्षा रखनेवाले के लिये जलमात्र का भी दान देकर मनुष्य अक्षय फल को प्राप्त करता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ चाहनेवाले को बिना आत्मक्लेश के दिया हुआ दान लोक में फलप्रद बताया गया है। अभ्यर्थित व्यक्ति के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार याचक जन की अवमानना नहीं करनी चाहिये अपितु यथाशक्ति कुछ प्रदान करना चाहिये ।

समस्तपापप्रशनाय ग्रहशान्तिकर्म- वि.ध.१।११३

ग्रहनक्षत्रशान्तये धेन्वादिदक्षिणाध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ध्रुवस्थाननिविष्टानां देवतानां पृथक्पृथक् ।
दक्षिणार्थे प्रदातव्यं सर्वेषामेव कांचनम् ॥१०३/१॥

रक्तां वत्सयुतां धेनुं दद्यादर्काय पार्थिव ।
शंखं दद्यान्नरेन्द्रेण दक्षिणार्थं निशाभृतः ।।२//
रक्तवर्णो ह्यनड्वांश्च दातव्यः क्षितिजस्य तु ।
कांचनीं स्वां प्रतिकृतिं बालक्रीडनकानि च ।।३।।
बुधाय राजन् देयानि दक्षिणार्थे विशेषतः ।
क्षौमं दुकूलं कार्पासवासांसि गुरवे तथा ।।४।।
सितवर्णं च तुरगं भार्गवाय प्रदापयेत् ।
कृष्णां धेनुं सवत्सां च दद्यात्सूर्यसुताय वै ।।५।।
उष्णीषं लोहदण्डश्च दातव्यो नृप राहवे ।
छागश्च केतवे देयं कुतपं च नराधिप ।।६।।
कृत्तिकानां तु कनकं दातव्यं भूतिमिच्छता ।
सर्वबीजानि देयानि रोहिणीनां तथैव च ।।७।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा- अन्तरिक्ष में अवस्थित देवताओं की दक्षिणा के लिये सबको पृथक्-पृथक् सुवर्ण प्रदान करना चाहिये। हे पार्थिव! सूर्य की प्रसन्नता के लिये सवत्सा रक्तवर्णा धेनु का दान करे। चन्द्रमा के लिये राजा के द्वारा दक्षिणार्थ शंख प्रदान करना चाहिये। मंगल के लिये रक्तवर्ण का वृष देना चाहिये। हे राजन! सुवर्ण की अपनी प्रतिकृति (प्रतिमा) और बालकों के क्रीड़ा की सामग्री बुध के लिये विशेष रूप से दक्षिणार्थ देनी चाहिये। बृहस्पति के लिये रेशम वस्त्र, दुपट्टे और सूती के वस्त्र का दान करना चाहिये। शुक्र के लिये श्वेत वर्ण का अश्व प्रदान करे। शनि के लिये सवत्सा कृष्णवर्णा गौ का दान करे। हे नृप! राहु के लिये पगड़ी, मुकुट और लोहदण्ड प्रदान करना चाहिये। हे नरधिप! केतु के लिये दक्षिणार्थ छाग एवं कुतप (नेपाली कम्बल, बैल या साण्ड) का दान करना चाहिये। वैभव की इच्छा रखनेवाले के द्वारा कृत्तिका के निमित्त सुवर्ण का दान देना चाहिये। पाँच तारों से युक्त रोहिणी के लिये सभी प्रकार के बीज प्रदान करने चाहिये ।

दोग्ध्रीं धेनुं चेल्वनामामनड्वाहं च राहवे ।
आदित्याय शुभं वस्त्रं पुष्याय कनकं घृतम् ।।८।।
सार्पाय वृषभं दद्याद्रुक्मश्रृंगं महीपते ।
पित्र्यस्य च तिलान्दद्याद्वायव्यस्य च चामरम् ।।९।।
भाग्यस्य देया गन्धाश्च आर्यम्णस्य च कांचनम् ।
हस्तस्य कुंजरं दद्यात् कनकं वा महीपते ।।१०।।
त्वाष्ट्रस्य वृषभं दद्यादैन्द्राग्नस्य नराधिप ।
वस्त्राणि चैव मैत्रस्य शाक्रस्य कनकं तथा ।।११।।
दद्यान्मूलस्य मूलानि फलानि विविधानि च ।

आप्यस्य दधिपात्राणि शकटं वासवस्य च ।।१२।।
तथा चन्दनकाष्ठस्य वारुणस्य प्रदापयेत् ।
अजमाजस्य दातव्यमाहिर्बुध्न्यस्य चौदनम् ।।१३।।
धेनुं पौष्णस्य तुरगमाश्विनस्य तथैव च ।
तिलधेनुं च याम्यस्य दद्यात्पापापनुत्तये ।।१४।।

मृगशिरा नक्षत्र के लिये पयस्विनी धेनु, राहु के लिये बैल, सूर्य के लिये शुभ वस्त्र एवं पुष्य नक्षत्र के लिये सुवर्ण और घृत प्रदान करना चाहिये। हे महीपते! आश्लेषा नक्षत्र के लिये सुवर्णश्रृंग से युक्त वृषभ प्रदान करे। मघा नक्षत्र के लिये तिल और स्वाती नक्षत्र के लिये चामर प्रदार करे। हे महीपते! पूर्वाफाल्गुनी के लिये गन्ध, उत्तराफाल्गुनी के लिये काञ्चन और हस्त नक्षत्र के लिये हाथी या सुवर्ण का दान करे । हे नराधिप! चित्रा नक्षत्र के लिये वृषभ, विशाखा के लिये भी वृषभ, अनुराधा के लिये वस्त्र और ज्येष्ठा के लिये सुवर्ण का दान करे। मूल नक्षत्र के लिये विविध प्रकार के मूल और फल, पूर्वाषाढ़ के लिये दधि से युक्त पात्र एवं धनिष्ठा के लिये शकट का दान करना चाहिये। शतभिषा के लिये चन्दनकाष्ठ, पूर्वभाद्र के लिये अज तथा उत्तभाद्र के लिये ओदन का दान करना चाहिये। रेवती के लिये धेनु, अश्विनी नक्षत्र के लिये अश्व और वैसे ही सभी पापों को दूर करने हेतु भरणी नक्षत्र के लिये दक्षिणार्थ तिलधेनु प्रदान करना चाहिये ।

कुंजरं च तथैवोष्ट्रं रथं शकटमेव च ।
हयमश्वतरं चैव नरयानं च पार्थिव ।।१५।।
प्राच्यादीनां क्रमाद्दद्याद्दक्षिणां च नराधिप ।
सागराणां च दातव्यं कनकं भूरिदक्षिणम् ।।१६।।
नक्षत्राणां ग्रहाणां च दिशां च मनुजेश्वर ।
यदुक्तमत्र तद्देयं देवतानां पृथक्पृथक् ।।१७।।
उक्ताभावे च दातव्या धेनुः पार्थिवसत्तम ।
प्रत्येकस्य महाभाग शुभा कांस्योपदोहना ।।१८।।
दोग्ध्री सवत्सा शीलाढ्या वस्त्ररत्नोपशोभिता ।
रुक्मश्रृंगैः खुरै रौप्यैर्मुक्तालांगूलभूषिता ।।१९।।
ततो विसर्जनं कार्यं पूर्वोक्तविधिना नृप ।
दधिक्षीरघृतप्रायं तथा त्रिमधुरान्वितम् ।।२०।।
भोजयेद् ब्राह्मणान् भक्त्या प्रत्येकस्य नराधिप ।
यथाशक्त्या महाराज तेषां दद्याच्च दक्षिणाम् ।
प्रयतस्तांश्च याचेत पूजितान् प्रीणनं बुधः ।।२१।।

हे पार्थिव! हे नराधिप! पूर्वादि दिशाओं के लिये क्रम से हाथी, हाथी, ऊँट, रथ, शकट, अश्व, खच्चर और दोला सदक्षिणाक प्रदान करना चाहिये। सागरों के निमित्त बहुत दक्षिणा के लिये सुवर्ण का दान करना चाहिये। हे मनुजेश्वर! नक्षत्रों, ग्रहों और दिशाओं के देवताओं के लिये पृथक्-पृथक् उक्त द्रव्यों को देना चाहिये। हे पार्थिवसत्तम! उक्त वस्तुओं के अभाव में धेनु का दान करना चाहिये। हे महाभाग! प्रत्येक के लिये शुभ और कांस्योपदोहन से युक्त धेनु का दान करे। वह धेनु दूध देनेवाली, सवत्सा, सुशीला, वस्त्र एवं रत्नों से सुशोभित, सुवर्णश्रृंग, रजतखुर एवं मुक्ता से विभूषित लांगूल वाली हो। हे नृप! उसके बाद पूर्वोक्त विधि से विसर्जन करना चाहिये। दधि, क्षीर, घृत एवं त्रिमधु से युक्त उत्तम भोजन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को कराये। हे नराधिप! महाराज! प्रत्येक ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे और बुद्धिमान् मनुष्य नम्र होकर उन पूजित ब्राह्मणों से प्रसन्नता की प्रार्थना करे।

हंसरूपगुरूपदेश- वि.ध.१।१०५

सदाकल्याणम्

गुरुभक्तस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च ।
पूजकस्य ग्रहेन्द्राणां सदा सानुग्रहा ग्रहाः ।।१०५/११।।
मानवस्यास्वतन्त्रस्य गोब्राह्मणहितस्य च ।
मांसभक्षणहीनस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ।।१२।
ये भक्ताः पुण्डरीकाक्षं प्रणमन्ति जनार्दनम् ।
नास्ति तेषां जगत्यस्मिन्दोषो ग्रहकृतो नृणाम् ।१३।।
यथा बाणप्रहाराणां कवचं वारणं भवेत् ।
तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ।।१४।।

जो गुरुभक्त, इन्द्रियों को वश में करनेवाला, उदार, धर्म से अर्जित धनवाला तथा यथाधिकार सूर्य की पूजा करनेवाला है, उसके लिये सभी ग्रह अनुग्रह करनेवाले होते हैं। अस्वतन्त्र (माता, पिता तथा गुरु आदि की आज्ञा में रहनेवाले) मानव के लिये, गौ और ब्राह्मण का हित करनेवाले के लिये तथा मांस भक्षण नहीं करनेवाले मनुष्य के लिये सदैव सभी ग्रह अनुग्रह ही करते हैं। देवताओं के भी देव पुण्डरीकाक्ष भगवान् जनार्दन को जो भक्त प्रणाम करते हैं, उनके लिये इस संसार में ग्रहकृत दोष नहीं होता है। जैसे बाण के प्रहार का वारक (रोकनेवाला) कवच होता है, वैसे ही दैव प्रकोप को रोकने के लिये शान्तिकर्म की आवश्यकता होती है ।

दण्डविधानप्रायश्चित्त- वि.ध.२

राम उवाच

कुर्याद्दण्डप्रणयनं प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।
नृणां राजा ततो ब्रूहि प्रायश्चित्तविधिं मम ।।७३/१।।

पुष्कर उवाच

न शक्या ये स्वयं कर्तुमन्योपायैः प्रमादतः ।
दण्डेन तान् वशीकुर्याद्दण्डो हि वशकृत्परः ।।२/७०/१।।
सम्यक् प्रणयनं तस्य सदा कार्यं महीक्षिता ।
धर्मशास्त्रानुसारेण सुसहायेन धीमता ।।२।।
स्वदेशे परदेशे च धर्मशास्त्रविशारदाः ।
समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ।।४।।
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान् ।
नादण्ड्यो राम राज्ञा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ।।५।।
अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
इह राज्यपरिभ्रष्टो नरकं प्रतिपद्यते ।।६।।
तस्माद्राज्ञा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः ।
दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया ।।७।।
ज्ञात्वाऽपराधं पुरुषं च राजा कालं तथा चानुमते द्विजानाम् ।
दण्ड्येषु दण्डं परिकल्पयेत पापस्य ये तच्छमनं न कुर्युः ।।२/७२/२००।।

राम ने पूछा- प्रायश्चित्त नहीं करनेवाले मनुष्यों के लिये राजा दण्ड का विधान करे, इसलिये आप मुझे प्रायश्चित्त की विधि बताइये। पुष्कर ने कहा- जो प्रमाद से अन्यान्य उपायों के द्वारा स्वयं प्रायश्चित्त करने में समर्थ नहीं हैं, उन्हें राजा दण्ड के द्वारा वश में करे। क्योंकि वश करनेवालों में श्रेष्ठ दण्ड ही होता है। राजा के द्वारा अपने बुद्धिमान् सहायकों से धर्मशास्त्रानुसार भलीभाँति विचार करके ही सदा दण्ड का प्रणयन करना चाहिये। स्वदेश अथवा परदेश में धर्मशास्त्र के विशेषज्ञ दण्ड की समीक्षा करके दण्डविधान करे। क्योंकि दण्ड में सब (या सर्व ईश्वर) प्रतिठिष्त है। राम! आश्रमी, वर्णी, पूज्य, गुरु अथवा कोई महान् व्यक्ति भी यदि स्वधर्म का पालन नहीं करते हैं तो राजा के द्वारा वे दण्ड देने योग्य है। दण्ड नहीं देने योग्य को दण्ड देता हुआ और दण्ड देने योग्य को दण्ड नहीं देता हुआ राजा इस लोक में राज्य से परिभ्रष्ट होकर नरक को प्राप्त करता है। इसलिये लोकानुग्रह की कामना से विनयशील राजा के द्वारा धर्मशास्त्रनुसार दण्ड का विधान करना चाहिये। जो स्वयं ही प्रायश्चित्त से अपने पाप का शमन नहीं कर लेते, उनके लिये राजा सदा ही अपराध, पात्र और काल को जानकर धर्मशास्त्रज्ञ द्विजों की अनुमति को प्राप्त करे, पुनः दण्डनीयों के लिये दण्ड की परिकल्पना करे ।

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
कामचारकृतेऽप्येतन्मतं मे श्रुतिदर्शनात् ।।२/७३/२।।
प्रायश्चितैः शमं याति पापं कृतमसंशयम् ।
राजदण्डाच्छमं याति प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।।३।।
प्रायश्चित्तविहीना ये राजभिश्चाप्यवासिताः ।
नरकं प्रतिपद्यन्ते तिर्यग्योनिं तथैव च ।।४।।
मानुष्यमपि चासाद्य भवन्तीह तथांकिताः ।
प्रायश्चित्तमतः कार्यं कल्मषस्यापनुत्तये ।।५।।
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवानदेत् ।
कृतपापो वा निवसेच्चर्मणा तेन संवृतः ।।७३/७५।।
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ।।७६।।
दिवाऽनुगच्छेत्ता गाश्च तिष्ठन्नूर्ध्वमपः पिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं चरेत् ।।७७।।

अनिच्छापूर्वक किये हुए पाप में विद्वानों ने प्रायश्चित्त बताया है और स्वेच्छा से किये हुए पाप के लिये भी श्रुतियों ने प्रायश्चित्त ही बताया है। प्रायश्चित्तों के द्वारा किये हुए पाप का शमन हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। और प्रायश्चिन्त नहीं करनेवाले का पाप राजदण्ड से समाप्त होता है। जो प्रायश्चित्त से विहीन हैं और राजा के द्वारा भी दण्ड से शुद्ध नहीं किये गये हैं, वे मनुष्य नरक को प्राप्त कर पुनः उसके बाद वैसे ही नारकीय तिर्यक् योनि को प्राप्त करते हैं। इस लोक में मनुष्य योनि को भी प्राप्त करके वे नारकीय चिह्नों से युक्त होते हैं। इसलिये सभी पापों को नष्ट करने हेतु प्रायश्चित्त करना चाहिये। उपपातक से संयुक्त एवं गोवध करनेवाला एक मास तक जौ का भक्षण करे अथवा पाप करनेवाला मास पर्यन्त गोचर्म से आच्छादित होकर निवास करे। वह चतुर्थ प्रहर में बिना क्षारलवण का अल्पमात्रा में भोजन करे, और दो मास तक जितेन्द्रिय होकर गोमूत्र से स्नान करे। दिन में गौओं के पीछे-पीछे चले और उनके बैठने पर ऊपर से जल पिये। अनके प्रकार से गौओं की सेवा कर उन्हें प्रणाम करे और रात्रि में गौओं की रक्षा के लिये वीरासन में बैठे रहे।

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथाऽऽसीनो नियतो वीतमत्सरः ।।७८।।
आतुरामभिषिक्तां च चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पंकलीनां वा सर्वप्राणैर्विमोक्षयेत् ।।७९।।
उष्णैर्वर्षातिशीतैर्वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ।।८०।।

आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथ वा खले ।
खादमानां न शंसेत पिबन्तं चैव वत्सकम् ।।८१।।
वृषभैकादशा गास्तु दध्याद्धि चरितव्रतः ।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ।।८२।।
बन्धने रोधने वाऽपि योजने च गवां रुजा ।
भवेद्वा मरणं यत्र निमित्ते तत्र लिप्यते ।।८३।।
पादमेकं चरेद्गोष्ठे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ।।
योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ।।८४।।
कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विषमेषु गुहासु च ।
यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकः पादो विधीयते ।।८५।।

गौओं के उठने पर उठे, चलने पर उनके पीछे चले और गायों के बैठने पर नियन्त्रित और मत्सररहित होकर बैठे। चोर और व्याघ्र आदि के भय से व्याकुल, भीगी हुई, गिरी हुई और कीचड़ में पड़ी हुई गाय को अपनी सम्पूर्ण शक्ति से मुक्त कराये। गर्मी, बरसात, अति शीत एवं तीव्र वायु के चलने पर अपनी शक्ति के अनुसार गाय की रक्षा किये बिना अपनी रक्षा में तत्पर न हो जाय । अपनी अथवा दूसरे की, घर में, खेत अथवा खलिहान में खाती हुई गौ को एवं दुग्धपान करते हुए बछड़े को न रोके। गोसेवाव्रत में तत्पर वृषभ एवं दस गायों का धारण-पोषण करे। अविद्यमानता में वेदज्ञों के लिये सर्वस्व समर्पित कर दे। गौओं के बाँधने, रोकने, जोतने या भड़काने अथवा रोग से या किसी निमित्त से उनकी जहाँ मृत्यु हो जाय तो वह पाप से लिप्त होता है। अज्ञानपूर्वक गौ की मृत्यु का निमित्त होने पर गोष्ठ में एक पाद प्रायश्चित्त करे। बाँधने में मृत्यु हो तो दो पाद, जोतने में तीन पाद और वध कर देने में सम्पूर्ण प्रायश्चित्त करे। घने जंगल में, दुर्गम एवं विषम स्थानों में, गुफाओं में यदि गाय पर संकट आ जाय तो एक पाद का प्रायश्चित्त करे ।

बाधामरणदोषेषु तथैवार्धं विनिर्दिशेत् ।
दमने वाहने रोधे शकटस्य च योक्त्रणे ।।८६।।
नद्यां शकलपाशेषु मृते पादौ समाचरेत् ।
व्यापन्नानां बहूनां तु बन्धने रोधनेऽपि वा ।।८७।।
भिषङ् मिथ्याचरंश्चेह द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ।
श्रृंगभंगेऽस्थिभंगे वा लांगूलच्छेदनेऽथ वा ।।८८।।
यावकं तु पिबेत्तावद्यावत्स्वस्था तु गौर्भवेत् ।
एका चेद् बहुभिर्दैवाद्यत्र व्यापादिता भवेत् ।।८९।।
पादं पादं तु हत्यायां चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ।
यन्त्रेण गोश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोक्षणे ।।९०।।

यदि तत्र विपत्तिः स्याद्दोषस्तत्र न विद्यते ।
औषधं स्नेहमाहारं दद्याच्च ब्राह्मणादिषु ।।९१।।
दीयमानं विपत्तिः स्याद्दातुर्दोषो न विद्यते ।
एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनस्तथा ।।९२।।

कष्ट से मरने के दोष में वैसे ही आधा प्रायश्चित्त करे। नियन्त्रित करने में, हल में जोतने में, रोकने में अथवा जुए या बैलगाड़ी में बाँधने में अथवा नदी में रस्सी के टुकड़े में फँसकर गौ की मृत्यु हो जाने पर दो पाद प्रायश्चित्त करे। गौओं के घायल हो जाने पर बाँधने या रोकने में वैद्य यदि मिथ्या उपचार करे तो यहाँ दोगुण व्रत करे। श्रृंगभंग, अस्थिभंग अथवा लांगूल के छेदन में तब तक यावक का पान करके रहे, जब तक गौ स्वस्थ न हो जाय। यदि अनेकों के द्वारा एक गौ नष्ट हो जाती है तो सभी पृथक्-पृथक् उस गोहत्या में एक-एक पाद का प्रायश्चित्त करे। यन्त्र से गौ की चिकित्सा करने में, नष्ट गर्भ के विमोक्षण में यदि गाय पर विपत्ति आ जाती है तो वहाँ दोष नहीं होता है। उस स्थिति में ब्राह्मण आदि के लिये ओषधि, घृत और भोजन प्रदान करे । दीयमान वस्तु में यत्किञ्चित् विपत्ति चली जाती है और दाता को दोष नहीं होता है। इस प्रकार उपपातक से युक्त पुरुष इसी व्रत को करे ।

पुष्कर उवाच

ब्राह्मणान् पूजयेद्राजा ब्राह्मणान् पालयेत् सदा ।
ब्राह्मणा हि महाभाग देवानामपि दैवतम् ।।२/३२/१।।
ब्राह्मणानां क्षितिं दद्याद् भोगानन्यांश्च पार्थिवः ।
ब्राह्मणेषु च यद्दत्तं निधिस्तत्पारलौकिकम् ।।२।।
वेदलांगलकृष्टेषु द्विजक्षेत्रेषु भारत ।
उप्तस्य दानबीजस्य फलस्यान्तो न विद्यते ।।३।।
ब्रह्मस्वं चैव नादद्याद् ब्रह्मस्वं पालयेत्तथा ।
ब्रह्मस्वहरणाद्राम नरकं पश्यते नरः ।।४।।
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ।
विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं सप्तपूरुषम् ।।५।।
ब्रह्मस्वं प्रणयाद् भुक्तं हिनस्त्यासप्तमं कुलम् ।
द्रोहाद् भुक्तं तदेवेह कुलानां पातयेच्छतम् ।।६।।
सुवर्णमेकं गामेकां भूमेरप्येकमंगलम् ।
हरन्नरकमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।७।।

पुष्कर ने कहा- राजा ब्राह्मणों की पूजा करे और ब्राह्मणों का सब प्रकार से सदैव पालन करे। हे महाभाग! ब्राह्मण देवताओं के भी देवता हैं। राजा ब्राह्मणों को

पृथ्वी प्रदान करे और अन्य भोगों की सामग्री भी दे। ब्राह्मणों के लिये जो कुछ भी दिया गया है वही परलोक का खजाना है। हे भारत! चार लांगल (हल) से जोते हुए ब्राह्मण के खेत में बोये हुए दानस्वरूप बीज के फल का अन्त नहीं है। ब्राह्मण के धन को नहीं खाना चाहिये, ब्राह्मण के धन का सदैव रक्षण करना चाहिये। राम! ब्राह्मण के धन का हरण करने से मनुष्य नरक को प्राप्त करता है। विष को विष नहीं कहा जाता है, अपितु ब्राह्मण के धन को ही विष कहा जाता है। विष तो केवल खानेवाले एक को ही मारता है, परन्तु ब्राह्मणधनरूपी विष सात पीढ़ी को मार डालता है। ब्राह्मण का धन हरण कर खा लेने से वह सात पीढ़ी पर्यन्त कुल की नष्ट कर देता है। यदि द्रोहपूर्वक ब्राह्मण के धन का उपभोग करे तो वैसे ही कुल के सौ पीढ़ी को वह मार डालता है। एक सुवर्ण एक गौ और भूमि के भी एक खण्ड को हर लेनेवाला महाप्रलय पर्यन्त नरक को प्राप्त करता है।

दृष्ट्वा विटं दुराचारं ब्राह्मणं न द्विषेत्क्वचित् ।
ब्राह्मणानां परीवादान्नाशमाप्नोति मानवः ।।८।।
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितम् ।
नैवास्ति ब्राह्मणवधात्पापं गुरुतरं क्वचित् ।।९।।
ब्रह्महा नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम् ।
वर्षाणामयुतं राम पच्यते स्नायुपूरिते ।।१०।।
शोणितं यावतः पांशून्गृह्णातीह द्विजन्मनाम् ।
कर्ता तावन्ति वर्षाणि कृतकृन्नरके वसेत् ।।११।।
उपद्रुतो द्विजो येन त्यजेज्जीवितमात्मनः ।
ब्रह्महत्या भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा ।।१२।।
देहत्यागाच्च नरकं ब्राह्मणोऽपि प्रपद्यते ।
तेन चाधिकमाप्नोति राम पापं नराधमः ।।१३।।
अदेवं दैवतं कुर्युः कुर्युर्दैवमदैवतम् ।
ब्राह्मणाश्च महाभागा नमस्यास्ते सदैव हि ।।१४।।

आक्रोशित और दुष्ट आचरण वाले ब्राह्मण को देखकर भी कभी उससे द्वेष न करे। ब्राह्मणों की निन्दा अथवा अपमान से मनुष्य नाश को प्राप्त करता है। कभी भी ब्राह्मण को न मारे, यदि वह अनेक पापों में लिप्त हो तो भी। क्योंकि ब्राह्मणवध से बड़ा कोई पाप नहीं होता है। ब्राह्मण को मारनेवाला महाप्रलय पर्यन्त नरक को प्राप्त करता है। उन वर्षो में दस हजार वर्षो तक पूय-शोणित से परिपूर्ण खौलते हुए नरककुण्ड में उसे पकाया जाता है। इस लोक में द्विजातियों के जितने शोणितकण को ग्रहण करता है, उतने वर्षो तक पापकर्ता अपने किये हुए पाप के अनुसार नरक में

निवास करता है। ब्राह्मण जिसके द्वारा उपद्रवयुक्त होकर अपने जीवित शरीर का त्याग करता है, ब्रह्महत्या का पाप उसे ही लगता है। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । उस आत्माहत्या से ब्राह्मण भी नरक को प्राप्त करता है। राम! उससे अधिक पाप वह अधम मनुष्य प्राप्त करता है। अदैव को दैवत और दैव (प्रारब्ध या भाग्य) को अदैवत करनेवाले महाभाग्यवान् ब्राह्मण सदा ही नमस्कार करने के योग्य होते हैं ।

ब्राह्मणानां तथा कार्यं यत्नात्कुर्वीत पार्थिवः ।
कालातिपातं च तथा विप्रकार्ये न कारयेत् ॥१५॥
निष्पीडितस्तूपवसेद्येन विद्वान्निशां जनः ।
स राम नरकं याति वर्षाणां तु दशायुतम् ॥१६॥
ब्राह्मणी रुदती हन्ति कुलं रोदायते ध्रुवम् ।
तदश्रुवह्निर्दहति कुलं त्रिपुरुषं ध्रुवम् ॥१७॥
विद्वानप्यथवाऽविद्वान्ब्राह्मणो मानमर्हति ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्द्विजपुंगव ॥१८॥
प्रतिष्ठां प्राप्नुवन्तीह सुरा विप्रप्रतिष्ठिताः ॥१९॥
तन्मुखे तु तथाऽश्नन्ति देवाश्च पितृभिः सह ।
वह्नौ हुताच्छ्रेष्ठतमं हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥२०॥
अस्कन्दमविरुद्धं च प्रायश्चित्तैर्विवर्जितम् ।
यावतो ग्रसते ग्रासान्विद्वान्विप्रः सुसंस्कृतः ॥२१॥
अन्नप्रदस्य तावन्तः क्रतवः परिकीर्तिताः ।

राजा ब्राह्मणों के कार्य को उनकी इच्छा के अनुसार यत्नपूर्वक वैसे ही सम्पादित करे। ब्राह्मण के कार्य में समय का अतिक्रमण न करे या कराये। राम! जिससे निष्पीड़ित होकर (निचोड़े जाने या पीड़ा पहुँचाने पर) विद्वान् रात्री में भोजन नहीं कर पाते, वह मनुष्य एक लाख वर्षो तक नरक को प्राप्त करता है। जिसके कारण ब्राह्मणी रोती है, वह उसके सम्पूर्ण कुल को निश्चत ही रुलाती है। उसकी अश्रुरूपी अग्नि उस मनुष्य के तीन पीढ़ी को जला डालती है, यह निश्चित है। द्विजश्रेष्ठ। जैसे अग्नि मन्त्रों से संस्कृत या असंस्कृत होने पर भी अपनी स्वाभाविक दाहकताशक्ति से युक्त रहती है, वैसे ही विद्वान् या अविद्वान् ब्राह्मण भी सम्मान के ही योग्य होते हैं। ब्राह्मणों के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करके ही देवता भी प्रतिष्ठित होते हैं। देवगण पितरों के साथ ब्राह्मण के मुख में दिये हुए हव्य-कव्य को ही ग्रहण करते हैं (खाते है), अग्नि में हवन करने से भी अत्यन्त श्रेष्ठतम विद्वान् विप्र के मुखरूपी अग्नि में किया हुआ हवन होता है। नष्ट नहीं होने वाला, शास्त्रों के अनुकूल तथा सभी प्रायश्चित्तों से रहित यह

ब्राह्मणभोजनरूपी कर्म होता है। संस्काररम्पन्न विद्वान् ब्राह्मण जब तक जितने ग्रास को ग्रहण करते हैं, अन्नदाता के उतने ही श्रौतयज्ञ की सम्पन्नता बतायी गयी है।

ब्राह्मणानां करान्मुक्तं तोयं शिरसि धारयेत् ।।२२।।
ब्राह्मणस्य करे यस्मात्सर्वतीर्थसमागमः ।
ब्राह्मणेभ्यः समुत्पन्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।२३।।
अमोघशापा धर्मज्ञ कथितास्ते जगत्त्रये ।
आशीर्वादममोघं च ब्राह्मणानां प्रकीर्तितम् ।।२४।।
आशीर्वादपराः कार्यास्तस्माद्राज्ञा द्विजोत्तमाः ।
यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।।२५।।
क्षयी सोमोऽजवृषणस्तथैव च शतक्रतुः ।
येषां कोपाग्निरद्यापि दण्डके नोपशाम्यति ।।२६।
विपुलश्च तथा येषां प्रसादो भृगुनन्दन ।
येषां प्रसादात्क्षीणोऽपि वृद्धिमिच्छति चन्द्रमाः ।।२७।।
येषां प्रसादाद्रक्षोभिर्नाभिभूयेत भास्करः ।
येषां प्रसादाद्विपुलां कार्तवीर्यः श्रियं गतः ।।२८।।

ब्राह्मणों के हाथ से छुटे हुए जल को सिर पर धारण करे । क्योंकि ब्राह्मण के हाथ में सभी तीर्थो का समागम होता है। ब्राह्मणों से तीनों लोकों के चर और अचर की उत्पत्ति हुई है। हे धर्मज्ञ! तीनों लोकों में ब्राह्मणों के शाप एवं आशीर्वाद को ही अमोघ बताया गया है। इसलिये राजा के द्वारा अपने कर्तव्य और सेवा से श्रेष्ठ ब्राह्मण को आशीर्वाद में ही प्रवृत्त करना चाहिये। जिनके द्वारा अग्नि को सर्वभक्ष्य एवं महासागर को अपेय बना दिया गया, चन्द्रमा क्षयरोगयुक्त, अज वृषणयुक्त एवं वैसे ही इन्द्र सहस्रभग पुनः सहस्राक्ष बना दिये गये, जिनकी कोपरूपी अग्नि आज भी दण्डक में (दवाग्नि) शान्त नहीं है। हे भृगुनन्दन! जिनकी प्रसन्नता ही श्रेष्ठ और पर्याप्त है, तथा जिनकी प्रसन्नता से क्षीण चन्द्रमा भी वृद्धि की इच्छा करता है। जिनके प्रसाद से सूर्य राक्षसों से पराभव को प्राप्त नहीं होते एवं जिनके प्रसाद से कार्तवीर्य ने विशाल वैभव को प्राप्त किया ।

येषां प्रसादाद्धनदो धनाध्यक्षत्वमागतः ।
अस्नातः स्नानमाप्नोति व्रतमाप्नोत्यथाव्रती ।।२९।।
येषां वचनमात्रेण किम्भूतमधिकं ततः ।
भोगं राज्यं तथा स्वर्गं येषां वाक्येन लभ्यते ।।३०।।
अपावनकरः क्रोधो येषां राम सदा स्थितः ।
ते पूज्यास्ते च सत्कार्यास्तेषां दाराणि दापयेत् ।।३१।।
धारयन्ति जगत्सर्वं ब्राह्मणा वेदपारगाः ।

देवानाप्याययन्तीह ब्राह्मणा भृगुनन्दन ॥३२॥
ते तृप्तास्तर्पयन्तीह भुवनं सकलं सुराः ।
ब्राह्मणेनाहुतिर्दत्ता वह्नौ भुगुकुलोद्वह ॥३३॥
आदित्यमाप्नोत्यादित्याद् वृष्टिर्भवति भूतले ।
अन्नस्य च तथोत्पत्तिरन्नाद्भूतोद्भवः स्मृतः ॥३४॥
तस्मात्त्रिभुवनं सर्वं ब्राह्मणैरेव धार्यते ।
ब्राह्मणप्रभवा भूमिर्ब्राह्मणप्रभवो दिवः ॥३५॥

जिनके प्रसाद से कुबेर धनाध्यक्ष के पद को प्राप्त किये एवं जिनकी प्रसन्नता से अस्नात भी स्नात तथा अव्रती भी व्रत को प्राप्त कर लेते हैं, जिनके वचन मात्र से कुछ भी आश्चर्य हो सकते हैं, उनसे बढ़कर भला कौन हो सकता है? जिनके वाक्य से भोग, राज्य एवं स्वर्ग की भी प्राप्ति सुगमता से हो जाती है। राम! जिनके क्रोध सदैव अपावन करनेवाले होते हैं (यानी पतन करा देते हैं) वे सर्वथा ही पूजन एवं सत्कार के योग्य होते हैं, उन्हें उत्तम स्थान प्रदान करना चाहिये । हे भृगुनन्दन! वेदज्ञ ब्राह्मण सम्पूर्ण संसार को धारण करते हैं एवं इस लोक में भी देवताओं की अभिवृद्धि करते हैं। इस पृथ्वी पर निवास करते हुए सन्तृप्त ब्राह्मणदेवता सभी लोकों को तृप्त करते हैं । भृगुकुल श्रेष्ठ! ब्राह्मण के द्वारा ही अग्नि में भी आहुति दी जाती है। उसको आदित्य प्राप्त करते है, आदित्य से इस भूतल पर वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न तथा अन्न से सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है। इसलिये तीनों लोक ब्राह्मण के द्वारा ही धारण किये जाते हैं। ब्राह्मण से उत्पन्न यह भूमि तथा ब्राह्मण से ही उत्पन्न स्वर्ग भी है।

ब्राह्मणानामिमे लोकाः परलोकास्तथैव च ।
इज्यास्वाध्यायतपसामुपरोधाद्यदा द्विजाः ॥३६॥
स्वाम्यं भुवि न विन्दन्ति क्षत्रियास्तु तदा कृताः ।
ब्राह्मणानां वचः कार्यं राजभिः सततोत्थितैः ॥३७॥
धर्ममर्थं च कामं च तेषां वाचि प्रतिष्ठितम् ।
ब्राह्मणानां तु वाक्येन निग्रहानिग्रहावुभौ ॥३८॥
लोके कार्यौ भूमिभृता भूतिकामेन नित्यदा ।
राजा ब्राह्मणवाक्येन यः कुर्याच्छासनादिकम् ॥३९॥
सम्यग्वाऽप्यथवाऽसम्यक्तेन नाके महीयते ।
उल्लंघ्य शास्त्रं नृपतिर्यो यथारुचि वर्तते ॥४०॥
स राम नरकं याति सुकृतेनापि कर्मणा ।
यत्र ब्राह्मणवाक्यानि न करोतीह यो नरः॥४१॥
न तत्र दोषवान्विप्रो राजा दोषेण लिप्यते ।

ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिपम् ।।४२।।
पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ।
यस्य राज्ञस्तु विषये ब्राह्मणः सीदति क्षुधाः ।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।।४३।।
तस्मात्पूज्या नमस्कार्यास्संविभाज्यास्तथा द्विजाः ।
राज्ञा सर्वप्रयत्नेन लोकद्वयमभीप्सिता ।।४४।।
यद्ब्राह्मणास्तुष्टतमा वदन्ति तद्देवताः प्रत्यभिनन्दयन्ति ।
तुष्टेषु तुष्टाः सततं भवन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः ।।४५।।
।। इति ब्राह्मणवैशिष्ट्याध्यायः ।।

ब्राह्मण से ही उत्पन्न ये सम्पूर्ण लोक तथा परलोक हैं। जब ब्राह्मण यज्ञ, स्वाध्याय एवं तपस्या में अवरुद्ध हो जाते हैं, तब उन्हें कुपित करने के कारण क्षत्रिय इस पृथ्वी पर स्वामित्व को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिये राजाओं के द्वारा सर्वदा ही आसन से उठकर ब्राह्मणों के वचन का पालन करना चाहिये । धर्म, अर्थ और काम ब्राह्मणों की वाणी में ही प्रतिष्ठित हैं। ब्राह्मण के वाक्य से ही पराजय अथवा विजय ये दोनों प्राप्त होते हैं। नित्य ही राजा के द्वारा समृद्धि की कामना से इस लोक में निग्रह अथवा अनिग्रह करने चाहिये। जो राजा ब्राह्मण की आज्ञा से शासन आदि का कार्य करे, चाहे वह सम्यक् हो या असम्यक्- वह स्वर्ग का राज्य प्राप्त करता है। राम! शास्त्र का उल्लंघन कर जो राजा स्वेच्छापूर्वक आचरण करता है, वह सुकृत कर्म के द्वारा भी नरक को ही प्राप्त करता है। जो मनुष्य जहाँ ब्राह्मण के वाक्य का पालन नही करता है वहाँ ब्राह्मण दोषी नहीं है, राजा ही उस दोष से लिप्त होता है। ब्राह्मण दस वर्ष का हो और राजा सौ वर्ष हो, तो भी उन दोनो में पिता और पुत्र का भाव जानना चाहिये, उन दोनों में ब्राह्मण ही पिता के समान होता है। जिस राजा के कारण उसके राज्य में ब्राह्मण क्षुधा से पीड़ित होता है, उसके राष्ट्र को ब्राह्मण की क्षुधा दुर्भिक्ष, रोग तथा तस्करों द्वारा पीड़ित कर देती है। इसलिये ब्राह्मण सदा ही पूजनीय, प्रणम्य एवं अपने भाग को प्राप्त करने योग्य होते हैं। इस लोक और परलोक में सुख की इच्छा रखते हुए राजा के द्वारा सभी प्रयत्नों से ब्राह्मण को प्रसन्न करना चाहिये। अत्यन्त प्रसन्न ब्राह्मण जो बोलते हैं देवता उसका अभिनन्दन करते हैं। प्रत्यक्षदेवता ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर सदा ही सभी परोक्ष देवगण सन्तुष्ट होते हैं ।

वायुपुराणे पितृवर्णनाध्याय - ५६

अथ पितृवर्णनाध्यायः

शांशपायन उवाच

अगात्कथममावास्यां मासि मासि दिवं नृपः ।
ऐडः पुरूरवाः सूत कथं वाऽतर्पयत्पितृन् ।।५६/१।।

सूत उवाच

तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं शांशपायन ।
ऐडस्यादित्यसंयोगं सोमस्य च महात्मनः ।।२।।
अपां सारमयस्येन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
ह्रासवृद्धी पितृमतः पक्षस्य च विनिर्णयः ।।३।।
सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितृणां तर्पणं तथा ।
काव्याग्नेश्चात्तसोमानां पितृणां चैव दर्शनम् ।।४।।
यथा पुरूरवाश्चैडस्तर्पयामास वै पितृन् ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ।।५।।

शांशपायन ने कहा- सूतजी! प्रत्येक मास की अमावस्या तिथि को इडा (इला) का पुत्र पुरूरवा किस प्रकार स्वर्ग को जाता था और किस प्रकार पितरों का तर्पण करता था? सूतजी ने कहा- शांशपायन! उस महात्मा इलापुत्र राजा पुरूरवा का प्रभाव आप को बता रहा हूँ, चन्द्रमा का सूर्य के साथ संयोग, जल के सारभूत चन्द्रमा की शुक्ल और कृष्णपक्ष में ह्रास एवं वृद्धि, पितरों के पक्ष का निर्णय, चन्द्रमा से अमृत की प्राप्ति, पितरों का तर्पण और काव्य, अग्निष्वात्त एवं सौम्यादि पितरों का दर्शन किस प्रकार किया? इसका विवरण तथा पर्वो का वर्णन क्रमानुसार बता रहा हूँ ।

यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ ।
अमावास्यां निवसत एकरात्रैकमण्डले ।।६।।
स गच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ ।।
अभिवाद्य तदा तत्र कालक्षेपः प्रतीक्षते ।।
प्रसीदमानात्सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ।।७।।

जिस समय चन्द्रमा तथा सूर्य एक राशि तथा एक ही मण्डल में समान नक्षत्र पर होते हैं, उसे अमावस्या कहते है। प्रत्येक अमावस्या को पुरूरवा अपने मातामह सूर्य तथा पितामह चन्द्रमा को देखने जाता था और उन्हें प्रणाम कर समय की प्रतीक्षा करता हुआ स्थित रहता था। पुनः प्रसन्न हुए चन्द्रमा से पितरों के लिये अमृत का परिस्रवण होता था ।

ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नतः ।
उपास्ते पितृमन्तं तं सोमं दिवि समास्थितः ।।८।।
द्विलवं च कुहूमात्रं ते उभे तु विचार्य सः ।

सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासकः ॥९।
कुहूमात्रां कलां चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहूं पुनः ।
स तदा भानुमत्येककालावीक्षी प्रपश्यति ॥१०॥
सुधाऽमृतं कुतः सोमात्प्रस्रवेन्मासतृप्तये ।
दशभिः पंचभिश्चैव दिव्यामृतपरिस्रवैः ॥११॥
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांशुभिः ।
सद्यः प्रसरता तेन सौम्येन मधुना च सः ॥१२॥
निर्वापणार्थं दत्तेन पित्र्येण विधिना नृपः ।
सोमामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितृन् ॥१
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१३॥

इला का पुत्र विद्वान् पुरूरवा इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक मास की अमावस्या को स्वर्गलोक में उपस्थित रहकर पितरों समेत चन्द्रमा की उपासना करता था। दो लव कुहूमात्र पर्यन्त ही वे दोनों (पितर और सोम) रहते हैं अर्थात् कव्य ग्रहण करते हैं, अतः सिनीवाली के प्रमाणकाल के भीतर ही सिनीवाली का प्रेमी उपासक पुरूरवा चतुर्दशी से युक्त अमावस्या तथा प्रतिपदा से युक्त अमावस्या- इन दोनों को भलीभाँति उपासनायोग्य समझकर अमावास्या और कुहू की उपासना करता था, उस समय वह भानुमती (सूर्ययुक्त अमावस्या) के एककाल की प्रतीक्षा करता हुआ वहाँ निवास करता था। पितरों की एक मास की तृप्ति के लिये चन्द्रमा से दिव्य अमृत का प्रस्रवण कहाँ से होता है? कृष्णपक्ष में पन्द्रह तिथियों से चन्द्रमा से दुहे गये दिव्य अमृत प्रस्रवण का सूर्य की किरणों के द्वारा पान होता है। नृपतिवर! पुरूरवा इस शीघ्रस्रवित चन्द्रमा के अमृत द्वारा पितरों की विधि से निर्वापन कर पितरों को तृप्त करता था। सौम्य, बर्हिपद, काव्य और अग्निष्वात्त- ये पितर हैं ।

ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ।
जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्माद्दृतुभ्यश्चाऽऽर्तवाश्च ये ॥१४॥
आर्तवा ह्यर्धमासाख्याः पितरो ह्यब्दसूनवः ।
ऋतुः पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः ॥१५।
प्रपितामहास्तु देवाः पंचाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवे सुताः ॥१६॥

ऋतु जो अग्नि कहा गया है, वही संवत्सर माना गया है। उसी से ऋतुगणों की उत्पत्ति हुई, उन ऋतुगणों से आर्तवों की उत्पत्ति हुई। वे आर्तव अर्धमास नाम से प्रसिद्ध वर्ष के पुत्र ही पिता कहे जाते हैं। ऋतुगण पितामह हैं, वे भी मास नाम से प्रसिद्ध तथा वर्ष के पुत्रगण कहे जाते हैं। ब्रह्मा के पंचाब्द नाम से प्रसिद्ध जो देवगण

हैं. वे प्रपितामह नाम से प्रसिद्ध हैं। सौम्य नामक पितरगण सोम्य से उत्पन्न जानने चाहिये, काव्य नामक पितर कवि (भृग) के पुत्र हैं ।

उपहूताः स्मृता देवाः सोमजा सोमपास्तथा ।
आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातयः ।।१७।।
काव्या बर्हिषश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।
गृहस्था ये च यज्वान ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम् ।१८।।
गृहस्थाश्चापि यज्वानो अग्निष्वात्तास्तथाऽऽर्तवाः ।
अष्टकापतयः काव्या पंचाब्दास्तान्निबोधत ।।१९।।
एषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।
सोम इद्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सरः ।।२०।।
रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पंचाब्दा ये युगात्मकाः ।
लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ।।२१।।
एते पिबन्त्यमावास्यां मासि मासि सुधां दिवि ।
तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः ।।२२।।

सोम से उत्पन्न होनेवाले सोमपायी पितरगण उपहूत नाम से स्मरण किये जाते हैं, आज्यपान करनेवाले पितरगण काव्य कहे जाते हैं- और इस प्रकार ये पितरवर्ग तृप्तिलाभ करते हैं। काव्य, बर्हिषद और अग्निष्वात्त- पितरों के ये तीन प्रकार होते हैं। यज्ञकर्ता गृहस्थ ऋतु और बर्हिषद (पितरों की श्रेणी हैं) होते हैं एवं वे ही गृहस्थ अग्निष्वात्त तथा आर्तव पितर भी होते हैं। अष्टकापति और काव्य पंचााब्द नामक पितर कहे जाते हैं। इनके संवत्सर का नाम अग्नि है, सूर्य परिवत्सर है, चन्द्रमा इद्वत्सर है, वायु अनुवत्सर है और रुद्र वत्सर है- जो युगात्मक पाँच वर्ष कहे गये है- ये लेखा, उष्मपा और दिवाकीर्त्य नाम से स्मरण किये जाते हैं। ये प्रत्येक मास में अमावस्या तिथि को आकाश में सुधा का पान करते हैं। राजा पुरूरवा जब तक जीवित था इसी प्रकार सुधा के द्वारा उन पितरों को करता था ।

यस्मात्प्रस्रवते सोमान्मासि मासि निबोधत ।
तस्मात्सुधामृतं तद्वै पितृणां सोमपायिनाम् ।।२३।।
एवं तदमृतं सौम्य सुधा च मधु चैव ह ।
कृष्णपक्षे यथा चेन्दोः कलाः पंचदश क्रमात् ।।२४।।
पिबत्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्तु छन्दजाः ।
पीत्वा च मासं गच्छन्ति चतुर्दश्यां सुधामृतम् ।।२५।।
इत्येवं पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकरः ।
समागच्छदमावास्यां भागे पंचदशे स्थितिः ।।२६।।
सुषुम्नाऽऽप्यायितं चैव अमावास्यां यथाक्रमम् ।

पिबन्ति द्विकलं कालं पितरस्ते सुधामृतम् ।।२७।।
ततः पीतक्षये सोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययत्सुषुम्नेन पितृणां सोमपायिनाम् ।।२८।।

प्रत्येक मास में चन्द्रमा से जैसे अमृत प्रस्रवण होता था, वह बतायें। क्योंकि सोमपायी पितरों के लिये वह सुधामृत था। इस प्रकार क्षरित वह अमृत सौम्य, सुधा और मधु नाम से प्रसिद्ध है। कृष्णपक्ष में क्रमशः चन्द्रमा की पन्द्रह कलाओं को, जो जलमयी हैं- छन्द से उत्पन्न होनेवाले तैंतीस देवगण उनका पान करते हैं और इस प्रकार सुधामृत को एक मास पान करने के उपरान्त चले जाते हैं। देवताओं द्वारा इस प्रकार पान किया गया चन्द्रमा अमावास्या को पन्द्रहवें भाग में स्थित रहकर गमन करता है। सुषुम्ना के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुये चन्द्रमा के सुधामृत को क्रमशः पितरगण अमावस्या को दो कला मात्र समय तक पान करते हैं, और इस प्रकार देवताओं के पान द्वारा चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर सूर्य अपनी उसी सुषुम्ना नामक रश्मि से सोमपान करनेवाले पितरों की तृप्ति करता है।

निःशेषायां कलायां तु सोममाप्याययत्पुनः ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य भागं भागमहः क्रमात् ।
कलाः क्षीयन्ति ताः कृष्णाः शुक्लाश्चाप्याययन्ति तम् ।।२९।।
एवं सूर्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ।
दृश्यते पौर्णमास्यां वै शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ।
संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।।३०।।
इत्येष पितृमान्सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् ।
क्रान्तः पंचदशैः सार्धं सुधामृतपरिस्रवैः ।।३१।।

कलाओं से निःशेष हो जाने पर सूर्य चन्द्रमा को पुनः पूर्ण करता है। सुषुम्ना द्वारा पूर्ण चन्द्रमा की कलाओं के एक-एक भाग को क्रमशः देवगण पान करते हैं। वे कलायें क्षीण होकर कृष्ण और पूर्ण होने पर शुक्ल कही जाती हैं, और इस प्रकार क्रमशः चन्द्रमा क्षीण और पूर्ण होता है। इस प्रकार सूर्य के पराक्रम से चन्द्रमा का शरीर पूर्ण होता है और पूर्णमासी तिथि को उसका सम्पूर्ण मण्डल श्वेत दिखाई पड़ता है। शुक्ल और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की ह्रास और वृद्धि भी इसी प्रकार होती रहती है। पितृमान् चन्द्रमा को इस प्रकार क्रमशः इद्वत्सर स्मरण किया है और वह सुधामृत को प्रस्रवित करनेवाली पन्द्रह किरणों से घिरा हुआ है।

अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणां सन्धयस्तथा ।
ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ।।३२।।
तथाऽर्धमासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः ।

पूर्णिमावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थिर्या सन्धयश्च वै ।।३३।।
अर्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ।
अग्न्याधानक्रिया यस्मात्क्रियते पर्वसन्धिषु ।।३४।।

अब इसके उपरान्त पर्वो की सन्धियों का वर्णन कर रहा हूँ। जिस प्रकार ईख और बाँसों के पोर गाँठों वाले होते हैं, उसी प्रकार आधे मास पर होनेवाली शुक्लपक्षीय तथा कृष्णपक्षीय तिथियों को भी काल का पर्व कहा गया है। पूर्णिमा और अमावस्या के भेद से इनकी ग्रन्थि और सन्धियाँ कही गई हैं। तृतीया आदि तिथियाँ आधे मास की पर्व तिथियाँ हैं, अग्न्याधान आदि सत्क्रियायें इसीलिये इन पर्वो की सन्धियों में की जाती हैं ।

सायाह्ने ह्यनुमत्याऽसौ द्वौ लवौ काल उच्यते ।
लवौ द्वावेव राकायाः कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः ।।३५।।
प्रतिपत्कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णिकः ।)
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ।।३६।।
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखार्द्धे तु युगान्तरे ।
युगान्तरोदिते चैव लेखार्द्धे शशिनः क्रमात् ।।३७।।
पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ।
यस्मिन् काले स सोमान्ते स व्यतीपात एव तु ।।३८।।
कालं सूर्यस्य निर्देशं दृष्टा संख्या तु सर्पति ।
स वै पथं क्रियाकालः कालात्सद्यो विधीयते ।।३९।।

सायंकाल के समय अनुमति का दो लव काल तथा राका का तीसरे पहर का दो लव काल सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि का भी अपराह्ण काल में सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है। सायंकाल के समय यदि कृष्णपक्ष की प्रतिपदा की प्रवृत्ति होती है, तो वह समय पूर्णमासी का है। चन्द्रमा और सूर्य परस्पर युगमात्र के व्यवधान पर अवस्थित रह विषुव रेखा के ऊपर समसूत्र में जब उदित होते हैं, तो परस्पर दर्शन होता है, इसी का नाम व्यतीपात है। पूर्णमासी को भी इस प्रकार परस्पर दर्शन होता है। सूर्य को ही आधार मानकर समय के विषय में विशेष संख्याओं की कल्पना की जाती है। सूर्य ही मार्गप्रदर्शक है और समय के ही अधीन सत्क्रियाओं का विधान माना गया है ।

पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ।।४०।।
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात्पौर्णमास्यां निशाकरः ।

रंजनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ।।४१।
अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एकां पंचदशीं रात्रिममावास्या ततः स्मृता ।।४२।।

जिस रात्रि के सन्धिभाग में पूर्णिमा तिथि हो, पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश हो, उसे 'अनुमति' पूर्णिमा कहा गया है। क्योंकि पितरगण देवताओं के साथ उसे देखते हैं। पूर्णिमा तिथि को चन्द्रमा अत्यन्त सुप्रकाशित होता है, अतः चन्द्रमा के कारण ही कवि लोग उसे राका कहते हैं। जिस पन्द्रहवीं रात्रि को एक ही नक्षत्र में चन्द्रमा तथा सूर्य एक साथ विराजमान रहते हैं, उसे अमावस्या कहते हैं ।

ततोऽपरस्य तैर्व्यक्तः पौर्णमास्यां निशाकरः ।
यदीक्षते व्यतीपाते दिवा पूर्णौ परस्परम् ।
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ।।४३।।
विच्छिनांताममावास्यां पश्यतश्च समागतौ ।
अन्योऽन्यं चन्द्रसूर्यो तौ यदा तद्दर्श उच्यते ।।४४।।
द्वौ द्वौ लवावमावास्यां यः कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्यक्षरं तु कुहूमात्रं एवं कालस्तु स स्मृतः ।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण संगता ।।४५।।
दिवसार्द्धेन रात्र्यर्द्धं सूर्यं प्राप्य तु चन्द्रमाः ।
सूर्येण सहसा मुक्तं गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ ।
द्वौ कालौ संगमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रविः ।।४६।।

जिस दिन के तीसरे पहर में चन्द्रमा और सूर्य पूर्णरूप में व्यतीपात की भाँति परस्पर एक दूसरे को देखते हैं, उसे पूर्णिमा कहते हैं। ऊपर कही गई जिस अमावास्या तिथि को चन्द्रमा और सूर्य एक ही स्थान में समागत होकर एक दूसरे को देखते हैं, उसे दर्श कहते हैं । अमावास्या तिथि के दो लव तथा पर्वसन्धियों के दो लव काल- केवल 'कुहू' इन दो अक्षरों के उच्चारण में जितना समय लगता है, सत्क्रियाओं के योग्य माना जाता है। मध्याह्न में सूर्य के साथ संगत होकर अमावास्या को जबकि चन्द्रमा नहीं दिखाई पड़ता, दिन के आधे भाग से रात्रि के आधे भाग तक चन्द्रमा सूर्य के साथ अवस्थित रहता है। तदनन्तर सूर्य से मुक्त होता है। प्रातःकाल के समय दो कला काल तक चन्द्रमा के साथ रहकर मध्याह्न के समय सूर्य चन्द्रमण्डल से बाहर निकलता है ।

प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् ।
निर्मुच्य मानयोर्मध्ये वयोर्मण्डलयोस्तु वै ।।४७।।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।

एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यास्य पर्वणः ॥४८॥
दिवा पर्वण्यमावास्यां क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ।
तस्माद्दिवा ह्यमावास्यां गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्यां दिविक्षयैः ॥४९॥
कलानामपि वै तासां बहुमान्या जडात्मकैः ।
तिथीनां नामधेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ॥५०॥
दर्शयेतामथान्योऽन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ॥५१॥
द्विलवेन ह्यहोरात्रं भास्करं स्पृशते शशी ।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ॥५२॥
कुहूविति कोकिलेनोक्तो या कालः परिचिह्नितः ।
तत्कालसंज्ञिता यस्मादमावास्या कुहूः स्मृता ॥५३॥

और इस प्रकार शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि से सूर्यमण्डल से चन्द्रमा मुक्त हो जाता है। छोड़े जाते हुए उन दोनों सूर्य और चन्द्रमण्डलों के संगम का त्यागकाल आहुति और वषट्क्रिया (यज्ञ और तर्पण) का उत्तम काल है। इस पर्व का अमावास्या काल का ही नाम ऋतुमुख जानना चाहिये। अमावास्या के दिन चन्द्रमा की कला का अधिकाधिक रूपेण क्षय हो जाता है, इसलिये उस दिन सूर्य ही ग्रहण किया जाता है। यही कारण है कि अमावस्या के दिन ही सूर्य राहु और केतु के द्वारा ग्रस लिया जाता है। उन मान्य कलाओं के आधार पर ही बुद्धिमान् विद्वानों ने तिथियों का नामकरण किया है। उस तिथि (अमावास्या) को सूर्य और चन्द्रमा परस्पर एक दूसरे को देखते हैं। उसी दिन से चन्द्रमा सूर्यमण्डल से क्रमशः निकलकर पृथक् होता है। चन्द्रमा दो लव काल मात्र सूर्यमण्डल का स्पर्श करता है। वह उतना काल अमावस्या के निमित्त होनेवाले यज्ञ एवं वषट्क्रिया के उपयुक्त है। कोकिल की 'कुहू' यह आवाज जितने समय में सम्पन्न होती है, उतने ही काल वाली अमावस्या कुहू नाम से स्मरण की जाती है ।

सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्यां विशत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृता ॥५४॥
अनुमत्याः सराकायाः सिनीवाली कुहूस्तथा ।
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूस्तथा ॥
इत्येष पर्वसन्धीनां कालो वै द्विलवः स्मृतः ॥५५॥
पर्वणः पर्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट्क्रिया ।
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ॥५६॥
प्रतिपत्पंचदश्योश्च पर्वकालो द्विमात्रिकः ।

कालं कुहू:सिनीवाल्योः समुद्रो द्विलवः स्मृतः ।।५७।।
अर्काग्निमण्डले सोमे पर्वकालः कलाश्रयः ।
एवं स शुक्लपक्षो वै रजन्याः पर्वसन्धिषु ।।५८।।
सम्पूर्णमण्डलः श्रीमांश्चन्द्रमा उपरज्यते ।
यस्मादाप्यायते सोमः पंचदश्यां तु पूर्णिमा ।।५९।।
दशभिः पंचभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ।
तस्मात्कलाः पंचदशी सोमेनास्ति तु षोडशी ।
तस्मात्सोमस्य भवति पंचदश्यां महाक्षयः ।।६०।।

जिस अमावास्या तिथि को क्षीण चन्द्रमा सिनीवाली के प्रमाण से सूर्य के मण्डल में प्रवेश करता है, उसे सिनीवाली नाम से स्मरण करते हैं। अनुमति, राका, सिनीवाली और कुहू इन सबके दो लव काल केवल कुहूमात्र प्रशस्त माने गये हैं। इस प्रकार पर्व की सन्धियों के ये दो लव काल प्रशस्त माने गये है। सब पर्वतिथियों का पूर्वकाल समान रूप से वषट्क्रिया के लिये प्रशस्त है। चन्द्र और सूर्य का व्यतीपात योग पर संयोग और पूर्णिमा दोनों तुल्य फलदायी माने जाते हैं। प्रतिपदा और पूर्णिमा का पर्वकाल द्विमात्रिक होता है, कुहू और सिनीवाली का पर्वकाल द्विलवात्मक होता है। चन्द्रमा के सूर्य और अग्निमण्डल से युक्त रहने पर जो पर्वकाल होता है, वह कलाश्रय मात्र होता है। इस प्रकार रात्रि की पर्वसन्धियों में सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्रमा उपरक्त होता है (ग्रहण लगता है), जिस कारण से सोम पूर्णिमा के दिन प×चदश कलाओं के साथ बढ़ते है, इसलिये सोम में पन्द्रह कलायें ही होती हैं, सोलह नही । इसलिये प×चदशी (कला या पूर्णिमा) में ही चन्द्रमा का महाक्षय (ग्रहण) होता है ।

इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ।
आर्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवा भावयन्ति च ।।६१।।
अतः पितृन्प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिं च तत्त्वं च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ।।६२।।
न मृतानां गतिः सत्या विज्ञातुं पुनरागतिः ।
तपसाऽपि प्रसिद्धेन किं पुनर्मासचक्षुषा ।।६३।।
श्राद्धदेवान् पितृनेतान् पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
देवाः सौम्याश्च यज्वानः सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ।।६४।।
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान् भावयन्त्युत ।
मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः ।।६५।।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृताः ।।६६।।

ये ऊपर कहे गये सोमपायी और सोमवर्द्धक पितरगण हैं। वे ऋतु और आर्त्तवदेव- परस्पर एक दूसरे की सहायता एवं पुष्टि भी करते हैं। इसके अनन्तर मासश्राद्ध के भोग करनेवाले पितरों का वर्णन करता हूँ। उनकी गति, उनका पराक्रम और उनको श्राद्धीय वस्तुओं की प्राप्ति कैसे होती है, इसका भी वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये। मृत व्यक्तियों के आवागमन को कोई योगदृष्टिसम्पन्न महातपस्वी भी नहीं जान सकते, तो फिर मेरे समान चर्मचक्षुवाले साधारण व्यक्ति कैसे जान सकते हैं। उन श्राद्धदेव पितरों को लौकिक पितर कहा जाता है। सब अयोनिज और सौम्यदेव एवं यज्ञ करनेवाले पितरदेव तुल्य हैं, ऐसे पितरों की देवगण, मनुष्य और पितर भी पुष्टि करते हैं अर्थात् सम्मान करते है। पिता, पितामह- उसी प्रकार प्रपितामह और जो सोम से यज्ञ करनेवाले हैं, वे सोमवन्त कहे जाते हैं ।

ये यज्वानः स्मृतास्तेषां ते वै बर्हिषदः स्मृताः ।
कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसम्भवात् ॥६७॥
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषां होमिनो याज्ययाजिनः ।
तेषां ते धर्मसाधर्म्यात् स्मृता सा योज्यकैर्द्विजैः ।
ये वाऽप्याश्रमधर्मेण प्रख्यानेषु व्यवस्थिताः ॥६८॥
अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ।
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥६९॥
श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा ।
कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्यादेहपातनात् ॥७०॥
देवैस्तैः पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्मकैः सोमपायकैः ।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥७१॥
प्रजावतां प्रशंसैव स्मृता सिद्धा क्रियावताम् ।
तेषां निवापदत्तान्नं तत्कुलीनैश्च बान्धवैः ॥७२॥
मासं श्राद्धभुजस्तृप्तिं लभन्ते सोमलौकिकाः ।
एते मनुष्याः पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ॥७३॥
तेभ्यो परे तु ये चान्ये संकीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाचाश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥७४॥
भिन्नदेहा दुरात्मानः प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः ॥७५॥

जो यज्ञ करनेवाले होते हैं, वे मनुष्य मरकर बर्हिषद पितर होते हैं । जो यज्ञादि सत्कर्मों के अनुष्ठान में रत रहते हैं वे पुर्नजन्म ग्रहण करने के समय तक तृप्त रहते हैं। उनमें से जो होमपरायण यज्ञाधिकारियों से यज्ञ करानेवाले हैं वे अग्निष्वात्त कहे

गये हैं। जो अपने आश्रमधर्मानुसार विहित अनुष्ठानों में निरत रहते हैं वे धर्मसाम्य के कारण योग्य ब्राह्मणों द्वारा अग्निष्वात्त ही कहे जाते हैं। जो श्रद्धायुक्त कर्मों को करते हैं और ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, प्रजोत्पत्ति, श्रद्धा, विद्या और दान- इन सात श्रेष्ठ कर्मों में जीवन भर निरत रहते हैं वे मृत्यु के बाद भी कष्ट नहीं प्राप्त करते, प्रत्युत सोमपान करनेवाले, सूक्ष्म शरीर देवों और पितरों के साथ स्वर्ग में जाकर आनन्द प्राप्त करते हैं और पितरों को सन्तुष्ट करते हैं। क्रियावान् और प्रज्ञावान् मनुष्य ही सिद्ध और प्रशंसनीय है। पितरों के निमित्त दिये हुए दान से उनके कुलों में उत्पन्न एवं बन्धुओं द्वारा दिये गये श्राद्धान्न से सोमलोक में रहनेवाले श्राद्धभोजी पितर एक मास तक तृप्त रहते हैं, ऐसे ही पितरों को मासश्राद्धभुक् पितर कहते हैं। ऊपर कहे गये पितर मनुष्यों के पितर कहे जाते हैं, जो कि मास-मास में श्राद्धभोग करते हैं। उनसे अतिरिक्त पितर अपने संकीर्ण कर्मो के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। वे आश्रमधर्मभ्रष्ट स्वधा-स्वाहा (पितृकर्म-देवकर्म) से विमुख दुरात्मा शरीर नष्ट होने पर यमपुरी में प्रेत बनकर भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनायें सहते हुए कृतकर्मो पर पश्चात्ताप करते हैं ।

दीर्घायुषाऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च दिवाससः।
क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति ततस्ततः ।।७६।।
सरित्सरस्तडागानि वापीश्चैव जलेप्सवः ।
परान्नानि च लिप्सन्ते काल्यमानास्ततस्ततः ।।७७।।
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै ।
शाल्मलौ वैतरण्यां च कुम्भीपाकेषु तेषु च ।।७८।।
करम्भबालुकायां च असिपत्रवने तथा ।
शिलासम्पेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ।।७९।।
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनाकवत् ।
तेषां लोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः ।।८०।।
भूम्यापसव्यं दर्भेषु दत्वा पिण्डत्रयं तु वै ।
पतितांस्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिताः ।।८१।।

दीर्घ आयु वाले वे अतिकृशकाय, वस्त्ररहित, क्षुधा और पिपासा से व्याकुल हो इधर-उधर भटकते फिरते हैं । नदी, तालाब, वापी आदि जलाशयों के जल की इच्छा से वहाँ-वहाँ जाते हैं और दूसरों के दिये हुए अग्न की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए इधर-उधर घूमते रहते हैं। वे भीषण नरकपुरी के यातनास्थानों में- अर्थात् शाल्मली, वैतरणी, कुम्भीपाक, करम्भ बालुका (कीचड़), असिपत्रवन, शिलासम्पेषण आदि घोर

नरकों में स्वकर्मानुसार गिराये जाते हैं। ऐसे प्रेतात्माओं के परिवारवालों को चाहिये कि उन प्रेतात्माओं के नाम–गोत्रादि का उच्चारण कर अपसव्य हो पृथ्वी पर कुशा के ऊपर उनके निमित्त तीन पिण्ड दे। ऐसा करने से उन प्रेतस्थानों में यातना पानेवाले पितरों को परम शान्ति मिलती है ।

अप्राप्ता यातनास्थानं सृष्टा ये भुवि पंचधा ।
पश्वादिस्थावरान्तेषु भूतानां तेषु कर्मसु ॥८२॥
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जातिषु ।
यदाऽऽहारा भवन्त्येते तासु तास्विहयोनिषु ॥
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाऽऽहारं श्राद्धे दत्तोपतिष्ठति ॥८३॥
काले न्यायागतं पात्रं विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नोत्यन्नं यथादत्तं बन्धुर्यत्रावतिष्ठते ॥८४॥
यथा गोषु प्रविष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धे तदिष्टानां मन्त्रः प्रापयते पितृन् ॥८५॥
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं तु मन्त्रतः ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन्दिव्येन चक्षुषा ॥
गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ॥८६॥
बह्वीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥८७॥
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च ये ।
ऋतार्त्तवा अनेके तु अन्योऽन्यपितरः स्मृताः ॥८८॥
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये ।
प्रेतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ॥८९॥

जो अपने कर्मो के अनुसार इन यातनास्थानों को जाकर इस पृथ्वी पर पशु, स्थावर आदि पाँच प्रकार की योनियों अथवा भूतों एवं नानारूपात्मक जीवश्रेणी या तिर्यग्योनियों में उत्पन्न हो गये हैं, उनके लिये श्राद्ध में दिया हुआ अन्न उन योनियों के उपयुक्त आहार बनकर उनको मिलता है। श्रेष्ठ काल में विधिपूर्वक सत्पात्र को श्राद्ध के निमित्त दिया हुआ पदार्थ किसी भी योनि में गये हुए पितर को प्राप्त होता है। जिस प्रकार गौओं में छिपी हुई अपनी माँ को बछड़ा प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार श्राद्ध में मन्त्र के द्वारा जिस पितर के उद्देश्य से अन्न दिया जाता है, वह उसको अवश्य प्राप्त होता है । इस प्रकार सर्वागपूर्ण श्राद्ध और मन्त्रद्वारा श्राद्ध में दिये गये पदार्थो की प्राप्ति के विषय में प्रेतों के आवागमन की विद्या को जाननेवाले (प्रेतविद्याविशेषज्ञ) सनत्कुमार ने अपने दिव्य चक्षुओं से देखकर बतलाया है। ये पितर बह्वीक, उष्मप

और दिवाकीर्ति नाम से भी कहे जाते हैं। कृष्णपक्ष उन पितरों का दिन और शुक्लपक्ष विश्राम करने के लिये रात्रि है। ये इतने पितृदेवता और देवपितर- ऋत और आर्तव सब एक दूसरे के पितर (जनक) हैं। ये जितने पितरदेवता हैं और जो मानुषपितर हैं, उनके श्रद्धायुक्त कर्म से और उनकी प्रसन्ता से सभी देवपितर भी प्रसन्न रहते हैं ।

इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत् पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ।।९०।।
इत्यर्कपितृसोमानां ऐलस्य च समागमः ।
सुधाऽमृतस्य चावाप्तिः पितॄणां चैव तर्पणम् ।।९१।।
पूर्णिमाऽमावास्ययोः कालः पितॄणां स्थानमेव च ।
समासात्कीर्तितस्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ।।९२।।
वैश्वरूप्यं तु सर्वस्य कथितं चैकदेशिकम् ।
न शक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ।।९३।।
स्वायम्भुवस्य हीत्येष सर्गः क्रान्तो मयाऽत्र वै ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ।।९४।।

इस प्रकार सोमपायी पितरों का महत्त्व का पुराणों में निश्चित रूप से कहा गया है। इस प्रकार से सूर्य, चन्द्रमा, पितर और पुरूरवा का समागम, सुधामृत की प्राप्ति, पितरों की तृप्ति, पूर्णिमा-अमावास्या का पुण्यकाल और पितरों के स्थान आदि का वर्णन संक्षेप में तुमसे कहा है। यही सनातन सर्ग है। यद्यपि इन सब का विस्तार अधिक है, फिर भी मैंने इनके एक देश का वर्णन किया है, इसकी अलग-अलग गणना नहीं की जा सकती। ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्यों को इस प्रकार श्राद्ध करना चाहिये। यहाँ पर मैंने विस्तारपूर्वक यथारूप से स्वायम्भुव मनु के सृष्टितत्त्व का वर्णन किया है। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते है ।।94।।

।। इति पितृवर्णनाध्यायः ।।

बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां भुंक्ते जन्मनि जन्मनि ।। ग.पु. ११३/२९।।
सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते ।
योऽन्नार्थैरशुचिः शौचान्न मृदा वारिणा शुचिः ।।११३/३६।।
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।११३/४०।।
नाप्राप्तकाले म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।
कुशाग्रेण तु संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ।।४८।।
यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।

स्नेहमूलानि दुःखानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम् ॥५८॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तते ॥६१॥

बालक, युवा अथवा वृद्ध जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्मो को करता है, उसी अवस्था में जन्म-जन्मान्तर में उसे भोगता है। सभी शौचों में अन्न की शुचिता ही विशिष्ट होती है। अन्न के विषय में जो पवित्र हैं वही पवित्र कहलाते हैं, न कि केवल मिट्टी और जल से पवित्र होते हैं। जिनके हाथ, पैर और मन नियन्त्रित हैं वे ही विद्या, तप और कीर्ति से युक्त होकर तीर्थ के फल को प्राप्त करते हैं, मृत्युकाल प्राप्त नहीं होने पर सैकड़ों बाणों से विद्ध होने पर भी कोई मरता नहीं है और मृत्युकाल प्राप्त होने पर कुशाग्र के स्पर्श से भी वह जीवित नहीं रहता । जहाँ स्नेह है वहीं पर भय है क्योंकि स्नेह ही दुःख का भाजन है। स्नेह ही दुःखों का मूल है इसलिये इसको त्याग देने से महान् सुख होता है। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख - मनुष्यों के ये सुख और दुःख चक्र के समान घूमते रहते हैं ।

चतुर्वर्गसर्वार्थचिन्तामणि

अतिदानानि

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।
नरकादुद्धरन्त्येव जपवाहनदोहनैः ॥ भ.पु. हे.१/३७९॥
सुदक्षिणां कांचनचारुश्रृंगीं कांस्योपदोहां द्रविणोत्तरीयाम् ।
धेनुं तिलानान्ददतो द्विजाय लोका वसूनां सुलभा भवन्ति ॥ महाभा.
घृतं गावः प्रसूयन्ते घृतं भूम्यां प्रतिष्ठितम् ।
घृतमग्निश्च देवाश्च घृतं मे सम्प्रदीयताम् ॥
घृतमग्निघृतं सोमस्तन्मयाः सर्वदेवताः ।
घृतधेनुप्रदानेन सर्वास्तुष्यन्ति देवताः ॥ स्कन्द पु. ४१४

धेनुदाने क्रमः-

अलाभे यो गवां दद्याद्घृतधेनुं यथाविधि ।
दुर्गाणि तारितो धेन्वा देवनद्यां प्रमोदते ॥१॥
घृतालाभे तु यो दद्यात्तिलधेनुं समाहितः ।
सर्वकामवहा नद्यस्तं सेवन्ते दिवि स्थितम् ॥२॥
तिलालाभे तु यो दद्याज्जलधेनुं समाहितः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥३॥
घृतधेनुं नरो दद्यात्तिलधेनुं यथाक्रमम् ।
जलधेनुं यथा यो वै शश्वन्न च्यवते दिवः ॥४॥

जितेन्द्रियाय शान्ताय वैष्णवाय यथाविधि ।
धेनुं दत्वा घृतमयीं विष्णुसालोक्यमश्नुते ।।५।।
पितरं चैव धर्मात्मा पितामहमथापि वा ।
घृतधेन्वा परित्राति सप्त सप्त च सप्त च ।।६।। कात्यायनः, हे. 1/418।।

गोदान, पृथ्वीदान और विद्यादान ये तीन अतिदान कहे गये हैं। ये दोहने, जोतने तथा जप-चिन्तन से निश्चित ही नरक से उद्धार करते हैं। सुन्दर दक्षिणा से युक्त सुवर्णमय अच्छी सीगों वाली काँसे की दोहिनी, धन तथा उत्तरीय वस्त्र से युक्त धेनु तथा तिल ब्राह्मण के लिये प्रदान करने से वसुलोक की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। गौएँ घृत उत्पन्न करती हैं। घृत ही पृथ्वीलोक में सबसे प्रतिष्ठित है। अतः मुझे घृत प्रदान करें। अग्नि घृत है, सोम घृत है देवता सभी देवता घृतमय हैं। घृतधेनु प्रदान करने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ।

गौओं के अभाव में विधि के अनुसार जो घृतधेनु का दान करता है। वह धेनु के द्वारा संकट से तार दिया जाता है तथा देवनदी गंगा के लोक में प्रमुदित हो निवास करता है। घृत के अभाव में समाहित चित्त होकर जो तिलधेनु का दान करता है वह स्वर्ग में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करानेवाली नदियाँ उस व्यक्ति की सेवा करती हैं। तिल के अभाव में समाहित चित्त होकर जो जलधेनु का दान करता है, वह सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। इसमें विचार न करे। जो मनुष्य घृतधेनु, तिलधेनु का यथाक्रम जैसे दान करता है, वह स्वर्गलोक से कभी भी च्युत नहीं होता। जितेन्द्रिय, शान्त और वैष्णव ब्राह्मण के लिये जो घृतमयी धेनु का दान करता है, वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है । धर्मात्मा मनुष्य घृतधेनु के दान से अपने पिता, पितामह सहित इक्कीस कुल का परित्राण करता है ।

सुवर्णधेनुदानम् - प्र. १/४३८।।

प्रमेहघ्नसुवर्णधेनुदानम्

अथाह वृद्धगौतमः

धेनुं स्वर्णमयीं कुर्याद्यथोक्तविधिना ततः ।
सुवर्णश्रृंगीं रत्नाढ्यां तथा रौप्यखुरामपि ।।१।।
यथा च तर्णकं कुर्यादष्टभागेन पूर्ववत् ।
ब्राह्मणं श्रुतसम्पन्नं वैष्णवं च कुटुम्बिनम् ।।२।।
आचारवन्तं धर्मिष्ठं द्विजशुश्रूषणोद्यतम् ।
गृहमाहूय विधिवत् पूजयेत्तं सश्रद्धया ।।३।।
यथा विभवतो भक्त्या हेमो यथावदेव हि ।

मन्त्रैस्तु वैष्णवैः सम्यक् पालाशसमिधस्तथा ।।४।।
होमान्ते तां प्रदद्याच्च मन्त्रेणानेन मेहवान् ।
चक्रं सुदर्शनं यस्य राजतेजस्तथैव हि ।।५।।
प्रमेहं हरतु क्षिप्रं विष्णुर्गरुडवाहनः ।
दानं प्रमेहरोगघ्नमेतत्कार्यं मनीषिभिः ।।६।।
कृतेनानेन शाम्यन्ति प्रमेहा दारुणा अपि ।।७।।

यथोक्त विधान से स्वर्णमयी धेनु का निर्माण करके सुवर्ण की सींगें, विविध प्रकार के रत्न, रजत के खुर तथा वैसे ही सुवर्णधेनु के आठवें भाग की मात्रा से यथोक्त वत्स का निर्माण करे और वेदादिशास्त्रसम्पन्न गृहस्थ विष्णुभक्त ब्राह्मण को-जो आचारवान्, धार्मिक तथा द्विज की सेवा में उद्यत ब्राह्मण हो, उसको विधिवत् घर में बुलाकर श्रद्धापूर्वक यथाविधि उनकी पूजा करे। भक्तियुक्त होकर यथाविभव यथोक्त वैष्णव मंत्रों से निश्चित मात्रा में सुवर्णादि से उन्हें प्रसन्न करे तथा पालाश समिधा से होम करके मूत्ररोगी इस मन्त्र से स्वर्णधेनु प्रदान करे। जिसके सुदर्शनचक्र और राजतेज, छत्र, चामर आदि सुशोभित हैं वे गरुडवाहन विष्णु शीघ्र ही मेरे प्रमेह रोग को नष्ट करें। मनीषियों के द्वारा प्रमेह रोग का नाशक दान यही करना चाहिये। अत्यन्त दारुण प्रमेह भी इस दान से नष्ट हो जाते हैं ।

<u>अर्शोघ्नसुवर्णधेनुदान</u>

सौवर्णीं गां प्रकुर्वीत पलेनार्धेन वा पुनः ।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुर्वन्नैवं फलं लभेत् ।।१।।
रत्नश्रृंगीं रौप्यखुरां नानावस्त्रैरलंकृताम् ।
ग्रहाणामुपरि स्थाप्य नवधान्यानि विन्यसेत् ।।२।।
होमस्तु शास्त्रतः कार्यो गोविन्दप्रीतये हितः ।
इदं विष्णुः प्रतद्विष्णुर्विष्णोर्नुकमितिक्रमात् ।।३।।
समिदाज्यचरुं हुत्वा पूर्णाहुत्यन्तं एव हि ।
ततस्तांस्तु शुची रोगी ब्राह्मणं वेदपारगम् ।।४।।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं कुलीनं धर्मवादिनम् ।
वृद्धं ज्ञानोपसम्पन्नमनुद्वेगकरं नृणाम् ।।५।।
भक्त्या स्वयं समानीय पूजयेत्प्रीतिपूर्वकम् ।
अंगुलीयकपात्राद्यैरुपानच्छत्रकैरपि ।।६।।
मन्त्रेणानेन तां पात्रे दद्याद्रोगी यतात्मवान् ।
गोविन्दं मनसा ध्यायन् गवां मध्ये स्थितं शिशुम् ।।७।।

बर्हापीडकसंयुक्तं वेणुवादनतत्परम् ।
गोपीजनैः परिवृतं वन्यपुष्पावतंसकम् ।।८।।

यथाविधि सुवर्ण की गौ बनाये अथवा आधे पल से ही, कृपणता नहीं करे, ऐसा करने से फल की प्राप्ति नहीं होती है। रत्नश्रृंगी, रौप्य खुरवाली, नाना वस्त्रों से अलंकृत सौवर्णी गौ को ग्रहों के ऊपर स्थापित करके नौ प्रकार के धान्य रखे। हित चाहनेवाला गोविन्द की प्रीत के लिये ''इदं विष्णुः'', ''प्रतद्विष्णुः'' एवं ''विष्णोर्नुकं'' मन्त्रों से क्रमशः शास्त्रोक्त हवन करे। समिधा, घृत तथा चरु का हवन कर पूर्णाहुति करे। उसके बाद पवित्र होकर रोगी उस गौ को वेदज्ञ, वैदिक आचरण से सम्पन्न, कुलीन, धर्मशास्त्रवक्ता, प्रबुद्ध, ज्ञानसम्पन्न और मनुष्यों को अपने द्वारा भय या उत्तेजना उत्पन्न नहीं करनेवाले ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक स्वयं ही साथ में लाकर प्रीतपूर्वक सुवर्ण की अंगूठी, विविध पात्रादि एवं उपानत्, छत्र आदि से उनकी पूजा करे। संयमित अर्श (बवासीर) का रोगी सत्पात्र ब्राह्मण के लिये इस प्रकार से सुवर्णधेनु प्रदान करे। गौओं के मध्य में स्थित बालगोविन्द का मन से ध्यान करते हुए- जो मयूरपंख से युक्त हैं, वेणुवादन में तत्पर हैं, गोपीजनों से घिरे हुए हैं और पुष्पों के हार से युक्त हैं ।

गोविन्द गोपीजनवल्लभेश कंसासुरघ्न त्रिदशेन्द्रवन्द्य ।
गोदानतृप्तः कुरु मे दयालो अर्शोविनाशं क्षयितारिवर्गः ।।९।।
दानेनानेन नित्यमर्शसां जायते क्षयः ।
तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नेन सुखार्थं ह्येतदर्शसी ।।१०।।
।। इत्यर्शोघ्नसुवर्णधेनुदानम् ।।

हे गोविन्द! गोपीजनवल्लभेश! कंसासुर को मारनेवाले! देवताओं के द्वारा वन्दनीय! दयालो! आपने शत्रुओं के समूह को नष्ट किया है। इस गोदान से तृप्त होकर मेरे भी अर्श (बवासीर) का विनाश करिये। इस दान से सदैव ही अर्शरोग का नाश होता है। इसलिये अर्शरोगी सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्नपूर्वक इस कर्म को करे ।

चतुर्विध वन्ध्यात्वहरस्वर्णधेनुदान - ४४०

चतुर्विधा च या वन्ध्या भवेद्वत्सवियोजनात् ।
तस्या वन्ध्यात्वनाशार्थं स्वर्णधेनुं प्रदापयेत् ।।१।।
यथोक्तं कर्म सम्पद्य होमं कृत्वा विधानतः ।
ब्राह्मणाय गृहस्थाय दद्याद् धेनुं प्रयत्नतः ।।२।।

सोमो धेनुमिति मन्त्रं समुच्चार्य ततः पुनः ।
प्राङ्मुखायोपविष्टाय प्रदद्यात्तामुदङ्मुखः ।।३।।
मन्त्रेणानेन विधिवत् पुच्छे हस्तं विधाय च ।
धेनुर्याङ्गिरसः सा तु वसिष्ठे सुरभी च या ।।४।।
दुहिता या तथा भानोरग्नेश्च वरुणस्य च ।
याश्च गावः प्रवर्तन्ते वनेषूपवनेषु च ।।५।।
प्रीणन्तु ता मम सदा पुत्रपौत्रप्रदाः सुखम् ।
प्रयच्छति दिवारात्रमविच्छेदं च सन्ततेः ।।६।।
एवं दत्वा तु तद्दानं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।७।। इति।।

सन्तानवियोग के कारण जो चार प्रकार की वन्ध्या होती है, उसके नाश के लिये स्वर्णधेनु का दान करना चाहिये। यथोक्त कर्मो का सम्पादन कर यथाविधि होम करे और गृहस्थ ब्राह्मण के लिये प्रयत्नपूर्वक धेनु प्रदान करे। ''सोमो धेनुं'' इस मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करके पूर्वाभिमुख ब्राह्मण के लिये उत्तराभिमुख हो धेनु प्रदान करे। इस मन्त्र से विधिवत् पुच्छ में हस्त स्पर्श करा के ''धेनुः..... सन्ततेः।।'' प्रकार से दान देकर प्रणाम करके विसर्जन करे ।।

हेमाद्रि - १/४४२।।

रस की चोरी से उत्पन्न हाथ, पैर के रोगों का नाश

<u>सुवर्णधेनुदान में धेनुध्यान</u>

प्रस्विन्नपाणिपादः स्याद्यो हरेत रसादिकम् ।
तत्प्रतीकारभावेन दानहोमादिकं चरेत् ।।१।।
आचार्यायाथ मां दद्यात्प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।
मन्त्रेणानेन विधिवत्पूजितायां न संशयः ।।२।।
आदित्यस्य सुता यास्तु देवानां याश्च धेनवः ।
पितृणामपि यक्षाणां गन्धर्वाणां च सर्वशः ।।३।।
यक्षाणां गुह्यकाणां तु वसिष्ठसुरभिस्तथा ।
एतास्तुष्टा मम क्षिप्रं धेनोरस्याः प्रदानतः ।।४।।
रसचौर्येण यज्जातं वैरूप्यं पाणिपादयोः ।
तत्सर्वं नाशयन्त्याशु धेनवः सर्वतोषिताः ।।५।।
दानेनानेन नियतं पादप्रस्वेदजां रुजम् ।
जयन्ति रोगिणः कार्यं पादप्रस्वेदिना ततः ।।६।।
शीलोपपन्नां सवनोत्तरीयां कांस्योपदोहां कनकान्तश्रृंगीम् ।
विप्राय दत्वा भगवत्प्रियाय प्रयाति लोकानमृतान्सुपुण्यान् ।।४५५

रस आदि की चोरी करनेवाला पसीनेयुक्त हाथ-पैर का रोगी होता है। उसके निवारण की भावना से दान-हवन आदि करे। पुनः उत्तराभिमुख हो पूर्वमुखोपविष्ट आचार्य के लिये गौ प्रदान करे । निःसंशय इस मन्त्र से विधिवत् गौ की पूजा कर लेने पर दे- जो आदित्य की सुता, देवताओं, पितरों, यक्षों, गन्धर्वो और सबकी धेनु के दान से मेरे ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न हों। रस आदि की चोरी करने से हाथ-पैर में जो विरूपता उत्पन्न हो गई है, सब प्रकार से सन्तुष्ट धेनु इन सभी का शीघ्र ही नाश करें । उस दान से निश्चय ही पादप्रस्वेदज रोग को रोगी जीत लेते हैं। इसलिये पादप्रस्वेदी रोगी के द्वारा ऐसा अवश्य करना चाहिये ।

शीलोपपन्न, प्रसवोत्तर उतरीय वस्त्र से युक्त, कांस्य के उपदोहन समेत, सुवर्ण से आच्छादित सींगों वाली गाय को भगवत्प्रिय विप्र के लिये प्रदान कर दाता सुपुण्य अमृत लोक को प्राप्त करता है ।

हेमाद्रि में - स्कन्दपुराण से १/४४६।।

तृणानि खादन्ति वसन्त्यरण्ये पिबन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि ।
दुह्यन्ति वाह्यन्ति पुनन्ति पापं गवां रसैर्जीवति जीवलोकः ।।१।।
तुष्टास्तु गावः शमयन्ति पापं दत्तास्तु गावस्त्रिदिवं नयन्ति ।
संरक्षिताश्चोपनयन्ति वित्तं गोभिर्नतुल्यं धननस्ति किंचित् ।।२।।
शष्पं समश्नाति ददाति नित्यं पापापहं मित्रविवर्द्धनं च ।
स एव चार्य्यः परिभुज्यते च गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किंचित् ।।३।।
तृणानि शुष्कानि वने चरित्वा पीत्वाऽपि तोयान्यमृतं श्रवन्ति ।
यद्गोमयाद्याश्च पुनन्ति लोकान् गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किंचित् ।।४।।
रुष्टा दुष्टा दुर्बला व्याधिताश्च न दातव्या या च मूल्यैरदत्तैः ।
क्लेशैर्विप्रं या फलैः संनियुक्ति तस्या वीर्याश्चाफलाश्चापि लोकाः ।।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वास्तावन्ति वर्षाणि महीयते स्वः ।
स्वर्गाच्च्युतश्चापि ततस्त्रिलोके कुले समुत्पश्यति गोमतां सः ।।महा.

घास खाते हैं, वन में रहते हैं, अपरिग्रह जल को पीते हैं, दुहे जाते हैं, जोते जाते हैं और पापों को दूर कर पवित्र करते हैं। इस प्रकार गोरसों से ही सम्पूर्ण जीवलोक जीता है। गौएँ प्रसन्न होकर पापों को नष्ट करते हैं, दान देने पर स्वर्ग को ले जाते हैं। पालन-पोषण करने से धन प्रदान करते हैं। इसलिये गौओं के समान कोई धन नहीं है । ये घास को खाती हैं और नित्य ही पापों का नाश तथा मित्रों की वृद्धि करती हैं । आर्यो के द्वारा सब प्रकार से उसी गौ तथा गव्यादि का उपयोग किया जाता है । इसलिये गोधन के समान कोई दूसरा धन नहीं है। सूखे तृण को वन में

चरकर और जल पीकर भी अमृत प्रदान करती हैं । जो अपने गोबर से भी लोकों को पवित्र ही करती हैं, इसलिये गोधन के समान कोई धन नहीं है । रुष्टा, दुष्टा, दुर्बला, व्याधिता और बिना मूल्य से ली हुई गौ का दान नहीं करना चाहिये । क्लेश से देने पर विप्र को जिस फल से युक्त करती है, उस गौ से वीर्य एवं लोक फलहीन होते हैं। धेनु के जितने रोम होते हैं, दाता उतने वर्षो तक स्वर्ग के राज्य को भोगता है । स्वर्ग से च्युत होने पर त्रिलोक में गोसेवकों के कुल में उत्पन्न होता है।

त्रिरात्रगोदानम्

गोभ्योऽधिकं नापरमस्ति किंचिद्दानं पवित्रमिति शास्त्रविदो वदन्ति ।
ताः सम्प्रदैः सुरसदश्च समीहमानैर्देया सदैव विधिना द्विजपुंगवेभ्यः ।।४६६।।
गोदः शीलां निर्भयश्चार्घदाता नस्योतौ वै वसुदाता च कामी ।
उषस्योढाभारं नयश्च विद्वान् विख्यातास्ते वैष्णवाश्चन्द्रलोकाः ।।४७१/१।।
गां वै दत्वा गोव्रती स्यात्रिरात्रं निशां चैकां सत्वसेतेह ताभिः ।
काम्याष्टम्यां वर्त्तितव्यं त्रिरात्रं गवां रसैर्वा शकृता प्रस्रवैर्वा ।।२।।
वेदव्रती स्याद् वृषभप्रदाने वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने ।
तथा गवां विधिमासाद्य यज्वा लोकानग्र्यान् विन्दते नाविधिज्ञः ।।३।।
कामान् सर्वान् पार्थिवानेक संख्यान् यो वै दद्यात् कामदुग्धां च धेनुम् ।
सम्यक्ताः स्युर्हव्यकव्यौघवत्यस्तासामुक्तमायससम्प्रदानम् ।।४।।
न चाशिष्यायाव्रतायोपकुर्यात् नाशान्ताय न च वक्रबुद्धये ।
गुह्यो ह्ययं सर्वलोकस्य धर्मो नेमान् धर्मान् यत्र तत्र प्रकल्पयेत् ।।५।।

गोदान से अधिक श्रेष्ठ और पवित्र दान कोई नहीं होता, ऐसा शास्त्रों को जाननेवाले कहते हैं । स्वर्ग की इच्छा रखनेवालों के द्वारा विधिपूर्वक कुटुम्बी द्विजश्रेष्ठों के लिये प्रदान करना चहिए ।

हेमाद्रौ - १/४७३

<u>अथ वैतरणीगोदानम्</u>

आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्ववत् ।
तदभावे तु गौरेव नरकोद्धरणाय वै ।।१।।
तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीं तु गाम् ।
शक्तोऽन्योऽरुक् तदा दद्याच्छ्रेयो दद्यान्मृतस्य च ।।२।।
मन्त्रः- ''यमद्वारे महाघोरे कृष्णा वैतरणी नदी ।
तां तर्तुं गां ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीमिति ।।३।।

ब्रह्मवैवर्त्ते

युधिष्ठिर उवाच

यमद्वारे महाघोरे या सा वैतरणी नदी ।
किं रूपा किम्प्रमाणा सा कथं सा गर्हिता किल ।।१।।
कथं तस्याः प्रमुच्यन्ते केषां वासस्तु सन्ततम् ।
तेषां तथाऽनुकूला सा एतद्विस्तरतो वद ।।२।।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

या सा वैतरणी नाम यमद्वारे महानदी ।
तस्याः प्रमाणं रूपं च श्रृणु सर्वभयापहम् ।।३।।

जिसकी मृत्यु समीप हो वह पूर्वविधि के अनुसार सवत्सा गौ का दान करे। उसके अभाव में नरक से उद्धार के लिये केवल गौ का दान करे। उस समय यदि म्रियमाण व्यक्ति वैतरणी गौ का दान नहीं कर सकता है, तो अन्य कोई रोगरहित सक्षम व्यक्ति वैतरणी गौ का दान करके उसका पुण्य मृतक को प्रदान करे। मन्त्र बोले- महाभयंकर यम के द्वार में जो कृष्णा वैतरणी नदी है, उससे तरने के लिये यह वैतरणी गौ आपको प्रदान करता हूँ। युधिष्ठिर ने कहा- महाभयंकर यम के द्वार में जो वैतरणी नदी है, उसका रूप क्या है, किस प्रमाण वाली है और निश्चय ही अत्यन्त निन्दित क्यों है? उससे कोई कैसे मुक्त होते हैं तथा कौन वहाँ सदैव निवास करते हैं? उसके लिये वह वैसे ही अनुकूल होती है। इसे विस्तारपूर्वक कहिये। श्रीमार्कण्डेय ऋषि ने कहा- यम के द्वार में जो वैतरणी नाम की महानदी है, उसका प्रमाण और रूप सुनो। जो सभी भय को देने वाला है ।

वैतरणीदानम्- हे.१।४७४

शतयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महासरित् ।
अगाधानन्तरूपा सा दृष्टमात्राद् भयावहा ।।३।।
पूयशोणिततोया सा मांसकर्दमनिर्मिता ।
कृमिभिः संकुलं भूयं वज्रतुण्डैरयोमुखैः ।।४।।
शिशुमारैश्च मकरैर्वज्रकर्त्तरिसंयुतैः ।
अन्यैश्च जलजैघोरैर्युक्ता सा मर्मभेदिभिः ।।५।।
पतन्ति तत्र वै मर्त्याः क्रन्दमानाः सुदारुणाः ।
हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्ती मुहुर्मुहुः ।।६।।
चिरमन्तर्निमज्जन्ति ग्लानिं गच्छन्ति देहिनः ।
चतुर्विधैः प्राणिगणैर्द्रष्टव्या सा महानदी ।।७।।
तरन्ति तस्या दानेन अन्यथा तु पतन्ति ते ।
धार्मिका दानशीलाश्च तां तरन्ति नरोत्तम ।।८।।
सानुकूला भवेद्येन नदी वैतरणी नृणाम् ।

तच्छृणुष्व नरव्याघ! कथ्यमानं युधिष्ठिर ।।९।।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।
अन्येषु पुण्यकालेषु दीयते दानमादरात् ।।१०।।

वह महानदी विस्तार में सौ योजन फैली हुई है। वह अगाध और बिना अन्त वाली देखने मात्र से भय को उत्पन्न करती है। मवाद और रक्त रूप जलवाली, मांसरूप कीचड़ वाली, वज्रतुण्ड और लोहमुख कृमियों से अत्यन्त संकुल, शिशुमार और वज्र की कैंची सरीखे दाँतों से युक्त, मकर और मर्मभेदी भयंकर जलीय जीवों से वह नदी युक्त है। वार-वार भाई, पुत्र, तात आदि का प्रलाप करते अत्यन्त घोर क्रन्दन करते हुए मनुष्य उसमें गिरते हैं, चिरकाल तक मनुष्य उसमें डूबते रहते हैं और ग्लानि को प्राप्त करते हैं, इस प्रकार चतुर्विध प्राणिगणों से युक्त वह महानदी देखी जाती है। वैतरणी गौ के दान से ही मनुष्य उससे तरते हैं अन्यथा उसी में गिर जाते हैं। नरोत्तम! जो धार्मिक और दानशील हैं, वे उसको तर जाते हैं। हे नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर! जिस प्रकार मनुष्यों के लिये वह वैतरणी नहीं सानुल होती है, मैं कहता हूँ, उसे सुनो। अयन में, विषुव में, पुण्यकाल व्यतीपात में, क्षयमासादि में तथा अन्य पुण्यकालों में आदरपूर्वक यह दान दिया जाता है ।

पाटलामथवा कृष्णां कुर्याद्वैतरणीं शुभाम् ।
स्वर्णश्रृंगीं रौप्यखुरां कांस्यपात्रसुदोहनाम् ।।११।।
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम् ।
कार्पासद्रोणशिखरे आसीनां ताम्रभाजने ।।१२।।
यमं हैमं प्रकुर्याद्वै लोहदण्डसमन्वितम् ।
महामहिषमारूढमूढपाशं करे परे ।।१३।।
इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा उडूपं पट्टबन्धनैः ।
उडूपोपरि तां धेनुं सूर्यदेहसमुद्भवाम् ।।१४।।
कृत्वा प्रकाशयेद्विद्वान् छत्रोपानहसंयुताम् ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं संगृह्योदकमण्डलम् ।।१५।।
यमद्वारे महाघोरे दृष्ट्वा वैतरणीं नदीम् ।
तर्त्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं च गाम् ।।१६।।

अधिवासन मन्त्रः-

ॐ विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पंक्तिपावन ।
सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी नदी ।।१७।।

लाल अथवा काली अच्छी वैतरणी गौ को सुवर्णश्रृंग, रौप्यखुर और कांस्य के सुन्दर दोहन पात्र से युक्त करे। कृष्णवस्त्र से आच्छादित, सप्तधान्य से समन्वित

कपास के पर्वत के शिखर पर गौ को विराजमान कर ताम्रपात्र में सुवर्णमय यम की प्रतिमा को स्थापित करे। जो लोहदण्ड से समन्वित, महामहिष पर आरूढ और बाँये हाथ में मूढपाश को धारण किये हों। वस्त्र के बन्धन से बाँधकर इक्षुदण्डमय क्षुद्र नौका का निर्माण करे, फिर उस नौका पर सूर्य के शरीर से उत्पन्न उस वैतरणी गौ को स्थापित करे। विद्वान् पुरुष वहाँ पर छत और उपानह भी रखे तथा जल से युक्त कमण्डलु को लेकर इस मन्त्र का उच्चारण करे- महाभयंकर यमद्वार में वैतरणी नदी को देखकर उससे तरने की इच्छा से यह वैतरणी गौ आपको देता हूँ। अधिवासन मन्त्र- विष्णुस्वरूप द्विजश्रेष्ठ! पंक्तिपावन भूदेव! यह वैतरणी दक्षिणासहित आपको प्रदान की जाती है।

धर्मराजं च विप्रं च धेनुं वैतरणीं तथा ।
सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१८॥
पुच्छं संगृह्य तद्धेनोरग्रे कृत्वा च ब्राह्मणम् ।
धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महालये ॥
उत्तितीर्षुरहं देवि वैतरण्यै नमो नमः ॥१९॥
अनुव्रजेच्च गच्छन्तं सर्वं तस्य गृहे नयेत् ।
एवं कृते महीपाल सा सरित् सुखदा भवेत् ॥२०॥
तरते च तया धेन्वा सा सरिज्जलवाहिनी ।
सर्वाह्लादानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ॥
रोगी तु रोगनिर्मुक्तः तथैवोपरमेत् स्मृतिः ॥२१॥
इतीदमुक्तं तव धर्मसूनोः पुण्यं मया वैतरणीप्रदानम् ।
श्रृणोति भक्त्या पठतीह सम्यक् स याति विष्णोः पदमप्रमेयम् ॥२२॥
॥इति वैतरणीधेनुदानविधिः॥

धर्मराज, ब्राह्मण, धेनु तथा वैतरणी नदी इन सबकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मण के लिये निवेदन करे। उस धेनु का पुच्छ ग्रहण कर ब्राह्मण को आगे करके यह प्रार्थना करे- हे धेनो! महालय यमद्वार में तुम मेरी प्रतीक्षा करो। हे देवि! मैं उसस तरना चाहता हूँ, अतः वैतरणी नदी एवं गौ को वार-वार प्रणाम है। फिर जाते हुए ब्राह्मण के पीछे जाते हुए सब कुछ उनके घर में पहुँचा दे। हे महीपाल! इस प्रकार करने से वह वैतरणी नदी सुख देनेवाली होती है। उस वैतरणी धेनु के द्वारा वह वैतरणी नदी पार कर ली जाती है। तब वह सब आह्लाद को प्राप्त करता है, चाहे वे स्वर्गवासी हो या मनुष्य हो। ऐसा करने से या तो रोगी रोगमुक्त हो जायगा अथवा शान्ति को प्राप्त कर लेगा ऐसा धर्मशास्त्र का कहना है। तुम धर्मसुत के लिये अत्यन्त पुण्यजनक

वैतरणीदान को कहा । जो भक्तिपूर्वक भलीभाँति इसे सुनता अथवा पढता है, वह अप्रमेय विष्णु के पद को प्राप्त करता है ।

मत्स्यपुराणे -

दशसौवर्णिके श्रृंगे खुराः पंचपलान्विताः ।
पंचाशत्पलिकं कांस्यं ताम्रं वाऽपि तथैव च ।।
दाता स्यात्स्वर्गमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।१।।
आच्छादनार्थं वासोयुगं सुवर्णदक्षिणेत्यपि बोद्धव्यम् ।

दस सुवर्ण के श्रृंग, पाँच पल रजत के प्रत्येक खुर, पचास पल कांस्य का दोहनपात्र और पचास पल का कांस्यपृष्ठ का दान करने से दाता महाप्रलयपर्यन्त स्वर्ग को प्राप्त करता है। आच्छादनार्थ दो वस्त्र एवं सुवर्ण की दक्षिणा दे।

ब्रह्मपुराणे

गां दद्याद्वेदपूर्णाय विप्राय गृहमेधिने ।
सुवर्णालंकृतश्रृंगी वस्त्रघण्टासमन्विताम् ।।१।
प्रत्यग्रां त्रिसमृद्धां तु ललाटतटतर्पणाम् ।
राजतच्छन्नचरणां मुक्तालांगूलभूषिताम् ।।२।।
कांस्योपदोहां तृप्तां च लवणादितृणोदकैः ।
धेनुपुच्छं गृहीत्वा च ससुवर्णेन पाणिना ।।३।।
गृहस्थो वेदविद्विप्रो दापयेत् तत्प्रतिग्रहम् ।
भोगसौख्यप्रदा चैता गोमाता पापनाशिनी ।।४।।
कृष्णा स्वर्गप्रदा ज्ञेया गौरी च कुलवर्द्धिनी ।
रक्ता रूपप्रदा ज्ञेया पीता दारिद्र्यघातिनी ।।५।।
पुत्रप्रदा कृष्णसारी नीला धर्मविवर्द्धिनी ।
कपिला सर्वपापघ्नी नानावर्णा च मोक्षदा ।।६।।
प्रत्यग्रा-नववयस्का, त्रिसमृद्धा-शीलक्षीरप्रसवगुणयुक्ता,
लवणादितृणोदकैस्तृप्ता इति ।।

वेदज्ञ गृहस्थ ब्राह्मण के लिये गौ का दान करे। जो सुवर्ण की सींगोंवाली, वस्त्र, घण्टा आदि से समन्वित, तरुणावस्थाली, समृद्धा, प्रसन्न नेत्रवाली, चाँदी से आच्छादित खुरोंवाली, मुक्ता से भूषित पूँछवाली, कांस्योपदोहनयुक्त, तृण, लवण और जलादि से तृप्त गौ के पुच्छ को ससुवर्ण दक्षिण हस्त से वेदज्ञ गृहस्थ ब्राह्मण उस प्रतिग्रह को ग्रहण करे। यह गौ भोग और स्वर्ग को देती है। गोमाता पाप का नाश करती है। कृष्णा गौ स्वर्ग देती है। गौरवर्णवाली कुल की वृद्धि करती है। रक्तवर्णा रूप प्रदान

करती है। पीली गौ दरिद्रता का नाश करती है। कृष्णसार वर्णवाली पुत्र प्रदान करती है। नील वर्णवाली धर्मवृद्धि करती है, कपिला गौ सभी पापों का नाश करती है तथा अनेक वर्णा गौ मोक्ष प्रदान करती है ।

ग्रहणीरोगहरधेनुदानविधिः

<u>अथाह वृद्धगौतमः</u>

धेनुं पयस्विनीं हृद्यां घण्टाऽऽभरणभूषिताम् ।
हेमश्रृंगीं रौप्यखुरां वासोभिर्वेष्टितां नरः ॥१॥
नवधान्यैः समायुक्तामेकैकं द्रोणपंचकम् ।
सहिरण्यां तु तां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥२॥
अलोलुपाय शान्ताय धर्मज्ञाय विशेषतः ।
होमश्च विधिवत्कार्यः समिदाज्यचरूत्कटम् ॥३॥
तस्मै हुतव्रतो दद्यात् पूजितायांगुलीयकैः ।
गां कृष्णां कृष्णरूपाय मन्त्रेणानेन रोगवान् ॥४॥
देवकीपुत्र चाणूरकंसारिष्टविनाशनः ।
नाशय ग्रहणीं कृष्ण गोपीजनमनोत्सवः ॥५॥
कृतेनानेन दानेन ग्रहणीशान्तिमृच्छति ।
तस्मादेतत्तु कर्तव्यं ग्रहणीरोगिणा सदा ॥६॥
॥ इति ग्रहणीहरधेनुदानविधिः ॥

ग्रहणी रोगवाला मनुष्य घण्टा, आभरण से विभूषित, स्वर्गश्रृंगी, रौप्य खुरवाली, वस्त्रों से वेष्टित तथा मनोरम पयस्विनी धेनु को पाँच द्रोण (द्रोण के कई अर्थ हैं) परिमित पृथक्-पृथक् नौ प्रकार के धान्यों से युक्त और सुवर्णसहित धेनु को गृहस्थ ब्राह्मण के लिये प्रदान करे। विशेषतः वह ब्राह्मण लोलुप नहीं हो, शान्त तथा श्रेष्ठ धर्मशास्त्र का ज्ञाता हो। विधिवत् होम करे और समिधा, आज्य तथा श्रेष्ठ चरु- होम करनेवाला उस ब्राह्मण के लिये प्रदान करे। पुनः अतिसार रोगी कृष्णा गौ का पूजन कर सुवर्ण की अंगूठियों के सहित कृष्णरूप ब्राह्मण के लिये इस मन्त्र से प्रदान करे । हे देवकीपुत्र! आप चाणूर, कंस और अरिष्ट का विनाश करनेवाले हैं तथा गोपीजन के मन को प्रफुल्लित करते हैं। अतः मेरे ग्रहणी रोग को नष्ट करिये। किये हुए इस दान से ग्रहणी रोग की शान्ति होती है। इसलिये ग्रहणीरोगी के द्वारा यह अवश्य ही करना चाहिये ।

अथअसृग्दरनाशनधेनुदानविधिः

रक्तविकारहर या हाथ, पैर आदि के त्वचा का फटना

धेनुं पयस्विनीं दाता लोहितां हेमश्रृंगिकाम् ।
तथा रूप्यखुरां रक्तवस्त्रेण समलंकृताम् ।।१।।
ब्राह्मणायाग्निवर्णाय दद्यात्सत्कृत्य मानवः ।
पलेन वा पलार्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।।२।।
सुवर्णेन युतां शुभ्रां यद्वा स्वविभवेन तु ।
द्विजोत्तमाय श्रेष्ठाय सर्वशास्त्रार्थवेदिने ।
धेनुं तामतिसंहृष्टो मन्त्रेणानेन भक्तितः ।।३।।
गावो मे हृदये सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
देवानायातु सुरभी कृपयाऽसृग्दरं मम ।।४।।
विनाशयत्यदोदानमपि दीर्घमसृग्दरम्
तेनेदं यत्नतः कुर्यादसृग्दरगदार्द्दितः ।।५।।
।। इत्यसृग्दरनाशनधेनुदानविधिः ।।

दाता स्वर्गश्रृंगी, रौप्यखुरा, रक्तवस्त्रयुक्त एवं अलंकारों से अलंकृत लोहित वर्ण की पयस्विनी गौ को मनुष्य अग्निवर्ण ब्राह्मण का सत्कार कर उनके लिये प्रदान करे। पुनः एक पल अर्धपल या उससे भी आधा, सुवर्ण से युक्त सुन्दर गौ प्रदान करे अथवा अपनी शक्ति के अनुसार सभी शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये अत्यन्त प्रसन्न हो भक्तिपूर्वक मन्त्र से उस धेनु को दे। गौएँ मेरे हृदय में निवास करें। मेरे आगे-पीछे गौएँ हों। सुरभि देवताओं को प्राप्त करायें और कृपापूर्वक मेरे रक्तविकार को दूर करें। दीर्घ काल के असृग्दर को भी यह दान नष्ट कर देता है। इसलिये असृग्दररोगी के द्वारा यत्नपूर्वक इस धेनुदान को करना चाहिये ।

सुवर्णधेनुदानविधिः

कालोत्तरे

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हेमधेनुविधिं क्रमात् ।
सर्वपापप्रशमनं देशदुर्भिक्षनाशनम् ।।१।।
उपसर्गविनाशं च सर्वव्याधिनिवारणम् ।
निष्काणां तु सहस्रेण सुवर्णेन तु कारयेत् ।।२।।
तदर्द्धेनापि वा सक्यक् तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।
शतेन वा प्रकर्तव्यं सर्वकार्येषु सुव्रत ।।३।।
शिवाय कामधेनुं तु पलानां पंचभिः शतैः ।
यो ददाति महासेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।।
तेन दत्तं भवेत्सर्वमाब्रह्मभुवनान्तिकम् ।।४।।

अब मैं सभी पाप एवं राष्ट्र के दुर्भिक्ष का नाश करनेवाले सुवर्णधेनु के दान की विधि को क्रम से कहूँगा। सभी आपत्तियों का विनाशक तथा सभी व्यधियों का निवारक सहस्र सुवर्ण निष्क से धेनु का निर्माण करे। भलीभाँति उससे आधा, उससे भी आधा अथवा हे सुव्रत! सभी कार्यो में सौ सुवर्ण से ही स्वर्णधेनु का निर्माण करे। हे महासेन! जे सूर्यग्रहण के समय कल्याणार्थ पाँच सौ पलों से निर्मित कामधेनु ब्राह्मण के लिये प्रदान करता है, वह ब्रह्मलोक सहित सम्पूर्ण लोकों के दान का फलभागी होता है ।

गोपरिचर्या

वन्दनीयाश्च पूज्याश्च गावः सेव्यास्तु नित्यशः ।। ब्र.पु.
गवां गोष्ठे स्थितानां तु यः करोति प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणकृतं तेन जगत् सदसदात्मकम् ।।१।।
सदोषा गौर्गृहे जाता परिपाल्या सदा स्वयम् ।
दु:शीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रः सुसंयतः ।।
अनाथानां गवां यत्नात् कार्यस्तु शिशिरे मठः ।
पुण्यार्थं यत्र दीयन्ते तृणतोयेन्धनानि च ।। ब्र.पु.

द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं तृतीये द्विस्तनं दुहेत् ।
चतुर्थे त्रिस्तनं चैव यथान्यायं यथाबलम् ।। (हारीतः)

ब्रह्मपुराणे

आषाढ्यामाश्वयुज्यां च पौष्यां माघ्यां च सर्वदा ।
न गृह्णीयाद् गवां क्षीरं सर्वं वत्साय निक्षिपेत् ।।१।।
न षण्डान् वाहयेच्चैव न गां भारेण पीडयेत् ।
युगादिषु युगान्तेषु षडशीतिमुखेषु च ।।२।।
दक्षिणोत्तरगे सूर्ये तथा विषुवतोर्द्वयोः ।
संक्रान्तिषु च सर्वासु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।।३।।

गौएँ नित्य ही वन्दनीय, पूजनीय एवं सेवनीय होती हैं। गोशाला में स्थित गौओं की जो प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सदसदात्मक सम्पूर्ण जगत् की प्रदक्षिणा कर ली गयी। घर में स्थित सदोषा गौ का भी सदैव स्वयं पालन करे, क्योंकि शीलहीन विप्र ही पूज्य होता है न कि सुसंयत शूद्र। शिशिर ऋतु में अनाथ गौओं के लिये यत्नपूर्वक मठ (घर) का भी निर्माण करना चाहिये, जहाँ पर पुण्यार्थ घास, जल, और शीतनिवारक ईन्धन भी दिये जाते हैं। गौ के प्रसव के बाद दो मास तक वत्स को दूध

पिलाये, तीसरे मास में दो स्तन दुहे, चौथे में तीन और उसके बाद जैसा उचित समझे वैसा करे। आषाढ़, आश्विन, पौष और माघ की पूर्णिमा को सदैव गोदुग्ध ग्रहण नही करना चाहिये, सब दूध बछड़े के लिये छोड़ दे। युगादि तिथि, युगान्त तिथि संक्रान्ति, दक्षिणायन तथा उत्तरायण में सूर्य के जाने के समय, मेष तथा तुला के संक्रमण में, सभी संक्रान्तियों में, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में साण्डों को न ढोने में लगाये, न तो गौओं को भार से पीड़ित करे ।

गोपरिचर्या (ब्रह्मपुराणे)

पंचदश्यां चतुर्दश्यां द्वादश्यामष्टमीषु च ।
उपचारो गवां कार्यो मासि-मासि यथाक्रमम् ।।४।।
लवणस्य तु चत्वारि पलान्यष्टौ घृतस्य च ।
परकीयस्य दुग्धस्य तथा देयानि षोडश ।।५।।
द्वात्रिंशत्शीतलस्यापि जलस्य च पलानि च ।
आदौ विचार्य्य पयसः परिमाणं बलं रुचि ।।६।।
आकस्मिकं तु दातव्यं पुण्यार्थं तु गवाह्निकम् ।
प्रभाते लवणं यत्र दीयते च ततो जलम् ।।७।।
ततस्तृणानि भोज्यं च पोषणं मासवर्जितम् ।
निशि दीपः सतन्त्रीको दिव्या पौराणिकी तथा ।।८।।
एवं कृते महीं पूर्णा रत्नैर्दत्वा भवेत्फलम् ।
गोप्रदानाय यत्पुण्यं गवां संरक्षणाद् भवेत् ।।९।।
मनुष्यैस्तृणतोयाद्यैर्गावः पाल्याः प्रयत्नतः ।
देयाः पूज्याश्च पोष्याश्च प्रतिपाल्याश्च सर्वदा ।।१०।।

प्रत्येक मास की पूर्णिमा, चतुर्दशी, द्वादशी और अष्टमी को यथाक्रम से गौओं का उपचार करना चाहिये। चार पल लवण, आठ पल घृत, दूसरे का दूध सोलह पल, बत्तीस पल शीतल जल– इन सबको दूध का परिणाम, गौओं का बल और उनकी रुचि का सर्वप्रथम विचार करके आकस्मिक ही गौ को दे देना चाहिये । पुण्य के लिये अन्य भी गवाह्निक प्रदान करे । जहाँ प्रभातकाल में लवण, पुनः जल दिया जाता है। उसके बाद घास, भोज्यपदार्थ तथा मांसवर्जित अन्य पुष्टिप्रद पदार्थ दे। रात्रि में दीप प्रदान कर वीणावादन सहित पुराणों की दिव्य कथा गौओं को सुनाये । ऐसा करने से रत्नों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी के दान का फल प्राप्त होता है। गोदान करने से जो पुण्य होता है, वही गौओं का पालन–पोषण से होता है। इसलिये मनुष्यों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक घास, जल आदि से गौओं का पालन–रक्षण करना चाहिये। क्योंकि गौएँ दान करने योग्य, पूजनीय, पोषणीय एवं सर्वथा ही रक्षणीय होती हैं।

तथा

तृणोदकाद्येषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः ।
क्षीरं प्रमुंचन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभ्यैर्विमुक्ताः ॥१२॥
इमं मन्त्रं स शुद्धात्मा जपेन्नित्यं समाहितः ।
गच्छन् शीघ्रं जपन् जिघ्रन् भुंजन् क्रीडन् समुत्सृजेत् ॥१३॥
महाभयेषु सर्वेषु समेषु विषमेषु च ।
प्रयाणकाले च तथा श्रोतव्यमभयप्रदम् ॥१४॥

तृण, जल आदि से युक्त वनों में प्रसन्न होकर बछड़ों के सहित गौएं क्रिड़ा करे। दुग्ध प्रदान करें और शीत,आपदा व्यधि से मुक्त होकर सुखपूर्वक सोयें वह शुद्ध अन्त करन वाला इस मन्त्र को समाहित चित्र होकर नित्य ही जपे, शीघ्रता से जाते हुए, सूँघते हुए, खाते हुए और क्रिड़ा करते हुए इस मन्त्र का जप करे और गौओं को वन में कीड़ार्थ छोड़े।सबप्रकार के महाभय के उत्पन्न होने पर सम तथा विषम परिस्थितियों में तथा यात्राकाल में अभय इस मन्त्र का श्रवण करना चाहिये।

॥ इति गोपरिचर्या ॥

तथा –

घासग्रासादिकं देयं निशि दीपः सुभास्वरः ।
इतिहासपुराणानां व्याख्यानं सोपवीणनम् ॥१५॥
अन्तस्तुष्टैर्यथाशक्त्या परिचर्या यथाक्रमम् ।
ताडनाक्रोशखेदाश्च स्वप्नेऽपि न कदाचन ॥१६॥
तासां मूत्रपुरीषे तु नोद्वेगः क्रियते क्वचित् ।
शोधनीयश्च गोवाटः शुष्कक्षारादिकैः सदा ॥१७॥
ग्रीष्मे वृक्षाकुले वेश्म शीततोये विकर्दमे ।
वर्षासु चाथ शिशिरे सुखोष्णे वातवर्जिते ॥१८॥

गौओं को घास, जल आदि प्रदान करे। रात्रि में सुन्दर प्रकाश देनेवाला दीप तथा वीणावादन सहित इतिहास–पुराणों का व्याख्यान गौओं को सुनाना चाहिये। अन्तःकरण से प्रसन्न होकर शक्ति के अनुसार यथाक्रम गोपरिचर्या करनी चाहिये। कभी स्वप्न में भी गौ का ताडन, उनके लिये आक्रोश तथा खेद नहीं करना चाहिये तथा सूखे राख आदि से सदा ही गोशाला को साफ–सुथरा और पवित्र बनाने चाहिये। ग्रीष्म में सघन वृक्षयुत घर शीतल, वर्षाकाल में कीचड़ से विशेष सुरक्षा तथा शिशिर में वायुरहित सुखप्रद उष्ण स्थान में रखे।

उच्छिष्टं मूत्रविट्श्लेष्ममलं जह्यान्न तत्र च ।

रजस्वला न प्रवेश्या नान्त्यजातिर्न पुंश्चली ॥१९॥
न लंघयेद् वत्सतरीं च क्रीडेद् गोष्ठसन्निधौ ।
न गन्तव्यं गवां मध्ये सोपानत्कैः सपादुकैः ॥२०॥
हस्त्यश्वरथयानैश्च सवितानैः कदाचन ।
दक्षिणोत्तरगैः प्रह्वैर्गन्तव्यं च पदातिभिः ॥२१॥
गावः कृशातुराः पाल्याः श्रद्धया पितृमातृवत् ।
गिरिप्रपातसिंहर्क्षशीतातपभयातुराः ॥२२॥
महाकोलाहले घोरे दुर्द्दिने देशविप्लवे ।
गवां तृणानि देयानि शीतलं च तथा जलम् ॥२३॥
॥ इति गोपरिचर्याऽध्यायः ॥

गोशाला में जूठा अन्नादि, मूत्र, पुरीष, थूक अथवा किसी प्रकार का मल नहीं छोड़े। वहाँ रजस्वला, व्यभिचारिणी एवं अन्त्यज प्रवेश न करे। बछिया को न लाँघे, गोशाला के समीप न खेले और गौओं के मध्य में जूते या पादुका पहनकर न जाय। हाथी, घोड़े से युक्त सवितान रथ पर बैठकर गौओं के समीप न जाय। दोनों हाथ जोड़कर नम्र होकर दक्षिणोत्तरप्लव गोष्ठ में पैदल चलकर ही जाना चाहिये । कृश और आतुर गौओं का पालन-पोषण श्रद्धापूर्वक पिता-माता की तरह करना चाहिये। पहाड़, झरने, सिंह, भालू, ठण्डी, गर्मी और भय से व्याकुल, महान् कोलाहन के समय, भयंकर दुर्दिन में तथा राष्ट्र में विप्लव होने पर गौओं के लिये घास और शीतल जल प्रदान करना चाहिये ।

धेनोः स्तनाद्विनिष्क्रान्तां धारां क्षीरस्य यो नरः ।
शिरसा प्रतिगृह्णीयात्स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥ हे.१/१७३/म.पु.॥

धेनु के स्तनों से निकले हुए दूध की धारा को जो मनुष्य अपने सिर पर ग्रहण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

सप्तव्रीहिधेनुदानविधिः- विश्वामित्रोक्तः

सप्तव्रीहिमयाः सप्त धेनवः परिकीर्तिताः ।
यथा तिलमयी धेनुस्तथैवैतास्तु कारयेत् ॥१॥
यच्च व्रीहिमयी धेनुर्गोधूमा सतिला परा ।
माषमुद्गमयी चैव सप्रियंगुश्च सप्तमी ॥२॥
उपस्करं तु सर्वासु तिलधेनुवदीरितम् ।
एतासामेव धेनूनामंगानि तिलधेनुवत् ॥३॥
सप्तव्रीहिमयाः सप्त यो ददातीह मानवः ।
स याति परमं स्थानं वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥४॥

ब्रह्महा च सुरापश्च तस्करो गुरूतल्पगः ।
धेनुदानेन पूतोऽसौ याति विष्णोः परं पदम् ।।५।। ***इति //***

सात प्रकार के अन्नों से युक्त सात धेनुओं का विधान बताया गया है। जैसे तिलमयी धेनु का विधान है, वैसे ही सप्तव्रीहिमय धेनुओं को करे। चावल, गेहूँ, तिल, जौ, माष, मूंग और प्रियंगु की जो धेनु हैं, उनके सभी उपकरण तिलधेनु के समान बताये गये हैं। इन सभी धेनुओं के अंग भी तिलधेनु के समान होते हैं। जो मनुष्य इस लोक में सप्तव्रीहिमय सात धेनुओं का दान करता है, वह वायुभूत आकाशमूर्ति की तरह परम स्थान को प्राप्त करता है। ब्रह्मघातक, सुरापान करनेवाला, तस्कर और गुरुपत्नी में गमन करनेवाला इस धेनुदान से पवित्र होकर विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है ।

शिवधर्मोत्तरे गोशान्तिः गर्गप्रोक्ता

गर्ग उवाच

व्याधयस्तु दश प्रोक्ता गवां वक्ष्यामि यादृशाः ।
उद्विग्नो हृदयग्राही पतनो मोहनस्तथा ।।१।।
तेषां रूपसमुत्थानं तादृशं तद् ब्रवीमि वः ।
शान्तिकर्म च निर्दिष्टं यादृशं तत्र निर्मितम् ।।२।।
रात्रौ गोष्ठेषु या गावो वित्रसन्ति यतस्ततः ।
उद्विग्नो नाम स व्याधिस्तेन चैव प्रजायते ।।३।।
अश्रुप्रमोचं कुर्वन्ति नयनात् प्रपतन्ति च ।
हृद्रोगं तद्विजानीयाद् गोषु रोगं विनिर्दिशेत् ।।४।।
शोणितं यत्र कुर्वीत पुरीषं मूत्रयन्ति वा ।
प्रवेपमानाः स्खलिताः पतिता व्याधिरुच्यते ।।५।।
हुंकारमथ कुर्वन्ति मण्डलानि तथैव च ।
भविष्यात्सम्प्रियन्ती च मूढसंज्ञं विदुर्बुधाः ।।६।।
पुरीषं पूतिकं यासां क्षौद्रमर्व्वत् प्रवर्तते ।
तं पूतनागृहं विद्याद् गोषु रोगसमुत्थितम् ।।७।।

गर्गाचार्य ने कहा- गौओं के रोग दस प्रकार के जैसे होते हैं, बताता हूँ । उद्विग्न, हृदयग्राही, पतन तथा मोहन । इनका समुत्थान कैसे होता है? वह भी तुम्हें बताता हूँ। वहाँ के लिये निर्मित जैसा शान्तिकर्म बताया गया है, सुनो! रात्रि में गौएँ भयभीत हो जहाँ-तहाँ भागती हैं, वह उद्विग्न नाम का रोग है, इसी से वे वैसा करती हैं। नेत्रों से आँसू बहाती हुई कभी-कभी गिर जाती हैं, उसे हृदयरोग समझना चाहिये।

इस प्रकार गौओं में रोग का निर्देश करे। जो बार-बार शोणितयुक्त गोबर और मूत्र को करती हैं तथा काँपती हुई गिर जाया करती हैं, उसे पतनरोग कहा जाता है। जो हुंकार करती हुई चारों और घूमती रहती हैं तथा भविष्य से प्रसन्न होती हैं, तो उस रोग को विद्वानों ने मूढ नामक रोग कहा है। जिनके गोबर से सड़ाँध गन्ध आती है तथा शहद जैसा पतला गोबर हो तो उसे गोष्ठ में पूतनागृह उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ।

यदि जिहवां विनिर्भर्ज्य गौर्या समभिधावति ।
कलिलो नाम नाम्नेह गोषु व्याधिर्भवत्यपि ।।८।।
रक्तानि जवनेत्राणि विप्लवन्ति श्रवन्ति च ।
मक्षिकायापि लीयन्ते व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ।।९।।
उत्थाय मण्डलं याति वातेन क्षिप्यते च या ।
कर्णक्षेपगतिर्ज्ञेयो गोषु व्याधिः समुत्थितः ।।१०।।
क्षुरेण या न शक्नोति यातुमुल्लंघ्य संस्थिता ।
खैरकी नाम स ज्ञेयो गोषु रोगः समुत्थितः ।।११।।
यस्याः स्फुरन्ति गात्राणि रोमाण्यूर्द्ध्वानि सन्ति च ।
उभौ च कर्णौ लम्बेते विद्यात्तं कर्णलम्बकम् ।।१२।।
इत्येते व्याधयो दिष्टा यथेज्या एव चापरे ।
तेषु तेषु यथोद्दिष्टं शान्तिकर्म प्रयोजयेत् ।।१३।।
ब्रह्मचारी शिरःस्नातो निराहारः क्षमी शुचिः ।
आत्मरक्षां स्वयं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत् ।।१४।।

यदि गौ बार-बार जिह्वा को निकालकर पृथ्वी पर दौड़ती भागती है, तो गौओं में कलिल नामक रोग जानना चाहिये। नेत्रों को अत्यन्त चंचल बनाकर जो रक्त की धारा बहाती हैं तथा वहाँ मक्खियाँ बैठ रही हैं, तो उसे अतिशय भयंकर रोग समझना चाहिये। बैठी हुई गौ यदि खुर से चल नहीं पाती है, तो उसे खैरकी नाम का रोग समझना चाहिये। जिसके अंग बार-बार स्फुरित होते रहते हैं, रोम ऊपर की और खड़े हो जाते हैं और दोनों कान भी लटककर झूलते रहते हैं तो कर्णलम्बक रोग जाने। ये दस रोग और उनके लक्षण बताये गये। इनकी निवृत्ति के लिये यथोद्दिष्ट अनुष्ठान करे। उन-उन रोगों में शास्त्रोक्त शान्तिकर्म का प्रयोग करना चाहिये ।

नग्नाः कषायवसनाः मूढा ये परिचाारिणः ।
व्यंगाश्च स्खलिताश्चैव दूरतः परिवर्जयत् ।।१५।।
काणांश्चित्रांश्च कुष्ठांश्च तथा पक्षहतानपि ।
अन्त्यावसायिनश्चैव दूरतः परिवर्जयेत् ।।१६।।

अश्वत्थे वा पलाशे वा समदेशे त्वनूषरे ।
महास्थानैकवृक्षे वा देवगोष्ठेऽपि वा भवेत् ॥१७॥
गणकस्तु शुचिर्भूत्वा देवताद्युपकल्पयेत् ।
प्रतिष्ठाय ततो देवान् वेदीं कुर्यात्प्रमाणतः ॥१८॥
पूर्वं कुम्भान् कुशान् माल्यं लाजानुल्लोमिकांस्तथा ।
फलं पक्वाशनं चापि तथैव हिमपिण्डिकाम् ॥१९॥
घृतसर्षपतैलेन सर्षपानक्षतांस्तथा ।
मुक्तप्रतिसरान् गन्धान् समिधस्तु समाहरेत् ॥२०॥
उदुम्बरं पलाशं च खदिरं बिल्वमेव च ।
अश्वत्थं च शमीं चैव समिधस्तत्र कारयेत् ॥२१॥

शान्तिकर्म के प्रयोग में पञ्चविध नग्न (एककच्छो द्विकच्छश्च मुक्तकच्छस्तथैव च। एकवासा अवासाश्च नग्नः पञ्चविधः स्मृतः।।), कषायवस्त्रधारी, मूढ सेवक, अंगहीन या विशेषांग और अधर्मी का दूर से ही त्याग कर देना चाहिये। काणे, चित्रकुष्ठी, श्वेतकुष्ठी, पक्षाघात से युक्त और सात प्रकार के अधम जाति (चाण्डाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध तथा अयोगव) वालों का भी शान्तिकर्म में त्याग करे । अश्वत्थ अथवा पलाश का एक वृक्ष हो, समतल लम्बा-चौड़ा बृहत् स्थान हो। उपजाऊ हो, देवालय अथवा गोष्ठ हो तो वहाँ गोशान्तियज्ञ को करना चाहिये। ज्योतिष विद्या का जाननेवाला पवित्र होकर शुभमुहूर्त में देवताओं का आवाहन कर उनकी प्रतिष्ठा करे, तदर्थ प्रमाणानुसार सुन्दर वेदियों का निर्माण करे। यज्ञार्थ जलपूर्ण कुम्भ, माला, लाजा, सुन्दर चँदोवे या वितान, फल एवं अन्य गव्यपदार्थ, पकवान और विशिष्ट भोज्यपदार्थ तथा कर्पूर, गोघृत, सरसों का तेल, सर्षप, अक्षत, रक्षासूत्र, यज्ञोपवीत, गन्ध और समिधा का आहरण, उदुम्बर, पलाश, खदिर, बिल्व, पीपल और शमी की समिधा लाये ।

चत्वार्यत्र सहस्राणि पर्वमात्राणि कारयेत् ।
हयास्थिवारणास्थीनि उलूकस्य समाहरेत् ॥२२॥
एतान्यस्थीनि धूपार्थं सर्वाण्येव समाहरेत् ।
वचया सह संयुक्तं धूपं गोषु समानयेत् ॥२३॥
सुरारुधिरसंयुक्तं मांसं पक्वामिषं तथा ।
दिशां च विदिशां चैव बलिं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥२४॥
गावस्तु सर्वगोष्ठात्तु देवगोष्ठमुपानयेत् ।
आज्यधूपश्च गन्धाश्च ग्राहयित्वा प्रदक्षिणाम् ॥२५॥
अग्निं प्रणीय विधिवत् परिस्तीर्य्य समन्ततः ।
बलेन विजयेच्चापि मुहूर्ते कर्म कारयेत् ॥२६॥

शान्तिमेतां प्रयुंजानः सावित्रीं मनसा जपेत् ।
एषा हि वेदमाता तु द्विजैः पूर्वमुदाहृता ॥२७॥
कृष्णच्छागस्य देहेन कर्णाभ्यां गृह्य प्रोक्षितम् ।
समिधो जुहुयाच्छान्तो सर्वत्रैव घृतेन च ॥२८॥
रक्षोघ्नतैलं कृशरं रक्तमाल्येन संयुतम् ।
एवं तु जुहुयाद्विप्रो हृद्रोगस्य विनाशनम् ॥२९॥
पुष्पकर्णस्य छागस्य शोणितं हावयेत्ततः ।
यावनं कटुतैलं च व्याधिं दृष्ट्वानुपातनम् ॥३०॥
शमीमय्यस्तु समिधः कृशरं यावकं तथा ।
रक्षातैलेन संयुक्तं व्याधिः स्याच्चात्र मोहकः ॥३१॥
पाण्डुरस्य च छागस्य वसां हृदयमेव च ।
मधु सर्पिश्च जिह्वां च जुहुयात् पूतनागृहे ॥३२॥
पलाशखादिरीमांसैर्व्याधिः शाम्यति दारुणः ।
कृष्णग्रीवस्य छागस्य छागल्या वा तथा भवेत् ॥३३॥
शोणितं सर्पिषा युक्तं जहुयाद्दारुणामये ।
वयोवृद्धस्य छागस्य वसां हृदयशोणितम् ॥३४॥
अरिष्टाकृतसंयुक्तं कण्ड्वक्षेमस्य नाशनम् ।
घृतं सर्षपतैलं च हृदयं कुक्कुटस्य च ॥३५॥

यथोपनीताः समिधो हावयेल्लम्बकर्णके ।
गवां शान्तिं यथोद्दिष्टां यः प्रयुक्तां द्विजर्षभ ॥३६॥
कारयेच्च गवार्थे वा जपेयुश्च शतैर्वरम् ।
तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्यं तथैव च ।
गावश्च सम्यग्वर्द्धन्ते लोके कीर्तिमवाप्नुयात् ॥३७॥
॥ इति गवां शान्तिकर्म ॥

यथोपनीत समिधा का कुण्ड में होम करे। हे द्विजश्रेष्ठ! जो शास्त्रों में निर्दिष्ट गोशान्ति कर्म को सैकड़ों उपायों से करवाते अथवा गौओं के लिये (सुरभिमन्त्र का) उत्तम जप करते-कराते हैं उसके पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, गोवंश का संवर्धन तथा इस लोक में कीर्ति की भी प्राप्ति होती है ।

हेमाद्रौ 2।2।1030, शिवधर्मोत्तरे

गवां महामारीशान्तिमन्त्राः

ब्रह्मणा ब्रह्मपादेन स्तूयते प्रणवेन सः ।
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु ॥१॥
लम्बोदरेण देवेन गजवक्त्रेण सुस्तुतः ।

स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु ॥२॥
योऽर्च्यते च सदा भक्त्या विष्णुना प्रभविष्णुना ।
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु ॥३॥
सर्व्वरोगहरेणापि रविणा यः प्रणम्यते ।
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु ॥४॥
श्रीमतां रुचिरांगेण घण्टाकर्णगणेन यः ।
नित्यं प्रणम्यते भक्त्या हृष्टेनानन्यचेतसा ।
स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहतु ॥५॥

जो ब्रह्मा के द्वारा परमात्म्स्वरूप प्रणव से स्तुति किये जाते हैं, वह सनातन देवता भगवान् शिव गौओं में उत्पन्न महामारी को नष्ट करें। जो लम्बोदर गजमुख गणेश के द्वारा सम्यक् प्रकार से स्तुत हैं, वे सनातन देव शिव गौओं की महामारी को शान्त करें। जो सबके स्वामी महान् बलशाली श्रीविष्णु के द्वारा सदा ही भक्तिपूर्वक पूजे जाते हैं, वे सनातन देव शिव गौओं की महामारी को शान्त करें। सभी रोगों को हरनेवाले सूर्य भी जिनको प्रणाम करते है, वे शाश्वत सनातन भगवान् शिव गौओं की महामारी को शान्त करें। अनन्य चित्त से प्रमुदित भक्तियुक्त होकर श्रीमानों के रुचिर अंगों और विशिष्ट अनुचर घण्टाकर्णगण के द्वारा जो प्रणाम किये जाते है, वह सनातन देव गौओं की माहामारी को शान्त करें ।

नित्यं रुद्रबलोपेतो रुद्रभक्तिसमन्वितः ।
घण्टाकर्णगणो देवः शिवज्ञानविधायकः ।
शिवयोगानुभावेन गोषु मारीं व्यपोहतु ॥६॥
नमः शिवाय देवाय महादेवाय भाविने ।
रुद्राय स्थाणवे नित्यं हरायोग्राय ते नमः ॥७॥
परमेशाय सिद्धाय मन्त्रसिद्धिप्रदायिने ।
त्र्यम्बकाय महेशाय अनन्ताय नमो नमः ॥८॥
अभिमन्त्र्य सदा तोयमेतैर्मन्त्रैर्यथाक्रमम् ।
प्रार्थयीत गवां देवं ततः सिद्धिर्भविष्यति ॥९॥
य इदं पठते गोषु प्रस्थाने वा समागमे ।
आयुष्मान् बलवान् भोगी श्रीमानर्थपतिर्भवेत् ॥१०॥
देहान्ते च परं स्थानं स गच्छेन्नात्र संशयः ।
सर्वपापविशुद्ध्यर्थं गोशान्तिकमिदं पठेत् ॥११॥
॥ इति गोशान्तिः॥

नित्य रौद्रबल से युक्त, रुद्रभक्ति से समन्वित और शिवतत्त्व को प्रकट करनेवाले घण्टाकर्णगण देव शिवयोग के बल से गौओं की महामारी को शान्त करें।

शिव, देवाधिदेव, अग्रगण्य, रुद्र, स्थाणु, हर और उग्रस्वरूप शंकर को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। मन्त्रसिद्धि प्रदान करनेवाले, सिद्धों के सिद्ध, परमेश्वर, त्र्यम्बक, अविनाशी और सनातन शिव को में वारम्वार प्रणाम करता हूँ। गौओं की शान्ति के लिये यथाक्रम इन मन्त्रों से जल को अभिमन्त्रित कर गौओं को प्रदान करे तथा गौओं के अधिष्ठातृदेवता भगवान् रुद्र की प्रार्थना करे । तब कर्म की सिद्धि प्राप्त होगी। जो गौओं के प्रस्थान अथवा आगमन के समय इसका पाठ करता है, वह आयुष्मान् तथा बलवान् होकर सभी भोगों से युक्त श्रीमान् तथा वैभवशाली होता है। देहावसान के अनन्तर वह परम स्थान गोलोक को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है । सम्पूर्ण पापों से विशुद्धि के लिये इसका पाठ करना चाहिये।

कामधेनु व्रतं पूजनञ्च

कार्त्तिकः खलु मासो वै सर्वदेवमयो महान् ।
कृष्णपक्षे विशेषेण तत्र पंचदिनानि तु ।।१।।
पुण्यानि तेषु यद्दतमक्षयं सर्व्वकामिकम् ।
एकादश्याद्यमान्तं तु दीपं दद्यात् सुभक्तिमान् ।।२।।
गृहेषु सर्वगोष्ठेषु चैत्येष्वायतनेषु च ।
देवानां चैव रथ्यासु श्मशानेषु सरस्सु च ।।३।।
सर्वत्र दीपा दातव्या रात्रावस्तमिते रवौ ।
चतुर्दश्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याच्च यत्नतः ।।४।।
अमायां पूजनीया श्रीः प्रदोषे भक्तिशक्तितः ।
श्रीकामैस्तत्र शर्वर्या क्रीडितव्यं प्रयत्नतः ।।५।।
बन्धुभिः सहितैः पत्न्या नृत्यगीतप्रजागरैः ।
यदि हर्ष प्रयातीह तस्य संवत्सरं जयम् ।।६।।

कार्तिक मास निश्चय ही सर्वदेवमय महान् होता है, विशेषकर कृष्णपक्ष के पाँच दिन । उन पुण्य दिनों में जो कुछ भी दिया जाता है वह अक्षय और सभी कामनाओं को देनेवाला होता है। एकादशी से अमावस्यापर्यन्त भक्ति से युक्त हो दीप का दान करे। घरों में, गौशालाओं में, पूजास्थान में, देवमन्दिरों में, गलियों में, श्मशान में, सरोवर में और सर्वत्र सूर्यास्त हो जाने पर दीपदान करना चाहिये । चतुर्दशी और अमावस्या को यत्नपूर्वक श्राद्ध भी करे। अमावास्या को प्रदोषकाल में भक्तियुक्त हो यथाशक्ति लक्ष्मी की पूजा करे। तथा वैभव की कामना से उस रात्रि में प्रयत्नपूर्वक द्यूतक्रीड़ा भी करे। पत्नी और अपने बन्धुओं सहित नृत्य-गीत के साथ रात्रि में

जागरण करते हुए यदि आनन्दित हो समय को व्यतीत कर लेता है तो उसको सम्वत्सर पर्यन्त सर्वत्र जय की प्राप्ति होती है ।

नन्दा सुनन्दा सुरभी सुशीला सुमना तथा ।
निर्गता मथ्यमानाब्धौ उषःस्नानं शुभप्रदम् ।।७।।
(कामधेनोराविर्भावभावितस्वदेहात् उषः प्रशस्यत इत्यर्थः)
तत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य धेनुं पूज्य प्रयत्नतः ।
गोदानफलमाप्नोति नरो विगतकल्मषः ।।८।।
एकादश्यामुपोष्याथ नरो दिनचतुष्टयम् ।
घृतेन स्नापयेद्विष्णुं गव्येन पयसाऽपि वा ।।९।।
नक्ताशी गोरसैर्हव्यैः पूजयेन्मधुसूदनम् ।
गन्धपुष्पैः सुनैवेद्यैर्वस्त्रालंकारकुण्डलैः ।।१०।।
यथोपचारैः सम्पूज्य श्रिया युक्तं तु नामभिः ।
पृथग्जागरणं कुर्याच्छ्रिया सार्द्धं जगत्पतेः ।।११।।
या देवी भार्गवं तेजः कुलं सर्वत्र पूजिता ।
आयातु सा गृहे नन्दा सुप्रीता वरदा मम ।।१२।।
याऽगिरसं सदा देवी सुनन्दा प्रत्युपस्थिता ।
आयातु मे गृहे सा तु सुप्रीता वरदा सती ।।१३।।

नन्दा, सुनन्दा, सुरभी, सुशीला और सुमना ये पाँच गौएँ समुद्रमन्थन से प्रकट हुई हैं, इन्हीं के देह से उषःकाल की उत्पत्ति होने से उषःकाल का स्नान शुभप्रद होता है । उषःकाल में स्नान करके धेनु का अर्चन-पूजन करे, तो मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर गोदान के फल को प्राप्त करता है। एकादशी में उपवास करके मनुष्य दिनों तक गोघृत एवं गोदुग्ध से भगवान् विष्णु को स्नान कराये। रात्रि में एकबार गोरस से युक्त हव्य पदार्थ को भोजन करे तथा गन्ध, पुष्प, सुन्दर नैवेद्य, वस्त्र, आभूषण और कुण्डलादि से भगवान् मधुसूदन का यथाविभव उपचार से लक्ष्मीसहित सहस्रनाम से यथाविधि पूजन कर श्री सहित जगत्पति भगवान् विष्णु का पृथक्-पृथक् जागरण करे। जो देवी महर्षि भृगु के कुल की शोभा है और सर्वत्र सुपूजित है, वह देवी नन्दा प्रसन्न होकर मेरे घर में आगमन करें और वर प्रदान करें । जो अंगिरा के यहाँ सदा ही उपस्थित रहती है, वह सुनन्दा देवी प्रसन्न होकर मेरे घर आवें और वर प्रदान करें ।

सुरभी या भरद्वाजं कामधेनुः सुकामदा ।
सदा भजे गृहं साऽत्र ममायातु सुरार्चिता ।।१४।।
सुशीला कश्यपं या तु भजे सर्वत्र कामदा ।

सा मे भक्तु सुप्रीता कामधेनुर्गृहे सदा ॥१५॥
सुमना या वसिष्ठं तु सम्प्राप्य मुमुदे शुभा ।
सा मे गृहं सदाऽऽयातु कामदा सुरपुजिता ॥१६॥
एवं पूज्य विधानेन प्रभाते विमले शुभे ।
शुक्लाम्बरधरः स्नातः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥१७॥
कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलांगदभूषितः ।
प्रातः प्रतिपदि प्रीतः कामधेनुप्रदो भवेत् ॥१८॥
वर्ष हरेः सर्वमिदं पवित्रं तत्रापि वर्य्या शरदेव शुद्धा ॥
तस्मिन् शुभः कार्त्तिकनाममासस्तत्रापि पुण्यो हि बभूव दर्शः ॥१९॥
यस्यां हरेर्दैत्यभयाद्विमुक्ता उरःस्थलं प्राप्य सुखेन शेते ।
लक्ष्मीः पुराऽद्यापि विनिर्मिता वै कामप्रदा धेनव एव यत्र ॥२०॥

सभी कामनाओं को देनेवाली कामधेनु भगवती सुरभी- जो भरद्वाज के यहाँ सदैव निवास करती है, सभी देवताओं से पूजित वह मेरे घर आवें। सर्वत्र सर्वकामप्रदा के रूप में प्रसिद्ध जो सुशीला देवी कश्यप के यहाँ विराजमान रहती है वह कामधेनु प्रसन्न होकर सदा मेरे घर में विराजें। सब प्रकार से शुभ करनेवाली देवी सुमना जो वसिष्ठ को प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, वही सभी देवताओं से पूजित सर्वकामप्रदा भगवती मेरे घर में पधारकर सदा निवास करें । इस प्रकार विधिवत् पूजन कर निर्मल और शुभप्रद प्रभातकाल में स्नानकर श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पों की माला और तिलक धारण करे। इस प्रकार नित्यक्रिया को सम्पन्न कर प्रसन्नचित्त हो कुण्डल, कंकन आदि आभूषण धारण करे। प्रतिपदा के प्रातःकाल में प्रसन्न होकामधेनु की पूजा आदि कर उसका दान भी कर दे। श्रीहरि का सम्पूर्ण वर्ष एवं प्रत्येक दिन पवित्र और श्रेष्ठ है, उनमें शरदऋतु, उसमें भी कार्तिक मास अतिशुभ है, उसमें भी अमावस्या अत्यन्त शुभ एवं श्रेष्ठ है, जिसमें दैत्यभय से विमुक्त हुए हरि के उरःस्थल को प्राप्त कर आज भी लक्ष्मी सुख से शयन करती हैं। पूर्वकाल में कामधेनु का प्राकट्य भी इसी दिन हुआ था ।

अहर्मुखे यत्र दिने समस्ताः सुधेनवो भूमितले भ्रमन्ति ।
गृहे न यस्मिन् कथयन्ति लीलां हानिः क्षयस्तत्र च सत्यमेतत् ॥२१॥
तस्मात्त्वमत्रैव च कामधेनुं दद्याः समुद्दिश्य तु केशवस्य ।
विप्राय वै सर्वगुणोपपन्नां कृत्वा व्रतं कृत्स्नमतो हरेस्तु ॥२२॥
सप्तापरान् सप्तावरानात्मानं चैव मानवः ।
सप्तजन्मकृतात्पापात् मोचयत्यवनीपते ॥२३॥

पदे-पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
दानानामेव सर्वेषामुत्तमं परिकीर्तितम् ॥२४॥
सर्वकामप्रदं धन्यं पापघ्नं सर्वदं शुभम् ।
सर्वेषामेव पापानां जातानां महतामपि ॥२५॥
प्रायश्चितमिदं शस्तं कथितं ब्रह्मणा नृप ।
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां कर्तव्यं च व्रतं नृप ॥२६॥
सर्वकामफलार्थाय कामधेनुव्रतं सताम् ।
व्रतान्ते तिलहोमश्च कामधेनोः प्रयत्नतः ॥२७॥
॥ इति ॥

गोयुग्मव्रतम् (देवीपुराणे)

वृषं गां च समादाय युवानौ लक्षणान्वितौ ।
हेमश्रृंगैः खुरै रौप्यैः सवस्त्रैः पूजयेन्मुने ॥१॥
शिवोमे पूजयित्वा तु तद्दिने सम्प्रयच्छति ।
शिवभक्ताय विप्राय रोहिण्या वा मृगेण वा ॥२॥
न वियोगो भवेत्तस्य सुतपत्नीपतेः क्वचित् ।
विमानैर्वा समारुह्य गच्छेच्छिवपुरं द्विजः ॥३॥
तत्र भोगांश्चिरं भुक्त्वा इह चागत्य जायते ।
समृद्धैर्धनधान्याद्यैः पुत्रमित्रसमाकुलैः ॥
विगतारिर्भवेद् ब्रह्म व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥४॥ इति ॥

गोरत्नव्रतम्

यो वा रत्नसमायुक्तं गोयुगं पूजयेन्मुने ।
प्रयच्छति शिवोमा च प्रीयतां भावितात्मनः ॥१॥
स सर्वपापदुःखाभ्यां विमुक्तः क्रीडते सदा ।
इह लोके भवेद्धन्यो देहान्ते परमं पदम् ॥२॥ इति ॥

ज्येष्ठाव्रतम् (अलक्ष्मीव्रतम्) हे.२।२।६३०, लिंगपुराणे

(दरिद्रा और दुःसह का प्रसंग)

ऋषय ऊचुः

कथं ज्येष्ठासमुत्पत्तिर्देवदेवाज्जनार्दनात् ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण तत्त्वतः ॥१॥

सूत उवाच

अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्दनः ।
ज्येष्ठा तेन समाख्याता ह्यलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः ॥२॥

अमृतोद्भववेलायां सुधानन्तरमुत्थिता ।
अग्रतः सा समुत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वै श्रुता ॥३॥
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहा ।
दुःसहो नाम विप्रर्षिरुपयेमेऽशुभां तदा ॥४॥
ज्येष्ठां तां परिपूर्णार्थो मनसा वीक्ष्य निष्ठिताम् ।
लोके चचार हृष्टात्मा तया सह मुनिस्तदा ॥५॥
यस्मिन् घोषो हरेश्चैव हरस्य च महात्मनः ।
वेदघोषस्तथा विप्रा होमधूम्रस्तथैव च ॥६॥
श्रोत्रियो वाऽथ यत्रासीत्तत्र तत्र भयार्द्दिता ।
पिधाय कर्णौ संयाति धावमाना इतस्ततः ॥७॥
ज्येष्ठामेवं विधां दृष्ट्वा दुःसहो मोहमागतः ।
तया सह वनं गत्वा चचार स तदा मुनिः ॥८॥
तत्रायान्तं महात्मानं मार्कण्डेयमपश्यत ।
प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिरब्रवीत् ॥९॥
दुःसह उवाच
भार्येयं भगवन् मह्यं न स्यास्यति कथंचन ।
किं करिष्यामि विप्रर्षे ह्यनया सह भार्यया ॥
प्रविश्याम्यनया कुत्र कुत्र न प्रविशामि वै ॥१०॥
मार्कण्डेय उवाच
श्रृणु दुःसह सर्वं त्वमकीर्तिरशुभान्विता ।
अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिशब्दिता ॥११॥
नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः ।
रुद्रभक्ता महात्मानो यस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥
स्थिता यत्र जना नित्यं न विशेथाः कथंचन ॥१२॥
नारायण हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
अच्युतानन्त गोविन्द वासुदेव जर्नादन ॥१३॥
नृसिंह वामनाचिन्त्य राघवेति च ये जनाः ।
वक्ष्यन्ति सन्ततं हृष्टास्तेषां धनगृहादिषु ॥
आरामे चैव गोष्ठेषु न विशेथाः कथंचन ॥१४॥
ज्वालाजालकरालं यत् सहस्रादित्यसन्निभम् ।
चक्रं विष्णोरतीवोग्रं तेषां हन्ति सदाऽशुभम् ॥१५॥
स्वाहाकारो वषट्कारो गृहे यस्मिन् प्रवर्तते ।
तद्द्विधा चान्यतो गच्छ सामघोषोऽथ यत्र वा ॥१६॥
वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्मपरायणाः ।
वासुदेवार्चनरता दूरतस्तान् विसर्जय ॥१७॥

अग्निहोत्रं गृहे येषां लिंगार्चा वा गृहेषु च ।
वासुदेवतनुर्वाऽपि चण्डिका यत्र तिष्ठति ।।
दूरतो व्रज तान् हित्वा सर्वपापविवर्जितान् ।।१८।।
नित्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्ये यजन्ति महेश्वरम् ।
तान् हित्वा व्रज वाऽन्यत्र दुःसह त्वं सहानया ।।१९।।
श्रोत्रिया ब्राह्मणा गावो गुरवोऽतिथिवैष्णवाः ।
रुद्रभक्ताश्च पूज्यन्ते यैर्नित्यं तान् विसर्जय ।।२०।।
दुःसह उवाच
यस्मिन् प्रवेशो योग्यो मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम ।
त्वद्वाक्याद् भयनिर्मुक्तो विशाम्येषां गृहे सदा ।।२१।।
मार्कण्डेय उवाच
यत्र भार्या च भर्ता च परस्परविरोधिनौ ।
सभार्यस्त्वं गृहं तस्य विशेथा भयवर्जितः ।।२२।।
देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
विनिद्रो यत्र भगवान् विशेथा भयवर्जितः ।।२३।।
वासुदेवे रतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदा हरिः ।
जपहोमादिकं नास्ति भस्म नास्ति गृहे नृणाम् ।।२४।।
पर्वण्यभ्यर्चनं नास्ति चतुर्दश्यां विशेषतः ।
कृष्णाष्टम्यां च रुद्रस्य सन्ध्यायां भयवर्जितः ।।२५।।
चतुर्दश्यां महादेवं न यजन्ति च यत्र वै ।
विष्णोर्नामविहीनास्त्यैरश्रुभास्त्यैर्दुरात्मभिः ।।२६।।
नमस्कारं च सर्वाय शिवाय परमेष्ठिने ।
ब्राह्मणे च नरा मूढा न वदन्ति दुरात्मकाः ।
तत्र वै सततं वत्स सभार्यस्त्वं समाविश ।।२७।।
वेदघोषो न यत्रास्ति गुरुपूजा न यत्र च ।
पितृकर्मविहीनाश्च सभार्यस्त्वं समाविश ।।२८।।
रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् कलहो वर्तते मिथः ।
अनया सार्द्धमनिशं विश त्वं भयवर्जितः ।।२९।।
लिंगार्चा नास्ति यस्यैव यस्य नास्ति तपो दमः । (शालिग्राम)
रुद्रभक्तिविनिन्दा वा तत्रैव विश निर्भयः ।।३०।।
अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्वा वैष्णवोऽपि वा ।
न सन्ति यद्गृहे गावः सभार्यस्त्वं समाविश ।।३१।।
एकच्छागं द्विरावेयं त्रिगवं पंचमाहिषम् ।
षडश्वं सप्तमातंगं सभार्यस्त्वं समाविश ।।३२।।
शयनासनकालेषु भोजनासनवृत्तिषु ।

येषां वदति वै वाणी नामानि न हरेः सदा ।।
तद्गृहं ते समाख्यातं सभार्यस्त्वं समाविश ।।३३।।
अश्नन्ति केवलं मूढाः पक्वमन्नं विचेतसः ।
स्नानमंगलहीनाश्च तेषां त्वं गृहमाविश ।।३४।।
या नारी शौचविभ्रष्टा देहसंस्कारवर्जिता ।
सर्वभक्षरता नित्यं तस्या स्थानं समाविश ।।३५।।
मद्यपानरताः पापा मांसभक्षणतत्पराः।
परदाररता मर्त्यास्तेषां त्वं गृहमाविश ।।३६।।
रजस्वलांगनां गच्छेच्चाण्डालीं वा नराधमः ।
कन्यां वा गामजां वाऽपि सभार्यस्त्वं समाविश ।।३७।।
सूत उवाच
इत्युक्त्वा स मुनिः श्रीमान् निमील्य नयने तदा ।
ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसंकाशस्तत्रैवान्तरधीयत ।।३८।।
मासे भाद्रपदे शुक्ले ज्येष्ठार्क्षे च यदा भवेत् ।
तत्र ज्येष्ठां समभ्यर्च्य सुखं प्राप्नोति मानवः ।।३९।।
।। इति ।।

तुलसी पूजा विधान- दे.भा.९।२५

नारद उवाच
तुलसी च यदा पूज्या कृता नारायणप्रिया ।
अस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं च वद साम्प्रतम् ।।२५/१।।
केन पूजा कृता केन स्तुता प्रथमतो मुने ।
तत्र पूज्या सा बभूव केन वद वा मामहो ।।२।।
किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधानकम् ।
तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।१६।।
सूत उवाच
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः ।
कथां कथितुमारेभे पुण्यां पापहरां पराम् ।।
श्रीनारायण उवाच
एकदाऽन्तर्हितायां च हरिर्वृन्दावने तदा ।
तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः ।।१७।।
वृन्दरूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च ।
विदुर्बुधस्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम् ।।१८।।
पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने ।

तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम् ॥१९॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम् ।
तेन विश्वपूजिताख्यां पूजितां च भजाम्यहम् ॥२०॥

नारदजी बोले- जिस समय विष्णुप्रिया तुलसी की पूजा की गयी थी, उस समय उनके द्वारा किये गये पूजनविधान तथा स्तोत्र को आप मुझे बताइये । हे मुने! सर्वप्रथम किसने उनकी पूजा की, किसने उनका स्तवन किया और किस प्रकार वे सर्वपूज्या हुई ? यह सब आप मुझे बताइये । हे महाभाग! तुलसी का ध्यान क्या है, स्तवन क्या है तथा पूजा का विधान क्या है? यह मुझे बताने की कृपा कीजिये । सूतजी ने कहा- नारद का वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ प्रहसित वदन से परम पुण्यप्रद पापहर कथा को कहना आरम्भ किये। श्रीनारायण बोले- एक बार तुलसी के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान् श्रीहरि विरह से व्यथित हो उठे और वृन्दावन जाकर उन तुलसी की इस प्रकार स्तुति करने लगे । श्रीभगवान् बोले- जब वृन्दरूप वृक्ष तथा अन्य वृक्ष एकत्र होते हैं, तब विद्वान् लोग उसे वृन्दा कहते हैं। ऐसी वृन्दा नाम से प्रसिद्ध अपनी प्रिया की मैं उपासना करता हूँ। जो देवी प्राचीनकाल में सर्वप्रथम वृन्दावन में प्रकट हुई थी, इसी कारण से जो वृन्दावनी नाम से प्रसिद्ध हुई, उस सौभाग्यवती देवी की मैं उपासना करता हूँ। असंख्य विश्वों में सदा जिसकी पूजा की जाती है, अतः विश्वपूजिता नाम से प्रसिद्ध उस सर्वपूजित भगवती तुलसी की मैं उपासना करता हूँ ।

असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा ।
तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्हयम् ॥२१॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना ।
तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः ॥२२॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम् ।
नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह ॥२३॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च ।
तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम् ॥२४॥
कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत् प्रियतमा सती ।
तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम् ॥२५॥

नारायण उवाच

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तस्थौ तत्र रमापतिः ।
ददर्श तुलसीं साक्षात् पादपद्मनतां सतीम् ॥२६॥
वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी ।
पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी ॥३२॥

एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम् ।
यः पठेतां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥३३॥

तुम असंख्य विश्वों को सदा पवित्र करती हो, अतः विश्वपावनी नामक देवी का मैं विरह से आतुर होकर स्मरण करता हूँ। जिसके बिना प्रचुर पुष्प अर्पित करने पर भी देवता प्रसन्न नहीं होते हैं, मैं शोक से व्याकुल होकर 'पुष्पसारा' नाम से विख्यात पुष्पों की सारभूता तथा परमशुद्ध उस देवी तुलसी का दर्शन करना चाहता हूँ। संसार में जिसकी प्राप्ति मात्र से भक्त को निश्चय ही आनन्द प्राप्त होता है, इसलिये 'नन्दिनी' नाम से विख्यात वह देवी अब मुझ पर प्रसन्न हो। सम्पूर्ण विश्वों में जिस देवी की कोई तुलना नहीं है, अतः तुलसी नाम से विख्यात श्रीकृष्ण की जीवनस्वरूपा तथा उन्हें निरन्तर प्रेम प्रदान करनेवाली है, इसलिये कृष्णजीवनी नाम से प्रसिद्ध वह देवी मेरे जीवन की रक्षा करे । नारायण ने कहा- इस प्रकार स्तुति करके रमापति श्रीहरि वही विराजमान हो गये। तभी उन्होंने सामने ही तुलसी का साक्षात् दर्शन किया । वह साध्वी श्रीहरि के चरणकमल में नत-मस्तक बनी हुई थी। वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी तथा कृष्णजीवनी- इन अर्थसहित नामाष्टक स्तोत्र का जो मनुष्य नित्य पाठ करता है वह अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मंगलम् ।
तस्य तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा ॥३४॥
तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या वै विश्वपावनीम् ।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥३५॥
कार्त्तिके तुलसीपत्रं यो ददाति च विष्णवे ।
गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥३६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम् ।
बन्धुहीनो लभेद् बन्धून् स्तोत्रश्रवणमात्रतः ॥३७॥
रोगी प्रमुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु पापान्मुच्येत पातकी ॥३८॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं श्रृणु ।
त्वमेव वेदे जानासि कण्वशाखोक्तमेव च ॥३९॥
तद्वृक्षे पूजयेत्तां च भक्त्या चावाहनं विना ।
तां ध्यात्वा चोपचारेण ध्यानं पातकनाशनम् ॥४०॥

कार्तिक पूर्णिमा को तुलसी का मंगलमय प्राकट्य हुआ था। उस समय भगवान् श्रीहरि ने सर्वप्रथम उनकी पूजा की थी। जो मनुष्य उस दिन विश्वपावनी तुलसी की

भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति कार्तिक महीने में भगवान् विष्णु को तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह निश्चय ही दस सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। इस नामाष्टक स्तोत्र के श्रवणमात्र से पुत्रहीन को पुत्र, भार्याहीन को भार्या एवं बन्धुहीन को बन्धुओं की प्राप्ति होती है। रोगी रोग से मुक्त होता है। बन्धन में पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धन से मुक्त होता है। भयभीत भय से तथा पापी पाप से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार मैने आपको तुलसीस्तोत्र बता दिया। अब ध्यान तथा पूजाविधि सुनिये। आप भी तो वेद में कण्वशाखोक्त ध्यान और विधान को जानते ही हैं। तुलसी का ध्यान पापों का नाश करनेवाला है, अतः उनका ध्यान करके आवाहन किये बिना ही तुलसीवृक्ष में विविध उपचारों से पूजन कर पुनः ध्यान करे, जो सभी पापों का नाश करनेवाला है।

तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूतां मनोहराम् ।
कृतपापेध्मदाहाय ज्वदग्निशिखोपमाम् ।।४१।।
पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम् ।
पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता ।।४२।।
शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्वपावनी ।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजेत्तां हरिभक्तिदाम् ।।४३।।
इति ध्यात्वा च सम्पूज्य स्तुत्वा च प्रणमेत्सुधीः ।।४४।।

तुलसी सभी पुष्पों की सारभूता, पवित्र, मनोहर और किये गये पापरूपी ईंधन को जलाने के लिये प्रज्वलित अग्निशिखा के समान उन साध्वी का भक्तिपूर्वक ध्यान करता हूँ। पुष्पों में अतुल्या, जिसका महत्त्व वेदों में वर्णित है और जो सभी अवस्थाओं में पवित्र रहती है, वही तुलसी नाम से प्रसिद्ध है। शिरोधार्य, सबकी अभीष्ट और विश्वपावनी हैं, उन जीवन्मुक्त मुक्ति तथा हरिभक्ति प्रदान करनेवाली भगवती तुलसी को मैं भजता हूँ। विद्वान् इस प्रकार तुलसी का ध्यान, पूजन, स्तवन तथा उन्हें प्रणाम करे ।

सूत उवाच

नारायणश्च सुस्नातो गत्वा तां तुलसीं प्रियाम् ।
सम्पूज्य विधिना भक्त्या ध्यात्वा स्तोत्रं चकार ह ।।२५/९।।
लक्ष्मीमायाकामवाणीबीजपूर्वं दशाक्षरम् ।
वृन्दावनीति ङेऽन्तं च वह्निजायान्तमेव च ।।१०।।
अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन संततम् ।
पूजयेद्यो विधानेन सर्वसिद्धिं लभेद् ध्रुवम् ।।११।।
घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च ।

नैवेद्येन च पुष्पेण चोपचारेण पूजयेत् ।।१२।।

श्रीहरि ने वृदावन पहुँचकर यथाविधि स्नानोपरान्त उन साध्वी का विधिवत् पूजन कर उनका ध्यान और स्तुति की। उन्होंने लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाग्बीज (ऐं) को पूर्व में लगाकर वृन्दावनी शब्द को चतुर्थी से युक्त करके अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) का प्रयोग करके दशाक्षर मन्त्र (श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा) से पूजन किया था। हे नारद! जो इस कल्पतरु रूपी मन्त्रराज से सविधि तुलसी की पूजा करता है, वह निश्चय ही सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। नारद! घृत का दीपक, धूप सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्पादि उपचारों से तुलसी की पूजा करे ।

शोकत्राणं भयत्राणं प्रीतिविश्वासभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।।१५।। ग.पु.
यदीच्छेच्छाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत् ।
द्यूतमर्थप्रयोगं च परोक्षे दारदर्शनम् ।।१६।। ग.पु.।
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासने वसेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।।१७।।
स पण्डितो यो ह्यनुरंजयेद् वै मिष्टेन बालं विनयेन शिष्टम् ।
अर्थेन नारीं तपसा हि देवान् सर्वांश्च लोकांश्च सुसंग्रहेण ।।१८।।
छलेन मित्रं कलुषेण धर्मं परोपतापेन समृद्धिभावम् ।
सुखेन विद्यां परुषेण नारीं वांछन्ति वै ये न च पण्डितास्ते ।।१९।।

<u>गर्गसंहिता</u>

वत्सासुर के पूर्व जन्म की कथा

बहुलाश्व उवाच

अहो पूर्वं कृतसुकृत्को हि वत्सासुरो मुने ।
श्रीकृष्णे लीनतां प्राप्तः श्रीप्रपूर्णे परात्परे ।।२।४।२३।।

नारद उवाच

मुरपुत्रो महादैव्यः प्रमीलो नाम देवजित् ।
वसिष्ठस्याश्रमे प्राप्तो नन्दिनीं गां ददर्श ह ।।२४।।
तल्लिप्सुर्ब्राह्मणो भूत्वा ययाचे गां मनोहराम् ।
तूष्णीं स्थिते गौरुवाच वसिष्ठे दिव्यदर्शने ।।२५।

नन्दिन्युवाच

मुनीनां गां समाहर्तुं भूत्वा विप्रः समागतः ।
दैत्योऽसि मुरजस्तस्माद् गोवत्सो भव दुर्मते ।।२६।।

श्रीनारद उवाच

तदैव वत्सरूपोऽभून्मुरपुत्रो महासुरः ।
वसिष्ठं गां परिक्रम्य नत्वा त्राहीत्युवाच ह ॥२७॥

गौरुवाच

द्वापरान्ते महादैत्य वृन्दारण्ये यदा तव ।
गोवत्सेषु गतस्यापि तदा मुक्तिर्भविष्यति॥२८।

श्रीनारद उवाच

परिपूर्णतमे साक्षात् कृष्णे पतितपावने ।
तस्माद्वत्सासुरो दैत्यो लीनोऽभून्नहि विस्मयः ॥२९॥

मिथिला का राजा बहुलाश्व ने कहा- हे मुने! अहो, पूर्व जन्म में अतिशय पुण्य करनेवाला वत्सासुर कौन था? जो श्रीयुक्त परात्पर श्रीकृष्ण में लीन हो गया। तब नारदजी बोले- पूर्वजन्म में यह मुर दैत्य का पुत्र देवताओं को जीतनेवाला प्रमील नामक दैत्य था, वह वसिष्ठजी के आश्रम में गया और वहाँ इसने नन्दिनी गौ को देखा। उस गौ को लेने की इच्छा से उसने ब्राह्मण बनकर मनोहर गौ को वसिष्ठजी से माँगा, जब दिव्यद्रष्टा वसिष्ठजी ने मौन होकर कुछ भी उत्तर नहीं दिया, तब वह नन्दिनी गौ उस दैत्य से बोली। नन्दिनी ने कहा- हे दुर्बुद्धे! तु मूनीश्वरों के गौओं को लेने के लिये ब्राह्मण बनकर आया है। तुम मुर का पुत्र महादैत्य हो, इसलिये तू गौ का बछड़ा हो जा। नारदजी कहते हैं- उसी समय वह मुर दैत्य का पुत्र प्रमोल नामक दैत्य बछड़ा हो गया। तब वत्सरूपधारी वह दैत्य वसिष्ठजी और नन्दिनी की परिक्रमा देकर प्रणाम करके बोला- त्राहि माम्, मेरी रक्षा करो। नन्दिनी गौ ने कहा- हे महादैत्य! द्वापर के अन्त में वृन्दावन में श्रीकृष्ण भगवान् बछड़े चराने को आयँगे। उन बछड़ों में जब तुम जायगा, तब तुम्हारी मुक्ति होगी। नारदजी कहते हैं- इसी कारण से यह परिपूर्णतम साक्षात् श्रीकृष्ण में लीन हो गया, इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्ण पतितपावन हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण की गोचारणलीला

श्रीनारद उवाच

गोपेच्छया रामकृष्णौ गौपालौ तौ बभूवतुः ।
गाश्चारयन्तौ गोपालैर्वयस्यैश्चैरतुर्वने ॥२।७/१॥
अग्रे पृष्ठे तदा गावश्चरन्त्यः पार्श्वयोर्द्वयोः ।
श्रीकृष्णस्य बलस्यापि पश्यन्त्यः सुन्दरं मुखम् ॥२॥
घण्टामंजीरझंकारं कुर्वन्त्यस्ता इतस्ततः ।
किंकिणीजालसंयुक्ता हेममालालसद्गलाः ॥३॥

मुक्तागुच्छैर्बर्हिपिच्छैर्लसत्पुच्छाच्छकेसराः ।
स्फुरतां नवरत्नानां मालाजालैर्विराजिताः ॥४॥
श्रृंगयोरन्तरे राजन् शिरोमणिमनोहराः ।
हेमरश्मिप्रभास्फूर्जच्छृंगपार्श्वप्रवेष्टनाः ॥५॥
आरक्ततिलकाः काश्चित् पीतपुच्छारुणांघ्रयः ।
कैलासगिरिसंकाशाः शीलरूपा महागुणाः ॥६॥
सवत्सा मन्दगामिन्य ऊधोभारेण मैथिल ।
कुण्डोघ्न्यः पाटलाः काश्चिल्लक्ष्यन्त्यो भव्यमूर्तयः ॥७॥

नारदजी कहते हैं- गायों की इच्छा से बलराम और कृष्ण दोनों भाई गौओं का पालन करनेवाले हुए, तब समवयस्क बालकों के साथ वन में गोचारण करते हुए विचरण करने लगे। तब आगे-पीछे और दोनों बगल में चरती हुई गौएँ श्रीकृष्ण और बलराम के सुन्दर मुख को ही देखती रहती थीं। घण्टी और मंजीर की झंकार करती गौएँ इधर-उधर घूमती रहती थीं। छोटे-छोटे घुंघरूदार आभुषण से युक्त स्वर्ण की माला गले में सुशोभित थी। मोतियों के गुच्छे और मोरपंखों से शोभित जिनकी पूँछ, स्वच्छपुष्प तथा देदीप्यमान नवरत्नों से युक्त मालाजाल जिनके गले में विराजित है। हे राजन्! सींगों के मध्य में शिरोमणि अत्यन्त मनोहर लगता है। स्वर्णरश्मिकी प्रभा से प्रभासित श्रृंग और दिव्य वस्त्र का आच्छादन भी अत्यन्त मनोहर है। कोई गौ लाल टीके वाली हैं, कोई पीली पूँछ वाली, लाल पैर वाली, कोई कैलासशिखर की तरह सफेद, सुशीला एवं महनीय उत्तम गुणवाली हैं। हे मिथिलानरेश! वे सभी सवत्सा अपने थनों के भार से मन्द-मन्द चलनेवाली हैं । भरे-पूरे स्तनोंवाली और कुछ पाटलवर्णा गौएँ अत्यन्त भव्य दीख पड़ती थीं।

काश्चित्पीता विचित्राश्च श्यामाश्च हरितास्तथा ।
ताम्रा धूम्रा धनश्यामा धनश्यामगतेक्षणाः ॥८॥
लघुश्रृंग्यो दीर्घश्रृंग्य उच्चश्रृंग्यो वृषैः सह ।
मृगश्रृंग्यो वक्रश्रृंग्यः कपिला मंगलायनाः ॥९॥
शाद्वलं कोमलं कान्तं वीक्ष्यन्त्योऽपि वने वने ।
कोटिशः कोटिशो गावश्चरन्त्यः कृष्णपार्श्वयोः ॥१०॥
पुण्यं श्रीयुमनातीरं तमालैः श्यामलैर्वनम् ।
नीपैर्निम्बैः कदम्बैश्च प्रबालैः पनसैर्द्रुमैः ॥११॥
कदलैः कोविदाराम्रैर्जम्बुबिल्वैर्मनोहरैः ।
अश्वत्थैश्च कपित्थैश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥१२॥
बभौ वृन्दावनं दिव्यं वसन्तुर्त मनोहरम् ।
नन्दनं सर्वतोभद्रं क्षिप्तचैत्ररथं वनम् ॥१३॥

यत्र गोवर्धनो नाम सनिर्झरदरीयुतः ।
रत्नधातुमयः श्रीमान् मन्दारवनसंकुलम् ।।१४।।

कोई पीली, चितकबरी, श्यामवर्णा, कोई काली, ताम्रवर्णा, मेघ के समान श्याम वर्ण वाली थीं। जिनके नेत्र घनश्याम श्रीकृष्ण को ही निहार रहे थे। कोई छोटे-छोटे सीगों वाली, कोई बड़े सीगों वाली, कोई ऊँचे सीगों वाली, कोई हरिण के समान सींगों वाली, कोई टेढें सीगों वाली कपिला हैं, जो सभी मंगल करनेवाली है। हरी-हरी कोमल मनोहर हरित तृणमय भूमि को वन-वन में देखती करोड़ों गौएँ श्रीकृष्ण के चारों और घास चरती हैं। पवित्र यमुनाजी के तीर श्याम तमालों का वन- जिसमें अशोक, निम्ब, कदम्ब एवं नवपल्लव से युक्त कटहल आदि के पेड़ थे। केला, कचनार, आम, जामुन, बेल, पीपल, कैथ, तुलसी और वासन्ती लताओं से मण्डित दिव्य वृन्दावन अत्यन्त सुशोभित हुआ, जो वसन्त ऋतु की मनोहर छटा को बिखेर रहा था। जो सब प्रकार से सुन्दर है और देवताओं के नन्दनवन तथा चैत्ररथ वन की शोभा को भी फीकी बना रहा था। जहाँ पर गोवर्धन नामक पर्वत है, उसमें सुन्दर गुफायें हैं, जिससे झरने झरते रहते हैं, जो रत्नों और उनेक धातुओं से युक्त हैं, इससे उसकी शोभा अच्छी है, वहाँ पर मन्दार नामक कल्पवृक्ष की भी बहुलता होने से वह दिव्य है ।

श्रीखण्डबदरीरम्भादेवदारुवटैर्वृतम् ।
पलाशप्लक्षाशोकैश्चारिष्टार्जुनकदम्बकैः ।।१५।।
पारिजातैः पाटलैश्च चम्पकैः परिशोभितम् ।
करंजजालकुंजाढ्यं श्यामैरिन्द्रयवैर्वृतम् ।।१६।।
कलकण्ठैः कोकिलैश्च पुंस्कोकिलमयूरभृत् ।
गाश्चारयन् तत्र कृष्णो विचचार वने वने ।।१७।।
वृन्दावने मधुवने पार्श्वे तालवनस्य च ।
कुमुद्वने बाहुले च दिव्यकामवने परे ।।१८।।
बृहत्सानुगिरेः पार्श्वे गिरेर्नन्दीश्वरस्य च ।
सुन्दरे कोकिलवने कोकिलध्वनिरसंकुले ।।१९।।
रम्ये कुशवने सौम्ये लताजालसमन्विते ।
महापुण्ये भद्रवने भाण्डीरोपवने नृप ।।२०।।
लोहार्गले च यमुनातीरे तीरे वने वने ।
पीतावासः परिकरो नटवेषो मनोहरः ।।२१।।
वेत्रभृद्वादयन् वंशी गोपीनां प्रीतिमावहन् ।
मयूरपिच्छभृन्मौली स्रग्वी कृष्णो बभौ नृप ।।२२।।

जो गोवर्धन श्रीखण्ड, बेर, केला, देवदारु, वट, पलाश, पाकड़, अशोक, बहेड़ा, अर्जुन और कदम्ब के वृक्षों से घिरे हुए हैं। पारिजात, पाटल और चम्पा के वृक्षों से चारों और से सुशोभित हैं। करंज के जालों से युक्त और श्याम वर्ण इन्द्रजौ के वृक्षों से आवृत हैं। मनोहर कण्ठवाली कोकिला, पुरुष जाति का कोकिल और मयूर बोलते हुए नृत्य कर रहे हैं। पपीहा झंकार कर रहे हैं, ऐसे गोवर्धन के वन में गौओं को चराते श्रीकृष्ण विचरने लगे। वृन्दावन में, मधुवन में, तालवन के बगल में, कुमुदवन में, बहुलावन में और कामवन में, बरसाने में, नन्दग्राम में, कोकिला के झंकार से युक्त सुन्दर कोकिलावन में, सौम्य लताओं के जाल से युक्त मनोहर कुशवन में, महापवित्र भद्रवन में, भाण्डीरवन और उपवन में, लोहार्गल या लौहवन में, यमुना के तीरवाले सभी वनों में पीताम्बर पहने, नटवर वेष का श्रंगार किये, बेंत का धारण किये, बंशी बजाते, मोरमुकुट धारण किये और वनमाला धारण किये गोपियों की प्रीति को बढ़ाते हुए विचरण करते श्रीकृष्ण अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ।

अग्रे कृत्वा गवां वृन्दं सायंकाले हरिः स्वयम् ।
रागैः समीरयन्वंशीं श्रीनन्दव्रजमाविशत् ॥२३॥
वेणुवंशीध्वनिं श्रुत्वा श्रीवंशीवटमार्गतः ।
गोरजोभिर्नभो व्याप्तं वीक्ष्य गेहाद्विनिर्गताः ॥२४॥
दूरीकर्तु ह्याधिबाधामाहर्तु सुखमुत्तमम् ।
विस्मर्तुं न समर्थास्तं द्रष्टुं गोप्यः समाययुः ॥२५॥
संकोचवीथीषु न संगृहीतः शनैश्चलन्गोगणसंकुलासु ।
सिंहावलोको गजबाललीलैर्वधूजनैः पंकजपत्रनेत्रः ॥२६॥
सुमण्डितं मैथिल गोरजोभिर्नीलं परं कुन्तलमादधानः ।
हेमांगदी मौलिविराजमान आकर्णवक्रीकृतदृष्टिबाणः ॥२७॥
गोधूलिभिर्मण्डितकुन्दहारः कर्णोपरिस्फूर्जितकर्णिकारः ।
पीताम्बरो वेणुनिनादकारः पातु प्रभुर्वो हलभूरिभारः ॥२८॥

भगवान् जब वन से व्रज (गोष्ठ) को आये हैं, उस समय की बड़ी शोभा है। संध्या समय में आगे गौओं का झुण्ड और पीछे गोपों का समूह, उनके साथ भगवान् स्वयं वंशी में अनेकों रागों की छेड़ते हुए नन्दव्रज को आये हैं। बाँस की बनी हुई वंशी की ध्वनि का श्रवण कर गौएँ वंशीवट के मार्ग से चले आ रहे हैं। उस समय गौ की धूलि से आकाशमण्डल व्याप्त हो रहा है। यह दृश्य देखकर गोपियाँ अपने अपने घर से बाहर निकल जाती हैं। मन की व्यथा को दूर करने के लिये, उत्तम सुख की प्राप्ति के लिये उनके दर्शन को गोपियाँ आती हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण को भुलाना

उनके वश की बात नहीं है। सँकड़ी गलियों में गौओं के झुण्ड में श्रीकृष्ण दिखायी नही पड़े, तब फिर-फिर के सिंह की तरह, बालक हाथी की तरह झूमते हुए चलते जो कमललोचन कृष्ण हैं, उनको गोपियाँ निहारतीं। हे मैथिल! गोरज से सुशोभित घुंघराली नीली अलकावलि को धारण किये, रत्नजड़ित सुवर्ण के किरीट, मुकुट, कुण्डल, बाजूबन्द, कंकण धारण किये और कानों तक किये टेढ़े किये हैं दृष्टिरूपी बाण जिन्होंने। गोरज से मण्डित कुन्द के हार हैं जिनके, कानों में कर्णिकार पुष्प धारण किये, पीताम्बर ओढ़े, वंशी बजाते, गोपियों को आह्लादित करते सन्ध्या समय पृथ्वी के भार उतारने वाले श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करे ।

।। इति श्रीकृष्णगोचारणवर्णनम् ।।

गोलाकवर्णनम्

गोलोके वृन्दावने गावः

वृन्दावनं भ्राजमानं दिव्यद्रुमलताकुलम् ।
चित्रपक्षिमधुव्रातैर्वंशीवटविराजितम् ।।१।२/३५।।
पुलिने शीतले वायुर्मन्दगामी वहत्यलम् ।
सहस्रदलपद्मानां रजो विक्षेपयन्मुहुः ।।३६।।
मध्ये निकुंजकुंजोऽस्ति द्वात्रिंशद्वनसंयुतः ।
प्राकारपरिखायुक्तोऽरुणाक्षयवटाजिरः ।।३७।।
सप्तधापद्मरागाग्राजिरकुड्यविभूषितः ।
कौटीन्दुमण्डलाकारैर्वितानैर्गुलिकाद्युतिः ।।३८।।
पतत्पताकैर्दिव्याभैः पुष्पमन्दिरवर्त्मभिः ।
जातभ्रमरसंगीतो मत्तबर्हिपिकस्वनः ।।३९।।
बालार्ककुण्डलधराः शतचन्द्रप्रभाः स्त्रियः ।
स्वच्छन्दगतयो रत्नैः पश्यन्त्यः सुन्दरं मुखम् ।।४०।।

दिव्य वृक्षलताओं से सघन जहाँ वृन्दावन शोभायमान है, जिसमें चित्र-विचित्र पक्षी तथा भ्रमरों की गुंजार से विराजमान वंशीवट है। जहाँ पुलिन में शीतल मन्द पवन सहस्र दलवाले कमलों की सुगंधि लिये मकरन्द को विखेरता हुआ मन्द-मन्द चलता है। जहाँ बत्तीस वनों के मध्य में परिकोटा और खाई से युक्त अक्षयवट वाला आंगन जिसमें है, ऐसा निज निकुण्ज है। सात प्रकार के पुखराज मणियों के चौक तथा कुड्यभित्तियों से विभूषित है और जहाँ कोटि चन्द्रमण्डल के आकार वाले चन्दोवे के पुष्पादि की कान्ति छिटक रही है। जिसपर ध्वजा-पताका फहरा रही है। ऐसे दिव्य फूलों के निकुंज मंदिरों के मार्ग बने हैं, जिनमें भ्रमरों की झंकार तथा मत्त मयूर और

पपीहों के शब्द हो रहे हैं । बालसूर्य के समान तेजवाले कुण्डल पहने, चन्द्रमा की सी कान्तिवाली स्वच्छन्द गतिवाली स्त्रियाँ मणियों अपने मुख को देखती हैं ।

रत्नाजिरेषु धावन्त्यो हारकेयूरभूषिताः ।
क्वणन्नूपूरकिंकिण्यश्चूडामणिविराजिताः ।।४१।।
कोटिशः कोटिशो गावो द्वारिद्वारि मनोहराः ।
श्वेतपर्वतसंकाशा दिव्यभूषणभूषिताः ।।४२।।
पयस्विन्यस्तरुण्यश्च शीलरूपगुणैर्युताः ।
सवत्साः पीतपुच्छाश्च व्रजन्त्यो भव्यमूर्तिकाः ।।४३।।
घण्टामंजीरसंरावाः किंकिणीजालमण्डिताः ।
हेमश्रृंग्यो हेमतुल्यहारमालास्फुरत्प्रभाः ।।४४।।
पाटला हरितास्ताम्राः पीताः श्यामा विचित्रिताः ।
धूम्राः कोकिलवर्णाश्च यत्र गावस्त्वनेकधा ।।४५।।
समुद्रवद्दुग्धदाश्च तरुणीकरचिह्निताः ।
कुरंगवद्विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मण्डिताः शुभाः ।।४६।।
इतस्ततश्चलन्तश्च गोगणेषु महावृषाः ।
दीर्घकन्धरश्रृंगाढ्या यत्र धर्मधुरधराः ।।४७।।

और जहाँ गोपीगण पैरों में नुपूर, बजने, पदकहार, बाजूबन्द, कंकण, छल्ला, अंगूठी और चूड़ामणि से विभूषित हुई रत्नजटित आंगनों में डोले रही हैं और करोड़ों गौएँ दरवाजे-दरवाजे पर सफेद पर्वत सी दिव्य गहनों से विभूषित, मन को हरनेवाली विराजती हैं। बहुत दूध देने वाली, तरुणी, शील, रूप और गुण से युक्त बछड़ासहित, पीली जिनकी पूँछ हैं, ऐसी भव्य मूर्तिवाली विचरती हैं। जिनके घंटी, नूपुर, पंसुरी, किंकिणी आदि बँधी हैं, जो सोने के सींग, हार और मालाओं से शोभित हैं। कोई लाल, सफेद रंग की, कोई हरी, कोई काली, कोई चितकबरी, कोई धूमरी, कोई-कोई कोकिलवर्णा- ऐसी अनेक प्रकार की गौएँ हैं। समुद्र की तरह बहुत दूध देनेवाली, तरुणियों के कर से चिह्नित हैं और हिरण की तरह उछलने वाले बछड़े से युक्त हैं। जहाँ इधर-उधर चलते हुए विशाल कन्धों वाले, बड़े-बड़े सींगों वाले धर्म के धुरन्धर वृषभ हैं जो गौओं के समूह में घूमते हैं ।

गोपाला वेत्रहस्ताश्च श्यामा वंशीधराः पराः ।
कृष्णलीलां प्रगायन्तो रागैर्मदनमोहनैः ।।४८।।
इत्थं निजनिकुंजं तं नत्वा मध्ये गताः सुराः ।
ज्योतिषां मण्डलं पद्मं सहस्रदलशोभितम् ।।४९।।
तदूर्ध्वं षोडशदलं ततोऽष्ददलपंकजम् ।
तस्योपरि स्फुरद्दीर्घं सोपानत्रयमण्डितम् ।।५०।।

सिंहासनं परं दिव्यं कौस्तुभैः खचितं शुभम् ।
ददृशुर्देवताः सर्वाः श्रीकृष्णं राधया युतम् ॥५१॥
दिव्यैरष्टसखीसंघैर्मोहिन्यादिभिरन्वितम् ।
श्रीदामाद्यैः सेव्यमानमष्टगोपालसेवितम् ॥५२॥
हंसाभैर्व्यजनांदोलचामरैर्वज्रमुष्टिभिः ।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशैः सेवितं छत्रकोटिभिः ॥५३॥

और सांवले गोपाल वेतों को हाथ में लिये मदनमोहन नामक राग में वंशियों को बजाते श्रीकृष्ण की लीला को गा रहे हैं। ऐसे उस निज निकुंज को देख देवता लोग प्रणाम कर जब मध्य में गये तब ज्योतियों के मण्डल, सहस्रदल वाले एक कमल को देखा। उसके ऊपर तीन सीढ़ियों से सुशोभित कौस्तुभ मणियों से जड़ा हुआ एक दिव्य सिंहासन है, उस सिंहासन पर बैठे हुए राधिकासहित श्रीकृष्ण को देखा । जो मोहिनी आदि दिव्य अष्टसखी और श्रीदामादिक अष्टगोपालों से सेवित हैं। हंस के समान सफेद दिव्य पंखे चमर, हिडोला और हीरों की दण्डी है, जिनमें ऐसे कोटि चन्द्रमा के समान करोड़ों छत्रों से शोभित हैं ।

श्रीराधिकालंकृतवामबाहुस्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणांघ्रिम् ।
वंशीधरं सुन्दरमन्दहासं भ्रूमण्डलामोहितकामराशिम् ॥५४॥
घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं बहुपीतवाससम् ।
वृन्दावनोन्मत्तमिलिन्दशब्दैर्विराजितं श्रीवनमालया हरिम् ॥५५॥
कांचीकलाकंचननूपुरद्युतिं लसन्मनोहारिमहोज्ज्वलस्मितम् ।
श्रीवत्सरत्लोत्तमकुन्तलश्रियं किरीटहारांगदकुण्डलत्विषम् ॥५६॥
दृष्ट्वा तमानन्दसमुद्रमग्नवत् प्रहर्षिताश्चाश्रुकलाकुलेक्षणाः ।
ततः सुराः प्रांजलयो नतानना नेमुर्मुरारिं पुरुषं परायणम् ॥५७॥
॥ इति नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीवृन्दावनधामवर्णनम् ।

श्रीराधिका से शोभित है बाईं भुजा जिनकी, स्वाधीन स्वतः सिद्ध टेढ़ा किये हैं दाहिने चरण जिन्होंने, वंशी लिये सुन्दर मन्द मुस्कानसहित भ्रुकुटीमण्डल से मोहित किया है कामदेव की राशि जिन्होनें, घन की सी जिनकी कान्ति है, कमलदण्ड से चौड़े जिनके नेत्र हैं, बड़ी भुजाओं वाले, पीताम्बर धारण किये, वृन्दावन के मतवाले भ्रमरों के शब्दों के गुंजार से शोभित हैं और वनमाला जिन्होंने धारण कर रखी है। कोंधनी के घूंघरू, कंकण और नूपुरों से शोभित हैं, शोभायमान मनको हरनेवाली है मन्द मुस्कान जिनकी, श्रीवत्स का चिह्न और उत्तम रत्न का किरीट-कुण्डल, बाजू तथा हार- इनसे शोभित हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के रूप को देखकर आनन्दरूपी समुद्र में

डूबने से हर्षित हो गये नेत्रों में आँसू छलक आये ऐसे सब देवताओं ने सिर झुकाकर पुराणपुरुष मुरारि श्रीकृष्ण को दण्डवत् किया।

।। इति श्रीवृन्दावनधामवर्णनम् ।।

गरुडपुराण

गजाश्वरथधान्यानां गवां चैव रजः शुभम् ।
अशुभं च विजानीयात्खरोष्ट्राजाविकेषु च ।। ग.पु.११४/४१।।
गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्यांगभवं रजः ।
एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम् ।।४२।।
एको हि गुणवान् पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम् ।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः ।।५८।।
जायमानो हरेद्दारान् वर्द्धमानो हरेद्धनम् ।
म्रियमाणो हरेत्प्राणान् नास्ति पुत्रसमो रिपुः ।।६०।।
ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता मृते पितरि वै ध्रुवम् ।
सर्वेषां स पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालकः ।।६४।।
बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ।।६६।।
नवे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः ।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ।।६७३।।

धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यं च दूरं गतं
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
मर्त्या स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ।।ग.पु.११५।२।।
आलापाद् गात्रसंस्पर्शात् संसर्गात् सह भोजनात् ।
आसनाच्छयनाद्यानात् पापं संक्रमते नृणाम् ।।११५/६।।
नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने ।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।१५।।
अबलस्य बलं राजा बालस्य रुदितं बलम् ।
बलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करस्यानृतं बलम् ।।११५/४१।।
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथाऽस्य मेधा स्याद्विज्ञानं चास्य रोचते ।।४२।।

लोभप्रमादविश्वासैः पुरुषो नश्यति त्रिभिः ।
तस्माल्लोभो न कर्तव्यः प्रमादो नो न विश्वसेत् ।।४४।।
ऋणशेषं चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ।।४६।।
दुर्जनस्य हि संगेन सुजनोऽपि विनश्यति ।
प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमैः कलुषीकृतम् ।।४७।।
अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां न बलं न तेजः ।।६७।।
स्थानस्थितस्य पद्मस्य मित्रौ वरुणभास्करौ ।
स्थानच्युतस्य तस्यैव क्लेशशोषणकारकौ ।।७१।।

मुखभंगः स्वरो दीनो गात्रस्वेदो महद्भयम् ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचतः ।।११४/७०।।
जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनतां गतः ।
कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम् ।।७९।।
इति

भुशुण्डिरामायण-पूर्वखण्ड १८

श्रीराम की बाललीला

कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च स्ववेश्मतः ।
सरय्वा अपरे पारं गोपराजस्य वेश्मनि ।।
सन्निवेश्य द्विजातिभ्यो बालस्वस्त्ययनं व्यधात् ।।१७।२३।।
ते बालकास्तत्र गवेन्द्रधामन्यलंकृता हेममयैर्विभूषणैः ।
विचेरुरानन्दितबन्धुलोचनाः स्वरूपसौन्दर्यलसत्प्रतीकाः ।।१७/२४।।
रामः सलक्ष्मणस्तत्र विचरन् व्रजवीथिषु ।
गोपालबालकैः साकं चिक्रीडे बहुधा प्रभुः ।।१८/४।।।
क्वचिद्वत्सान् समादाय धावमानो व्रजांगणे ।
क्वचिन्मयूरशिशुभिः परिवारितविग्रहः ।।५।।
क्वचिद्धंसैश्च कादम्बैः कारण्डबकलैस्तथा ।
चटकैश्च कपोतैश्च चिक्रीडे गोकुले चरन् ।।६।।
स गोकुलवरस्त्रीणां हृदयानि प्रमोदयन् ।
बालकेलिं चकारोच्चैर्मोहयन् गोपकन्यकाः ।।७।।

कस्तूरीतिलकविराजिभालदेशो मुक्तास्रङ्मणिगलचारुकण्ठहार: ।
नासाग्रे पृथुगजमौक्तिकं दधानो बिभ्राण: करकमलेन मंजुवेणुम् ।।८।।
चूडाल: करयुगहेमकंकणश्री: श्रीखण्डद्रवमकरीविरोचिगात्र: ।
गोपाली मनसि विवर्द्धयन् मनोजं कुर्वाणो दधिनवनीतचौर्यलीलाम् ।।९।।
गृहे गृहे विशन् रामो विचरन् बालकै: सह ।
मांगल्यां चैव कौशल्यां समुपालम्भयज्जनै: ।।१०।।
ता गोपकन्या: स्मरबाणविद्धा रामेण विस्रंसयता मनांसि ।
समाययु: कान्तविलोकनार्थं गृहानुपालम्भमिषेण लुब्धा: ।।११।।
गोप्य ऊचु:
हे मांगल्ये गवेन्द्रगेहिनि हे कौशल्ये दशरथमहिषि ।
तव तनया अनयाश्चत्वारस्तेषामेष सधूर्तो राम: ।।१२।।

कृत्वा बहु नवनीतस्तेयं भोजयति कपीन् शिशूंश्च शश्वत् ।
दृष्ट: सपदि पलायति बालै: पुनरायाति च गालीं दत्ते ।।१३।। (दत्ते दृष्टिम्)
एष हि लक्ष्मणमपि शिक्षयति साधुमिमं स्वसमं च चिकीर्षु: ।
बहिरन्तश्च विजित्य समस्तं यथार्थनामा राजति राम: ।।१७।।
स्फोटयति प्रसभं दधिभाण्डं विगुणीभवति निवारित एष: ।
एवमादि वचनानि वन्दन्त्य: कान्तविलोकनपूरितकामा: ।
जग्मुरात्मसदनानि तरुण्यस्तमेव सततं भावयमाना: ।।१८।।
कदाचिद् बालकै: साकं क्रीडन् रामो व्रजांगणे ।
वर्जितोऽपि जनन्याऽऽद कुपथ्यं बदरीफलम् ।।१९।।
बालैर्निवेदिता माता तर्जयामास तं शिशुम् ।
स तर्जितो जन्नया च प्रहसंस्तामुवाच ह ।।२०।।
राम उवाच
मातर्नाहं जघासाद्य कुपथ्यं बदरीफलम् ।
नोचेदुद्घात्य वदनं मदीयं प्रविलोकय ।।२१।।

ब्रह्मोवाच
एवमुक्त्वा व्यात्तमुखस्तु राम: प्रदर्शयामास मुखे समस्तम् ।
सजंगमं स्थावरमेतदुच्चैर्यद्दृश्यजातं वरिवर्ति लोके ।।२२।।
अद्रय: सागरा नद्यो द्वीपा ग्रामा: पुराणि च ।
नरा देवाश्च गन्धर्वा वनानि भुवनानि च ।।२३।।
सर्वं राममुखे पश्यन् माता मांगल्यया सह ।

अदृष्टमश्रुतं चैव सर्वाश्चर्यमयं जगत् ॥२४॥

कौशल्योवाच

किमेष जातो मतिविभ्रमो मे स्वप्नोऽथवा देववरस्य माया ।
किं वाद्य किंचित्कुतुकं प्रदर्शितं रामेण वोचे स यथा नो वसिष्ठः ॥२५॥
इत्थं मुहुर्भ्रान्तमतिः प्रसूस्तमपार्यमाणा वदने विलोकितुम् ।
न्यमीलयन्नेत्रयुगं निजं सा पुनः समुन्मील्य मुखं ददर्श ॥२६॥

सा रामचन्द्रस्य मुखेन्दुमन्दहासावलोकेन पुनः समोहा ।
पुत्रेति मत्वा समपाययत्स्तनं स्तनन्धयं राममानन्दरूपम् ॥२७॥
एवं स आद्यः पुरुषः पुराणः स्वमायया बालभावं प्रपद्य ।
अरंजयद् गोकुलयोषितस्ता यथा तदात्मान इमा बभुवुः ॥२८॥
तन्मग्नमनसो नित्यं तदालापनतत्पराः ।
तद्गीतगानमुदिता बभुवुस्तन्मयान्तराः ॥२९॥
॥ इति श्रीरामविश्वरूपदर्शनम् ॥

<u>श्रीराम की वत्सचारणलीला- पू.ख.२१</u>

ब्रह्मोवाच

बाललीलारसं चक्रे रामो रमणकोविदः ।
एवं केलीरसासक्तो विस्मरन् पानभोजने ॥२१/१०
बालैः सह स चिक्रीडे भ्रातॄणां वर्द्धयन् मुदम् ।
हठेन माता मांगल्या क्रीडन्तं राममानयत् ॥११॥
श्रृंगारयामास हठात् तथैवापाययद्धठात् ।
एवं ते गोपसदने वर्द्धमानाः कुमारकाः ॥१२॥
वत्सान् संचारयामासुः सह गोपालबालकैः ।
सरयूतीरमासाद्य रत्नाद्रिमभितस्तथा ॥१३॥
प्रमोदवनमासाद्य विचेरुरधिगोकुले ।
क्वचिद्वेणून्वादयन्तो गायन्तश्च तथा क्वचित् ॥१४॥
क्वचिन्मुहुः कूर्दमानाः क्वचिन्नृत्यन्त एव च ।
क्वचिद्गोपालबालाभिः खेलन्तश्च परस्परम् ॥१५॥
फलक्षेपैस्तथा केलीमाचरन्तं क्वचिच्च ते ।
बर्हिधातुविचित्रांगाः शुशुभुर्बालरूपिणः ॥१६॥

<u>ब्रह्माजी द्वारा भगवान् श्रीराम की परीक्षा</u>

भगवान् का वत्स एवं बालरूपधारण

वत्सासुरादिकान् दुष्टानहनद् राघवस्तदा ।
कदाचिद्रामचन्द्रस्य जिज्ञासुर्विभुतां विधिः ।।२९।।
हत्वा निन्ये निजं लोकं वत्सान् बालांश्च लीलया ।
ऋते लक्ष्मणशत्रुघ्नभरतान् सर्वबालकान् ।।३०।।
रामो गवेषयाणस्तान् सरयूतीरमागतः ।
यदा चिरेण नापश्यन् मेने विधिकृतं तदा ।।३१
यथाऽसौ वत्सपालानां वत्सानां च विशेषतः ।
रूपाणि स्वयमास्थाय जगाम व्रजमन्दिरे ।।३२।।
बन्धवो मातरस्तेषां विशेषास्नेहपुष्कलाः ।
रामवत्प्रीयमाणास्ते प्रमोदं परमं ययुः ।।३३।।
गावो वत्सान् विजिघ्रन्त्यो बालकांश्चैव मातरः ।
बभुवुस्तृप्तहृदया रामं दृष्टवा यथा तथा ।।३४।।
अन्येद्युरपि तान् वेधा जहार जनितस्मयः ।
रामश्चक्रे तथैवान्यान् स्वयं तावत्स्वरूपधृक् ।।३५।।

ब्रह्माजी का मोहभंग एवं ब्रह्मकृता रामस्तुति

एवं यावद्दशदिनमुभौ कर्माणि चक्रतुः। (उभौ-चतुर्मुखरामौ)
एको जहार गर्वेण ससृजेऽन्यो निजेच्छया ।।३६।।
ततोऽतिविस्मयं प्राप्य वेधः संजातसम्भ्रमः ।
एकादशेऽह्नि पदयोरपतज्जातकौतुकः ।।३७
स दण्डवत्प्रणिपतितस्तदग्रतो ज्ञात्वा रामं जातमुदग्रविक्रमम् ।
अस्तौत्स्तवैः संजनितातिहर्षो भक्त्या युक्तो भूरिभाग्यं च जानन् ।।३८।।

ब्रह्मोवाच

ममापराधस्तव वत्सहर्तुः क्षन्तव्य एषोऽतितरां रमेश ।
अजानतो बालकस्यापराधं यथैव माता क्षमते मिट्पुरीषम् ।।
(मिटपुरीषम्- मिह सेचने, मिह-मूत्रं तत्पुरीषं वा)
इत्यभिष्टूय तं देवं पुरुषाकृतिमच्युतम् ।
विधिः पदोः पतित्वा स तं प्रोवाच सतां पतिः ।।५३।।

श्रीराम उवाच

गच्छ ब्रह्मन्निजं लोकं स्वकार्यं प्रतिपादय ।
एवं मूढधिया कर्म कुर्वन् मूढयते बुधः ।।५४।।
मा कुरुष्वात्र सन्देहं नित्यो मम परिच्छदः ।
अर्वाग्भिः कालमायाद्यैरुपहन्तुं न शक्यते ।।५५।।
यत्राहं क्रीडनं कुर्वे साकेतपरितो वने ।

तस्यैव रक्षकाः सर्वे त्रिदशाः सेवका मम ।।६२।।
इत्युक्त्वा स्वस्य लोकस्य महिमानं रघूत्तमः ।
विसृज्य वेधसं सायं स्वगृहान् समुपाययौ ।।६३।।
अग्रे कृत्वा तार्णकं चक्रवालं सलक्ष्मणः सहभरतः सशत्रुजित् ।
सायं गोकुलमनयद् रघूत्तमो बभौतरां पशुपतिबालसंगतः ।।६४।।
तमायान्तमनुश्रुत्य वेणुवादनलक्षितम् ।
द्रष्टुं गोकुलनार्यस्ताः प्रेमपूर्णाः समुद्ययुः ।।६५।।
मांगल्या चैव कौशल्या दायिनी राजभाजनम् ।
अग्रे समुपतस्थुस्तान् सुमित्रा कैकयीयुता ।।६६।।

श्रुतिरूपा गौ आदि

कृत्वा नीराजनं तेषां कुमाराणां मुहुर्मुहुः ।
स्वं स्वं निर्मन्थयान् चक्रुः प्रेमसन्दोहविह्वलाः ।।६७।।
भुशुण्ड उवाच
कथं स राजेन्द्रसुतोऽत्युदारश्चकार रामः पशुपालकृत्यम् ।
एतन्मनः संशयमत्र जातं संछेत्तुमर्हस्यमराधिनाथ ।।६८।।
ब्रह्मोवाच
न गावस्ताः श्रुतयः सर्वरूपा न ते वत्सा एकदेशः श्रुतीनाम् ।
न ते गोपा गुरवस्ते किलार्या न ता नार्यो भक्तयस्तास्तु मूर्ताः ।।६९।।
तेषां मध्ये परब्रह्म रामश्चित्सुखविग्रहः ।
रमते स्वानुभावेन कृतार्थानां विशेषतः ।।७०।।
।। इति श्रीरामवत्सचारणलीलावर्णनम् ।।

श्रीराम की गोचारणलीला- पू.ख.२३

ब्रह्मोवाच
ततस्ते प्रौढवयसः कुमारा मधुरत्विषः ।
धेनुपालनसोत्कण्ठा आसन् रामपुरोगमाः ।।२३/१।।
रामः परमधर्मात्मा गवेन्द्रसदने वसन् ।
धेनूः सम्पालयामास जनयन् गोकुले मुदम् ।।२।।
गावस्तु ताः पाल्यमाना रामेण नयनोत्सवाः ।
बभुवुः प्रीतमनसस्तदेककृततुष्टयः ।।३।।
तासां चित्तं समभवद् रामैकाश्रयसंश्रयम् ।
चारणे दोहने ह्वाने बोधने सान्त्वने तथा ।।४।।
रामहस्ताम्बजुस्पर्शमुद्यासन्तोषनिर्वृताः ।

नान्यं प्रतीयुस्ता गावो गोपाराजस्य गोकुले ॥५॥
रामः पालयमानस्ताः सवत्सार्बुदकोटिगाः ।
शुभुभे राजवेषेण त्रैलोक्यस्यापि मोहनः ॥६॥
अथ प्रातः समुत्थाय मातृभिः कृतमण्डनः ।
आश्रितः सानुजो रामश्चचाल व्रजतो वनम् ॥७॥
गावः पुरस्कृत्य स जातदोहनाः श्रृंगारवेशी मधुराकृतिं दधत् ।
गोपैस्तथा भ्रातृभिरात्तवेणुको ययौ वनस्याभिमुखं वनप्रियः ॥८॥
स दिव्ये सरयूतीरे प्रसार्य निजगोधनम् ।
हरित्तृणं चारयाणः शुशुभे राजवेषभृत् ॥९॥
स कुर्वन् विविधा लीला गोपालैः समनुव्रतैः ।
वनाद् वनान्तरे गच्छन् मुमुदे केलिपण्डितः ॥१०॥
कदाचित्प्रातरशनमकृत्वैव रघूद्वहः ।
गतो गोचारणार्थाय भातृभिर्बान्धवैः सह ॥
तत्र संक्षुधितो रामः प्रेषयामास बालकान् ॥२४॥
अन्नार्थं सरयूतीरे यजमानद्विजाश्रमे ।
यजन्ते यत्र मुनयो ज्योतिष्टोमादिभिर्मखैः ॥२५॥

<u>(भूखे गोपादि का यज्ञस्थल में अन्नार्थ जाना)</u>

ब्राह्मणाः कर्मनिपुणाः प्रमोदवनवासिनः ।
गत्वा तेषां यज्ञवाटं बालका रामचोदिताः ॥२६॥
अन्नमभ्यर्थयांचक्रुः स्वयं च क्षुधिता भृशम् ।
नोत्तरं ते ददुस्तेभ्यो यज्ञकाण्डक्रियाकुलाः ॥२७॥
न वा ते नेति चैवोचुर्ब्राह्मणा जातमन्यवः ।
ततो निराशा भूत्वा ते रामस्य सविधे गताः ॥२८॥
न नो ददति विप्रास्ते याचिता अपि भोजनम् ।
रामः स्मित्वाऽभवत्तूष्णीं तावत्तेषां द्विजन्मनाम् ॥२९॥
पत्न्यो बह्वन्नमादाय रामसन्दर्शनोत्सुकाः ।
आययुः परमाह्लादाद्वार्यमाणा अपि प्रियैः ॥३०॥
तासां रामो दृष्टिसुखं महद्विश्लेषतापहम् ।
कालेन चात्मसायुज्यं सम्बन्धात् प्रेयसामपि ॥३१॥

इति

राजा का धर्म गोरक्षा एवं प्रजा के दुःख को दूर करना

श्रीराम द्वारा द्विज के व्याघ्रभक्षित गौ को लाना

ब्रह्मोवाच

अथैकदा रामचन्द्रे यौवराज्यासनस्थिते ।
विप्राः कोलाहलं चक्रुर्द्वारि संगत्य तत्क्षणे ॥७८/४॥

विप्रा ऊचुः

हा हताः स्म प्रभौ रामे यौवराज्यस्थिते वयम् ।
व्याघ्रेण वनचारिण्यो गावोऽस्माकं विनाशिताः ॥५॥
अहो दशरथो राजा विरक्तो भूमिपालने ।
रामे सर्वा धुरं न्यस्य कमिदानीं वदामहे ॥६॥
निर्धनानां द्विजानां नो गावो हि परमं धनम् ।
अकस्मात् तत्क्षयं नीतं व्याघ्ररूपेण मृत्युना ॥७॥
ईदृशा बलिनो वीरा रघुनाथनिदेशगाः ।
न केनापि हतो व्याघ्रः कालरूपी गवां हि नः ॥८॥
प्रजानां पालने धर्मं जानत्येको रघूद्वहः ।
किमभाग्येन नो जातं हा हतं गोधनं बलात् ॥९॥
गोपालोऽपि हतस्तेन व्याघ्रेण पिशिताशिना ।
अहो दुर्दैवमस्माकं युवराजे रघूद्वहे ॥१०॥
अहो राम महावीर बलिनां श्रेष्ठ सत्पते ।
निर्धनाः स्म वयं याता गावो व्याघ्रेण भक्षिताः ॥११॥
अहो वीर नरश्रेष्ठ श्रीमन् दशरथात्मज ।
त्रैलोक्यदारिद्र्यहरे त्वयि नो दुर्गतिः कथम् ॥१२॥
घटोघ्न्यः पृथुदोहास्ता गावो नः कान्तविग्रहाः ।
क्व नु दृश्या गृष्टयस्ताः समश्रृंग्यः सुलोचनाः ॥१३॥
ईदृशी विपदस्माकं धेनवो व्याघ्रभक्षिताः ।
किं कुर्मः क्व व्रजामश्च दैवेनैव हता वयम् ॥१४॥
इत्युक्त्वा रुरुदुः सर्वे ब्राह्मणा जातमन्यवः ।
शुश्राव तद् दाशरथो राजा प्रकृतिपालकः ॥१५॥

श्रीराम उवाच

क एते करुणाशब्दं कुर्वन्ति द्वारदेशगाः ।
रुदन्तो भर्त्सयन्तश्च शपन्तश्च विशेषतः ॥१६॥
हा हताः स्म इति क्रोशं कुर्वन्तो दैवपीडिताः ।
अहो मयि स्थिते राज्ञि रामे च युवराज्यगे ॥१७॥
प्रजानामीदृशी पीडा कथं भवति भूयसी ।
ततो दूतैः समागत्य वृत्तं तद्विनिवेदितम् ॥१८॥
अयोध्यावासिनः केचिद्विप्रा दैवेन पीडिताः ।

अस्थानं रोदनं ह्येतत् किं कार्यं धरणीपते: ॥१९॥
गावो हि भक्षिता येन ब्राह्मणानां पुरौकसाम् ।
एतद्ध्यनुचितं राज्ञ: प्रजाया: पीडनं तु यत् ॥२०॥
ततो विनिर्गता वीरा नगरात् खड्गपाणय: ।
कटिप्रबद्धतूणीरा: कवचैर्व्यूढविग्रहा: ॥२१॥
नानाशस्त्राण्युपादाय भुशुण्डीपरिघांस्तथा ।
शतघ्नीस्तोमरांश्चैव चापबाणादिकांस्तथा ॥२२॥
सरय्वा: पुलिने तद्धि दुर्दर्शं गहनं वनम् ।
तद्गत्वा ददृशुर्वीरा: पशुपक्षिभयानकम् ॥२३॥
पशूनां कदनं चक्रुर्दंष्ट्रिणां शृंगिणां तथा ।
आस्फोट्य सकला वीरा निपेतुर्निविडे वने ॥३७॥
अथ शैलदरीकुंजान्निर्ययौ सुमहोद्धत: ।
वीरास्फोटकृतक्रोधो व्याघ्रोऽत्यन्तभयानक: ॥३८॥
जृम्भितास्यसुदुर्दर्श: क्रूरकर्मातिनिष्ठुर: ।
सेनाकोलाहलक्रुद्धो घूर्णयन् विकटे दृशौ ॥४५॥
भासयन् वपुषा कुंजं कांचनद्युतिवर्षणा ।
त्रासयन् सकलान् वीरान् दृष्टिपातैर्भयानकै: ॥४६॥
तमग्नियन्त्रैर्विशिखैश्च तीक्ष्णै:
परश्वधैर्मुद्गरशक्तिभिश्च ।
जघ्नु: सर्वे वीरवरा: समन्ताद्
दूरे स्थिता: कृतशस्त्रास्त्रवर्षा: ॥४७॥
तेषां शस्त्राणि चास्त्राणि यतमानानि भूरिश:।
निजगाल मुखेनासौ फलानीव क्षुधातुर: ॥४८॥
तद्दृष्ट्वा सुमहच्चित्रमभूद् दाशरथे बले ।
सर्वे च भयसन्त्रस्ता बभूवु: सैनिका जना: ॥४९॥
अथोत्प्लुत्य जवेनासौ पपात बलमध्यत: ।
कोष्ठानि पाट(त)यामास नखैर्निर्भिद्य वेगवान् ॥५०॥
आचक्राम बलात्कांश्चिद्वक्षसा समचूर्णयत् ।
पादादिभ्यस्तथैवान्यानाक्रम्य समताडयत् ॥५१॥
इत्थमेष क्षयं निन्ये सर्वे दाशरथं बलम् ।
पतमानानि चास्त्राणि शस्त्राणि च समन्तत: ॥५८॥
विद्रुता: सैनिका: सर्वे व्याघ्रस्य विपुलं बलम् ।
वीक्ष्य मारितशेषास्ते राज्ञोऽन्तिकमुपाययु: ॥५९॥
आचख्यु: सकलं वृत्तं व्याघ्रस्य विपुलं बलम् ।
श्रुत्वा सुविस्मितो राजा बभूव किमिदं धिया ॥६१॥

रामचन्द्रस्तदाकर्ण्य निर्गतः सहलक्ष्मणः ।
धनुर्बाणौ समादाय विचिन्त्य हृदि कारणम् ॥६२॥
स गत्वा विपिनं घोरं यक्ष यत्र गावो विनाशिताः ।
व्याघ्रेण घोररूपेण दुर्दर्शतरवर्ष्मणा ॥६३॥
स वीक्ष्य सहसा व्याघ्रं सटादुः प्रेक्ष्य कन्धरम् ।
पश्यतो लक्ष्मणस्याग्रे शरेणैकेन जघ्निवान् ॥६४॥
स रामबाणसंस्पर्शात् सद्यो निर्धूतकल्मषः ।
वैयाघ्रीं तनुमुत्सृज्य बभौ परमसुन्दरः ॥६५॥
सुदर्शनः सुरूपांगस्तरुणः शोभिताकृतिः ।
दिव्यं विमानमारुह्य स्थितो व्योम्नि महेन्द्रवत् ॥६९॥
दिव्यानुचरसंवीतां दिव्यस्त्रीगणसेवितः ।
अवरुह्य विमानाग्रात् पादयोर्निपपात ह ॥७०॥
उत्थाय पुनरस्तौषीद् रामं सुन्दरविग्रहम् ।
लक्ष्मणेन युतं वीरं शापनिर्मुक्तिदायकम् ॥७१॥

(व्याघ्र) पुरुष उवाच

नमस्ते राधवेन्द्राय रघूणां प्रवराय च ।
रघुवंशमहेन्द्राय रघुकीर्तिविधायिने ॥७२॥
नमस्त्रैलोक्यदारिद्र्यहृतये कामधेनवे ।
चिन्तारत्नसमानांघ्रिनखदीधितये च ते ॥७६॥
वामे जनकजा यस्य पुरतो लक्ष्मणः स्थितः ।
तद्वामे हनुमांश्चैव स रामः पातु मां सदा ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा स गीतेन सर्ववश्यविधायिना ।
तोषयामास राजीवलोचनं रघुनन्दनम् ॥८२॥
कस्त्वेवं विधोऽसीति पृष्टो रामेण तर्हि सः ।
उवाच मुखनादेन घोषयन् सकला दिशः ॥८३॥

पुरुष उवाच

गन्धर्वश्चिरसंशप्तो मुनिना मन्युकारिणा ।
नाम्ना चित्रध्वजोऽस्मीश प्रसिद्धः किन्नरालये ॥८४॥
कदाचिदलकापुर्याः सविधे स्नातुमाययौ ।
स्रोतस्यलकनन्दाया मत्तवारणसेविते ॥८५॥
मुनिं व्याघ्रमुखं नाम यथानामस्वरूपकम् ।
विलोक्य मम हासश्च संजातोऽनर्थकारणम् ॥८६॥
हसन्तं मां समालोक्य शशाप मुनिपुंगवः ।
अहो हससि दुर्बुद्धे मम वीक्ष्य मुखाकृतिम् ॥८७॥

व्याघ्रो भवतु वै नाम भवानपि सुदुर्मतिः ।
ममातिक्रमजातेन पापेनानेन भूयसा ॥८८॥
भक्षय त्वं वने सर्वान् पशून् विगतचेतनः ।
जाते रामावतारे तु मम शापाद्विमोक्ष्यसे ॥८९॥
रामवाणपस्स्पिर्शात्सद्यो निर्धूत कल्मषः ।
गन्ताऽसि स्वपदं भूयो नैवं शीलं पुनः कुरु ॥९०॥
इत्यहं तेन मुनिना शप्तो दारुणशापिना ।
वैयाघ्रीं योनिमापद्य स्थितोऽत्र चिरकालतः ॥९१॥
इदानीं राम निर्मुक्तो जातोऽस्मि त्वदनुग्रहात् ।
तथापि मम चित्तस्य ग्लानिर्नैव निवर्तते ॥९२॥
अहो मया हृता गावो मनुष्याश्च विनाशिताः ।
कां गति नु गमिष्यामि घोरकर्मकृदीदृशः ॥९३॥
घोरस्य कर्मणो राम निष्कृतिर्नैव विद्यते ।
जन्मान्तरेऽपि तत्पापं भोक्ष्याम्येव न संशयः ॥९४॥
इति संरूढहृदयग्लानिरस्मि सतां पते ।
शरीरमेतत्त्यक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥९५॥
श्रीराम उवाच
मां ग्लासीर्हृदयेन त्वमधुना किन्नरोत्तम ।
बहवो मत्पदाम्भोजस्पर्शान्मुक्तिमुपाययुः ॥९७॥
मन्नामजाप्यपरमो मम ध्यानपरायणः ।
वसन् किम्पुरुषे वर्षे भजमानोऽनिशं हि माम् ॥९८॥
वर्तस्व मम भक्त्येत्थं कर्मपाशं विनिर्दहन् ।
गन्ताऽसि मम सायुज्यं तच्चित्रध्वज मा शुचः ॥९९॥
ब्रह्मोवाच
इत्यादिश्य स गन्धर्वं नाम्ना चित्रध्वजं तु तम् ।
उवाच लक्ष्मणं वीरो गते किन्नरयूथपे ॥१००॥
श्रीराम उवाच
वैयाघ्रीं योनिमापन्नो गन्धर्वोऽयं निरीक्षितः ।
ब्राह्मणानां वने गावो यदनेन विनाशिताः ॥१०१॥
तदर्थं क उपायोऽस्ति चिन्त्यतां लक्ष्मणाधुना ।
रुदन्ति ब्राह्मणा दुःखात्तेषां दुःखं न नाशितम् ॥१०२॥
लक्ष्मण उवाच
गावः कालवशं याता व्याघ्रेण खलु भक्षिताः ।
तासां स्थाने गोसहस्रं ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयताम् ॥१०३॥
ततो विप्रान् समाहूय गोदानाय प्रतिश्रुतम् ।

ब्राह्मणा नोररीचक्रुस्तासामर्थे सुदु:खिता: ।।१०४।।
ब्राह्मणा ऊचु:
गोभिस्त्वया प्रदत्ताभि: किं वयं करवाम भो: ।
यदि शक्तोऽसि ता एव समानय रघूद्वह ।।१०५।।
ततो रामोऽनुजं वीक्ष्य प्रोवाच वचनं स्मयन् ।
एहि लक्ष्मण गच्छावो गवां नयनहेतवे ।।१०६।।
यमस्य नगरीं यत्र प्रेतानामस्ति संस्थिति: ।
ब्राह्मणानां मनोदु:खं नान्यथा खलु नंक्ष्यति ।।१०७।।
ततो रथं समारुह्य लक्ष्मणो यत्र सारथि: ।
ययौ संयमिनीं घोरां यमस्य नगरीं हरि: ।।१०८।।
गत्वा परिसरे तस्या वादयामास राघव: ।
पांचजन्यं निजं शंखं सर्वप्रेतविमुक्तिदम् ।।१०९।।
श्रुत्वा शंखरवं रम्यं देवो वैवस्वत: पुरात् ।
तूर्ण विनिर्ययौ हर्षात् श्रीरामदर्शनोत्सुक: ।।११०।।
दूरादेव रथोपस्थे संस्थितं रघुपुंगवम् ।
समचष्ट परं भाग्यं मन्यमानो रवे:सुत: ।।१११।।
यम: सविधमभ्येत्य रामस्य सुमहात्मन: ।
ववन्दे चरणाम्भोजं लक्ष्मणस्य च धीमत: ।।११२।।
यम उवाच
अद्य मे सफलं जन्म श्रीराम तव दर्शनात् ।
अहो अनुगृहीतोऽहं भवताद्य दयानिधे ।।११३।।
अद्य मे विपुलं भाग्यं प्रेतमण्डलवासिन: ।
सकुटुम्ब: कृतार्थोऽहं भवतोऽनुग्रहात् प्रभो ।।११४।।
नम: कमलकिंजल्कपीतकौशेयवाससे ।
साक्षाल्लक्ष्मीकलत्राय रामाय करुणाब्धये ।।११५।।
उभाभ्यां विश्ववन्द्याभ्यां वीराभ्यां भुवनत्रयम् ।
भवद्भ्यां सम्प्रमुदितं गुणान् गायति नित्यश: ।।११६।।
जानेऽहं पुण्डरीकाक्ष युवां वै पुरुषोत्तमौ ।
अवतीर्णौ रवेर्वंशे श्रीमन्तौ वै परात्परौ ।।११७।।
अयं च शेषो निगमत्रयात्मा विश्वम्भरा येन धृता निजांशत: ।
सहस्रदीव्यत्फणमण्डलस्फुरन् महामणिद्योतविभासिताकृति: ।।११८।।
त्वं रामचन्द्र: कमलाकलत्र: साकेतवासी नवमेघवर्ण: ।
पीताम्बरोल्लासिमनोज्ञविग्रहो धनुर्धर: कामपरार्द्धसुन्दर: ।।११९।।
आजन्मरमणीयानि चरित्राणि तवाच्युत ।
गायन्ति त्रिदिवे देवा विमानाग्रेषु संस्थिता: ।।१२०।।

रोमांचितवपुष्मन्तः प्रमोदपरिपूरिताः ।
भक्तिप्रकर्षसम्पन्ना जयरामेति भाषिणः ॥१२१॥
भूभारहरणारम्भः कृत एव त्वया प्रभो ।
ताडका नाशिता यस्मात् सुबाहुश्च विनाशितः ॥१२२॥
एवं हरिष्यति भवान् रावणादीनपि प्रभो ।
इति विज्ञाय देवानां वर्द्धन्ते विपुला मुदः ॥१२३॥
ब्रह्मोवाच
इति स्तुतिमुदीर्यासावानिनाय निकेतनम् ।
उभौ तौ वीरशार्दूलौ श्रीमन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥१२४॥
तयोर्दर्शनमात्रेण तत्रत्या प्रेतमण्डली ।
कृतार्थीभूय सगमात् स्वर्ग पुण्यवतां सुखम् ॥१२५॥
ततस्तौ पूजयामास पाद्यार्घ्यादि सपर्यया ।
कृतार्थं मन्यमानं स्वं वैवस्वत उदारधीः ॥१२६॥
अवसाने सपर्याया रामः स्मितमुखाम्बुजः ।
वैवस्वतमुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा ॥१२७॥
श्रीराम उवाच
ब्राह्मणानां शुभा गावो व्याघ्रेण खलु भक्षिताः ।
प्रत्यानेतुमहं ता वै सम्प्राप्तोऽस्मि तवालये ॥१२८॥
यम उवाच
अयोध्यावासिनो ये वै नरा गावः खगा मृगाः ।
न तेषामिह सम्प्राप्तिर्मम दूतैर्विधीयते ॥१२९॥
स्वर्गं गच्छन्ति भूतानि साकेतपुरवासतः ।
काकाः श्वापदचाण्डाला अधमाः पापयोनयः ॥१३०॥
सरयूवातसंस्पृष्टा मुच्यन्ते सर्वपातकैः ।
ब्रह्महत्यादिभिश्चापि किमुतान्यैर्जगत्पते ॥१३१॥
न ते चरणपाथोजपरागैः समलंकृते ।
देशे चरन्ति मद्दूता आनेतुं पापिनोऽपि हि ॥१३२॥
अयोध्यापरितो राम योजनानां चतुष्टयम् ।
सुदर्शनं भवच्चक्रं भ्रमतीव हि दृश्यते ॥१३३॥
तस्यां नगर्यां न विशन्ति घोरा मदीयदूता न कलेश्च दोषाः ।
नान्ये तथा भूतगणा भयानका विनायका यक्षवैतालकाद्याः ॥१३४॥
अयोध्यायाः परितः पुण्यभूमिः प्रमोदनामा वनराजोऽस्ति यत्र ।
तद्देवता दुःसहवेत्रहस्ता सत्वान् प्रवेष्टुं न ददाति घोरान् ॥१३५॥
प्रमोदवनवातेन दूरादेवापसारिताः ।
न प्रवेशं लभन्ते वै विघ्नानां चापि कोटयः ॥१३६॥

भूतप्रेतपिशाचाद्या जृम्भका राक्षसादयः ।
कूष्माण्डवेतालगणा ये चान्ये त्रासका गणाः ॥१३७॥
डाकिनी पूतनाद्याश्च नोपसर्पन्ति तत्र वै ।
यत्रासाते धनुष्पाणी भवन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥१३८॥
रामेति ध्वनिमात्रेण लक्ष्मणेति च नामतः ।
मम दूता कृतास्तत्र पलायनपरायणाः ॥१३९॥
सरयूपयसा पूता अयोध्यारजसाप्लुताः ।
पापिनोऽपि नराः स्वर्गं प्रयान्तीति न संशयः ॥१४०॥
ब्रह्मोवाच
निशम्य भगवान् राम इत्थं तद्यमभाषितम् ।
चेतसा चिन्तयामास क्व नु गावो गता इति ॥१४१॥
स गोलोके विनिश्चिन्त्य तासां खलु गवां स्थितिम् ।
लक्ष्मणं प्रेषयामास स्वयमास यमालये ॥१४२॥
रामेणाज्ञप्त एवासौ लक्ष्मणः कृतलक्षणः ।
गोलोकं प्रययौ तूर्णं सुरभीकुलमण्डितम् ॥१४३॥
घटोघ्नीभिः सौरभेयीवराभिर्गोभिर्व्याप्तं सिच्यमानं समन्तात् ।
वत्सप्रीतिप्रस्तुतैः सौरभाढ्यैः पीयूषवर्णैः शीतलैस्तत्पयोभिः ॥१४४॥
आनन्दौघसमुल्लासि गोपगोपीजनाकुलम् ।
गवां हिम्भारवैर्जुष्टं पूर्यमाणं च तर्णकैः ॥१४५॥
इतस्ततः कूर्दमानपीतवत्सकदम्बकम् ।
गोष्ठेषु सुविसर्पद्भिः प्रमत्तवृषभैर्वृतम् ॥१४६॥
ककुद्मतां बलीवर्दवराणां प्रकरैः सदा ।
पात्यमानतटप्रान्तवनभूमिविराजितम् ॥१४७॥
कलिन्दकन्यकावीचिसंगिमारुतसेवितम् ।
गोवर्धनगिरिप्रोद्यन्महाश्रृंगमनोहरम् ॥१४८॥
तत्र वृन्दावनं नाम समपश्यद्वनं च सः ।
राधावनं कृष्णवनं बलभद्रवनं तथा ॥१४९॥
व्यलोकयद् व्रजभुवं मधुरां चात्र मध्यगाम् ।
वृन्दावनवृहद्वनप्रमुखैर्विपिनैर्वृतम् ॥१५०॥
हेमरत्नमयीं दिव्यां कुंजपुंजमनोरमाम् ।
श्रीमन्नन्दव्रजेन्द्रेण पाल्यमानां समन्ततः ॥१५१॥
श्रीयशोदा नन्दपत्नी यशोगानपरायणैः ।
गोपालिकागणैर्जुष्टां पुण्यवातनिषेविताम् ॥१५२॥
दधिमन्थानघोषेण समन्ताच्च निनादिताम् ।
रोहिणीसुतसानन्दक्रीडाभाजनतां गताम् ॥१५३॥

तत्रापश्यदसौ रामं नीलमेघमनोहरम् ।
बलभद्रेण सहितं गोपालं सखिभिर्वृतम् ॥१५४॥
पालयन्तं नन्दधेनूर्वनमालामनोहरम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राधाप्रेमविघूर्णितम् ॥१५५॥
अनंगवाणव्यथितं गोपीप्रेमैकभाजनम् ।
गोपालिकासहस्रस्य दृक्कटाक्षैर्विराजितम् ॥१५६॥
वृन्दावनपरिसरे चारयन्तं गवां कुलम् ।
वेणुं क्वणन्तं खेलन्तं किशोरं केलिकोविदम् ॥१५७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽत्यर्थं निजे हृदि विसिस्मये ।
अहो रामस्य माधुर्यं साक्षादाकलितं मया ॥१५८॥
अहो लोकस्य महिमा अहो अत्र सतां नृणाम् ।
सौभाग्यं च सुखं चैव प्रेम चातिशयोद्धुरम् ॥१५९॥
अहो अमुष्य पुरुषोत्तमस्य रामस्यांशो यर्हि चापीह लोके ।
पश्यामि यस्यात्र कटाक्षपातैरुन्मत्तवद् भाति मनो वधूनाम् ॥१६०॥
अहो निसर्गो मधुरिम्ण एष यद्दृष्टमात्रो मदयन्नन्तरं मे ।
परार्धकन्दर्पविजैत्रमस्य माधुर्यसारं किमहं वर्णयामि ॥१६१॥
अहो अमीषां किमु भाग्यसिन्धोः समुद्गतः शारदपूर्णचन्द्रः ।
रामस्यासौ सम्प्रविभाति नित्यं किशोरमूर्तिर्मधुरापांगवीक्ष्यः ॥१६२॥
इति सचकितचेता वर्णयन् कीर्तिपुंजं स्थगित इव बभूव प्रेमपीयूषपूर्णः ।
अमुमलपत रामो दिव्यगोपालवेषः किमपि ननु विधाय स्वागतादीन् विविक्ते ॥१६३॥
अपि ननु कुशली नस्तात आश्चर्यवृत्तो दशरथनृपमौलिः सौष्ठवौदार्यसिन्धुः ।
अपि च खलु जनन्या नाम कौशल्यया मे समधिगतपुमर्थाः किन्नुलब्धाः श्रियस्ताः ॥१६४॥
स हि ननु वसुदेवो यादवानां वरेण्यः किमपि जयति पत्नी तस्य सा देवकीर्तिः ।
असुरबलसमूहैः पीड्यमानां विलोक्य क्षितिमहमनयोर्वै द्वापरान्ते भवामि ॥१६५॥
कृतभरमधुनाऽपि प्रोद्धृतै रावणाद्यैर्जगदिदमवलोक्य ह्येतयोरेव वंशे ।
कृतमतिरवतीर्णो रामनामाभिरामश्चतसृभिरपि युक्तो मूर्तिभिः स्वाभिरुच्चैः ॥१६६॥
इत्यालपितमाकर्ण्य लक्ष्मणो भ्रातुरूर्जितम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो रूपमाधुर्यमोहितः ॥१६७॥
लक्ष्मण उवाच
कुशली रघुराजोऽसौ पिता दशरथस्तव ।
आप्तकामा च कौशल्या त्रैलोक्यश्रीभिरालये ॥१६८॥
त्वमेवाखिललीलाभिः क्रीडसे राम सुन्दर ।
अशेषपुरुषार्थाणां परां सीमानमुद्वहन् ॥१६९॥
न ते व्यक्तिं विदन्त्यन्ये ये देवासुरमानुषाः ।
त्वमेव स्वात्मनात्मानं रमयन् राम खेलसि ॥१७०॥

भक्तानां करुणाहेतोर्दर्शयस्यात्मविग्रहम् ।
चिदानन्दमयं साक्षाद् ब्रह्मणोऽप्याश्रयं तु यत् ॥१७१॥
मोहयस्यात्मनो मायां वितत्य जगदीशितुः ।
यया मोहितचित्तानां दुर्लभा व्यक्तिरीदृशी ॥१७२॥
लव लीला रसानन्दमयी सर्वमनोहरा ।
वसुदेवालये वाऽपि श्रीमद्दशरथालये ॥१७३॥
नन्दालये वा सुखितालये वा यशोदया वाऽपि मांगल्यया वा । (गोपदम्पती)
विराजसे लाल्यमानो नितान्तमजस्रकेलीरसमोदमग्नः ॥१७४॥
श्रूयतां मम विज्ञप्तिरतः परमरिन्दम ।
प्रेषितोऽहं मम भ्रात्रा रामेण पुरुषर्षभ ॥१७५॥
त्वं चात्र तादृशो देव रामस्यांशो विलोकितः ।
युवां वै युवयोस्तत्त्वं जानीथो नापरो जनः ॥१७६॥
स्वकार्यमेव भृत्येन साधनीयं विशेषतः ।
प्रभुकृत्यं प्रभुर्वेत्तु प्रभूणां सेवकोऽस्म्यहम् ॥१७७॥
स्वकार्यं साधयिष्यामि यदर्थं प्रेषितोऽस्म्यहम् ।
कश्चिद् गन्धर्ववर्यो वै मुनिशापविमोहितः ॥१७८॥
वैयाघ्रीं योनिमापद्य रामराज्ये द्विजन्मनाम् ।
गाश्च वै भक्षयामास रुरुदुस्ते ततो द्विजाः ॥१७९॥
रामस्य द्वारमागत्य ततश्चुक्रोध राघवः ।
निहतः स तु शार्दूलो महाबलपराक्रमः ॥१८०॥
रामेण वाणेनैकेन बहवो येन नाशिताः ।
राज्ञा सम्प्रेषिता वीराः कुर्वन्तोऽपि पराक्रमम् ॥१८१॥
मोचितः स च वै व्याघ्रयोनेर्गन्धर्वपुंगवः ।
पश्यतो मे दिवं यातो दिव्यं यानमधिष्ठितः ॥१८२॥
ततः सहस्रशो गावो द्विजन्मभ्यः प्रतिश्रुताः ।
तासामेव गवामर्थे रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१८३॥
ब्राह्मणानां गवामर्थे याचितो विनयानतः ।
यमः प्रोवाच भगवन्नात्र ब्राह्मणधेनवः ॥१८४॥
अयोध्यायां मृतान् जन्तून् मम दूताः स्पृशन्ति न ।
क्षणं विचिन्त्य रामेण प्रेषितोऽहमिहागतः ॥१८५॥
त्वं प्रयच्छ शुभा धेनूर्ब्राह्मणानामिहागताः ।
श्रुत्वेत्थं भगवान् कृष्णो वचनं लक्ष्मणोदितम् ॥१८६॥
प्रत्युवाच रदोद्योतैर्द्योतयन् हरितो वने ।
श्रीकृष्ण उवाच
सत्यमत्रागता गावो नन्दराजस्य वै व्रजे ॥१८७॥

रामाज्ञातः पुनर्नेया न त्वितः प्रतिगच्छति ।
नरो वा किन्नरो वाऽपि पशुर्वा विहगोऽपि वा ॥१८८॥
प्रबला रामचन्द्राज्ञा नयेमास्तेन लक्ष्मण ।
ततः सुसत्कृतस्तेन लक्ष्मणो नन्दसुनुना ॥१८९॥
विप्राणां गाः पुरस्कृत्य पुनरागाद्यमालयम् ।
यत्र प्रतीक्षमाणेन रामेण स्थीयते स्वयम् ॥१९०॥
मार्गे सुसंगतास्तस्य देवास्त्रिदिववासिनः ।
आनर्चुः पुष्पवर्षेण पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ॥१९१॥
गायन्तो विपुलां कीर्तिं जय रामेति चोज्जगुः ।
अकर्तुमन्यथाकर्तु क्षमते भगवान् प्रभुः ॥१९२॥
व्याघ्रेण भक्षिता गावो नीयन्ते भूतलं पुनः ।
रामाज्ञा प्रबला तस्मात् त्रैलोक्येऽपि न संशयः ॥१९३॥
इत्थं निगदतां स्वर्गे देवानां कीर्तिगायिनाम् ।
श्रृण्वन् सुविपुलं घोषं लक्ष्मणः पुनराययौ ॥१९४॥
यमस्य नगरी यत्र रामचन्द्रः प्रतिष्ठितः ।
आगतं लक्ष्मणं वीक्ष्य रामः प्रीतमना अभूत् ॥१९५॥
ततस्तौ यममामन्त्र्य पूजितौ तेन सत्कृतौ ।
दिव्यं रथं समारुह्य पुरस्कृत्य गवां कुलम् ॥१९६॥
संस्तुतौ जयशब्देन देवैराकाशसंस्थितैः ।
साकेतनगरीं रम्यां तत्क्षणे समलंकृताम् ॥१९७॥
कुतूहलसुसम्पन्नैराधावद्भिरितस्ततः ।
नरनारीगणैः कीर्णां चित्रध्वजविराजिताम् ॥१९८॥
नादितां ब्रह्मघोषेण दिव्यैर्धूपैः सुधूपिताम् ।
आनन्दभरसम्पन्नां सिच्यमानामितस्ततः ॥१९९॥
सुगन्धितोयसन्दोहैर्वैकुण्ठादपि शोभितम् ।
भूषिताट्टापणगृहां समलंकृतगोपुराम् ॥२००॥
नादितां कीर्तिघोषेण सूतमागधवन्दिभिः ।
प्रसन्नहृदयैर्लोकैराकीर्णां भूरिमंगलाम् ॥२०१॥
गजदानद्रवोद्रेकसिक्तराजपथांगणाम् ।
नारीगणसमारब्धमंगलोद्‌गीतमंजुलाम् ॥२०२॥
समन्ताज्जयघोषेण पूर्यमाणदिगन्तराम् ।
नवीनोत्साहसम्पन्नां साश्चर्यजनकालिम् ॥२०३॥
एवंविधां विविशतुर्वीरेन्द्रौ रामलक्ष्मणौ ।
ततो दशरथः प्रीतः पुत्रयोर्वीरवर्ययोः ॥२०४॥
पराक्रमेण महता त्रैलोक्याश्चर्यहेतुना ।

साश्चर्यं तौ समालिंग्य पुत्रस्नेहपरिप्लुतः ॥२०५
आनन्दनिर्भरो भूत्वा तस्थौ स्तिमितलोचनः ।
निनायान्तःपुरे तौ च भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२०६॥
मातरस्तौ समालिंग्य कौशल्याद्याः समुत्सुकाः ।
अवापुः परमां प्रीतिं विस्मयं च विशेषतः ॥२०७॥
मृता गावः समानीता इतिवृत्तं परस्परम् ।
कथयन्त्योऽवरोधस्थाः स्त्रियः साश्चर्यमानसाः ॥२०८॥
जगदुस्तत्र रामस्य कीर्तिमेताममानुषीम् ।
अथ रामं निजं पुत्रं कौशल्या विश्वमंगलम् ॥२०९॥
नीराजयामास मुदा स्नेहव्याप्तमनास्तदा ।
मणिमाणिक्यरत्नानि मुक्ताहेमशतानि च ॥२१०॥
परमानन्दसम्पन्ना पुत्रयोर्निरमंछयत् ।
ततो रामः समाहूय ब्राह्मणान् दुःखपीडितान् ॥२११॥
ददौ तेभ्यो निजानीता धेनूर्व्याघ्रेण भक्षिताः ।
अबाधिता अक्षताश्च स्वाप्नादिव समुत्थिताः ॥२१२॥
रत्नौघैः समलंकृत्य दिव्यभूषाम्बरादिभिः ।
स्रग्गन्धपटवासाद्यैः परमानन्दनिर्वृताः ॥२१३॥
दृष्ट्वा द्विजवरा धेनूर्मुमुदुः परया मुदा ।
तुष्टुवुश्चैव वीरेन्द्रं रामचन्द्रं गुणाकरम् ॥
परमेश्वरमेवामुं विनिश्चित्य विशेषतः ॥२१४॥

ब्राह्मणा ऊचुः
अहो अहो राघवर्य तावकं सुवीर्यमेतद्वचनाद्यगोचरम् ।
किं वर्णयामो वचसा जना वयं न यत्र वेदः किमपि प्रर्वर्तते ॥२१५॥
यशश्च ते राघव राजनन्दन स्वर्गापगापुण्यजलौघशीतलम् ।
नित्यं समुद्गाय जनास्त्रिलोकगाः स्वचित्ततापं शमयन्ति सम्प्रति ॥२१६॥
मान्धातृमुख्यास्तव वंशसम्भवा राजान आजन्मसुपुण्यकीर्तयः ।
न त्वादृशः कोऽपि बभूव भूतले सुपुण्यनामा गदतामघापहः ॥२१७॥
कल्याणनामा जगतां मनोहरो माधुर्यसन्दोहविभाविताकृतिः ।
मन्दारकल्पद्रुमपारिजातवत् सुगन्धकीर्तिर्भुवने चिरंजय ॥२१८॥
जयाप्रमेयद्युतिधोरणीनिधे पुमर्थसाराखिल सद्गुणाश्रय ।
प्रमोदसन्दोहदसुन्दराकृते श्रीराम राजीवदलायतेक्षण ॥२१९॥
त्वयि प्रसन्ने नरलोकभूषण स्फुटं जनानां न रुजो न च क्लमाः ।
पीयूषमाप्याययसि स्वकीर्तिभिस्त्रैलोक्यसंस्थाननिवासिनो जनान् ॥२२०॥
इहावतीर्णोऽसि परः सपूरुषः श्रीराघवोऽनन्तगुणाकरः स्वयम् ।

रक्षोगणैर्भूरि निपीडितां भुवं पदाम्बुजांकैः सततं प्रमोदय ॥२२१॥
इति संस्तुवतो विप्रान् लव्धमानान् विशेषतः ।
नत्वा प्रस्थापयामास बहुमानपुरःसरम् ॥२२२॥
॥ इति द्विजगवानयनम् ॥

श्रीराम का गोचारणरहस्य

वसिष्ठ उवाच

गावः संचारिता यत्र रामेण तव सूनुना ।
सुखितस्य गवेन्द्रस्य गोष्ठं यत्र प्रतिठिष्तम् ॥१०२॥
तथा श्रीनन्दनस्यापि गोपालस्य महीपते ।
राजिनीवल्लभस्यापि स्थानमत्रैव राजते ॥२३॥

दशरथ उवाच

रामो राजकुले जातो वीर्यवान् वीरपुंगवः ।
कथं चारितवान् धेनूः सुखितस्य गवाम्पतेः ॥१०२।२६॥
एतन्मे संशयं छिन्धि तत्त्वज्ञोऽसि भवान् मुने ।
वणिजां कृत्यमेतद्वै क्षत्रस्य जनितं कथम् ॥२७॥

वसिष्ठ उवाच

स्वतन्त्रेच्छस्य रामस्य किमेतद्यदनौचिती ।
तथापि कारणं तत्र वदामि तव भूपते ॥२८॥
आविर्भूतं परमपुरुषं त्वद्गृहे श्रीरमेशं
रामं सच्चित्सुखमयतनुं ब्रह्मपूर्णप्रकाशम् ।
विज्ञायोच्चैः सहजसुखदाद् व्यापिवैकुण्ठधाम्नः
प्रादुर्भूता अमुमनुगता देववाचोऽपि तास्ताः ॥२९॥
कर्मज्ञानार्चनविधिपरा ऋग्यजुःसामसंस्था
ज्ञानाकारा व्रजभुवि ऋचो धेनुरूपेण जाताः ।
भक्तेस्तत्त्वं समनुभवितुं सर्वशास्त्रोत्तमाया-
स्ता रामेण स्वयमविरतं पालितास्तत्र गोष्ठे ॥३०॥
अतः परं वेदऋचः समस्ता भक्त्यैकतात्पर्यवतीः सतत्त्वाः ।
जानीहि भुमीपतिसार्वभौम याधि प्रमोदाटवि संचरन्ति ॥३१॥
प्रमोदवनमेकान्ते भक्तिरूपं निशामय ।
तत्र प्रविष्टा गोरूपा ऋचो भक्तिमनुव्रताः ॥३२॥
गोपालाः सकलास्तत्र देवाश्च ऋषयोऽमलाः ।
तत्तच्छास्त्राचार्यपदं स्पृशन्तो भक्तिभाविताः ॥३३॥
काश्चिद् गुरोश्च वै धेनूर्विश्वामित्रस्य भूतले ।
रामः पालितवान् राजन् प्रमोदविपिनान्तरे ॥३४॥

कुन्दवने यथा रेमे श्रीरामः सीतया सह ।
श्रीनन्दनस्य सुतया तथा रामोऽत्र सुन्दरः ॥३५॥
एतद्रहस्यं चरितं सुपावनं रामस्य राजंस्तव पुत्रतापदम् ।
प्राप्तस्य सम्प्रोक्तमतीव सुन्दरं मया त्वदग्रे हृदि तद्विधारय ॥३६॥
एकं रसालविपिनं महारसनिकेतनम् ।
रसैर्भोजयते विप्रान् यस्तत्र हरितुष्टये ॥१०२।६०॥
तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
यत्र गोचारणे रामः क्षुधितान् गोपबालकान् ॥६१॥
रसालफलसन्दोहैर्योगमायाविनिर्मितैः ।
कृतवान भूयसीं तृप्तिं कल्याणगुणभूषणः ॥६२॥
पुण्यं पवित्रमतुलं महापातकनाशनम् ।
वनानामुत्तमं स्थानं भक्तानां तद्रसावहम् ॥६३॥ इति

अन्यच्च

सर्वे चिदानन्दमया अखण्डरुचिमण्डिताः ।
गोगोपगोपीनिकरास्तर्णकानां गणास्तथा ॥११४।१३३॥
येषां दर्शनमात्रेण दिव्यो भावः प्रजायते ।
श्रीरामविषयं प्रेम वर्द्धते प्रति वासरम् ॥१३४॥

मथुरातीर्थे प्रसिद्धगोस्थलम्

राजोवाच

मथुरायां प्रसिद्धानि तीर्थानि वद मे मुने ।
येन मज्जनमात्रेण नरः शुद्धिमावाप्नुयात् ॥१०५।१॥

वशिष्ठ उवाच

वसन्ति सर्वतीर्थानि मथुरायां जनाधिप ।
सर्वदैव विशेषात्तु चातुर्मास्ये प्रशस्यता ॥२॥
सप्तद्वीपवती भूमिस्तस्यां तीर्थानि यान्यपि ।
तानि सर्वाणि मथुरामायान्ति शयिते हरौ ॥३॥
तीर्थानि खलु सन्त्येव पृथिव्यां सुबहून्यपि ।
मथुरास्नानसदृशं न पुण्यं कुत्रचिन्मतम् ॥१०४।१००॥
यमुनाजलकल्लोलरमणीयमहातटा ।
मथुरादर्शनादेव मथ्नाति खलु पातकम् ॥१०१॥
सर्वत्र यमुना पुण्या स्नानादाचमनादपि ।
मथुरातलगा त्वेषा स्वयं कृष्णस्वरूपिणी ॥९९॥
सेव्या मधुपुरी नित्यं सद्भिः कृष्णपरायणैः ।

अस्यां न कलिदोषाणां सम्भवोऽद्यापि दृश्यते ।।१०७।।
कृष्णलीलानिजस्थानं नरनारीगणैर्वृता ।
नित्योत्सवैर्नित्यसुखैर्नित्यप्रेमविभूषितैः ।।१०८।।
साक्षाच्चतुर्भुजाकारैराकीटपशुपक्षिभिः ।
सेविता सुखदा नित्यं धन्या सा मथुरापुरी ।।१०९।।

मथुरा के बहुलागोतीर्थ एवं बरसाने के गोष्ठ

बहुलावनसंज्ञं च तत्रास्ति रुचिरं वनम् ।
बहुला नाम सा धेनुः कृष्णहस्ता सुमोदिता ।।१०५।२५।।
तयाऽधिवासितं तस्याः खुरांकैरभिरोचितम् ।
अनेककुंजपूजाढ्यं कुसुमौघसुवासितम् ।।२६।।

पुनः

नमो गोविन्ददेवाय कृष्णाय परमात्मने ।
नमो नटाय नव्याय कालियव्यालमर्द्दिने ।।१०६।१३।।
इत्युच्चारपरो लोकः क्षणं वृन्दावने स्थितः ।
योगिनामप्यलभ्यं तत् स्थानमाप्नोति तत्क्षणात् ।।१४।।

पुनः

गोवर्धनसमीपे तु वरसानुगिरिर्व्रजे ।
राधिकायाः पितुः स्थानं वृषभानोर्महात्मनः ।।८५।।
तस्य सन्दर्शनादेव जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
यत्र गोष्ठानि रम्याणि धेनूनां सर्वतोदिशम् ।।८६।।
कुंजपुंजावृतान्यद्धा गुंजद्भृंगालिसौरभैः ।
नन्दगोपस्य गोष्ठं च गवां हंभारवैः शुभम् ।।८७।।
सर्वतः कुंजपुंजाढ्यं महामंगलमण्डितम् ।
वत्सैर्वर्तितरोन्मन्थं शाद्वलेषु निषादिभिः ।।८८।।
घटोघ्नीभिर्युतं गोभिर्मन्थानरवमंगलम् ।
गायद्गोपांगनावृन्दकण्ठस्वरमनोहरम् ।।८९।।
नित्यानन्दपदं धाम नन्दगोपस्य कीर्तितम् ।
यत्र नित्यं हरेर्वासो लीलारमणशालिनः ।।९०।।
इतस्ततश्चरन्तीनां गोपीनां पादनूपुरैः ।
रमणीयतमं नित्यं नित्यकौतूहलान्वितम् ।।९१।।
नन्दीश्वरगिरौ रम्ये सर्वदैवमये शुभे ।
प्रतिष्ठिततमं लोके विख्यातं तीर्थमुत्तमम् ।।९२।।
नन्दग्राम इति व्यक्तं नाम धाम निरूपितम् ।
अनेकैः पुण्यसलिलैः सरोभिरभितो युतम् ।।९३।।
राजधानीस्वरूपं तत् समस्तव्रजमण्डले ।

अनेकवापिकायुक्तमनेकद्रुमसंकुलम् ॥९४॥
तत्राभिगमनाद् राजन् शैलसन्दर्शनादपि ।
अवगाहाच्च तीर्थानां कृष्णलीलाविचिन्तनात् ॥९५॥
विप्राणां भोजनाद्दानाद् व्रजधूलिविलेपनात् ।
माहेयस्यातिमृष्टस्य तत्रत्यस्य च भोजनात् ॥९६॥
आयान्तीनां च यान्तीनां गवां खुररजःस्पृशः ।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि संलापाद् व्रजवासिनाम् ॥९७॥
अनेकधा भवेन्मुक्तिस्तस्य संवासतो नृणाम् ।
व्रजभूमौ गमिष्यामि व्रजभूमौ वसाम्यहम् ॥९८॥
इत्येवं चिन्तयन्नित्यं प्रातरुत्थाय भक्तिमान् ।
व्रजवासोद्भवं पुण्यं लभते मानवः कलौ ॥९९॥
संकेतस्थानमुभयोरतुलं मध्यदेशगम् ।
राधाकृष्णनिजक्रीडास्थानभूतं मनोहरम् ॥१००॥

श्रीरामरक्षार्थगोपुच्छभ्रामण

ब्रह्मोवाच
व्रजे भ्रमन्तं राजानं सुखितः प्रेमविह्वलः ।
उवाच वचनं भूयो रामलीलारसायनम् ॥११२।१॥ (स्वकीय)
सुखित उवाच
अत्रैव हतवान् रामो विकटाख्यं महासुरम् ।
तदा विप्रान् समाहूय मन्त्रै रक्षोघ्नकल्पकैः ॥
अरक्षयन् मुहू राजन् सर्वांगप्राणजीवनम् ॥१०॥
हुत्वाग्नौ विविधैर्मन्त्रैर्बालरक्षाविधायकैः ।
ग्रहाणां चाहुतीर्दत्वा स्नापितो मन्त्रिताम्भसा ॥११॥
राजिकां लवणैः सार्द्धं निर्मक्ष्य प्राणजीवने ।
अपातयद् गोपदारा विकीर्य सर्वतो दिशम् ॥१२॥
गोपुच्छभ्रामणं चास्य विदधुः सर्वविग्रहे ।
अरक्षयंश्च फूत्कारैर्मन्त्रसिद्धमुखोद्गतैः ॥१३॥
योगिभिश्च कृतैर्नादैर्व्रजे विघ्नान् न्यवारयन् ।
मयूरपिच्छमुष्ट्या च रक्षां चक्रुः सुकातराः ॥१४॥
इत्येवं शमितो विघ्नः सारिष्टः साशुभप्रदः ।
व्रजदारैर्हितपरै रामस्य शुभकांक्षिभिः ॥१५॥
दधिबिन्दु रामभाले विन्यस्य मत्कुटुम्बिनी ।
प्रेम्णा नीराजयामास नखादाशिखमुत्सुकाः ॥११३।१३५॥
आधीन् व्याधींश्च तस्यांगात् कराभ्यामात्मनि न्यधात् ।

चुचुम्बे वदनं चास्य मुहुः प्रेमपरिप्लुता ॥१३८॥
बह्वमन्यत चात्मानं सर्वं त्रैलोक्यतोऽधिकम् ।
अहो भाग्यस्य सम्पत्तिर्यस्या ईदृग्विधः शिशुः ॥१३९॥
अथो अनिर्विशेषेण लक्ष्मणाद्यनुजत्रयम् ।
गोपी सौहार्दसम्पन्ना नीराजितवती पृथक् ॥१४०॥
अहो एते भ्रातरोऽस्य सखायश्च विशेषतः ।
इति प्रेमवती तेषु नापश्यद्भिन्नया दृशा ॥१४१॥
अलंकृत्य ततः पुष्पमालया रामसुन्दरम् ।
अंकमारोहयामास तदंगस्पर्शनिर्वृता ॥१४२॥
गायन्ती मंगलं गोपी गोपीनिवहमध्यगा ।
नीलरत्नसनाथांका प्रविवेशात्ममन्दिरे ॥१४३॥
शिशुभिर्भणितं श्रुत्वा वने वृत्तं यदस्य तत् ।
अत्यर्थचकितस्वान्ता ववन्दे पुरुषं परम् ॥१४४॥
अग्रतो मे शिशुं नित्यमव्याच्छ्रीमधुसूदनः ।
पृष्ठतः पातु सततं भगवान् कैटभद्विषः ॥१४५॥
वामे रक्षतु वाराहो दक्षतो नरकेसरी ।
पुरो राहुशिरच्छेदी वने सिन्धुसुतापतिः ॥१४६॥
जलशायी जले पातु स्थले वैकुण्ठनायकः ।
भुंजानं पातु गोविन्दः शयानं केशवोऽवतु ॥१४७॥
गच्छन्तं रक्षताद्विष्णुस्तिष्ठन्तं विष्टरस्रवाः ।
जल्पन्तं वेदकृत्पातु हसन्तं हरिरीश्वरः ॥१४७॥
रुदन्तं शार्ङ्गभृत्पातु पश्यन्तं गरुडध्वजः ।
श्रृण्वन्तमच्युतः पातु स्पृशन्तं च जर्नादनः ॥१४८॥
जिघ्रन्तं माधवः पातु मनस्यन्तं गदाधरः ।
हृषीकेशः स भगवान् सर्वतः पातु सर्वदा ॥१४९॥
यानि कानि स्वरूपाणि साक्षाद्भगवतो हरेः ।
तानि तान्यभिरक्षन्तु सर्वावस्थासु मे शिशुम् ॥१५०॥
वागीशो वेदविन्नाथो हयग्रीवो महाप्रभुः ।
सर्वमन्त्रपतिर्देवो रक्षत्वेनं सदैव नः ॥१५१॥
इति विन्यस्य तस्यांगे रामनामानि गोपिका ।
स्वयं शरणमापेदे साक्षाद्रामं परं हरिम् ॥१५२॥
अथैनं स्नपयामास समुद्वर्त्य विशेषतः ।
सुगन्धिचन्दनमुखैः कस्तूरीकुंकुमादिभिः ॥११३/१५३॥
सम्प्रोंछ्य सुकुमाराणि तस्यांगानि व्रजेश्वरी ।
कालागुरुभवैर्धूपैर्धूपयामास मूर्द्धजान् ॥१५४॥

पुनश्च समलंकृत्य पट्टभूषाम्बरादिभिः ।
सायमार्तिक्यविधिना चक्रे नीराजनादिकम् ॥१५५॥
पुनः
विलोक्य बालं रुचिरायताक्षं गोवत्ससंचारणकर्मदृष्ट्वा ।
हर्षाश्रु वै वश्यधरो भुजाभ्यां स्वांकं समारोप्य तमालिलिंगे ॥१७३॥
समाप्य सायं गोदोहं दीपिकाभिः प्रकाशिते ।
विवेश वेश्मनि मुदा रामरत्नविरोचिते ॥१७४॥
सुपक्वानि कुटुम्बिन्या स्वादूनि विविधानि च ।
गोपराजिस्थितोऽन्नानि सम्प्राश्याहं सुनिर्वृतः ॥१७५॥
रामेण सहितोऽन्नानि भुंजानश्चैकभाजने ।
अस्य बालचरित्राणि गोपवृद्धैः कथापयन् ॥१७६॥
चुम्बितास्यः शिशोरस्य ददानः कवलं मुखे ।
आनन्दसागरे मग्नः किंचिन्नाहमचिन्तयम् ॥१७७॥
भोजनस्यावसानेऽहं दत्वा ताम्बूलिकां शिशोः ।
स्वयं सम्प्राप्य च सुखं गतः शयनमन्दिरम् ॥१७८॥
तं तत्र गोदुहां बालाः श्रावयन्त्यः कथाः शुभाः ।
अनयन्नंग यामिन्या एकं यामं कतूहलैः ॥१७९॥
नानाविधाः कथाः श्रुत्वा रामो निद्रावशं गतः ।
प्रातरुत्थाप्य मांगल्या प्रेम्णा नित्यमकारयत् ॥०००॥(स्वकीय)

प्रातःकाल में श्रीरामदर्शनार्थ गोपियों का दध्यादि लेकर आना ।

ततः स्वस्वगृहेभ्यस्तं द्रष्टुं गोपालसुभ्रुवः ।
सद्भोजनान्युपादाय समायान्ति मदालयम् ॥११३/२४४॥
स्वाद्यं हैयंगवीनं बहुतरसितयाक्तं स्फुटारुण्यमुष्णं
कृष्णाया गोः सुमिष्टं लघुसुरभिपयोऽग्नौ समावर्तितं यत् ।
तस्यैवात्यर्थरुच्यं दधिमधुरतरं पिच्छिलं दुग्धसारं
पक्वान्नान्यद्भुतानि प्रसृमरघुसृणामोदकर्पूरभांजि ॥२४५॥
अनेकरत्नप्रत्युप्तकांचनामत्रमध्यगम् ।
भूयः समुपकल्प्यान्यान्याययुर्व्रजगोपिकाः ॥२४६॥
स तासां चित्तभावज्ञः प्रणयी रामवल्लभः ।
तदन्नमूरीकृतवान् कटाक्षाक्षेपपण्डितः ॥२४७॥
मुग्धंमातृकरोपनीतमतुल्यं हैयंगवीनांचितं
स्वाद्यं चारु चतुर्विधं तदमलं प्राश्यान्नमात्मीयकैः ।
प्रातर्गोष्ठसहस्रसंजनितगोदोहावसानागतै-

गोपालैरभिवन्द्यमानचरणाम्भोजो मदंके स्थितः ॥२४८॥
किंचित्संचरणे नभस्तलतटीमारूढमात्रे रवौ
गोवत्सान् पुरतो विधाय विपिनान्यापूर्य श्रृंगं ययौ ।
उन्मुक्ताः पुरतो निधाय गणशो गाः कोटिशः कोटिशो
गोष्ठेभ्यः प्रतियातवत्सु मयकादिष्टेषु गोपेष्वपि ॥२४९॥
बालानां श्रृंगसन्नादा रामश्रृंगध्वनेन तु ।
तत्क्षणे लक्ष्मणादीनामाविरासुः समन्ततः ॥२५०॥
गोप्यः श्रृंगरवं श्रुत्वा भवनेभ्यो विनिर्ययुः ।
अलभ्यदर्शनं देवैर्द्रष्टुं रामं समुत्सुकाः ॥२५१॥
अग्रे वत्सान् प्रकृतिसुभगान् यूथशः कल्पयित्वा
पश्चात्तेषां धृतखुररजा गोदुहां बालसंघैः ।
क्रीडन् गायन् कमलनयनो वादयन् चारुश्रृंगं
भूषारत्नच्छुरितवपुषा याति भाग्यैर्व्रजेन्दुः ॥२५२॥
यैर्दृष्टो रामचन्द्रः समयमनुसृतो धेनुवत्सौघचारं
भाग्यस्तोमप्रवृद्धैर्मधुरिमहृदयावेदिभिर्दिक्चकोरैः ।
तेषां सज्जन्मभाजां प्रतिकरणमुपाविश्य दत्तस्वरूपाः
देवाः किं नो पिबन्ति त्रिभुवनजनतादुर्लभं कान्तिपूरम् ॥२५३॥
इति प्रतिदिनं दधत्सुरभिवत्सचारक्रियां
दिनस्य ननु तुर्यके प्रहर आर्तिहृद्राघवः ।
विहाय वनगह्वरं व्रजपुराभिमुख्यं भजन्
स्वयूथपरिवेष्टितो जयति दिव्यलीलानिधिः ॥२५४॥

गोरूप का रहस्य

चतुर्वेदऋचो ह्येताः सर्वकामदुघा अपि ।
आसुरं भावमाश्रित्य कदर्थ्यन्ते खलैर्जनैः ॥११४।७॥
तासां रामः स्वयं नेता परमैश्वर्यदण्डभृत् ।
अधिकारिविभेदेन दोग्धि कामान् सतो बहून् ॥८॥
कर्म ज्ञानं तथोपास्तिर्भक्तिरेतच्चतुष्टयम् ॥
श्रुतिकामदुघां दुग्धं रामः पाययते निजान् ॥९॥
एकैकं स्वैकान्तवशात्प्रत्येकं फलति ध्रुवम् ।
अनैकान्त्यात्परस्यांगं भूत्वा च फलति ध्रुवम् ॥१०॥
प्रमोदवनमेतत्तु भक्तिरूपं समन्ततः ।
तस्य भावतृणं प्राश्य प्रेमानन्दफलैव गौः ॥११॥
भावघासाशना नित्यं रसपानीयपानकृत् ।
श्रुतिकामदुघां पंक्तिर्भक्तानां स्वेष्टदोहदा ॥१२॥
गोचारणक्रियातत्त्वमिदं ते कथितं मया ।

कीर्तितं श्रुतितात्पर्यविद्भिः सद्भिः सनातनैः ।।१३।।

गोरक्षार्थ श्रीरामका दवानल पान

ब्रह्मोवाच

ततोऽन्यतो नृपं नीत्वा बभाषे गोपपुंगवः ।
इदं स्थलं पश्य यत्र पूर्वं रामस्तृणानलम् ।।११८।४५।।
निपात्य दैत्यं बलिनौ क्रीडन्तं रामलक्ष्मणौ ।
सभ्रातृकौ गोपगणैर्नेक्षांचक्रे गवां गणम् ।।४६।।
गोकुलं तृणलोभेन सरयूकच्छभूगतम् ।
ग्रीष्मे सन्तापितो भानोः किरणैराकुलीकृतम् ।।४७।।
विवेश सैकते नद्याः स्रोतसा रुचिरोज्झिते ।
इषीकानां वनं यत्र प्ररूढानां समन्ततः ।।४८।।
अथ सर्वे विचिन्वन्ती गोधनानि व्रजौकसः ।
खुरांकैर्दन्तसंघृष्टघासैश्चानुगता ययुः ।।४९।।
उपलभ्य गवां वृन्दं प्राप्तजीवा इवाभवन् ।
तावत्तृणाटवीमध्ये समन्तादुदगाद्दवः ।।५०।।
तयोर्दानवयोः कश्चित् सखा दग्धुमना व्रजम् ।
उद्ययौ ज्वालरूपेण निर्दहंस्तृणकाननम् ।।५१।।
तमुद्गतं वीक्ष्य महातृणानलं गावश्च गोपाश्च महाभयेरिताः ।
तमेव देवं शरणार्थिनो ययुर्निवेदयांचक्रुरथो भवागमम् ।।५२।।
गावो निरीक्ष्य मुखमीशितुरिन्दुचारुं
प्रोद्यम्य बालधिमतीव न रम्भमाणाः ।
दृक्संज्ञयैव जगदुर्महतीं निजार्तिं
कारुण्यकातरधियो दवदाहभीताः ।।५३।।

गोरक्षणार्थ सर्वप्रथम तारकासुर का वध

पाहि प्रभो प्रथमवत्प्रथयात्मवीर्यं
प्राप्तान्यनन्यशरणानि गवां कुलानि ।
अस्मांश्च केवलनिजांघ्रिसरोजमूल-
विच्छेदभीतिविवशान् करुणापयोधे ।।५४।।
इत्यात्मीयरुजं वीक्ष्य रामः करुणलोचनः ।
तान् मीलितदृशः कृत्वा सहसैवापिबद्दवम् ।।५५।।
संहारिते दावकुशानुपुंजे गावश्च गोपाश्च ततः क्षणेन ।
सर्वेऽपि ते भद्रवहं पुरेव सम्प्रापितास्तेन सुखाकरेण ।।५६।। इति।।

विनश्यत्याशु तद्राष्ट्रं यस्मिन् राष्ट्रे गवां क्षयः ।
अतो गावः समाराध्या देवर्षिपितृमानवैः ।।
यस्मिन् देशे गवां रक्तं बिन्दुमात्रं पतेद् भुवि ।
जपयज्ञतपोदानं निष्फलं तत्र वै ध्रुवम् ।।
गोवंशवर्द्धनेनैव संस्कृती रक्षिता भवेत् ।
गोसेवा प्रकृतेः पूजा धर्मसंस्काररक्षणम् ।।
सवत्सा निर्भया गावो यत्र तिष्ठन्ति भूतले ।
सुखसन्ततिसम्पत्तिवर्द्धनं तत्र वै ध्रुवम् ।।
न मुष्णन्ति गृहं गावः कृपां कुर्वन्ति नित्यशः ।
शेषान्नमेव याचन्ते देह्यस्मच्छ्रमनिर्गतम् ।।

प्रार्थना

हे कृष्ण त्वं समर्थोऽसि सदा गोवंशरक्षणे ।
सहसे कथमन्यायं भारते ते भवेद्वधः ।।

हे कृष्ण ! आप सदैव गोवंश के संरक्षण में समर्थ हो । आपके ही भारत में गोवध हो रहा है, आप इस अन्याय को कैसे सह रहे हो ?

धन्वन्तरे नमस्तुभ्यमायुर्वेदप्रवर्त्तक ।
सर्वलोकहितार्थाय गोवंशं रक्ष सर्वदा ।।

हे आयुर्वेदप्रवर्तक धन्वन्तरे ! आपको प्रणाम है । सम्पूर्ण लोकों के हित के लिए सदैव गोवंश की रक्षा करें ।

गोसेवा से सर्व रोग एवं उपद्रव का नाश

सर्वरोगविनाशाय गावः सेव्याः सदा समैः ।
येषां निःश्वासगव्येन सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ।।

सर्वरोगविनाशार्थ सबको गौओं की सेवा करनी चाहिए । जिनके निःश्वास एवं गव्य से सारे उपद्रव विनरूट हो जाते हैं ।

निःश्वसन्ति यदा गावो गोष्ठे हृष्टाः सवत्सकाः ।
तदाऽऽधिव्याधयः सर्वे नश्यन्त्येव न संशयः ।।

जब सवत्स गौएँ प्रसन्न होकर गोष्ठ में प्राणप्रद वायु का उत्सर्जन करती हैं तब निश्चय ही सब प्रकार के आधि–व्याधि विनष्ट हो जाते हैं ।

स एव सज्जनो धन्यो भगवद्भावभावितः ।
तस्यैव सार्थकं जन्म स महाभाग्यवान् भुवि ।।

वही सज्जन धन्य है, जो भगवती गोमाता के सेवाभाव से ओतप्रोत है । उसी का जन्म सार्थक है और वही इस पृथ्वी पर महान् भाग्यशाली है ।

सदा सेव्याः सदा सेव्या गावो विश्वस्य मातरः ।
येषां कृपाकणेनैव सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ।।

विश्वमाता गौओं की सदा ही सेवा करनी चाहिए । जिनकी कृपा के कणमात्र से ही सभी कामनायें सिद्ध हो जाती हैं ।

विश्ववन्द्या विश्वमाता विश्वात्मा विश्वविग्रहा ।
यदा मान्या भवेद् विश्वैस्तदा शान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।।

विश्ववन्द्या, विश्वमाता, विश्वात्मा और विश्वविग्रहा गौ जब विश्व के द्वारा माता के रूप में पूजित होगी तब निश्चय ही सम्पूर्ण विश्व में शान्ति की स्थापना हो जायगी ।

गोसम्बन्धिसिद्ध काम्यप्रयोग

(टि०- केवल शिखा एवं यज्ञोपवीतधारी द्विज ही 'ॐ' से युक्त मन्त्रों का जप करे, अन्यों को प्रणवरहित मन्त्र का जप करना चाहिये ।)

१. यात्रा से पूर्व निर्विघ्नतया इष्टसिद्धि के लिये इस मन्त्र का जप करे -

कामधेनो नमस्तुभ्यं धर्मकामार्थसाधिके ।
यात्रायामिष्टसिद्ध्यन्ते सुखेनागमनं भवेत् ।।१।।

हे धर्म, अर्थ और सभी कामनाओं की सिद्धि प्रदान करने वाली पूजनीय कामधेनो ! तुम्हें नमस्कार है । यात्रा में इष्टसिद्धि हो जाने के बाद सुखपूर्वक अपने घर मेरा आगमन हो ।

२. सब प्रकार की पीड़ा के निवारण के लिये इस मन्त्र का जप करे -

धेनुः पयस्विनी श्यामा सुरभिर्नन्दिनी तथा ।
पञ्चकं संस्मरेन्नित्यं सर्वपीडानिवारणम् ।।२।।

धेनु, पयस्विनी, श्यामा, सुरभि और नन्दिनी इन पाँचों का नित्य स्मरण करने से सभी पीड़ाओं का निवारण होता है ।

३. सत्पुत्र की प्राप्ति के लिये -

गोसेवान्ते जपेन्नित्यं ॐ नन्दिन्यै नमो मनुम् ।
नन्दिनीसम्प्रसादाद्वै सत्पुत्रान् लभते गृही ।।३।।

गोसेवा के अन्त में प्रतिदिन 'ॐ नन्दिन्यै नमः' इस मन्त्र का जप करने से गृहस्थदम्पती नन्दिनी गौ की कृपा से निश्चय ही सत्पुत्रों को प्राप्त करता है ।

४. समुचित धन की प्राप्ति के लिये -

ॐ समृद्ध्यै नमो मन्त्रं षण्मासावधि यो जपेत् ।
गोमातुः कृपयाऽवश्यं स कुबेरसमो भवेत् ।।४।।

'ॐ समृद्ध्यै नमः' इस मन्त्र का जो छः महीने तक जप करता है, वह गोमाता की कृपा से अवश्य ही कुबेरतुल्य हो जाता है ।

५. धन, पुत्र और यश की प्राप्ति के लिये –

ॐ सुरभ्यै नमो मन्त्रं यो जपेन्नियतः शुचिः ।
धनी पुत्री यशस्वी च भवेन्नैवात्र संशयः ।।५।।

जो मनुष्य पवित्रचित्त से नियमपूर्वक 'ॐ सुरभ्यै नमः' इस मन्त्र का जप करता है, वह धनवान्, पुत्रवान् और यशस्वी होता है । इसमें संशय नहीं है ।

६. पति-पत्नी में प्रेम और सुव्यवस्थित दाम्पत्य जीवन के लिये –

यो जपेत्पञ्चगव्याशी सिद्धं मनोरमामनुम् ।
दाम्पत्यं सुस्थिरं तस्य गोप्रसादान्न संशयः ।।६।।

जो पञ्चगव्य का भक्षण करते हुए 'ॐ मनोरमायै नमः' इस सिद्ध मन्त्र का जप करता है, गोमाता की कृपा से उसके दाम्पत्य जीवन में सौहार्दपूर्वक स्थिरता बनी रहती है ।

७. सर्वविघ्ननाश एवं भूत-प्रेतजन्य पीड़ा की निवृत्ति के लिये –

सर्वविघ्नविनाशाय ॐ शबलायै नमो जपेत् ।
भूतप्रेतकृतापीडा विनश्यत्याशु वै ध्रुवम् ।।७।।

सब प्रकार के विघ्ननाश के लिये 'ॐ शबलायै नमः' इस मन्त्र का जप करना चाहिये । इसके जप से भूत-प्रेतजन्य पीड़ा भी निश्चितरूप से अतिशीघ्र ही नष्ट हो जाती है ।

८. विशिष्ट मेधा की प्राप्ति के लिये –

गां नत्वैव पिबेत्क्षीरं विद्यादात्र्यै गवे नमः ।
जपित्वाऽध्ययनं कुर्याद्विद्यार्थी ज्ञानवान् भवेत् ।।८।।

विद्या चाहने वाले गौ को प्रणाम कर नित्य ही गोदुग्ध का पान करे और 'विद्यादात्र्यै गवे नमः' इस मन्त्र का जप करने के बाद अध्ययन करे तो वह ज्ञानवान् होता है ।

९. सब कार्यो में सफलता एवं दृढ़ गोभक्ति के लिये –

सर्वदा सर्वकार्येषु गौर्गौरित्युच्चरेद् बुधः ।
साफल्यं निश्चितं तस्य गोभक्तिश्च दृढा भवेत् ।।९।।

सर्वदा सभी कार्यो में बुद्धिमान् 'गौः, गौः' इसका उच्चारण करे, इससे निश्चय ही उसके सारे कार्य सफल होते हैं और गौ के प्रति उसकी दृढ़ भक्ति भी होती है ।

१०. सभी कर्मो में अधिकार की प्राप्ति के लिये –

गोवन्दनं विधायैव पञ्चगव्यस्य भक्षणम् ।
कुर्यान्नरः शुचिर्भूत्वा सर्वकर्माणि कारयेत् ॥१०॥

गौ की वन्दना करने के बाद पञ्चगव्य का पान करके मनुष्य पवित्र हो सभी कर्मो को प्रारम्भ करे ।

११. अहोरात्रजन्य पापनाश के लिये –

यो गोरजःपुरीषेण तिलकं कुरुते जनः ।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥११॥

जो मनुष्य गोरज अथवा गोबर से नित्य तिलक करता है, उसके दिन एवं रात्रि के किये हुए सारे पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।

१२. ग्रहपीडा के निवारण के लिये –

नित्यं गोग्रासदानेन गोरजश्चन्दनेन च ।
पञ्चगव्यस्य पानेन ग्रहपीडां निवारयेत् ॥१२॥

नित्य गोग्रास प्रदान करने से, गोरज का चन्दन लगाने से और शुद्ध पञ्चगव्य का पान करने से ग्रहजन्य पीड़ा का निवारण होता है ।

१३. बालारिष्ट की शान्ति के लिये –

कज्जलं गोघृतोद्भूतं तिलकं गोमयेन च ।
गोपुच्छभ्रामणं कुर्याद् बालारिष्टप्रशान्तये ॥१३॥

बच्चों के अरिष्ट की शान्ति के लिये गोघृत से निर्मित काजल लगाये, गोबर का तिलक करे और उनके ऊपर गोपुच्छ को घुमाये ।

१४. विवाह हेतु सुयोग्य वर अथवा कुलीन कन्या की प्राप्ति के लिये –

गोघृतज्वलितां वर्ती गव्यदीपे गवालये ।
वृन्दामूले गोमये वा दद्यादुद्वाहसिद्धये ॥१४॥

विवाह हेतु सुयोग्य वर अथवा कुलीन कन्या की प्राप्ति के लिये गौ के गोवर से बने हुए दीप में गोघृत से युक्त कपास की बत्ती को जलाकर गोष्ठ (गोशाला) में, तुलसी की जड़ में या गोवर के पुञ्ज पर रखे ।

अन्यच्च– **बलेर्दिनं पुरस्कृत्य कार्त्तिके शुक्लपक्षके ।**
दिने दिने गवां पूजा वैष्णवानां द्विजन्मनाम् ॥ भु.रा.पू.११७॥४९

द्रौपदी एक ही पति की पत्नी थी

पाण्डवाः पञ्च चैकस्य रूपाणीन्द्रस्य तद्विदुः ।
वह्निजायाश्च द्रौपद्याः पतित्वेन प्रकल्पिताः ।।१।।
अग्निकुण्डसमुद्भूता द्रौपदीन्द्रप्रिया शची ।
तस्मान्नान्यः पतिस्तस्या इन्द्रः पंचात्मको ध्रुवम् ।।२।।
पुरा वृत्तप्रभावेण द्वापरे पाण्डवप्रिया ।
दैवयोगप्रमादेन कुन्त्याऽऽदिष्टाः सुतास्तथाः ।।३।।
भुंक्त भिक्षां सुताः पंच वाक्यं चातिरहस्यकम् ।
देवतायोगयुक्तानां चरित्रं परमाद्भुतम् ।।४।।
दोषोऽत्र नानुसन्धेयो नाचरेत्तादृशं नरः ।
विधिवाक्यविधानेन कर्म कुर्वन्न दोषभाक् ।।५।।

अर्थ- यह सिद्ध है, युधिष्ठिरादि पाण्डव एक ही इन्द्र के पाँच रूप थे । अग्नि से उत्पन्न द्रौपदी के एक ही इन्द्र पाँच पाण्डवों के रूप में उनके पति हुए ।।1।। अग्निकुण्ड से समुद्भूत द्रौपदी इन्द्र की पत्नी शची थी, इसलिये द्रौपदीरूपा उस पतिव्रता शची का पति कोई अन्य नहीं हो सकता है । पाण्डव इन्द्र के ही पंचात्मक स्वरूप थे, यह निश्चित है (महाभारत का प×चेन्द्रोपाख्यान देखें) ।।2।। पुराकालिक प्रसंग के प्रभाव से द्वापर में कुन्ती ने अपने पुत्रों को दैवयोग से ही ऐसी प्रमादपूर्ण आज्ञा दी और द्रौपदी पाण्डवप्रिया हुई ।।3।। कुन्ती ने कहा **'भुंक्त सर्वे'** सब भाई मिलकर उस भिक्षा का उपयोग करो (यद्यपि पाणिनि के अनुसार भुज् धातु का परस्मैपद में पालन या रक्षण ही अर्थ होता है, देखें- **'भुजोऽनवने'** का भाष्य । तथापि पाणिनि से पूर्व व्यास के प्रयोग में उपग्रह के अनुसार इसका अर्थ उपभोग किया जा सकता है । कुन्ती का यह वाक्य अत्यन्त रहस्यपूर्ण है । देवताओं और योगियों का चरित्र परम अद्भुत हुआ करता है ।।4।। मनुष्यों के द्वारा यहाँ दोष का अनुसन्धान नहीं करना चाहिये और न तो कोई मनुष्य ऐसा आचरण ही करे । धर्मशास्त्रीय विधिवाक्यरूपी संविधान के अनुसार ही कर्म करते हुए मनुष्य दोष का भागी नहीं होता है ।।5।।

श्रीसुरभिकवचम्

अस्य श्रीसुरभिकवचस्य शिवऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुरभिर्देवता सर्वरक्षाकरणे पाठे विनियोगः ।

ॐ सुरभिर्मे शिरः पातु मुखं पातु पयस्विनी । नेत्रेऽर्जुनी भ्रुवावुस्रा कर्णौ पातु करीषिणी ॥१॥ गन्धिनी नासिकारन्ध्रं जिहवां रम्भनकारिणी । गलकम्बलिनी ग्रीवां स्कन्धौ सास्नावती तथा ॥२॥ स्तनौ पातु बहुक्षीरा धेनुर्मे हृदयं तथा । मनो मनोरमा पातु बुद्धिं बुद्धिविवर्द्धिनी ॥३॥ प्राणान्पीयूषिणी पातु पवित्रा पार्श्वयोस्तथा । पातूदरं घृतावर्त्ता नाभिं चामृतनाभिका ॥४॥ बाहू मे शबला पातु ललाटं कपिलाऽवतु । समृद्धिर्मे करौ पातु सौम्या सर्वांगुलीस्तथा ॥५॥ कल्याणी मे कटिं पातु लिंगं पातु प्रजावती । ऊरू चोर्जस्विनी पातु जानू सर्वांगशोभना ॥६॥ जंघे जयप्रदा पातु पादौ मे पुण्यदाऽवतु । सर्वाण्यंगानि मे पातु नित्यगोलोकवासिनी ॥७॥ हव्यं पातु हविर्धानी कव्यं पितृगणेश्वरी । स्वाहा-स्वधा-वषट्कारानन्नपानं सुधार्णवा ॥८॥ प्राच्यामवतु मे माता चाग्नेय्यामनलात्मिका । याम्यां वैतरणीधेनुर्नैर्ऋत्यामघनाशिनी ॥९॥ प्रतीच्यां वत्सला पातु वायव्यां प्राणदा तथा । उत्तरस्यामजसुता चैशान्यां विश्वरूपिणी ॥१०॥ ऊर्ध्वं पातु जगन्माता ह्यधो भूरूपधारिणी । अन्येषु सर्वदेशेषु पातु सर्वेश्वरेश्वरी ॥११॥ इदं गोकवचं नित्यं श्रद्धया यः पठेन्नरः । तस्य सर्वाणि कर्माणि सिद्ध्यन्ति नात्र संशयः ॥१२॥ भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गले वा बाहुमूलके । कृत्वा गोपूजनं सम्यग्धारयेन्नियतः शुचिः ॥१३॥ गृहे वाऽरण्यदेशे वा दुःखे प्राणभये तथा । विवादे गोष्ठविघ्ने च सर्वरक्षा भवेद् ध्रुवम् ॥१४॥ गां संस्मृत्य प्रणम्येदं कवचं प्रीतिपूर्वकम् । पठेत्समाहितः सद्यो गोषु भक्तिः प्रजायते ॥१५॥ यत्र-कुत्रापि निवसन् यदि गोभक्तिमान्नरः । कवचस्मरणादेव सर्वत्र विजयी भवेत् ॥१६॥

अर्थ– ॐकार स्वरूप सुरभि मेरे सिर की रक्षा करें, पयस्विनी मुख की, अर्जुनी नेत्रों की, उस्रा भौंहों की और करीषिणी दोनों कानों की रक्षा करें ।१। गन्धिनी नासिकारन्ध्र की, रम्भनकारिणी जिह्वा की, गलकम्बलिनी ग्रीवा की और सास्नावती स्कन्ध–प्रदेश की रक्षा करें ।२। बहुक्षीरा स्तनों की, धेनु मेरे हृदय की, मनोरमा मन की और बुद्धिविवर्द्धिनी बुद्धि की रक्षा करें ।३। पीयूषिणी प्राणों की, पवित्रा दोनों पार्श्वभागों की, घृतावर्त्ता उदर की और अमृतनाभिका नाभि की रक्षा करें ।४। शबला बाहुओं की, कपिला ललाट की, समृद्धि हाथों की और सौम्या सभी अंगुलियों की रक्षा करें ।५। कल्याणी कटिप्रदेश की, प्रजावती गुप्तांग की, ऊर्जस्विनी दोनों ऊरुओं की और सर्वांगशोभना दोनों जानुओं की रक्षा करें ।६। जयप्रदा दोनों जंघाओं की, पुण्यदा दोनों पैरों की और नित्यगोलोकवासिनी मेरे सभी अंगों की रक्षा करें ।७। हविर्धानी हव्य की, पितृगणेश्वरी कव्य की और सुधार्णवा स्वाहा, स्वधा, वषट्कार तथा अन्नपान की रक्षा करें ।८। माता पूर्व दिशा में, अनलात्मिका आग्नेयकोण में,

वैतरणी धेनु दक्षिण में और अघनाशिनी नैर्ऋत्यकोण में रक्षा करें ।९। वत्सला पश्चिम में, प्राणदा वायव्य में, ब्रह्मसुता उत्तर में और विश्वरूपिणी ईशान में रक्षा करें ।१०। जगन्माता ऊर्ध्वदेश में, भूरूपधारिणी अधोदेश में और सर्वेश्वरेश्वरी अन्य सभी स्थानों में मेरी रक्षा करें ।११। श्रद्धावान् मनुष्य इस गोकवच का नित्य पाठ करे तो उसके सारे कर्म सिद्ध होंगे, इसमें कोई संशय नहीं है ।१२। भोजपत्र में इस कवच को लिखकर विधिवत् गोपूजन करके पवित्रचित्त हो ग्रीवा अथवा बाहुमूल में धारण करे ।१३। इसके धारण करने से घर में, वन में, दु:ख में, प्राणभय होने पर, किसी भी प्रकार के विवाद में अथवा गोशाला में विघ्न उपस्थित होने पर सर्वतोभावेन निश्चित ही रक्षा होती है ।१४। गोमाता का स्मरण और उनको प्रणाम कर प्रीतिपूर्वक समाहित चित्त हो इस कवच का नित्य पाठ करने से तत्काल ही गौओं के प्रति भक्ति उत्पन्न होगी ।१५। जहाँ-कहीं भी निवास करते हुए गोभक्ति से युक्त मनुष्य यदि इस कवच का स्मरण करे तो सर्वत्र वह विजय को प्राप्त करता है ।१६।

श्रीसुरभ्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

अस्या: श्रीसुरभ्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रमन्त्रस्य शिवऋषिरनुष्टुप्छन्द: सुरभिर्देवता गोप्रीतिपूर्वकं सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थ पाठे विनियोग: ।

नमामि मातर्जगत: प्रसूतिकां पयस्विनीं सर्वसुरासुराश्रयाम् ।
सदैव सम्पोषणतत्परां पुनर्नमामि मे देह्यमलां मतिं गतिम् ।।

नारद उवाच

कैलासशिखरे रम्ये पार्वती शिवशंकरम् । ज्ञात्वा प्रसन्नवदनमपृच्छद्विनयान्विता ।।१।।

पार्वत्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ लोकानां हितकाम्यया । गवामुत्तमनामानि कथयस्व महामते ।।२।।

शिव उवाच

साधु पृष्टन्त्वया देवि जगन्मंगलकारकम् । गवां प्रीतिकरं दिव्यं कीर्त्तनात्पापनाशनम् ।।३।। गवामनन्तनामानि पापतापहराणि वै । तेष्वत्यन्तपवित्राणि कथयामि वरानने ।।४।। गौर्धेनु: सुरभिर्माता वत्सलाऽघ्न्या पयस्विनी । पवित्रा श्रीमती सौम्या सच्चिदानन्दरूपिणी ।।५।। रोहिणी कपिला नन्दा पुण्या गन्धवहा शुचि: । श्यामा सनातनी प्राणा सुभगा सर्वरूपिणी ।।६।। अनन्ताऽनन्तसम्पूज्या अनन्तक्षीरदायिनी । अशेषाघहरा नित्या नित्यगोलोकवासिनी ।।७।। हव्यकव्यप्रदा शुद्धा कामधेनु: सुधार्णवा । भवदु:खहरक्षीरा वृन्दारण्यसमुद्भवा ।।८।। शबलाऽजसुता दिव्या श्रुतिरूपा समुद्रजा । श्रुतिसिद्धा जगन्माता पद्मांशा चारुरूपिणी ।।९।। चतुर्वर्गप्रदाऽव्यंगा सर्वावयवशोभना । पराऽपरा वरेण्या च सीतारामप्रपूजिता ।।१०।। राधाकृष्णप्रिया मान्या माध्वी क्षीरसरोवरा । कल्याणी माधवी शोभा सुशीला शुभलक्षणा

॥११॥ अदितिर्नन्दिनी सौर्या समंगा यज्ञकारणा । मनोरमाऽमृतनाभिश्च वशा विष्णुपदस्थिता ॥१२॥ भयघ्नी बहुला दोग्ध्री मंगला बहुदोहिनी । ऊर्जस्विनी महादेवी शरण्या शुभदर्शना ॥१३॥ आदित्यभगिनी रुद्रमाता वसुसुताऽमृता । चतुष्पादयुता धर्मस्वरूपा पितृतारिका ॥१४॥ शुभानना शुभाशान्तिश्चारुश्रृंगा करीषिणी । गलकम्बलवती पूज्या पुच्छिनी बहुरूपिणी ॥१५॥ अर्जुन्युस्त्रा च माहेयी बुद्धिदा बलदाऽनघा । चिन्तामणिरचिन्त्या च चिन्त्या चिदचिदात्मिका ॥१६॥ सत्या प्रजावती पूर्णा कल्पवृक्षस्वरूपिणी । हरिभक्तिप्रदा नित्यं हरिसान्निध्यकारिणी ॥१७॥ एतानि दिव्यनामानि तापत्रयहराणि वै । यः पठेच्छ्रद्धया युक्तो गोषु भक्तिः प्रजायते ॥१८॥ गोविन्दो रक्षकस्तस्य न भयं बाधते क्वचित् । अरण्ये संगरे वापि सर्वत्र विजयी भवेत् ॥१९॥ विद्यार्थी सर्वसद्विद्यां धनार्थी गां धनं तथा । पुत्रार्थी गुणिनः पुत्रान् मोक्षार्थी गतिमाप्नुयात् ॥२०॥ अष्टोत्तरसहस्रेण पुरश्चरणकं भवेत् । सर्वसिद्धिः करे तस्य गोगोविन्दानुकम्पया ॥२१॥ इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तं सर्वकल्याणहेतवे । यस्मै कस्मै न दातव्यं रहस्यं परमोत्तमम् ॥२२॥ गोविप्रगुरुगोविन्दभक्तिर्यस्य दृढ़ा भवेत् । तस्मै देयं प्रयत्नेन नात्र कार्या विचारणा ॥२३॥ गवामर्चनकाले तु नित्यमेव पठेन्नरः । अकामः सर्वकामो वा भक्तिमान् स मम प्रियः ॥२४॥ गवां ध्यानान्मया दृष्टं चेतस्येतदनुत्तमम् । वेदादिशास्त्रनिष्पन्नं स्तोत्रं हृदि न्यसेत्सुधीः ॥२५॥

श्रीसुरभ्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्र के पाठ का माहात्म्य– श्रीसुरभि के सुमेरु सहित एक सौ आठ दिव्य नामों से युक्त स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करने से मनुष्य के तीनों तापों का हरण होता है और गौओं में दृढ़ भक्ति होती है । गोविन्द उसके रक्षक होते हैं, किसी भी प्रकार का भय उन्हें कभी बाधा नहीं पहुँचा सकता । अरण्य में, युद्धस्थल में अथवा सर्वत्र वह विजयी होता है । विद्यार्थी सब प्रकार की सद्विद्याओं को, धन चाहने वाले गोधन एवं सम्पूर्ण वैभवों को, पुत्रार्थी गुणवान् पुत्रों को और मोक्षार्थी सद्गति को प्राप्त करता है । इसके एक हजार आठ पारायण करने से एक पुरश्चरण होता है । फलस्वरूप गौ और गोविन्द की अनुकम्पा से उसके हाथ में ही सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं । भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि – हे वरानने! सम्पूर्ण विश्व के कल्याणार्थ अतिरहस्यपूर्ण यह दिव्य स्तोत्र मेरे द्वारा कहा गया है । यह जिस किसी को नहीं देना चाहिये । जिसकी गौ में, ब्राह्मण में, गुरु में और गोविन्द में दृढ़ भक्ति हो वैसे अधिकारी के लिये किसी भी प्रकार का विचार किये बिना प्रयत्नपूर्वक यह गुप्त स्तोत्र प्रदान करना चाहिये । नित्य ही गोपूजन के समय निष्कामी या सकामी भक्तिमान् मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करे तो वह मेरा प्रिय पात्र होता है । गौ का ध्यान करने पर मेरे द्वारा प्रस्फुरित वेदादिशास्त्रों से निष्पन्न इस स्तोत्र को सुधीजन अपने हृदयप्रदेश में ही धारण करे ।

श्रीसुरभ्यष्टोत्तरशतनाममालिका

ॐ अद्य पुण्यादिना श्रीसुरभ्यष्टोत्तरशतनामभिः श्रीसुरभिपूजनमहं करिष्ये ।

विनियोगः- अस्याः श्रीसुरभ्यष्टोत्तरशतनामावल्याः शिवऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुरभिर्देवता सुरभिप्रीतिपूर्वकं सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं श्रीसुरभिपूजने विनियोगः ।

नमोऽस्तु धेन्वै च नमः सुरभ्यै शक्त्यै नमः सर्वजगज्जनन्यै ।
देव्यै जगद्रक्षणतत्परायै सुधार्णवायै च नमो नमस्ते ॥

ॐ गवे नमः । ॐ धेन्वै नमः । ॐ सुरभ्यै नमः । ॐ मात्रे नमः । ॐ वत्सलायै नमः । ॐ अघ्न्यायै नमः । ॐ पयस्विन्यै नमः । ॐ पवित्रायै नमः । ॐ श्रीमत्यै नमः । ॐ सौम्यायै नमः ॥१०॥ ॐ सच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः । ॐ रोहिण्यै नमः । ॐ कपिलायै नमः । ॐ नन्दायै नमः । ॐ पुण्यायै नमः । ॐ गन्धवहायै नमः । ॐ शुच्यै नमः । ॐ श्यामायै नमः । ॐ सनातनायै नमः । ॐ प्राणायै नमः ॥२०॥ ॐ सुभगायै नमः । ॐ सर्वरूपिण्यै नमः । ॐ अनन्तायै नमः । ॐ अनन्तसम्पूज्यायै नमः । ॐ अनन्तक्षीरदायिन्यै नमः । ॐ अशेषाघहरायै नमः । ॐ नित्यायै नमः । ॐ नित्यगोलोकवासिन्यै नमः । ॐ हव्यकव्यप्रदायै नमः । ॐ शुद्धायै नमः ॥३०॥ ॐ कामधेन्वै नमः । ॐ सुधार्णवायै नमः । ॐ भवदुःखहरक्षीरायै नमः । ॐ वृन्दारण्यसमुद्भवायै नमः । ॐ शबलायै नमः । ॐ अजसुतायै नमः । ॐ दिव्यायै नमः । ॐ श्रुतिरूपायै नमः । ॐ समुद्रजायै नमः । ॐ श्रुतिसिद्धायै नमः ॥४०॥ ॐ जगन्मात्रे नमः । ॐ पद्मांशायै नमः । ॐ चारुरूपिण्यै नमः । ॐ चतुर्वर्गप्रदायै नमः । ॐ अव्यङ्गायै नमः । ॐ सर्वावयवशोभनायै नमः । ॐ परायै नमः । ॐ अपरायै नमः । ॐ वरेण्यायै नमः । ॐ सीतारामप्रपूजितायै नमः ॥५०॥ ॐ राधाकृष्णप्रियायै नमः । ॐ मान्यायै नमः । ॐ माध्व्यै नमः । ॐ क्षीरसरोवरायै नमः । ॐ कल्याण्यै नमः । ॐ माधव्यै नमः । ॐ शोभायै नमः । ॐ सुशीलायै नमः । ॐ शुभलक्षणायै नमः । ॐ अदित्यै नमः ॥६०॥ ॐ नन्दिन्यै नमः । ॐ सौर्यायै नमः । ॐ समङ्गायै नमः । ॐ यज्ञकारणायै नमः । ॐ मनोरमायै नमः । ॐ अमृतनाभ्यै नमः । ॐ वशायै नमः । ॐ विष्णुपदस्थितायै नमः । ॐ भयघ्न्यै नमः । ॐ बहुलायै नमः ॥७०॥ ॐ दोग्ध्र्यै नमः । ॐ मङ्गलायै नमः । ॐ बहुदोहिन्यै नमः । ॐ ऊर्जस्विन्यै नमः । ॐ महादेव्यै नमः । ॐ शरण्यायै नमः। ॐ शुभदर्शनायै नमः। ॐ आदित्यभगिन्यै नमः । ॐ रुद्रमात्रे नमः । ॐ वसुसुतायै नमः ॥८०॥ ॐ अमृतायै नमः । ॐ चतुष्पादयुतायै नमः । ॐ धर्मस्वरूपायै नमः । ॐ पितृतारिकायै नमः । ॐ शुभाननायै नमः । ॐ शुभायै नमः। ॐ शान्त्यै नमः। ॐ चारुशृङ्गायै नमः । ॐ करीषिण्यै नमः । ॐ गलकम्बलवत्यै नमः ॥९०॥ ॐ पूज्यायै नमः । ॐ पुच्छिन्यै नमः । ॐ बहुरूपिण्यै नमः । ॐ अर्जुन्यै नमः । ॐ उस्रायै नमः । ॐ माहेय्यै नमः । ॐ बुद्धिदायै नमः । ॐ बलदायै नमः । ॐ अनघायै नमः । ॐ चिन्तामण्यै नमः ॥१००॥ ॐ अचिन्त्यायै नमः । ॐ चिन्त्यायै नमः:

। ॐ चिदचिदात्मिकायै नमः । ॐ सत्यायै नमः । ॐ प्रजावत्यै नमः । ॐ पूर्णायै नमः । ॐ कल्पवृक्षस्वरूपिण्यै नमः । ॐ हरिभक्तिप्रदायै नमः । ॐ हरिसान्निध्यकारिण्यै नमः ॥१०९॥ ॐ

श्रीसुरभ्यष्टोत्तरसहस्रनाममालिका

ॐ अद्य अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) सपत्नीकोऽहं गोभक्तिप्राप्तिपूर्वकं निखिलगोवंशस्य संरक्षण-संवर्द्धनद्वारा स्वस्य सकलपरिवारकुटुम्बस्य च सर्वविधकल्याणार्थं अमुकद्रव्येण श्रीसुरभ्यष्टोत्तरसहस्रनामभिः श्रीसुरभ्यर्चनं करिष्ये ।

ततो गणपतिं ध्यात्वा न्यासविनियोगध्यानपूर्वकं श्रीसुरभ्यर्चनं कुर्यात् ।

हृदयादिन्यासः- ॐ सुँ हृदयाय नमः । ॐ रँ शिरसे स्वाहा । ॐ भ्यैं शिखायै वषट् । ॐ नँ कवचाय हुम् । ॐ मँः नेत्राभ्यां वौषट् । ॐ सुरभ्यै नमः अस्त्राय फट् ।

करन्यासः- ॐ सुँ अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ रँ तर्जनीभ्यां नमः । ॐ भ्यैं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ नँ अनामिकाभ्यां नमः । ॐ मँः कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ सुरभ्यै नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

विनियोगः- अस्याः श्रीसुरभ्यष्टोत्तरसहस्रनाममालिकायाः शिवऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुरभिर्देवता गोवंशसंवर्द्धनपूर्वकं मम सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे सुरभ्यर्चने विनियोगः।

याऽऽराध्या विधिविष्णुरुद्रमुनिभिर्या विश्ववन्द्यार्चिता
सर्वप्राणिहितैषिणी शुभकरी त्रैलोक्यमाता च या ।
नित्यानन्दमयी पराऽध्वरहविर्मूला जगत्तारिणी
सा धेनुर्वरदाऽस्तु मे भगवती सर्वेश्वरस्येश्वरी ॥

ॐ सुरभ्यै नमः । ॐ गोमात्रे नमः । ॐ अकुतोभयायै नमः । ॐ अक्षतायै नमः। ॐ अक्षयायै नमः । ॐ अक्षरायै नमः। ॐ अखण्डायै नमः । ॐ अखिलायै नमः । ॐ अगस्त्यसेवितायै नमः । ॐ अगाधायै नमः ॥१०॥ ॐ अग्निकुण्डजायै नमः । ॐ अग्निशिखायै नमः । ॐ अग्रियायै नमः । ॐ अघहरायै नमः । ॐ अघ्न्यायै नमः । ॐ अचण्डयै नमः । ॐ अचलायै नमः । ॐ अचिन्त्यायै नमः । ॐ अचिन्त्यशक्त्यै नमः । ॐ अच्युतायै नमः ॥२०॥ ॐ अच्छायै नमः । ॐ अजस्रायै नमः । ॐ अजायै नमः । ॐ अजितायै नमः । ॐ अजिह्मायै नमः । ॐ अटवीव्रज्यायै नमः । ॐ अतिथ्यै नमः । ॐ अतिनिर्हारिण्यै नमः । ॐ अतिशक्तितायै नमः । ॐ अतिशोभनायै नमः ॥३०॥ ॐ अतीन्द्रियायै नमः । ॐ अदित्यै नमः । ॐ अदृष्टस्वरूपायै नमः । ॐ अद्भुतायै नमः । ॐ अद्रिविहारिण्यै नमः । ॐ अद्वयशक्त्यै नमः । ॐ अधिकायै नमः । ॐ अधीश्वर्यै नमः । ॐ अध्यक्षायै नमः । ॐ अध्यात्मविद्याप्रदायै नमः ॥४०॥ ॐ अध्वरमूलायै नमः । ॐ अध्वर्युपूज्यायै नमः । ॐ अनघायै नमः । ॐ अनडुह्प्रसूत्यै नमः । ॐ अनन्तायै

नमः । ॐ अनन्तार्चितायै नमः । ॐ अनन्तफलदायै नमः । ॐ अनन्तशक्तिसम्पन्नायै नमः । ॐ अनवस्करायै नमः । ॐ अनागतार्तवायै नमः ॥५०॥ ॐ अनाहतायै नमः। ॐ अनन्तार्चितायै नमः। ॐ अनिरुद्धायै नमः । ॐ अनुकम्पायै नमः । ॐ अनुक्रोशायै नमः । ॐ अनादिपूज्यायै नमः । ॐ अनुग्रहकर्त्र्यै नमः । ॐ अनुत्तमायै नमः । ॐ अनुत्तरायै नमः । ॐ अखिलेश्वर्यै नमः ॥६०॥ ॐ अनुपमायै नमः । ॐ अनुमत्यै नमः । ॐ अनूपायै नमः । ॐ अन्तर्वर्त्यै नमः । ॐ अन्तर्वाण्यै नमः । ॐ अन्नदायै नमः । ॐ अन्नरूपायै नमः । ॐ अपराजितायै नमः । ॐ अपर्णायै नमः । ॐ अपावृतायै नमः ॥७०॥ ॐ अबाधायै नमः । ॐ अभयायै नमः । ॐ अभिख्यायै नमः । ॐ अभिज्ञायै नमः । ॐ अभिधायै नमः । ॐ अभिनीतायै नमः । ॐ अभिव्याप्त्यै नमः । ॐ अभीष्टायै नमः । ॐ अभ्युदयायै नमः । ॐ अभ्युपपत्त्यै नमः ॥८०॥ ॐ अमरावत्यै नमः । ॐ अमर्त्यायै नमः । ॐ अमर्षायै नमः । ॐ अमलायै नमः । ॐ अमृतायै नमः । ॐ अमृतनाभ्यै नमः । ॐ अमृतवर्षिण्यै नमः । ॐ अमृषायै नमः । ॐ अमानिन्यै नमः । ॐ अमोघायै नमः ॥९०॥ ॐ अम्बायै नमः । ॐ अम्बिकायै नमः । ॐ अम्बालिकायै नमः । ॐ अर्चायै नमः । ॐ अर्चितायै नमः । ॐ अर्जुन्यै नमः । ॐ अर्घ्यायै नमः। ॐ अर्बुदारण्यवासिन्यै नमः । ॐ अर्हणायै नमः । ॐ अर्हितायै नमः ॥१००॥ ॐ अलंक्रियायै नमः । ॐ अलंकृतायै नमः । ॐ अवतोकायै नमः । ॐ अवधेशार्चितायै नमः । ॐ अविद्यायै नमः । ॐ अव्यथायै नमः । ॐ अर्शितायै नमः । ॐ अशेषायै नमः । ॐ अशोकायै नमः । ॐ अश्रान्तायै नमः ॥११०॥ ॐ असितार्चितायै नमः । ॐ आदित्यभगिन्यै नमः । ॐ आकीर्णायै नमः । ॐ आम्नाय्यै नमः । ॐ आद्यायै नमः । ॐ आनन्ददायै नमः । ॐ आप्तायै नमः । ॐ आप्तसेवितायै नमः । ॐ आभीरसेवितायै नमः । ॐ आयुर्दायै नमः ॥१२०॥ ॐ आरक्तपिङ्गाक्ष्यै नमः । ॐ आर्यायै नमः । ॐ आर्यावर्त्ताधिष्ठात्र्यै नमः । ॐ आल्यै नमः । ॐ आशायै नमः । ॐ आशिर्दायै नमः । ॐ आश्चर्यायै नमः। ॐ आश्रयायै नमः । ॐ आसनायै नमः । ॐ इच्छावत्यै नमः॥१३०॥ ॐ इज्यायै नमः । ॐ इडायै नमः । ॐ इन्दिरायै नमः । ॐ ईप्सितफलदायै नमः । ॐ इरावत्यै नमः । ॐ इष्ट्यै नमः । ॐ ईडितायै नमः । ॐ ईक्षणिकायै नमः । ॐ ईशायै नमः । ॐ ईश्वर्यै नमः ॥१४०॥ ॐ ईहायै नमः । ॐ उज्ज्वलायै नमः । ॐ उत्कृष्टायै नमः । ॐ उत्कर्षायै नमः । ॐ उत्कलिकायै नमः । ॐ उत्सुकायै नमः । ॐ उत्तमायै नमः । ॐ उत्तमाङ्गायै नमः । ॐ उत्थितायै नमः । ॐ उत्पलावर्त्तवनवासिन्यै नमः ॥१५०॥ ॐ उत्फुल्लायै नमः । ॐ उत्सुकायै नमः । ॐ उदक्यायै नमः । ॐ उदग्रायै नमः । ॐ उदारायै नमः । ॐ उद्गातृपूज्यायै नमः । ॐ उद्यतायै नमः । ॐ उन्नतायै नमः । ॐ उपकारिकायै नमः । ॐ उपकार्यायै नमः ॥१६०॥ ॐ उपचितायै नमः । ॐ उपज्ञायै नमः । ॐ उपनिषद्रूपायै नमः । ॐ उपसर्यायै नमः । ॐ उपासनायै नमः । ॐ उमायै नमः । ॐ उर्वरायै नमः । ॐ उर्व्यै नमः । ॐ उस्रायै नमः। ॐ ऊधोवत्यै नमः ॥१७०॥ ॐ ऊर्जस्वलायै नमः । ॐ

ऊर्जस्विन्यै नमः । ॐ ऋक्थायै नमः । ॐ ऋग्रूपायै नमः । ॐ ऋतुमत्यै नमः । ॐ ऋत्विगर्च्यायै नमः । ॐ ऋद्ध्यै नमः । ॐ ऋषिपूज्यायै नमः । ॐ एकाब्दायै नमः । ॐ एनोघ्न्यै नमः ॥१८०॥ ॐ ऐश्वर्यायै नमः । ॐ ओङ्काररूपिण्यै नमः । ॐ ओषधिवर्द्धिन्यै नमः । ॐ ककुद्मत्यै नमः । ॐ कपर्दिसेवितायै नमः । ॐ कपिलायै नमः । ॐ कपिलस्तुतायै नमः । ॐ कपिलाक्ष्यै नमः । ॐ कपीशपूज्यायै नमः । ॐ कमलायै नमः ॥१९०॥ ॐ कम्बलवत्यै नमः । ॐ करीषिण्यै नमः । ॐ करुणायै नमः । ॐ करुणासारायै नमः । ॐ कर्मसाक्षिण्यै नमः । ॐ कलायै नमः । ॐ कलिङ्गार्चितायै नमः । ॐ कल्पवृक्षस्वरूपिण्यै नमः । ॐ कल्याण्यै नमः । ॐ कवलदायै नमः ॥२००॥ ॐ कव्यप्रदायै नमः । ॐ काङ्क्षायै नमः । ॐ काञ्चनवर्णायै नमः । ॐ कात्यायन्यै नमः । ॐ कान्तायै नमः । ॐ कान्त्यै नमः । ॐ कामप्रदायै नमः। ॐ कामरूपिण्यै नमः । ॐ कामवर्षिण्यै नमः । ॐ कामगामिन्यै नमः ॥२१०॥ ॐ कारणायै नमः। ॐ कारुणिकायै नमः । ॐ कारुण्यायै नमः । ॐ कालिकायै नमः । ॐ कालिन्द्यै नमः । ॐ कालुष्यहीनायै नमः । ॐ काशीविलासिन्यै नमः । ॐ काश्यप्यै नमः । ॐ कांस्योपदोहिन्यै नमः। ॐ कीर्त्यै नमः ॥२२०॥ ॐ कुजदोषहरायै नमः । ॐ कुटुम्बिन्यै नमः । ॐ कुरुजाङ्गलवासिन्यै नमः। ॐ कृच्छ्रसम्पादिन्यै नमः । ॐ कृपामूर्त्यै नमः । ॐ कृशानुजायै नमः । ॐ कृषिमूलायै नमः । ॐ कृष्णपयोदायै नमः । ॐ कृष्णप्रियायै नमः । ॐ केल्यै नमः ॥२३०॥ ॐ केवलायै नमः । ॐ केशवार्चितायै नमः । ॐ कैवल्यायै नमः । ॐ कामधेन्वै नमः । ॐ कोमलायै नमः । ॐ क्रतुवर्द्धिन्यै नमः । ॐ क्रियायै नमः । ॐ क्रीडायै नमः । ॐ क्रोधनाशिन्यै नमः । ॐ क्लेशहारिण्यै नमः ॥२४०॥ ॐ क्षणदायै नमः । ॐ क्षणप्रभायै नमः । ॐ क्षमायै नमः । ॐ क्षेमायै नमः । ॐ क्षान्त्यै नमः । ॐ क्षित्यै नमः । ॐ क्षीरधेन्वै नमः । ॐ क्षीरायै नमः । ॐ क्षीरशुक्लायै नमः । ॐ क्षीरार्णवायै नमः ॥२५०॥ ॐ क्षीररत्नायै नमः । ॐ क्षीरसरोवरायै नमः । ॐ क्षीराब्धिजायै नमः । ॐ क्षीराव्यै नमः । ॐ क्षेत्रज्ञायै नमः । ॐ क्षोण्यै नमः । ॐ क्ष्मायै नमः । ॐ खुरवत्यै नमः । ॐ ख्यात्यै नमः । ॐ गङ्गागर्भायै नमः ॥२६०॥ ॐ गन्धार्चितायै नमः । ॐ गन्धिन्यै नमः । ॐ गभीरायै नमः । ॐ गरिष्ठायै नमः । ॐ गर्भिण्यै नमः । ॐ गलकम्बलवत्यै नमः। ॐ गलपिङ्गलायै नमः । ॐ गवीश्वर्यै नमः । ॐ गव्यदाननिरतायै नमः । ॐ गान्धर्व्यै नमः ॥२७०॥ ॐ गायत्र्यै नमः । ॐ गीर्वाणरूपायै नमः । ॐ गुग्गुलगन्धिकायै नमः । ॐ गुडधेन्वै नमः । ॐ गुर्विण्यै नमः। ॐ गुह्यविग्रहायै नमः । ॐ गूढायै नमः । ॐ गृष्ट्यै नमः । ॐ गृहागतायै नमः । ॐ गृहरक्षिकायै नमः ॥२८०॥ ॐ गवे नमः । ॐ गोकुलविहारिण्यै नमः । ॐ गोतमार्चितायै नमः । ॐ गोत्ररक्षिण्यै नमः । ॐ गोदायै नमः । ॐ गोपधनायै नमः । ॐ गोपस्तुतायै नमः । ॐ गोपालसेवितायै नमः । ॐ गोप्रियायै नमः । ॐ गोप्यै नमः ॥२९०॥ ॐ गोप्यर्चितायै नमः । ॐ गोपीप्रेमवर्द्धिन्यै नमः । ॐ

गोमयप्रदायै नमः । ॐ गोरसदात्र्यै नमः । ॐ गोवर्द्धनविहारिण्यै नमः । ॐ गोविन्दार्चितायै नमः । ॐ गोष्ठवासिन्यै नमः । ॐ गोष्ठ्यै नमः । ॐ गौर्य्यै नमः । ॐ ग्रासाशिन्यै नमः ॥३००॥ ॐ गोलोकसम्राज्ञ्यै नमः । ॐ गौरपिङ्गलायै नमः । ॐ ग्रहमण्डलस्थायै नमः । ॐ घण्टाग्रैवेयायै नमः । ॐ घृतधेन्वै नमः । ॐ घृतनद्यै नमः । ॐ घृतयोन्यै नमः । ॐ घृतावर्त्तायै नमः । ॐ चञ्चलायै नमः । ॐ चण्डिकायै नमः ॥३१०॥ ॐ चतुर्हायण्यै नमः । ॐ चतुष्पदायै नमः । ॐ चपलायै नमः । ॐ चारुवत्सायै नमः । ॐ चारुवदनायै नमः । ॐ चारुवाण्यै नमः । ॐ चारुशीलायै नमः । ॐ चारुशोभायै नमः । ॐ चारुशृङ्ग्यै नमः । ॐ चार्वङ्ग्यै नमः ॥३२०॥ ॐ चिकित्सामूलायै नमः । ॐ चिच्छक्त्यै नमः । ॐ चित्रकूटविहारिण्यै नमः । ॐ चित्रायै नमः । ॐ चिदचिदात्मिकायै नमः । ॐ चिन्तामण्यै नमः । ॐ चिन्ताहरायै नमः । ॐ चिन्त्यायै नमः । ॐ चिरप्रसूतायै नमः । ॐ चुल्ल्याधारायै नमः ॥३४०॥ ॐ चुल्लिपूजितायै नमः । ॐ चेतनायै नमः । ॐ छन्दोगर्भायै नमः । ॐ छायायै नमः । ॐ जगत्तारिण्यै नमः । ॐ जगन्मात्रे नमः । ॐ जनतार्चितायै नमः । ॐ जनन्यै नमः । ॐ जमदग्निपूजितायै नमः। ॐ जम्बुवनवासिन्यै नमः ॥३५०॥ ॐ जयन्त्यै नमः। ॐ जयायै नमः । ॐ जलधेन्वै नमः । ॐ जातायै नमः । ॐ जानकीसख्यै नमः । ॐ जायमानायै नमः । ॐ जीविकायै नमः । ॐ ज्ञप्त्यै नमः । ॐ ज्योतीरूपायै नमः । ॐ ज्ञानदायै नमः ॥३६०॥ ॐ ज्योत्स्नायै नमः । ॐ ज्वरहरायै नमः । ॐ तत्त्वात्मिकायै नमः । ॐ तपोधनायै नमः । ॐ तमोघ्न्यै नमः । ॐ तरुण्यै नमः । ॐ तल्लजायै नमः । ॐ ताम्रपृष्ठायै नमः । ॐ तिलधेन्वै नमः । ॐ तीर्थार्चितायै नमः ॥३७०॥ ॐ तीर्थरूपायै नमः । ॐ तुष्टायै नमः । ॐ तेजस्विन्यै नमः । ॐ तृणाशिन्यै नमः । ॐ तृप्त्यै नमः । ॐ त्रिकालसेव्यायै नमः । ॐ त्रिदशार्चितायै नमः । ॐ त्रिहायण्यै नमः । ॐ त्रैविद्यायै नमः । ॐ त्र्यम्बकरक्षितायै नमः ॥३८०॥ ॐ दक्षजायै नमः । ॐ दक्षिणायै नमः । ॐ दक्षिणावर्यायै नमः । ॐ दक्षिण्यायै नमः । ॐ दण्डकारण्यवासिन्यै नमः । ॐ दधिधेन्वै नमः । ॐ दयायै नमः । ॐ दयामय्यै नमः । ॐ दयितायै नमः । ॐ दर्पघ्न्यै नमः ॥३९०॥ ॐ दानवघातिन्यै नमः । ॐ दामोदरपूजितायै नमः । ॐ दाम्पत्यरक्षिण्यै नमः । ॐ दासपालिकायै नमः । ॐ दिलीपसेवितायै नमः । ॐ दिव्यगन्धायै नमः । ॐ दिव्यचरितायै नमः । ॐ दिव्यदेहायै नमः । ॐ दिव्यपादायै नमः । ॐ दिव्यप्रभायै नमः ॥४००॥ ॐ दिव्यरूपायै नमः । ॐ दिव्यस्रग्ग्रीवायै नमः । ॐ दीप्त्यै नमः । ॐ दुग्धिकायै नमः । ॐ दुग्धार्णवायै नमः । ॐ दुर्गतिनाशिन्यै नमः । ॐ दुर्गारूपायै नमः । ॐ दुर्दिनहरायै नमः । ॐ दूर्वाशिन्यै नमः । ॐ दूष्टिकर्यै नमः ॥४१०॥ ॐ देवगर्भायै नमः । ॐ देवतायै नमः । ॐ देवार्चितायै नमः । ॐ देवस्तनायै नमः । ॐ देवेश्यै नमः । ॐ देव्यै नमः । ॐ दैत्यरक्षोदलिन्यै नमः । ॐ दोग्ध्र्यै नमः । ॐ दोहदवत्यै नमः । ॐ द्युरूपायै नमः ॥४२०॥ ॐ द्युत्यै नमः । ॐ द्रविणायै नमः । ॐ द्रविणप्रदायै नमः। ॐ द्रविडार्चितायै नमः। ॐ द्रोणक्षीरायै नमः । ॐ द्वास्थितायै नमः । ॐ

द्वारक्षिकायै नमः । ॐ द्विजसारायै नमः । ॐ द्विहायन्यै नमः । ॐ धनदायै नमः ॥४३०॥ ॐ धन्यायै नमः । ॐ धरायै नमः । ॐ धर्मगर्भायै नमः । ॐ धर्मविग्रहायै नमः । ॐ धवलायै नमः । ॐ धात्र्यै नमः । ॐ धारणायै नमः । ॐ धिषणायै नमः । ॐ धीशक्त्यै नमः । ॐ धुर्यजनन्यै नमः ॥४४०॥ ॐ धृतक्षीरायै नमः । ॐ धृत्यै नमः । ॐ धेनुमत्यै नमः । ॐ धेन्वै नमः । ॐ नन्दग्रामविहारिण्यै नमः । ॐ नन्दायै नमः । ॐ नन्दिन्यै नमः । ॐ नमस्यायै नमः । ॐ नम्रगत्यै नमः । ॐ नम्रशृङ्ग्यै नमः ॥४५०॥ ॐ नरकनाशिन्यै नमः । ॐ नर्मदायै नमः । ॐ नलिनीदलपूजितायै नमः । ॐ नवनीतप्रदायै नमः । ॐ नवसूतिकायै नमः । ॐ नव्यायै नमः । ॐ नायिकायै नमः । ॐ नारायण्यै नमः । ॐ निःश्रेयसकर्यै नमः। ॐ निगमगर्भायै नमः ॥४६०॥ ॐ नित्यानन्दकर्यै नमः । ॐ नृपार्चितायै नमः । ॐ निपुणायै नमः । ॐ निमित्तोपादानकारणायै नमः । ॐ निर्भयायै नमः । ॐ निर्मलायै नमः । ॐ निलयशोभायै नमः । ॐ निष्ठायै नमः । ॐ निष्णातायै नमः । ॐ निष्पापायै नमः ॥४७०॥ ॐ निष्प्रपञ्चिन्यै नमः । ॐ निःस्वार्थायै नमः । ॐ नूपुरवत्यै नमः । ॐ नैचिक्यै नमः । ॐ नैमिषारण्यवासिन्यै नमः । ॐ पञ्चगव्यप्रसूत्यै नमः । ॐ पञ्चप्राणायै नमः । ॐ पद्मायै नमः । ॐ पद्मालयायै नमः । ॐ पद्मांशायै नमः ॥४८०॥ ॐ पयस्यायै नमः । ॐ पयस्विन्यै नमः । ॐ पयोधरायै नमः । ॐ परमायै नमः । ॐ परायै नमः । ॐ परित्रात्र्यै नमः । ॐ परेशायै नमः । ॐ परेष्टुकायै नमः । ॐ पलिक्न्यै नमः । ॐ पवित्रायै नमः ॥४९०॥ ॐ पश्यन्त्यै नमः । ॐ पापघ्न्यै नमः । ॐ पार्वतीप्रियायै नमः । ॐ पावन्यै नमः । ॐ पाटलायै नमः । ॐ पिङ्गलायै नमः । ॐ पितृगणेश्वर्यै नमः । ॐ पितृतारिण्यै नमः । ॐ पितृतोषिण्यै नमः । ॐ पीतवर्णायै नमः ॥५००॥ ॐ पीनोघ्न्यै नमः । ॐ पीवरस्तन्यै नमः । ॐ पीयूषिण्यै नमः । ॐ पुच्छिन्यै । ॐ पुच्छपिङ्गलायै नमः । ॐ पुण्डरीकाक्षसेवितायै नमः । ॐ पुण्यायै नमः । ॐ पुत्रदायै नमः । ॐ पुरस्सरायै नमः । ॐ पुराणस्तुतायै नमः ॥५१०॥ ॐ पुरातनायै नमः । ॐ पुष्करारण्यवासिन्यै नमः । ॐ पुष्कलायै नमः । ॐ पुष्टाङ्गायै नमः । ॐ पुष्ट्यै नमः । ॐ पुष्पार्चितायै नमः । ॐ पुष्पिण्यै नमः । ॐ पूजितायै नमः । ॐ पूज्यायै नमः । ॐ पूर्णकुम्भस्तन्यै नमः ॥५२०॥ ॐ पूर्णायै नमः । ॐ पृथिवीरूपधारिण्यै नमः । ॐ पृथुलायै नमः । ॐ पृषदाज्यनिलयायै नमः । ॐ प्रकटोदितायै नमः । ॐ प्रकाशिन्यै नमः । ॐ प्रकृत्यै नमः । ॐ प्रगल्भायै नमः । ॐ प्रजावत्यै नमः । ॐ प्रज्ञायै नमः ॥५३०॥ ॐ प्रणवात्मिकायै नमः । ॐ प्रतिमायै नमः । ॐ प्रतिष्ठायै नमः । ॐ प्रत्यक्षायै नमः । ॐ प्रत्यग्रायै नमः। ॐ प्रथितवीर्यायै नमः । ॐ प्रपञ्चाधिष्ठात्र्यै नमः । ॐ प्रभावत्यै नमः । ॐ प्रभूतक्षीरायै नमः । ॐ प्रमोदिन्यै नमः ॥५४०॥ ॐ प्रसन्नचित्तायै नमः । ॐ प्रसूतिगृहरक्षिकायै नमः । ॐ प्राचीनायै नमः । ॐ प्राज्ञायै नमः । ॐ प्राणशक्त्यै नमः । ॐ प्राणपोषिण्यै नमः । ॐ प्राणप्रियायै नमः । ॐ

प्राणात्मिकायै नमः । ॐ प्राणायै नमः । ॐ प्राप्त्यै नमः ॥५५०॥ ॐ प्रियायै नमः । ॐ प्रीत्यै नमः । ॐ प्रेक्षायै नमः । ॐ प्रेमाम्बुपूर्णायै नमः । ॐ फलवत्यै नमः । ॐ फलदायै नमः । ॐ बन्धमोचिन्यै नमः । ॐ बभ्रुवर्णायै नमः । ॐ बलभद्रार्चितायै नमः । ॐ बलीवर्दप्रदायै नमः ॥५६०॥ ॐ बल्यायै नमः । ॐ बष्कयण्यै नमः । ॐ बहुदुग्धवत्यै नमः । ॐ बहुदोहिन्यै नमः । ॐ बहुमूल्यायै नमः । ॐ बहुरूपायै नमः । ॐ बहुलायै नमः । ॐ बहुसूत्यै नमः । ॐ बान्धव्यै नमः । ॐ बालायै नमः ॥५७०॥ ॐ बालगर्भिण्यै नमः। ॐ बालदोषहरायै नमः । ॐ बीजात्मिकायै नमः । ॐ बुद्ध्यै नमः । ॐ ब्रह्मण्यायै नमः । ॐ ब्रह्ममहिष्यै नमः । ॐ ब्रह्मवादिन्यै नमः । ॐ ब्रह्मसुतायै नमः । ॐ ब्राह्मण्यै नमः । ॐ ब्राह्म्यै नमः ॥५८०॥ ॐ भक्तिस्वरूपायै नमः । ॐ भक्तिवर्द्धिन्यै नमः । ॐ भयघ्न्यै नमः । ॐ भद्रकुम्भस्तन्यै नमः । ॐ भद्रकर्यै नमः । ॐ भद्रायै नमः । ॐ भरद्वाजार्चितायै नमः । ॐ भवतापहन्त्र्यै नमः । ॐ भवान्यै नमः । ॐ भव्यायै नमः ॥५९०॥ ॐ भाग्यवर्द्धिन्यै नमः । ॐ भारत्यै नमः । ॐ भार्गवपूजितायै नमः । ॐ भावनायै नमः । ॐ भाव्यायै नमः । ॐ भीमार्चितायै नमः । ॐ भीष्माराधितायै नमः । ॐ भूतभव्यमात्रे नमः । ॐ भूत्यै नमः । ॐ भूम्यै नमः ॥६००॥ ॐ भूयस्यै नमः। ॐ भूयिष्ठायै नमः। ॐ भूरिक्षीरायै नमः । ॐ भूरिवन्दितायै नमः । ॐ भृत्यै नमः । ॐ भोगकर्यै नमः । ॐ भ्रान्त्यै नमः । ॐ भगवत्यै नमः । ॐ मखमन्त्रमूलायै नमः । ॐ मगधार्चितायै नमः ॥६१०॥ ॐ मङ्गलायै नमः । ॐ मङ्गलप्रदायै नमः । ॐ मङ्गल्यायै नमः । ॐ मञ्जुलायै नमः । ॐ मण्यै नमः । ॐ मण्डितायै नमः । ॐ मत्यै नमः । ॐ मतिप्रदायै नमः । ॐ मथुरावासिन्यै नमः । ॐ मधुगव्यायै नमः ॥६२०॥ ॐ मधुदोहिन्यै नमः । ॐ मधुरायै नमः । ॐ मधुश्रवायै नमः । ॐ मध्यमायै नमः । ॐ मध्यस्थायै नमः । ॐ मनोरमायै नमः । ॐ मनोहारिण्यै नमः । ॐ मनीषायै नमः । ॐ मन्त्रदायै नमः । ॐ मन्दगामिन्यै नमः ॥६३०॥ ॐ मन्दस्मितायै नमः । ॐ मरीचिपूजितायै नमः । ॐ मर्त्यार्चितायै नमः । ॐ मर्यादायै नमः । ॐ महत्यै नमः । ॐ महाशक्त्यै नमः । ॐ मखाधरायै नमः । ॐ मधुधेन्वै नमः । ॐ महाधनायै नमः । ॐ महाभागायै नमः ॥६४०॥ ॐ महाविद्यास्वरूपिण्यै नमः। ॐ महाङ्गायै नमः। ॐ महिम्न्यै नमः । ॐ मह्यै नमः। ॐ महोक्षजायै नमः। ॐ महेश्वर्यै नमः । ॐ माङ्गल्यदायै नमः । ॐ महोद्यमायै नमः । ॐ मात्रे नमः । ॐ माधव्यै नमः ॥६५०॥ ॐ माधवार्चितायै नमः । ॐ माध्व्यै नमः । ॐ मानदायै नमः । ॐ मानिन्यै नमः । ॐ मान्यायै नमः । ॐ मायायै नमः । ॐ माहेश्यै नमः । ॐ माहेश्वर्यै नमः । ॐ मुक्तादामविराजितायै नमः । ॐ मुक्त्यै नमः ॥६६०॥ ॐ मुक्तिदायै नमः । ॐ मुक्तालाङ्गूलायै नमः । ॐ मुख्यायै नमः । ॐ मुरारिसेवितायै नमः । ॐ मूलधनायै नमः । ॐ मूलप्रकृत्यै नमः । ॐ मृत्युञ्जयायै नमः । ॐ मृदुलायै नमः । ॐ मृदुस्वभावायै नमः । ॐ मेघनिर्घोषायै नमः ॥६७०॥ ॐ मेदिन्यै नमः । ॐ मेध्यायै नमः । ॐ

मिथिलाभूविलासिन्यै नमः। ॐ मिथिलेशसमर्चितायै नमः । ॐ मीमांसाधर्मरक्षिकायै नमः । ॐ मैथिलीपतिसेवितायै नमः । ॐ मैथिल्यै नमः । ॐ मैथिलीप्रियायै नमः । ॐ यजमानधनायै नमः । ॐ यज्ञकारणायै नमः ।।६८०।। ॐ यज्ञगर्भायै नमः । ॐ यज्ञधेन्वै नमः । ॐ यज्ञफलायै नमः । ॐ यज्ञयूपात्मिकायै नमः । ॐ यज्ञवर्द्धिन्यै नमः । ॐ यज्ञसाधनभूतायै नमः । ॐ यज्ञाधारायै नमः । ॐ यज्ञियायै नमः । ॐ यज्ञेश्वर्यै नमः । ॐ यतिपूज्यायै नमः ।।६९०।। ॐ यदृच्छायै नमः । ॐ यवाशनायै नमः । ॐ यव्यायै नमः । ॐ यशःश्रियै नमः । ॐ यशस्कर्यै नमः । ॐ यशस्विन्यै नमः । ॐ यशोदायै नमः । ॐ यशोधनायै नमः । ॐ यशोधरायै नमः । ॐ यशोमत्यै नमः ।।७००।। ॐ यागाधिष्ठात्र्यै नमः। ॐ यातनाहरायै नमः। ॐ यात्राशकुनायै नमः । ॐ युगपार्श्वगमात्रे नमः । ॐ योग्यायै नमः । ॐ रक्ताङ्ग्यै नमः । ॐ रक्षायै नमः । ॐ रक्षोघ्न्यै नमः । ॐ रजोदात्र्यै नमः । ॐ रजःशुद्धायै नमः ।।७१०।। ॐ रत्नगर्भायै नमः । ॐ रमण्यै नमः । ॐ रमायै नमः । ॐ रम्यायै नमः । ॐ रम्भनकारिण्यै नमः । ॐ रसगर्भायै नमः । ॐ रसधेन्वै नमः । ॐ रसवत्यै नमः । ॐ रसायै नमः । ॐ राजराजेन्द्रसेवितायै नमः ।।७२०।। ॐ राधायै नमः । ॐ राधाकृष्णप्रियायै नमः । ॐ राधासहचर्यै नमः । ॐ रामार्चितायै नमः । ॐ राष्ट्रशक्त्यै नमः । ॐ राष्ट्रियायै नमः । ॐ रासेश्वर्यै नमः । ॐ रुग्घरायै नमः । ॐ रुच्यै नमः । ॐ रुचिरायै नमः ।।७३०।। ॐ रुच्यायै नमः । ॐ रुद्रपालितायै नमः । ॐ रुद्रमात्रे नमः । ॐ रुद्राण्यै नमः । ॐ रोगनाशिन्यै नमः । ॐ रोदस्यै नमः । ॐ रोहिण्यै नमः । ॐ रौद्रायै नमः । ॐ रौप्यखुरायै नमः । ॐ लक्षणायै नमः ।।७४०।। ॐ लक्ष्म्यै नमः । ॐ लक्ष्यायै नमः । ॐ लज्जायै नमः । ॐ ललितायै नमः । ॐ लाङ्गलीपूजितायै नमः । ॐ लालसायै नमः । ॐ लीलायै नमः । ॐ लूताविस्फोटहरायै नमः । ॐ लोकजनन्यै नमः । ॐ लोकेशायै नमः ।।७५०।। ॐ लोपामुद्रार्चितायै नमः । ॐ लोमशपूजितायै नमः । ॐ लोहितवर्णायै नमः । ॐ वंशवर्द्धिन्यै नमः । ॐ वत्सप्रसूत्यै नमः । ॐ वत्सलायै नमः । ॐ वत्सतरमात्रे नमः । ॐ वयस्यायै नमः । ॐ वरदायै नमः । ॐ वरवर्णिन्यै नमः ।।७६०।। ॐ वराङ्गायै नमः । ॐ वरारोहायै नमः । ॐ वरिवस्यार्हायै नमः । ॐ वरीयस्यै नमः । ॐ वरेण्यायै नमः । ॐ वर्यायै नमः । ॐ वशायै नमः । ॐ वषड्रूपायै नमः । ॐ वसिष्ठाराधितायै नमः । ॐ वसुदेवार्चितायै नमः ।।७७०।। ॐ वसुसुतायै नमः । ॐ वसुन्धरायै नमः । ॐ वसुमत्यै नमः । ॐ वाग्रूपिण्यै नमः । ॐ वाञ्छायै नमः । ॐ वाण्यै नमः । ॐ वात्सल्यमूर्त्यै नमः । ॐ वार्त्तायै नमः । ॐ वासनायै नमः । ॐ वासन्त्यै नमः ।।७८०।। ॐ विज्ञानायै नमः । ॐ विघ्नध्वान्तनिवारिण्यै नमः । ॐ विजयायै नमः । ॐ वित्तगर्भायै नमः । ॐ वित्ताध्यक्षायै नमः । ॐ विद्याप्रदायै नमः । ॐ विधिस्तुतायै नमः । ॐ विन्ध्यचारिण्यै नमः । ॐ विपद्धरायै नमः । ॐ विपाशायै नमः ।।७९०।। ॐ विपुलायै नमः । ॐ विप्रेज्यायै नमः । ॐ विप्रधनायै नमः । ॐ विप्रसगर्भ्यायै नमः । ॐ विभवायै नमः । ॐ विभावसुपथस्थितायै नमः । ॐ विभूत्यै नमः । ॐ विमलायै

नमः । ॐ विमलप्रज्ञायै नमः । ॐ विलक्षणायै नमः ॥८००॥ ॐ विशाखायै नमः । ॐ विशालायै नमः । ॐ विशोधिन्यै नमः । ॐ विश्वमायायै नमः । ॐ विश्वयोन्यै नमः । ॐ विश्वम्भरायै नमः । ॐ विश्वरूपायै नमः । ॐ विश्ववन्द्यायै नमः । ॐ विश्वविभूत्यै नमः । ॐ विषहरायै नमः ॥८१०॥ ॐ विष्णुपदस्थितायै नमः। ॐ विष्णुविग्रहायै नमः। ॐ विष्वक्सेनप्रियङ्कर्यै नमः । ॐ विसृतस्तनायै नमः । ॐ विस्रसायै नमः । ॐ वीतिहोत्रप्रियङ्कर्यै नमः । ॐ वीर्यप्रदायै नमः । ॐ वेणुनादप्रियायै नमः । ॐ वेदलक्षणायै नमः । ॐ वेदवेद्यायै नमः ॥८२०॥ ॐ वेहद्रव्यै नमः । ॐ वैकुण्ठविहारिण्यै नमः । ॐ वैदिक्यै नमः । ॐ वैतरणीतरिण्यै नमः । ॐ वैष्णव्यै नमः । ॐ वृत्त्यै नमः । ॐ वृत्तिदायै नमः । ॐ वृद्धायै नमः । ॐ वृद्ध्यै नमः । ॐ वृद्धोक्षमात्रे नमः ॥८३०॥ ॐ वृद्धोक्षप्रियायै नमः । ॐ वृन्दावनविहारिण्यै नमः । ॐ वृन्दावनसमुद्भवायै नमः । ॐ वृषस्यन्त्यै नमः । ॐ वृषवल्लभायै नमः। ॐ वृषप्रियायै नमः । ॐ वृषाक्रान्तायै नमः । ॐ वृष्णिकुलपूजितायै नमः । ॐ व्यापकायै नमः । ॐ व्यासार्चितायै नमः ॥८४०॥ ॐ व्रजधनायै नमः । ॐ व्रजवासिन्यै नमः । ॐ व्रज्यायै नमः । ॐ व्रणहरायै नमः । ॐ व्रतरक्षिण्यै नमः । ॐ शक्त्यै नमः । ॐ शक्यायै नमः । ॐ शचीप्रियायै नमः । ॐ शचीपतिस्तुतायै नमः । ॐ शनैश्चरायै नमः ॥८५०॥ ॐ शफवत्यै नमः। ॐ शबल्यै नमः । ॐ शरण्यायै नमः । ॐ शर्कराधेन्वै नमः । ॐ शर्वाण्यै नमः । ॐ शस्यमूलायै नमः । ॐ शायवत्यै नमः । ॐ शान्तायै नमः । ॐ शान्त्यै नमः । ॐ शान्तिदायै नमः ॥८६०॥ ॐ शास्त्रगर्भायै नमः । ॐ शिक्षायै नमः । ॐ शिञ्जिनीपादायै नमः । ॐ शीलवत्यै नमः । ॐ शुक्रवर्द्धिन्यै नमः। ॐ शुक्लायै नमः । ॐ शुच्यै नमः । ॐ शुभगत्यै नमः । ॐ शुभाननायै नमः । ॐ शुभदर्शनायै नमः ॥८७०॥ ॐ शुभलक्षणायै नमः । ॐ शुभाङ्ग्यै नमः । ॐ शुभ्रायै नमः । ॐ शुश्रूषार्हायै नमः । ॐ शून्यरूपायै नमः । ॐ शोभनायै नमः । ॐ शोभायै नमः । ॐ शौर्यदायै नमः । ॐ श्यामायै नमः । ॐ श्यामप्रियायै नमः ॥८८०॥ ॐ श्रद्धायै नमः । ॐ श्राद्धधनायै नमः । ॐ श्रियै नमः । ॐ श्रीदायै नमः । ॐ श्रीदत्तसेवितायै नमः । ॐ श्रीमत्यै नमः । ॐ श्रुतिरूपायै नमः । ॐ श्रुतिसिद्धायै नमः । ॐ श्रुतिसेवितायै नमः । ॐ श्रेयस्यै नमः ॥८९०॥ ॐ श्रेष्ठायै नमः । ॐ श्रृङ्गिण्यै नमः । ॐ श्वेतपिङ्गलायै नमः । ॐ सख्यायै नमः । ॐ संसिद्धिहेतुकायै नमः । ॐ संस्कृतार्चितायै नमः । ॐ संस्थाध्यक्षायै नमः। ॐ सच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः । ॐ सत्यवाक्कर्यै नमः। ॐ सत्यै नमः ॥९००॥ ॐ सदसत्स्वरूपिण्यै नमः । ॐ सदाक्षीरायै नमः । ॐ सनातन्यै नमः । ॐ सन्धिन्यै नमः । ॐ सन्ध्यायै नमः । ॐ सपर्यायै नमः । ॐ सफलायै नमः । ॐ सभर्तृकायै नमः । ॐ सभ्यायै नमः । ॐ सुमङ्गलायै नमः ॥९१०॥ ॐ समङ्गायै नमः । ॐ समग्रायै नमः । ॐ समज्ञायै नमः । ॐ समर्थायै नमः । ॐ समृद्ध्यै नमः । ॐ सम्पत्त्यै नमः । ॐ सम्पत्कर्यै नमः । ॐ सम्राज्ञ्यै नमः । ॐ सरलायै नमः। ॐ

सरस्वत्यै नमः ॥९२०॥ ॐ सर्पिर्मूलायै नमः । ॐ सर्वकामदुघायै नमः । ॐ सर्वकारणायै नमः। ॐ सर्वतीर्थमय्यै नमः । ॐ सर्वतीर्थाभिषेचिन्यै नमः । ॐ सर्वतोभद्रायै नमः । ॐ सर्वदेवमय्यै नमः। ॐ सर्ववेदमय्यै नमः । ॐ सर्वप्राणिहितैषिण्यै नमः । ॐ सर्वमतार्चितायै नमः ॥९३०॥ ॐ सर्वमङ्गलायै नमः । ॐ सर्वाभरणभूषितायै नमः । ॐ सर्वेश्वर्यै नमः । ॐ सर्वरक्षणतत्परायै नमः । ॐ सर्वरत्नमय्यै नमः । ॐ सर्वशक्त्यै नमः । ॐ सर्वसहायै नमः । ॐ सर्वाङ्गशोभनायै नमः । ॐ सवत्सायै नमः । ॐ साकेतविलासिन्यै नमः ॥९४०॥ ॐ साधीयस्यै नमः । ॐ साध्यायै नमः । ॐ साध्व्यै नमः । ॐ सास्नावत्यै नमः । ॐ सिद्धान्तरक्षिण्यै नमः । ॐ सिद्धायै नमः । ॐ सिद्धसेवितायै नमः । ॐ सिद्धार्थकर्यै नमः । ॐ सिद्ध्यै नमः । ॐ सिन्दूरार्चितायै नमः ॥९५०॥ ॐ सीतासेवितायै नमः । ॐ सीतामूलायै नमः । ॐ सुकरायै नमः । ॐ सुखदायै नमः । ॐ सुगन्धायै नमः । ॐ सुचरित्रायै नमः। ॐ सुदक्षिणार्चितायै नमः। ॐ सुधास्तन्यै नमः । ॐ सुधीपूज्यायै नमः । ॐ सुभगायै नमः ॥९६०॥ ॐ सुभद्रायै नमः । ॐ सुरासुरनुतायै नमः । ॐ सुरभिगन्धिन्यै नमः । ॐ सुरेशाराधितायै नमः । ॐ सुवर्णवर्णायै नमः । ॐ सुव्रतायै नमः । ॐ सुशीलायै नमः । ॐ सुषमायै नमः । ॐ सूनृतायै नमः । ॐ सूर्यमण्डलमण्डितायै नमः ॥९७०॥ ॐ सृष्ट्यै नमः । ॐ सृष्टिस्थितिसंहारकारिण्यै नमः । ॐ सेव्यायै नमः । ॐ सैन्धवारण्यचारिण्यै नमः । ॐ सौम्यमुख्यै नमः । ॐ सौम्यायै नमः । ॐ सौम्येक्षणायै नमः । ॐ सौरभेय्यै नमः । ॐ सौर्यायै नमः । ॐ स्फुरणायै नमः ॥९८०॥ ॐ स्तनवत्यै नमः । ॐ स्तुत्यै नमः। ॐ स्तुतिप्रियायै नमः । ॐ स्थिरायै नमः । ॐ स्थित्यै नमः । ॐ स्थूलायै नमः । ॐ स्थूलकुचायै नमः । ॐ स्निग्धायै नमः । ॐ स्पृश्यायै नमः । ॐ स्मृत्यै नमः ॥९९०॥ ॐ स्रग्धरायै नमः । ॐ स्रवद्दुग्धायै नमः । ॐ स्वच्छन्दचारिण्यै नमः । ॐ स्वतन्त्रायै नमः । ॐ स्वधायै नमः । ॐ स्वाहायै नमः । ॐ स्वयम्भुवायै नमः । ॐ स्वयंवरायै नमः। ॐ स्वर्गव्यै नमः । ॐ स्वर्गाधिरोहिण्यै नमः ॥१०००॥ ॐ स्वर्गपूज्यायै नमः। ॐ स्वर्ग्यायै नमः। ॐ स्वधामदायै नमः । ॐ स्वर्णकपिलायै नमः । ॐ हविर्धान्यै नमः । ॐ हव्यभुङ्क्षायै नमः । ॐ हेमशृङ्ग्यै नमः । ॐ होमधेन्वै नमः । ॐ ह्रीङ्कारररूपिण्यै नमः ॥१००९॥ ॐ इति ॥

श्रीसुरभिदशनामस्तोत्रम्

शिव उवाच- गवां दिव्यानि नामानि भक्त्या श्रृणु वरानने । येषां संकीर्तनादेव सद्यः सिद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥१॥ सुरभिः प्रथमं नाम द्वितीयं गौः प्रचक्षते । तृतीयं कीर्त्तितं धेनुर्माता चैव तुरीयकम् ॥२॥ पवित्रा पञ्चमं ज्ञेयं षष्ठं चापि पयस्विनी । सप्तमं तु हविर्धानी चाष्टमं होमधेनुका ॥३॥ नवमं सर्वपापघ्नी दशमं च सुरेश्वरी । एतानि दशनामानि गवां नित्यं

पठेन्नरः ॥४॥ महद्भये विपत्तौ च प्रयाणे प्राणसंकटे । सर्वपापभयान्मुक्तो भवत्येव न संशयः ॥५॥

अर्थ- भगवान् शिव कहते हैं- हे वरानने! गौ के दिव्य दस नामों को भक्ति युक्त होकर श्रवण करिये । जिनके संकीर्तन मात्र से शीघ्र ही सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । सुरभि, गौ, धेनु, माता, पवित्रा, पयस्विनी, हविर्धानी, होमधेनु, सर्वपापघ्नी और सुरेश्वरी- इन गौओं के दस नामों का जो मनुष्य नित्य पाठ करता है, वह महान् भय में, विपत्ति में, यात्रा में अथवा प्राणसंकट उपस्थित होने पर भी सब प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है ।

श्रीसुरभिषडक्षरस्तोत्रम्

ॐकारबीजरूपां गां गवामाद्यां जगत्प्रसूम् । सर्वकामप्रदां नृणामोंकारायै नमो नमः ॥१॥ सुचारुवदनां सौम्यां समृद्धिं श्रीमतीं शुभाम् । नत्वा देवर्षयो हृष्टाः सुकारायै नमो नमः ॥२॥ रक्ष रक्ष महादेवि रक्ष मातः पयस्विनि । सर्वतेजःस्वरूपिण्यै रकारायै नमो नमः ॥३॥ भियाऽसुराः पलायन्ते भगवद्दुग्धदायिनि । भवेच्छुभगतिर्भक्त्या भ्यैकारायै नमो नमः ॥४॥ नरा नमन्ति नित्यं यां नन्दिनीं सर्वसिद्धये । नैव किञ्चिद्भयं तेषां नकारायै नमो नमः ॥५॥ मातरं सर्वभूतानां हविर्धानीं मनोरमाम् । मख-मन्त्रादिमूलां गां मःकारायै नमो नमः ॥६॥ इदं षडक्षरस्तोत्रं सुरभ्याः सर्वकामदम् । गंगाधरकृतं नित्यं पठेद् गोभक्तिवृद्धये ॥७॥

ॐकार बीजस्वरूपा, गौओं की आद्या जननी, जगत् की माता और मनुष्यों की सभी कामनाएँ पूर्ण करने वाली ॐकार स्वरूपा गौ को मेरा बारम्बार प्रणाम है **।१।** सुन्दर सुशोभित मुखवाली, सौम्या, समृद्धि, श्रीमती, और शुभा- जिसको देवता और ऋषिगण भी प्रणाम कर प्रसन्न होते हैं उस सुकारस्वरूप गौ को मेरा बारम्बार प्रणाम है **।२।** हे महादेवि!, हे पयस्विनि!, हे माँ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । इस तरह की सर्वतेजःस्वरूपिणी रकारस्वरूप गौ माता को मेरा बार-बार प्रणाम है **।३।** हे वासुदेव को दुग्ध प्रदान करने वाली मातः ! तुम्हारे भय से असुर पलायन कर जाते हैं और तुम्हारी भक्ति से शुभगति प्राप्त होती है उस भ्यैकार स्वरूपिणी गौ माता को मेरा बार-बार प्रणाम है **।४।** मनुष्य सर्वसिद्धि के लिये जिस नन्दिनी को नित्य ही प्रणाम करते हैं और उन्हें किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है, उस नकार स्वरूपिणी गोमाता को मेरा बारम्बार प्रणाम है **।५।** सभी जीवों की माता, हव्य को धारण करने वाली हविर्धानी, मन में रमनेवाली मनोरमा और यज्ञ तथा मन्त्र की कारणभूता मःकार स्वरूपिणी गौ को मेरा बार-बार प्रणाम है **।६।** सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला सुरभि के इस षडक्षरस्तोत्र का गोभक्ति की वृद्धि के लिये प्रतिदिन पाठ करना चाहिये **।७।**

श्रीसुरभिद्वादशनामस्तोत्रम्

गौर्धेनुः सुरभिर्माता नन्दा श्यामा सनातनी । समृद्धिः कपिला प्राणा मंगला च मनोरमा ।।१।। गवां द्वादशनामानि श्रद्धया सम्पठन्नरः । इह सर्वसुखं भुक्त्वा चान्ते गोलोकमुद्व्रजेत् ।।२।।

अर्थ- गौ, धेनु, सुरभि, माता, नन्दा, श्यामा, सनातनी, समृद्धि, कपिला, प्राणा, मंगला और मनोरमा- गौ के इन बारह नामों का मनुष्य श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करते हुए इस लोक में सभी सुखों को भोगकर अन्त में गोलोक को प्राप्त करता है ।

श्रीसुरभिमानसपूजास्तोत्रम्

गोमातः परिकल्पयामि मनसा ध्यानं तथाऽऽवाहनं
दिव्यं रत्नमयासनं शुचिजलैः पाद्यं सुगन्धीकृतम् ।
अर्घ्यं चाचमनीयकं सुविमलं स्नानाय गाङ्गं जलं
देहत्राणकरं विशिष्टवसनं दत्तं मया गृह्यताम् ।।१।।
सूत्रं गन्धविलेपनाक्षतसुमैर्माल्यं कृतं कज्जलं
दूर्वा-पत्रनिवेदनं सुखकरं सिन्दूरसौभाग्यदम् ।
हारं हीरकमौक्तिकादिरचितं शृङ्गारद्रव्यान्वितं
धेनो तेऽङ्गविभूषणं सुमनसा दत्तं मया गृह्यताम् ।।२।।
धूपं चन्दनमिश्रितं दशविधं दीपं घृतेनान्वितं
नैवेद्यं पुरतोऽर्पयामि सुरभे षड्भी रसैः पूरितम् ।
नानामिष्टफलं सुपक्वसरसं पानाय पानीयकं
ताम्बूलं मुखवासनं रुचिकरं दत्तं मया गृह्यताम् ।।३।।
प्रीत्यर्थं मणिस्वर्णरत्नमुकुटं संवृद्धये दक्षिणां
छत्रं चामरदर्पणं व्यजनकं रौप्येण दण्डान्वितम् ।
आरार्त्तिक्यमतीवतापशमनं पुष्पांजलिं प्रार्थनां
भक्त्या धेनुप्रदक्षिणं प्रणमनं दत्तं मया गृह्यताम् ।।४।।
गोष्ठं रक्षणकारकातिसुखदं सम्यक्कृतं निर्मलं
शीतोष्णादिनिवारकं तृणजलैः पूर्णं मशैर्वारितम् ।
नन्दे नन्दय वत्सपालसहिते भक्तैः समभ्यर्चिते
कल्याणाय सुमं मयाऽर्पितमिदं धेनो प्रतिगृह्यताम् ।।५।।
मातस्त्वत्कृपयैव ज्ञानममलं पूजाविधानादिकं
दिव्यं रूपमनोहरातिसुलभं सर्वत्र सौख्यप्रदम् ।
यावत्कोटिसुराश्रयं तव वपुः पीयूषदाने रतं
सर्वेषां प्रतिपालनं दधिघृतक्षीरार्णवैः सन्ततम् ।।६।।
नाहं शास्त्रविचक्षणो न मधुरो नैवार्चने ते रतः

पादेष्वात्मनिवेदनं जननि ते कारुण्यवारान्निधे ।
शीघ्रं मामनुगृह्य देवि सुरभे संसारसारे शिशुं
निश्चिन्तोऽस्मि सदैव ते करुणया यामि क्व क्रोडाश्रयम् ।।७।।
शान्तिं देहि ममालये जगति च प्रेमाम्बुपूर्णे शुभे
प्रीतिस्ते चरणाम्बुजेषु सुरभे याऽऽकल्पकल्पान्तरम् ।
सर्वं तेऽखिलवस्तु विश्वमखिलं संकीर्णदासोऽस्म्यहं
यत्किंचिन्मनसाऽर्चनं सुरचितं दत्तं मया गृह्यताम् ।।८।।
गङ्गाधरेण विप्रेण मैथिलेन व्रजे मुदा ।
कृतं गो-लोकवृद्ध्यर्थं गवां मानसपूजनम् ।।९।।
येऽर्चयन्ति नरा नित्यं हृदा गोभक्तिदायकम् ।
तेषां सर्वार्थसिद्धिः स्याद् गोकृपातो न संशयः ।।१०।।

हे गोमातः! मैं मन से सम्पूर्ण उपचारों की परिकल्पना करता हूँ; जिनमें ध्यान, आवाहन, रत्नमय दिव्य आसन, सुगन्धित पवित्र जल से पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान के लिये सुनिर्मल ग›ाजल और देहत्राणकारक विशिष्ट वस्त्र मेरे द्वारा प्रदान किया गया, अतः इसे स्वीकार करो ।1। हे धेनो! सौभाग्यसूत्र, यज्ञसूत्र, गन्धविलेपन, अक्षत, पुष्प सहित दिव्य माला, स्वहस्त गोघृत-निर्मित काजल, सुखकर दूर्वा, बिल्वपत्रादि, सौभाग्य प्रदान करने वाला सिन्दूर, हीरा-मोती आदि से विरचित हार, श्रृ›ार-द्रव्य और दिव्य अ›विभूषण पवित्र मन से मेरे द्वारा निवेदित किया गया, हे माँ! कृपा पूर्वक तुम इसे स्वीकार करो ।2। हे सुरभे! चन्दनादि मिश्रित दशविध धूप, गोघृत-युक्त प्रज्वलित दीप और षड्रसपूर्ण नैवेद्य तुम्हारे सामने अर्पित करता हूँ । पुनः नाना प्रकार के सुपक्व-सरस-मधुर फल, पीने के लिये स्वच्छ-शुद्ध जल और मुखशुद्धि के लिये रुचिकर ताम्बूल मेरे द्वारा समर्पित किया गया है, अतः तुम इसे स्वीकार करो ।3। हे धेनो! तुम्हारी प्रीति के लिये मणि, स्वर्ण और रत्नजटित दिव्य मुकुट, सम्यक् प्रकार से आनन्द-वृद्धि के लिये दक्षिणा, छत्र, चामर, दर्पण, चाँदी के दण्ड से युक्त पंखा, मेरे और तुम्हारे अतिशय ताप-शमन के लिये आरती, पुष्पा×जलि, प्रार्थना, भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा और नमस्कार मैंने समर्पित किया है, अतः तुम इसे स्वीकार करो ।4। तत्पश्चात् अच्छी तरह से निर्मित, निर्मल, शीत और गर्मी से निवारण करने वाला, घास और जल से युक्त, मच्छर आदि से रहित सब प्रकार से रक्षाकारक अत्यन्त सुखद गोष्ठ (गोशाला) समर्पित करता हूँ । हे भक्तों के द्वारा सम्यक् प्रकार से पूजित नन्दे! वत्स, वृष और गोपालों के सहित इसमें आनन्दपूर्वक निवास करो । पुनः हे धेनो! सम्पूर्ण जगत् के कल्याणार्थ तुम्हें मैंने यह हार्दिकपुष्प अर्पित किया है, कृपा

पूर्वक तुम इसे स्वीकार करो ।5। हे मातः! तुम्हारी कृपा से ही पूजा-विधानादि का निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है । तुम्हारा चतुष्पाद धर्ममय मनोहर और सुख प्रदान करने वाला दिव्य रूप सर्वत्र अतिसुलभ है । तैंतीस करोड़ देवताओं का आश्रय तुम्हारा दिव्य शरीर सर्वदा अमृत प्रदान करने में ही रत रहता है और प्राणिमात्र के सर्वतोभावेन प्रतिपालन के लिये सर्वथा ही तुम दधि, घृत और क्षीरसमुद्र को प्रवाहित करती रहती हो ।6। हे जननि! शास्त्रों में मेरी कोई विलक्षणता नहीं है, मुझमें माधुर्य का अभाव है और तुम्हारी सेवा भी मुझसे विधिपूर्वक नहीं हो पाती, अतः हे करुणासमुद्रे! मैं तुम्हारे चरणों में केवल आत्मनिवेदन करता हूँ । हे संसारसारे! देवि! सुरभे! शीघ्र ही मुझ अबोध शिशु को अनुगृहीत कर मेरे ऊपर कृपा करो । मैं तो केवल तुम्हारी करुणा के सहारे पूर्णतः निश्चिन्त हूँ, माँ! बताओ, तुम्हें छोड़कर और किस की गोद का आश्रय लूँ, किसके सीने से जाकर चिपकूँ ।7। हे प्रेमरस से परिपूर्ण शुभे! सुरभे! मेरे घर में और सम्पूर्ण जगत् में शान्ति का साम्राज्य स्थापित करो । कल्प-कल्पान्तर पर्यन्त तुम्हारे चरणों में मेरी प्रीति बनी रहे, ऐसी कृपा प्रदान करो । हे माँ! यह सम्पूर्ण विश्व और विश्व की सभी वस्तुयें तुम्हारी ही हैं, मैं सŠीर्ण होते हुए भी तुम्हारा ही दास हूँ । कोई पदार्थ समर्पित करने वाला भला मैं कौन हो सकता हूँ । अतः जो कुछ भी मानसिक पूजन के रूप में मेरे द्वारा सम्यक् प्रकार से समाहृत यह मानसपूजास्तोत्र रूपी श्रद्धासुमन समर्पित किया गया है, हे माँ! कृपापूर्वक तुम इसे स्वीकार करो ।8। गोसेवक ग›ाधर नामक मिथिलावासी विप्र के द्वारा व्रज के दिव्य श्रीवृन्दावन धाम में प्रफुल्लित होकर गोवंश और सम्पूर्ण प्राणिमात्र की समृद्धि के लिये गौ का मानसपूजन किया गया ।9। जो मनुष्य गोभक्ति प्रदान करने वाला इस श्रीसुरभिमानसपूजा स्तोत्र का अत्यन्त श्रद्धा से पाठ करते हुए नित्य ही गोपूजन करते हैं, गोमाता की कृपा से उनके सभी पुरुषार्थों की सिद्धि निश्चय ही होती है इसमें कोई संशय नहीं है ।10।

गोमङ्गलाष्टकम्

मङ्गलं वत्सयुक्तायै पयस्विन्यै च मङ्गलम् ।
श्रीमत्यै च पवित्रायै ब्रह्मपुत्र्यै सुमङ्गलम् ॥१॥
मङ्गलं रत्नगर्भायै सम्पत्कर्यै च मङ्गलम् ।
मङ्गलं कामधेन्वै च जगद्धात्र्यै सुमङ्गलम् ॥२॥
मङ्गलं च हविर्धान्यै करीषिण्यै च मङ्गलम् ।
वासुदेवपयोदात्र्यै सुरभ्यै सर्वमङ्गलम् ॥३॥

मङ्गलं सर्वपूज्यायै पीयूषिण्यै च मङ्गलम् ।
रामकृष्णार्चितायै च मङ्गलादपि मङ्गलम् ।।४।।
वसिष्ठाराधितायै च नन्दिन्यै चापि मङ्गलम् ।
मनोरमायै प्राणायै गवां मात्रे सुमङ्गलम् ।।५।।
सर्वतेज:स्वरूपिण्यै गव्यदायै च मङ्गलम् ।
मखमन्त्रादिमूलायै होमधेन्वै सुमङ्गलम् ।।६।।
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च श्रेयस्कर्यै च मङ्गलम् ।
मङ्गलं विश्वपोषिण्यै भूरूपायै सुमङ्गलम् ।।७।।
सर्वेषां भयनाशिन्यै निर्भयायै च मङ्गलम् ।
सर्वदेवाश्रयायै च सर्वेश्वर्यै सुमङ्गलम् ।८।।
गोमातरं नमस्कृत्य पठेद् गोमङ्गलाष्टकम् ।
मङ्गलं सर्वदा तस्य जीवने नात्र संशय: ।।९।।

सवत्स, पयस्विनी, श्रीमती, पवित्रा और ब्रह्मपुत्री के लिये सदैव म› ल ही म› ल हो ।1। रत्नगर्भा, सम्पत्करी, कामधेनु और जगद्धात्री के लिये म› ल हो ।2। हविर्धानी, करीषिणी और वासुदेव को दुग्ध पिलाने वाली सुरभि का म› ल ही म› ल हो ।3। सर्वपूज्या, पीयूषिणी (अमृत धारण करने वाली) और श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि के द्वारा पूजित सुरभि का सुम› ल हो ।4। वसिष्ठ के द्वारा आराधित नन्दिनी, मनोरमा, प्राणा और गौओं की माता के लिये सुम› ल हो ।5। सर्वतेज:स्वरूपिणी, प×चगव्य प्रदान करने वाली, यज्ञ और मन्त्र की मूल कारणभूता होमधेनु के लिये सुम› ल हो ।6। हरिभक्ति प्रदान करने वाली, सर्वविध कल्याण करने वाली और विश्व का पोषण करने वाली भूरूपिणी गोमाता का म› ल ही म› ल हो ।7। सबके भय का नाश करने वाली निर्भया, सभी देवता आदियों की आश्रयभूता और सर्वेश्वरी गोमाता का सुम› ल हो ।8। जो गोमाता को नमस्कार कर गोम› लाष्टक का नित्य पाठ करता है, उसके जीवन में सर्वदा सभी कार्यों में म› ल ही म› ल होता है इसमें संशय नहीं है ।9।

गोप्रार्थनाष्टकम्

अनन्तशक्तिसम्पन्नां गामाद्यां जगदम्बिकाम् ।
सूर्यचन्द्रादिबिम्बस्थां ज्योतीरूपामहं भजे ।।१।।
नमामि सुरभिं देवीं सर्वानन्दप्रदायिनीम् ।
नन्दिनीं कामधेनुं च प्रणमामि पुन: पुन: ।।२।।

सच्चिदानन्दरूपां गां सर्वसम्पत्स्वरूपिणीम् ।
सर्वाघौघविनाशाय प्रणमामि पुनः पुनः ।।३।।
हव्यकव्यप्रदात्र्यै च हविर्धान्यै नमो नमः ।
परमामृतरूपायै प्रणमामि पुनः पुनः ।।४।।
मनोरमायै रोहिण्यै समृद्ध्यै च नमो नमः ।
सर्वतेजःस्वरूपिण्यै जगन्मात्रे नमो नमः ।।५।।
वासुदेवपयोदात्र्यै विश्वकल्याणहेतवे ।
तापत्रयविनाशिन्यै सुरभ्यै ते नमो नमः ।।६।।
हरिसान्निध्यकारिण्यै महादेव्यै नमो नमः ।
रामकृष्णार्चितायै च प्रणमामि पुनः पुनः ।।७।।
मखमन्त्रादिमूलायै प्रजावत्यै नमो नमः ।
कल्पद्रुमस्वरूपायै प्रणमामि पुनः पुनः ।।८।।

सूर्य-चन्द्रादि ग्रहबिम्ब के मध्य में ज्योति रूप से अवस्थित अनन्त शक्तिसम्पन्न आद्याशक्ति जगत् की माता गौ को मैं प्रणाम करता हूँ ।1। सदा सर्वानन्दप्रदायिनी दिव्य प्रकाशस्वरूपिणी सुरभि देवी को मैं प्रणाम करता हूँ, नन्दिनी और कामधेनु को भी मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ।2। सब प्रकार के पापपुञ्ज का विनाश करने के लिये सच्चिदानन्दरूपा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी गोमाता को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ।3। हव्य और कव्य प्रदान करने वाली, हव्य को धारण कर उससे देवता आदि का भी पोषण करने वाली परम अमृतरूपिणी गोमाता को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ।4। मनोरमा, रोहिणी, समृद्धि, सर्वतेजोरूपिणी और जगन्माता को मेरा बार-बार प्रणाम है ।5। विश्व के कल्याण के लिये श्रीकृष्ण को दुग्ध पिलाने वाली और आध्यात्मिक, आधि- दैविक, आधिभौतिक- इन तीन तापों का विनाश करने वाली माता सुरभि को में बार-बार प्रणाम करता हूँ ।6। भगवान् श्रीहरि की सन्निधि प्राप्त कराने वाली और श्रीराम-कृष्ण आदि के द्वारा समर्चित महादेवी गौ माता को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ।7। यज्ञ और वेदमन्त्रों की मूल, सम्पूर्ण विश्वरूपी प्रजा वाली और कल्पवृक्षस्वरूपिणी सुरभि देवी को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ।8।

श्रीसुरभिस्तवनम्

चन्द्रार्कग्रहबिम्बमण्डलमहाज्योतिःस्वरूपां परां
गामाद्याममराश्रयामजसुतामघ्न्यामनन्तार्चिताम् ।
सर्वव्यापकगव्यदाननिरतां वेदादिशास्त्रे स्तुतां
गोलोकाधिनिवासिनीं भगवतीं धेनुं सदाऽहम्भजे ।।१।।

तेजः कोटिरवेर्द्दशं सुवसनं दिव्यं तथाऽऽभूषणं
यस्यास्तां सकलेश्वरीं गुणगणैर्नृत्यैश्च देवाङ्गनाः ।
स्तुन्वन्ति प्रथमं सुराश्च सततं सर्वार्थसंसिद्धये
गोलोकाधिनिवासिनीं भगवतीं धेनुं सदाऽहं भजे ।।२।।
गायत्रीं द्विजसारवेदजननीं धर्मस्वरूपाम्बिकां
त्वां विद्यां वगलां महेशवनितां सीतां शचीं शारदाम् ।
त्वां कालीं कमलां चतुष्पदयुतां त्वामात्मना राधिकां
गोलोकाधिनिवासिनीं भगवतीं धेनुं सदाऽहम्भजे ।।३।।
रुद्रब्रह्मरमेशराघवनुतां कृष्णेनसम्पालितां
देवेन्द्रप्रतिपूजितां सुरगणैः साकं महच्छ्रद्धया ।
गन्धर्वैर्नरकिन्नरैर्वसुबुधैः सम्यक्समाराधितां
गोलोकाधिनिवासिनीं भगवतीं धेनुं सदाऽहम्भजे ।।४।।
भक्तैर्व्यासवसिष्ठकश्यपभरद्वाजात्रिवाल्मीकिभि-
र्भीष्माद्यैर्जमदग्निवत्सकपिलक्रत्वङ्गिरोगौतमैः ।
शाण्डिल्यासितयाज्ञवल्क्यजनकैः सौदाससम्पूजितां
गोलोकाधिनिवासिनीं भगवतीं धेनुं सदाऽहम्भजे ।।५।।
इक्ष्वाकुर्मनुरम्बरीषभरतौ नन्दो दिलीपो नृगो
गोभक्ता मुचकुन्दपाण्डवपृथुप्रैयव्रतोशीनराः ।
सोमः कीर्त्तिरथादयो नृपवराश्चान्येऽपि ध्यायन्ति यां
गोलोकाधिनिवासिनीं भगवतीं धेनुं सदाऽहम्भजे ।।६।।
श्रीमच्छंकरमध्ववल्लभबुधा मीमांसको मण्डनो
रामानन्दमहाप्रभुश्रुतिधना निम्बार्करामानुजाः ।
सर्वे स्वप्रतिपादने बहुविधान् गायन्ति यस्या गुणान्
गोलोकाधिनिवासिनीं भगवतीं धेनुं सदाऽहम्भजे ।।७।।
श्रीसुरभिस्तवनं शुभं सुमधुरं गङ्गाधरेणोदितं
यः प्रातः पठति प्रदोषसमये गोष्ठे गवां सन्निधौ ।
गोमातुः कृपया सदैव विजयी पुत्री यशस्वी तथा
सौख्यं शान्तिमवाप्य मुक्तिमतुलां गोलोकवासी भवेत् ।।८।।

अर्थ- जो चन्द्र-सूर्य आदि ग्रहों के बिम्बमण्डल में महाज्योतिःस्वरूपा पराशक्ति हैं, जो सम्पूर्ण देवताओं की आश्रयभूता, ब्रह्मसुता, अवध्या और विष्णु आदि के द्वारा समभ्यर्चित आद्याशक्ति हैं, जो सर्वत्र व्याप्त होकर दुग्ध-घृतादि गव्यपदार्थों के दान में निरत रहती हैं, जिनकी स्तुति वेदादि शास्त्रों में पदे-पदे की गयी है; उन

सर्वोच्च गोलोकधाम में निवास करने वाली वहाँ की अधिष्ठात्री भगवती सुरभि गौ को मैं सदैव ही प्रणाम करता हूँ ।1। जिनका तेज करोड़ों सूर्यो के समान है, जो सुन्दर वस्त्र तथा दिव्य आभूषणों को धारण करती हैं, देवा› नायें नृत्य सहित गुणगान के द्वारा जिन सर्वेश्वरी की स्तुति करती हैं, समस्त देवगण भी सर्वार्थसिद्धि के लिये सर्वप्रथम जिनकी स्तुति किया करते हैं, उन सर्वोच्च गोलोकधाम में निवास करने वाली वहाँ की अधिष्ठात्री भगवती सुरभि गौ को मैं सदैव ही प्रणाम करता हूँ ।2। जो द्विजों की सार वेदमाता गायत्री, चतुष्पदयुता धर्म स्वरूपिणी, जगदम्बा, महाविद्या, वगला, पार्वती, सीता, शची, सरस्वती, काली, कमला और राधा के रूप में विद्यमान हैं, उन सर्वोच्च गोलोकधाम में निवास करने वाली वहाँ की अधिष्ठात्री भगवती सुरभि गौ को मैं सदैव ही प्रणाम करता हूँ ।3। जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश और रघुकुलभूषण भगवान् श्रीराम के द्वारा नमन की जाती हैं, श्रीकृष्ण के द्वारा सम्यक् रूप से पालित हैं, अत्यन्त श्रद्धा से सुरगणों के साथ देवराज इन्द्र के द्वारा प्रतिपूजित हैं । गन्धर्व, नर, किन्नर, वसुगण और बुधजनों के द्वारा भली प्रकार से समाराधित हैं, उन सर्वोच्च गोलोकधाम में निवास करने वाली वहाँ की अधिष्ठात्री भगवती सुरभि गौ को मैं सदैव ही प्रणाम करता हूँ ।4। जो विशिष्ट गोभक्त व्यास, वसिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, अत्रि, वाल्मीकि, भीष्म, जमदग्नि, वत्स, कपिल, क्रतु, अि रा, गौतम, शाण्डिल्य, असित, याज्ञवल्क्य, जनक और सौदास आदि महर्षियों के द्वारा सम्यक् प्रकार से पूजित हैं, उन सर्वोच्च गोलोकधाम में निवास करने वाली वहाँ की अधिष्ठात्री भगवती सुरभि गौ को मैं सदैव ही प्रणाम करता हूँ ।5। गोसेवक इक्ष्वाकु, मनु, अम्बरीष, भरत, नन्द, दिलीप, नृग, मुचकुन्द, पाण्डव, पृथु, प्रैयव्रत ध्रुव, उशीनर, सोम और कीर्तिरथ आदि अन्य नृपश्रेष्ठ भी जिनका ध्यान करते हैं, उन सर्वोच्च गोलोकधाम में निवास करने वाली वहाँ की अधिष्ठात्री भगवती सुरभि गौ को मैं सदैव ही प्रणाम करता हूँ ।6। श्रुतिधन महाविद्वान् श्रीशŠराचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, महामीमांसक मण्डन मिश्र, रामानन्दाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, निम्बार्काचार्य और रामानुजाचार्य आदि अपने-अपने सिद्धान्त प्रतिपादन में जिन गोमाता का अनेक प्राकर से गुणगान करते हैं, उन सर्वोच्च गोलोकधाम में निवास करने वाली वहाँ की अधिष्ठात्री भगवती सुरभि गौ को मैं सदैव ही प्रणाम करता हूँ ।7। जो ग› ाधर के द्वारा प्रणीत सुन्दर, सुमधुर और शुभकर श्रीसुरभिस्तवन का गोष्ठ में गौओं के सान्निध्य में प्रातःकाल और प्रदोषकाल में पाठ करता है, गोमाता की कृपा से वह सदैव विजयी, सत्पुत्रवान्, यशस्वी तथा सभी सुखों

को भोगकर शान्ति को प्राप्त करता है । पुनः अतुलनीय मुक्ति को प्राप्त कर अनन्तकाल तक गोलोकधाम का निवासी होता है ।8।

श्रीसुरभ्यष्टकम्

नमः कामधेन्वै रजोगव्यदात्र्यै नमो विश्वधात्र्यै च सर्वाश्रयायै ।
नमस्तापहन्त्र्यै सुधाब्ध्यै समृद्ध्यै नमोऽनन्तदुग्धप्रदायै सुरभ्यै ।।१।।
नमः प्राणशक्त्यै च प्राणात्मिकायै नमश्चोत्तमायै कलायै परायै ।
नमस्तीर्थमय्यै च तीर्थार्चितायै नमः कोमलाङ्ग्यै शुभा ङ्ग्यै सुरभ्यै ।।२।।
नमः सृष्टिसंहारकर्त्र्यै शिवायै नमः पालिकायै च विष्णुप्रियायै ।
नमो वत्सलायै च पीयूषदात्र्यै नमः सर्वरक्षाकरिण्यै सुरभ्यै ।।३।।
नमो विश्वमूर्त्यै च दक्षात्मजायै नमो मङ्गलायै च माङ्गल्यदायै ।
नमः शान्तिकर्त्र्यै च शान्त्यै क्षमायै नमो दैत्यरक्षोदलिन्यै सुरभ्यै ।।४।।
नमोऽयोनिजायै च सर्वार्चितायै नमो विश्वयोन्यै च पुष्पस्रगायै ।
नमो हव्यदात्र्यै च कव्यप्रदायै नमोऽध्यात्मविद्याप्रदायै सुरभ्यै ।।५।।
नमः सौम्यमुख्यै च सौम्येक्षणायै नमो रुद्रमात्रे च वस्वात्मजायै ।
नमो ब्रह्मजायै च कुण्डोद्भवायै नमः कृष्णभक्तिप्रदायै सुरभ्यै ।।६।।
नमः कारणायै च दिव्यप्रभायै नमः सत्यविज्ञानतत्त्वात्मिकायै ।
नमो ब्रह्मरुद्रेन्द्रदेवार्चितायै नमो नित्यगोलोकराज्ञ्यै सुरभ्यै ।।७।।
नमोऽचिन्त्यशक्त्यै च चिन्ताहरायै नमः सूर्यचन्द्रादिबिम्बस्थितायै ।
नमो देहि मातः स्वपादेषु प्रीतिं नमस्ते नमस्ते नमस्ते सुरभ्यै ।।८।।
गङ्गाधरकृतं दिव्यं सुरभ्यष्टपदं पठेत् ।
गोष्ठे वा स्वगृहे वाऽपि जगन्मङ्गलकारकम् ।।९।।

गोरज और पञ्चगव्य प्रदान करने वाली, विश्व की जननी, सबों को आश्रय देने वाली, तीनों तापों को नष्ट करने वाली, अमृतसमुद्र, समृद्धि और भगवान् श्रीकृष्ण को भी दुग्ध पिलाने वाली भगवती कामधेनु सुरभि को मेरा बार-बार प्रणाम है ।1। प्राणशक्ति, प्राणस्वरूपिणी, सबों में श्रेष्ठ, कलारूपा, पराशक्ति, तीर्थरूपिणी, तीर्थों में समभ्यर्चित कोमलांगी और शुभ अंग वाली भगवती सुरभि को मेरा बार-बार प्रणाम है ।2। सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली, कल्याणस्वरूपिणी, नारायणी, वत्सों का लालन करने वाली, पीयूषप्रदात्री और सब की रक्षा करने वाली भगवती सुरभि को मेरा बार-बार प्रणाम है ।3। विश्वमूर्ति, दक्षपुत्री, मंगला, मांगल्य प्रदान करने वाली, शान्तिकरी, शान्ति, क्षमास्वरूपिणी तथा दैत्य एवं राक्षसों का दलन करने वाली सुरभि

देवी को मेरा वारम्वार मेरा प्रणाम है ।4। अयोनिजा, सर्वार्चिता, विश्वयोनि, पुष्पमाला वाली, हव्यदात्री, कव्यदात्री तथा अध्यात्म विद्या प्रदान करने भगवती सुरभि को मेरा बार–बार प्रणाम है ।5। सौम्य मुख वाली, सौम्य दृष्टि वाली, रुद्रों की जननी, वसुओं की दुहिता, ब्रह्मसुता, अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने वाली और श्रीकृष्ण की भक्ति प्रदान करने वाली भगवती सुरभि देवी को मेरा बार–बार प्रणाम है ।6। सबकी मूल कारण, दिव्य प्रभावती, सत्य, विज्ञान और तत्त्वस्वरूपिणी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्रादि देवताओं के द्वारा पूजित तथा नित्य गोलोक की महारानी भगवती सुरभि को मेरा बार–बार प्रणाम है ।7। अचिन्त्य शक्ति वाली, सभी चिन्ताओं का हरण करने वाली, सूर्य–चन्द्रादि ग्रहमण्डल के मध्य में ज्योति:स्वरूप से अवस्थित गोामाता को मेरा वारम्वार प्रणाम है । हे गोमाता! तुम अपने चरणकमलों में प्रीति प्रदान करो । सुन्दर गन्ध वाली भगवती सुरभि देवी को तापत्रय हरण करने के लिये मैं बार–बार प्रणाम करता हूँ ।8। सेवक ग›ाधर द्वारा प्रणीत इस दिव्य जगन्म›लकारक गवाष्टक का गोष्ठ अथवा अपने घर में भी नित्य पाठ करना चाहिये ।9।

श्रीसुरभ्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

कृतं नैव ध्यानं तव चरणपद्मेषु सुरभे
न प्रीतिस्ते मातस्त्वयि चरितदिव्ये मतिरलम् ।
शरण्ये त्वत्क्रोडे जगति शयनं मे सुखकरे
रजः स्वस्मिन् भाले धृतमतिपवित्रं श्रुतिततम् ।।१।।
पृथिव्यां यत्तीर्थस्नपनविधिना तेऽङ्घ्रिनमनात्
चतुष्पाद्रूपा त्वं परमपदकैवल्यपदवीम् ।
ददासि प्रेम्णा वै सकलजपमखदानसुफलं
कथं कुत्राप्याशा जगति तव नामैव शरणम् ।।२।।
जगत्तेऽन्तश्चित्ते विविधविधरत्नादिकमपि
प्रपञ्चाधिष्ठात्री चिदचिदसि धेनो मूलप्रकृतिः ।
अनन्तानाद्या त्वं जननि! परमब्रह्ममहिषी
अबोधस्ते पुत्रस्त्वमसि करुणासारहृदया ।।३।।
न मे पार्श्वे वित्तं नहि मनसि भक्तिस्त्वविरता
न गीतं ते गानं नहि किमपि पीतं त्वदमृतम् ।
जगन्मातस्तेऽंके जगदघहरे मेऽस्तु शयनं
त्वदन्यस्त्रैलोक्ये भवभयहरो नास्ति सुरभे ।।४।।
विश्वेशि मातरनिशं शरणागतं मां

रक्ष त्वमेव शरणं जगतो जनानाम् ।
पीयूषदाननिरते सुरभेऽर्भकाय
स्तन्यं प्रदेहि महिमाननिजं तनोतु ॥५॥
नैव जाने तवावाहनं पूजनं
नैव ग्रासादिदानं प्रदत्तं मया ।
नैव गोष्ठप्रदानं तृणार्थं मही
मामबोधं क्षमस्वाम्ब विश्वेश्वरि ॥६॥

हे माता सुरभे! मैंने कभी पवित्र चित्त से तुम्हारा ध्यान नहीं किया, तुम्हारे चरणकमलों में मेरी प्रीति भी नहीं है और न तो तुम्हारे दिव्य चरित में अवगाहन करने के लिये मेरी पर्याप्त मति ही है । संसार में सबको शरण देने वाली रमणीय तुम्हारी गोद में श्रुतिप्रतिपादित अत्यन्त पवित्र गोचरणधूलि को अपने ललाट आदि अ›ों में धारण कर निश्चिन्त हो सुखपूर्वक केवल सोया पड़ा हुआ हूँ ।।1।। इस पृथ्वीलोक के सम्पूर्ण तीर्थों में विधिपूर्वक स्नान करने का जो फल है, वह तो तुम्हारे प्रणाम करने मात्र से ही प्राप्त हो जाता है । तुम साक्षात् चतुष्पाद धर्मस्वरूपिणी हो, तुम ही परमपद कैवल्य की पदवी को प्रदान करती हो, तुम ही बड़े प्रेम से सम्पूर्ण जप, यज्ञ और दानादि सत्कर्मो के सुन्दर फल को प्रदान करती हो । हे मातः! भला बताओ, कहाँ जाऊँ, किसकी आशा करूँ और कौन दूसरा भरोसा है ? इस संसार में 'जय गोमाता, जय गोमाता' ऐसा तुम्हारा नाम ही प्राणिमात्र की शरण है ।।2।। हे मूलप्रकृति गोमाता! यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे अन्तःकरण में ही अवस्थित है, तुझ रत्नगर्भा में ही विविध प्रकार के रत्न आदि विद्यमान हैं । तुम सम्पूर्ण सृष्टि-प्रप×च की अधिष्ठात्री देवी हो । हे धेनो! तुम्हीं चिदचित्स्वरूपिणी अनाद्यनन्ता मूलप्रकृति और परब्रह्म परमात्मा की रसस×चारिणी महारानी हो । हे मातः! मैं अबोध पुत्र तुम्हारी स्तुति आदि क्या कर सकता हूँ ? तुम तो स्वभाव से ही करुणासारहृदया हो ।।3।। हे माँ! मेरे पास में वैभव नहीं है, न तो मेरे सŠीर्ण मन में तुम्हारे प्रति अविरत भक्ति ही है । मैनें कभी तुम्हारे दिव्य गुणों का गान नहीं किया है और न तो तुम्हारे द्वारा प्रदत्त दिव्य अमृत का सच्चे हृदय से पान ही किया है । हे जगत् की माता! संसार के पाप-ताप का अपहरण करने वाली तुम्हारी गोद मैं निश्चिन्त होकर शयन करूँ । हे सुरभे! तुम्हारे अतिरिक्त तीनों लोकों में भवभय का हरण करने वाला अन्य दूसरा कोई नहीं है ।।4।। हे विश्वेश्वरि मातः सुरभे! अहर्निश मुझ शरणागत की तुम रक्षा करो, क्योंकि संसार के प्राणिमात्र की एकमात्र तुम ही आश्रय हो । हे अमृत के दान

में निरत रहने वाली गोमाता! मुझ शिशु के लिये तुम स्तन्य (दुग्ध) प्रदान करो और स्वस्थ बनाकर मेरे हृदयप्रदेश में अपनी महिमा का विस्तार करो ।।5।। हे गोमाता! मैं तुम्हारे आवाहन और पूजन की विधि को नहीं जानता हूँ, न तो तुम्हारे निमित्त गोग्रास ही मैंने प्रदान किया है । हे माँ! मैनें सुखपूर्वक तुम्हारे निवास हेतु सुन्दर गोष्ठ का निर्माण कर के भी तुम्हें नहीं दिया है और तुम्हारे चरने के लिये मैंने गोचर भूमि का भी दान नहीं किया है । अतः हे मातः विश्वेश्वरि! मुझ अबोध बालक के अपराध को क्षमा करो ।।6।।

गोनीराजनम्

गोमातः करुणामयि भगवति कुर्वे ते नीराजनम् ।
जय जय मनोरमे सुरभे हे कुर्वे ते नीराजनम् ।।१।।
भवभयहारिणि दैत्यविदारिणि दुःखविनाशिनि सौख्यप्रदे ।
तव चरणे प्रणतोऽस्मि सदाऽहं कुर्वे ते नीराजनम् ।।२।।
देवमुनिप्रवरप्रतिपालिनि सृष्टिस्थितिसंहारकारिणि ।
श्यामे सनातने नन्दिनि हे कुर्वे ते नीराजनम् ।।३।।
श्रीमति ब्रह्मसुते वृषभामिनि गवामम्ब गोलोकनिवासिनि ।
जगज्जननि हे जनकल्याणि कुर्वे ते नीराजनम् ।।४।।
रुद्रजननि वसुपुत्रि पयस्विनि सुधार्णवे आदित्यभगिनि हे ।
दुग्धमुखो दीनो बालोऽहं कुर्वे ते नीराजनम् ।।५।।

हे करुणामयि! भगवति! गोमातः! मैं तुम्हारा नीराजन करता हूँ । हे मनोरमे! सुरभे! तुम्हारी जय हो, जय हो । मैं तुम्हारा नीराजन करता हूँ ।1। हे संसार के भय का हरण करने वाली, दैत्यों का विदारण करने वाली, दुःखों का विनाश करने वाली और सम्पूर्ण भोगों को प्रदान करने वाली मैं तुम्हारे चरणों में नतमस्तक होकर तुम्हारा नीराजन करता हूँ ।2। हे देवताओं और मुनियों का सर्वोत्तम पालन करने वाली, सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली श्यामे! सनातने! और नन्दिनि! मैं तुम्हारा नीराजन करता हूँ ।3। हे श्रीमति! ब्रह्मसुते! वृषभामिनि! गोलोक में निवास करने वाली, संसार का कल्याण करने वाली, सम्पूर्ण गोवंश और जगत् की माता सुरभे! मैं तुम्हारा नीराजन करता हूँ ।4। हे रुद्रों की जननी, वसुओं की सुता, आदित्य की बहन, दुग्ध आदि को धारण करने वाली और अमृत का समुद्र प्रवाहित करने वाली गोमाता! मैं दुग्धमुख दीन बालक तुम्हारा नीराजन करता हूँ ।5।

गोविनतिः

गोमातः कृपया प्रदेहि विमलां बुद्धिं गतिं लेखने
सर्वापन्निवृतिं करोतु जगतां सर्वोपकारं कुरु ।
आद्या त्वं प्रकृतिः पराऽनलभवा देवर्षिभिः संस्तुता
सर्वाघौघहरा पयोनिधिधरा क्षीरार्णवा पातु माम् ।।
धर्मतत्त्वप्रकाशाय विश्वकल्याणहेतवे ।
सर्वसिद्धिप्रदात्रीं गां वारम्वारं नमाम्यहम् ।।
मातः पयस्विनि पुनः पुनरेव नत्वा
याचे तवाङ्घ्रिविनतिं शरणं भवत्याः ।
दिव्यातिगोप्यचरितं भणितं श्रुतौ यत्
सर्वं त्वदीयममलं हृदि मे तनोतु ।।
नास्त्यक्षरं किमपि ते स्तुतिभावहीनं
नैवास्ति विश्वमखिलं जननीं विनेदम् ।
यत्त्वं ददासि दधिदुग्धघृतप्लुतान्नं
धेनो कथं कथय यामि शरण्यमन्यत् ।।

हे गोमातः! कृपा पूर्वक तुम अपने दिव्य चरित्र के लेखन कार्य में विमल बुद्धि प्रदान करो । सभी आपत्तियों से मुक्त करके सम्पूर्ण जगत् का उपकार करो । तुम ही आद्याप्रकृति, अग्निकुण्ड समुद्भवा, देवादिकों से संस्तुत, सभी पापपुञ्ज का हरण करने वाली, दुग्ध के भण्डार को धारण करने वाली और क्षीरसमुद्रा हो, अतः हे गोमाता! मेरी रक्षा करो ।1। विश्वकल्याण के लिये धर्मतत्त्वप्रकाशार्थ और सभी सिद्धियों को देनेवाली गोमाता को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ।2। हे मातः पयस्विनि! मैं तुम्हारे चरणकमल में सिर झुकाकर बार-बार प्रणाम करता हूँ और तुम्हारी शरण की याचना करता हूँ । माँ! तुम अपने दिव्य, अत्यन्त गोपनीय और निर्मल चरित्र- जो वेदादि शास्त्रों में प्रतिपादित है उसका मेरे हृदय में विस्तार करो ।3। हे माँ! ऐसा कोई भी अक्षर नहीं है जो तुम्हारी स्तुति के भाव से विहीन हो, तुम्हारे रहते यह सम्पूर्ण विश्व माता से विहीन नहीं हो सकता है; क्योंकि तुम ही दधि, दुग्ध, घृत और घृतयुक्त अन्न प्रदान करती हो । हे धेनो! कहो, भला अन्य किसकी शरण में जाऊँ ? ।4।

विभिन्नगोमन्त्रानुष्ठानविधान

गोतन्त्र आदि में गो माता के विभिन्न मन्त्र एवं उनकी साधना का दिग्दर्शन कराया गया है । शिव–पार्वती संवाद के रूप में गोतन्त्र का शिव से प्राकट्य हुआ है । गोमन्त्र के जप में सिद्ध, साध्य, अरि और मित्र आदि का भी विचार नहीं करना चाहिये । दीक्षित, अदीक्षित, शूद्र, चाण्डाल अथवा यवन आदि भी गोमाता की सेवा–पूजा से परम सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं ।

संक्षेप में गोतन्त्र के अनुसार गोबीज, गोपंचाक्षर, गोगायत्री एवं गोकवच का विधान देकर पुनः तन्त्रोक्त गो–नवरात्र की रहस्यपूर्ण साधना का विधान दिया जाएगा ।

गोबीजमन्त्रजपविधानम्

'गों' इस मन्त्र को गोप्रणव भी कहा जाता है । गो का एकाक्षर बीज मन्त्र भी यही है । यह एकाक्षर गो महामन्त्र समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। पुरश्चरण के विधानानुसार इसका चार लाख जप करना चाहिये । मन्त्र सिद्ध हो जाने पर सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति सहजता से ही हो जाती है । इस मन्त्र का एक कोटि जप करने से वाक्सिद्धि हो जाती है इससे जापक शाप और अनुग्रह में समर्थ होकर जो कहता है, वैसा ही हो जाता है । भगवान् शिव के अनुसार दस करोड़ जप करने से सम्पूर्ण सिद्धियों का स्वामी होकर फिर जीवन्मुक्त हो जाता है और भगवद्भाव को प्राप्त कर भगवद्विलीन हो जाता है । वह संसृति–क्लेश से मुक्त हो जाता है । इस मन्त्र का जपानुष्ठान सबों के लिये श्रेयस्कर है । साधकों के लिये यह मन्त्र निधि है । श्री गोतन्त्र में भगवान् शिव ने पार्वती से कहा है –

एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
पुरश्चर्याविधानेन जपेल्लक्षचतुष्टयम् ॥
मन्त्रसिद्धिमवाप्नोति सर्वकामाँश्च पार्वति ।
कोटिमन्त्रजपाद्देवि वाचासिद्धिमवाप्नुयात् ॥
शापानुग्रहकारी च यद्वदेत्तद् भवेद् ध्रुवम् ।
दशकोटिजपाद्देवि सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥
जीवन्मुक्तो महादेवि मम तुल्यो भवेन्नरः ।
न पुनर्भवनं तस्य मृते मय्येव लीयते ॥

पूर्ववत् संकल्प करें ; यथा –

ॐ अद्य गोप्रीतिपूर्वकं सर्वार्थसिद्ध्यर्थमेतत्संख्यकं गोप्रणवजपमहं करिष्ये ।

यथाविधि सर्वकर्मसाधारणी व्यवस्था का सम्पादन कर गोमाता की सेवा- पूजा करे पुनः न्यास, विनियोग, ध्यानपूर्वक यथोक्त माला पर जप प्रारम्भ करे । हृदयादिन्यास और करन्यास भी पूर्वोक्त क्रम से करे ।

ॐ गां हृदयाय नमः । ॐ गीं शिरसे स्वाहा । ॐ गूं शिखायै वषट् ।

ॐ गैं कवचाय हुम् । ॐ गौं नेत्राभ्यां वौषट् । ॐ गः अस्त्राय फट् ।

हस्ते जलं गृहीत्वा- **अस्य गोप्रणवमन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, आद्याशक्तिर्देवता गं बीजं, प्रणवः शक्तिः, नादः कीलकम्, चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।**

पठित्वा पात्रे जलं त्यक्त्वा गोध्यानं कुर्यात् -

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम् ।
त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदाऽनघे ।।
गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमश्रृंगय्यः पयोमुचः ।
सुरभ्यः सौरभेयश्च सरितः सागरं यथा ।।
गा वै पश्यान्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा ।
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ।।

इस प्रकार गोमाता का ध्यान करके यथोक्त माला का पंचोपचार विधि से पूजन कर स्थिरचित्त से जप प्रारम्भ करना चाहिये । 'गों 'यह बीज मन्त्र है । जप समाप्त हो जाने पर माला का सिर से स्पर्श करे पुनः गोवंश के संरक्षण-संवर्द्धन की कामना से गोप्रीत्यर्थ गोमाता को जप निवेदन करे ।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे मातस्त्वत्प्रसादाद्दयार्णवे ।।

अनेन कृतेन एतत्संख्यक गोबीजमन्त्रजपकर्मणा भगवती गोमाता प्रीयतां न मम ।

सति सम्भवे न्यासोऽपि विधेयः ।

गोपंचाक्षरमन्त्रजपविधानम्

अथ पंचाक्षरं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
चतुर्वर्गप्रदं चैव सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।।
गों बीजं पूर्वमुद्धृत्य गोभ्यो नमः समुच्चरेत् ।
पंचाक्षरो महामन्त्रः कामधेनुरिवापरः ।।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं क्षुद्रकामार्थप्राप्तये ।
लक्षसङ्ख्याप्रजापेन दुर्लभमप्यवाप्नुयात् ।।
कोटिसङ्ख्याजपेनैव स्वेच्छासिद्धिमवाप्नुयात् ।
यद्यत् कामयते चित्ते तत्तदेव लभेद् ध्रुवम् ।।
दशकोटिजपादस्य सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।
जीवन्मुक्तो भवेद्देवि ममतुल्यो न संशयः ।।

अब साधकों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला पaचाक्षर गोमन्त्र के बारे मे कहा जाता है । सर्वप्रथम 'गों' बीज का उच्चारण करके 'गोभ्यो नमः' कहने से 'गों गोभ्यो नमः' यह पचाक्षर मन्त्र बनता है । यह पaचाक्षर महामन्त्र दूसरे कामधेनु के ही समान है । द्विजमात्र श्रुतिप्रणव 'ॐ' लगाकर भी इसका जप कर सकते है, यही शास्त्रीय पक्ष है । इसका दस हजार जप करने से सामान्यतया कामार्थ की सिद्धि होती है । एक लाख जप करने पर दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति, एक करोड़ जप करने पर इच्छासिद्धि एवं दस करोड़ जप से सर्वसिद्धि को प्राप्त कर साधक शिवतुल्य हो जाता है ।

पंचार्णस्यास्य मन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिरुच्यते ।
उष्णिक्छन्दो महादेवि आद्याशक्तिस्तु देवता ।।
गों बीजं नमः शक्तिः गोभ्यस्तु कीलकं स्मृतम् ।
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थे विनियोगं चरेद्बुधः ।।
गों बीजेन षडंगानि विन्यसेत्साधकोत्तमः ।।

उपर्युक्त प्रकारानुसार न्यास, विनियोग एवं ध्यान पूर्वक माला का पूजन करके जप करे । गां, गीं, गूं, गैं, गौं, गः इस बीज मन्त्र से करन्यास, हृदयादिन्यास आदि करे ।

अस्य पंचाक्षरगोमन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिः, उष्णिक्छन्दः, आदिशक्तिर्देवता, गों बीजं, नमः शक्तिः, गोभ्यः कीलकं, सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । इसे पढ़कर पात्र में जल गिरायें ।

पुनर्ध्यानम्- **गावो ममैनः प्रणुदन्तु सौर्याः सौम्यास्तथा स्वर्गयानाय सन्तु ।**
आत्मानं मे मातृवच्चाश्रयन्तु तथाऽनुक्ताः सन्तु सर्वाशिषो मे ।।
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भवदुःखमुपैति मर्त्यः ।
संसारदुःखशमनाय यतस्त्वकामं त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति ।।

इसके बाद यथोक्त माला का पूजन कर **'ॐ गों गोभ्यो नमः'** इस प×चाक्षर गो महामन्त्र का संख्यानुसार नित्य समान जप करे । पुनः गोमाता के लिए जप समर्पण कर न्यासविधि का सम्पादन कर सकते है । जपान्त में भी सेवा, पूजा, भोग, आरती, पुष्पा×जलि, प्रदक्षिणा आदि की प्रक्रिया को यथा- सम्भव अवश्य ही करे ।

गोगायत्रीमन्त्रजपविधानम्

गोगायत्रीं प्रवक्ष्यामि चतुर्वर्गफलप्रदाम् ।
जगदम्बायै विद्महे चतुष्पदायै धीमहि ।।

सा नो धेनुः समुच्चार्य प्रचोदयादुच्चरेत्पुनः ।
एकाक्षरेण पुटिता गोगायत्री महामनुः ।।
एषा विद्या महाविद्या वसिष्ठाराधिता पुरा ।
ब्रह्मशक्तिप्रदा साक्षान्महापातकहारिणी ।।

भगवान् शिवप्रोक्त गोगायत्री मन्त्र का जप सर्वसिद्धि प्रदान करनेवाला है । मन्त्र का स्वरूप यह है –

'ॐ गों जगदम्बायै विद्महे चतुष्पदायै धीमहि । तन्नो धेनुः प्रचोदयात् गों ।।'

यह गोगायत्री एकाक्षर बीज से सम्पुटित है । यह विद्या महाविद्या कही जाती है । पूर्वकाल में महर्षि वसिष्ठ ने इसकी आराधना की है । यह महाविद्या साक्षात् ब्रह्मशक्ति प्रदान करने वाली तथा महान् पातक का अपहरण करने वाली है । इस मन्त्र के एक लाख जप से पुरश्चरण सिद्ध होता है । तीनों सन्ध्याओं में इस मन्त्र का अष्टोत्तरशत जप करने वाला सभी पापों से मुक्त हो ब्रह्मतेज को प्राप्त कर लेता है और सभी का पूज्य बनकर सर्वसिद्धि को प्राप्त कर लेता है । भगवान् शिव कहते हैं ; हे देवि ! इस प्रकार विधिवत् पाँच वर्ष तक अनुष्ठान करने पर वह जीवन्मुक्त होकर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करता है और शाप एवं वरदान देने मे भी समर्थ हो जाता है । वह सभी देवताओं से भी पूजित हो इस पृथ्वी लोक में सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त होकर अन्त में मुझमें ही विलीन हो जाता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । पूर्व में ही संकल्प आदि करके न्यास, विनियोग और ध्यान पूर्वक गोगायत्री का यथा संख्यक जप करे ।

गां, गीं, गूं, गैं, गौं, गः इस बीज मन्त्र से करन्यास एवं हृदयादिन्यास

विनियोगः

अस्य श्रीगोगायत्रीमन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिर्गायत्री छन्दः, आदिशक्तिर्देवता,
गों बीजं, धेनुः शक्ति, जगदम्बा कीलकं सर्वार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

पढ़कर किसी पात्र में जल गिरा सकते हैं ।

(विनियोग के बाद जल गिराने की प्रक्रिया कृताकृत है)

ध्यानम्

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीं प्रतिपादिताम् ।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो या नः प्रचोदयात् ।।

इस प्रकार से गोमाता का ध्यान करने के बाद यथोक्त माला का पूजन कर गोगायत्री मन्त्र का स्थिरचित्त से गोगायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये । जप के अन्त में –

'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे मातस्त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरि ॥'

इस मन्त्र को पढ़कर गोमाता को जप निवेदन कर दे ।

पुनः जल लेकर -

अनेन कृतेन एतत्संख्यकगोगायत्रीमन्त्रजपकर्मणा श्रीगोमाता प्रीयतां न मम ।

गोवंश के प्रति आस्था, गोवंश के संरक्षण-संवर्धन के लिये तथा सनातन धर्म एवं राष्ट्र के कल्याणार्थ इन उक्त प्रयोगों को अवश्य ही करना चाहिये ।

गोमाता में कभी भी पशुबुद्धि नहीं करनी चाहिये , ऐसी पशुबुद्धि वाला स्वयं ही पशु के समान है, ऐसा मानना चाहिये । भगवान् शिव कहते हैं कि संसार का भरण-पोषण करने वाली साक्षात् जगदम्बा पार्वती ही मुझ पर कृपा कर के गौ के रूप में मेरे घर में विराजमान हैं । इसी पवित्र भावना को हृदय में धारण कर गोमाता की सेवा-पूजा करनी चाहिये ।

पशुबुद्धिं गवि कृत्वा पालनं कुरुते तु यः ।
सोपि साक्षात्पशुर्देवि दुःखमाप्नोति सर्वदा ॥
देहान्ते पशुयोनिं वा नरकं याति पार्वति ।
अत एव महेशानि पशुबुद्धिं न कारयेत् ॥
गोरूपा जगतां धात्री कृपया तिष्ठति मे गृहे ।
एवं भावं हृदि न्यस्य पालयेद् भक्ति-भावतः ।
महत्पुण्यं स लभते दुःखैश्च मुच्यते ध्रुवम् ॥ इति

गौ को कभी उच्छिष्ट न दे, उसका अपमान न करे, ताड़न न करे, दुहने के समय गाय के साथ शठता पूर्वक व्यवहार न करे, गाय को पर्याप्त अनुकूल भोजन दे । यदि गाय ने किसी दूसरे का अन्न खा लिया है तो उसकी इच्छा होने पर उसे उतना अन्न दे दे, गाय के रक्षक सर्वदा उसके साथ रहे, गाय को डण्डे से न मारे । जिस की गौ भूख से पीड़ित, सेवक के बिना अकेली, दूसरों का अन्न आदि खाती हुई घूमती है वह चाण्डाल होता है और नरक का भागी बनता है । गौ का क्रय-विक्रय न करे । वधिक के हाथ में गौ बेचने पर गोहत्या का पाप लगता है । गोपालन में असमर्थ होने पर किसी सुपात्र ब्राह्मण, बहन, पुत्री या किसी गोभक्त के लिये प्रसन्नता पूर्वक गौ का दान कर दे । यदि गाय किसी दूसरे का भी अन्न, घास आदि खा लेती है तो गाय की कृपा ही समझनी चाहिये । भगवान् शिव कहते हैं कि मेरी कृपा से उसे अनेक गुणा अन्न आदि की प्राप्ति होती है, ऐसा शुभलक्षण समझे । सर्वतोभावेन गाय सेव्या एवं पूज्या होती है । इति गोगायत्रीमन्त्रजपविधानम् ।

पंचामृतविधानम्

गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्करान्वितम् ।
एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पंचामृतं परम् ।। धन्वन्तरिः
पंचामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं स्मृतम् ।। हेमाद्रिः
दुग्धं दधि मधु सर्पिः शर्कराणां क्रमेण च ।
तस्य तस्य च मन्त्रेण तत्तद्द्रव्यं समर्पयेत् ।।

अन्य ग्रन्थों में किञ्चित् मात्राभेद से पञ्चामृत का विधान बताया गया है । महानिर्वाणतन्त्र, कौलावतीनिर्णय और आचारेन्दु में गोदुग्ध, दधि, घृत, मधु एवं शर्करा या ग›ाजल को समान मात्रा में मिलाने का विधान है; यथा –

शर्करा मधु दुग्धं च घृतं दधि समांशकम् ।
पंचामृतमिदं प्रोक्तं देहशुद्धौ विधीयते ।।

स्कन्दपुराण के अनुसार दुग्ध से दस गुना दधि, दधि से दस गुना घृत, घृत से दस गुना मधु और मधु से दस गुना शर्करा मिलाने से पञ्चामृत होता है ।

अन्यत्र – **सर्पिषा द्विगुणं क्षौद्रं क्षौद्राद् द्विगुणशर्करा ।**
दध्नश्च द्विगुणं दुग्धं पंचामृतमुदाहृतम् ।।

घृत से दूना मधु, मधु से दूनी शर्करा, शर्करा से दूना दही और दधि से दूना दुग्ध को पञ्चामृत कहते हैं । 'पयः पृथिव्यां' आदि मन्त्रों से पञ्चामृत मिलाना और समर्पित करना चाहिये । अपनी शाखा और ऋषि परम्परा के अनुसार किसी शास्त्रीय पक्ष को ही ग्रहण करना चाहिये ।

आरती - गउ जननी की

सखि आरती उतारु गउ जननी की ।
गउ जननी की, जगतारिणी की ।।१।। सखि....
कंचन थार कपूर की बाती । मनोरमा पीयूषिणी की ।।२।।
सखि आरती...........
ब्रह्मसुता भूरूप दयामयी । कपिला नन्दा नन्दिनी की ।।३।।
सखि आरती...........
सुरगण ताल मृदंग बजावत । सुधासमुद्र पयस्विनी की ।।४।।
सखि आरती...........
जगत्पूज्य सुरभी जगकारण । उमा रमा ब्रह्माणी की ।।५।।
सखि आरती...........
विधि हरि 'गंगाधर' सुख पावत । चिन्तामणि वरदायिनी की ।।६।।

सखि आरती...........

आरती - गोमाता की

आरती कीजै गोमाता की । जगत्पूज्य अरु ब्रह्मसुता की ॥१॥
रोम रोम प्रति सुरगण राजै, कारण परम वेद यश गावै ॥
जगजननी सुरभी वसुधा की ॥२॥ आरती....
महापाप सन्ताप मिटावै, सुधा समुद्र सुधा बरसावै ॥
शरणागतवत्सल माता की ॥३॥ आरती...
अगणित नाम रूप गुण भावै, पालन सृजन प्रलय महँ व्यापै ॥
कामधेनु श्रीमती शबला की ॥४॥ आरती...
पुण्या गन्धवहा शुचि प्राणा, पयस्विनी चिन्तामणि ज्ञाना ॥
मनोरमा कपिला नन्दा की ॥५॥ आरती....
रोग शोक सब दूर भगावैं, विधि हरि 'गंगाधर' सुख पावैं ॥
परमानन्दप्रदा श्यामा की ॥६॥ आरती....

आरती- शिव-शक्ति की

आरति पारवती शंकर की । जगदम्बा अरु जगत्पिता की ॥१॥ आरति.....
उभयरूप अद्भुत छविराजत, भूषण वसन भस्म तन भावत ॥
सिंहवाहिनी वृषवाहन की ॥२॥ आरति ....
पूजा पाद्य अर्घ्य सम्भारा, चौदह भुवन भरै जयकारा ॥
मन्त्र क्रिया अरु यज्ञेश्वर की ॥३॥ आरति......
भुक्ति-मुक्तिप्रद वेद बखानत, दिव्य मरम कोउ विरला जानत ॥
कल्याणी शिव करुणाकर की ॥४॥ आरति.......
सृष्टि स्थिति लय कारण सरबस, अमल अनन्त अखण्ड एकरस ॥
श्रद्धा अरु विश्वास रूप की ॥५॥ आरति......
भाव भक्तिमय थाल सजाके, करैं आरती शरण में आके ॥
कामप्रदा श्री कामहरण की ॥६॥ आरति......
ब्रह्मा विष्णु सकल सुर ध्यावत, ऋषि मुनि सिद्ध मनुज सुख पावत ॥
श्रीगिरिजा प्रभु 'गंगाधर' की ॥७॥ आरति.......